ॐ अर्हं

जिनागम-ग्रन्थमाला ग्रन्थाङ्क १६

[परमश्रद्धेय गुरुदेव पूज्य श्रीजोरावरमलजी महाराज की पुण्य-स्मृति मे आयोजित]

श्री श्यामार्यवाचक-सकलित चतुर्थ उपाग

प्रज्ञापनासूत्र

[प्रथम खण्ड]

[मूलपाठ, हिन्दी अनुवाद, विवेचन, टिप्पणयुक्त]

☐ सन्निधि
उपप्रवर्त्तक शासनसेवी स्वामी श्री व्रजलालजी महाराज

☐ सयोजक तथा प्रधान सम्पादक
युवाचार्य श्री मिश्रीमलजी महाराज 'मधुकर'

☐ सम्पादक—विवेचक—अनुवादक
श्री ज्ञानमुनिजी महाराज
[स्व. जैनधर्मदिवाकर, आचार्य श्री आत्मारामजी महाराज के सुशिष्य]

☐ सह-सम्पादक
श्रीचन्द सुराना 'सरस'

☐ प्रकाशक
श्री आगम प्रकाशन-समिति, ब्यावर (राजस्थान)

[श्री व. स्था. जैन श्रमण संघ के प्रथमाचार्य
आचार्यसम्राट् पूज्य श्री आत्मारामजी महाराज के जन्मशताब्दी-वर्ष का विशेष उपहार]

□ सम्पादकमण्डल
अनुयोगप्रवर्तक मुनि श्री कन्हैयालालजी 'कमल'
श्री देवेन्द्रमुनि शास्त्री
श्री रतनमुनि
पण्डित श्री शोभाचन्द्रजी भारिल्ल

□ प्रबन्धसम्पादक
श्रीचन्द सुराणा 'सरस'

□ सम्प्रेरक
मुनि श्री विनयकुमार 'भीम'
श्री महेन्द्रमुनि 'दिनकर'

□ प्रकाशनतिथि
वीरनिर्वाण सवत् २५०९
विक्रम सं. २०४० चैत्र
ई. सन् १९८३

□ प्रकाशक
श्री आगमप्रकाशनसमिति
जैनस्थानक, पीपलिया बाजार, ब्यावर (राजस्थान)
ब्यावर—३०५९०१

□ मुद्रक
सतीशचन्द्र शुक्ल
वैदिक यंत्रालय, केसरगंज, अजमेर—३०५००१

□ मूल्य : ४५) रुपये

Published at the Holy Remembrance occasion
of
Rev Guru Sri Joravarmalji Maharaj

FOURTH UPĀNGA

AVA Ā TT

[Original Text, Hindi Version, Notes, Annotations and Appendices etc]

Proximity
Up-pravartaka Shasansevi Rev. Swami Sri Brijlalji Maharaj

Convener & Chief Editor
Yuvacharya Sri Mishrimalji Maharaj 'Madhukar'

Translator & Annotator
Shri Jnan muni

Sub-Editor
Shrichand Surana 'Saras'

Publishers
Sri Agam Prakashan Samiti
Beawar (Raj)

Jinagam Granthmala Publication No 16

Board of Editors

Anuyoga-pravartaka Munisri Kanhaiyalal 'Kamal'
Sri Devendra Muni Shastri
Sri Ratan Muni
Pt. Shobhachandra Bharill

Managing Editor

Srichand Surana 'Saras'

Promotor

Munisri Vinayakumar 'Bhima'
Sri Mahendramuni 'Dinakar'

Date of Publication

Vir-nirvana Samvat 2509
Vikram Samvat 2040, April 1983

Publishers

Sri Agam Prakashan Samiti,
Jain Sthanak, Pipaliya Bazar, Beawar (Raj)
Pin 305901

Printer

Satishchandra Shukla
Vedic Yantralaya
Kesarganj, Ajmer—305001

Price : Rs. 45/-

समर्पण

जिन्होंने
जैनागमों पर हिन्दी भाषा में
टीकाएँ लिखकर
तथा
आगम-सपादन की आधुनिक शैली का
प्रथम प्रवर्तन कर
महान् ऐतिहासिक श्रुत-सेवा की
उन
परमश्रद्धेय आगम-रहस्यविज्ञ
जैनधर्मदिवाकर
श्रमणसघ के प्रथम आचार्य
पूज्य श्री आत्मारामजी महाराज
की पावन स्मृति मे
उन्ही के जन्म-शताब्दी वर्ष के
पावन-प्रसग पर
सविनय सभक्ति समर्पित
—मधुकर मुनि

व्यावसायिक क्षेत्र मे जैसे-जैसे ख्याति फैलती गई, वैसे-वैसे आपने धार्मिक और मामाजिक कार्यो मे तन-मन-धन से योग देने की कीर्ति भी उपार्जित की हे। शुभ कार्यो मे सदैव अर्जित अर्थ को विनियोजित करते रहते है। सग्रह नही अपितु सविभाग करने की दृष्टि से मद्रास जैसे महानगर की प्रत्येक जनोपयोगी प्रवृत्ति से आप सबद्ध है। अनेक सार्वजनिक सस्थाओ को एक माथ पुष्कल अर्थ प्रदान कर स्थायी बना दिया है।

आप मद्रास एव अन्य स्थानो की जैन सस्थाओ से किसी न किसी रूप मे सबन्धित है। अध्यक्ष, मत्री आदि आदि अधिकारी होने के साथ ऐसी भी सस्थाये हे, जिनके प्रबन्ध-मडल के सदस्य न होते हुए भी प्रमुख सचालक है। कतिपय सस्थाओ के नाम इस प्रकार है, जिनके साथ आपका निकटतम सम्बन्ध है—

- ☐ श्री एस एस जैन एज्यूकेशन सोसायटी, मद्रास
- ☐ श्री राजस्थानी एसोशियेशन, मद्रास
- ☐ श्री राजस्थानी श्वे स्था जैन सेवासघ, मद्रास
- ☐ श्री वर्धमान सेवासमिति, नोखा
- ☐ श्री भगवान महावीर अहिसा-प्रचार-सघ
- ☐ स्वामीजी श्री हजारीमलजी म जैन ट्रस्ट, नोखा

सदैव सत-सतियाजी की सेवा करना भी आपके जीवन का ध्येय है। आपकी धर्मपत्नी भी धर्मश्रद्धा की प्रतिमूर्ति एव तपस्विनी है।

आपके ज्येष्ठ भ्राता श्री रतनचदजी और बादलचदजी भी धार्मिक वृत्ति के है। वे भी प्रत्येक सत्कार्य मे अपना सहयोग प्रदान करते है।

आपका परिवार स्वामीजी श्री व्रजलालजी म सा, पूज्य युवाचार्य श्री मिश्रीमलजी म सा 'मधुकर' का अनन्य भक्त है। आपने इस ग्रन्थ के प्रकाशन मे श्री आगम प्रकाशन समिति को अपना महत्त्व पूर्ण सहयोग प्रदान किया है। एतदर्थ समिति आपकी आभारी है एव अपेक्षा रखती है कि भविष्य मे भी समिति को आपका सपूर्ण सहयोग मिलता रहेगा।

मत्री
श्री आगम-प्रकाशन-समिति, ब्यावर

प्रकाशकीय

पाठको के कर-कमलो मे चतुर्थ उपाग श्रीप्रज्ञापनासूत्र समर्पित करते अतीव प्रमोद का अनुभव हो रहा है। प्रज्ञापनासूत्र विशालकाय आगम है और तत्त्वज्ञान की विवेचना मे भरपूर है। इसे समझने के लिए विस्तृत विवेचन की परमावश्यकता है। इस कारण इसे एक जिल्द मे प्रकाशित कर सकना सभव नही है। अतएव प्रथम खण्ड ही प्रकाशित किया जा रहा है। द्वितीय भाग के अधिकाश का मुद्रण हो चुका है। उसके भी शीघ्र ही तैयार हो जाने की सभावना है।

प्रस्तुत आगम की विस्तृत प्रस्तावना विख्यात विद्वान् श्री देवेन्द्र मुनिजी म शास्त्री लिख रहे है, किन्तु अस्वस्थता के कारण मुनिश्री उसे पूर्ण नही कर सके है। अतएव वह प्रस्तावना अन्तिम खण्ड मे दी जाएगी और मुद्रित हो रहा है।

प्रश्नव्याकरणसूत्र प्रेस मे दिया जा चुका है और मुद्रित हो रहा है।

प्रज्ञापनासूत्र का अनुवाद और सम्पादन जैनभूषण पजाबकेसरी प र मुनिश्री ज्ञानमुनिजी महाराज ने किया है। इसके सम्पादन और अनुवाद मे जो अर्थव्यय हुआ है, उसका भार जिन साहित्यप्रेमी सज्जनो ने वहन किया है, उनकी सूची साभार अन्यत्र प्रकाशित की जा रही है। श्रीमान् धर्मप्रेमी सेठ एम सायरचन्दजी चोरडया, मद्रास के विशिष्ट आर्थिक सहयोग से यह आगम प्रकाशित किया जा रहा है, अतएव उनके प्रति भी हम आभारी है।

श्रमणसघ के प्रथम आचार्य परमपूज्य श्री आत्मारामजी महाराज की जन्मशताब्दी-वर्ष के सुअवसर पर प्रज्ञापनासूत्र का प्रकाशन हो रहा है। अतएव स्व आचार्यसम्राट् के महान् उपकारो को लक्ष्य मे रख कर उन्ही के कर-कमलो मे यह समर्पित किया जा रहा है। आचार्यश्री का परिचय भी सक्षेप मे प्रकाशित कर रहे है।

अन्त मे जिन-जिन महानुभावो का समिति को प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप मे सहयोग प्राप्त हुआ या हो रहा है, उन सभी के प्रति हम हार्दिक आभार व्यक्त करना अपना कर्त्तव्य समझते है।

रतनचन्द मोदी	जतनराज महता	चांदमल विनायकिया
कार्यवाहक अध्यक्ष	प्रधान मन्त्री	मन्त्री

श्री आगम-प्रकाशन-समिति, ब्यावर

सम्पादन-सहयोगी सत्कार

प्रस्तुत आगम के अनुवाद तथा सम्पादन कार्य मे जिन उदार सद्गृहस्थो तथा सस्थाओ ने श्री शालिग्राम जैन प्रकाशन समिति खरड (रोपड) के सयोजन मे आर्थिक सहयोग प्रदान किया, उनकी शुभ नामावली इस प्रकार है—

☐ **सेठ शोरीलालजी जैन**
(सुपुत्र—ला वालमुकुन्दलाल जैन सर्राफ, रावलपिंडी वाले)

☐ **धर्मशीला श्रीमती जसवती देवी जैन**
[धर्मपत्नी—श्री प्रेमचन्दजी जैन, मोगा (पजाव)]

☐ **श्री छज्जूराम एण्ड सन्स**
जी टी रोड, मण्डी गोविन्दगढ (पजाव)

☐ **धर्मशीला श्रीमती कौशल्यादेवी अग्रवाल**
धर्मपत्नी—ला नत्थूरामजी, मडी गोविन्दगढ

☐ **धर्मशीला श्रीमती वीणादेवी**
धर्मपत्नी—श्री ओमप्रकाशजी जी टी रोड, मडी गोविन्दगढ

☐ **सेठ नरेन्द्रकुमार प्रेमनाथ अग्रवाल**
सहारनपुर (उ प्र)

☐ **धर्मशीला श्रीमती लेखा जैन**
धर्मपत्नी—ला शादीरामजी जैन, बजाज, होशियारपुर (पजाब)

☐ **शालिग्राम जैन प्रकाशन समिति**
खरड (रोपड) पजाब

☐ **ला शान्तिलालजी जैन**
जैन ट्रेडिंग कम्पनी, B 34, जी टी करनाल रोड, दिल्ली 53

आशा है दानी सज्जनो का भविष्य मे भी इसी प्रकार श्रुत-सेवा कार्य मे सत्सहयोग मिलता रहेगा ।

आदि वचन

विश्व के जिन दार्शनिको—दृष्टाओ/चिन्तको, ने "आत्मसत्ता" पर चिन्तन किया है, या आत्म-साक्षात्कार किया है उन्होने पर-हितार्थ आत्म-विकास के साधनो तथा पद्धतियो पर भी पर्याप्त चिन्तन-मनन किया है। आत्मा तथा तत्सम्बन्धित उनका चिन्तन-प्रवचन आज आगम/पिटक/वेद/उपनिषद् आदि विभिन्न नामो से विश्रुत है।

(जैनदर्शन की यह धारणा है कि आत्मा के विकारो—राग द्वेष आदि को, साधना के द्वारा दूर किया जा सकता है, और विकार जब पूर्णत निरस्त हो जाते है तो आत्मा की शक्तिया ज्ञान/सुख/वीर्य आदि सम्पूर्ण रूप मे उद्घाटित-उद्भासित हो जाती है। शक्तियो का सम्पूर्ण प्रकाश-विकास ही सर्वज्ञता है और सर्वज्ञ/आप्त-पुरुष की वाणी, वचन/कथन/प्ररूपणा—"आगम" के नाम से अभिहित होती है। आगम अर्थात् तत्त्वज्ञान, आत्म-ज्ञान तथा आचार-व्यवहार का सम्यक् परिबोध देने वाला शास्त्र/सूत्र/आप्तवचन।

सामान्यत सर्वज्ञ के वचनो/वाणी का सकलन नही किया जाता, वह बिखरे सुमनो की तरह होती है, किन्तु विशिष्ट अतिशयसम्पन्न सर्वज्ञ पुरुष, जो धर्मतीर्थ का प्रवर्तन करते है, सघीय जीवन-पद्धति मे धर्म-साधना को स्थापित करते है, वे धर्म प्रवर्तक/अरिहत या तीर्थंकर कहलाते है। तीर्थंकर देव की जनकल्याणकारिणी वाणी को उन्ही के अतिशयसम्पन्न विद्वान् शिष्य गणधर सकलित कर "आगम" या शास्त्र का रूप देते है अर्थात् जिन-वचनरूप सुमनो की मुक्त वृष्टि जब मालारूप मे ग्रथित होती है तो वह "आगम" का रूप धारण करती है। वही आगम अर्थात् जिन-प्रवचन आज हम सब के लिए आत्म-विद्या या मोक्ष-विद्या का मूल स्रोत है।

"आगम" को प्राचीनतम भाषा मे "गणिपिटक" कहा जाता था। अरिहतो के प्रवचनरूप समग्र शास्त्र-द्वादशाग मे समाहित होते है और द्वादशाग/आचाराग-सूत्रकृताग आदि के अग-उपाग आदि अनेक भदोपभेद विकसित हुए है। इस द्वादशागी का अध्ययन प्रत्येक मुमुक्षु के लिए आवश्यक और उपादेय माना गया है। द्वादशागी मे भी बारहवाँ अग विशाल एव समग्र श्रुतज्ञान का भण्डार माना गया है, उसका अध्ययन बहुत ही विशिष्ट प्रतिभा एव श्रुतसम्पन्न साधक कर पाते थे। इसलिए सामान्यत एकादशाग का अध्ययन साधको के लिए विहित हुआ तथा इसी ओर सबकी गति/मति रही।

जब लिखने की परम्परा नही थी, लिखने के साधनो का विकास भी अल्पतम था, तब आगमो/शास्त्रो/को स्मृति के आधार पर या गुरु-परम्परा से कठस्थ करके सुरक्षित रखा जाता था। सम्भवत इसलिए आगमज्ञान को श्रुतज्ञान कहा गया और इसीलिए श्रुति/स्मृति जैसे सार्थक शब्दो का व्यवहार किया गया। भगवान् महावीर के परिनिर्वाण के एक हजार वर्ष बाद तक आगमो का ज्ञान स्मृति/श्रुति परम्परा पर ही आधारित रहा। पश्चात् स्मृतिदौर्बल्य, गुरुपरम्परा का विच्छेद, दुष्काल-प्रभाव आदि अनेक कारणो से धीरे-धीरे आगमज्ञान लुप्त होता चला गया। महासरोवर का जल सूखता-सूखता गोष्पद मात्र रह गया। मुमुक्षु श्रमणो के लिए यह जहाँ चिन्ता का विषय था, वहाँ

सम्पादन-सहयोगी सत्कार

प्रस्तुत आगम के अनुवाद तथा सम्पादन कार्य मे जिन उदार सद्गृहस्थो तथा सस्थाओ ने श्री शालिग्राम जैन प्रकाशन समिति खरड (रोपड) के सयोजन मे आर्थिक सहयोग प्रदान किया, उनकी शुभ नामावली इस प्रकार है—

☐ **सेठ शोरीलालजी जैन**
(सुपुत्र—ला वालमुकुन्दलाल जैन सर्राफ, रावलपिडी वाले)

☐ **धर्मशीला श्रीमती जसवती देवी जैन**
[धर्मपत्नी—श्री प्रेमचन्दजी जैन, मोगा (पजाव)]

☐ **श्री छज्जूराम एण्ड सन्स**
जी टी रोड, मण्डी गोविन्दगढ (पजाव)

☐ **धर्मशीला श्रीमती कौशल्यादेवी ाल**
धर्मपत्नी—ला नत्थूरामजी, मडी गोविन्दगढ

☐ **धर्मशीला श्रीमती वीणादेवी**
धर्मपत्नी—श्री ओमप्रकाशजी जी टी रोड, मडी गोविन्दगढ

☐ **सेठ नरेन्द्रकुमार प्रेमनाथ अग्रवाल**
सहारनपुर (उ प्र)

☐ **धर्मशीला श्रीमती लेखा जैन**
धर्मपत्नी—ला शादीरामजी जैन, बजाज, होशियारपुर (पजाब)

☐ **शालिग्राम जैन प्रकाशन समिति**
खरड (रोपड) पजाब

☐ **ला शान्तिलालजी जैन**
जैन ट्रेडिग कम्पनी, B 34, जी टी करनाल रोड, दिल्ली 53

आशा है दानी सज्जनो का भविष्य मे भी इसी प्रकार श्रुत-सेवा कार्य मे सत्सहयोग मिलता रहेगा ।

आदि वचन

विश्व के जिन दार्शनिको—दृष्टाओ/चिन्तको, ने "आत्मसत्ता" पर चिन्तन किया है, या आत्म-साक्षात्कार किया है उन्होने पर-हितार्थ आत्म-विकास के साधनो तथा पद्धतियो पर भी पर्याप्त चिन्तन-मनन किया है। आत्मा तथा तत्सम्बन्धित उनका चिन्तन-प्रवचन आज आगम/पिटक/वेद/उपनिषद् आदि विभिन्न नामो से विश्रुत है।

(जैनदर्शन की यह धारणा है कि आत्मा के विकारो—राग द्वेष आदि को, साधना के द्वारा दूर किया जा सकता है, और विकार जब पूर्णत निरस्त हो जाते है तो आत्मा की शक्तियाँ ज्ञान/सुख/वीर्य आदि सम्पूर्ण रूप मे उद्घाटित-उद्भासित हो जाती है।) शक्तियो का सम्पूर्ण प्रकाश-विकास ही सर्वज्ञता है और सर्वज्ञ/आप्त-पुरुष की वाणी, वचन/कथन/प्ररूपणा—"आगम" के नाम से अभिहित होती है। आगम अर्थात् तत्त्वज्ञान, आत्म-ज्ञान तथा आचार-व्यवहार का सम्यक् परिबोध देने वाला शास्त्र/सूत्र/आप्तवचन।

सामान्यत सर्वज्ञ के वचनो/वाणी का सकलन नही किया जाता, वह बिखरे सुमनो की तरह होती है, किन्तु विशिष्ट अतिशयसम्पन्न सर्वज्ञ पुरुष, जो धर्मतीर्थ का प्रवर्तन करते है, सघीय जीवन-पद्धति मे धर्म-साधना को स्थापित करते है, वे धर्म प्रवर्तक/अरिहत या तीर्थंकर कहलाते है। तीर्थंकर देव की जनकल्याणकारिणी वाणी को उन्ही के अतिशयसम्पन्न विद्वान् शिष्य गणधर सकलित कर "आगम" या शास्त्र का रूप देते है अर्थात् जिन-वचनरूप सुमनो की मुक्त वृष्टि जब मालारूप मे ग्रथित होती है तो वह "आगम" का रूप धारण करती है। वही आगम अर्थात् जिन-प्रवचन आज हम सब के लिए आत्म-विद्या या मोक्ष-विद्या का मूल स्रोत है।

"आगम" को प्राचीनतम भाषा मे "गणिपिटक" कहा जाता था। अरिहतो के प्रवचनरूप समग्र शास्त्र-द्वादशाग मे समाहित होते है और द्वादशाग/आचाराग-सूत्रकृताग आदि के अग-उपाग आदि अनेक भदोपभेद विकसित हुए हैं। इस द्वादशागी का अध्ययन प्रत्येक मुमुक्षु के लिए आवश्यक और उपादेय माना गया है। द्वादशागी मे भी बारहवाँ अग विशाल एव समग्र श्रुतज्ञान का भण्डार माना गया है, उसका अध्ययन बहुत ही विशिष्ट प्रतिभा एव श्रुतसम्पन्न साधक कर पाते थे। इसलिए सामान्यत एकादशाग का अध्ययन साधको के लिए विहित हुआ तथा इसी ओर सबकी गति/मति रही।

जब लिखने की परम्परा नही थी, लिखने के साधनो का विकास भी अल्पतम था, तब आगमो/शास्त्रो/को स्मृति के आधार पर या गुरु-परम्परा से कठस्थ करके सुरक्षित रखा जाता था। सम्भवत इसलिए आगमज्ञान को श्रुतज्ञान कहा गया और इसीलिए श्रुति/स्मृति जैसे सार्थक शब्दो का व्यवहार किया गया। भगवान् महावीर के परिनिर्वाण के एक हजार वर्ष बाद तक आगमो का ज्ञान स्मृति/श्रुति परम्परा पर ही आधारित रहा। पश्चात् स्मृतिदौर्बल्य, गुरुपरम्परा का विच्छेद, दुष्काल-प्रभाव आदि अनेक कारणो से धीरे-धीरे आगमज्ञान लुप्त होता चला गया। महासरोवर का जल सूखता-सूखता गोष्पद मात्र रह गया। मुमुक्षु श्रमणो के लिए यह जहाँ चिन्ता का विषय था, वहाँ

चिन्तन की तत्परता एव जागरूकता को चुनौती भी थी। वे तत्पर हुए श्रुतज्ञान-निधि के संरक्षण हेतु। तभी महान् श्रुतपारगामी देवर्द्धि गणि क्षमाश्रमण ने विद्वान् श्रमणो का एक सम्मेलन बुलाया और स्मृति-दोष से लुप्त होते आगम ज्ञान को सुरक्षित एव सजोकर रखने का आह्वान किया। सर्व-सम्मति से आगमो को लिपि-बद्ध किया गया। जिनवाणी को पुस्तकारूढ करने का यह ऐतिहासिक कार्य वस्तुत आज की समग्र ज्ञान-पिपासु प्रजा के लिए एक अवर्णनीय उपकार सिद्ध हुआ। सस्कृति, दर्शन, धर्म तथा आत्म-विज्ञान की प्राचीनतम ज्ञानधारा को प्रवहमान रखने का यह उपक्रम वीरनिर्वाण के ९८० या ९९३ वर्ष पश्चात् प्राचीन नगरी वलभी (सौराष्ट्र) मे आचार्य श्री देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण के नेतृत्व मे सम्पन्न हुआ। वैसे जैन आगमो की यह दूसरी अन्तिम वाचना थी, पर लिपिबद्ध करने का प्रथम प्रयास था। आज प्राप्त जैन सूत्रो का अन्तिम स्वरूप-सस्कार इसी वाचना मे सम्पन्न किया गया था।

पुस्तकारूढ होने के बाद आगमो का स्वरूप मूल रूप मे तो सुरक्षित हो गया, किन्तु काल-दोष, श्रमण-सघो के आन्तरिक मतभेद, स्मृतिदुर्बलता, प्रमाद एव भारतभूमि पर बाहरी आक्रमणो के कारण विपुल ज्ञान-भण्डारो का विध्वस आदि अनेकानेक कारणो से आगम ज्ञान की विपुल सम्पत्ति, अर्थबोध की सम्यक् गुरु-परम्परा धीरे-धीरे क्षीण एव विलुप्त होने से नही रुकी। आगमो के अनेक महत्वपूर्ण पद, सन्दर्भ तथा उनके गूढार्थ का ज्ञान, छिन्न-विच्छिन्न होते चले गए। परिपक्व भाषाज्ञान के अभाव मे, जो आगम हाथ से लिखे जाते थे, वे भी शुद्ध पाठ वाले नही होते, उनका सम्यक् अर्थ-ज्ञान देने वाले भी विरले ही मिलते। इस प्रकार अनेक कारणो से आगम की पावन धारा सकुचित होती गयी।

विक्रमीय सोलहवी शताब्दी मे वीर लोकाशाह ने इस दिशा मे क्रान्तिकारी प्रयत्न किया। आगमो के शुद्ध और यथार्थ अर्थज्ञान को निरूपित करने का एक साहसिक उपक्रम पुन चालू हुआ। किन्तु कुछ काल बाद उसमे भी व्यवधान उपस्थित हो गये। साम्प्रदायिक-विद्वेष, सैद्धानिक विग्रह, तथा लिपिकारो का अत्यल्प ज्ञान आगमो की उपलब्धि तथा उनके सम्यक् अर्थबोध मे बहुत बडा विघ्न बन गया। आगम-अभ्यासियो को शुद्ध प्रतिया मिलना भी दुर्लभ हो गया।

उन्नीसवी शताब्दी के प्रथम चरण मे जब आगम-मुद्रण की परम्परा चली तो सुधी पाठको को कुछ सुविधा प्राप्त हुई। धीरे-धीरे विद्वत्-प्रयासो से आगमो की प्राचीन चूर्णियाँ, निर्युक्तियाँ, टीकाये आदि प्रकाश मे आई और उनके आधार पर आगमो का स्पष्ट-सुगम भावबोध सरल भाषा मे प्रकाशित हुआ। इसमे आगम-स्वाध्यायी तथा ज्ञान-पिपासु जनो को सुविधा हुई। फलत आगमो के पठन-पाठन की प्रवृत्ति बढी है। मेरा अनुभव है, आज पहले से कही अधिक आगम-स्वाध्याय की प्रवृत्ति बढी है, जनता मे आगमो मे प्रति आकर्षण व रुचि जागृत हो रही है। इस रुचि-जागरण मे अनेक विदेशी आगमज्ञ विद्वानो तथा भारतीय जैनेतर विद्वानो की आगम-श्रुत-सेवा का भी प्रभाव व अनुदान है, इसे हम सगौरव स्वीकारते है।

आगम-सम्पादन-प्रकाशन का यह सिलसिला लगभग एक शताब्दी से व्यवस्थित चल रहा है। इस महनीय श्रुत सेवा मे अनेक समर्थ श्रमणो, पुरुषार्थी विद्वानो का योगदान रहा है। उनकी सेवाये नीव की ईंट की तरह आज भले ही अदृश्य हो, पर विस्मरणीय तो कदापि नही, स्पष्ट व पर्याप्त साधनो के अभाव मे हम अधिक विस्तृत रूप मे उनका उल्लेख करने मे असमर्थ है, पर विनीत व कृतज्ञ तो है ही। फिर भी स्थानकवासी जैन परम्परा के कुछ विशिष्ट आगम श्रुत-सेवी मुनिवरो का नामोल्लेख अवश्य करना चाहेगे।

आज से लगभग साठ वर्ष पूर्व पूज्य श्री अमोलकऋषिजी महाराज ने जैन आगमों—३२ सूत्रो का प्राकृत से खडी बोली मे अनुवाद किया था। उन्होंने अकेले ही बत्तीस सूत्रों का अनुवाद कार्य सिर्फ ३ वर्ष व १५ दिन मे पूर्ण कर अद्भुत कार्य किया। उनकी दृढ लगनशीलता, साहस एव आगमज्ञान की गम्भीरता उनके कार्य से ही स्वत परिलक्षित होती है। वे ३२ ही आगम अल्प समय मे प्रकाशित भी हो गये।

इससे आगमपठन बहुत सुलभ व व्यापक हो गया और स्थानकवासी-तेरापथी समाज तो विशेष उपकृत हुआ।

गुरुदेव श्रीजोरावरमलजी महाराज का संकल्प

मैं जब प्रात स्मरणीय गुरुदेव स्वामीजी श्री जोरावरमल जी म० के सान्निध्य मे आगमो का अध्ययन-अनुशीलन करता था तब आगमोदय समिति द्वारा प्रकाशित आचार्य अभयदेव व शीलाक की टीकाओ से युक्त कुछ आगम उपलब्ध थे। उन्ही के आधार पर मैं अध्ययन-वाचन करता था। गुरुदेवश्री ने कई बार अनुभव किया—यद्यपि यह सस्करण काफी श्रमसाध्य व उपयोगी है, अब तक उपलब्ध सस्करणो मे प्राय शुद्ध भी है, फिर भी अनेक स्थल अस्पष्ट हैं, मूलपाठो मे व वृत्ति मे कही-कही अशुद्धता व अन्तर भी है। सामान्य जन के लिये दुरूह तो है ही। चूकि गुरुदेवश्री स्वय आगमो के प्रकाण्ड पण्डित थे, उन्हे आगमो के अनेक गूढार्थ गुरु-गम से प्राप्त थे। उनकी मेधा भी व्युत्पन्न व तर्क-प्रवण थी, अत वे इस कमी को अनुभव करते थे और चाहते थे कि आगमो का शुद्ध, सर्वोपयोगी ऐसा प्रकाशन हो, जिससे सामान्य ज्ञानवाले श्रमण-श्रमणी एव जिज्ञासुजन लाभ उठा सके। उनके मन की यह तडप कई बार व्यक्त होती थी। पर कुछ परिस्थियों के कारण उनका यह स्वप्न-सकल्प साकार नही हो सका, फिर भी मेरे मन मे प्रेरणा बनकर अवश्य रह गया।

इसी अन्तराल मे आचार्य श्री जवाहरलाल जी महाराज, श्रमणसघ के प्रथम आचार्य जैनधर्मदिवाकर आचार्य श्री आत्माराम जी म०, विद्वद्रत्न श्री घासीलालजी म० आदि मनीषी मुनिवरो ने आगमो की हिन्दी, सस्कृत, गुजराती आदि मे सुन्दर विस्तृत टीकाये लिखकर या अपने तत्त्वावधान मे लिखवा कर कमी को पूरा करने का महनीय प्रयत्न किया है।

श्वेताम्बर मूर्तिपूजक आम्नाय के विद्वान् श्रमण परमश्रुतसेवी स्व० मुनि श्री पुण्यविजयजी ने आगम-सम्पादन की दिशा मे बहुत व्यवस्थित व उच्चकोटि का कार्य प्रारम्भ किया था। विद्वानो ने उसे बहुत ही सराहा। किन्तु उनके स्वर्गवास के पश्चात् उस मे व्यवधान उत्पन्न हो गया। तदपि आगमज्ञ मुनि श्री जम्बूविजयजी आदि के तत्त्वावधान मे आगम-सम्पादन का सुन्दर व उच्च-कोटि का कार्य आज भी चल रहा है।

वर्तमान मे तेरापथी सम्प्रदाय मे आचार्य श्री तुलसी एव युवाचार्य महाप्रज्ञजी के नेतृत्व मे आगम-सम्पादन का कार्य चल रहा है और जो आगम प्रकाशित हुए है उन्हे देखकर विद्वानो को प्रसन्नता है। यद्यपि उनके पाठनिर्णय मे काफी मतभेद की गुजाइश है। तथापि उनके श्रम का महत्त्व है। मुनि श्री कन्हैयालाल जी म "कमल" आगमो की वक्तव्यता को अनुयोगो मे वर्गीकृत करके प्रकाशित कराने की दिशा मे प्रयत्नशील हैं। उनके द्वारा सम्पादित कुछ आगमो मे उनकी कार्यशैली की विशदता एव मौलिकता स्पष्ट होती है।

चिन्तन की तत्परता एव जागरूकता को चुनौती भी थी। वे तत्पर हुए श्रुतज्ञान-निधि के संरक्षण हेतु। तभी महान् श्रुतपारगामी देवर्द्धि गणि क्षमाश्रमण ने विद्वान् श्रमणो का एक सम्मेलन बुलाया और स्मृति-दोष से लुप्त होते आगम ज्ञान को सुरक्षित एव सजोकर रखने का आह्वान किया। सर्व-सम्मति से आगमो को लिपि-वद्ध किया गया। जिनवाणी को पुस्तकारुढ करने का यह ऐतिहासिक कार्य वस्तुत आज की समग्र ज्ञान-पिपासु प्रजा के लिए एक अवर्णनीय उपकार सिद्ध हुआ। सस्कृति, दर्शन, धर्म तथा आत्म-विज्ञान की प्राचीनतम ज्ञानधारा को प्रवहमान रखने का यह उपक्रम वीरनिर्वाण के ९८० या ९९३ वर्ष पश्चात् प्राचीन नगरी वलभी (सौराष्ट्र) मे आचार्य श्री देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण के नेतृत्व मे सम्पन्न हुआ। वैसे जैन आगमो की यह दूसरी अन्तिम वाचना थी, पर लिपिवद्ध करने का प्रथम प्रयास था। आज प्राप्त जैन सूत्रो का अन्तिम स्वरूप-सस्कार इसी वाचना मे सम्पन्न किया गया था।

पुस्तकारूढ होने के बाद आगमो का स्वरूप मूल रूप मे तो सुरक्षित हो गया, किन्तु काल-दोष, श्रमण-सघो के आन्तरिक मतभेद, स्मृतिदुर्वलता, प्रमाद एव भारतभूमि पर बाहरी आक्रमणो के कारण विपुल ज्ञान-भण्डारो का विध्वस आदि अनेकानेक कारणो से आगम ज्ञान की विपुल सम्पत्ति, अर्थबोध की सम्यक् गुरु-परम्परा धीरे-धीरे क्षीण एव विलुप्त होने से नही रुकी। आगमो के अनेक महत्वपूर्ण पद, सन्दर्भ तथा उनके गूढार्थ का ज्ञान, छिन्न-विच्छिन्न होते चले गए। परिपक्व भाषाज्ञान के अभाव मे, जो आगम हाथ से लिखे जाते थे, वे भी शुद्ध पाठ वाले नही होते, उनका सम्यक् अर्थ-ज्ञान देने वाले भी विरले ही मिलते। इस प्रकार अनेक कारणो से आगम की पावन धारा सकुचित होती गयी।

विक्रमीय सोलहवी शताब्दी मे वीर लोकाशाह ने इस दिशा मे क्रान्तिकारी प्रयत्न किया। आगमो के शुद्ध और यथार्थ अर्थज्ञान को निरूपित करने का एक साहसिक उपक्रम पुन चालू हुआ। किन्तु कुछ काल बाद उसमे भी व्यवधान उपस्थित हो गये। साम्प्रदायिक-विद्वेष, सैद्धानिक विग्रह, तथा लिपिकारो का अत्यल्प ज्ञान आगमो की उपलब्धि तथा उनके सम्यक् अर्थबोध मे बहुत बडा विघ्न बन गया। आगम-अभ्यासियो को शुद्ध प्रतिया मिलना भी दुर्लभ हो गया।

उन्नीसवी शताब्दी के प्रथम चरण मे जब आगम-मुद्रण की परम्परा चली तो सुधी पाठको को कुछ सुविधा प्राप्त हुई। धीरे-धीरे विद्वत्-प्रयासो से आगमो की प्राचीन चूर्णियाँ, निर्युक्तियाँ, टीकाये आदि प्रकाश मे आई और उनके आधार पर आगमो का स्पष्ट-सुगम भावबोध सरल भाषा मे प्रकाशित हुआ। इसमे आगम-स्वाध्यायी तथा ज्ञान-पिपासु जनो को सुविधा हुई। फलत आगमो के पठन-पाठन की प्रवृत्ति बढी है। मेरा अनुभव है, आज पहले से कही अधिक आगम-स्वाध्याय की प्रवृत्ति बढी है, जनता मे आगमो मे प्रति आकर्षण व रुचि जागृत हो रही है। इस रुचि-जागरण मे अनेक विदेशी आगमज्ञ विद्वानो तथा भारतीय जैनेतर विद्वानो की आगम-श्रुत-सेवा का भी प्रभाव व अनुदान है, इसे हम सगौरव स्वीकारते है।

आगम-सम्पादन-प्रकाशन का यह सिलसिला लगभग एक शताब्दी से व्यवस्थित चल रहा है। इस महनीय श्रुत सेवा मे अनेक समर्थ श्रमणो, पुरुषार्थी विद्वानो का योगदान रहा है। उनकी सेवाये नीव की ईंट की तरह आज भले ही अदृश्य हो, पर विस्मरणीय तो कदापि नही, स्पष्ट व पर्याप्त साधनो के अभाव मे हम अधिक विस्तृत रूप मे उनका उल्लेख करने मे असमर्थ हैं, पर विनीत व कृतज्ञ तो है ही। फिर भी स्थानकवासी जैन परम्परा के कुछ विशिष्ट आगम श्रुत-सेवी मुनिवरो का नामोल्लेख अवश्य करना चाहेगे।

आज से लगभग साठ वर्ष पूर्व पूज्य श्री अमोलकऋषिजी महाराज ने जैन आगमों—३२ सूत्रों का प्राकृत से खडी बोली मे अनुवाद किया था। उन्होने अकेले ही वत्तीस सूत्रों का अनुवाद कार्य सिर्फ ३ वर्ष व १५ दिन मे पूर्ण कर अद्भुत कार्य किया। उनकी दृढ लगनशीलता, साहस एव आगमज्ञान की गम्भीरता उनके कार्य से ही स्वत परिलक्षित होती है। वे ३२ ही आगम अल्प समय मे प्रकाशित भी हो गये।

इससे आगमपठन बहुत सुलभ व व्यापक हो गया और स्थानकवासी-तेरापथी समाज तो विशेष उपकृत हुआ।

गुरुदेव श्रीजोरावरमलजी महाराज का संकल्प

मै जब प्रात स्मरणीय गुरुदेव स्वामीजी श्री जोरावरमल जी म० के सान्निध्य मे आगमो का अध्ययन-अनुशीलन करता था तब आगमोदय समिति द्वारा प्रकाशित आचार्य अभयदेव व शीलाक की टीकाओ से युक्त कुछ आगम उपलब्ध थे। उन्ही के आधार पर मैं अध्ययन-वाचन करता था। गुरुदेवश्री ने कई बार अनुभव किया—यद्यपि यह सस्करण काफी श्रमसाध्य व उपयोगी है, अब तक उपलब्ध सस्करणो मे प्राय शुद्ध भी है, फिर भी अनेक स्थल अस्पष्ट है, मूलपाठो मे व वृत्ति मे कही-कही अशुद्धता व अन्तर भी है। सामान्य जन के लिये दुरूह तो है ही। चूकि गुरुदेवश्री स्वय आगमो के प्रकाण्ड पण्डित थे, उन्हे आगमो के अनेक गूढार्थ गुरु-गम से प्राप्त थे। उनकी मेधा भी व्युत्पन्न व तर्क-प्रवण थी, अत वे इस कमी को अनुभव करते थे और चाहते थे कि आगमो का शुद्ध, सर्वोपयोगी ऐसा प्रकाशन हो, जिससे सामान्य ज्ञानवाले श्रमण-श्रमणी एव जिज्ञासुजन लाभ उठा सके। उनके मन की यह तडप कई बार व्यक्त होती थी। पर कुछ परिस्थियो के कारण उनका यह स्वप्न-सकल्प साकार नही हो सका, फिर भी मेरे मन मे प्रेरणा वनकर अवश्य रह गया।

इसी अन्तराल मे आचार्य श्री जवाहरलाल जी महाराज, श्रमणसघ के प्रथम आचार्य जैनधर्मदिवाकर आचार्य श्री आत्माराम जी म०, विद्वद्रत्न श्री घासीलालजी म० आदि मनीषी मुनिवरो ने आगमो की हिन्दी, सस्कृत, गुजराती आदि मे सुन्दर विस्तृत टीकाये लिखकर या अपने तत्त्वावधान मे लिखवा कर कमी को पूरा करने का महनीय प्रयत्न किया है।

श्वेताम्बर मूर्तिपूजक आम्नाय के विद्वान् श्रमण परमश्रुतसेवी स्व० मुनि श्री पुण्यविजयजी ने आगम-सम्पादन की दिशा मे बहुत व्यवस्थित व उच्चकोटि का कार्य प्रारम्भ किया था। विद्वानो ने उसे बहुत ही सराहा। किन्तु उनके स्वर्गवास के पश्चात् उस मे व्यवधान उत्पन्न हो गया। तदपि आगमज्ञ मुनि श्री जम्बूविजयजी आदि के तत्त्वावधान मे आगम-सम्पादन का सुन्दर व उच्च-कोटि का कार्य आज भी चल रहा है।

वर्तमान मे तेरापथी सम्प्रदाय मे आचार्य श्री तुलसी एव युवाचार्य महाप्रज्ञजी के नेतृत्व मे आगम-सम्पादन का कार्य चल रहा है और जो आगम प्रकाशित हुए है उन्हे देखकर विद्वानो को प्रसन्नता है। यद्यपि उनके पाठनिर्णय मे काफी मतभेद की गुजाइश है। तथापि उनके श्रम का महत्त्व है। मुनि श्री कन्हैयालाल जी म "कमल" आगमो की वक्तव्यता को अनुयोगो मे वर्गीकृत करके प्रकाशित कराने की दिशा मे प्रयत्नशील हैं। उनके द्वारा सम्पादित कुछ आगमो मे उनकी कार्यशैली की विशदता एव मौलिकता स्पष्ट होती है।

आगम साहित्य के वयोवृद्ध विद्वान् प श्री बेचरदासजी दोशी ने आगमसम्पादन के क्षेत्र में बहुमूल्य योग प्रदान किया। खेद है कि वे अब हमारे बीच नही रहे। विश्रुत-मनीषी श्री दलसुखभाई मालवणिया जैसे चिन्तनशील प्रज्ञापुरुष आगमो के आधुनिक सम्पादन की दिशा मे स्वय भी कार्य कर रहे है तथा अनेक विद्वानो का मार्ग-दर्शन कर रहे हैं। यह प्रसन्नता का विषय है।

इस सब कार्य-शैली पर विहगम अवलोकन करने के पश्चात् मेरे मन मे एक सकल्प उठा। आज प्राय सभी विद्वानो की कार्यशैली काफी भिन्नता लिये हुए है। कही आगमो का मूल पाठ मात्र प्रकाशित किया जा रहा है तो कही आगमो की विशाल व्याख्याये की जा रही हैं। एक पाठक के लिये दुर्बोध है तो दूसरी जटिल। सामान्य पाठक को सरलतापूर्वक आगमज्ञान प्राप्त हो सके, एतदर्थ मध्यम मार्ग का अनुसरण आवश्यक है। आगमो का एक ऐसा सस्करण होना चाहिये जो सरल हो, सुबोध हो, सक्षिप्त और प्रामाणिक हो। मेरे स्वर्गीय गुरुदेव ऐसा ही आगम-सस्करण चाहते थे। इसी भावना को लक्ष्य मे रखकर मैने ५-६ वर्ष पूर्व इस विषय की चर्चा प्रारम्भ की थी, सुदीर्घ चिन्तन के पश्चात् वि स २०३६ वैशाख शुक्ला दशमी, भगवान् महावीर कैवल्यदिवस को यह दृढ निश्चय घोषित कर दिया और आगमबत्तीसी का सम्पादन-विवेचन कार्य प्रारम्भ भी। इस साहसिक निर्णय मे गुरुभ्राता शासनसेवी स्वामी श्री व्रजलाल जी म की प्रेरणा/प्रोत्साहन तथा मार्गदर्शन मेरा प्रमुख सम्बल बना है। साथ ही अनेक मुनिवरो तथा सद्गृहस्थो का भक्ति-भाव भरा सहयोग प्राप्त हुआ है, जिनका नामोल्लेख किये बिना मन सन्तुष्ट नही होगा। आगम अनुयोग शैली के सम्पादक मुनि श्री कन्हैयालालजी म "कमल", प्रसिद्ध साहित्यकार श्री देवेन्द्रमुनिजी म शास्त्री, आचार्य श्री आत्मारामजी म के प्रशिष्य भण्डारी श्री पदमचन्दजी म एव प्रवचनभूषण श्री अमरमुनिजी, विद्वद्-रत्न श्री ज्ञानमुनिजी म, स्व विदुषी महासती श्री उज्ज्वलकुवरजी म की सुशिष्याए महासती दिव्यप्रभाजी, एम ए, पी-एच डी, महासती मुक्तिप्रभाजी तथा विदुषी महासती श्री उमराव-कुवरजी म 'अर्चना', विश्रुत विद्वान् श्री दलसुखभाई मालवणिया, सुख्यात विद्वान् प श्री शोभाचन्द्र जी भारिल्ल, स्व प श्री हीरालालजी शास्त्री, डा छगनलालजी शास्त्री एव श्रीचन्दजी सुराणा "सरस" आदि मनीषियो का सहयोग आगमसम्पादन के इस दुरूह कार्य को सरल बना सका है। इन सभी के प्रति मन आदर व कृतज्ञ भावना से अभिभूत है। इसी के साथ सेवा-सहयोग की दृष्टि से सेवाभावी शिष्य मुनि विनयकुमार एव महेन्द्र मुनि का साहचर्य-सहयोग, महासती श्री कानकुवरजी, महासती श्री झणकारकुवरजी का सेवाभाव सदा प्रेरणा देता रहा है। इस प्रसग पर इस कार्य के प्रेरणा-स्रोत स्व श्रावक चिमनसिंहजी लोढा, स्व श्री पुखराजजी सिसोदिया का स्मरण भी सहजरूप मे हो आता है जिनके अथक प्रेरणा-प्रयत्नो से आगमसमिति अपने कार्य मे इतनी शीघ्र सफल हो रही है। अल्पकाल मे ही पन्द्रह आगम ग्रन्थो का मुद्रण तथा करीब १५-२० आगमो का अनुवाद-सम्पादन हो जाना हमारे सब सहयोगियो की गहरी लगन का द्योतक है।

मुझे सुदृढ विश्वास है कि परम श्रद्धेय स्वर्गीय स्वामी श्री हजारीमलजी महाराज आदि तपोपूत आत्माओ के शुभाशीर्वाद से तथा हमारे श्रमणसघ के भाग्यशाली नेता राष्ट्र-सत आचार्य श्री आनन्दऋषिजी म आदि मुनिजनो के सद्भाव-सहकार के बल पर यह सकल्पित जिनवाणी का सम्पादन-प्रकाशन कार्य शीघ्र ही सम्पन्न होगा।

इसी शुभाशा के साथ,

—मुनि मिश्रीमल "मधुकर"
(युवाचार्य)

आचार्यसम्राट् श्री आत्मारामजी महाराज

[जीवन और साधना की एक संक्षिप्त झांकी]

हजारो जीव प्रतिक्षण जन्म लेते है और मनुष्य का शरीर धारण करके इस धरातल पर अवतरित होते रहते है, परन्तु, सबकी जयन्तियाँ नही मनाई जाती। ना ही सबको श्रद्धा और सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है। आदर उन्ही को सम्प्राप्त होता है जो अपने लिये नही, समाज के लिये जीते है। जन-जीवन के उत्थान, निर्माण एव कल्याण के लिए जो अपनी समस्त जीवन-शक्तिया समर्पित कर देते हैं। वे स्वय जहा आत्म-कल्याण मे जागरूक रहते हैं, वहा वे दूसरो की हित-साधना का भी पूरा-पूरा ध्यान रखते है।

आचार्य-सम्राट् पूज्य श्री आत्मारामजी महाराज उन महापुरुषो मे से एक थे जिनका जीवन सदा लोकोपकारी जीवन रहा है। जीवन के ७८ वर्षों तक वे अहिंसा, सयम और तप के दीप जगाते रहे। इनकी जीवन-सरिता जिधर से गुजर गई वही पर एक अद्भुत सुषमा छा गई। आज भी उनकी वाणी तथा साहित्य जन-जीवन के लिये प्रकाश-स्तम्भ का काम दे रही है।

जन्मकाल

आचार्य-सम्राट् पूज्य श्री आत्मारामजी महाराज वि स १९३९ भादो सुदी द्वादशी को पजाब-प्रान्तीय राहो के प्रसिद्ध व्यापारी सेठ मशारामजी चोपडा के घर पैदा हुए। माताजी का नाम परमेश्वरी देवी था। सोने जैसे सुन्दर लाल को पाकर माता-पिता फूले नही समा रहे थे। पुण्यवान सन्तति भी जन्म-जन्मान्तर के पुण्य से ही प्राप्त हुआ करती है।

संकट की घड़ियाँ

आचार्य श्री का बचपन बडा ही सकटमय रहा। असातावेदनीय कर्म के प्रहारो ने इन्हे बुरी तरह से परेशान कर दिया था। दो वर्ष की स्वल्प आयु मे आपकी माताजी का स्वर्गवास हो गया। आठ वर्ष की आयु मे पिता परलोकवासी हो गए। मात्र एक दादी थी जिसकी देख-रेख मे आपका शैशव काल गुजर रहा था। दो वर्षों के अनन्तर उनका भी देहान्त हो गया। इस तरह आचार्य देव का बचपन सकटो की भीषणता ने बुरी तरह से आक्रान्त कर लिया था। कर्म बडे बलवान होते है। इनसे कौन बच सकता है?

सयम-साधना की राह पर

माता-पिता और दादी के वियोग ने आचार्य-देव के मानस को ससार से बिल्कुल उपरत कर दिया था। ससार की अनित्यता साकार हो कर आपके सामने नाचने लगी थी। फलत आत्म-साधना और प्रभु-भक्ति का महापथ ही आपको सच्चिदानन्ददायी अनुभव हुआ था। अन्त मे ११ वर्ष की स्वल्प आयु मे आप सवत् १९५१ को बनूड मे महामहिम गुरुदेव पूज्य श्री स्वामी शालिगरामजी महाराज के चरणो मे दीक्षित हो गए।

साहित्यसेवा

आपका शास्त्र-स्वाध्याय वडा ही व्यापक और तलस्पर्शी था। जैन शास्त्रो के महासागर मे कौनसा मोती कहा पडा है, यह आपके ज्ञान-नेत्रो से ओझल नही था। आपके शास्त्रीय वैदुष्य की विलक्षणता के कारण ही जैन समाज ने आप को पजाव सम्प्रदाय के उपाध्याय पद मे विभूषित किया। आपने ६० के लगभग ग्रन्थ लिखे, वडे-वडे शास्त्रो का भाषानुवाद किया। 'तत्त्वार्थसूत्र जैनागम-समन्वय' आप की अपूर्व रचना है। जर्मन, फ्रान्स, अमरीका तथा कनाडा के विद्वानो ने भी इस रचना का हार्दिक अभिनन्दन किया था। जैन, बौद्ध और वैदिक शास्त्रो के आप अधिकारी विद्वान् थे। आपकी साहित्य-सेवा जैन-जगत् के साहित्य-गगन पर सूर्य की तरह सदा चमचमाती रहेगी।

सहिष्णुता के महासागर

वीरता, धीरता तथा सहिष्णुता के आपश्री महासागर थे। भयकर से भयकर सकटकाल मे भी आपको किसी ने परेशान नही देखा। एक वार लुधियाना मे आप की जाघ की हड्डी टूट गयी, उसके तीन टुकडे हो गये। लुधियाना के क्रिश्चियन हॉस्पीटल मे डा वर्जन ने आपका आपरेशन किया। ऑपरेशन-काल मे आपको वेहोश नही किया गया था, तथापि आप इतने शान्त और गम्भीर रहे कि डा वर्जन दग रह गये। वरवस उनकी जवान से निकला कि ईसा की शान्ति की कहानियाँ सुना करते थे, परन्तु इस महापुरुष के जीवन मे उस शान्ति के साक्षात् दर्शन कर रहा हूँ।

जीवन के सध्याकाल मे आपको कैंसर के रोग ने आक्रान्त कर लिया था। तथापि आप सदा शान्त रहते थे। भयकर वेदना होने पर भी आपके चेहरे पर कभी उदासीनता या व्याकुलता नही देखी। लुधियाना जैन विरादरी के लोग जव डाक्टर को लाए और डाक्टर ने जव पूछा—महाराज, आप को क्या तकलीफ है? तव आप ने वडा सुन्दर उत्तर दिया। आप वोले—डाक्टर साहव! मुझे तो कोई तकलीफ नही, जो लोग आप को लाए है, उनको अवश्य तकलीफ है। उनका ध्यान करे। महाराजश्री जी की सहिष्णुता देखकर सभी लोग विस्मित हो रहे थे, और कह रहे थे कि कैंसर-जैसे भयकर रोग के होने पर भी गुरुदेव विल्कुल शान्त है, जैसे कोई वात ही नही है।

प्रधानाचार्य पद

वि स २००३ लुधियाना मे आप पजाव के स्थानकवासी जैन श्रमण सघ के आचार्य वनाए गए और वि स २००९ मे सादडी मे आपको श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण सघ के प्रधानाचार्य पद से विभूषित किया गया। सचमुच आप का वैदुष्यपूर्ण व्यक्तित्व यत्र, तत्र और सर्वत्र ही प्रतिष्ठा प्राप्त करता रहा है। क्या जैन, क्या अजैन, सभी आपकी आचार तथा विचार सम्बन्धी गरिमा की महिमा को गाते नही थकते थे। आज भी लोग जब आपके अगाध शास्त्रीय ज्ञान की चर्चा करते है तो श्रद्धा से झूम उठते है।

सफल प्रवचनकार

आचार्य-प्रवर अपने युग के एक सफल प्रवक्ता एव प्रवचनकार रहे है। शास्त्रीय तथ्य एव सत्य ही आपके प्रवचनो का आधार होते थे। उनसे हृदयस्पर्शी ठोस तत्त्व श्रोता को प्राप्त होता था। प जवाहरलाल नेहरू, सरदार-पटेल, श्री प्रतापसिंह कैरो, श्री भीमसेन सच्चर प्रभृति राष्ट्र के

महान् नेताओ ने भी आपके प्रवचनो का लाभ लिया था। सचमुच आपकी वाणी मे निराला माधुर्य था, सरलता इतनी कि साधारण पढा-लिखा व्यक्ति भी उसे अच्छी तरह समझ लेता था। आपके मगलमय उपदेश आज भी जनजीवन को नवजागरण का सन्देश दे रहे है।

आत्म-शताब्दी वर्ष

वि स २०३६ आपका जन्म-शताब्दी वर्ष है। यह पावन वर्ष है। ऐतिहासिक है। यह वर्ष विशेषरूप से पूज्य गुरुदेव के चरणो मे श्रद्धासुमन समर्पित करने का है।

स्व गुरुदेव की जीवन की महान्तम उपलब्धि थी—जैन आगम साहित्य का विद्वानो तथा सर्वसाधारण के लिए उपयोगी सस्करण। यही उनकी हार्दिक भावना थी कि जैनआगमज्ञान का यथार्थ प्रसार हो, जन-जन के हाथो मे आगमज्ञान की मूल्यवान् मणिया पहुँचे। गुरुदेव श्री की इसी भावना को साकार रूप देने हेतु मैने प्रज्ञापनासूत्र का अनुवाद-विवेचन करने का दायित्व लिया है। अपने श्रद्धेय गुरुदेव के प्रति यही मेरी श्रद्धाञ्जलि है।

—ज्ञान मुनि

म्पादकीय

नामकरण

'पण्णवणा' अथवा 'प्रज्ञापना'[1] जैन आगमसाहित्य का चतुर्थ उपाग है। प्रस्तुत उपाग के सकलयिता श्री श्यामाचार्य ने इसका नाम[2] 'अध्ययन' दिया है, जो इसका सामान्य नाम है, इसका विशिष्ट और प्रचलित नाम 'प्रज्ञापना' है। आचार्यश्री ने स्वय 'प्रज्ञापना' का परिचय देते हुए कहा है—'चूकि भगवान् महावीर ने सर्वभावो की प्रज्ञापना (प्ररूपणा) उपदिष्ट की है, उसी प्रकार मै भी (प्रज्ञापना) करने वाला हूँ।'[3] अतएव इसका विशेष नाम प्रज्ञापना है। 'उत्तराध्ययनसूत्र' की भाति प्रस्तुत आगम का पूर्ण और सार्थक नाम भी 'प्रज्ञापनाध्ययन' हो सकता है।

ापना-शब्द का उल्लेख

श्रमण भगवान् महावीर द्वारा दी गई देशनाओ का वास्तविक नाम 'पन्नवेति, परूवेति' आदि क्रियाओ के आधार पर 'प्रज्ञापना' या 'प्ररूपणा' है। उन्ही देशनाओ का आधार लेकर प्रस्तुत उपाग की रचना होने से इसका नाम 'प्रज्ञापना'[4] रखा हो, ऐसा ज्ञात होता है। इसके अतिरिक्त इसी उपाग मे तथा अन्य अगशास्त्रो मे यत्र-तत्र प्रश्नोत्तरो मे, अतिदेश मे, तथा सवादो मे **पण्णत्ते, पण्णत्त, पण्णत्ता**[5] आदि शब्दो का अनेक स्थलो पर प्रयोग हुआ है। भगवतीसूत्र मे आर्यस्कन्धक के प्रश्नो का समाधान करते हुए स्वय भगवान् महावीर ने कहा है—[6]**एव खलु मए खंधया ! चउव्विहे लोए पण्णत्ते**; इन सब पर से भगवान् महावीर के उपदेशो के लिए 'प्रज्ञापना' शब्द का प्रयोग स्पष्टत परिलक्षित होता है।

---

१. 'नन्दीसूत्र' अगबाह्यसूची

२. अज्झयणमिण चित्तं—प्रज्ञापना गा ३

३ उवदसिया भगवया पण्णवणा सव्वभावाण
जह वण्णिय भगवया अहमवि तह वण्णइस्सामि ॥ —प्रज्ञापना गाथा २-३

४ (क) प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति पत्र १ (ख) भगवती श १६ उ ६

५ यथा—'कति ण भते ! किरियाओ पण्णत्ताओ'—प्रज्ञापना पद २२, सू १५६७ इत्यादि सूत्रो मे यत्रतत्र 'पण्णत्ते, पण्णत्त या पण्णत्ता-पण्णत्ताओ' पद मिलते है।

६. भगवतीसूत्र २।१।९०

प्रज्ञापना की महत्ता और विशेषता

सम्पूर्ण जैन-आगमसाहित्य मे जो स्थान पचम अगशास्त्र—भगवती-व्याख्याप्रज्ञप्ति का है, वही उपागशास्त्रो मे प्रज्ञापना का हे।[7] बल्कि भगवतीसूत्र मे यत्र-तत्र अनेक स्थलो मे 'जहा **पण्णवणाए**' कह कर प्रज्ञापनासूत्र के १, २, ५, ६, ११, १५, १७, २४, २५, २६, और २७ वे पद से प्रस्तुत विषय की पूर्ति करने हेतु सूचना दी गई है। यह प्रज्ञापना की विशेषता है। इसके अतिरिक्त प्रज्ञापना उपाग होने पर भी भगवती आदि का सूचन इसमे क्वचित् ही किया गया है। इसका मुख्य कारण यह है कि प्रज्ञापना मे जिन विषयो की चर्चा की गई है, उन विषयो का इसमे सागोपाग वर्णन है। इस पर से प्रज्ञापनासूत्र की गहनता और व्यापक सिद्धान्त-प्ररूपणा स्पष्टत. परिलक्षित होती है।[8]

इसके अतिरिक्त पचम अगशास्त्र व्याख्याप्रज्ञप्ति का 'भगवती' विशेषण है, इसी प्रकार प्रस्तुत उपागशास्त्र के प्रत्येक पद की समाप्ति पर [9]'**पण्णवणाए भगवईए**' कह कर प्रज्ञापना के लिए भी 'भगवती' विशेषण प्रयुक्त किया गया है। यह विशेषण 'प्रज्ञापना' की महत्ता का सूचक है। कहा जाता है कि भगवान् महावीर के पश्चात् २३ वे पट्टधर भगवान् आर्यश्याम पूर्वश्रुत मे निष्णात थे।[10] उन्होने प्रज्ञापना की रचना मे अपनी विशिष्ट कलाकुशलता प्रदर्शित की, जिसके कारण अग और उपाग मे उन विषयो की विशेष जानकारी के लिए 'प्रज्ञापना' के अवलोकन का सूचन किया गया है।

प्रज्ञापना का अर्थ

'प्रज्ञापना' क्या है? इसके उत्तर मे स्वय शास्त्रकार ने बताया है[11]—'जीव और अजीव के सम्बन्ध मे जो प्ररूपणा है, वह 'प्रज्ञापना' है।'

प्रस्तुत आगम के प्रसिद्ध वृत्तिकार आचार्य मलयगिरि के अनुसार 'प्रज्ञापना' शब्द के प्रारम्भ मे जो 'प्र' उपसर्ग है, वह भगवान् महावीर के उपदेश की विशेषता सूचित करता है। अर्थात्—[12]जीव, अजीव आदि तत्त्वो का जो सूक्ष्म विश्लेषण सर्वज्ञ भगवान् महावीर ने किया है, उतना सूक्ष्म विश्लेषण उस युग के किन्ही अन्यतीर्थिक धर्माचार्यों के उपदेश मे उपलब्ध नही होता।

ापना का आधार

आचार्य मलयगिरि ने इस आगम को समयावागसूत्र का उपाग[13] बताया है। उसका कारण यह प्रतीत होता है कि समवायाग मे जीव, अजीव आदि तत्त्वो का मुख्यरूप से निरूपण है और

---

७ जैन साहित्य का बृहद् इतिहास भा २ पृ ८४

८ जैन आगम-साहित्य, मनन और मीमासा पृ २३०-२३१

९ 'पण्णवणासुत्त' भा २ प्रस्तावना

१० (क) जैन-आगमसाहित्य मनन और मीमासा पृ २३१
(ख) प्रज्ञापना मलय वृत्ति, पत्राक ७२, ४७, ३८५
(ग) सर्वेषामपि प्रावचनिकसूरीणा मतानि भगवान् आर्यश्याम उपदिष्टवान्—प्रज्ञापना, पृ ३८५

११ पण्णवणासुत्त (मूलपाठ) पृ १

१२ प्रज्ञापना, मलयवृत्ति पत्राक १-२

१३ इद च समवायाख्यस्य चतुर्थांगस्योपागम् तदुक्तार्थप्रतिपादनात्। —प्रज्ञापना म वृत्ति, प १

प्रज्ञापना मे भी जीव, अजीव आदि तत्त्वो स सम्वन्धित वर्णन है। अत इसे समवायाग का उपाग मानने मे भी कोई आपत्ति नही है।

प्रज्ञापनासूत्र के सकलयिता श्री श्यामाचार्य ने प्रज्ञापना को दृष्टिवाद का निष्कर्ष[14] वताया है। इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि दृष्टिवाद के विस्तृत वर्णन मे से सारभूत वर्णन प्रज्ञापना मे लिया गया है। दृष्टिवाद आज हमारे सामने उपलव्ध नही है, किन्तु सम्भव है, दृष्टिवाद मे दृष्टि-दर्शन से सम्वन्धित वर्णन हो, तथापि इतना तो कहा जा सकता है कि प्रज्ञापना मे वर्णित विषयवस्तु का ज्ञानप्रवाद, आत्मप्रवाद, कर्मप्रवाद आदि के साथ मेल खाता है।[15] पट्खण्डागम और प्रज्ञापना दोनो का विपय प्राय मिलता जुलता है। पट्खण्डागम की धवलाटीका मे पट्खण्डागम का सम्बन्ध अग्रायणीपूर्व के साथ जोडा गया है।[16] अत प्रज्ञापना का सम्वन्ध भी अग्रायणीपूर्व के साथ सगत हो सकता है।

विषयवस्तु की गहनता एवं दुरूहता

दृष्टिवाद एव पूर्वो का विषय कितना गहन और दुरूह हे, यह जैनागम के अभ्यासी विद्वान् जानते है। उन्ही मे से साररूप मे उद्धृत करना अथवा भगवान् महावीर द्वारा उपदिष्ट सर्वभावो की प्रज्ञापना के सदृश प्रज्ञापना करना कितना कठिन और दुरूह है, यह अनुमान लगाया जा सकता है।

इस पर से प्रज्ञापनासूत्र की विपयवस्तु की गहनता एव दुरूहता का स्पप्ट अनुमान लगाया जा सकता है। यद्यपि प्रज्ञापनासूत्र की विषयबद्ध सकलना करने मे और उसे छत्तीस पदो मे विभक्त करने मे श्री श्यामाचार्य ने बहुत ही कुशलता का परिचय दिया है, तथापि कही-कही भगजाल इतना जटिल है अथवा विषयवस्तु की प्ररूपणा इतनी गूढ है कि पाठक जरा-सा अनवधान-युक्त रहा कि वह विषयवस्तु के तथ्य—सत्य से दूर चला जाएगा, और वस्तुतत्त्व को नही पकड सकेगा।

प्रज्ञापना के छत्तीस पदो मे से कई पद बहुत ही विस्तृत है, और कई पद अत्यन्त सक्षिप्त है। ये छत्तीस पद एक प्रकार से छत्तीस प्रतिपाद्य विषय के[17] प्रकरण है, जिनके लिए प्रत्येक प्रकरण के अन्त मे पदशव्द का प्रयोग किया गया है।

रचनाशैली

प्रस्तुत सम्पूर्ण उपागशास्त्र की रचना प्रश्नोत्तरशैली मे हुई है। प्रारम्भ से ८१ वे सूत्र तक प्रश्नकर्त्ता और उत्तरदाता का कोई परिचय नही मिलता। इसके पश्चात् गणधर गौतम और भगवान् महावीर के प्रश्नोत्तररूप मे वर्णन किया गया है। कही कही बीच-बीच मे सामान्य प्रश्नोत्तर है।

---

१४ अज्झयणमिण वित्त सुयरयण दिट्ठिवायणीसद। —प्रज्ञापना गा ३

१५ पण्णवणासुत्त भा २, प्रस्तावना पृ ९

१६ पट्खण्डागम १, प्रस्तावना पृ ७२

१७ 'पद प्रकरणमर्थाधिकार' इति पर्याया —प्रज्ञापना म वृत्ति, पत्र ६

जिस प्रकार प्रारम्भ मे समग्रशास्त्र की अधिकारगाथाएँ दी गई है, उसी प्रकार कितने ही पदो के प्रारम्भ मे विषय-सग्रहणी गाथाएँ भी प्रस्तुत की गई हे। जैसे ३, १८, २०, एव २३ वे पद के प्रारम्भ और उपसहार मे गाथाएँ दी गई है, इसी प्रकार १० वे पद के[18] अन्त मे और ग्रन्थ के मध्य मे, यथावश्यक गाथाएँ दी गई हे। इसमे प्रक्षिप्त गाथाओ को छोडकर कुल २३१ गाथाएँ है और शेप गद्यपाठ है। प्रज्ञापनासूत्र मे जो सग्रहणी गाथाएँ हैं, उनके रचयिता कौन है? इस सम्बन्ध मे कुछ कहा नही जा सकता। प्रस्तुत सपूर्ण आगम का श्लोकप्रमाण ७८८७ है।[19]

इसमे कही-कही सूत्रपाठ वहुत लम्वे-लम्वे हैं, कही अतिदेश युक्त अतिमक्षिप्त हैं। कही-कही एक ही विषय की पुनरावृत्ति भी हुई है। प्राय क्रमवद्ध सकलना हे, परन्तु कही-कही व्युत्क्रम से भी सकलना की गई है।

प्रज्ञापना के समग्र पदो का विपय जैन सिद्धान्त से सम्मत हे। भगवतीसूत्र मे जैसे कई उद्देशको या प्रकरणो के प्रारम्भ मे कही-कही अन्यतीर्थिकमत देकर तदनन्तर स्वसिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है, वैसे प्रस्तुत प्रज्ञापनासूत्र मे नही दिया गया है। इसमे सर्वत्र प्राय प्रश्नोत्तरशैली मे स्वसिद्धान्तविषयक प्रश्न एव उत्तर अकित किये गए हैं।

आचार्यश्री मलयगिरि ने प्रज्ञापना मे प्ररूपित विपयो का सम्वन्ध जीव, अजीव आदि सात तत्त्वो के निरूपण के साथ इस प्रकार सयोजित किया है—

१-२	जीव-अजीव	=	पद १,३,५,१० और १३ मे
३	आस्रव	=	पद १६ और २२ मे
४	बन्ध	=	पद २३ मे
५-६-७	सवर, निर्जरा और मोक्ष	=	पद ३६ मे

इन पदो के सिवाय शेप पदो मे कही-कही किसी न किसी तत्त्व का निरूपण है। आचार्य मलयगिरि ने जैन दृष्टि से द्रव्य का समावेश प्रथम पद मे, क्षेत्र का द्वितीय पद मे, काल का चतुर्थ पद मे और भाव का शेष पदो मे समावेश किया है।[20] इस ग्रन्थ मे विषयो का निरूपण पहले लक्षण बना कर नही किया गया, अपितु विभाग-उपविभाग द्वारा बताया गया है। अत यह ग्रन्थ विभाग-प्रधान है। लक्षणप्रधान नही।[21]

प्रज्ञापना-उपाग आर्य श्यामाचार्य की सकलना है, परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि इसमे अकित सभी बाते उन्होने स्वय विचार करके प्रस्तुत की है। उनका प्रयोजन तो श्रुतपरम्परा मे से तथ्यो का सग्रह करना और उनकी सकलना अमुक प्रकार से करना था। जैसे—प्रथम पद मे जीव के जो भेद बताए है, उन्ही भेदो को लेकर द्वितीय 'स्थान' आदि द्वारो को घटित करके प्रस्तुत नही किया बल्कि स्थान आदि द्वारो का जो विचार जिन विविध रूपो मे पूर्वाचार्यो द्वारा उनके समक्ष विद्यमान था, उन्होने उन-उन द्वारो एव पदो मे उन-उन विचारो का सग्रह एव सकलन किया। इसलिए यह

---

१८ पण्णवणासुत्त भा २, प्रस्तावना पृ १०-११

१९ पण्णवणासुत्त (मूलपाठ) भा १ पृ ४४६

२० प्रज्ञापना मलयवृत्ति, पत्राक ५

२१ पण्णवणासुत्त भा २ प्रस्तावना पृ १३

कहा जा सकता है कि भिन्न-भिन्न आचार्यों ने भिन्न-भिन्न काल मे जो विचार किया, और परम्परा से श्यामाचार्य को जो प्राप्त हुआ, उसे उन्होंने सगृहीत-सकलित किया। इस दृष्टि मे विचार करें तो प्रज्ञापना उस काल की विचार-परम्परा का व्यवस्थित सग्रह है। यही कारण है कि जब आगम लिपिबद्ध किये गए, तब उस-उस विषय की समग्र विचारणा के लिए प्रज्ञापनासूत्र का अतिदेश किया गया।

जैनागमो के मुख्य दो विषय है--जीव और कर्म। एक विचारणा जीव को केन्द्र मे रखकर उसके अनेक विषयो की--(जैसे कि उसके कितने प्रकार है, वे कहाँ-कहाँ रहते है? उनका आयुष्य कितना है? वे मर कर कहाँ-कहाँ जाते है? कहाँ-कहाँ मे किस गति या योनि मे आते है? उनकी इन्द्रियाँ कितनी? वेद कितने? ज्ञान कितने? उनके कर्म कौन-कौन से बधते है? आदि) की जाती है। दूसरी विचारणा कर्म को केन्द्र मे रख कर की जाती है। जैसे कि--कर्म कितने प्रकार के हैं? विविध प्रकार के जीवो के विकास और ह्रास मे उनका कितना हिस्सा है? आदि।[२२]

प्रज्ञापना मे प्रथम प्रकार से विचारणा की गई है।

प्रस्तुत सम्पादन

स्थानकवासी जैनसमाज जागरूक रह कर आगमो एव जैनसिद्धान्तो के प्रति पूर्ण श्रद्धाशील रहा है। समय-समय पर आगमो के गूढभावो को समझाने के लिए स्थानकवासी समाज के अनेक आगम-वेत्ताओ ने अपने युग की भाषा मे उनका अनुवाद एव विवेचन किया है। जिस समय टब्बा युग आया, उस समय आचार्य श्री धर्मसिहजी ने सत्ताईस आगमो पर बालावबोध टब्बे लिखे, जो मूलस्पर्शी एव शब्दार्थ को स्पष्ट करने वाले है। अनुवादयुग मे शास्त्रोद्धारक आचार्यश्री अमोलकऋषिजी म ने बत्तीस आगमो का हिन्दी-अनुवाद किया। पूज्य गुरुदेव श्रमणसघ के प्रथम आचार्य जैनधर्मदिवाकर श्री आत्मारामजी महाराज ने अनेक आगमो का हिन्दी-अनुवाद एव विस्तृत व्याख्या लिखी। तत्पश्चात् पूज्य श्री घासीलालजी महाराज ने सस्कृत मे विस्तृत टीका हिन्दी-गुजराती-अनुवादसहित लिखी। और भी अनेक स्थलो से आगम-साहित्य प्रकाशित हुआ। किन्तु जनसाधारण को तथा वर्तमान-तर्कप्रधानयुग की जनता को सतुष्ट कर सके, ऐसे न अतिविस्तृत और न अतिसक्षिप्त सस्करण की माग निरन्तर बनी रही।

अत आगममर्मज्ञ बहुश्रुत विद्वान् श्रमणसघ के युवाचार्य श्री मिश्रीमलजी महाराज 'मधुकर' के प्रधानसम्पादन-निर्देशन मे तथा प कन्हैयालालजी म 'कमल' प देवेन्द्रमुनिजी शास्त्री श्री रतन मुनि जी म एव प शोभाचन्द्रजी भारिल्ल जैसे विद्वद्वर्य सम्पादकमण्डल के तत्त्वावधान मे प्रज्ञापनासूत्र का प्रस्तुत अभिनव सस्करण अनुवादित एव सम्पादित किया गया है।

प्रज्ञापनासूत्र के इस सस्करण की यह विशेषता है कि इसमे श्री महावीर जैन विद्यालय, बम्बई से प्रकाशित 'पण्णवणासुत्त' के शुद्ध मूलपाठ का अनुसरण किया गया है। इससे यह लाभ हुआ कि सूत्र सख्या छत्तीस पदो की क्रमश दी गई है। प्रत्येक सूत्र मे प्रश्न को अलग पक्ति मे रखा गया है, उत्तर अलग पक्ति मे। तथा प्रत्येक प्रकरण के शीर्षक-उपशीर्षक पृथक्-पृथक् दिये गए है, जिससे

---

२२ पण्णवणासुत्त भा २ प्रस्तावना, पृ २०-२१

पाठक को प्रतिपाद्य विषय को ग्रहण करने मे आसानी रहे। प्रत्येक परिच्छेद का मूलपाठ देने के पश्चात् सूत्र-सख्या के क्रम से उसका भाववाही अनुवाद दिया गया है। जहाँ कठिन शब्द है या मूल मे सक्षिप्त शब्द है, वहाँ कोष्ठक मे उनका सरल अर्थ तथा पूरा भावार्थ भी दिया गया है, ताकि पाठक को पिछले स्थलो को टटोलना न पडे। शब्दार्थ के पश्चात् विवेच्यस्थलो का विवेचन दिया गया है। विवेचन प्राय आचार्य मलयगिरि रचित वृत्ति को ध्यान मे रख कर किया गया है। वृत्ति का पूरा का पूरा अनुसरण नही किया गया है। जहाँ वृत्ति मे अतिविस्तार है, या प्रासगिक विषय मे हट कर चर्चा की गई है, वहाँ उसे छोड दिया गया है। मूल के शब्दार्थ मे जो बात स्पष्ट हो गई है या स्पष्ट है, उसका विवेचन मे पिष्टपेषण नही किया गया है। जहाँ मूलपाठ अतिविस्तृत एव पुनरुक्त है, वहाँ विवेचन मे उसका निष्कर्षमात्र दे दिया गया है। कही-कही मूलपाठ मे उक्त विषयवस्तु को विवेचन मे युक्ति-हेतुपूर्वक सिद्ध करने का प्रयास किया गया है। विवेचन मे प्रतिपादित विषय एव उद्धृत प्रमाणो के सन्दर्भस्थलो का उल्लेख टिप्पण मे कर दिया गया है। कही-कही तत्त्वार्थसूत्र, जीवाभिगम, भगवती, कर्मग्रन्थ आदि तथा बौद्ध एव वैदिक ग्रन्थो के तुलनात्मक टिप्पण भी दिये गए है।

प्रत्येक पद के प्रारम्भ मे प्राथमिक अर्थ देकर पद मे प्रतिपादित समस्त विषयो की समीक्षा की गई है, जिससे पाठक को समग्र पद का हार्द मालूम हो सके। पुनरुक्ति से बचने के लिए जहाँ 'जाव' 'जहा' 'एव' आदि आगमिक पाठो के सक्षेपसूचक शब्द है, उनका स्पष्टीकरण प्राय शब्दार्थ मे ही दे दिया गया है। कही-कही मूलपाठ के नीचे टिप्पण मे स्पष्टीकरण कर दिया गया है। प्रज्ञापना विशालकाय शास्त्र होने से हमने इसे तीन खण्डो मे विभाजित कर दिया है। अन्त मे, तीन परिशिष्ट देने का विचार है। एक परिशिष्ट मे सन्दर्भ-ग्रन्थो की सूची, दूसरे परिशिष्ट मे विशिष्ट पारिभाषिक शब्दो की सूची और तीसरे मे स्थलविशेष की सूची होगी।

कृत ।-प्रकाश

प्रस्तुत सम्पादन मे मूलपाठ के निर्धारण एव प्राथमिक-लेखन मे आगम-प्रभाकर स्व पुण्यविजयजी म, प दलसुखभाई मालवणिया एव प अमृतलाल मोहनलाल भोजक द्वारा सम्पादित पण्णवणासुत्त भाग १-२ का उपयोग किया गया है तथा अर्थ एव विवेचन मे प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति एव प्रमेयबोधिनी टीका का प्राय अनुसरण किया गया है। इसकी प्रति उपलब्ध कराने मे सौजन्यमूर्ति श्री कृष्णचन्द्राचार्यजी (पचकूला) का सहयोग स्मरणीय रहेगा। एतदर्थ उनके प्रति हम आभारी है। इसके अतिरिक्त अनेक आगमो, जैन-बौद्ध ग्रन्थो, पन्नवणासूत्र के थोकडो आदि से सहायता ली गई है, उन सबके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना हमारा कर्त्तव्य है।

हम यहाँ प्रसगवश श्रमणसघ के प्रथम आचार्य जैनागमरत्नाकर स्व गुरुदेव पूज्य श्री आत्मारामजी महाराज का पुण्यस्मरण किये बिना नही रह सकते, जो आजीवन आगमोद्धार के पुनीत कार्य मे सलग्न रहे थे और अन्तिम समय मे भी उनके आगम-निष्ठापूर्ण हृदयोद्गार थे—'मेरे पीछे भी श्रमणसघीय आचार्यश्री, युवाचार्यश्री इस भगीरथ श्रुतसेवा को चलाते रहे, यही मेरी परमकृपालु शासनदेव से मगलमयी हार्दिक प्रार्थना है।"

उनके ही द्वारा परिष्कृत आगमोद्धार के पुण्यपथ पर चल कर श्रमणसघीय युवाचार्य पडितरत्न मिश्रीमलजी म सा के नेतृत्व मे हमने प्रज्ञापना जैसे दुरूह एव गहन आगम के सम्पादन का कार्य हाथ मे लिया। इस सम्पादनकार्य मे मैं अपने सहयोगीजनो को कैसे विस्मृत कर सकता हूँ ?

आगमतत्त्वमनीषी प्रवचनप्रभाकर श्री सुमेरमुनिजी, विद्वद्वर्य प रत्न मुनिश्री नेमिचन्द्रजी के प्रति मै हृदय से कृतज्ञ हूँ, जिन्होने निष्ठापूर्वक इस आगमकार्य के सम्पादन मे महयोग दिया है। आगममर्मज्ञ प शोभाचन्द्रजी भारिल्ल एव मपादनकलाविशारद माहित्यमहारथी श्री श्रीचन्दजी सुराना की श्रुतसेवाओ को कैसे भुलाया जा सकता है ? जिन्होने इम शास्त्रराज को सशोधित-परिष्कृत करके मुद्रित करने तक का दायित्व मफलतापूर्वक निभाया है। माथ ही, मैं अपने ज्ञात-अज्ञात सहयोगियो का हृदय से कृतज्ञ हूँ, जिन्होने समय-ममय पर योग्य परामर्श देकर मुझे उत्माहित किया है।

अपने सम्पादन के विपय मे क्या कहूँ ? जैसा भी, जितना भी अच्छा से अच्छा वन मकता था, 'यावद्बुद्धिवलोदयम्' प्रज्ञापना का सम्पादन करने का मैंने प्रयत्न किया है। मैं दावा तो नही करता, सर्वज्ञ महापुरुषो के पुनीत सिद्धान्त-रहस्यो को खोलने का ! मुझ जैसे अल्पज्ञ की भी आखिर एक सीमा है। फिर भी मुझे सात्त्विक मन्तोष अवश्य है कि आगमो के सुधी पाठको को तथा शोधकर्त्ताओ को इस सम्पादन से अवश्य सन्तोप होगा।

जैनस्थानक
वनूड

—ज्ञान मुनि

विषयानुक्रमणिका

प्रथम प्रज्ञापनापद-पृष्ठ १-११६

द्वितीय स्थानपद : ११७-२००

तृतीय बहुवक्तव्यता (अल्प-बहुत्व) पद : १९८-२९३

चतुर्थ स्थितिपद : २९४-३५३

पंचम विशेषपद (पर्यायपद) : ३५४-४३९

अजीव-पर्याय

छठा व्युत्क्रान्तिपद : ४४०-४६४

सप्तम उच्छ्वासपद : ४९५-५०४

अष्टम संज्ञापद : ५०५-५१२

नवम योनिपद : ५१४-५२५

सिरिसामज्जवायग-विरइय

चउत्थं उवंगं

ण ण

श्रीमत्-श्यामार्य वाचक-विरचित

चतुर्थ उपांग

प्रज्ञापनासूत्र

ॐ नमो वीतरागाय

श्रीमत्-श्यामार्य-वाचक-विरचित

च ुर्थ उपांग

पण्ण ाा सुत्तं : प्र ापनासूत्र

विषय-परिचय

* प्रज्ञापना जैन आगम वाड्मय का चतुर्थ उपाग एव अगवाह्यश्रुत है। इसमे ३६ पद है। उनका सक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

* प्रज्ञापना का प्रथम पद 'प्रज्ञापना' है। इस पद मे सर्वप्रथम प्रज्ञापना के दो भेद बतला कर अजीव-प्रज्ञापना का सर्वप्रथम निरूपण किया है, तदनन्तर जीव-प्रज्ञापना का। अजीव-प्रज्ञापना मे अरूपी अजीव और रूपी अजीव के भेद-प्रभेद बताए है। जीव-प्रज्ञापना मे जीव के दो भेद ससारी और सिद्ध बताकर सिद्धो के १५ प्रकार और समय की अपेक्षा से भेद बताए है। फिर ससारी जीवो के भेद-प्रभेद बताए है। इन्द्रियो के क्रम के अनुसार एकेन्द्रिय से पचेन्द्रिय तक मे सब ससारी जीवो का समावेश करके निरूपण किया है। यहाँ जीव के भेदो का नियामक तत्त्व इन्द्रियो की क्रमश वृद्धि है।

* दूसरे स्थानपद मे पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पचेन्द्रिय, नैरयिक, तिर्यंच, भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिष्क, वैमानिक और सिद्ध जीवो के वासस्थान का वर्णन किया गया है। जीवो के निवासस्थान दो प्रकार के हैं—(१) जीव जहाँ जन्म लेकर मरणपर्यन्त रहता है, वह स्वस्थान और (२) प्रासगिक वासस्थान (उपपात और समुद्घात)।

* तृतीय अल्पबहुत्वपद है। इसमे दिशा, गति, इन्द्रिय, काय, योग, वेद, कषाय, लेश्या, सम्यक्त्व, ज्ञान, दर्शन, सयत, उपयोग, आहार, भाषक, परीत, पर्याप्त, सूक्ष्म, सज्ञी, भव, अस्तिकाय, चरम, जीव, क्षेत्र, बन्ध, पुद्गल और महादण्डक, इन २७ द्वारो की अपेक्षा से जीवो के अल्प-बहुत्व का विचार किया गया है।

* चतुर्थ स्थितिपद मे नैरयिक, भवनवासी, पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय, द्वि-त्रि-चतु-पचेन्द्रिय, मनुष्य, व्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक जीवो की स्थिति का वर्णन है।

* पचम विशेषपद या पर्यायपद मे चौबीस दण्डको के क्रम से प्रथम जीवो के नैरयिक आदि विभिन्न भेद-प्रभेदो को लेकर वैमानिक देवो तक के पर्यायो की विचारणा की गई है। तत्पश्चात् अजीव-पर्याय के भेद-प्रभेद तथा अरूपी अजीव एव रूपी अजीव के भेद-प्रभेदो की अपेक्षा से पर्यायो की सख्या की विचारणा की गई है।

❋ छठे व्युत्क्रान्तिपद मे बारह मुहूर्त्त और चौबीस मुहूर्त्त का उपपात और उद्वर्तन (मरण) सम्बन्धी विरहकाल क्या है ? कहाँ जीव सान्तर उत्पन्न होता है, कहाँ निरन्तर ?, एक समय मे कितने जीव उत्पन्न होते और मरते है ?, कहाँ से आकर उत्पन्न होते है ?, मर कर कहाँ जाते है ?, परभव की आयु कब बन्धती है ?, आयुबन्ध सम्बन्धी आठ आकर्ष कौन-से है ?, इन आठ द्वारो से जीव की प्ररूपणा की गई है ।

❋ सातवे उच्छ्वासपद मे नैरयिक आदि के उच्छ्वास ग्रहण करने और छोडने के काल का वर्णन है ।

❋ आठवे सज्ञापद मे जीव की आहार, भय, मैथुन, परिग्रह, क्रोध, मान, माया, लोभ, लोक और ओघ इन १० सज्ञाओ का २४ दण्डको की अपेक्षा से निरूपण किया गया है ।

❋ नौवे योनिपद मे जीव की शीत, उष्ण, शीतोष्ण, सचित्त, अचित्त, मिश्र, सवृत, विवृत, सवृत-विवृत, कूर्मोन्नत, शखावर्त और वशीपत्र, इन योनियो के आश्रय से समग्र जीवो का विचार किया गया है ।

❋ दसवे चरम-अचरम पद मे—चरम है ?, अचरम है, चरम हैं, अचरम है, चरमान्तप्रदेश है, अचरमान्त-प्रदेश है, इन ६ विकल्पो को लेकर २४ दण्डको के जीवो का गत्यादि की दृष्टि से तथा विभिन्न द्रव्यो का लोक-अलोक आदि की अपेक्षा से विचार किया गया है ।

❋ ग्यारहवे भाषापद मे भाषासम्बन्धी विचारणा करते हुए बताया है कि भाषा किस प्रकार उत्पन्न होती है ?, कहाँ पर रहती है ? उसकी आकृति किस प्रकार की है ? उसका स्वरूप तथा बोलने वाले व्यक्ति आदि प्रश्नो पर चिन्तन प्रस्तुत किया गया है । साथ ही सत्यभाषा, मृषाभाषा, तथा सत्यामृषा और असत्यामृषा भाषा के क्रमश दस, दस, दस और सोलह प्रकार बताए है । अन्त मे १६ प्रकार के वचनो का उल्लेख किया है ।

❋ बारहवे शरीरपद मे पाच शरीरो की अपेक्षा से चौबीस दण्डको मे से किसके कितने शरीर है ? तथा इन सभी मे बद्ध-मुक्त कितने-कितने और कौन-से शरीर होते है ? इत्यादि सागोपाग विवरण प्रस्तुत किया गया है ।

❋ तेरहवें परिणामपद मे—जीव के गति आदि दस परिणामो और अजीव के बन्धन आदि दस परिणामो पर विचार किया गया है ।

❋ चौदहवे कषायपद मे क्रोधादि चार कषाय, उनकी प्रतिष्ठा, उत्पत्ति, प्रभेद तथा उनके द्वारा कर्म-प्रकृतियो के चयोपचय एव बन्ध की प्ररूपणा की गई है ।

❋ पन्द्रहवें इन्द्रियपद मे दो उद्देशक है । प्रथम उद्देशक मे पाचो इन्द्रियो की सस्थान, बाहल्य आदि २४ द्वारो के माध्यम से विचारणा की गई है । दूसरे उद्देशक मे इन्द्रियोपचय, इन्द्रियनिर्वर्तना, निर्वर्तनासमय, इन्द्रियलब्धि, इन्द्रिय-उपयोग आदि तथा इन्द्रियो की अवगाहना, अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा आदि १२ द्वारो के माध्यम से चर्चा की गई है । अन्त मे इन्द्रियो के भेद-प्रभेद का विचार प्रस्तुत किया गया है ।

* सोलहवे प्रयोगपद मे सत्यमन प्रयोग आदि १५ प्रकार के प्रयोगो का चौवीस दण्डकवर्ती जीवो की अपेक्षा से विचार किया गया है। अन्त मे ५ प्रकार के गतिप्रपात के स्वरूप का चिन्तन किया गया है।

* सत्रहवे लेश्यापद मे छह उद्देशक है। प्रथम उद्देशक मे समकर्म, समवर्ण, समलेश्या, समवेदना, समक्रिया और समआयु नामक अधिकार है। दूसरे मे कृष्णादि ६ लेश्याओ के आश्रय से जीवो का निरूपण किया गया है। तीसरे उद्देशक मे लेश्यासम्बन्धी कतिपय प्रश्नोत्तर है। चतुर्थ उद्देशक मे परिणाम, वर्ण, रस, गन्ध, शुद्ध, अप्रशस्त, सक्लिष्ट, उष्ण, गति, परिणाम, प्रदेश, अवगाढ, वर्गणा, स्थान और अल्प-बहुत्व नामक अधिकार है। लेश्याओ के वर्ण और स्वाद (रस) का भी वर्णन है। पाचवे मे लेश्याओ के परिणाम वताए है और छठे उद्देशक मे किस जीव के कितनी लेश्याएँ होती है ? इसका निरूपण है।

* अठारहवे पद का नाम कायस्थिति है। इसमे जीव और अजीव दोनो अपनी-अपनी पर्याय मे कितने काल तक रहते है, इसका चिन्तन प्रस्तुत किया गया है। स्थितिपद और कायस्थितिपद मे अन्तर यह है कि स्थितिपद मे तो २४ दण्डकवर्ती जीवो की भवस्थिति—एक भव की अपेक्षा से आयुष्य का विचार है, जबकि कायस्थितिपद मे जीव मर कर उसी भव मे जन्म लेता रहे तो ऐसे सब भवो की परम्परा की कालमर्यादा यानी सब भवो के आयुष्य का कुल जोड कितना होगा ?, इसका विचार किया गया है। इसके अतिरिक्त कायस्थितिपद मे 'काय' शब्द से निरूपित धर्मास्तिकाय आदि का उस-उस रूप मे रहने के काल (स्थिति) का भी विचार किया है। अत इसमे जीव, गति, इन्द्रिय, योग, वेद आदि से लेकर अस्तिकाय और चरम इन द्वारो के माध्यम से विचार प्रस्तुत किया गया है।

* उन्नीसवे सम्यक्त्वपद मे २४ दण्डकवर्ती जीवो के क्रम से सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि, मिश्रदृष्टि का विचार किया गया है।

* बीसवे अन्तक्रियापद मे बताया गया है कि कौन-सा जीव अन्तक्रिया (कर्मनाश द्वारा मोक्षप्राप्ति) कर सकता है, और क्यो ? साथ ही अन्तक्रिया शब्द वर्तमान भव का अन्त करके नवीन भवप्राप्ति, (अथवा मृत्यु) के अर्थ मे भी यहाँ प्रयुक्त किया गया है। और इस प्रकार की अन्तक्रिया का विचार चौबीस दण्डकवर्ती जीवो से सम्बन्धित किया गया है। कर्मो की अन्तरूप अन्तक्रिया तो एकमात्र मनुष्य ही कर सकते हैं, इसका वर्णन ६ द्वारो के माध्यम से किया गया है।

* इक्कीसवें अवगाहना-सस्थान (या शरीर) पद मे शरीर के विधि (भेद), सस्थान, प्रमाण, पुद्गलो के चय, शरीरो के पारस्परिक सम्बन्ध, उनके द्रव्य, प्रदेश, द्रव्यप्रदेशो तथा अवगाहना के अल्पबहुत्व की प्ररूपणा की गई है।

* बाईसवें क्रियापद मे कायिकी, आधिकरणिकी, प्राद्वेषिकी, पारितापनिकी व प्राणातिपातिकी, इन ५ क्रियाओ तथा इनके भेदो की अपेक्षा से समस्त ससारी जीवो का विचार किया गया है।

* तेईसवे कर्मप्रकृतिपद मे दो उद्देशक हैं। प्रथम उद्देशक मे ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्मो मे से कौन जीव कितनी कर्मप्रकृतियो को वाधता है ? इसका विचार है। द्वितीय उद्देशक मे कर्मो की उत्तरप्रकृतियो और उनके वन्ध का वर्णन है।

* चौबीसवे कर्मबन्ध पद मे यह चिन्तन प्रस्तुत किया गया है कि ज्ञानावरणीय आदि मे से किस कर्म को बाधते हुए जीव कितनी कर्मप्रकृतियाँ बाधता है ?

* पच्चीसवे कर्मवेदपद मे ज्ञानावरणीयादि कर्मो को बाधते हुए जीव कितनी कर्मप्रकृतियो का वेदन करता है ? इसका विचार किया गया है ।

* छब्बीसवे कर्मवेदबन्धपद मे यह विचार प्रस्तुत किया गया है कि ज्ञानावरणीय आदि कर्मो का वेदन करते हुए जीव कितनी कर्मप्रकृतियो को बाधता है ?

* सत्ताईसवे कर्मवेदपद मे—ज्ञानावरणीय आदि का वेदन करते हुए जीव कितनी कर्मप्रकृतियो का वेदन करता है ? इसका विचार किया है ।

* अट्ठाईसवे आहारपद मे दो उद्देशक है। प्रथम उद्देशक मे—सचित्ताहारी आहारार्थी कितने काल तक, किसका आहार करता है ? क्या वह सर्वात्मप्रदेशो द्वारा आहार करता है, या अमुक भाग से आहार करता है ? क्या सर्वपुद्गलो का आहार करता है ? किस रूप मे उसका परिणमन होता है ? लोमाहार आदि क्या है ?, इसका विचार है । दूसरे उद्देशक मे आहार, भव्य, सज्ञी, लेश्या, दृष्टि आदि तेरह अधिकार है ।

* उनतीसवे उपयोगपद मे दो उपयोगो के प्रकार बताकर किस जीव मे कितने उपयोग पाए जाते हैं ? इसका वर्णन किया है ।

* तीसवे पश्यत्तापद मे भी पूर्ववत् साकारपश्यत्ता (ज्ञान) और अनाकारपश्यत्ता (दर्शन) ये दो भेद बताकर इनके प्रभेदो की अपेक्षा से जीवो का विचार किया गया है ।

* इकतीसवे सज्ञीपद मे सज्ञी, असज्ञी और नोसज्ञी की अपेक्षा से जीवो का विचार किया है ।

* बत्तीसवें सयतपद मे सयत, असयत और सयतासयत की दृष्टि से जीवो का विचार किया गया है ।

* तेतीसवे अवधिपद मे विषय, सस्थान, अभ्यन्तरावधि, बाह्यावधि, देशावधि, सर्वावधि, वृद्धि-अवधि, प्रतिपाती और अप्रतिपाती, इन द्वारो के माध्यम से विचारणा की गई है ।

* चौतीसवें प्रविचारणा (या परिचारणा) पद मे अनन्तरागत आहारक, आहारविषयक आभोग-अनाभोग, आहाररूप से गृहीत पुद्गलो की अज्ञानता, अध्यवसायकथन, सम्यक्त्वप्राप्ति तथा कायस्पर्श, रूप, शब्द और मन से सम्बन्धित प्रविचारणा (विषयभोग-परिचारणा) एव उनके अल्पबहुत्व का विचार है ।

* पैतीसवे वेदनापद मे—शीत, उष्ण, शीतोष्ण, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, शारीरिक, मानसिक, शारीरिक-मानसिक साता, असाता, साता-असाता, दु खा, सुखा, अदु खसुखा, आभ्युपगमिकी, औपक्रमिकी, निदा (चित्त की सलग्नता) एव अनिदा नामक वेदनाओ की अपेक्षा से जीवो का विचार किया गया है ।

* छत्तीसवे समुद्घातपद के वेदना, कषाय, मरण, वैक्रिय, तैजस, आहारक और केवलि समुद्घात की अपेक्षा से जीवो की विचारणा की गई है । इसमे केवलिसमुद्घात का विस्तृत वर्णन है ।

□

पण्णवणासुत्तं . प्रज्ञापनासूत्र

प ं पण्ण णापदं

प्रथम प्रज्ञापनापद

प्राथमिक

* प्रज्ञापनासूत्र का यह प्रथम पद है, इसका नाम प्रज्ञापनापद है।

* इसमे जैनदर्शनसम्मत जीवतत्त्व और अजीवतत्त्व की प्रज्ञापना—प्रकर्षरूपेण प्ररूपणा—भेद-प्रभेद बता कर की गई है।

* जीव-प्रज्ञापना से पूर्व अजीव-प्रज्ञापना इसलिए की गई है कि इसमे जीवतत्त्व की अपेक्षा वक्तव्य अल्प है। अजीवो के निरूपण मे रूपी और अरूपी, ये भेद और इनके प्रभेद प्रस्तुत किये गए है। रूपी मे पुद्गल द्रव्य का और अरूपी मे धर्मास्तिकायादि तीन द्रव्यो का समावेश हो जाता है। तथा 'अद्धासमय' के साथ 'अस्तिकाय' शब्द जुडा हुआ न होने पर भी वह एक स्वतन्त्र अरूपी अजीव कालद्रव्य का द्योतक तो है ही। प्रस्तुत अरूपी अजीव का प्रतिपादन करने के साथ ही यहाँ धर्मास्तिकायादि तीन को देश और प्रदेश के भेदो मे विभक्त किया गया है। तत्पश्चात् रूपी अजीव के स्कन्ध से लेकर परमाणु पुद्गल तक मुख्य ४ भेद बता कर उनके वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और सस्थान के रूप मे परिणत होने पर अनेक प्रभेदो का कथन किया है। साथ ही वर्णादि के परस्पर सम्बन्ध से कुल ५३० भग होते है, उनका निरूपण भी यहाँ किया गया है। शास्त्रकार का आशय यही हैं कि यो प्रत्येक वर्ण आदि के अनन्त-अनन्त भेद हो सकते है। यहाँ मौलिक भेदो का निर्देश करके आगे शास्त्रकार ने इसी शास्त्र के पचम विशेष-पद मे अजीव के पर्यायो तथा तेरहवे परिणामपद मे परिणामो का विस्तृत वर्णन किया है।[1]

* जीव-प्रज्ञापना मे जीव के दो मुख्य भेदो—सिद्ध और ससारी का असंसारसमापन्न और ससार-समापन्न नाम से निर्देश किया है। तत्पश्चात् सिद्धो के १५ प्रकार तथा समय की अपेक्षा से सिद्धो का परस्पर अन्तर बताकर मुक्त होने के बाद आत्मा के परमात्मा मे विलीन हो जाने के सिद्धान्त का निराकरण एव प्रत्येक मुक्तात्मा के पृथक् अस्तित्व के सिद्धान्त का मण्डन ध्वनित किया है। इसके पश्चात् एकेन्द्रिय से लेकर पचेन्द्रिय तक प्रत्येक ससारी जीव के भेद-प्रभेदो का निरूपण करके जीव को ईश्वर का अश न मान कर प्रत्येक जीव का अपने-आप मे स्वतन्त्र अस्तित्व सिद्ध किया है। अगर ब्रह्मैकत्व—(आत्मैकत्ववाद) माना जाए तो प्रत्येक जीव का स्वतन्त्र अस्तित्व, शुभाशुभकर्मबन्ध तथा उसके फल की एव कर्मबन्ध से मुक्ति की व्यवस्था घटित नही हो सकती। यही कारण है कि शास्त्रकार ने पृथ्वीकायादि एकेन्द्रिय से लेकर देव-योनि तक के समस्त ससारी—ससारसमापन्न जीवो का पृथक्-पृथक् कथन किया है। इस पर से यह भी ध्वनित किया है कि चार गतियो और ८४ लक्ष योनियो या २४ दण्डको मे जब तक

---

१ (क) पण्णवणासुत्त भा-१, पृ ३ से ४५ तक (ख) पण्णवणासुत्त भा-२, प्रथम पद की प्रस्तावना, पृ २९ से ३६ तक।

पण्णवणासुत्तं

प्रज्ञापना-सूत्र

मंगलाचरण और शास्त्रसम्बन्धी चार अनुबन्ध—

[नमो अरिहंताणं । नमो सिद्धाणं । नमो आयरियाणं ।
नमो उवज्झायाणं । नमो लोए सव्वसाहूणं ।।]

१ ववगयजर-मरणभए सिद्धे अभिवंदिऊण तिविहेण ।
वंदामि जिणवरिंदं तेलोक्कगुरुं महावीरं ।।१।।

सुयरयणनिहाणं जिणवरेण भवियजणणिव्वुइकरेण ।
उवदंसिया भयवया पण्णवणा सव्वभावाणं ।।२।।

अज्झयणमिणं चित्तं सुयरयणं दिट्ठिवायणीसंदं ।
जह वण्णियं भगवया अहमवि तह वण्णइस्सामि ।।३।।

अरिहन्तो को नमस्कार हो, सिद्धो को नमस्कार हो, आचार्यो को नमस्कार हो, उपाध्यायो को नमस्कार हो, लोक मे (विद्यमान) सर्व-साधुओ को नमस्कार हो ।

[१ गाथाओ का अर्थ—] जरा, मृत्यु, और भय से रहित सिद्धो को त्रिविध (मन, वचन और काय से) अभिवन्दन करके त्रैलोक्यगुरु जिनवरेन्द्र श्री भगवान् महावीर को वन्दन करता हूँ ।। १ ।।

भव्यजनो को निर्वृत्ति (निर्वाण या उसके कारणरूप रत्नत्रय का उपदेश) करने वाले जिनेश्वर भगवान् ने श्रुतरत्ननिधिरूप सर्वभावो की प्रज्ञापना का उपदेश दिया है ।। २ ।।

दृष्टिवाद के नि स्यन्द-(निष्कर्ष=निचोड) रूप विचित्र श्रुतरत्नरूप इस प्रज्ञापना-अध्ययन का श्रीतीर्थंकर भगवान् ने जैसा वर्णन किया है, मैं (श्यामार्य) भी उसी प्रकार वर्णन करूंगा ।।३।।

विवेचन—मंगलाचरण और शास्त्रसम्बन्धी चार अनुबन्ध—प्रस्तुत सूत्र मे तीन गाथाओ द्वारा प्रज्ञापनासूत्र के रचयिता श्री श्यामार्यवाचक शास्त्र के प्रारम्भ मे विघ्नशान्ति-हेतु मंगलाचरण तथा प्रस्तुत शास्त्र से सम्बन्धित अनुबन्धचतुष्टय प्रस्तुत करते है ।

मंगलाचरण का औचित्य—यह उपांग समस्त जीव, अजीव आदि पदार्थो की शिक्षा (ज्ञान) देने वाला होने से शास्त्र है और शास्त्र के प्रारम्भ मे विचारक को शास्त्र मे प्रवृत्त करने तथा विघ्नोपशान्ति के हेतु तीन प्रयोजनो की दृष्टि से तीन मंगलाचरण करने चाहिए । शिष्टजनो का यह आचार है कि निर्विघ्नता से शास्त्र के पारगमन के लिए आदिमंगल, ग्रहण किये हुए शास्त्रीय पदार्थ (प्ररूपण) को स्थिर करने के लिये मध्यमंगल तथा शिष्यपरम्परा से शास्त्र की विचारधारा

को सतत चालू रखने के लिए अन्तिम मगलाचार करना चाहिए। तदनुसार प्रस्तुत मे 'ववगयजरा-मरणभए०' आदि तीन गाथाओ द्वारा शास्त्रकार ने आदिमगल, 'कइविहे ण उवओगे पन्नत्ते ?' इत्यादि ज्ञानात्मक सूत्रपाठ द्वारा मध्यमगल एव ' 'सुही सुह पत्ता' इत्यादि सिद्धाधिकारात्मक सूत्र-पाठ द्वारा अन्तमगल प्रस्तुत किया है।[1]

अनुबन्ध चतुष्टय—शास्त्र के प्रारम्भ मे समस्त भव्यो एव बुद्धिमानो को शास्त्र मे प्रवृत्त करने के उद्देश्य से चार अनुबन्ध अवश्य बताने चाहिए। वे चार अनुबन्ध इस प्रकार हैं—(१) विषय, (२) अधिकारी, (३) सम्बन्ध और (४) प्रयोजन। मगलाचरणीय गाथात्रय से ही प्रस्तुत शास्त्र के पूर्वोक्त चारो अनुबन्ध ध्वनित होते है।[2]

अभिधेय विषय—प्रस्तुत शास्त्र का अभिधेय विषय—श्रुतनिधिरूप सर्वभावो की प्रज्ञापना-प्ररूपणा करना है। 'प्रज्ञापना' शब्द का अर्थ ही स्पष्ट रूप से यह प्रकट कर रहा है कि 'जिसके द्वारा जीव, अजीव आदि तत्त्व प्रकर्ष रूप से ज्ञापित किये जाएँ' उसे प्रज्ञापना कहते है। यहाँ 'प्रकर्षरूप से' का तात्पर्य है—समस्त कुतीर्थिको के प्रवर्त्तक जैसी प्ररूपणा करने मे असमर्थ है, ऐसे वस्तुस्वरूप का यथावस्थितरूप से निरूपण करना। ज्ञापित करने का अर्थ है—शिष्य की बुद्धि मे आरोपित कर देना—जमा देना।[3]

अधिकारी—इस शास्त्र के पठन-पाठन का अधिकारी वह है, जो सर्वज्ञवचनो पर श्रद्धा रखता हो, शास्त्रज्ञान मे जिसकी रुचि हो, जिसे शास्त्रज्ञान एव तत्त्वज्ञान के द्वारा अपूर्व आनन्द की अनुभूति हो। ऐसा अधिकारी महाव्रती भी हो सकता है, अणुव्रती भी और सम्यग्दृष्टिसम्पन्न भी। जैसे कि कहा गया है—जो मध्यस्थ हो, बुद्धिमान् हो और तत्त्वज्ञानार्थी हो, वह श्रोता (वक्ता) पात्र है।[4]

सम्बन्ध—सम्बन्ध प्रस्तुत शास्त्र मे दो प्रकार का है—(१) उपायोपेयभाव-सम्बन्ध और (२) गुरुपर्वक्रमरूप-सम्बन्ध। पहला सम्बन्ध तर्क का अनुसरण करने वालो की अपेक्षा से है। वचनरूप से प्राप्त प्रकरण उपाय है और उसका परिज्ञान उपेय है। गुरुपर्वक्रमरूप-सम्बन्ध केवल

---

१ (क) प्रज्ञापनासूत्र मलयगिरिवृत्ति, पत्राक २

(ख) प्रेक्षावता प्रवृत्त्यर्थं, फलादित्रितय स्फुटम्।
मगल चैव शास्त्रादौ, वाच्यमिष्टार्थसिद्धये ॥१॥

(ग) त मगलमाईए मज्झे पज्जतए य सत्थस्स।
पढम सत्थत्थाविग्घपारगमणाय निद्दिट्ठ ॥१॥
तस्सेव य थेज्जत्थ मज्झिमय अतिमपि तस्सेव।
अव्वोच्छित्तिनिमित्त सिस्सपसिस्साइवसस्स ॥२॥

२ (क) 'प्रवृत्तिप्रयोजकज्ञानविषयत्वमनुबन्धत्वम्, विषयश्चाधिकारी च सम्बन्धश्च प्रयोजनमिति अनुबन्धचतुष्टयम्।'

(ख) प्रज्ञापना मलय वृत्ति, पत्राक १-२

३. प्रकर्षेण-निःशेषकुतीर्थितीर्थकरासाध्येन यथावस्थितस्वरूपनिरूपणलक्षणेन ज्ञाप्यन्ते—शिष्यबुद्धावारोप्यन्ते जीवाजीवादय पदार्था अनयेति प्रज्ञापना। —प्रज्ञापना म वृत्ति, पत्राक १

४ मध्यस्थो बुद्धिमानर्थी श्रोता पात्रमिति स्मृत। —प्रज्ञापना म वृत्ति, पत्राक ७

श्रद्धानुसारी जनो की अपेक्षा से है, जिसे शास्त्रकार स्वय आगे बताएँगे ।

प्रयोजन—प्रस्तुत शास्त्र का प्रयोजन दो प्रकार का है—पर (अनन्तर) प्रयोजन और अपर (परम्पर) प्रयोजन । ये दोनो प्रयोजन भी दो-दो प्रकार के है—(१) शास्त्रकर्ता का पर-अपर-प्रयोजन और (२) श्रोता का पर-अपर-प्रयोजन ।

शास्त्रकर्ता का प्रयोजन—द्रव्यास्तिकनय की दृष्टि से विचार करने पर 'आगम' नित्य होने से उसका कोई कर्ता है ही नही । जैसा कि कहा गया है[1]—**'यह द्वादशागी कभी नहीं थी, ऐसा नहीं है, कभी नहीं है, ऐसा भी नही है और कभी नही होगी, ऐसा भी नहीं है । यह ध्रुव, नित्य और शाश्वत है'** इत्यादि । पर्यायार्थिक नय की दृष्टि से विचार करने पर आगम अनित्य है, अतएव उसका कर्ता भी अवश्य होता है । वस्तुत तात्त्विक दृष्टि से विचार करने पर आगम सूत्र, अर्थ और तदुभयरूप है । अत अर्थ की अपेक्षा से नित्य और सूत्र की अपेक्षा से अनित्य होने से शास्त्र का कर्ता कथचित् सिद्ध होता है । शास्त्रकर्ता का इस शास्त्रप्ररूपणा से अनन्तर प्रयोजन है—प्राणियो पर अनुग्रह करना और परम्परप्रयोजन है—मोक्षप्राप्ति । कहा भी है—**'जो व्यक्ति सर्वज्ञोक्त उपदेश द्वारा दु खसतप्त जीवो पर अनुग्रह करता है, वह शीघ्र ही मोक्ष प्राप्त करता है ।'** कोई कह सकता है कि अर्थरूप आगम के प्रतिपादक अर्हत् (तीर्थकर) भगवान् तो कृतकृत्य हो चुके है, उन्हे शास्त्र-प्रतिपादन से क्या प्रयोजन है ? बिना प्रयोजन के अर्थरूप आगम का प्रतिपादन करना वृथा है । इस शका का समाधान यह है कि ऐसी बात नही है । तीर्थकर भगवान् तीर्थकरनामकर्म के विपाकोदय-वश अर्थागम का प्रतिपादन करते है । आवश्यकनिर्युक्ति मे इस विषय मे एक प्रश्नोत्तरी द्वारा प्रकाश डाला गया है—(प्र) **'वह (तीर्थंकर नामकर्म) किस प्रकार से वेदन किया (भोगा) जाता है?'** (उ) **'अग्लान भाव से धर्मदेशना देने से (उसका वेदन होता है)** ।'[2] **श्रोताओ का प्रयोजन**—श्रोताओ का साक्षात् (अनन्तर) प्रयोजन है—विवक्षित अध्ययन के अर्थ का परिज्ञान होना । अर्थात् आगम श्रवण करते ही उसके अभीष्ट अर्थ का ज्ञान श्रोता को हो जाता है । परम्पराप्रयोजन है—मोक्षप्राप्ति । जब श्रोता विवक्षित अध्ययन का अर्थ समीचीनरूप से जान लेता है, हृदयगम कर लेता है, तो ससार से उसे विरक्ति हो जाती है । विरक्त होकर भवभ्रमण से छुटकारा पाने हेतु वह आगमानुसार सयममार्ग मे सम्यक् प्रवृत्ति करता है । सयम मे प्रकर्षरूप से प्रवृत्ति और ससार से विरक्ति के कारण श्रोता के समस्त कर्मो का क्षय हो जाने पर मोक्ष की प्राप्ति सम्भव है । कहा भी है—वस्तुस्वरूप के यथार्थ परिज्ञान से ससार से विरक्त जन (मोक्षानुसारी) क्रिया मे सलग्न होकर निर्विघ्नता से परमगति (मोक्ष) प्राप्त कर लेते हैं ।[3]

कतिपय विशिष्ट शब्दो की व्याख्या—**'ववगय-जरमरणभए'** =जो जरा, मरण और भय से सदा के लिए मुक्त हो चुके है । यह सिद्धो का विशेषण है । जरा का अर्थ है—वय की हानिरूप वृद्धा-वस्था, मरण का अर्थ प्राणत्याग, और भय का अर्थ है—इहलोकभय, परलोकभय आदि सात प्रकार की भीति । सिद्ध भगवान् इनसे सर्वथा रहित हो चुके हैं । **सिद्ध**—जिन्होने सित यानी बद्ध अष्टविध-

---

१ नन्दीसूत्र, श्रुतज्ञान-प्रकरण

२ 'त च कह वेइज्जइ ? अगिलाए धम्मदेसणाए उ' । —आव० निर्युक्ति

३ सम्यग्भावपरिज्ञानाद् विरक्ता भवतो जना ।
क्रियासक्ता ह्यविघ्नेन गच्छन्ति परमा गतिम् ॥

पढमं पण्ण णापदं

प्रथम प्रज्ञापनापद

प्रज्ञापना : स्वरूप और प्रकार—

३ से किं त पण्णवणा ?

पण्णवणा दुविहा पन्नत्ता । त जहा—जीवपण्णवणा य १ अजीवण्णवणा य २ ।

[३-प्र] वह (पूर्वोक्त) प्रज्ञापना (का अर्थ) क्या है ?

[३-उ] प्रज्ञापना दो प्रकार की कही गई है। वह इस प्रकार—जीवप्रज्ञापना और अजीव-प्रज्ञापना ।

अजीवप्रज्ञापना : स्वरूप और प्रकार—

४ से किं त अजीवपण्णवणा ?

अजीवपण्णवणा दुविहा पण्णत्ता । त जहा—रूविअजीवपण्णवणा य १ अरूविअजीवपण्णवणा य २ ।

[४-प्र] वह अजीव-प्रज्ञापना क्या है ?

[४-उ] अजीव-प्रज्ञापना दो प्रकार की कही गई है। वह इस प्रकार—१ रूपी-अजीव-प्रज्ञापना और २ अरूपी-अजीव-प्रज्ञापना ।

अरूपी-अजीव प्रज्ञापना—

५ से किं तं अरूविअजीवपण्णवणा ?

अरूविअजीवपण्णवणा दसविहा पन्नत्ता । त जहा—धम्मत्थिकाए १ धम्मत्थिकायस्स देसे २ धम्मत्थिकायस्स पदेसा ३, अधम्मत्थिकाए ४ अधम्मत्थिकायस्स देसे ५ अधम्मत्थिकायस्स पदेसा ६, आगासत्थिकाए ७ आगासत्थिकायस्स देसे ८ आगासत्थिकायस्स पदेसा ९, अद्धासमए १० । से त्तं अरूविअजीवपण्णवणा ।

[५-प्र] वह अरूपी-अजीव-प्रज्ञापना क्या है ?

[५-उ] अरूपी-अजीव-प्रज्ञापना दस प्रकार की कही गई है। वह इस प्रकार—१ धर्मास्तिकाय, २ धर्मास्तिकाय का देश, ३ धर्मास्तिकाय के प्रदेश, ४ अधर्मास्तिकाय, ४ अधर्मास्तिकाय का देश, ६ अधर्मास्तिकाय के प्रदेश, ७ आकाशास्तिकाय, ८ आकाशास्तिकाय का देश, ९ आकाशास्तिकाय के प्रदेश और १० अद्धाकाल । यह अरूपी-अजीव-प्रज्ञापना है ।

रूपी-अजीव-प्रज्ञापना—

६ से किं त रूविअजीवपण्णवणा ?

रूविअजीवपण्णवणा चउव्विहा पण्णत्ता। त जहा—खधा १ खधदेसा २ खधप्पएसा ३ परमाणुपोग्गला ४।

[६-प्र] वह रूपी-अजीव-प्रज्ञापना क्या है ?

[६-उ] रूपी-अजीव-प्रज्ञापना चार प्रकार की कही गई है। वह इस प्रकार—१ स्कन्ध, २ स्कन्धदेश, ३ स्कन्धप्रदेश और ४ परमाणुपुद्गल।

७ ते समासतो पचविहा पण्णत्ता। त जहा— वण्णपरिणया १ गधपरिणया २ रसपरिणया ३ फासपरिणया ४ सठाणपरिणया ५।

७ वे (चारो) संक्षेप से पाच प्रकार के कहे गए है, यथा—(१) वर्णपरिणत, (२) गन्धपरिणत, (३) रसपरिणत, (४) स्पर्शपरिणत और (५) सस्थानपरिणत।

८ [१] जे वण्णपरिणया ते पचविहा पण्णत्ता। त जहा—कालवण्णपरिणया १ नीलवण्णपरिणया २ लोहियवण्णपरिणया ३ हालिद्दवण्णपरिणया ४ सुक्किलवण्णपरिणया ५।

[८-१] जो वर्णपरिणत होते है, वे पाच प्रकार के कहे है। यथा—(१) काले वर्ण के रूप मे परिणत, (२) नीले वर्ण के रूप मे परिणत, (३) लाल वर्ण के रूप मे परिणत, (४) पीले (हारिद्र) वर्ण के रूप मे परिणत, और (५) शुक्ल (श्वेत) वर्ण के रूप मे परिणत।

[२] जे गधपरिणता ते दुविहा पन्नत्ता। त जहा—सुब्भिगधपरिणता य १ दुब्भिगधपरिणता य २।

[८-२] जो गन्धपरिणत होते है, वे दो प्रकार के कहे गए है—(१) सुगन्ध के रूप मे परिणत और (२) दुर्गन्ध के रूप मे परिणत।

[३] जे रसपरिणता ते पंचविहा पन्नत्ता। तं जहा—तित्तरसपरिणता १ कडुयरसपरिणता २ कसायरसपरिणता ३ अंबिलरसपरिणता ४ महुररसपरिणता ५।

[८-३] जो रसपरिणत होते है, वे पाच प्रकार के कहे गए है। वे इस प्रकार—(१) तिक्त (तीखे) रस के रूप मे परिणत, (२) कटु (कडवे) रस के रूप मे परिणत, (३) कषाय—(कसैले) रस के रूप मे परिणत, (४) अम्ल (खट्टे) रस के रूप मे परिणत और (५) मधुर (मीठे) रस के रूप परिणत।

[४] जे फासपरिणता ते अट्ठविहा पण्णत्ता। त जहा—कक्खडफासपरिणता १ मउयफासपरिणता २ गरुयफासपरिणता ३ लहुयफासपरिणता ४ सीयफासपरिणता ५ उसिणफासपरिणता ६ निद्धफासपरिणता ७ लुक्खफासपरिणता ८।

[८-४] जो स्पर्शपरिणत होते है, वे आठ प्रकार के कहे गए हैं, यथा—(१) कर्कश (कठोर) स्पर्श के रूप मे परिणत, (२) मृदु (कोमल) स्पर्श के रूप मे परिणत, (३) गुरु (भारी)

कर्मेन्धन को जाज्वल्यमान शुक्लध्यानाग्नि से ध्मात यानी दग्ध (भस्म) कर डाला है, वे सिद्ध हैं। अथवा जो सिद्ध –निष्ठितार्थ (कृतकृत्य) हो चुके है, वे सिद्ध है। या 'षिधु' धातु शास्त्र और मागल्य अर्थ मे होने से इसके दो अर्थ और निकलते है—(१) जो शास्ता हो चुके है, अथवा (२) मगलरूपता का अनुभव कर चुके है वे सिद्ध है।[1] जिणवरिंद=जो रागादि शत्रुओ को जीतते हैं, वे जिन है। वे चार प्रकार के है—श्रुतजिन, अवधिजिन, मन पर्यायजिन और केवलिजिन। यहाँ केवलिजिन को सूचित करने के लिए 'वर' शब्द प्रयुक्त किया गया है। जिनो मे जो वर यानी श्रेष्ठ हो तथा अतीत-अनागत-वर्तमानकाल के समस्त पदार्थो के स्वरूप को जानने वाले केवलज्ञान से युक्त हो, वह जिनवर कहलाता है। परन्तु ऐसा जिनवर तो सामान्यकेवली भी होता है, अत तीर्थंकरत्वसूचक पद बतलाने के लिए जिनवर के साथ 'इन्द्र' विशेषण लगाया है, जिसका अर्थ होता है—'जिनवरो के इन्द्र'। यहाँ ऋषभदेव आदि अन्य तीर्थंकरो को वन्दन न करके तीर्थंकर महावीर को ही वन्दन किया गया है, इसका कारण है—महावीर वर्तमान जिनशासन (धर्मतीर्थ) के अधिपति होने से आसन्न उपकारी है। महावीर—जो महान् वीर हो, वह महावीर है। आध्यात्मिक क्षेत्र मे वीर का अर्थ है—जो कषायादि शत्रुओ के प्रति वीरत्व=पराक्रम दिखलाता है। महावीर का 'महावीर' यह नाम परीषहो और उपसर्गों को जीतने मे महावीर द्वारा प्रकट की गई असाधारण वीरता की अपेक्षा से सुरो और असुरो द्वारा दिया गया है।[2] तेलोक्कगुरु—भगवान् महावीर का यह विशेषण है—तीनो लोको के गुरु। गुरु उसे कहते है, जो यथार्थरूप से प्रवचन के अर्थ का प्रतिपादन करता है। भगवान् महावीर तीनो लोको के गुरु इसलिए थे कि उन्होने अधोलोकनिवासी असुरकुमार आदि भवनपति देवो को, मध्यलोकवासी मनुष्यो, पशुओ, विद्याधरो, वाणव्यन्तर एव ज्योतिष्कदेवो को, तथा ऊर्ध्वलोकवासी सौधर्म आदि वैमानिक देवो, इन्द्रो आदि को धर्मोपदेश दिया।

भगवान् महावीर के लिए प्रयुक्त 'जिनवरेन्द्र' 'महावीर' और 'त्रैलोक्यगुरु' ये तीनो शब्द क्रमश उनके ज्ञानातिशय, पूजातिशय, अपायापगमातिशय एव वचनातिशय को प्रकट करते हैं।

जिणवरेण भगवया—सामान्य केवली भी जिन कहलाते है किन्तु इसके 'वर' शब्द जोडने से सामान्य केवलियो से भी वर—उत्तम तीर्थंकर सूचित हो सकते है, किन्तु छद्मस्थ-क्षीणमोह-जिन की अपेक्षा से सामान्यकेवली भी 'जिनवर' कहला सकते हैं, अत तीर्थंकर अर्थ द्योतित करने हेतु 'भगवया' विशेषण लगाया गया। भगवान् महावीर मे समग्र ऐश्वर्य (अष्ट महाप्रातिहार्य, त्रैलोक्याधिपतित्व आदि), धर्म, यश, श्री, वैराग्य एव प्रयत्न ये[3] ६ भगवत्तत्व थे, इसलिए यहाँ 'तीर्थंकर भगवान् महावीर ने' यही अर्थ स्पष्टत सूचित होता है।

---

१ सित—बद्धमष्टप्रकार कर्मेन्धन, ध्मात—दग्ध जाज्वल्यमानशुक्लध्यानानलेन यैस्ते सिद्धा। यदि वा 'षिध सराद्धौ'—सिध्यन्तिस्म निष्ठितार्था भवन्तिस्म, यद्वा 'षिधु शास्त्रे मागल्ये च'—सेधन्तेस्म—शासितारोऽभवन्, मागल्यरूपता वाऽनुभवन्तिस्मेति सिद्धा।
"ध्मात सित येन पुराणकर्म, यो वा गतो निर्वृ तिसौधमूर्ध्नि।
ख्यातोऽनुशास्ता परिनिष्ठितार्थो, य सोऽस्तु सिद्ध कृतमगलो मे॥
—प्रज्ञापना म० वृत्ति, पत्राक २-३

२ अयले भयभेरवाण खतिखमे परीसहोवसग्गाण। देवेहिं कए महावीर' इति।

३ ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशस श्रिय।
वैराग्यस्याथ प्रयत्नस्य षण्णा भग इतीङ्गना॥
—प्रज्ञापना म वृत्ति, पत्राक ३-४

भवियजणणिव्वुइकरेण—इसके दो अर्थ फलित होते है—तथाविध अनादिपारिणामिकभाव के कारण जो सिद्धिगमनयोग्य हो, वह भव्य कहलाता है। ऐसे भव्यजनो को जो निर्वृति—निर्वाण, शान्ति या निर्वाण के कारणभूत सम्यग्दर्शनादि प्रदान करने वाले है। निर्वाण का एक अर्थ है—समस्त कर्ममल के दूर होने से स्वस्वरूप के लाभ से परम स्वास्थ्य। प्रश्न यह है कि ऐसे निर्वाण के हेतुभूत सम्यग्दर्शनादि रत्नत्रय भी केवल भव्यजनो को ही भगवान् देते हैं, यह तो एक प्रकार का पक्षपात हुआ भव्यो के प्रति। इसका समाधान यह है कि सूर्य सभी को समानभाव से प्रकाश देता है, किन्तु उस प्रकार के योग्य चक्षुष्मान् प्राणी ही उससे लाभ उठा पाते हैं, तामस खगपक्षी (उल्लू आदि) को उसका प्रकाश उपकारक नही होता, वैसे ही भगवान् सभी प्राणियोको समानभाव से उपदेश देते है, किन्तु अभव्य जीवो का स्वभाव ही ऐसा है कि वे भगवान् के उपदेश से लाभ नही उठा पाते। **उवदसिया**—जैसे श्रोताओ को झटपट यथार्थवस्तुतत्त्वबोध समीप से होता है, वैसे ही भगवान् ने स्पष्ट प्रवचनो से श्रोताओ के लिए यह (प्रज्ञापना) श्रवणगोचर कर दी, उपदिष्ट की। **पण्णवणा = प्रज्ञापना**—जीवादि भाव जिस शब्दसहति द्वारा प्रज्ञापित-प्ररूपित किये जाते है।[1]

प्रज्ञापनासूत्र के छत्तीस पदों के नाम—

२ पण्णवणा १ ठाणाइ २ बहुवत्तव्व ३ ठिई ४ विसेसा य ५।
वक्कती ६ उस्सासो ७ सण्णा ८ जोणी य ९ चरिमाइ १० ॥४॥

भासा ११ सरीर १२ परिणाम १३ कसाए १४ इदिए १५ पओगे य १६।
लेसा १७ कायठिई या १८ सम्मत्ते १९ अतकिरिया य २० ॥५॥

ओगाहणसठाणे २१ किरिया २२ कम्मे त्ति यावरे २३।
कम्मस्स बधए २४ कम्मवेदए २५ वेदस्स बधए २६ वेयवेयए २७ ॥६॥

आहारे २८ उवओगे २९ पासणया ३० सण्णि ३१ सजमे ३२ चेव।
ओही ३३ पवियारण ३४ वेयणा य ३५ तत्तो समुग्घाए ३६ ॥७॥

२ [अर्थाधिकार-सग्रहिणी गाथाओ का अर्थ—] (प्रज्ञापनासूत्र मे छत्तीस पद हैं। वे क्रमश इस प्रकार हैं—) १ प्रज्ञापना, २ स्थान, ३ बहुवक्तव्य, ४ स्थिति, ५ विशेष, ६ व्युत्क्रान्ति (उपपात-उद्वर्त्तनादि), ७ उच्छ्वास, ८ सज्ञा, ९ योनि, १० चरम ॥४॥

११ भाषा, १२ शरीर, १३ परिणाम, १४ कषाय, १५ इन्द्रिय, १६ प्रयोग, १७ लेश्या, १८ कायस्थिति, १९ सम्यक्त्व और २० अन्तक्रिया ॥५॥

२१ अवगाहना-सस्थान, २२ क्रिया, २३ कर्म और इसके पश्चात् २४ कर्म का बन्धक, २५ कर्म का वेदक, २६ वेद का बन्धक, २७ वेद-वेदक ॥६॥

२८ आहार, २९ उपयोग, ३० पश्यत्ता, ४१ सज्ञी और ३२ सयम, ३३ अवधि, ३४ प्रविचारणा, ३५ तथा वेदना, एव इसके अनन्तर ३६ समुद्घात ॥७॥
(इन सबके अत मे 'पद' शब्द जोड देना चाहिए।)

---

१ प्रज्ञापना मलयवृत्ति, पत्राक २

पढमं पण्णवणापदं

प्रथम प्रज्ञापनापद

प्रज्ञापना : स्वरूप और प्रकार—

३ से किं त पण्णवणा ?

पण्णवणा दुविहा पन्नत्ता । त जहा—जीवपण्णवणा य १ अजीवण्णवणा य २ ।

[३-प्र] वह (पूर्वोक्त) प्रज्ञापना (का अर्थ) क्या है ?

[३-उ] प्रज्ञापना दो प्रकार की कही गई है । वह इस प्रकार—जीवप्रज्ञापना और अजीव-प्रज्ञापना ।

अजीवप्रज्ञापना : स्वरूप और प्रकार—

४ से किं त अजीवपण्णवणा ?

अजीवपण्णवणा दुविहा पण्णत्ता । त जहा—रूविअजीवपण्णवणा य १ अरूविअजीवपण्णवणा य २ ।

[४-प्र] वह अजीव-प्रज्ञापना क्या है ?

[४-उ] अजीव-प्रज्ञापना दो प्रकार की कही गई है । वह इस प्रकार—१ रूपी-अजीव-प्रज्ञापना और २ अरूपी-अजीव-प्रज्ञापना ।

अरूपी-अजीव प्रज्ञापना—

५ से किं तं अरूविअजीवपण्णवणा ?

अरूविअजीवपण्णवणा दसविहा पन्नत्ता । त जहा—धम्मत्थिकाए १ धम्मत्थिकायस्स देसे २ धम्मत्थिकायस्स पदेसा ३, अधम्मत्थिकाए ४ अधम्मत्थिकायस्स देसे ५ अधम्मत्थिकायस्स पदेसा ६, आगासत्थिकाए ७ आगासत्थिकायस्स देसे ८ आगासत्थिकायस्स पदेसा ९, अद्धासमए १० । से त्त अरूविअजीवपण्णवणा ।

[५-प्र] वह अरूपी-अजीव-प्रज्ञापना क्या है ?

[५-उ] अरूपी-अजीव-प्रज्ञापना दस प्रकार की कही गई है । वह इस प्रकार—१ धर्मास्तिकाय, २ धर्मास्तिकाय का देश, ३ धर्मास्तिकाय के प्रदेश, ४ अधर्मास्तिकाय, ५ अधर्मास्तिकाय का देश, ६ अधर्मास्तिकाय के प्रदेश, ७ आकाशास्तिकाय, ८ आकाशास्तिकाय का देश, ९ आकाशास्तिकाय के प्रदेश और १० अद्धाकाल । यह अरूपी-अजीव-प्रज्ञापना है ।

रूपी-अजीव-प्रज्ञापना—

६ से किं त रूविअजीवपण्णवणा ?

रूविअजीवपण्णवणा चउव्विहा पण्णत्ता। त जहा—खधा १ खधदेसा २ खधप्पएसा ३ परमाणुपोग्गला ४।

[६-प्र] वह रूपी-अजीव-प्रज्ञापना क्या है ?

[६-उ] रूपी-अजीव-प्रज्ञापना चार प्रकार की कही गई है। वह इस प्रकार—१ स्कन्ध, २ स्कन्धदेश, ३ स्कन्धप्रदेश और ४ परमाणुपुद्गल।

७ ते समासतो पंचविहा पण्णत्ता। त जहा— वण्णपरिणया १ गंधपरिणया २ रसपरिणया ३ फासपरिणया ४ सठाणपरिणया ५।

७ वे (चारो) सक्षेप से पाच प्रकार के कहे गए हैं, यथा—(१) वर्णपरिणत, (२) गन्धपरिणत, (३) रसपरिणत, (४) स्पर्शपरिणत और (५) सस्थानपरिणत।

८ [१] जे वण्णपरिणया ते पचविहा पण्णत्ता। त जहा—कालवण्णपरिणया १ नीलवण्ण-परिणया २ लोहियवण्णपरिणया ३ हालिद्दवण्णपरिणया ४ सुक्किलवण्णपरिणया ५।

[८-१] जो वर्णपरिणत होते है, वे पाच प्रकार के कहे हैं। यथा—(१) काले वर्ण के रूप मे परिणत, (२) नीले वर्ण के रूप मे परिणत, (३) लाल वर्ण के रूप मे परिणत, (४) पीले (हारिद्र) वर्ण के रूप मे परिणत, और (५) शुक्ल (श्वेत) वर्ण के रूप मे परिणत।

[२] जे गंधपरिणता ते दुविहा पन्नत्ता। त जहा—सुब्भिगधपरिणता य १ दुब्भिगधपरिणता य २।

[८-२] जो गन्धपरिणत होते हैं, वे दो प्रकार के कहे गए है—(१) सुगन्ध के रूप मे परिणत और (२) दुर्गन्ध के रूप मे परिणत।

[३] जे रसपरिणता ते पचविहा पन्नत्ता। त जहा—तित्तरसपरिणता १ कडुयरसपरिणता २ कसायरसपरिणता ३ अबिलरसपरिणता ४ महुररसपरिणता ५।

[८-३] जो रसपरिणत होते है, वे पाच प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार—(१) तिक्त (तीखे) रस के रूप मे परिणत, (२) कटु (कडवे) रस के रूप मे परिणत, (३) कषाय—(कसैले) रस के रूप मे परिणत, (४) अम्ल (खट्टे) रस के रूप मे परिणत और (५) मधुर (मीठे) रस के रूप परिणत।

[४] जे फासपरिणता ते अट्ठविहा पण्णत्ता। त जहा—कक्खडफासपरिणता १ मउयफास-परिणता २ गरुयफासपरिणता ३ लहुयफासपरिणता ४ सीयफासपरिणता ५ उसिणफासपरिणता ६ निद्धफासपरिणता ७ लुक्खफासपरिणता ८।

[८-४] जो स्पर्शपरिणत होते है, वे आठ प्रकार के कहे गए हैं, यथा—(१) कर्कश (कठोर) स्पर्श के रूप मे परिणत, (२) मृदु (कोमल) स्पर्श के रूप मे परिणत, (३) गुरु (भारी)

स्पर्श के रूप मे परिणत, (४) लघु (हलके) स्पर्श के रूप मे परिणत, (५) शीत (ठडे) स्पर्श के रूप मे परिणत, (६) उष्ण (गर्म) स्पर्श के रूप मे परिणत, (७) स्निग्ध (चिकने) स्पर्श के रूप मे परिणत, और (८) रूक्ष (रूखे) स्पर्श के रूप मे परिणत ।

[५] जे सठाणपरिणता ते पचविहा पण्णत्ता । त जहा—परिमडलसठाणपरिणता १ वट्ट-संठाणपरिणता २ तससठाणपरिणता ३ चउरससठाणपरिणता ४ आयतसठाणपरिणता ५ । २५ ।

[८-५] जो सस्थानपरिणत होते हैं, वे पाच प्रकार के कहे गए है । वे इस प्रकार—(१) परिमण्डल-सस्थान के रूप मे परिणत, (२) वृत्त (गोल) चूडी के सस्थान के रूप मे परिणत, (३) त्र्यस्र (तिकोन) सस्थान के रूप मे परिणत, (४) चतुरस्र (चोकोन) सस्थान के रूप मे परिणत और (५) आयत (लम्बे) सस्थान (आकार) के रूप मे परिणत । २५ ।

९ [१] जे वण्णओ कालवण्णपरिणता ते गधओ सुब्भिगधपरिणता वि दुब्भिगधपरिणता वि, रसओ तित्तरसपरिणता वि कडुयरसपरिणता वि कसायरसपरिणता वि अबिलरसपरिणता वि महुर-रसपरिणता वि, फासओ कक्खडफासपरिणता वि मउयफासपरिणता वि गरुयफासपरिणता वि लहुय-फासपरिणता वि सीयफासपरिणता वि उसिणफासपरिणता वि निद्धफासपरिणता वि लुक्खफास-परिणता वि, सठाणओ परिमडलसठाणपरिणता वि वट्टसंठाणपरिणता वि तससठाणपरिणता वि चउरससठाणपरिणता वि आयतसठाणपरिणता वि २० ।

[९-१] जो वर्ण से काले वर्ण के रूप मे परिणत है, उनमे से कोई गन्ध को अपेक्षा से सुरभि-गन्ध-परिणत भी होते है, दुरभिगन्ध-परिणत भी । रस से कोई तिक्तरस-परिणत भी होते हैं, कोई कटुरस-परिणत भी, इसी प्रकार कषायरस-परिणत भी, अम्लरस-परिणत भी और मधुररस-परिणत भी होते है । उनमे से कोई स्पर्श से कर्कशस्पर्श-परिणत भी होते है, कोई मृदुस्पर्श-परिणत भी एव गुरुस्पर्श-परिणत भी, लघुस्पर्श-परिणत भी, शीतस्पर्श-परिणत भी, उष्णस्पर्श-परिणत भी, स्निग्ध स्पर्श-परिणत भी होते हैं और रूक्षस्पर्श-परिणत भी । वे संस्थान से (आकार से) परिमण्डलसंस्थान-परिणत भी होते है, वृत्तसस्थान-परिणत भी, त्र्यस्र (त्रिकोण) सस्थान-परिणत भी, चतुरस्र (चतुष्कोण) सस्थान-परिणत भी और आयतसस्थान-परिणत भी होते है ।। २० ।।

[२] जे वण्णओ नीलवण्णपरिणता ते गधओ सुब्भिगधपरिणता वि दुब्भिगधपरिणता वि, रसओ तित्तरसपरिणता वि कडुयरसपरिणता वि कसायरसपरिणता वि अबिलरसपरिणता वि महुररस-परिणता वि, फासओ कक्खडफासपरिणता वि मउयफासपरिणता वि गरुयफासपरिणता वि लहुयफास-परिणता वि सीतफासपरिणता वि उसिणफासपरिणता वि निद्धफासपरिणता वि लुक्खफासपरिणता वि, सठाणओ परिमडलसठाणपरिणता वि वट्टसंठाणपरिणता वि तससठाणपरिणता वि चउरससठाण-परिणता वि आयतसंठाणपरिणता वि २० ।

[९-२] जो वर्ण से नीले वर्ण मे परिणत होते है, उनमे से कोई गन्ध की अपेक्षा सुगन्ध-परिणत भी होते है और दुर्गन्ध-परिणत भी, रस से तिक्तरस-परिणत भी होते है, कटुरस-परिणत भी, कषायरस-परिणत भी, अम्लरस-परिणत भी और मधुररस-परिणत भी होते है । (वे) स्पर्श से कर्कश-

स्पर्श-परिणत भी होते है, मृदुस्पर्श-परिणत भी, गुरुस्पर्श-परिणत भी, लघुस्पर्श-परिणत भी, शीत-स्पर्श-परिणत भी, उष्णस्पर्श-परिणत भी, स्निग्धस्पर्श-परिणत भी और रूक्षस्पर्श-परिणत भी होते है। (वे) सस्थान से परिमण्डलसस्थान-परिणत भी होते है, वृत्तसस्थान-परिणत भी, त्र्यस्र (त्रिकोण) सस्थान-परिणत भी चतुरस्र (चतुष्कोण) सस्थान-परिणत भी और आयतसस्थान-परिणत भी होते हैं। २०॥

[३] जे वण्णओ लोहियवण्णपरिणता ते गधओ सुब्भिगधपरिणता वि दुब्भिगधपरिणता वि, रसओ तित्तरसपरिणता वि कडुयरसपरिणता वि कसायरसपरिणता वि अंबिलरसपरिणता वि महुररस-परिणता वि, फासओ कक्खडफासपरिणता वि मउयफासपरिणता वि गरुयफासपरिणता वि लहुयफास-परिणता वि सीतफासपरिणता वि उसिणफासपरिणता वि निद्धफासपरिणता वि लुक्खफासपरिणता वि, सठाणओ परिमडलसंठाणपरिणता वि वट्टसठापरिणता वि तससठाणणपरिणता वि चउरससठाण-परिणता वि आयतसठाणपरिणता वि २०।

[६-३] जो वर्ण से रक्तवर्ण-परिणत हैं, उनमे से कोई गन्ध से सुगन्धपरिणत होते हैं, कोई दुर्गन्धपरिणत। (वे) रस से तिक्तरस-परिणत भी होते है, कटुरस-परिणत भी, कषायरस-परिणत भी, अम्लरस-परिणत भी मधुररस-परिणत भी होते है। स्पर्श से (वे) कर्कशस्पर्श-परिणत भी होते है, मृदु-स्पर्श-परिणत भी, गुरुस्पर्श-परिणत भी, लघुस्पर्श-परिणत भी, शीतस्पर्शपरिणत भी, उष्णस्पर्श-परिणत भी, स्निग्धस्पर्शपरिणत भी होते हैं और रूक्षस्पर्श-परिणत भी। सस्थान से—परिमण्डल सस्थान-परिणत भी होते है, वृत्तसस्थान-परिणत भी, त्र्यस्रसस्थान-परिणत भी, चतुरस्रसस्थान-परिणत भी होते है और आयतसस्थान-परिणत भी ॥२०॥

[४] जे वण्णओ हालिद्दवण्णपरिणता ते गधओ सुब्भिगधपरिणता वि दुब्भिगधपरिणता वि, रसओ तित्तरसपरिणता वि कडुयरसपरिणता वि कसायरसपरिणता वि अंबिलरसपरिणता वि महुर-रसपरिणता वि, फासओ कक्खडफासपरिणता वि मउयफासपरिणता वि गरुयफासपरिणता वि लहुय-फासपरिणता वि सीतफासपरिणता वि उसिणफासपरिणता वि निद्धफासपरिणता वि लुक्खफासपरिणता वि, सठाणओ परिमडलसठाणपरिणता वि वट्टसठाणपरिणता वि तससठाणपरिणता वि चउरससठाण-परिणता वि आयतसठाणपरिणता वि २०।

[९-४] जो वर्ण से हारिद्र (पीत) वर्ण-परिणत होते हैं, उनमे से कोई गन्ध से सुगन्ध-परिणत भी होते हैं, कोई दुर्गन्ध-परिणत भी हो सकते है। रस से कोई तिक्तरस-परिणत होते है, कोई कटुरस-परिणत भी, कोई कषायरस-परिणत भी, कोई अम्लरस-परिणत और मधुररसपरिणत भी होते है। स्पर्श से उनमे से कोई कर्कशस्पर्श-परिणत होते है, कोई मृदुस्पर्श-परिणत एव गुरुस्पर्श-परिणत भी, लघुस्पर्श-परिणत भी, शीतस्पर्श-परिणत भी, उष्णस्पर्शपरिणत भी, स्निग्धस्पर्श-परिणत भी होते है और रूक्षस्पर्श-परिणत भी। सस्थान से कोई परिमण्डल सस्थान-परिणत भी होते हैं, वृत्तसस्थान-परिणत भी, त्र्यस्रसस्थान-परिणत, भी, चतुरस्रसस्थान-परिणत भी होते हैं और आयतसस्थान-परिणत भी ॥ २० ॥

[५] जे वण्णओ सुक्किलवण्णपरिणता ते गधओ सुब्भिगधपरिणता वि दुब्भिगधपरिणता वि, रसओ तित्तरसपरिणता वि कडुयरसपरिणता वि कसायरसपरिणता वि अंबिलरसपरिणता वि महुर-

रसपरिणता वि, फासश्रो कक्खडफासपरिणता वि मउयफासपरिणता वि गरुयफासपरिणता वि लहुय-फासपरिणता वि सीयफासपरिणता वि उसिणफासपरिणता वि निद्धफासपरिणता वि लुक्खफास-परिणता वि, सठाणश्रो परिमडलसठाणपरिणता वि वट्टसठाणपरिणता वि तससठाणपरिणता वि चउरससठाणपरिणता वि श्राययसठाणपरिणता वि २० । १०० । १ ।

[९-५] जो वर्ण से शुक्लवर्ण-परिणत होते है, उनमे से कोई गन्ध की अपेक्षा से सुगन्ध-परिणत भी होते है कोई दुर्गन्ध-परिणत भी । इसी प्रकार रस से—तिक्तरस-परिणत भी होते हैं, कटुरस-परिणत भी, कषायरस-परिणत भी, श्रम्लरस-परिणत भी होते है श्रौर मधुररस-परिणत भी । स्पर्श से—(वे) कर्कशस्पर्श-परिणत भी होते है, मृदुस्पर्श-परिणत भी, गुरुस्पर्श-परिणत भी, लघु-स्पर्श-परिणत भी, शीतस्पर्श-परिणत भी, उष्णस्पर्श-परिणत भी, स्निग्धस्पर्श-परिणत भी होते हैं, श्रौर रूक्षपर्श-परिणत भी । सस्थान से—परिमण्डलसस्थान-परिणत भी होते हैं, वृत्तसस्थान-परिणत भी, त्र्यस्रसस्थान-परिणत भी, चतुरस्रसस्थान-परिणत भी और श्रायतसस्थान-परिणत भी होते है । ॥ २०-१००-१ ॥

१० [१] जे गधश्रो सुब्भिगधपरिणता ते वण्णतो कालवण्णपरिणता वि णीलवण्णपरिणता वि लोहियवण्णपरिणता वि हालिद्दवण्णपरिणता वि सुक्किलवण्णपरिणता वि, रसश्रो तित्तरसपरिणता वि कडुयरसपरिणता वि कसायरसपरिणता वि अबिलरसपरिणता वि महुररसपरिणता वि, फासतो कक्खडफासपरिणता वि मउयफासपरिणता वि गरुयफासपरिणता वि लहुयफासपरिणता वि सीयफास-परिणता वि उसिणफासपरिणता वि णिद्धफासपरिणता वि लुक्खफासपरिणता वि, सठाणश्रो परिमडल-सठाणपरिणता वि वट्टसठाणपरिणता वि तससठाणपरिणता वि चउरससठाणपरिणता वि श्रायग्रसठाण-परिणता वि २३ ।

[१०-१] जो गन्ध से सुगन्ध-परिणत होते है, वे वर्ण से कृष्णवर्ण-परिणत भी होते है, नील-वर्ण-परिणत भी, रक्तवर्ण-परिणत भी, पीतवर्ण-परिणत भी श्रौर शुक्लवर्ण-परिणत भी होते है । वे रस से—तिक्तरस-परिणत भी होते है, कटुरस-परिणत भी, कषायरस-परिणत भी, श्रम्लरस-परिणत भी और मधुररस-परिणत भी होते है । स्पर्श से—(वे) कर्कशस्पर्श-परिणत भी होते हैं, मृदुस्पर्श-परिणत भी, गुरुस्पर्श-परिणत भी, लघुस्पर्श-परिणत भी, शीतस्पर्श-परिणत भी, उष्णस्पर्श-परिणत भी, स्निग्धस्पर्श-परिणत भी होते हैं, श्रौर रूक्षस्पर्श-परिणत भी । (वे) सस्थान से—परिमण्डलसस्थान-परिणत भी होते हैं, वृत्तसस्थान-परिणत भी, त्र्यस्रसस्थान-परिणत भी, चतुरस्रसस्थान-परिणत भी होते हैं श्रौर श्रायतसस्थान-परिणत भी ॥ २३ ॥

[२] जे गधश्रो दुब्भिगधपरिणया ते वण्णश्रो कालवण्णपरिणया वि नीलवण्णपरिणया वि लोहियवण्णपरिणया वि हालिद्दवण्णपरिणया वि सुक्किलवण्णपरिणया वि, रसतो तित्तरसपरिणया वि कडुयरसपरिणता वि कसायरसपरिणता वि अबिलरसपरिणता वि महुररसपरिणता वि, फासश्रो कक्खडफासपरिणता वि मउयफासपरिणता वि गरुयफासपरिणता वि लहुयफासपरिणता वि सीयफास-परिणता वि उसिणफासपरिणता वि निद्धफासपरिणता वि लुक्खफासपरिणता वि, सठाणश्रो परिमडल-

संठाणपरिणया वि वट्टसंठाणपरिणया वि तंससंठाणपरिणता वि चउरंससंठाणपरिणता वि आयतसंठाण-परिणया वि । २३।४६।२।

[१०-२] जो गन्ध से—दुर्गन्धपरिणत होते है, वे वर्ण से—कृष्णवर्ण-परिणत भी होते हैं, नील-वर्ण-परिणत भी, पीतवर्ण-परिणत भी रक्तवर्ण-परिणत भी और शुक्लवर्ण-परिणत भी होते है । रस से—(वे) तिक्तरस-परिणत भी होते है, कटुरस-परिणत भी, कषायरस-परिणत भी, अम्लरस-परिणत भी और मधुररस-परिणत भी होते हैं । स्पर्श से—(वे) कर्कशस्पर्श-परिणत भी होते हैं, मृदुस्पर्श-परिणत भी होते हैं, गुरुस्पर्श-परिणत भी, लघुस्पर्श-परिणत, शीतस्पर्श-परिणत भी, उष्णस्पर्श-परिणत भी, स्निग्धस्पर्श-परिणत भी और रूक्षस्पर्श-परिणत भी होते है । संस्थान से—(वे) परिमण्डल-संस्थान-परिणत होते हैं, वृत्तसंस्थान-परिणत भी, त्र्यस्रसंस्थान-परिणत भी, चतुरस्रसंस्थान-परिणत और आयतसंस्थान-परिणत भी होते है ।। २३-४६ । २

११ [१] जे रसओ तित्तरसपरिणया ते वण्णओ कालवण्णपरिणता वि णीलवण्णपरिणता वि लोहियवण्णपरिणता वि हालिद्दवण्णपरिणता वि सुक्किलवण्णपरिणता वि, गंधओ सुब्भिगंधपरिणता वि दुब्भिगंधपरिणता वि, फासओ कक्खडफासपरिणता वि मउयफासपरिणता वि गरुयफासपरिणता वि लहुयफासपरिणता वि सीतफासपरिणता वि उसिणफासपरिणता वि णिद्धफासपरिणता वि लुक्ख-फासपरिणता वि, संठाणओ परिमंडलसंठाणपरिणता वि वट्टसंठाणपरिणया वि तंससंठाणपरिणया वि चउरंससंठाणपरिणया वि आययसंठाणपरिणता वि २० ।

[११-१] जो रस से तिक्तरस-परिणत होते है, वे वर्ण से—कृष्णवर्ण-परिणत भी होते है, नीलवर्ण-परिणत भी होते है, रक्तवर्ण-परिणत भी, पीतवर्ण-परिणत भी और शुक्लवर्ण-परिणत भी होते है । गन्ध से (वे) सुगन्ध-परिणत भी और दुर्गन्ध-परिणत भी होते है । स्पर्श से—(वे) कर्कशस्पर्श-परिणत होते हैं, मृदुस्पर्श-परिणत भी, गुरुस्पर्श-परिणत भी, लघुस्पर्श-परिणत भी, शीतस्पर्श-परिणत भी, उष्णस्पर्श-परिणत भी, स्निग्धस्पर्श-परिणत भी होते है, और रूक्षस्पर्श-परिणत भी । संस्थान से—वे परिमण्डलसंस्थानपरिणत भी होते हैं, वृत्तसंस्थान-परिणत भी, त्र्यस्रसंस्थान-परिणत भी, चतुरस्र-संस्थान-परिणत भी और आयतसंस्थान-परिणत भी होते हैं ।। २० ।।

[२] जे रसओ कडुयरसपरिणता ते वण्णओ कालवण्णपरिणता वि नीलवण्णपरिणता वि लोहियवण्णपरिणता वि हालिद्दवण्णपरिणता वि सुक्किलवण्णपरिणता वि, गंधओ सुब्भिगंधपरिणता वि दुब्भिगंधपरिणता वि, फासतो कक्खडफासपरिणता वि मउयफासपरिणता वि गरुयफासपरिणता वि लहुयफासपरिणता वि सीतफासपरिणता वि उसिणफासपरिणता वि णिद्धफासपरिणता वि लुक्ख-फासपरिणता वि, संठाणओ परिमंडलसंठाणपरिणता वि वट्टसंठाणपरिणता वि तंससंठाणपरिणता वि चउरंससंठाणपरिणता वि आयतसंठाणपरिणता वि २० ।

[११-२] जो रस से—कटुरस-परिणत होते है, वे वर्ण से कृष्णवर्ण-परिणत भी होते हैं नीलवर्ण-परिणत भी, रक्तवर्ण-परिणत भी, पीतवर्ण-परिणत भी होते हैं और शुक्लवर्ण-परिणत भी । गन्ध से—(वे) सुगन्धपरिणत होते हैं और दुर्गन्धपरिणत भी । स्पर्श से—कर्कशस्पर्श-परिणत भी होते है, मृदुस्पर्श-परिणत भी, गुरुस्पर्श-परिणत भी लघुस्पर्श-परिणत भी, शीतस्पर्श-परिणत भी

उष्णस्पर्श-परिणत भी, स्निग्धस्पर्श-परिणत भी होते है और रूक्षस्पर्श-परिणत भी। सस्थान से—(वे) परिमण्डलसस्थान-परिणत भी होते हैं, वृत्तसस्थान-परिणत भी, त्र्यस्र-सस्थान-परिणत भी, चतुरस्रसस्थान-परिणत भी एव आयतसस्थान-परिणत भी होते हे ।। २० ।।

[३] जे रसश्रो कसायरसपरिणता ते वण्णओ कालवण्णपरिणता वि नीलवण्णपरिणता वि लोहियवण्णपरिणता वि हालिद्दवण्णपरिणता वि सुक्किलवण्णपरिणता वि, गधश्रो सुब्भिगधपरिणता वि दुब्भिगधपरिणता वि, फासश्रो कक्खडफासपरिणता वि मउयफासपरिणता वि गरुयफासपरिणता वि लहुयफासपरिणता वि सीतफासपरिणता वि उसिणफासपरिणता वि निद्धफासपरिणता वि लुक्खफास-परिणता वि, सठाणश्रो परिमडलसठाणपरिणता वि वट्टसठाणपरिणता वि तससठाणपरिणता वि चउरससठाणपरिणता वि श्राययसठाणपरिणता वि २० ।

[११-३] जो रस से कषायरस-परिणत होते हैं, वे वर्ण से कृष्णवर्ण-परिणत भी होते है, नील वर्ण-परिणत भी होते हैं, रक्तवर्ण-परिणत भी, पीतवर्ण-परिणत भी और शुक्लवर्ण-परिणत भी होते हैं। गन्ध से—(वे) सुगन्धपरिणत भी होते है, दुर्गन्धपरिणत भी। स्पर्श से—कर्कशस्पर्श-परिणत भी होते है, मृदुस्पर्श-परिणत भी, गुरुस्पर्श-परिणत भी, लघुस्पर्श-परिणत भी, शीतस्पर्श-परिणत भी, उष्णस्पर्श-परिणत भी, स्निग्धस्पर्श-परिणत भी होते है और रूक्षस्पर्श-परिणत भी। सस्थान से—परिमण्डलसस्थान-परिणत भी हैं, वृत्तसस्थान-परिणत भी त्र्यसस्थान-परिणत भी, चतुरस्रसस्थान-परिणत भी एव आयतसस्थान-परिणत भी होते हैं ।। २० ।।

[४] जे रसश्रो अंबिलरसपरिणता ते वण्णश्रो कालवण्णपरिणता वि नीलवण्णपरिणता वि लोहियवण्णपरिणता वि हालिद्दवण्णपरिणता वि सुक्किलवण्णपरिणता वि, गधश्रो सुब्भिगधपरिणता वि दुब्भिगधपरिणता वि, फासतो कक्खडफासपरिणता वि मउयफासपरिणता वि गरुयफासपरिणता वि लहुयफासपरिणता वि सीतफासपरिणता वि उसिणफासपरिणता वि निद्धफासपरिणता वि लुक्खफास-परिणता वि, सठाणश्रो परिमडलसठाणपरिणता वि वट्टसठाणपरिणता वि तससठाणपरिणता वि, चउरससठाणपरिणता वि आययसठाणपरिणता वि २० ।

[११-४] जो रस से अम्लरस-परिणत होते है, वे वर्ण से कृष्णवर्ण-परिणत भी होते है, नील-वर्ण-परिणत भी, रक्तवर्ण-परिणत भी, हारिद्र (पीत) वर्ण-परिणत भी तथा शुक्लवर्ण-परिणत भी होते है। वे गन्ध से सुगन्धपरिणत भी होते है और दुर्गन्धपरिणत भी। स्पर्श से-कर्कशस्पर्श-परिणत होते हैं, मृदुस्पर्श-परिणत भी, गुरुस्पर्श-परिणत भी, लघुस्पर्श-परिणत भी, शीतस्पर्श-परिणत भी उष्णस्पर्श-परिणत भी, स्निग्धस्पर्श-परिणत भी होते हैं और रूक्षस्पर्श-परिणत भी। सस्थान से—(वे) परिमण्डलसस्थानसस्थित भी होते हैं, वृत्तसस्थानसस्थित भी, त्र्यस्रसस्थानसस्थित भी, चतुर-स्रसस्थानसस्थित भी एव आयतसस्थानसस्थित भी होते है।

[५] जे रसश्रो महुररसपरिणता ते वण्णश्रो कालवण्णपरिणता वि नीलवण्णपरिणता वि लोहियवण्णपरिणता वि हालिद्दवणपरिणता वि सुक्किलवण्णपरिणता वि, गधतो सुब्भिगधपरिणता वि दुब्भिगधपरिणता वि, फासतो कक्खडफासपरिणता वि मउयफासपरिणता वि गरुयफासपरिणता वि

लहुयफासपरिणता वि सीतफासपरिणता वि उसिणफासपरिणता वि निद्धफासपरिणता वि लुक्खफास-परिणता वि, संठाणओ परिमंडलसंठाणपरिणता वि वट्टसंठाणपरिणता वि तंससंठाणपरिणता वि चउरंससंठाणपरिणता वि आययसंठाणपरिणता वि २०।१००।३।

[११-५] जो रस से मधुररसपरिणत होते है, वे वर्ण से कृष्णवर्ण-परिणत भी होते हैं, नील-वर्ण-परिणत भी, रक्तवर्ण-परिणत भी होते हैं, तथा पीतवर्ण-परिणत भी और शुक्लवर्ण-परिणत भी होते है। गन्ध से—(वे) सुगन्धपरिणत भी होते है और दुर्गन्धपरिणत भी। स्पर्श से—(वे) कर्कश-स्पर्श-परिणत भी होते है, मृदुस्पर्श-परिणत भी, गुरुस्पर्श-परिणत भी, लघुस्पर्श-परिणत भी हैं, शीतस्पर्श-परिणत भी, उष्णस्पर्श-परिणत भी तथैव स्निग्धस्पर्श-परिणत भी और रूक्षस्पर्श-परिणत भी होते है। संस्थान से—(वे) परिमण्डलसंस्थान-परिणत होते है वृत्तसंस्थान-परिणत भी, त्र्यस्रसंस्थान-परिणत भी, चतुरस्रसंस्थानपरिणत भी और आयतसंस्थान-परिणत भी होने है। २०। १००। ३।

१२ [१] जे फासतो कक्खडफासपरिणता ते वण्णओ कालवण्णपरिणता वि नीलवण्ण-परिणता वि लोहियवण्णपरिणता वि हालिद्दवण्णपरिणता वि सुक्किलवण्णपरिणता वि, गंधओ सुब्भि-गंधपरिणता वि दुब्भिगंधपरिणता वि, रसओ तित्तरसपरिणता वि कडुयरसपरिणता वि कसायरस-परिणता वि अंबिलरसपरिणता वि महुररसपरिणता वि, फासतो गरुयफासपरिणता वि लहुयफास-परिणता वि सीतफासपरिणता वि उसिणफासपरिणता वि निद्धफासपरिणता वि लुक्खफासपरिणता वि, संठाणओ परिमंडलसंठाणपरिणता वि वट्टसंठाणपरिणता वि तंससंठाणपरिणता वि चउरंससंठाण-परिणता वि आययसंठाणपरिणता वि २३।

[१२-१] जो स्पर्श से कर्कशस्पर्शपरिणत होते है, वे वर्ण से कृष्णवर्ण-परिणत भी होते है, नीलवर्ण-परिणत भी, रक्तवर्ण-परिणत भी, पीतवर्ण-परिणत भी, और शुक्लवर्ण-परिणत भी होते है। गन्ध से (वे) सुगन्धपरिणत भी होते हैं और दुर्गन्धपरिणत भी। रस से—(वे) तिक्तरस-परिणत भी होते है, कटुरस-परिणत भी, काषायरसपरिणत भी, अम्लरस-परिणत भी और मधुररस-परिणत भी होते हैं। स्पर्श (वे) गुरुस्पर्श-परिणत भी होते हैं, लघुस्पर्श-परिणत भी, शीतस्पर्श-परिणत भी और उष्णस्पर्श-परिणत भी, एव स्निग्धस्पर्श-परिणत भी तथा रूक्षस्पर्श-परिणत भी होते है। संस्थान से—(वे) परिमण्डलसंस्थान-परिणत भी होते है, वृत्तसंस्थान-परिणत भी, त्र्यस्रसंस्थान-परिणत भी और चतुरस्रसंस्थान-परिणत भी होते है, तथा आयतसंस्थान-परिणत भी होते है ॥२३॥

[२] जे फासतो मउयफासपरिणता ते वण्णतो कालवण्णपरिणता वि नीलवण्णपरिणता वि लोहियवण्णपरिणता वि हालिद्दवण्णपरिणता वि सुक्किलवण्णपरिणया वि, गंधओ सुब्भिगंधपरिणता वि दुब्भिगंधपरिणता वि, रसओ तित्तरसपरिणता वि कडुयरसपरिणता वि कसायरसपरिणता वि अंबिलरस परिणता वि महुररसपरिणता वि, फासओ गरुयफासपरिणया वि लहुयफासपरिणता वि सीतफासपरिणता वि उसिणफासपरिणता वि निद्धफासपरिणता वि लुक्खफासपरिणता वि, संठाणओ परिमंडलसंठाणपरिणया वि वट्टसंठाणपरिणता वि तंससंठाणपरिणता वि चउरंससंठाण-परिणता वि आययसंठाणपरिणता वि २३।

[१२-२] जो स्पर्श से मृदु (कोमल)-स्पर्श-परिणत होते हैं, वे वर्ण से—कृष्णवर्ण-परिणत भी होते है, नीलवर्ण-परिणत भी, रक्तवर्ण-परिणत भी, पीतवर्ण-परिणत भी एव शुक्लवर्ण-परिणत भी होते हैं। (वे) गन्ध से—सुगन्धपरिणत भी और दुर्गन्धपरिणत भी होते हैं। रस से—(वे) तिक्तरस-परिणत भी होते है, कटुरस-परिणत भी, काषायरस-परिणत भी, अम्लरस-परिणत भी होते है और मधुररस-परिणत भी। स्पर्श से—(वे) गुरुस्पर्श-परिणत भी होते है, लघुस्पर्श-परिणत भी, शीतस्पर्श-परिणत भी, उष्णस्पर्श-परिणत भी, स्निग्धस्पर्श-परिणत भी और रूक्षस्पर्श-परिणत भी होते है। सस्थान से—परिमण्डलसस्थान-परिणत भी होते है, वृत्तसस्थान-परिणत भी, त्र्यस्रसस्थान-परिणत भी और चतुरस्रसस्थान-परिणत भी होते है, तथा आयतसस्थान-परिणत भी ।।२३।।

[३] जे फासतो गरुयफासपरिणता ते वण्णतो कालवण्णपरिणता वि नीलवण्णपरिणता वि लोहियवण्णपरिणता वि हालिद्दवण्णपरिणता वि सुक्किलवण्णपरिणता वि, गधओ सुब्भिगधपरिणता वि दुब्भिगधपरिणता वि, रसओ तित्तरसपरिणता वि कडुयरसपरिणता वि कसायरसपरिणता वि अबिलरसपरिणता वि महुररसपरिणता वि, फासओ कक्खडफासपरिणता वि मउयफासपरिणता वि सीयफासपरिणता वि उसिणफासपरिणता वि निद्धफासपरिणता वि लुक्खफासपरिणता वि, सठाणओ परिमडलसठाणपरिणता वि वट्टसठाणपरिणता वि तससठाणपरिणता वि चउरससठाणपरिणता वि आययसठाणपरिणया वि २३ ।

[१२-३] जो स्पर्श से गुरुस्पर्श-परिणत होते है, वे वर्ण से कृष्णवर्ण-परिणत भी होते है, नीलवर्ण-परिणत भी, रक्तवर्ण-परिणत भी, पीतवर्ण-परिणत भी और शुक्लवर्ण-परिणत भी होते है। गन्ध से—सुगन्धपरिणत भी होते है और दुर्गन्धपरिणत भी। रस से (वे) तिक्तरस-परिणत भी होते हैं, कटुरस-परिणत भी, कषायरस-परिणत भी, अम्लरस-परिणत भी और मधुररस-परिणत भी होते है। स्पर्श से (वे) कर्कशस्पर्श-परिणत भी होते है, मृदुस्पर्श-परिणत भी, शीतस्पर्श-परिणत भी, उष्ण-स्पर्श-परिणत भी, स्निग्धस्पर्श-परिणत भी होते है और रूक्षस्पर्श-परिणत भी। सस्थान की अपेक्षा से—(वे) परिमण्डलसस्थान-परिणत भी होते है, वृत्तसस्थान-परिणत, त्र्यस्रसस्थान-परिणत, तथा चतुरस्रसस्थानपरिणत भी होते हैं और आयतसस्थान-परिणत भी ।।२३।।

[४] जे फासतो लहुयफासपरिणता ते वण्णओ कालवण्णपरिणता वि णीलवण्णपरिणता वि लोहियवण्णपरिणता वि हालिद्दवण्णपरिणता वि सुक्किलवण्णपरिणता वि, गंधओ सुब्भिगधपरिणता वि दुब्भिगधपरिणता वि, रसओ तित्तरसपरिणता वि कडुयरसपरिणता वि कसायरसपरिणता वि अबिल-रसपरिणता वि महुररसपरिणता वि, फासतो कक्खडफासपरिणता वि मउयफासपरिणया वि सीयफास-परिणया वि उसिणफासपरिणया वि णिद्धफासपरिणया वि लुक्खफासपरिणया वि, सठाणतो परिमडल-सठाणपरिणया वि वट्टसठाणपरिणया वि तससठाणपरिणया वि चउरंससठाणपरिणया वि आययसठाण-परिणया वि २३ ।

[१२-४] जो स्पर्श की अपेक्षा से—लघु (हलके) स्पर्श से परिणत होते हैं, वे वर्ण की अपेक्षा से—कृष्णवर्ण-परिणत भी होते हैं, नीलवर्ण-परिणत भी, रक्तवर्ण-परिणत भी, पीतवर्ण-परिणत भी एव शुक्लवर्ण-परिणत भी होते हैं। गन्ध की अपेक्षा से—(वे) सुगन्धपरिणत भी होते हैं और

दुर्गन्ध-परिणत भी। रस की अपेक्षा से—(वे) तिक्तरस-परिणत भी होते हैं, कटुरस-परिणत भी कषायरस-परिणत भी, अम्लरस-परिणत भी और मधुररस-परिणत भी होते हैं। स्पर्श की अपेक्षा से—(वे) कर्कशस्पर्श-परिणत भी होते हैं, मृदुस्पर्श-परिणत भी, शीतस्पर्श-परिणत भी, उष्णस्पर्श-परिणत भी और स्निग्धस्पर्श-परिणत भी होते हैं, तथा रूक्षस्पर्श-परिणत भी। संस्थान की अपेक्षा से—(वे) परिमण्डलसंस्थान-परिणत भी होते हैं, वृत्तसंस्थान-परिणत भी, त्र्यस्रसंस्थान-परिणत भी और चतुरस्र-संस्थान-परिणत भी होते हैं तथा आयतसंस्थान-परिणत भी ॥२३॥

[५] जे फासतो सीयफासपरिणता ते वण्णतो कालवण्णपरिणता वि नीलवण्णपरिणता वि लोहियवण्णपरिणता वि हालिद्दवण्णपरिणता वि सुक्किलवण्णपरिणता वि, गंधतो सुब्भिगंधपरिणता वि दुब्भिगंधपरिणता वि, रसओ तित्तरसपरिणता वि कडुयरसपरिणता वि कसायरसपरिणता वि अंबिलरसपरिणता वि महुररसपरिणता वि, फासतो कक्खडफासपरिणता वि मउयफासपरिणता वि गरुयफासपरिणता वि लहुयफासपरिणता वि निद्धफासपरिणता वि लुक्खफासपरिणता वि, संठाणओ परिमंडलसंठाणपरिणता वि वट्टसंठाणपरिणता वि तंससंठाणपरिणता वि चउरंससंठाणपरिणता वि आयतसंठाणपरिणता वि २३।

[१२-५] जो स्पर्श की अपेक्षा से—शीतस्पर्शपरिणत होते हैं, वे वर्ण की अपेक्षा से—कृष्णवर्ण-परिणत भी होते हैं, नीलवर्ण-परिणत भी, रक्तवर्ण-परिणत भी, पीतवर्ण-परिणत भी और शुक्लवर्ण-परिणत भी होते हैं। गन्ध की अपेक्षा से—(वे) सुगन्धपरिणत भी होते हैं, और दुर्गन्ध-परिणत भी। रस की अपेक्षा से—वे तिक्तरस-परिणत भी होते हैं, कटुरस-परिणत भी, कषायरस-परिणत भी और अम्लरस-परिणत भी तथा मधुररस-परिणत भी होते हैं। स्पर्श की अपेक्षा से—(वे) कर्कशस्पर्श-परिणत भी होते हैं, मृदुस्पर्श-परिणत भी, गुरुस्पर्श-परिणत भी, लघुस्पर्श-परिणत भी, तथा स्निग्धस्पर्श-परिणत भी होते हैं और रूक्षस्पर्श-परिणत भी होते हैं। संस्थान की अपेक्षा से—(वे) परिमण्डलसंस्थान-परिणत भी होते हैं, वृत्तसंस्थान-परिणत भी, त्र्यस्रसंस्थान-परिणत भी और चतुरस्रसंस्थान-परिणत भी तथा आयतसंस्थान-परिणत भी होते हैं ॥२३॥

[६] जे फासतो उसिणफासपरिणता ते वण्णतो कालवण्णपरिणता वि नीलवण्णपरिणता वि लोहियवण्णपरिणता वि हालिद्दवण्णपरिणता वि सुक्किलवण्णपरिणता वि, गंधतो सुब्भिगंधपरिणता वि दुब्भिगंधपरिणता वि, रसतो तित्तरसपरिणया वि कडुयरसपरिणता वि कसायरसपरिणता वि अंबिल-रसपरिणता वि महुररसपरिणता वि, फासतो कक्खडफासपरिणता वि मउयफासपरिणता वि गरुय-फासपरिणता वि लहुयफासपरिणता वि णिद्धफासपरिणता वि लुक्खफासपरिणता वि, संठाणतो परिमंडलसंठाणपरिणता वि वट्टसंठाणपरिणता वि तंससंठाणपरिणता वि चउरंससंठाणपरिणता वि आयतसंठाणपरिणता वि २३।

[१२-६] जो स्पर्श से उष्णस्पर्श-परिणत होते हैं, वे वर्ण की अपेक्षा से—कृष्णवर्ण-परिणत भी होते हैं, नीलवर्ण-परिणत भी, रक्तवर्ण-परिणत भी और पीतवर्ण-परिणत भी, होते हैं, तथा शुक्लवर्ण-परिणत भी। गन्ध की अपेक्षा से—(वे) सुगन्धपरिणत भी होते हैं और दुर्गन्ध-परिणत भी। रस की अपेक्षा से—(वे) तिक्तरस-परिणत भी होते हैं, कटुरस-परिणत भी, कषायरस-परिणत भी

तथा अम्लरस-परिणत भी होते हैं और मधुररस-परिणत भी। स्पर्श की अपेक्षा से—(वे) कर्कश-स्पर्श-परिणत भी होते है, मृदुस्पर्श-परिणत भी, गुरुस्पर्शपरिणत भी और लघुस्पर्श-परिणत भी तथा स्निग्धस्पर्श-परिणत भी होते है और रूक्षस्पर्श-परिणत भी। तथा सस्थान की अपेक्षा से—(वे) परिमण्डलसस्थान-परिणत भी होते है, वृत्तसस्थान-परिणत भी, त्र्यस्रसस्थान-परिणत भी, चतुरस्र-सस्थान-परिणत भी होते है और आयतसस्थान-परिणत भी ।।२३।।

[७] जे फासतो णिद्धफासपरिणता ते वण्णतो कालवण्णपरिणता वि नीलवण्णपरिणता वि लोहियवण्णपरिणता वि हालिद्दवण्णपरिणता वि सुक्किलवण्णपरिणता वि, गंधतो सुब्भिगंधपरिणता वि दुब्भिगंधपरिणता वि, रसतो तित्तरसपरिणता वि कडुयरसपरिणता वि कसायरसपरिणता वि अंबिल-रसपरिणता वि महुररसपरिणता वि, फासतो कक्खडफासपरिणता वि मउयफासपरिणता वि गरुय-फासपरिणता वि लहुयफासपरिणता वि सीतफासपरिणता वि उसिणफासपरिणता वि, सठाणतो परिमडलसठाणपरिणता वि वट्टसठाणपरिणता वि तससठाणपरिणता वि चउरससंठाणपरिणता वि आययसठाणपरिणता वि २३।

[१२-७] जो स्पर्श से स्निग्धस्पर्श-परिणत हैं, वर्ण की अपेक्षा से वे—कृष्णवर्ण-परिणत भी, नीलवर्ण-परिणत भी, रक्तवर्णपरिणत भी, पीतवर्ण-परिणत भी और शुक्लवर्ण-परिणत भी होते हैं। गन्ध की अपेक्षा से—(वे) सुगन्ध-परिणत भी होते है और दुर्गन्ध-परिणत भी। रस की अपेक्षा से—(वे) तिक्तरस-परिणत भी होते हैं, कटुरस-परिणत भी, काषायरस-परिणत भी एव अम्लरस-परिणत भी होते हैं और मधुररस-परिणत भी। स्पर्श की अपेक्षा से—वे कर्कशस्पर्श-परिणत भी होते हैं, मृदुस्पर्श-परिणत भी, गुरुस्पर्श-परिणत भी, लघुस्पर्श-परिणत भी, शीतस्पर्श-परिणत भी और उष्णस्पर्श-परिणत भी होते हैं। सस्थान की अपेक्षा से—(वे) परिमण्डलसस्थान-परिणत भी होते है, वृत्तसंस्थान-परिणत भी, त्र्यस्रसस्थान-परिणत भी, चतुरस्रसस्थान-परिणत भी और आयातसस्थान-परिणत भी होते है ।।२३।।

[८] जे फासतो लुक्खफासपरिणता ते वण्णतो कालवण्णपरिणता वि नीलवण्णपरिणता वि लोहियवण्णपरिणता वि हालिद्दवण्णपरिणता वि सुक्किलवण्णपरिणता वि, गधओ सुब्भिगधपरिणता वि दुब्भिगधपरिणता वि, रसओ तित्तरसपरिणता वि कडुयरसपरिणता वि कसायरसपरिणता वि अंबिल-रसपरिणता वि महुररसपरिणता वि, फासतो कक्खडफासपरिणता वि मउयफासपरिणता वि गरुय-फासपरिणता वि लहुयफासपरिणता वि सीयफासपरिणता वि उसिणफासपरिणता वि, सठाणओ परिमडलसठाणपरिणता वि वट्टसठाणपरिणता वि तससठाणपरिणया वि चउरससठाणपरिणया वि आययसठाणपरिणता वि २३।।१८४।८।।

[१२-८] जो स्पर्श से रूक्षस्पर्शपरिणत होते है, वे वर्ण की अपेक्षा से—कृष्णवर्ण-परिणत भी होते है, नीलवर्ण-परिणत भी, रक्तवर्ण-परिणत भी और पीतवर्ण-परिणत भी होते है तथा शुक्लवर्ण-परिणत भी। गन्ध की अपेक्षा से—(वे) सुगन्धपरिणत भी होते है और दुर्गन्धपरिणत भी। रस की अपेक्षा से—वे तिक्तरस-परिणत भी होते हैं, कटुरस-परिणत भी, कषायरस-परिणत भी, अम्लरस-परिणत भी और मधुरस-परिणत भी होते है। स्पर्श की अपेक्षा से—(वे) कर्कशस्पर्श-परिणत भी होते हैं, मृदुस्पर्श-परिणत भी, गुरुस्पर्श-परिणत भी और लघुस्पर्श-परिणत भी होते हैं तथा शीतस्पर्श-परिणत

भी होते है और उष्णस्पर्शपरिणत भी। सस्थान से—(वे) परिमण्डलसस्थानपरिणत भी होते हैं, वृत्त-सस्थानपरिणत भी, त्र्यस्रसस्थानपरिणत भी होते हैं और चतुरस्रसस्थानपरिणत भी, तथा आयत-सस्थानपरिणत भी होते है ॥२३।१८४।८॥

१३ [१] जे सठाणतो परिमडलसठाणपरिणता ते वण्णतो कालवण्णपरिणता वि नीलवण्ण-परिणता वि लोहियवण्णपरिणता वि हालिद्दवण्णपरिणता वि सुक्किलवण्णपरिणता वि, गंधतो सुब्भिगधपरिणता वि दुब्भिगंधपरिणता वि, रसतो तित्तरसपरिणता वि कडुयरसपरिणता वि कसायरस-परिणता वि अंबिलरसपरिणता वि महुररसपरिणता वि, फासतो कक्खडफासपरिणता वि मउयफास-परिणता वि गरुयफासपरिणता वि लहुयफासपरिणता वि सीयफासपरिणता वि उसिणफासपरिणता वि णिद्धफासपरिणता वि लुक्खफासपरिणता वि २०।

[१३-१] जो सस्थान की अपेक्षा से—परिमण्डलसस्थानपरिणत होते है, वे वर्ण से—कृष्ण-वर्ण-परिणत भी होते हैं नीलवर्ण-परिणत भी होते है, रक्तवर्ण-परिणत भी, पीत-वर्णपरिणत भी और शुक्लवर्ण-परिणत भी होते है। गन्ध की अपेक्षा से— (वे) सुगन्ध-परिणत भी होते है और दुर्गन्ध-परिणत भी। रस की अपेक्षा से—तिक्तरसपरिणत भी होते है, कटुरसपरिणत भी, कषायरसपरिणत भी, अम्लरसपरिणत भी और मधुररसपरिणत भी होते हैं। स्पर्श की अपेक्षा से—(वे) कर्कशस्पर्श-परिणत भी होते हैं, मृदुस्पर्श-परिणत भी, गुरुस्पर्श-परिणत भी, लघुस्पर्श-परिणत भी, शीतस्पर्श-परिणत भी, उष्णस्पर्श-परिणत भी, स्निग्धस्पर्श-परिणत भी और रूक्षस्पर्श-परिणत भी होते है ॥२०॥

[२] जे सठाणओ वट्टसठाणपरिणता ते वण्णओ कालवण्णपरिणता वि नीलवण्णपरिणता वि लोहियवण्णपरिणता वि हालिद्दवण्णपरिणता वि सुक्किलवण्णपरिणता वि, गधतो सुब्भिगंधपरिणता वि दुब्भिगधपरिणता वि, रसओ तित्तरसपरिणता वि कडुयरसपरिणता वि कसायरसपरिणता वि अबिल-रसपरिणता वि महुररसपरिणता वि, फासओ कक्खडफासपरिणता वि मउयफासपरिणता वि गरुय-फासपरिणता वि लहुयफासपरिणता वि सीतफासपरिणता वि उसिणफासपरिणता वि णिद्धफास-परिणता वि लुक्खफासपरिणता वि २०।

[१३-२] जो सस्थान की अपेक्षा से—वृत्तसस्थानपरिणत होते है, वे वर्ण से—कृष्णवर्णपरिणत भी होते है, नीलवर्णपरिणत भी, रक्तवर्णपरिणत भी, पीतवर्णपरिणत भी, और शुक्लवर्ण-परिणत भी। गन्ध की अपेक्षा से—(वे) सुगन्धपरिणत भी होते हैं और दुर्गन्धपरिणत भी। (वे) रस की अपेक्षा से—तिक्तरसपरिणत भी होते है, कटुरसपरिणत भी, कषायरसपरिणत भी, अम्लरस-परिणत भी और मधुररसपरिणत भी होते है। स्पर्श की अपेक्षा से (वे) कर्कश-स्पर्शपरिणत भी होते है, मृदु-स्पर्शपरिणत भी, गुरु-स्पर्शपरिणत भी होते हैं, लघुस्पर्श-परिणत भी, शीतस्पर्शपरिणत भी और उष्णस्पर्श-परिणत भी होते है, तथा स्निग्धस्पर्श-परिणत भी होते है और रूक्षस्पर्श-परिणत भी ॥२०॥

[३] जे सठाणतो तससठाणपरिणता ते वण्णतो कालवण्णपरिणता वि नीलवण्णपरिणता वि लोहियवण्णपरिणता वि हालिद्दवण्णपरिणता वि सुक्किलवण्णपरिणया वि, गधओ सुब्भिगधपरिणता वि दुब्भिगधपरिणता वि, रसओ तित्तरसपरिणता वि कडुयरसपरिणता वि कसायरसपरिणता वि

तथा अम्लरस-परिणत भी होते हैं और मधुररस-परिणत भी । स्पर्श की अपेक्षा से—(वे) कर्कश-स्पर्श-परिणत भी होते है, मृदुस्पर्श-परिणत भी, गुरुस्पर्शपरिणत भी और लघुस्पर्श-परिणत भी तथा स्निग्धस्पर्श-परिणत भी होते हैं और रूक्षस्पर्श-परिणत भी । तथा सस्थान की अपेक्षा से—(वे) परिमण्डलसस्थान-परिणत भी होते है, वृत्तसस्थान-परिणत भी, त्र्यस्रसस्थान-परिणत भी, चतुरस्र-सस्थान-परिणत भी होते है और आयतसस्थान-परिणत भी ॥२३॥

[७] जे फासतो णिद्धफासपरिणता ते वण्णतो कालवण्णपरिणता वि नीलवण्णपरिणता वि लोहियवण्णपरिणता वि हालिद्दवण्णपरिणता वि सुक्किलवण्णपरिणता वि, गधतो सुब्भिगधपरिणता वि दुब्भिगंधपरिणता वि, रसतो तित्तरसपरिणता वि कडुयरसपरिणता वि कसायरसपरिणता वि अबिल-रसपरिणता वि महुररसपरिणता वि, फासतो कक्खडफासपरिणता वि मउयफासपरिणता वि गरुय-फासपरिणता वि लहुयफासपरिणता वि सीतफासपरिणता वि उसिणफासपरिणता वि, सठाणतो परिमडलसठाणपरिणता वि वट्टसठाणपरिणता वि तससठाणपरिणता वि चउरससठाणपरिणता वि आययसंठाणपरिणता वि २३ ।

[१२-७] जो स्पर्श से स्निग्धस्पर्श-परिणत हैं, वर्ण की अपेक्षा से वे—कृष्णवर्ण-परिणत भी, नीलवर्ण-परिणत भी, रक्तवर्णपरिणत भी, पीतवर्ण-परिणत भी और शुक्लवर्ण-परिणत भी होते हैं। गन्ध की अपेक्षा से—(वे) सुगन्ध-परिणत भी होते हैं और दुर्गन्ध-परिणत भी। रस की अपेक्षा से—(वे) तिक्तरस-परिणत भी होते है, कटुरस-परिणत भी, काषायरस-परिणत भी एव अम्लरस-परिणत भी होते हैं और मधुररस-परिणत भी । स्पर्श की अपेक्षा से—वे कर्कशस्पर्श-परिणत भी होते हैं, मृदुस्पर्श-परिणत भी, गुरुस्पर्श-परिणत भी, लघुस्पर्श-परिणत भी, शीतस्पर्श-परिणत भी और उष्णस्पर्श-परिणत भी होते है। सस्थान की अपेक्षा से—(वे) परिमण्डलसस्थान-परिणत भी होते है, वृत्तसस्थान-परिणत भी, त्र्यस्रसस्थान-परिणत भी, चतुरस्रसस्थान-परिणत भी और आयातसस्थान-परिणत भी होते हैं ॥२३॥

[८] जे फासतो लुक्खफासपरिणता ते वण्णतो कालवण्णपरिणता वि नीलवण्णपरिणता वि लोहियवण्णपरिणता वि हालिद्दवण्णपरिणता वि सुक्किलवण्णपरिणता वि, गधओ सुब्भिगधपरिणता वि दुब्भिगधपरिणता वि, रसओ तित्तरसपरिणता वि कडुयरसपरिणता वि कसायरसपरिणता वि अबिल-रसपरिणता वि महुररसपरिणता वि, फासतो कक्खडफासपरिणता वि मउयफासपरिणता वि गरुय-फासपरिणता वि लहुयफासपरिणता वि सीयफासपरिणता वि उसिणफासपरिणता वि, सठाणओ परिमडलसठाणपरिणता वि वट्टसठाणपरिणता वि तससठाणपरिणया वि चउरससठाणपरिणया वि आययसंठाणपरिणता वि २३।१८४।८।।

[१२-८] जो स्पर्श से रूक्षस्पर्शपरिणत होते है, वे वर्ण की अपेक्षा से—कृष्णवर्ण-परिणत भी होते हैं, नीलवर्ण-परिणत भी, रक्तवर्ण-परिणत भी और पीतवर्ण-परिणत भी होते है तथा शुक्लवर्ण-परिणत भी । गन्ध की अपेक्षा से—(वे) सुगन्धपरिणत भी होते हैं और दुर्गन्धपरिणत भी । रस की अपेक्षा से—वे तिक्तरस-परिणत भी होते है, कटुरस-परिणत भी, कषायरस-परिणत भी, अम्लरस-परिणत भी और मधुरस-परिणत भी होते हैं । स्पर्श की अपेक्षा से—(वे) कर्कशस्पर्श-परिणत भी होते हैं, मृदुस्पर्श-परिणत भी, गुरुस्पर्श-परिणत भी और लघुस्पर्श-परिणत भी होते हैं तथा शीतस्पर्श-परिणत

भी होते है और उष्णस्पर्शपरिणत भी। सस्थान से—(वे) परिमण्डलसस्थानपरिणत भी होते हैं, वृत्त-सस्थानपरिणत भी, त्र्यस्रसस्थानपरिणत भी होते है और चतुरस्रसस्थानपरिणत भी, तथा आयत-सस्थानपरिणत भी होते है ।।२३।१८४।८।।

१३ [१] जे सठाणतो परिमडलसठाणपरिणता ते वण्णतो कालवण्णपरिणता वि नीलवण्ण-परिणता वि लोहियवण्णपरिणता वि हालिद्दवण्णपरिणता वि सुक्किलवण्णपरिणता वि, गधतो सुब्भि-गधपरिणता वि दुब्भिगधपरिणता वि, रसतो तित्तरसपरिणता वि कडुयरसपरिणता वि कसायरस-परिणता वि अंबिलरसपरिणता वि महुररसपरिणता वि, फासतो कक्खडफासपरिणता वि मउयफास-परिणता वि गरुयफासपरिणता वि लहुयफासपरिणता वि सीयफासपरिणता वि उसिणफासपरिणता वि णिद्धफासपरिणता वि लुक्खफासपरिणता वि २० ।

[१३-१] जो सस्थान की अपेक्षा से—परिमण्डलसस्थानपरिणत होते है, वे वर्ण से—कृष्ण-वर्ण-परिणत भी होते हैं नीलवर्ण-परिणत भी होते हैं, रक्तवर्ण-परिणत भी, पीत-वर्णपरिणत भी और शुक्लवर्ण-परिणत भी होते है। गन्ध की अपेक्षा से— (वे) सुगन्ध-परिणत भी होते है और दुर्गन्ध-परिणत भी। रस की अपेक्षा से—तिक्तरसपरिणत भी होते हैं, कटुरसपरिणत भी, कषायरसपरिणत भी, अम्लरसपरिणत भी और मधुररसपरिणत भी होते हैं। स्पर्श की अपेक्षा से—(वे) कर्कशस्पर्श-परिणत भी होते हैं, मृदुस्पर्श-परिणत भी, गुरुस्पर्श-परिणत भी, लघुस्पर्श-परिणत भी, शीतस्पर्श-परिणत भी, उष्णस्पर्श-परिणत भी, स्निग्धस्पर्श-परिणत भी और रूक्षस्पर्श-परिणत भी होते है ।।२०।।

[२] जे सठाणओ वट्टसठाणपरिणता ते वण्णओ कालवण्णपरिणता वि नीलवण्णपरिणता वि लोहियवण्णपरिणता वि हालिद्दवण्णपरिणता वि सुक्किलवण्णपरिणता वि, गधतो सुब्भिगंधपरिणता वि दुब्भिगधपरिणता वि, रसओ तित्तरसपरिणता वि कडुयरसपरिणता वि कसायरसपरिणता वि अबिल-रसपरिणता वि महुररसपरिणता वि, फासओ कक्खडफासपरिणता वि मउयफासपरिणता वि गरुय-फासपरिणता वि लहुयफासपरिणता वि सीतफासपरिणता वि उसिणफासपरिणता वि णिद्धफास-परिणता वि लुक्खफासपरिणता वि २० ।

[१३-२] जो सस्थान की अपेक्षा से—वृत्तसस्थानपरिणत होते हैं, वे वर्ण से—कृष्णवर्णपरिणत भी होते है, नीलवर्णपरिणत भी, रक्तवर्णपरिणत भी, पीतवर्णपरिणत भी, और शुक्लवर्ण-परिणत भी। गन्ध की अपेक्षा से—(वे) सुगन्धपरिणत भी होते है और दुर्गन्धपरिणत भी। (वे) रस की अपेक्षा से—तिक्तरसपरिणत भी होते हैं, कटुरसपरिणत भी, कषायरसपरिणत भी, अम्लरस-परिणत भी और मधुररसपरिणत भी होते हैं। स्पर्श की अपेक्षा से (वे) कर्कश-स्पर्शपरिणत भी होते है, मृदु-स्पर्शपरिणत भी, गुरु-स्पर्शपरिणत भी होते हैं, लघुस्पर्श-परिणत भी, शीतस्पर्शपरिणत भी और उष्णस्पर्श-परिणत भी होते है, तथा स्निग्धस्पर्श-परिणत भी होते है और रूक्षस्पर्श-परिणत भी ।।२०।।

[३] जे सठाणतो तससठाणपरिणता ते वण्णतो कालवण्णपरिणता वि नीलवण्णपरिणता वि लोहियवण्णपरिणता वि हालिद्दवण्णपरिणता वि सुक्किलवण्णपरिणया वि, गधओ सुब्भिगधपरिणता वि दुब्भिगधपरिणता वि, रसओ तित्तरसपरिणता वि कडुयरसपरिणता वि कसायरसपरिणता वि

अबिलरसपरिणता वि महुररसपरिणता वि, फासओ कक्खडफासपरिणता वि मउयफासपरिणता वि गरुयफासपरिणता वि लहुयफासपरिणता वि सीयफासपरिणता वि उसिणफासपरिणता वि निद्धफास-परिणता वि लुक्खफासपरिणता वि २० ।

[१३-३] जो सस्थान की अपेक्षा से—त्र्यस्रसस्थान-परिणत है, वे वर्णत —कृष्णवर्णपरिणत हैं, नीलवर्णपरिणत भी, रक्तवर्णपरिणत भी, पीववर्णपरिणत भी और शुक्लवर्णपरिणत भी होते है। गन्धत (वे) सुगन्धपरिणत भी होते है और दुर्गन्धपरिणत भी। रसत (वे) तिक्तरसपरिणत भी होते है, कटुरसपरिणत भी, कषायरसपरिणत भी, अम्लरसपरिणत भी होते है और मधुररसपरिणत भी। स्पर्श की अपेक्षा से—(वे) कर्कशस्पर्शपरिणत भी होते है, मृदुस्पर्शपरिणत भी, गुरुस्पर्शपरिणत भी, लघुस्पर्शपरिणत भी, शीतस्पर्शपरिणत भी और उष्णस्पर्शपरिणत भी तथा स्निग्धस्पर्शपरिणत भी होते है और रूक्षस्पर्शपरिणत भी ॥२०॥

[४] जे सठाणओ चउरससठाणपरिणता ते वण्णतो कालवण्णपरिणता वि नीलवण्णपरिणता वि लोहियवण्णपरिणता वि हालिद्दवण्णपरिणता वि सुक्किलवण्णपरिणता वि, गधओ सुब्भिगध-परिणता वि दुब्भिगधपरिणता वि, रसतो तित्तरसपरिणता वि कडुयरसपरिणता वि कसायरसपरिणता वि अबिलरसपरिणता वि महुररसपरिणता वि, फासतो कक्खडफासपरिणता वि मउयफासपरिणता वि गरुयफासपरिणता वि लहुयफासपरिणता वि सीतफासपरिणता वि उसिणफासपरिणता वि निद्धफास-परिणता वि लुक्खफासपरिणता वि २० ।

[१३-४] जो सस्थान से चतुरस्रसस्थानपरिणत है, वे वर्ण से कृष्णवर्णपरिणत भी होते हैं, नीलवर्णपरिणत भी, रक्तवर्णपरिणत भी, पीतवर्णपरिणत भी और शुक्लवर्णपरिणत भी होते है। गन्ध की अपेक्षा से—(वे) सुगन्धपरिणत भी होते है और दुर्गन्धपरिणत भी। रस की अपेक्षा से—(वे) तिक्तरसपरिणत भी होते है, कटुरसपरिणत भी, कषायरसपरिणत भी, अम्लरसपरिणत भी होते है और मधुररसपरिणत भी। स्पर्श की अपेक्षा से—(वे) कर्कशस्पर्शपरिणत भी होते हैं, मृदुस्पर्शपरिणत भी, गुरुस्पर्शपरिणत भी, लघुस्पर्शपरिणत भी, शीतस्पर्शपरिणत भी, उष्णस्पर्श-परिणत भी और स्निग्धस्पर्श-परिणत भी होते हैं, तथा रूक्षस्पर्शपरिणत भी ॥२०॥

[५] जे सठाणतो आयतसठाणपरिणता ते वण्णतो कालवण्णपरिणता वि नीलवण्णपरिणता वि लोहियवण्णपरिणता वि हालिद्दवण्णपरिणता वि सुक्किलवण्णपरिणता वि, गधतो सुब्भिगधपरिणता वि दुब्भिगधपरिणता वि, रसतो तित्तरसपरिणता वि कडुयरसपरिणता वि कसायरसपरिणता वि अबिलरसपरिणता वि महुररसपरिणता वि, फासतो कक्खडफासपरिणता वि मउयफासपरिणता वि गरुयफासपरिणता वि लहुयफासपरिणता वि सीतफासपरिणता वि उसिणफासपरिणता वि निद्धफास-परिणता वि लुक्खफासपरिणता वि २०।१००।५। से त्त रूविअजीवपण्णवणा। से त्त अजीवपण्णवणा।

[१३-५] जो सस्थान की अपेक्षा से आयतसस्थानपरिणत होते हैं, वे वर्ण से—कृष्णवर्ण-परिणत भी होते हैं, नीलवर्ण-परिणत भी, रक्तवर्ण-परिणत भी, पीतवर्ण-परिणत भी और शुक्लवर्ण-परिणत भी होते है। गन्ध की अपेक्षा से—(वे) सुगन्ध-परिणत भी होते है और दुर्गन्ध-परिणत भी। रस की अपेक्षा से—(वे) तिक्तरसपरिणत भी होते हैं, कटुरस-परिणत भी, कषायरसपरिणत भी,

अम्लरस-परिणत भी और मधुररस-परिणत भी होते हे। स्पर्श की अपेक्षा से—(वे) कर्कश-स्पर्श-परिणत भी होते है, मृदुस्पर्श-परिणत भी, गुरुस्पर्श-परिणत भी, लघुस्पर्श-परिणत भी, शीतस्पर्श-परिणत भी, उष्णस्पर्श-परिणत भी होते है, तथा स्निग्धस्पर्श-परिणत भी और रूक्षस्पर्श-परिणत भी होते है ।।२०।।१००। ५।।

यह हुई वह (पूर्वोक्त) रूपी-अजीव-प्रज्ञापना। इस प्रकार अजीव-प्रज्ञापना का वर्णन भी पूर्ण हुआ।

विवेचन—प्रज्ञापना : दो प्रकार तथा द्विविध अजीव-प्रज्ञापना का निरूपण—प्रस्तुत ग्यारह सूत्रो (सू ३ से १३ तक) मे प्रज्ञापना के जीव-अजीव सम्बन्धी मुख्य दो प्रकार, तत्पश्चात् अजीव-प्रज्ञापना के अरूपी और रूपी के भेद से दो प्रकार और उनके विविध विकल्पो (भगो) का निरूपण किया गया है।

प्रथम प्रज्ञापनापद · प्रश्नकर्ता कौन, उत्तरदाता कौन ? प्रज्ञापनासूत्र के रचयिता श्री श्यामार्य-(श्यामाचार्य) वाचक है, उन्होने प्रारम्भ मे सामान्यरूप से किसी अनाग्रही, मध्यस्थ, बुद्धिमान् एव तत्त्वज्ञानार्थी श्रोता या जिज्ञासु की ओर से स्वय प्रश्न उठाए है और आगे अनेक स्थलो या पदो मे श्री गौतम गणधर द्वारा प्रश्न उठाए है, तथा उत्तर भगवान् महावीर की ओर से प्रस्तुत किये है। यद्यपि साक्षात् गौतम गणधर या कोई मध्यस्थ प्रश्नकर्त्ता तथा भगवान् महावीर जैसे उत्तरदाता यहाँ नही है, किन्तु **'अत्थ भासइ अरहा, सुत्त गथति गणहरा निउण'** (शास्त्रोक्त अर्थ का कथन अर्हन्त करते हैं और गणधर सूत्ररूप मे उसका कुशलतापूर्वक ग्रथन (रचना) करते है।) इस न्याय से परम्परागत शास्त्रप्रतिपादित अर्थ तीर्थकर भगवान् महावीर और गौतमादि गणधरो से ही आयात है, इसलिए तथा सारा शास्त्रीयज्ञान तीर्थंकरो और गणधरो का है, मै तो उसकी केवल सकलना करने वाला हूँ, इस प्रकार अपनी नम्रता प्रदर्शित करने के लिए, तीर्थंकर भगवान् द्वारा उपदिष्ट तत्त्वो की प्रश्नोत्तर-रूप मे प्ररूपणा करना युक्तियुक्त ही है। यह शास्त्र कहाँ से उद्धृत किया गया है ? इसमे प्रतिपादित अर्थ किन-किन के द्वारा वर्णित है ? यह दूसरी, तीसरी मगलाचरणगाथा मे स्पष्ट कह दिया है।

प्रज्ञापना का प्रकारात्मक स्वरूप—प्रज्ञापना क्या है ? यह प्रश्न या इस प्रकार के शास्त्रीय-शैली के प्रश्नो का फलितार्थ यह है कि प्रज्ञापना या अन्य विवक्षित तत्त्वो का प्रकारात्मक स्वरूप क्या है ? प्रज्ञापना का व्युत्पत्ति के अनुसार अर्थ या स्वरूप तो पहले प्रतिपादित किया जा चुका है। वास्तव मे जीव और अजीव से सम्बन्धित समस्त पदार्थो या तत्त्वो को शिष्य या तत्त्वजिज्ञासु की बुद्धि मे स्थापित कर देना ही प्रज्ञापना का अर्थ या स्वरूप है।[1]

जीवप्रज्ञापना और अजीवप्रज्ञापना—समस्त चेतनाशील एव उपयोग वाले जीव कहलाते है, जिनमे चेतना नही होती, उपयोग नही होता, वे सब अजीव कहलाते हैं। जीवो की प्रज्ञापना मे इन्द्रियो तथा विभिन्न गतियो एव योनियो की दृष्टि से जीवो का वर्गीकरण करके उनके

---

१ (क) **'मध्यस्थो बुद्धिमानर्थी, श्रोता पात्रमिति स्मृत ।'**

(ख) प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक ७

(ग) **'प्रकर्षेण यथावस्थितस्वरूपनिरूपणलक्षणेन ज्ञाप्यन्ते-शिष्यबुद्धावारोप्यन्ते जीवाजीवादय पदार्था अनयेति प्रज्ञापना।'** —प्रज्ञापना म वृत्ति, प १

भेद-प्रभेद प्रस्तुत किये गए है तथा अजीवप्रज्ञापना मे अरूपी और रूपी अजीवो के भेद-प्रभेदो का वर्गीकरण तथा विविध वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श एव सस्थान के एक दूसरे के साथ सम्बन्धित होने से होने वाले विकल्प (भग) भी प्रस्तुत किये गए है। वैसे देखा जाए तो जीव और अजीव इन दोनो के निमित्त से होने वाले विभिन्न तत्त्वो या पदार्थो का ही विश्लेपण समग्र प्रज्ञापनासूत्र मे है। **जीवप्रज्ञापना और अजीवप्रज्ञापना** ये दो ही प्रस्तुत शास्त्र के समस्त पदो (अध्ययनो) की मूल आधारभूमि हैं।[1]

रूपी अजीव की परिभाषा—जिनमे रूप हो, वे रूपी कहलाते है। यहाँ रूप के ग्रहण से, उपलक्षण से शेष रस, गन्ध, स्पर्श और सस्थान का भी ग्रहण कर लेना चाहिए, क्योकि रस-गन्धादि के बिना अकेले रूप का अस्तित्व सम्भव नही है। प्रत्येक परमाणु रूप, रस, गन्ध और स्पर्श वाला होता है। केवल परमाणु को ही लीजिए, वह भी कारण ही है, कार्य नही तथा वह अन्तिम, सूक्ष्म, और द्रव्य रूप से नित्य तथा पर्यायरूप से अनित्य तथा उसमे एक रस, एक गन्ध, एक वर्ण और दो स्पर्श होते हैं। वह साव्यवहारिक प्रत्यक्ष से ज्ञात नही होता, केवल स्कन्धरूप कार्य से उसका अनुमान होता है। अथवा रूप का अर्थ है—स्पर्श, रूप आदिमय मूर्ति, वह जिनमे हो, वे मूर्तिक या रूपी कहलाते है। ससार मे जितनी भी रूपादिमान् अजीव वस्तुएँ है, वे सब रूपी अजीव मे परिगणित हैं।

अरूपी अजीव की परिभाषा—जिनमे वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श आदि न हो, वे सब अचेतन पदार्थ अरूपी अजीव कहलाते है। अरूपी अजीव के मुख्य दस भेद होने से उसकी प्रज्ञापना—प्ररूपणा भी दस प्रकार की कही गई है। धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय इन तीनो के स्कन्ध, देश और प्रदेश तथा अद्धाकाल, यो कुल १० भेद होते हैं।[2]

धर्मास्तिकाय आदि की परिभाषा—धर्मास्तिकाय—स्वय गतिपरिणाम मे परिणत जीवो और पुद्गलो की गति मे जो निमित्त कारण हो, जीवो-पुद्गलो के गतिरूपस्वभाव का जो धारण-पोषण करता हो, वह धर्म कहलाता है। अस्ति का अर्थ यहाँ प्रदेश है, उन (अस्तियो) का काय अर्थात् सघात (प्रदेशो का समूह) अस्तिकाय है। धर्मरूप अस्तिकाय **धर्मास्तिकाय** कहलाता है। धर्मास्तिकाय कहने से असख्यातप्रदेशी धर्मास्तिकाय रूप अवयवी द्रव्य का बोध होता है। अवयवी अवयवो के तथारूप-सघातपरिणाम विशेषरूप होता है, किन्तु अवयवो से पृथक् अर्थान्तर द्रव्य नही होता। **धर्मास्तिकाय का देश**—उसी धर्मास्तिकाय का बुद्धि द्वारा कल्पित दो, तीन आदि प्रदेशात्मक विभाग। **धर्मास्तिकाय का प्रदेश**—धर्मास्तिकाय का बुद्धिकल्पित प्रकृष्ट देश, प्रदेश—जिसका फिर विभाग न हो सके, ऐसा निर्विभाग विभाग।

अधर्मास्तिकाय—धर्मास्तिकाय का प्रतिपक्षभूत अधर्मास्तिकाय है। अर्थात्—स्थितिपरिणाम मे परिणत जीवो और पुद्गलो की स्थित मे जो सहायक हो, ऐसा अमूर्त्त, असख्यातप्रदेशसघातात्मक द्रव्य **अधर्मास्तिकाय** है। **अधर्मास्तिकाय का देश, प्रदेश**—अधर्मास्तिकाय का बुद्धिकल्पित द्विप्रदेशात्मक आदि खण्ड अधर्मास्तिकायदेश, एव उसका सबसे सूक्ष्म विभाग, जिसका फिर दूसरा विभाग न हो सके वह अधर्मास्तिकाय-प्रदेश है। धर्मास्तिकाय एव अधर्मास्तिकाय के प्रदेश असख्यात हैं, लोकाकाश के प्रदेशो के बराबर है।

---

१ पण्णवणासुत्त (मूलपाठ) भा १, पृ १२ से ४५ तक

२ प्रज्ञापनासूत्र, मलय वृत्ति, पत्राक ८

आकाशास्तिकाय—जिसमे अवस्थित पदार्थ (आ=मर्यादा से) अपने स्वभाव का परित्याग किये बिना (प्र)काशित स्वरूप से प्रतिभासित होते है, वह आकाश है, अथवा जो सब पदार्थो मे अभिव्याप्त होकर प्रकाशित होता (रहता) है, वह आकाश है। अस्तिकाय का अर्थ—प्रदेशो का सघात है। आकाशरूप अस्तिकाय को आकाशास्तिकाय कहते है। आकाशास्तिकाय के देश और प्रदेश का अर्थ पूर्ववत् है। यद्यपि लोकाकाश असख्यातप्रदेशात्मक है, किन्तु अलोकाकाश अनन्त है, इस दृष्टि से आकाशास्तिकाय के प्रदेश अनन्त है।

अद्धासमय—अद्धा कहते है—काल को। अद्धारूप समय अद्धासमय है। अथवा अद्धा (काल) का समय अर्थात् निर्विभाग भाग (अश) 'अद्धासमय' कहलाता है। परमार्थ दृष्टि से वर्त्तमान काल का एक ही समय 'सत्' होता है, अतीत और अनागत काल के समय नही, क्योकि अतीतकाल के समय नष्ट हो चुके है और अनागतकाल के समय अभी उत्पन्न ही नही हुए। अतएव काल मे देश-प्रदेशो के सघात की कल्पना नही हो सकती। असख्यात समयो के समूहरूप आवलिका आदि की कल्पना केवल व्यवहार के लिए की गई है।

स्कन्ध आदि की व्याख्या—स्कन्ध—व्युत्पत्ति के अनुसार स्कन्ध का अर्थ होता है—जो पुद्गल अन्य पुद्गलो के मिलने से पुष्ट होते है—बढ जाते हैं, तथा विघटन हो जाने—हट जाने या पृथक् हो जाने से घट जाते हैं, वे स्कन्ध है। 'स्कन्ध' शब्द मे बहुवचन का प्रयोग पुद्गल-स्कन्धो की अनन्तता बताने के लिए है, क्योकि आगमो मे स्कन्ध अनन्त बताए गए है। **स्कन्धदेश**—स्कन्धरूप परिणाम को नही त्यागने वाले स्कन्धो के ही बुद्धिकल्पित द्विप्रदेशी आदि (द्विप्रदेश से लेकर अनन्तप्रदेश तक) विभाग स्कन्धदेश कहलाते है। यहाँ भी स्कन्धदेश के लिए बहुवचनान्त प्रयोग तथाविध अनन्तानन्त-प्रदेशी स्कन्धो मे, अनन्त स्कन्धदेश भी हो सकते है, इसे सूचित करने हेतु है।

स्कन्ध-प्रदेश—स्कन्धो के बुद्धिकल्पित प्रकृष्ट देश को अर्थात्—स्कन्ध मे मिले हुए निर्विभाग अश (परमाणु) को स्कन्धप्रदेश कहते है। **परमाणु-पुद्गल**—निर्विभागद्रव्य (जिनके विभाग न हो सकें, ऐसे पुद्गलद्रव्य) रूप परम अणु, परमाणु-पुद्गल कहलाते है। परमाणु स्कन्ध मे मिले हुए नही होते, वे स्वतन्त्र पुद्गल होते हैं।[१]

वर्णादिपरिणत स्कन्धादि चार—स्कन्ध, देश, प्रदेश और परमाणुपुद्गल ये चारो रूपी-अजीव संक्षेपत प्रत्येक पाच-पाच प्रकार के कहे गए है। यथा—जो वर्णरूप मे परिणत हो वे वर्णपरिणत कहलाते हैं। इसी प्रकार गन्धपरिणत, रसपरिणत, स्पर्शपरिणत और सस्थानपरिणत भी समझ लेना चाहिए। 'परिणत' शब्द अतीतकाल का निर्देशक होते हुए भी उपलक्षण से वर्तमान और भविष्यत्काल का भी सूचक है, क्योकि वर्तमान और अनागत के बिना अतीतत्व सम्भव नही है। जो वर्तमानत्व का अतिक्रमण कर जाता है, वही अतीत होता है, और वर्तमानत्व का वही अनुभव करता है, जो अभी अनागत भी है—जो अभी वर्तमानत्व को प्राप्त है, वही अतीत होता है, और जो वर्तमानत्व को प्राप्त करेगा, वही अनागत है। इस दृष्टि से वर्णपरिणत का अर्थ है—वर्णरूप मे जो परिणत हो चुके हैं, परिणत होते है, और परिणत होगे। इसी प्रकार गन्धपरिणत आदि का त्रिकालसूचक अर्थ समझ लेना चाहिए।

वर्णपरिणत आदि पुद्गलो के भेद तथा उनकी व्याख्या—वर्णपरिणत के ५ प्रकार—वर्णरूप मे परिणत, जो पुद्गल हैं, वे ५ प्रकार के हैं—(१) कोई काजल आदि के समान काले होते है, वे

१ प्रज्ञापनासूत्र, मलय वृत्ति, पत्राक ८-९-१०

कृष्णवर्णपरिणत, (२) कोई नील या मोर की गर्दन आदि के समान नीले रग के होते ह, वे नीलवर्ण-परिणत, (३) कोई हीगलू आदि के समान लाल रग के होते है, वे लोहित (रक्त) वर्णपरिणत, (४) कोई हलदी आदि के समान पीले रग के होते हे, वे हारिद्र (पीत) वर्ण-परिणत, (५) शख आदि के समान कोई पुद्गल श्वेत रग के होते है, वे शुक्लवर्णपरिणत है।

गन्धपरिणत के दो प्रकार—कोई पुद्गल चन्दनादि अनुकूल सामग्री मिलने से सुगन्ध वाले हो जाते है, वे सुगन्धपरिणत और कोई लहसुन आदि के समान सामग्री मिलने से दुर्गन्ध वाले हो जाते हैं, वे दुर्गन्धपरिणत हो जाते है।

रसपरिणत पुद्गलो के पाच प्रकार—(१) कोई मिर्च आदि के समान तिक्त (तीखे या चटपटे) रस वाले होते हैं, (२) कोई नीम, चिरायता आदि के समान कटुरस वाले होते है, (३) कोई हरड आदि के समान कसैले (कषाय) रस वाले होते हैं, (४) कोई इमली आदि के समान खट्टे (अम्ल) रस वाले होते है और (५) कोई शक्कर आदि के समान मधुर (मीठे) रस वाले होते है।

स्पर्शपरिणत पुद्गलो के आठ प्रकार—(१) कोई पाषाण आदि के समान कठोरस्पर्श वाले, (२) कोई आक की रुई या रेशम के समान कोमल स्पर्श वाले, (३) कोई वज्र या लोह आदि के समान भारी (गुरु स्पर्श वाले) होते है, तो (४) कोई पुद्गल सेमल की रुई आदि के समान हलके (लघुस्पर्श वाले) होते है। (५) कोई मृणाल, कदलीवृक्ष आदि के समान ठण्डे (शीतस्पर्श वाले) होते है, तो कोई (६) अग्नि आदि के समान गर्म (उष्णस्पर्श वाले) होते है। (७) कोई घी आदि के समान चिकने (स्निग्धस्पर्श वाले) होते है तो (८) कोई राख आदि के समान रूखे (रूक्षस्पर्श वाले) होते है।

सस्थानपरिणत के पांच प्रकार—(१) कोई पुद्गल वलय (कडा-चूडी) आदि के समान परि-मण्डलसस्थान (आकार) के होते हैं, जैसे—○। (२) कोई चाक, थाली आदि के समान वृत्त (गोल) सस्थान वाले होते है, यथा कोई सिघाडे के समान तिकोने (त्र्यस्र) आकार के होते है, यथा—△। (४) कोई कुम्भिका आदि के समान चौकोर आकार के (चतुरस्रसस्थान के) होते हैं, यथा—□। और कोई पुद्गल दण्ड आदि के समान आयत सस्थान के होते है, यथा—▭।

वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और सस्थानो के पारस्परिक सम्बन्ध से समुत्पन्न भगजाल—अब शास्त्रकार पूर्वोक्त वर्णादि से युक्त स्कन्धादिचतुष्टय के पारस्परिक सम्बन्ध से उत्पन्न होने वाले भग-जाल की प्ररूपणा करते है। अर्थात्—प्रत्येक वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और सस्थान से परिणत स्कन्धादि पुद्गलो के साथ जब अन्य वर्ण गन्ध, रस, स्पर्श और सस्थानो की अपेक्षा से यथायोग्य सम्बन्ध होता है तब जो भग (विकल्प) होते हैं, उन्ही का निरूपण यहाँ किया गया है।

(१) जो पाच वर्णो मे से किसी भी एक वर्ण के रूप मे परिणत है, वे ही यदि दो गन्ध, पाच रस, आठ स्पर्श एव पाच सस्थानो मे से किसी एक के स्वरूप मे परिणत हो तो पाचो वर्णों के २०+२०+२०+२०+२०=१०० भग हो जाते है।

(२) दो गन्धो मे प्रत्येक के रूप मे परिणत पुद्गल, यदि पाच वर्ण, पाच रस, आठ स्पर्श और पाच सस्थानो की अपेक्षा से परिणत हो तो उन दोनो गन्धो के २३+२३=४६ भग हो जाते हैं।

(३) पाच रसो मे से प्रत्येक के रूप मे परिणत पुद्गल, यदि पाच वर्ण, दो गन्ध, आठ स्पर्श और पाच सस्थानो के रूप से परिणत हो तो उन पाचो के २०+२०+२०+२०+२०= १०० भग हो जाते है।

(४) आठ स्पर्शों मे से प्रत्येक के रूप मे परिणत पुद्गल यदि पाच वर्ण, दो गन्ध, पाच रस, छह स्पर्श (प्रतिपक्षी और स्व स्पर्श को छोडकर) तथा पाच सस्थानो के रूप से परिणत हो, तो उनके २३+२३+२३+२३+२३+२३+२३+२३=१८४ भग हो जाते हैं।

(५) पाच सस्थानो मे से प्रत्येक के रूप मे परिणत पुद्गल, यदि पाच वर्ण, दो गन्ध, पाच रस तथा आठ स्पर्शो के रूप से परिणत हो तो उनके २०+२०+२०+२०+२०=१०० भग होते है। इस प्रकार वर्णादि पाचो के पारस्परिक सम्बन्ध की अपेक्षा से १००+४६+१००+१८४ +१००=कुल ५३० भग (विकल्प) निष्पन्न होते है।

इसे स्पष्टरूप से समझने के लिए एक उदाहरण लीजिए—मान लो, कुछ स्कन्धरूप पुद्गल काले वर्ण वाले है, यानी कृष्णवर्ण के रूप मे परिणत है, उनमे से गन्ध की अपेक्षा से कोई सुगन्धवाले होते है, कोई दुर्गन्ध वाले भी होते है। रस की अपेक्षा से—वे तिक्त रस वाले भी हो सकते है, कटुरस वाले भी, कषायरस वाले भी, अम्लरस वाले भी और मधुररस वाले भी—होने सभव है। स्पर्श की दृष्टि से सोचें तो वे कर्कश आदि आठो ही स्पर्शो मे से कोई न कोई किसी न किसी स्पर्श के हो सकते हैं। सस्थान की अपेक्षा से विचार किया जाए तो वे कृष्णवर्ण-परिणत पुद्गल परिमण्डल भी होते है, वृत्त भी, त्रिकोण भी, चतुष्कोण भी और आयत आकार के भी होते है। इस प्रकार एक कृष्णवर्णीय पुद्गल के साथ प्रत्येक गन्ध, रस, स्पर्श और सस्थान की अपेक्षा से २० भग हो जाते है। इसी तरह पूर्वोक्त सभी भगो का विचार कर लेना चाहिए।

विकल्पो की संख्या स्थूल दृष्टि से, सूक्ष्मदृष्टि से नही—यद्यपि बादरस्कन्धो मे पाचो वर्ण, दोनो गन्ध, पाचो रस पाए जाते हैं, अतएव अधिकृत वर्ण आदि के सिवाय शेष वर्ण आदि से भी भग (विकल्प) हो सकते है, तथापि उन्ही बादर स्कन्धो मे जो व्यावहारिक दृष्टि से केवल कृष्णवर्णादि से युक्त बीच के स्कन्ध है, जैसे—देहस्कन्ध मे ही एक नेत्रस्कन्ध काला है, तदन्तर्गत ही कोई लाल है, दूसरा अन्तर्गत ही शुक्ल है, उन्ही की यहाँ विवक्षा की गई है। उनमे दूसरे वर्णादि सभव नही है। स्पर्श की प्ररूपणा मे, प्रतिपक्षी स्पर्श को छोडकर किसी एक स्पर्श के साथ अन्य स्पर्श भी देखे जाते है। अतएव यहा जो भगो की सख्या बताई गई है, वह युक्तियुक्त है। किन्तु यह विकल्पसख्या स्थूलदृष्टि से ही समझनी चाहिए। सूक्ष्मदृष्टि से देखा जाए तो तरतमता की अपेक्षा से इनमे से प्रत्येक के अनन्त-अनन्त भेद होने के कारण अनन्त विकल्प हो सकते है।

वर्णादि परिणामो का अवस्थान जघन्य एक समय और उत्कृष्ट असख्यातकाल तक रहता है।[1]

जीवप्रज्ञापना : स्वरूप और प्रकार—

१४. से किं तं जीवपण्णवणा ?

जीवपण्णवणा दुविहा पण्णत्ता। त जहा—ससारसमावण्णजीवपण्णवणा य १ असंसारसमावण्णजीवपण्णवणा य २।

१ प्रज्ञापना मलय वृत्ति, पत्राक १०, १७-१८

कृष्णवर्णपरिणत, (२) कोई नील या मोर की गर्दन आदि के समान नीले रंग के होते है, वे नीलवर्ण-परिणत, (३) कोई हीगलू आदि के समान लाल रंग के होते है, वे लोहित (रक्त) वर्णपरिणत, (४) कोई हलदी आदि के समान पीले रंग के होते है, वे हारिद्र (पीत) वर्ण-परिणत, (५) शंख आदि के समान कोई पुद्गल श्वेत रंग के होते है, वे शुक्लवर्णपरिणत है ।

गन्धपरिणत के दो प्रकार—कोई पुद्गल चन्दनादि अनुकूल सामग्री मिलने से सुगन्ध वाले हो जाते हैं, वे सुगन्धपरिणत और कोई लहसुन आदि के समान सामग्री मिलने से दुर्गन्ध वाले हो जाते है, वे दुर्गन्धपरिणत हो जाते है ।

रसपरिणत पुद्गलो के पाच प्रकार—(१) कोई मिर्च आदि के समान तिक्त (तीखे या चटपटे) रस वाले होते है, (२) कोई नीम, चिरायता आदि के समान कटुरस वाले होते है, (३) कोई हरड आदि के समान कसैले (कषाय) रस वाले होते हैं, (४) कोई इमली आदि के समान खट्टे (अम्ल) रस वाले होते है और (५) कोई शक्कर आदि के समान मधुर (मीठे) रस वाले होते है ।

स्पर्शपरिणत पुद्गलो के आठ प्रकार—(१) कोई पाषाण आदि के समान कठोरस्पर्श वाले, (२) कोई आक की रुई या रेशम के समान कोमल स्पर्श वाले, (३) कोई वज्र या लोह आदि के समान भारी (गुरु स्पर्श वाले) होते है, तो (४) कोई पुद्गल सेमल की रुई आदि के समान हलके (लघुस्पर्श वाले) होते है । (५) कोई मृणाल, कदलीवृक्ष आदि के समान ठण्डे (शीतस्पर्श वाले) होते है, तो कोई (६) अग्नि आदि के समान गर्म (उष्णस्पर्श वाले) होते है । (७) कोई घी आदि के समान चिकने (स्निग्धस्पर्श वाले) होते है तो (८) कोई राख आदि के समान रूखे (रूक्षस्पर्श वाले) होते है ।

संस्थानपरिणत के पाच प्रकार—(१) कोई पुद्गल वलय (कडा-चूडी) आदि के समान परिमण्डलसस्थान (आकार) के होते है, जैसे—○ । (२) कोई चाक, थाली आदि के समान वृत्त (गोल) सस्थान वाले होते हैं, यथा कोई सिंघाडे के समान तिकोने (त्र्यस्र) आकार के होते है, यथा—△ । (४) कोई कुम्भिका आदि के समान चौकोर आकार के (चतुरस्रसस्थान के) होते है, यथा—□ । और कोई पुद्गल दण्ड आदि के समान आयत सस्थान के होते है, यथा—▭ ।

वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और सस्थानो के पारस्परिक सम्बन्ध से समुत्पन्न भगजाल—अब शास्त्रकार पूर्वोक्त वर्णादि से युक्त स्कन्धादिचतुष्टय के पारस्परिक सम्बन्ध से उत्पन्न होने वाले भग-जाल की प्ररूपणा करते हैं । अर्थात्—प्रत्येक वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और सस्थान से परिणत स्कन्धादि पुद्गलो के साथ जब अन्य वर्ण गन्ध, रस, स्पर्श और सस्थानो की अपेक्षा से यथायोग्य सम्बन्ध होता है तब जो भग (विकल्प) होते हैं, उन्ही का निरूपण यहाँ किया गया है ।

(१) जो पाच वर्णों मे से किसी भी एक वर्ण के रूप मे परिणत है, वे ही यदि दो गन्ध, पाच रस, आठ स्पर्श एव पाच सस्थानो मे से किसी एक के स्वरूप मे परिणत हो तो पाचो वर्णों के २०+२०+२०+२०+२०=१०० भग हो जाते है ।

(२) दो गन्धो मे प्रत्येक के रूप मे परिणत पुद्गल, यदि पाच वर्ण, पाच रस, आठ स्पर्श और पाच सस्थानो की अपेक्षा से परिणत हो तो उन दोनो गन्धो के २३+२३=४६ भग हो जाते है ।

(३) पाच रसो मे से प्रत्येक के रूप मे परिणत पुद्गल, यदि पाच वर्ण, दो गन्ध, आठ स्पर्श और पाच सस्थानो के रूप से परिणत हो तो उन पाचो के २०+२०+२०+२०+२०=१०० भग हो जाते है।

(४) आठ स्पर्शो मे से प्रत्येक के रूप मे परिणत पुद्गल यदि पाच वर्ण, दो गन्ध, पाच रस, छह स्पर्श (प्रतिपक्षी और स्व स्पर्श को छोडकर) तथा पाच सस्थानो के रूप से परिणत हो, तो उनके २३+२३+२३+२३+२३+२३+२३+२३=१८४ भग हो जाते हैं।

(५) पाच सस्थानो मे से प्रत्येक के रूप मे परिणत पुद्गल, यदि पाच वर्ण, दो गन्ध, पाच रस तथा आठ स्पर्शो के रूप से परिणत हो तो उनके २०+२०+२०+२०+२०=१०० भग होते हैं। इस प्रकार वर्णादि पाचो के पारस्परिक सम्बन्ध की अपेक्षा से १००+४६+१००+१८४+१००=कुल ५३० भग (विकल्प) निष्पन्न होते है।

इसे स्पष्टरूप से समझने के लिए एक उदाहरण लीजिए—मान लो, कुछ स्कन्धरूप पुद्गल काले वर्ण वाले है, यानी कृष्णवर्ण के रूप मे परिणत है, उनमे से गन्ध की अपेक्षा से कोई सुगन्धवाले होते है, कोई दुर्गन्ध वाले भी होते है। रस की अपेक्षा से—वे तिक्त रस वाले भी हो सकते है, कटुरस वाले भी, कषायरस वाले भी, अम्लरस वाले भी और मधुररस वाले भी—होने सभव है। स्पर्श की दृष्टि से सोचे तो वे कर्कश आदि आठो ही स्पर्शो मे से कोई न कोई किसी न किसी स्पर्श के हो सकते है। सस्थान की अपेक्षा से विचार किया जाए तो वे कृष्णवर्ण-परिणत पुद्गल परिमण्डल भी होते है, वृत्त भी, त्रिकोण भी, चतुष्कोण भी और आयत आकार के भी होते है। इस प्रकार एक कृष्णवर्णीय पुद्गल के साथ प्रत्येक गन्ध, रस, स्पर्श और सस्थान की अपेक्षा से २० भग हो जाते है। इसी तरह पूर्वोक्त सभी भगो का विचार कर लेना चाहिए।

विकल्पो की सख्या स्थूल दृष्टि से, सूक्ष्मदृष्टि से नहीं—यद्यपि बादरस्कन्धो मे पाचो वर्ण, दोनो गन्ध, पाचो रस पाए जाते है, अतएव अधिकृत वर्ण आदि के सिवाय शेष वर्ण आदि से भी भग (विकल्प) हो सकते है, तथापि उन्ही बादर स्कन्धो मे जो व्यावहारिक दृष्टि से केवल कृष्णवर्णादि से युक्त बीच के स्कन्ध है, जैसे—देहस्कन्ध मे ही एक नेत्रस्कन्ध काला है, तदन्तर्गत ही कोई लाल है, दूसरा अन्तर्गत ही शुक्ल है, उन्ही की यहाँ विवक्षा की गई है। उनमे दूसरे वर्णादि सभव नही है। स्पर्श की प्ररूपणा मे, प्रतिपक्षी स्पर्श को छोडकर किसी एक स्पर्श के साथ अन्य स्पर्श भी देखे जाते है। अतएव यहा जो भगो की सख्या बताई गई है, वह युक्तियुक्त है। किन्तु यह विकल्पसख्या स्थूलदृष्टि से ही समझनी चाहिए। सूक्ष्मदृष्टि से देखा जाए तो तरतमता की अपेक्षा से इनमे से प्रत्येक के अनन्त-अनन्त भेद होने के कारण अनन्त विकल्प हो सकते हैं।

वर्णादि परिणामो का अवस्थान जघन्य एक समय और उत्कृष्ट असख्यातकाल तक रहता है।[1]

जीवप्रज्ञापना : स्वरूप और प्रकार—

१४. से किं तं जीवपण्णवणा ?

जीवपण्णवणा दुविहा पण्णत्ता। त जहा—ससारसमावण्णजीवपण्णवणा य १ असंसारसमावण्णजीवपण्णवणा य २।

---

१ प्रज्ञापना मलय वृत्ति, पत्राक १०, १७-१८

[१४ प्र] वह (पूर्वोक्त) जीवप्रज्ञापना क्या है ?

[१४ उ] जीवप्रज्ञापना दो प्रकार की कही गई है। वह इस प्रकार—(१) ससार-समापन्न (ससारी) जीवो की प्रज्ञापना और (२) असंसार-समापन्न (मुक्त) जीवो की प्रज्ञापना।

विवेचन—जीवप्रज्ञापना : स्वरूप और प्रकार—प्रस्तुत सूत्र १४ से जीवो की प्रज्ञापना प्रारम्भ होती है, जो सू १४७ मे पूर्ण होती है। इस सूत्र मे जीव-प्रज्ञापना का उपक्रम और उसके दो प्रकार बताए गए हैं।

जीव की परिभाषा—जो जीते है, प्राणो को धारण करते हैं, वे जीव कहलाते है। प्राण दो प्रकार के है—द्रव्यप्राण और भावप्राण। द्रव्यप्राण १० है—पाच इन्द्रिया, तीन बल—मन-वचन-काय, श्वासोच्छ्वास और आयुष्यबल प्राण। भावप्राण चार है—ज्ञान, दर्शन, सुख और वीर्य। ससार-समापन्न समस्त जीव यथायोग्य भावप्राणो से तथा द्रव्यप्राणो से युक्त होते है। जो असंसारसमापन्न—सिद्ध होते है, वे केवल भावप्राणो से युक्त है।[1]

ससारसमापन्न और असंसारसमापन्न की व्याख्या—स सार का अर्थ है स सार-परिभ्रमण, जो कि नारक-तिर्यञ्च-मनुष्य-देवभवानुभवरूप है, उक्त ससार को जो प्राप्त हैं, वे जीव ससारसमापन्न हैं, अर्थात्—ससारवर्ती जीव है। जो ससार-भवभ्रमण से रहित है, वे जीव असंसारसमापन्न है।[2]

असंसारसमापन्न-जीवप्रज्ञापना : स्वरूप और भेद-प्रभेद—

१५ से किं त असंसारसमावण्णजीवपण्णवणा ?

असंसारसमावण्णजीवपण्णवणा दुविहा पण्णत्ता। त जहा—अणतरसिद्धअसंसारसमावण्णजीव-पण्णवणा य १ परपरसिद्धअसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा य २ ?

[१५ प्र] वह (पूर्वोक्त) असंसारसमापन्नजीव-प्रज्ञापना क्या है ?

[१५ उ] असंसारसमापन्नजीव-प्रज्ञापना दो प्रकार की कही गई है। वह इस प्रकार—१—अनन्तरसिद्ध-असंसार-समापन्नजीव-प्रज्ञापना और २-परम्परासिद्ध-असंसार-समापन्नजीव-प्रज्ञापना।

१६ से किं त अणंतरसिद्धअसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा ?

अणतरसिद्धअसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा पन्नरसविहा पन्नत्ता। त जहा—तित्थसिद्धा १ अतित्थसिद्धा २ तित्थगरसिद्धा ३ अतित्थगरसिद्धा ४ सयबुद्धसिद्धा ५ पत्तेयबुद्धसिद्धा ६ बुद्धबोहिय-सिद्धा ७ इत्थीलिंगसिद्धा ८ पुरिसलिंगसिद्धा ९ नपु सकलिंगसिद्धा १० सलिंगसिद्धा ११ अण्णलिंगसिद्धा १२ गिहिलिंगसिद्धा १३ एगसिद्धा १४ अणेगसिद्धा १५। से त्त अणंतरसिद्धअसंसारसमावण्णजीव-पण्णवणा।

[१६ प्र] वह अनन्तरसिद्ध-असंसारसमापन्नजीव-प्रज्ञापना क्या है ?

[१६ उ] अनन्तर-सिद्ध-असंसारसमापन्नजीव-प्रज्ञापना पन्द्रह प्रकार की कही गई है। वह इस प्रकार है—(१) तीर्थसिद्ध, (२) अतीर्थसिद्ध, (३) तीर्थंकरसिद्ध, (४) अतीर्थंकरसिद्ध, (५) स्वय-

---

१ प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक ७

२ प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक १८

बुद्धसिद्ध, (६) प्रत्येकबुद्धसिद्ध, (७) बुद्धबोधितसिद्ध, (८) स्त्रीलिंगसिद्ध, (९) पुरुषलिंगसिद्ध, (१०) नपुंसकलिंगसिद्ध, (११) स्वलिंगसिद्ध, (१२) अन्यलिंगसिद्ध, (१३) गृहस्थलिंगसिद्ध, (१४) एक-सिद्ध और (१५) अनेकसिद्ध । यह है—अनन्तरसिद्ध-असंसारसमापन्न जीवों की प्रज्ञापना (प्ररूपणा)।

१७ से किं तं परंपरसिद्धअसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा ?

परंपरसिद्धअसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा अणेगविहा पण्णत्ता । तं जहा—अपढमसमयसिद्धा दुसमयसिद्धा तिसमयसिद्धा चउसमयसिद्धा जाव संखेज्जसमयसिद्धा असंखेज्जसमयसिद्धा अणंतसमय-सिद्धा । से त्तं परंपरसिद्धअसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा । से त्तं असंसारसमावण्णजीवपण्णवणा ।

[१७ प्र] वह (पूर्वोक्त) परम्परासिद्ध-असंसारसमापन्न-जीव-प्रज्ञापना क्या है ?

[१७ उ] परम्परासिद्ध-असंसारसमापन्न-जीव-प्रज्ञापना अनेक प्रकार की कही गई है । वह इस प्रकार है—अप्रथमसमयसिद्ध, द्विसमयसिद्ध, त्रिसमयसिद्ध, चतुःसमयसिद्ध, यावत्—संख्यातसमय-सिद्ध, असंख्यात समयसिद्ध और अनन्तसमयसिद्ध । यह हुई—परम्परासिद्ध-असंसारसमापन्न-जीव-प्रज्ञापना ।

इस प्रकार वह (पूर्वोक्त) असंसारसमापन्न जीवों की प्रज्ञापना (प्ररूपणा) पूर्ण हुई ।

विवेचन—असंसार-समापन्न-जीवप्रज्ञापना : स्वरूप और भेद-प्रभेद—प्रस्तुत तीन सूत्रों (सू. १५ से १७ तक) में असंसार-समापन्नजीवों की प्रज्ञापना का प्रकारात्मक स्वरूप तथा उसके भेद-प्रभेदों की प्ररूपणा की गई है ।

असंसारसमापन्नजीवों का स्वरूप—असंसार का अर्थ है—जहाँ जन्ममरणरूप चातुर्गतिक संसारपरिभ्रमण न हो, अर्थात्—मोक्ष । उस मोक्ष को प्राप्त, समस्त कर्मों से मुक्त, सिद्धिप्राप्त जीव असंसारसमापन्न जीव कहलाते हैं ।[1]

अनन्तरसिद्ध-असंसारसमापन्नजीव—जिन मुक्त जीवों के सिद्ध होने में अन्तर अर्थात् समय का व्यवधान न हो, वे अनन्तरसिद्ध होते हैं, अर्थात्—सिद्धत्व के प्रथम समय में विद्यमान । जिन जीवों को सिद्ध हुए प्रथम ही समय हो, वे अनन्तरसिद्ध हैं ।

अनन्तरसिद्ध-असंसारसमापन्न जीवों के १५ भेदों की व्याख्या—(१) **तीर्थसिद्ध**—जिसके आश्रय से संसार-सागर को तिरा जाए—पार किया जाय, उसे तीर्थ कहते हैं । ऐसा तीर्थ वह प्रवचन है, जो समस्त जीव-अजीव आदि पदार्थों का यथार्थरूप से प्ररूपक है और परमगुरु—सर्वज्ञ द्वारा प्रणीत (प्रतिपादित) है । वह तीर्थ निराधार नहीं होता । अतः चतुर्विध संघ अथवा प्रथम गणधर को भी तीर्थ समझना चाहिए । आगम में कहा है—[2] '(प्र.) भगवन् ! तीर्थ को तीर्थ कहते हैं या तीर्थंकर को तीर्थ कहते हैं ? (उ.) गौतम ! अरिहन्त भगवान् (नियम से) तीर्थंकर होते हैं, तीर्थ तो चातुर्वर्ण्य श्रमणसंघ (साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका रूप) अथवा प्रथम गणधर है ।' इस प्रकार के तीर्थ की स्थापना होने पर जो जीव सिद्ध होते हैं, वे तीर्थसिद्ध कहलाते हैं ।

---

१ प्रज्ञापनासूत्र म. वृत्ति, पत्रांक १८

२ '(प्र.) तित्थं भंते ! तित्थं, तित्थकरे तित्थं ? (उ.) गोयमा ! अरिहा ताव (नियमा) तित्थकरे, तित्थं पुण चाउवण्णो समणसंघो पढमगणहरो वा ।'

(२) अतीर्थसिद्ध—तीर्थ का अभाव अतीर्थ कहलाता है। तीर्थ का अभाव दो प्रकार से होता है—या तो तीर्थ की स्थापना ही न हुई हो, अथवा स्थापना होने के पश्चात् कालान्तर मे उसका विच्छेद हो गया हो। ऐसे अतीर्थकाल मे जिन्होने सिद्धि प्राप्त की हो, वे अतीर्थसिद्ध कहलाते है। तीर्थ की स्थापना के अभाव मे (पूर्व ही) मरुदेवी आदि सिद्ध हुई है। मरुदेवी आदि के सिद्धिगमनकाल मे तीर्थ की स्थापना नही हुई थी। तथा सुविधिनाथ आदि तीर्थकरो के बीच के समय मे तीर्थ का विच्छेद हो गया था। उस समय जातिस्मरणादि ज्ञान से मोक्षमार्ग उपलब्ध करके जो सिद्ध हुए वे तीर्थव्यवच्छेद-सिद्ध कहलाए। ये दोनो ही प्रकार के सिद्ध अतीर्थसिद्ध है।

(३) तीर्थकरसिद्ध—जो तीर्थकर होकर सिद्ध होते है, वे तीर्थकरसिद्ध कहलाते हैं। जैसे—इस अवसर्पिणीकाल मे ऋषभदेव से लेकर श्री वर्द्धमान स्वामी तक चौबीस तीर्थकर, तीर्थकर होकर सिद्ध हुए।

(४) अतीर्थकरसिद्ध—जो सामान्य केवली होकर सिद्ध होते है, वे अतीर्थकरसिद्ध कहलाते है।

(५) स्वयबुद्धसिद्ध—जो परोपदेश के विना, स्वय ही सम्बुद्ध हो (ससारस्वरूप समझ) कर सिद्ध होते हैं।

(६) प्रत्येकबुद्धसिद्ध—जो प्रत्येकबुद्ध होकर सिद्ध होते है। यद्यपि स्वयबुद्ध और प्रत्येकबुद्ध दोनो ही परोपदेश के बिना ही सिद्ध होते है, तथापि इन दोनो मे अन्तर यह है कि स्वयम्बुद्ध बाह्य-निमित्तो के बिना ही, अपने जातिस्मरणादि ज्ञान से ही सम्बुद्ध हो जाते (बोध प्राप्त कर लेते) है, जबकि प्रत्येकबुद्ध वे कहलाते हैं, जो वृषभ, वृक्ष, बादल आदि किसी भी बाह्य निमित्तकारण से प्रबुद्ध होते हैं। सुना जाता है कि करकण्डू आदि को वृषभादि बाह्यनिमित्त की प्रेक्षा से बोधि प्राप्त हुई थी। ये प्रत्येकबुद्ध बोधि प्राप्त करके नियमत एकाकी (प्रत्येक) ही विचरते है, गच्छ (गण)-वासी साधुओ की तरह समूहबद्ध हो कर नही विचरण करते।

नन्दी-अध्ययन की चूर्णि मे कहा है—स्वयबुद्ध दो प्रकार के होते हैं—तीर्थकर और तीर्थकर-भिन्न। तीर्थकर तो तीर्थकरसिद्ध की कोटि मे सम्मिलित हैं। अतएव यहाँ तीर्थकर-भिन्न स्वयम्बुद्ध ही समझना चाहिए।[1] स्वयम्बुद्धो के पात्रादि के भेद से बारह प्रकार की उपधि (उपकरण) होती है, जबकि प्रत्येकबुद्धो की जघन्य दो प्रकार की और उत्कृष्ट (अधिक से अधिक) नौ प्रकार की उपधि प्रावरण (वस्त्र) को छोड कर होती है। स्वयबुद्धो के श्रुत (शास्त्र) पूर्वाधीत (पूर्वजन्मपठित) होता भी है, नही भी होता। अगर होता है तो देवता उन्हे लिंग (वेष) प्रदान करता है, अथवा वे गुरु के सान्निध्य मे जा कर मुनिलिंग स्वीकार कर लेते है। यदि वे एकाकी विचरण करने मे समर्थ हो और उनकी एकाकी-विचरण की इच्छा हो तो एकाकी विचरण करते हैं, नही तो गच्छवासी हो कर रहते हैं। यदि उनके श्रुत पूर्वाधीत न हो तो वे नियम से गुरु के निकट जा कर ही मुनिलिंग स्वीकार करते हैं और गच्छवासी हो कर ही रहते हैं। प्रत्येकबुद्धो के नियमत श्रुत पूर्वाधीत होता है। वे जघन्यत ग्यारह अग और उत्कृष्टत. दस पूर्व से किञ्चित् कम पहले पढे हुए होते हैं। उन्हे देवता मुनिलिंग देता है, अथवा कदाचित् वे लिंगरहित भी

---

१ ते दुविहा सयबुद्धा—तित्थयरा तित्थयरवइरित्ता य, इह वइरित्ते हि अहिगारो। —नन्दी-अध्ययन चूर्णि

विचरते है ।[1]

(७) बुद्धबोधितसिद्ध—बुद्ध अर्थात्—बोधप्राप्त आचार्य, उनके द्वारा बोधित हो कर जो सिद्ध होते हैं वे बुद्धबोधितसिद्ध हैं ।

(८) स्त्रीलिंगसिद्ध—इन पूर्वोक्त प्रकार के सिद्धो मे से कई स्त्रीलिगसिद्ध होते है । जिससे स्त्री की पहिचान हो वह स्त्री का लिग-चिह्न स्त्रीलिग कहलाता है । उपलक्षण से स्त्रीत्वद्योतक होने से वह तीन प्रकार का हो सकता है—वेद, शरीर की निष्पत्ति (रचना) और वेशभूषा ।[2] इन तीन प्रकार के लिंगो मे से यहाँ स्त्री-शरीररचना से प्रयोजन है, स्त्रीवेद या स्त्रीवेशरूप स्त्रीलिंग से नही, क्योकि स्त्रीवेद की विद्यमानता मे सिद्धत्व प्राप्त नही हो सकता और वेश अप्रामाणिक है । अतः ऐसे स्त्रीलिंग मे विद्यमान होते हुए जो जीव सिद्ध होते है, वे स्त्रीलिंगसिद्ध है । इस शास्त्रीय कथन से 'स्त्रियो को निर्वाण नही होता', इस उक्ति का खण्डन हो जाता है । वास्तव मे मोक्षमार्ग सम्यग्दर्शन ज्ञान-चारित्ररूप है । यह रत्नत्रय पुरुषो की तरह स्त्रियो मे भी हो सकता है । इस की साधना मे तथा प्रवचनार्थ मे रुचि एव श्रद्धा रखने मे स्त्रीलिंग बाधक नही है ।[3]

(९) पुरुषलिंगसिद्ध—पुरुष-शरीररचनारूप पुल्लिग मे स्थित हो कर सिद्ध होते है, वे पुरुषलिगसिद्ध कहलाते है ।

(१०) नपुसकलिंगसिद्ध—जो जीव न तो स्त्री के और न ही पुरुष के, किन्तु नपुसक के शरीर से सिद्ध होते है, वे नपुसकलिगसिद्ध कहलाते है ।

(११) स्वलिंगसिद्ध—जो स्वलिंग से, अर्थात्—रजोहरणादिरूप वेष मे रहते हुए सिद्ध होते हैं ।

(१२) अन्यलिंगसिद्ध—जो अन्यलिंग से, अर्थात्—परिव्राजक आदि से सम्बन्धित वल्कल (छाल) या काषायादि रग के वस्त्र वाले द्रव्यलिंग मे रहते हुए सिद्ध होते है ।

(१३) गृहिलिंगसिद्ध—जो गृहस्थ के लिग (वेष) मे रहते हुए सिद्ध होते है । वे गृहिलिंगसिद्ध होते है, जैसे—मरुदेवी आदि ।

---

१ "पत्तेय—बाह्य वृषभादिक कारणमभिसमीक्ष्य बुद्धा, बहिष्प्रत्यय प्रति बुद्धाना च पत्तेय नियमा विहारो जम्हा तम्हा ते पत्तेयबुद्धा ।"
"पत्तेयबुद्धाण जहन्नेण दुविहो, उक्कोसेण नवविहो नियमा उवही पाउरणवज्जो भवइ ।'
"सयबुद्धस्य पुव्वाहीय सुय से हवइ वा न वा, जइ से नत्थि तो लिंग नियमा गुरुसन्निहे पडिवज्जइ, जइ य एगविहार-विहरणसमत्थो इच्छा वा से तो एक्को चेव विहरइ, अन्यथा गच्छे विहरइ ।"
पत्तेयबुद्धाण पुव्वाहीय सुय नियमा हवइ, जहन्नेण इक्कारस अगा, उक्कोसेण भिन्नदसपुव्वा । लिंग च से देवया पयच्छइ, लिंगवज्जिओ वा हवइ ।

२ इत्थीए लिंग इत्थिलिंग उवलक्खण ति वुत्त भवइ । त च तिविहं—वेदो सरीरनिव्वित्ती नेवत्थ च । इह सरीरनिव्वत्तीए अहिगारो, न वेय-नेवत्थेहिं ।'
—नन्दी-अध्ययन चूर्णि

३ स्त्रीमुक्ति की विशेष चर्चा के लिए देखिये—प्रज्ञापना. म० वृत्ति, पत्राक २० से २२ तक
दिगम्बराचार्य नेमिचन्द्रकृत गोमट्टसार मे देखिये—अडयाला पुवेया, इत्थीवेया हवति चालीसा । वीस नपुसकवेया, समएणेगेण सिज्झति ॥

(१४) एकसिद्ध—जो एक समय मे अकेले ही सिद्ध होते है, वे एकसिद्ध है।

(१५) अनेकसिद्ध—जो एक ही समय मे एक से अधिक—अनेक सिद्ध होते है, वे अनेकसिद्ध कहलाते है।[1] सिद्धान्तानुसार एक समय मे अधिक से अधिक १०८ जीव सिद्ध होते हैं।[2] अनन्तर सिद्धो के उपाधि के भेद से ये १५ प्रकार कहे है।

परम्परासिद्ध-असंसारसमापन्नजीवो के प्रकार—इनके अनेक प्रकार हैं, इसलिए शास्त्रकार ने इनके प्रकारो की निश्चित सख्या नही दी है। अप्रथमसमयसिद्ध से लेकर अनन्तसमयसिद्ध तक के जीव परम्परासिद्ध की कोटि मे हैं। **अप्रथमसमयसिद्ध**—जिन्हे सिद्ध हुए प्रथम समय न हो, अर्थात् जिन्हे सिद्ध हुए एक से अधिक समय हो चुके हो, वे अप्रथमसमयसिद्ध कहलाते हैं। अथवा जो परम्परसिद्धो मे प्रथमसमयवर्ती हो वे प्रथमसमयसिद्ध होते है। इसी प्रकार तृतीय आदि समयो मे द्वितीयसमयसिद्ध आदि कहलाते है। अथवा 'अप्रथमसमयसिद्ध' का कथन सामान्यरूप से किया गया है, आगे इसी के विषय मे विशेषत कहा गया है—द्विसमयसिद्ध, त्रिसमयसिद्ध, चतु समयसिद्ध आदि यावत् अनन्त समयसिद्ध तक अप्रथमसमयसिद्ध—परपरासिद्ध समझने चाहिए।

अथवा परम्परसिद्ध का अर्थ इस प्रकार से है—जो किसी भी प्रथम समय मे सिद्ध है, उससे एक समय पहले सिद्ध होने वाला 'पर' कहलाता है। उससे भी एक समय पहले सिद्ध होने वाला 'पर' कहलाता है। परम्परसिद्ध का आशय यह है कि जिस समय मे कोई जीव सिद्ध हुआ है, उससे पूर्ववर्ती समयो मे जो जीव सिद्ध हुए है, वे सब उसकी अपेक्षा परम्परसिद्ध है। अनन्त अतीतकाल से सिद्ध होते आ रहे है, वे सब किसी भी विवक्षित प्रथम समय मे सिद्ध होने वाले की अपेक्षा से परम्परसिद्ध हैं। ऐसे मुक्तात्मा परम्परसिद्ध असंसारसमापन्न जीव हैं।[3]

संसारसमापन्न-जीवप्रज्ञापना के पांच प्रकार—

१८. से किं त ससारसमावण्णजीवपण्णवणा ?

ससारसमावण्णजीवपण्णवणा पचविहा पन्नत्ता। त जहा—एगिंदियससारसमावण्णजीवपण्णवणा १ बेंदियससारसमावण्णजीवपण्णवणा २ तेंदियससारसमावन्नजीवपण्णवणा ३ चउरेंदियससारसमावण्णजीवपण्णवणा ४ पचेंदियससारसमावन्नजीवपण्णवणा ५।

[१८ प्र] वह (पूर्वोक्त) ससारसमापन्नजीव-प्रज्ञापना क्या है ?

[१८ उ] ससारसमापन्न-जीवप्रज्ञापना पाच प्रकार की कही गई है। वह इस प्रकार है—(१) एकेन्द्रिय ससारसमापन्न-जीवप्रज्ञापना, (२) द्वीन्द्रिय ससारसमापन्न-जीवप्रज्ञापना, (३) त्रीन्द्रिय ससारसमापन्न-जीवप्रज्ञापना, (४) चतुरिन्द्रिय ससारसमापन्न-जीवप्रज्ञापना और (५) पचेन्द्रिय ससारसमापन्न-जीवप्रज्ञापना।

---

१ 'अनेकसिद्ध' का विस्तृत वर्णन देखे—प्रज्ञापना० म०वृत्ति, पत्राक २२
'बत्तीसा अडयाला सट्ठी बावत्तरी य बोद्धव्वा।
चुलसीइ छन्नउइ उ दुरहिय अट्ठुत्तरसय च॥

२ प्रज्ञापनासूत्र म वृत्ति, पत्राक १९ से २२ तक

३ प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक २३ तथा १८

विवेचन—ससारसमापन्न-जीवप्रज्ञापना के पांच प्रकार—ससारी जीवो की प्रज्ञापना के एकेन्द्रियादि पाच प्रकार क्रमश इस सूत्र (सू १८) मे प्रतिपादित किये गए हैं।

ससारी जीवो के पांच मुख्य प्रकारो की व्याख्या—(१) **एकेन्द्रिय**—पृथ्वीकायादि स्पर्शनेन्द्रिय वाले जीव एकेन्द्रिय कहलाते है। (२) **द्वीन्द्रिय**—जिन जीवो के स्पर्शनेन्द्रिय और रसनेन्द्रिय, ये दो इन्द्रिया होती हैं, वे द्वीन्द्रिय होते है। जैसे—शख, सीप, लट, गिडोला आदि। (३) **त्रीन्द्रिय**—जिन जीवो के स्पर्शन, रसन और घ्राणेन्द्रिय हो, वे त्रीन्द्रिय कहलाते है। जैसे—जू, खटमल, चीटी आदि। (४) **चतुरिन्द्रिय**—जिन जीवो के स्पर्शन, रसन, घ्राण और चक्षुरिन्द्रिय हो, वे चतुरिन्द्रिय कहलाते हैं। जैसे—टिड्डी, पतगा, मक्खी, मच्छर आदि। (५) **पचेन्द्रिय**—जिनके स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र, ये पाचो इन्द्रिया हो, वे पचेन्द्रिय कहलाते हैं। जैसे—नारक, तिर्यञ्च (मत्स्य, गाय, हस, सर्प), मनुष्य और देव। इन्द्रिया दो प्रकार की हैं—द्रव्येन्द्रिय और भावेन्द्रिय। द्रव्येन्द्रिय के दो रूप—निर्वृत्तिरूप और उपकरणरूप। इन्द्रियो की रचना को निर्वृत्ति-इन्द्रिय कहते हे और निर्वृत्ति-इन्द्रिय की शक्तिविशेष को उपकरणेन्द्रिय कहते है। भावेन्द्रिय लब्धि (क्षयोपशम) तथा उपयोग रूप है। एकेन्द्रिय जीवो मे भी क्षयोपशम एव उपयोगरूप भावेन्द्रिय पाचो ही सम्भव है, क्योकि उनमे से कई एकेन्द्रिय जीवो मे उनका कार्य दिखाई देता है।[1] जैसे—जीवविज्ञानविशेषज्ञ डॉ जगदीशचन्द्र बोस ने एकेन्द्रिय वनस्पति मे भी निन्दा-प्रशसा आदि भावो को समझने की शक्ति (लब्धि=क्षयोपशम) सिद्ध करके बताई है।

एकेन्द्रिय संसारी जीवो की प्रज्ञापना—

१९ से किं त एगेंदियससारसमावण्णजीवपण्णवणा ?

एगेंदियससारसमावण्णजीवपण्णवणा पंचविहा पण्णत्ता। त जहा—पुढविकाइया १ आउकाइया २ तेउकाइया ३ वाउकाइया ४ वणस्सइकाइया ५।

[१९ प्र] वह (पूर्वोक्त) एकेन्द्रिय-ससारसमापन्नजीव-प्रज्ञापना क्या है ?

[१९ उ] एकेन्द्रिय-ससारसमापन्नजीव-प्रज्ञापना पाच प्रकार की कही गई है। वह इस प्रकार है—१-पृथ्वीकायिक, २-अप्कायिक, ३-तेजस्कायिक, ४-वायुकायिक और ५-वनस्पतिकायिक।

विवेचन—एकेन्द्रियससारी जीवो की प्रज्ञापना—प्रस्तुत सूत्र मे पृथ्वीकायिक आदि पाच प्रकार के एकेन्द्रियजीवो की प्ररूपणा की गई है।

एकेन्द्रिय जीवो के प्रकार और लक्षण—(१) **पृथ्वीकायिक**—पृथ्वी ही जिनका काय=शरीर है, वे पृथ्वीकाय या पृथ्वीकायिक कहलाते है। (२) **अप्कायिक**—अप्—प्रसिद्ध जल ही जिनका काय=शरीर है, वे अप्काय या अप्कायिक कहलाते है। (३) **तेजस्कायिक**—तेज यानी अग्नि ही जिनका काय=शरीर है, वे तेजस्काय या तेजस्कायिक कहलाते है। (४) **वायुकायिक**—वायु=हवा ही जिनका काय-शरीर है वे वायुकाय या वायुकायिक हैं। (५) **वनस्पतिकायिक**—लतादिरूप वनस्पति ही जिनका शरीर (काय) है, वे वनस्पतिकाय या वनस्पतिकायिक कहलाते हैं।

---

१ प्रज्ञापना० मलय० वृत्ति, पत्राक २३-२४

पृथ्वी समस्त प्राणियों की आधारभूत होने से सर्वप्रथम पृथ्वीकायिकों का ग्रहण किया गया। अप्कायिक पृथ्वी के आश्रित हैं, इसलिए तदनन्तर अप्कायिकों का ग्रहण किया गया। तत्पश्चात् उनके प्रतिपक्षी अग्निकायिकों का, अग्नि वायु के सम्पर्क से बढती है, इसलिए उसके बाद वायुकायिकों का और वायु दूरस्थ लतादि के कम्पन से उपलक्षित होता है, इसलिए तत्पश्चात् वनस्पतिकायिकों का ग्रहण किया गया।[1]

पृथ्वीकायिक जीवों की प्रज्ञापना—

२०. से किं त पुढविकाइया ?

पुढविकाइया दुविहा पण्णत्ता। त जहा—सुहुमपुढविकाइया य बादरपुढविकाइया य।

[२० प्र] वे पृथ्वीकायिक जीव कौन-से है ?

[२० उ] पृथ्वीकायिक (मुख्यतया) दो प्रकार के कहे गए है—सूक्ष्म पृथ्वीकायिक और बादर पृथ्वीकायिक।

२१ से किं त सुहुमपुढविकाइया ?

मपुढविकाइया दुविहा पण्णत्ता। त जहा—पज्जत्तसुहुमपुढविकाइया य अपज्जत्तसुहुमपुढविकाइया य। से त्त सुहुमपुढविकाइया।

[२१ प्र] सूक्ष्मपृथ्वीकायिक क्या है ?

[२२ उ] सूक्ष्मपृथ्वीकायिक दो प्रकार के कहे गए है। वे इस प्रकार—पर्याप्त सूक्ष्मपृथ्वीकायिक और अपर्याप्त सूक्ष्मपृथ्वीकायिक। यह सूक्ष्मपृथ्वीकायिक का वर्णन हुआ।

२२ से किं त बादरपुढविकाइया ?

बादरपुढविकाइया दुविहा पन्नत्ता। त जहा—सण्हबादरपुढविकाइया य खरबादरपुढविकाइया य।

[२२ प्र] बादरपृथ्वीकायिक क्या है ?

[२२ उ] बादरपृथ्वीकायिक दो प्रकार के कहे गए है। वे इस प्रकार—श्लक्ष्ण (चिकने) बादरपृथ्वीकायिक और खरबादरपृथ्वीकायिक।

२३. से किं त सण्हबादरपुढविकाइया ?

सण्हबादरपुढविकाइया सत्तविहा पन्नत्ता। त जहा—किण्हमत्तिया १ नीलमत्तिया २ लोहियमत्तिया ३ हालिद्दमत्तिया ४ सुक्किल्लमत्तिया ५ पडुमत्तिया ६ पणगमत्तिया ७। से तं सण्हबादरपुढविकाइया।

[२१ प्र] श्लक्ष्ण बादरपृथ्वीकायिक क्या है ?

[२३ उ] श्लक्ष्ण बादरपृथ्वीकायिक सात प्रकार के कहे गए है। वे इस प्रकार—(१) कृष्ण-

---

१ प्रज्ञापना मलय वृत्ति, पत्रांक २४

मृत्तिका (काली मिट्टी), (२) नीलमृत्तिका (नीले रग की मिट्टी), (३) लोहितमृत्तिका (लाल रग की मिट्टी), (४) हारिद्रमृत्तिका (पीली मिट्टी), (५) शुक्लमृत्तिका (सफेद मिट्टी), (६) पाण्डुमृत्तिका (पाण्डु—मटमैले रग की मिट्टी) और (७) पनकमृत्तिका (काई-सी हरे रग की मिट्टी)।

२४ से किं तं खरबादरपुढविकाइया ?

खरबादरपुढविकाइया अणेगविहा पण्णत्ता । त जहा—

पुढवी य १ सक्करा २ वालुया य ३ उवले ४ सिला य ५ लोणूसे ६-७ ।
अय ८ तब ९ तउय १० सीसय ११ रुप्प १२ सुवण्णे य १३ वइरे य १४ ॥८॥
हरियाले १५ हिंगुलुए १६ मणोसिला १७ सासगऽजण १८-१९ पवाले २० ।
अब्भपडल २१ ऽब्भवालुय २२ बादरकाए मणिविहाणा ॥९॥
[1]गोमेज्जए य २३ रुयए २४ अके २५ फलिहे य २६ लोहियक्खे य २७ ।
मरगय २८ मसारगल्ले २९ भुयमोयग ३० इदनीले य ३१ ॥१०॥
चंदण ३२ गेरुय ३३ हसे ३४ पुलए ३५ सोगधिए य ३६ बोद्धव्वे ।
चदप्पभ ३७ वेरुलिए ३८ जलकते ३९ सूरकते य ४० ॥११॥
जे यावऽण्णे तहप्पगारा ।

[२४-प्र] खर बादरपृथ्वीकायिक कितने प्रकार के है ?

[२४ उ] खर बादरपृथ्वीकायिक अनेक प्रकार के कहे गए है। वे इस प्रकार—(१) पृथ्वी, (२) शर्करा (ककर), (३) बालुका (बालू-रेत), (४) उपल (पाषाण=पत्थर), (५) शिला (चट्टान), (६) लवण (सामुद्र, सेंचल आदि नमक), (७) ऊष (ऊषर—क्षार वाली जमीन, बजरभूमि), (८) अयस् (लोहा), (९) ताम्बा, (१०) त्रपुष् (रागा), (११) सीसा, (१२) रौप्य (चादी), (१३) सुवर्ण (सोना), (१४) वज्र (हीरा), (१५) हडताल, (१६) हीगलू (१७) मैनसिल, (१८) सासग (पारद-पारा), (१९) अजन (सौवीर आदि), (२०) प्रवाल (मूगा), (२१) अभ्रपटल (अभ्रक-भोडल) (२२) अभ्रबालुका (अभ्रक-मिश्रित बालू), बादरकाय मे मणियो के प्रकार—(२३) गोमेज्जक (गोमेदरत्न), (२४) रुचकरत्न, (२५) अकरत्न (२६) स्फटिकरत्न, (२७) लोहिताक्षरत्न, (२८) मरकतरत्न, (२९) मसारगल्लरत्न, (३०) भुजमोचकरत्न, (३१) इन्द्रनीलमणि, (३२) चन्दनरत्न, (३३) गैरिकरत्न, (३४) हसरत्न (हसगर्भरत्न), (३५) पुलकरत्न, (३६) सौगन्धिकरत्न, (३७) चन्द्रप्रभरत्न, (३८) वैडूर्यरत्न, (३९) जलकान्तमणि और (४०) सूर्यकान्तमणि ॥८-९-१०-११॥

---

१ 'गोमेज्जए य २३ रुयगे २४ अके २५ फलिहे य २६ लोहियक्खे य २७। चदण २८ गेरुय २९ हसग ३० भुयमोय ३१ मसारगल्ले य ३२ ॥७५॥ चदप्पह ३३ वेरुलिए ३४ जलकते ३५ चेव सूरकते य ३६। एए खरपुढवीए नाम छत्तीसय होइ ॥७६॥'

इस प्रकार आचाराग वृत्तिकार शीलाकाचार्य ने आचारागनिर्युक्ति की गाथाओ द्वारा खरपृथ्वीकाय के ३६ भेद गिनाए हैं, जबकि प्रज्ञापना मे ४० भेद वर्णित है। उत्तराध्ययन सूत्र मे प्रज्ञापना के समान ही गाथाएँ है। —स

इनके अतिरिक्त जो अन्य भी तथाप्रकार के (वैसे) (पद्मराग आदि मणिभेद है, वे भी खर बादरपृथ्वीकायिक समझने चाहिए ।)

२५ [१] ते समासतो दुविहा पन्नत्ता । त जहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य ।

[२५-१] वे (पूर्वोक्त सामान्य बादरपृथ्वीकायिक) सक्षेप मे दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं—पर्याप्तक और अपर्याप्तक ।

[२] तत्थ ण जे ते अपज्जत्तगा ते ण असपत्ता ।

[२५-२] उनमे से जो अपर्याप्तक हैं, वे (स्वयोग्य पर्याप्तियो को) असम्प्राप्त होते है ।

[३] तत्थ ण जे ते पज्जत्तगा एतेसि ण वण्णादेसेण गधादेसेण रसादेसेण फासादेसेण सहस्सग्गसो विहाणाइ, सखेज्जाइ जोणिप्पमुहसतसहस्साइ । पज्जत्तगणिस्साए अपज्जत्तगा वक्कमति—जत्थ एगो तत्थ णियमा असखिज्जा । से त्त खरबादरपुढविकाइया । से त्त बादरपुढविकाइया । से त्त पुढविकाइया ।

[२५-३] उनमे से जो पर्याप्तक है, इनके वर्णादेश (वर्ण की अपेक्षा) से, गन्ध की अपेक्षा से, रस की अपेक्षा से और स्पर्श को अपेक्षा से हजारो (सहस्रश) भेद (विधान) है । (उनके) सख्यात लाख योनिप्रमुख (योनिद्वार) है । पर्याप्तको के निश्राय (आश्रय) मे, अपर्याप्तक (आकर) उत्पन्न होते हैं । जहाँ एक (पर्याप्तक) होता है, वहाँ (उसके आश्रय से) नियम से असख्यात अपर्याप्तक (उत्पन्न होते हैं ।) 'यह हुआ—वह (पूर्वोक्त) खर बादरपृथ्वीकायिको का निरूपण । (उसके साथ ही) बादरपृथ्वीकायिको का वर्णन पूर्ण हुआ। (इसके पूर्ण होते ही) पृथ्वीकायिको की प्ररूपणा समाप्त हुई ।

विवेचन—पृथ्वीकायिक जीवो की प्रज्ञापना—प्रस्तुत छह सूत्रो (सू २० से २५ तक) मे पृथ्वीकायिक जीवो के मुख्य दो भेदो तथा उनके अवान्तर भेद-प्रभेदो की प्ररूपणा की गई है ।

सूक्ष्म पृथ्वीकायिक और बादर पृथ्वीकायिक को व्याख्या—जिन जीवो को सूक्ष्मनामकर्म का उदय हो, वे सूक्ष्म कहलाते है । ऐसे पृथ्वीकायिक जीव सूक्ष्मपृथ्वीकायिक है । जिनको बादरनामकर्म का उदय हो, उन्हे बादर कहते हैं । ऐसे पृथ्वीकायिक बादरपृथ्वीकायिक कहलाते है । बेर और आंवले मे जैसी सापेक्ष सूक्ष्मता और बादरता है, वैसी सूक्ष्मता और बादरता यहाँ नही समझनी चाहिए । यहाँ तो (नाम-) कर्मोदय के निमित्त से ही सूक्ष्म और बादर समझना चाहिए । मूल मे 'च' शब्द सूक्ष्म और बादर के अनेक अवान्तरभेदो, जैसे—पर्याप्त और अपर्याप्त आदि भेदो तथा शर्करा, बालुका आदि उपभेदो को सूचित करने के लिए प्रयुक्त किया गया है ।

'सूक्ष्म सर्वलोक मे हैं' उत्तराध्ययन सूत्र की इस उक्ति के अनुसार सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीव समग्र लोक मे ऐसे ठसाठस भरे हुए हैं, जैसे किसी पेटी मे सुगन्धित पदार्थ डाल देने पर उसकी महक उसमे सर्वत्र व्याप्त हो जाती है । बादरपृथ्वीकायिक नियत-नियत स्थानो पर लोकाकाश मे होते हैं । यह द्वितीयपद मे बताया जाएगा ।[1]

---

१ (क) प्रज्ञापनासूत्र, मलय० वृत्ति, पत्राक २४-२५

(ख) उत्तराध्ययनसूत्र, अ ३६—'सुहुमा सव्वलोगमि ।'

सूक्ष्मपृथ्वीकायिको के पर्याप्त-अपर्याप्तक की व्याख्या—जिन जीवो की पर्याप्तिया पूर्ण हो चुकी हो, वे पर्याप्त या पर्याप्तक कहलाते है। जो जीव अपने योग्य पर्याप्तिया पूर्ण न कर चुके हो, वे अपर्याप्त या अपर्याप्तक कहलाते है। पर्याप्त और अपर्याप्त के प्रत्येक के दो-दो भेद होते हैं—लब्धि-पर्याप्त और करण-पर्याप्त, तथा लब्धि-अपर्याप्तक और करण-अपर्याप्त। जो जीव अपर्याप्त रह कर ही मर जाते है, वे लब्धि-अपर्याप्त और जिनकी पर्याप्तिया अभी पूरी नही हुई है, किन्तु पूरी होगी, वे करण-अपर्याप्त कहलाते है। **पर्याप्ति**—पर्याप्ति आत्मा की एक विशिष्ट शक्ति की परिपूर्णता है, जिसके द्वारा आत्मा आहार, शरीर आदि के योग्य पुद्गलो को ग्रहण करता है और उन्हे आहार, शरीर आदि के रूप मे परिणत करता है। वह पर्याप्तिरूप शक्ति पुद्गलो के उपचय से उत्पन्न होती है। तात्पर्य यह है कि उत्पत्तिदेश मे आए हुए नवीन आत्मा ने पहले जिन पुद्गलो को ग्रहण किया, उनको तथा प्रतिसमय ग्रहण किये जा रहे अन्य पुद्गलो को, एव उनके सम्पर्क से जो तद्रूप परिणत हो गए है, उनको आहार, शरीर, इन्द्रिय आदि के रूप मे जिस शक्ति के द्वारा परिणत किया जाता है, उस शक्ति की पूर्णता पर्याप्ति कहलाती है।

पर्याप्ति छह है—(१) आहारपर्याप्ति, (२) शरीरपर्याप्ति, (३) इन्द्रियपर्याप्ति, (४) श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति, (५) भाषापर्याप्ति और (६) मन पर्याप्ति। जिस शक्ति द्वारा जीव बाह्य आहार (आहारयोग्य पुद्गलो) को लेकर खल और रस के रूप मे परिणत करता है, वह **आहार-पर्याप्ति** है। जिस शक्ति के द्वारा रसीभूत (रसरूप-परिणत) आहार (आहारयोग्य पुद्गलो) को रस, रक्त, मास, मेद, हड्डी, मज्जा और शुक्र, इन सात धातुओ के रूप मे परिणत किया जाता है, वह **शरीरपर्याप्ति** है। जिस शक्ति के द्वारा धातुरूप मे परिणमित आहार पुद्गलो को इन्द्रियरूप मे परिणत किया जाता है, वह **इन्द्रियपर्याप्ति** है। इसे दूसरी तरह से यो भी समझा जा सकता है—पाचो इन्द्रियो के योग्य पुद्गलो को ग्रहण करके अनाभोगनिर्वर्तित (अनजाने ही निष्पन्न) वीर्य के द्वारा इन्द्रियरूप मे परिणत करने वाली शक्ति **इन्द्रियपर्याप्ति** है। जिस शक्ति के द्वारा (श्वास तथा) उच्छ्वास के योग्य पुद्गलो को ग्रहण करके, उन्हे (श्वास एव) उच्छ्वासरूप परिणत करके और फिर उनका आलम्बन लेकर छोडा जाता है, वह **(श्वास-) उच्छ्वास-पर्याप्ति** है। जिस शक्ति से भाषा-योग्य (भाषावर्गणा के) पुद्गलो को ग्रहण करके, उन्हे भाषारूप मे परिणत करके, वचनयोग का आलम्बन लेकर छोडा जाता है, वह **भाषापर्याप्ति** है। जिस शक्ति के द्वारा मन के योग्य पुद्गलो को ग्रहण करके मन के रूप मे परिणत करके, मनोयोग का आलम्बन लेकर छोडा जाता है, वह मन पर्याप्ति है। इन छह पर्याप्तियो मे से एकेन्द्रिय मे चार, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय तथा असज्ञी पचेन्द्रिय मे पाच और सज्ञीपचेन्द्रिय मे छहो पर्याप्तिया होती हैं।

जीव अपनी उत्पत्ति (जन्म) के प्रथम समय मे ही, अपने योग्य सम्भावित पर्याप्तियो को एक साथ निष्पन्न करना प्रारम्भ कर देता है। किन्तु वे (पर्याप्तिया) क्रमश पूर्ण होती हैं। जैसे—सर्वप्रथम आहारपर्याप्ति, तत्पश्चात् शरीरपर्याप्ति, फिर इन्द्रियपर्याप्ति, तदनन्तर श्वासोच्छ्वास-पर्याप्ति, उसके बाद भाषापर्याप्ति और सबसे अन्त मे मन पर्याप्ति पूर्ण होती है। आहारपर्याप्ति प्रथम समय मे ही निष्पन्न हो जाती है, शेष पर्याप्तियो के पूर्ण होने मे प्रत्येक को अन्तर्मुहूर्त्त समय लग जाता है। किन्तु समस्त पर्याप्तियो के पूर्ण होने मे भी अन्तर्मुहूर्त्तकाल ही लगता है। क्योकि अन्तर्मुहूर्त्त के अनेक विकल्प हैं। इस पर से सूक्ष्मपृथ्वीकायिक और बादरपृथ्वीकायिक दोनो के

पर्याप्तक और अपर्याप्तक का स्वरूप समझ लेना चाहिए ।[1]

श्लक्ष्ण बादरपृथ्वीकायिक—पीसे हुए आटे के समान मृदु (मुलायम) पृथ्वी श्लक्ष्ण कहलाती है। श्लक्ष्ण पृथिव्यात्मक जीव भी उपचार से श्लक्ष्ण कहलाते है। जिन बादरपृथ्वी के जीवो का शरीर श्लक्ष्ण—मृदु है, वे श्लक्ष्ण बादरपृथ्वीकायिक है। यह मुख्यतया सात प्रकार की होती है। उनमे से **पाण्डुमृत्तिका** का अर्थ यह भी है कि किसी देश मे मिट्टी धूलिरूप मे हो कर भी 'पाण्डु' नाम से प्रसिद्ध है। पनकमृत्तिका का अर्थ वृत्तिकार ने इस प्रकार किया है—नदी आदि मे बाढ से डूबे हुए प्रदेश मे नदी आदि के पूर के चले जाने के बाद भूमि पर जो श्लक्ष्णमृदुरूप पक शेष रह जाता है, जिसे 'जलमल' भी कहते है, वही पनकमृत्तिका है।[2]

खर बादरपृथ्वीकायिको की व्याख्या—प्रस्तुत गाथाओ मे खर बादरपृथ्वीकायिको के ४० भेद बताए है। अन्त मे यह भी कहा है कि ये और इसी प्रकार के अन्य जो भी पद्मरागादि रत्न है, वे सब इसी के अन्तर्गत समझने चाहिए। **अपर्याप्तको का स्वरूप**—खर बादरपृथ्वीकायिक के पर्याप्तक और अपर्याप्तक जो दो भेद है, उनमे से अपर्याप्तक या तो अपनी पर्याप्तियो को पूर्णतया असप्राप्त हैं अथवा उन्हे विशिष्ट वर्ण आदि प्राप्त नही हुए है। इस दृष्टि से उनके लिए यह नही कहा जा सकता कि वे कृष्ण आदि वर्ण वाले है। शरीर आदि पर्याप्तिया पूर्ण हो जाने पर ही बादर जीवो मे वर्ण आदि विभाग प्रकट होता है, अपूर्ण होने की स्थिति मे नही। तथा वे अपर्याप्तक उच्छ्वास पर्याप्ति से अपर्याप्त रह कर ही मर जाते है, इसी कारण उनमे स्पष्टतर वर्णादि का विभाग सम्भव नही। इसी दृष्टि से उन्हे 'असम्प्राप्त' कहा है। **पर्याप्तको के वर्णादि के भेद से हजारो भेद**—इनमे से जो पर्याप्तक है, जिनकी अपने योग्य चार पर्याप्तिया पूर्ण हो चुकी हैं, उनके वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के भेद से हजारो भेद होते है। जैसे—वर्ण के ५, गन्ध के २, रस के ५ और स्पर्श के ८ भेद होते हैं। फिर प्रत्येक वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श मे अनेक प्रकार की तरतमता होती है। जैसे—भ्रमर, कोयल और कज्जल आदि मे कालेपन की न्यूनाधिकता होती है। अत कृष्ण, कृष्णतर और कृष्णतम आदि अनेक कृष्णवर्णीय भेद हो गए। इसी प्रकार नील आदि वर्ण के विषय मे समझना चाहिए। गन्ध, रस और स्पर्श से सम्बन्धित भी ऐसे ही अनेक भेद होते है। इसी प्रकार वर्णो के परस्पर मिश्रण से धूसरवर्ण, कर्बुर (चितकबरा) वर्ण आदि अगणित वर्ण निष्पन्न हो जाते है। इसी प्रकार एक गन्ध मे दूसरी गन्ध के मिलने से, एक रस मे दूसरा रस मिश्रण करने से, एक स्पर्श के साथ दूसरे स्पर्श के सयोग से हजारो भेद गन्ध, रस और स्पर्श की अपेक्षा से हो जाते हैं। **ऐसे पृथ्वीकायिको की लाखो योनिया**—उपर्युक्त पृथ्वीकायिक जीवो की लाखो योनिया है। यही बात मूलपाठ मे कही गई है—**'सखेज्जाइ जोणिप्पमुहसयसहस्साइ'**—अर्थात् 'सख्यातलाख योनिप्रमुख-योनिद्वार हैं।' जैसे कि एक-एक वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श मे पृथ्वीकायिको की सवृता योनि होती है। वह तीन प्रकार की है—सचित्त, अचित्त और मिश्र। इनके प्रत्येक के तीन-तीन भेद होते हैं—शीत, उष्ण और शीतोष्ण। इन शीत आदि प्रत्येक के भी तारतम्य के कारण अनेक भेद हो जाते है। यद्यपि इस प्रकार से स्वस्थान मे विशिष्ट वर्णादि से युक्त योनिया व्यक्ति के भेद से सख्यातीत हो जाती है, तथापि वे सब जाति (सामान्य) की अपेक्षा एक ही योनि मे परिगणित होती है। इस दृष्टि से पृथ्वीकायिक जीवो की

---

१ (क) प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक २५-२६

(ख) आहारपर्याप्ति के सम्बन्ध मे सूक्ष्मचर्चा देखिये—प्रज्ञापना २८ वा आहारपद।

२ प्रज्ञापनासूत्र, मलय वृत्ति, पत्राक २६

संख्यात लाख योनिया होती है। और वे सूक्ष्म और बादर सबकी, सब मिलकर सात लाख योनिया समझनी चाहिए।[1]

अप्कायिक जीवों की प्रज्ञापना—

२६. से किं तं आउक्काइया ?

आउक्काइया दुविहा पण्णत्ता। त जहा—सुहुमआउक्काइया य बादरआउक्काइया य।

[२६ प्र] वे (पूर्वोक्त) अप्कायिक जीव किस (कितने) प्रकार के है ?

[२६ उ] अप्कायिक जीव दो प्रकार के कहे गए है। वे इस प्रकार हैं—सूक्ष्म अप्कायिक और बादर अप्कायिक।

२७ से किं तं सुहुमआउक्काइया ?

सुहुमआउक्काइया दुविहा पन्नत्ता। त जहा—पज्जत्तसुहुमआउक्काइया य अपज्जत्तसुहुम-आउक्काइया य। से त्त सुहुमआउक्काइया।

[२७ प्र] वे (पूर्वोक्त) सूक्ष्म अप्कायिक किस प्रकार के है ?

[२७ उ] सूक्ष्म अप्कायिक दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार है—पर्याप्त सूक्ष्म-अप्कायिक और अपर्याप्त सूक्ष्म-अप्कायिक। (इस प्रकार) यह सूक्ष्म-अप्कायिक की प्ररूपणा हुई।

२८ [१] से किं त बादरआउक्काइया ?

बादरआउक्काइया अणेगविहा पण्णत्ता। त जहा—[2]ओसा हिमए महिया करए हरतणुए सुद्धोदए सीतोदए उसिणोदए खारोदए खट्टोदए अंबिलोदए लवणोदए वारुणोदए खीरोदए घओदए खोतोदए रसोदए, जे यावऽण्णे तहप्पगारा।

[२८-१ प्र] वे (पूर्वोक्त) बादर-अप्कायिक क्या (कैसे) है ?

[२८-१ उ] बादर-अप्कायिक अनेक प्रकार के कहे गए है। वे इस प्रकार—ओस, हिम (बर्फ), महिका (गर्भमासो मे होने वाली सूक्ष्म वर्षा—धुम्मस या कोहरा), ओले, हरतनु (भूमि को फोड कर अकुरित होने वाले गेहूँ घास आदि के अग्रभाग पर जमा होने वाले जलबिन्दु), शुद्धोदक (आकाश मे उत्पन्न होने वाला तथा नदी आदि का पानी), शीतोदक (नदी आदि का शीतस्पर्शपरिणत जल), उष्णोदक (कही झरने आदि से स्वाभाविकरूप से उष्णस्पर्शपरिणत जल), क्षारोदक (खारा पानी), खट्टोदक (कुछ खट्टा पानी), अम्लोदक (स्वाभाविकरूप से काजी-सा खट्टा पानी), लवणोदक (लवण समुद्र का पानी), वारुणोदक (वरुणसमुद्र का या मदिरा जैसे स्वादवाला जल), क्षीरोदक (क्षीरसमुद्र

---

१ प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक २७-२८

२ आचारागसूत्रनिर्युक्तिकार ने बादर-अप्काय के—"सुद्धोदए य १ उस्सा २ हिमे य ३ महिया य ४ हरतणू चेव ५। बायरआउविहाणा पचविहा वण्णिया एए ॥१०८॥" इस गाथानुसार ५ ही भेदो का निर्देश किया है। तथा उत्तराध्ययनसूत्र अ ३६, गाथा ८६ मे भी ये ही पाच भेद गिनाए है, जबकि यहाँ अनेक भेद बताए हैं। —स

का पानी), घृतोदक (घृतवरसमुद्र का जल), क्षोदोदक (इक्षुसमुद्र का जल) और रसोदक (पुष्करवर समुद्र का जल)। ये और तथाप्रकार के और भी (रस-स्पर्शादि के भेद से) जितने प्रकार हों, (वे सब बादर-अप्कायिक समझने चाहिए।)

[२] ते समासतो दुविहा पन्नत्ता। त जहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य।

[२८-२] वे (ओस आदि बादर अप्कायिक) सक्षेप मे दो प्रकार के कहे गए है। वे इस प्रकार—पर्याप्तक और अपर्याप्तक।

[३] तत्थ ण जे ते अपज्जत्तगा ते ण असपत्ता।

[२८-३] उनमे से जो अपर्याप्तक हैं, वे असम्प्राप्त (अपनी पर्याप्तियो को पूर्ण नही कर पाए) हैं।

[४] तत्थ ण जे ते पज्जत्तगा एतेसि ण वण्णादेसेण गधादेसेण रसादेसेण फासादेसेण सहस्सग्गसो विहाणाइ, सखेज्जाइ जोणीपमुहसयसहस्साइ। पज्जत्तगणिस्साए अपज्जत्तगा वक्कमति—जत्थ एगो तत्थ णियमा असखेज्जा। से त्त बादरआउक्काइया। से त्त आउक्काइया।

[२८-४] उनमे से जो अपर्याप्तक है, उनके वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श की अपेक्षा से हजारो (सहस्रश) भेद (विधान) होते है। उनके सख्यात लाख योनिप्रमुख है। पर्याप्तक जीवो के आश्रय से अपर्याप्तक आकर उत्पन्न होते है। जहाँ एक पर्याप्तक है, वहाँ नियम से (उसके आश्रय से) असख्यात (अपर्याप्तक उत्पन्न होते है।)

यह हुआ, बादर अप्कायिको (का वर्णन।) (और साथ ही) अप्कायिक जीवो की (प्ररूपणा पूर्ण हुई।)

विवेचन—अप्कायिक जीवो की प्रज्ञापना—प्रस्तुत तीन सूत्रो (सू २६ से २८ तक) मे अप्कायिक जीवो के दो मुख्य प्रकार तथा उनके भेद-प्रभेदो की प्ररूपणा की गई है।

तेजस्कायिक जीवो की प्रज्ञापना—

२९. से किं त तेउक्काइया ?

तेउक्काइया दुविहा पण्णत्ता। त जहा—सुहुमतेउक्काइया य बादरतेउक्काइया य।

[२९ प्र] वे (पूर्वोक्त) तेजस्कायिक जीव किस प्रकार के है ?

[२९ उ] तेजस्कायिक जीव दो प्रकार के कहे गए है। वे इस प्रकार—सूक्ष्म तेजस्कायिक और बादर तेजस्कायिक।

३०. से किं त सुहुमतेउक्काइया ?

सुहुमतेउक्काइया दुविहा पन्नत्ता। तं जहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य। से त्त सुहुमतेउक्काइया।

[३० प्र] सूक्ष्म तेजस्कायिक जीव किस प्रकार के हैं ?

[३० उ] सूक्ष्म तेजस्कायिक जीव दो प्रकार के कहे गए है। वे इस प्रकार—पर्याप्तक और अपर्याप्तक। यह हुआ पूर्वोक्त सूक्ष्म तेजस्कायिक का वर्णन।

३१. [१] **से किं त बादरतेउक्काइया ?**

बादरतेउक्काइया अणेगविहा पण्णत्ता। त जहा—इगाले जाला मुम्मुरे अच्ची अलाए सुद्धागणी उक्का विज्जू असणी णिग्घाए सघरिससमुट्ठिए सूरकतमणिणिस्सिए, जे यावऽण्णे तहप्पगारा।

[३१-१ प्र] वे (पूर्वोक्त) बादर तेजस्कायिक किस प्रकार के है ?

[३१-१ उ] बादर तेजस्कायिक अनेक प्रकार के कहे गए है। वे इस प्रकार है—अगार, ज्वाला, (जाज्वल्यमान खैर आदि की ज्वाला अथवा अग्नि से सम्बद्ध दीपक की लौ), मुर्मुर (राख मे मिले हुए अग्निकण या भोभर), अर्चि (अग्नि से पृथक् हुई ज्वाला या लपट), अलात (जलती हुई मशाल या जलती लकडी), शुद्ध अग्नि (लोहे के गोले की अग्नि), उल्का, विद्युत् (आकाशीय विद्युत्), अशनि (आकाश से गिरने वाले अग्निकण), निर्घात (वैक्रिय सम्बन्धित अशनिपात या विद्युत्पात), सघर्ष-समुत्थित (अरणि आदि की लकडी की रगड से पैदा होने वाली अग्नि), और सूर्यकान्तमणि-नि सृत (सूर्य की प्रखर किरणो के सम्पर्क से सूर्यकान्तमणि से उत्पन्न होने वाली अग्नि)। इसी प्रकार की अन्य जो भी (अग्निया) हैं (उन्हे बादर तेजस्कायिको के रूप मे समझना चाहिए।)

[२] **ते समासतो दुविहा पन्नत्ता। त जहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य।**

[३१-२] ये (उपर्युक्त बादर तेजस्कायिक) सक्षेप मे दो प्रकार के कहे गए है। वे इस प्रकार—पर्याप्तक और अपर्याप्तक।

[३] **तत्थ ण जे ते अपज्जत्तगा ते ण असपत्ता।**

[३१-३] उनमे से जो अपर्याप्तक है, वे (पूर्ववत्) असम्प्राप्त (अपने योग्य पर्याप्तियो को पूर्णतया अप्राप्त) है।

[४] **तत्थ ण जे ते पज्जत्तगा एएसि ण वण्णादेसेणं गधादेसेण रसादेसेण फासादेसेण सहस्सग्गसो विहाणाइ, संखेज्जाइ जोणिप्पमुहसयसहस्साइं। पज्जत्तगणिस्साए अपज्जत्तगा वक्कमति—जत्थ एगो तत्थ णियमा असखेज्जा। से त्त बादरतेउक्काइया। से त्त तेउक्काइया।**

[३१-४] उनमे से जो पर्याप्तक है, उनके वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श की अपेक्षा से हजारो (सहस्रश) भेद होते है। उनके सख्यात लाख योनि-प्रमुख है। पर्याप्तक (तेजस्कायिको) के आश्रय से अपर्याप्त (तेजस्कायिक) उत्पन्न होते है। जहाँ एक पर्याप्तक होता है, वहाँ नियम से असख्यात अपर्याप्तक (उत्पन्न होते है।)

यह हुई बादर तेजस्कायिक जीवो की प्ररूपणा। (साथ ही) तेजस्कायिक जीवो की भी प्ररूपणा पूर्ण हुई।

विवेचन—तेजस्कायिक जीवो की प्रज्ञापना—प्रस्तुत तीन सूत्रो (सू. २९ से ३१ तक) मे तेजस्कायिक जीवो के मुख्य दो प्रकार तथा उनके भेद-प्रभेदो की प्ररूपणा की गई है।

वायुकायिक जीवो की प्रज्ञापना—

३२ से किं त वाउक्काइया ?

वाउक्काइया दुविहा पण्णत्ता । त जहा—सुहुमवाउक्काइया य बादरवाउक्काइया य ।

[३२ प्र] वायुकायिक जीव किस प्रकार के हे ?

[३३ उ] वायुकायिक जीव दो प्रकार के कहे गए है । वे इस प्रकार हे—सूक्ष्म वायुकायिक और बादर वायुकायिक ।

३३ से किं त सुहुमवाउक्काइया ?

सुहुमवाउक्काइया दुविहा पन्नत्ता । त जहा—पज्जत्तगसुहुमवाउक्काइया य अपज्जत्तगसुहुम-वाउक्काइया य । से त्त सुहुमवाउक्काइया ।

[३३ प्र] वे (पूर्वोक्त) सूक्ष्म वायुकायिक कैसे हैं ?

[३३ उ] सूक्ष्म वायुकायिक जीव दो प्रकार के कहे गए है । वे इस प्रकार है—पर्याप्तक सूक्ष्म वायुकायिक और अपर्याप्तक सूक्ष्म वायुकायिक ।

यह हुआ, वह (पूर्वोक्त) सूक्ष्म वायुकायिको का वर्णन ।

३४ [१] से किं त बादरवाउक्काइया ?

बादरवाउक्काइया अणेगविहा पण्णत्ता । त जहा—पाईणवाए पडीणवाए दाहिणवाए उदीण-वाए उड्ढवाए अहोवाए तिरियवाए विदिसीवाए वाउब्भामे वाउक्कलिया वायमडलिया उक्कलियावाए मडलियावाए गु जावाए झझावाए सवट्टगवाए घणवाए तणुवाए सुद्धवाए, जे यावऽण्णे तहप्पगारे ।

[३४-१ प्र] वे बादर वायुकायिक किस प्रकार के है ?

[३४-१ उ] बादर वायुकायिक अनेक प्रकार के कहे गए हैं । वे इस प्रकार है—पूर्वी वात (पूर्वदिशा से बहती हुई वायु), पश्चिमी वायु, दक्षिणी वायु, उत्तरी वायु, ऊर्ध्ववायु, अधोवायु, तिर्यग्वायु (तिरछी चलती हुई हवा), विदिग्वायु (विदिशा से आती हुई हवा), वातोद्भ्राम (अनियत-अनवस्थित वायु), वातोत्कलिका (समुद्र के समान प्रचण्ड गति से बहती हुई तूफानी हवा), वात-मण्डलिका (वातोली), उत्कलिकावात (प्रचुरतर उत्कलिकाओ—आधियो से मिश्रित हवा), मण्डलि-कावात (मूलत प्रचुर मण्डलिकाओ—गोल-गोल चक्करदार हवाओ से प्रारम्भ होकर उठने वाली वायु), गु जावात (गू जती हुई—सनसनाती हुई—चलने वाली हवा), झझावात (वृष्टि के साथ चलने वाला अधड), सवर्त्तकवात (खण्ड-प्रलयकाल मे चलने वाली वायु अथवा तिनके आदि उडाकर ले जाने वाली आधी), घनवात (रत्नप्रभादि पृथ्वियो के नीचे रही हुई सघन—ठोस वायु), तनुवात (घनवात के नीचे रही हुई पतली वायु) और शुद्धवात (मशक आदि मे भरी हुई या धीमी-धीमी बहने वाली हवा) ।

अन्य जितनी भी इस प्रकार की हवाएँ हैं, (उन्हे भी बादर वायुकायिक ही समझना चाहिए ।)

[२] ते समासतो दुविहा पण्णत्ता । त जहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य ।

[३४-२] वे (पूर्वोक्त बादर वायुकायिक) सक्षेप मे दो प्रकार के कहे गए है । यथा—पर्याप्तक और अपर्याप्तक ।

[३] तत्थ ण जे ते अपज्जत्तगा ते ण असपत्ता ।

[३४-३] इनमे से जो अपर्याप्तक है वे असम्प्राप्त (अपने योग्य पर्याप्तियो को पूर्ण नही किये हुए) है ।

[४] तत्थ ण जे ते पज्जत्तगा एतेसि णं वण्णादेसेण गधादेसेण रसादेसेण फासादेसेण सहस्सग्गसो विहाणाइ, सखेज्जाइ जोणिप्पमुहसयसहस्साइ । पज्जत्तगणिस्साए अपज्जत्तया वक्कमति—जत्थ एगो तत्थ णियमा असखेज्जा । से त्त बादरवाउक्काइया । से त्त वाउक्काइया ।

[३४-४] इनमे से जो पर्याप्तक है, उनके वर्ण की अपेक्षा से, गन्ध की अपेक्षा से, रस की अपेक्षा से और स्पर्श की अपेक्षा से हजारो प्रकार (विधान) होते है । इनके सख्यात लाख योनिप्रमुख होते है । (सूक्ष्म और बादर वायुकायिक को मिला कर ७ लाख योनियाँ है ।) पर्याप्तक वायुकायिक के आश्रय से, अपर्याप्तक उत्पन्न होते है । जहाँ एक (पर्याप्तक वायुकायिक) होता है वहाँ नियम से असख्यात (अपर्याप्तक वायुकायिक) होते है । यह हुआ—बादर वायुकायिक (का वर्णन ।) (साथ ही), वायुकायिक जीवो की (प्ररूपणा पूर्ण हुई ।)

विवेचन—वायुकायिक जीवो की प्रज्ञापना—प्रस्तुत तीन सूत्रो (सू ३२ से ३४ तक) मे वायुकायिक जीवो के दो मुख्य प्रकार तथा उनके भेद-प्रभेदो की प्ररूपणा की गई है ।

वनस्पतिकायिको की प्रज्ञापना—

३५. से किं तं वणस्सइकाइया ?

वणस्सइकाइया दुविहा पण्णत्ता । त जहा—सुहुमवणस्सइकाइया य बादरवणस्सतिकाइया य ।

[३५ प्र] वे (पूर्वोक्त) वनस्पतिकायिक जीव कैसे है ?

[३५ उ] वनस्पतिकायिक दो प्रकार के कहे गए हैं । वे इस प्रकार—सूक्ष्म वनस्पतिकायिक और बादर वनस्पतिकायिक ।

३६ से किं त सुहुमवणस्सइकाइया ?

सुहुमवणस्सइकाइया दुविहा पन्नत्ता । त जहा—पज्जत्तसुहुमवणस्सइकाइया य अपज्जत्तसुहुमवणस्सइकाइया य । से त्त सुहुमवणस्सइकाइया ।

[३६ प्र] वे सूक्ष्म वनस्पतिकायिक जीव किस प्रकार के हैं ?

[३६ उ] सूक्ष्म वनस्पतिकायिक जीव दो प्रकार के कहे गए हैं । वे इस प्रकार—पर्याप्तक-सूक्ष्मवनस्पतिकायिक और अपर्याप्तक सूक्ष्मवनस्पतिकायिक । यह हुआ सूक्ष्म वनस्पतिकायिक (का निरूपण) ।

३७ से किं त बादरवणस्सइकाइया ?

बादरवणस्सइकाइया दुविहा पण्णत्ता । त जहा—पत्तेयसरीरबादरवणप्फइकाइया य साहारणसरीरबादरवणप्फइकाइया य ।

[३७ प्र] अब प्रश्न है—बादर वनस्पतिकायिक कैसे है ?

[३७ उ] बादर वनस्पतिकायिक दो प्रकार के कहे गए है । वे इस प्रकार—प्रत्येकशरीर-बादरवनस्पतिकायिक और साधारणशरीर बादरवनस्पतिकायिक ।

३८ से किं त पत्तेयसरीरबादरवणप्फइकाइया ?

पत्तेयसरीरबादरवणप्फइकाइया दुवालसविहा पन्नत्ता । त जहा—

रुक्खा १ गुच्छा २ गुम्मा ३ लता य ४ वल्ली य ५ पव्वगा चेव ६ ।
तण ७ वलय ८ हरिय ९ ओसहि १० जलरुह ११ कुहणा य १२ बोद्धव्वा ॥१२॥

[३८ प्र] वे प्रत्येकशरीर-बादरवनस्पतिकायिक जीव किस प्रकार के है ?

[३८ उ] प्रत्येकशरीरबादरवनस्पतिकायिक जीव बारह प्रकार के कहे गए हैं । वे इस प्रकार से हैं—(१) वृक्ष (आम, नीम आदि), (२) गुच्छ (बैंगन आदि के पौधे), (३) गुल्म (नवमालिका आदि), (४) लता (चम्पकलता आदि), (५) वल्ली (कूष्माण्डी त्रपुषी आदि बेले), (६) पर्वग (इक्षु आदि पर्व-पोर-गाठ वाली वनस्पति), (७) तृण (कुश, कास, दूब आदि हरी घास), (८) वलय (जिनकी छाल वलय के आकार की गोल होती है, ऐसे केतकी, कदली आदि), (९) हरित (बथुआ आदि हरी लिलोती), (१०) औषधि (गेहूँ आदि धान्य, जो फल (फसल) पकने पर सूख जाते हैं ।), (११) जलरुह (पानी मे उगने वाली कमल, सिंघाडा, उदकावक आदि वनस्पति) और (१२) कुहण (भूमि को फोड कर उगने वाली वनस्पति), (ये बारह प्रकार के प्रत्येकशरीर-बादरवनस्पतिकायिक जीव) समझने चाहिए ।

३९ से किं तं रुक्खा ?

रुक्खा दुविहा पन्नत्ता । त जहा—एगट्ठिया य बहुबीयगा य ।

[३९ प्र] वे वृक्ष किस प्रकार के हैं ?

[३९ उ] वृक्ष दो प्रकार के कहे गए हैं—एकास्थिक (प्रत्येक फल मे एक गुठली या बीज वाले) और बहुबीजक (जिनके फल मे बहुत बीज हो) ।

४० से किं त एगट्ठिया ?

एगट्ठिया अणेगविहा पण्णत्ता । त जहा—

णिबब जबु कोसब साल अंकोल्ल पीलु सेलू य ।
सल्लइ मोयइ मालुय बउल पलासे करजे य ॥१३॥
पुत्तजीवयऽरिट्ठे बिभेलए हरडए य भल्लाए ।
उंबेभरिया खीरिणि बोधव्वे धायइ पियाले ॥१४॥

पूई करज सेण्हा (सण्हा) तह सोसवा य असणे य ।
पुण्णाग णागरुक्खे सोवण्णि तहा असोगे य ॥१५॥

जे यावऽण्णे तहप्पगारा ।

एतेसि णं मूला वि असखेज्जजीविया, कदा वि खधा वि तया वि साला वि पवाला वि । पत्ता पत्तेयजीविया । पुप्फा अणेगजीविया । फला एगट्ठिया । से त्त एगट्ठिया ।

[४० प्र] एकास्थिक (प्रत्येक फल मे एक बीज-गुठली वाले) वृक्ष किस प्रकार के होते है ?

[४० उ] एकास्थिकवृक्ष अनेक प्रकार के कहे गए है । वे इस प्रकार हैं—

[गाथार्थ—] नीम, आम, जामुन, कोशम्ब (कोशाम्र=जगली आम), शाल, अकोल्ल (अखरोट या पिश्ते का पेड), पीलू, शेलु (लिसोडा), सल्लकी (हाथी को प्रिय), मोचकी, मालुक, बकुल, (मौलसरी), पलाश (खाखरा या ढाक), करज (नक्तमाल) ॥१३॥

पुत्रजीवक (पितौझिया), अरिष्ट (अरीठा), बिभीतक (बहेडा), हरड या जियापोता, भल्लातक (भिलावा), उम्बेभरिया, खीरणि (खिरनी), धातकी और प्रियाल ॥१४॥

पूतिक (निम्ब—निम्बौली), करञ्ज, श्लक्ष्ण (या प्लक्ष) तथा शीशपा, अशन और पुन्नाग (नागकेसर), नागवृक्ष, श्रीपर्णी और अशोक, (ये एकास्थिक वृक्ष हैं ।)

इसी प्रकार के अन्य जितने भी वृक्ष हो, (जो विभिन्न देशो मे उत्पन्न होते है तथा जिनके फल मे एक ही गुठली हो, उन सबको एकास्थिक ही समझना चाहिए ।) ॥१५॥

इन (एकास्थिक वृक्षो) के मूल असख्यात जीवो वाले होते हैं, तथा कन्द भी, स्कन्ध भी, त्वचा (छाल) भी, शाखा (साल) भी और प्रवाल (कोपल) भी (असख्यात जीवो वाले होते हैं), किन्तु इनके पत्ते प्रत्येक जीव (एक-एक पत्ते मे एक-एक जीव) वाले होते हैं । इनके फल एकास्थिक (एक ही गुठली वाले) होते है । यह हुआ—उस (पूर्वोक्त) एकास्थिक वृक्ष का वर्णन ।

४१ से किं तं बहुबीयगा ?

बहुबीयगा अणेगविहा पण्णत्ता । त जहा—

अत्थिय तिंदु कविट्ठे अबाडग माउलिंग बिल्ले य ।
आमलग फणस दाडिम आसोत्थे उंबर वडे य ॥१६॥
णग्गोह णदिरुक्खे पिप्परि सयरी पिलुक्खरुक्खे य ।
काउबरि कुत्थु भरि बोधव्वा देवदाली य ॥१७॥
तिलए लउए छत्तोह सिरीसे सत्तिवण्ण दहिवन्ने ।
लोद्ध धव चंदणऽज्जुण णीमे कुडए कयबे य ॥१८॥

जे यावऽण्णे तहप्पगारा । एएसि ण मूला वि असखेज्जजीविया, कदा वि खधा वि तया वि साला वि पवाला वि । पत्ता पत्तेयजीविया । पुप्फा अणेगजीविया । फला बहुबीया । से त्त बहुबीयगा । से त्त रुक्खा ।

[४१-प्र] और वे (पूर्वोक्त) बहुबीजक वृक्ष किस प्रकार के है ?

[४१-उ] बहुबीजक वृक्ष अनेक प्रकार के कहे गए है। वे इस प्रकार से है—

[गाथार्थ—] अस्थिक, तेन्दु (तिन्दुक), कपित्थ (कवीठ), अम्बाडग, मातुलिग (विजौरा), बिल्व (बेल), आमलक (आँवला), पनस (अनन्नास), दाडिम (अनार), अश्वत्थ (पीपल), उदुम्बर (गुल्लर), वट (बड), न्यगोध (बडा बड), ॥१६॥

नन्दिवृक्ष, पिप्पली (पीपल), शतरी (शतावरी), प्लक्षवृक्ष, कादुम्बरी, कस्तुम्भरी और देवदाली (इन्हे बहुबीजक) जानना चाहिए ॥१७॥

तिलक लवक (लकुच—लीची), छत्रोपक, शिरीष, सप्तपर्ण, दधिपर्ण, लोध्र, धव, चन्दन, अर्जुन, नीप, कुरज (कुटक) और कदम्ब ॥१८॥

इसी प्रकार के और भी जितने वृक्ष है, (जिनके फल मे बहुत बीज हो, वे सब बहुबीजक वृक्ष समझने चाहिए।)

इन (बहुबीजक वृक्षो) के मूल असख्यात जीवो वाले होते है। इनके कन्द, स्कन्ध, त्वचा (छाल), शाखा और प्रवाल भी (असख्यात जीवात्मक होते है।) इनके पत्ते प्रत्येक जीवात्मक (प्रत्येक पत्ते मे एक-एक जीव वाले) होते है। पुष्प अनेक जीवरूप (होते है) और फल बहुत बीजो वाले (है।) यह हुआ बहुबीजक (वृक्षो का वर्णन।) (साथ ही) वृक्षो की प्ररूपणा (भी पूर्ण हुई।)

४२ से किं त गुच्छा ?

गुच्छा अणेगविहा पण्णत्ता। त जहा—

वाइगण सल्लई[1] बोडई य तह कच्छुरी[2] य जासुमणा।
रूवी आढइ नीली तुलसी तह माउलिंगी य ॥१९॥
कत्थु भरि[3] पिप्पलिया अतसी बिल्ली य कायमाई या।
चुच्चु[4] पडोला[5] कदलि बाउच्चा[6] वत्थुले बदरे ॥२०॥
पत्तउर सीयउरए हवति तहा जवसए य बोधव्वे।
णिग्गुंडि[7] अक्क तूवरि अट्टइ चेव तलऊडा ॥२१॥
सण वाण[8] कास मद्दग[9] अग्घाडग साम सिंदुवारे य।
करमद्द अद्दरूसग करीर एरावण महित्थे ॥२२॥
जाउलग माल[10] परिली गयमारिणि कुच्चकारिया[11] भडी[12]।
जावइ[13] केयइ तह गंज पाडला दासी अकोल्ले[14] ॥२३॥

जे यावऽण्णे तहप्पगारा। से त्त गुच्छा।

[४२ प्र] वे (पूर्वोक्त) गुच्छ किस प्रकार के होते है ?

पाठान्तर—१ थु डई। २ कत्थुरी य जीमुमणा। ३ कच्छु भरी। ४ वुच्चू। ५ पडोलकदे। ६ विउव्वा वत्थलदेरे। ७ णिग्गु मियग तवरि, अत्थइ चेव तलउदाडा। ८ पाण। ९ मुद्दग। १० मोल। ११ कुव्वकारिया। १२ भडा। १३ जोवइ। १४ अकोले।

[४२ उ] गुच्छ अनेक प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं—वेंगन, शल्यकी, थोडी (अथवा थुण्डकी) तथा कच्छुरी, जासुमना, रूपी, आढकी, नीली, तुलसी तथा मातुलिंगी ॥१९॥ कस्तुम्भरी (धनिया), पिप्पलिका, अलसी, विल्वी, कायमादिका, चुच्चू (वुच्चु), पटोला, कन्दली, बाउच्चा (विकुर्वा), बस्तुल तथा वादर ॥२०॥ पत्रपूर, शीतपूरक तथा जवसक, एवं निर्गुण्डी (निलगु), अर्क (मृगाक), तूवरी (तबरी), अट्टकी (अस्तकी) और तलपुटा (तलउडादा) भी समझना चाहिए ॥२१॥ तथा सण (शण), वाण (पाण), काश (कास), मद्रक (मुद्रक), आघ्रातक, श्याम, सिन्दुवार और करमर्द, आर्द्र डूसक (अडूसा) करीर (कैर), ऐरावण तथा महित्थ ॥२२॥ जातुलक, मोल, परिली, गजमारिणी, कुर्च्चकारिका (कुव्वंकारिका), भडी (भड), जावकी (जीवकी), केतकी तथा गज, पाटला, दासी और अकोल्ल ॥२३॥

अन्य जो भी इसी प्रकार के (इन जैसे) हैं, (वे सब गुच्छ समझने चाहिए।) यह हुआ गुच्छ का वर्णन।

४३. से किं त गुम्मा ?

गुम्मा अणेगविहा पण्णत्ता। तं जहा—

> **सेरियए[1] णोमालिय कोरंटय बंधुजीवग मणोज्जे।**
> **पीईय पाण कणइर कुज्जय तह सिंदुवारे य ॥२४॥**
> **जाई मोग्गर तह जूहिया य तह मल्लिया य वासती।**
> **वत्थुल कच्छुल[2] सेवाल गंठि मगदंतिया चेव ॥२५॥**
> **चंपगजीती णवणीइया[3] य कुंदो तहा महाजाई।**
> **एवमणेगागारा हवंति गुम्मा मुणेयव्वा ॥२६॥**

से त्त गुम्मा।

[४३ प्र] वे (पूर्वोक्त) गुल्म किस प्रकार के हैं ?

[४३ उ] गुल्म अनेक प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार—"सेरितक (सेनतक), नवमालती, कोरण्टक, बन्धुजीवक, मनोद्य, पीतिक (पितिक), पान, कनेर (कर्णिकार), कुर्जक (कुंजक), तथा सिन्दुवार ॥२४॥ जाती (जाई), मोगरा, जूही (यूथिका), तथा मल्लिका और वासन्ती, वस्तुल, कच्छुल (कस्थुल), शैवाल, ग्रन्थि एवं मृगदन्तिका ॥२५॥ चम्पक, जीती, नवनीतिका, कुन्द, तथा महाजाति, इस प्रकार अनेक आकार-प्रकार के होते हैं, (उन सबको) गुल्म समझना चाहिए ॥२६॥ यह हुई गुल्मो की प्ररूपणा।

४४. से किं त लयाओ ?

लयाओ अणेगविहाओ पण्णत्ताओ। त जहा—

> **पउमलता नागलता असोग-चंपयलता य चूतलता।**
> **वणलय वासंतिलया अइमुत्तय-कुंद-सामलता ॥२७॥**

जे यावऽण्णे तहप्पगारा। से त्त लयाओ।

पाठान्तर—१ सेणयए। २ कत्थुल। ३ णीइया।

[४४ प्र] वे (पूर्वोक्त) लताएँ किस प्रकार की होती है ?

[४४ उ] लताएँ अनेक प्रकार की कही गई हैं। यथा—पद्मलता, नागलता, अशोकलता, चम्पकलता, और चूतलता, वनलता, वासन्तीलता, अतिमुक्तकलता, कुन्दलता और श्यामलता ॥२७॥

और जितनी भी इस प्रकार की हैं, (उन्हे लता समझना चाहिए।) यह हुआ उन लताओ का वर्णन।

४५ से किं त वल्लीओ ?

वल्लीओ अणेगविहाओ पण्णत्ताओ। त जहा—

पूसफली कालिंगी तुबी तउसी य एलवालुकी।
घोसाडई[1] पडोला पचगुलिया य णालीया[2] ॥२८॥
कगूया कद्दुइया[3] कक्कोडइ कारियल्लई सुभगा।
कुवधा(या)[4] य वागली पाववल्लि तह देवदारू[5] य ॥२९॥
अप्फोया[6] अइमुत्तय णागलया कण्ह-सूरवल्ली य।
सघट्ट सुमणसा वि य जासुवण कुविंदवल्ली य ॥३०॥
मुद्दिय अप्पा[7] भल्ली छीरविराली[8] जियति[9] गोवाली।
पाणी मासावल्ली गुजावल्ली[10] य वच्छाणी[11] ॥३१॥
ससबिंदु गोत्तफुसिया[12] गिरिकण्णइ मालुया य अजणई।
दहफुल्लइ[13] कागणि[14] मोगली य तह अक्कबोंदी य ॥ ३२॥

जे यावऽण्णे तहप्पगारा। से त्त वल्लीओ।

[४५ प्र] वे (पूर्वोक्त) वल्लिया किस प्रकार की होती है ?

[४५ उ] वल्लिया अनेक प्रकार की कही गई है। वे इस प्रकार हैं—

[गाथार्थ—] पूसफली, कालिंगी (जगली तरबूज की बेल) तुम्बी, त्रपुषी (ककडी), एलवालुकी (एक प्रकार की ककडी), घोषातकी, पटोला, पचागुलिका और नालीका (आयनीली) ॥२८॥ कगूका, कुद्दकिका (कण्डकिका), कर्कोटकी (ककोडी या ककडी), कारवेल्लकी (कारेली), सुभगा, कुवधा (कुवया -कुयवाया) और वागली, पापवल्ली, तथा देवदारु (देवदाली) ॥२९॥ अप्फोया (अप्फेया), अतिमुक्तका, नागलता और कृष्णसूरवल्ली, सघट्टा और सुमनसा भी तथा जासुवन और कुविन्दवल्ली ॥३०॥ मुद्वीका, अप्पा, भल्ली (अम्बावली), क्षीरविराली (कृष्णक्षीराली), जीयती (जयन्ती), गोपाली, पाणी, मासावल्ली, गुजावल्ली, (गुजोवल्ली) और वच्छाणी(विच्छाणी) ॥३१॥ शशबिन्दु, गोत्रस्पृष्टा (ससिवी, द्विगोत्रस्पृष्टा), गिरिकर्णकी, मालुका और अजनकी, दहस्फोटकी (दधिस्फोटकी), काकणी (काकली) और मोकली तथा अर्कबोन्दी ॥३२॥

पाठान्तर—१ घोसाडइ पडोला, घोसाई य पडोला। २ आयणीली य। ३ कडुइया। ४ कुवया, कुयवाया। ५ देवदाली य। ६ अप्फेया। ७ अम्बावल्ली। ८ किण्हछीराली। ९ जयती। १० गुजीवल्ली। ११ विच्छाणी। १२ ससिवी दुगोत्तफुसिया। १३ दहिफोल्लइ। १४ काकली।

इसी प्रकार की अन्य जितनी भी (वनस्पतिया है, उन सबको वल्लिया समझना चाहिए ।) यह हुई, वल्लियो की प्ररूपणा ।

४६ से किं त पव्वगा ?

पव्वगा अणेगविहा पन्नत्ता । त जहा—

इक्खू य इक्खुवाडी वीरण तह एक्कडे[1] भमासे य ।
सु ठे (सु बे) सरे य वेत्ते तिमिरे सतपोरग णले य ।।३३।।
वसे वेलू[2] कणए ककावसे य चाववसे य ।
उदए कुडए विमए[3] कडावेलू य कल्लाणे ।।३४।।

जे यावऽण्णे तहप्पगारा । से त्त पव्वगा ।

[४६ प्र] वे पर्वक (वनस्पतिया) किस प्रकार की है ?

[४६ उ] पर्वक वनस्पतिया अनेक प्रकार की कही गई है । वे इस प्रकार है—

[गाथार्थ—] इक्षु और इक्षुवाटी, वीरण (वीरुणी) तथा एक्कड, भमास (माष), सू ठ (सुम्ब), शर और वेत्र (बेत), तिमिर, शतपर्वक और नल ।।३३।। वश (बास), वेलू (वेच्छू), कनक, ककावश और चापवश, उदक, कुटज, विमक (विसक), कण्डा, वेल (वेल्ल) और कल्याण ।।३४।।

और भी जो इसी प्रकार की वनस्पतिया है, (उन्हे पर्वक मे ही समझनी चाहिए ।) यह हुई, उन पर्वको की प्ररूपणा ।

४७ से किं त तणा ?

तणा अणेगविहा पण्णत्ता । त जहा—

सेडिय भत्तिय[4] होत्तिय डब्भ कुसे पव्वए य पोडइला ।
अज्जुण असाढए रोहियसे सुयवेय खीरसुसे[5] ।।३५।।
एरडे कुरुविंदे कक्खड[6] सुंठे तहा विभगू य ।
महुरतण लुणय सिप्पिय बोधव्वे सु कलितणा य ।।३६।।

जे यावऽण्णे तहप्पगारा । से त्त तणा ।

[४७-प्र] वे (पूर्वोक्त) तृण कितने प्रकार के है ?

[४६-उ] तृण अनेक प्रकार के कहे गए है । वे इस प्रकार—

[गाथार्थ—] सेटिक (सेंडिक), भक्तिक (मात्रिक), होत्रिक, दर्भ, कुश और पर्वक, पोटकिला (पाटकिला—पोटलिका), अर्जु न, आषाढक, रोहिताश, शुकवेद और क्षीरतुष (क्षीरभुसा) ।।३५।। एरण्ड, कुरुविन्द, कक्षट (करकर), सू ठ (मुट्ठ), विभगू और मधुरतृण, लवणक (क्षुरक), शिल्पिक (शुक्तिक)

पाठान्तर—१ एक्कडे य मासे । २ वेच्छू । ३ विसए, कडावेल्ले ।
४ मतिय । ५ खीरभुसे । ६ कस्कर ।

और सु कलीतृण (सुकलीवृण), (इन्हे) तृण जानना चाहिए ।।३६।। जो अन्य इसी प्रकार के है (उन्हे भी तृण समझना चाहिए ।) यह हुई उन (पूर्वकथित) तृणो की प्ररूपणा ।

४८ से किं त वलया ?

वलया अणेगविहा पण्णत्ता । त जहा—

ताल तमाले तक्कलि तेयलि[1] सारे य सारकल्लाणे ।
सरले जावति केयइ कदली[2] तह धम्मरुक्खे य ।।३७।।
भुयरुक्ख हिंगुरुक्खे लवगरुक्खे य होति बोधव्वे ।
पूयफली खज्जूरी बोधव्वा नालिएरी य ।।३८।।

जे यावऽण्णे तहप्पगारा । से त्त वलया ।

[४८ प्र] वे वलय (जाति की वनस्पतिया) किस प्रकार की है ।

[४८ उ] वलय-वनस्पतिया अनेक प्रकार की कही गई हैं । वे इस प्रकार हैं—

[गाथार्थ—] ताल (ताड), तमाल, तर्कली (तक्कली), तेतली (तोतली), सार (शाली), सारकल्याण (सारकत्राण), सरल, जावती (जावित्री), केतकी (केवडा), कदली (केला) और धर्मवृक्ष (चर्मवृक्ष) ।।३७।। भुजवृक्ष (मुचवृक्ष), हिंगुवृक्ष, और (जो) लवगवृक्ष होता है, (इसे वलय) समझना चाहिए । पूगफली (सुपारी), खजूर और नालिकेरी (नारियल), (इन्हे भी वलय) समझना चाहिए ।।३८।।

४९ से किं त हरिया ?

हरिया अणेगविहा पण्णत्ता । त जहा—

अज्जोरुह वोडाणे हरितग तह तंदुलेज्जग तणे य ।
वत्थुल पारग[3] मज्जार पाइ बिल्ली य पालक्का ।।३९।।
दगपिप्पली य दव्वी सोत्थियसाए तहेव मडुक्की ।
मूलग सरिसव अंबिलसाए य जियतए चेव ।।४०।।
तुलसी कण्ह उराले फणिज्जए अज्जए य भूयणए ।
चोरग दमणग मरुयग सयपुप्फिंदीवरे य तहा ।।४१।।

जे यावऽण्णे तहप्पगारा । से त्त हरिया ।

[४९ प्र] वे (पूर्वोक्त) हरित (वनस्पतिया) किस प्रकार की है ?

[४९ उ] हरित वनस्पतिया अनेक प्रकार की कही गई है । वे इस प्रकार है—

[गाथार्थ—] अद्यावरोह, व्युदान, हरितक तथा तान्दुलेयक (चन्दलिया), तृण, वस्तुल (बथुआ), पारक (पर्वक), मार्जार, पाती, बिल्वी और पाल्यक (पालक) ।।३९।। दकपिप्पली और दर्वी,

---

पाठान्तर—१ तोयली साली य सारकत्ताणे । २ कयली तह चम्मरुक्खे य । ३ पोरग मज्जार याइ ।

स्वस्तिक शाक (सौत्रिक शाक), तथा माण्डुकी, मूलक, सर्षप (सरसो का साग), अम्लशाक (अम्ल साकेत) और जीवान्तक ॥४०॥ तुलसी, कृष्ण, उदार, फानेयक और आर्यक (आर्पक), भुजनक (भूसनक), चोरक (वारक), दमनक, मरुचक, शतपुष्पी तथा इन्दीवर ॥४१॥

अन्य जो भी इस प्रकार की वनस्पतिया हैं, (वे सब हरित (हरी या लिलौती) के अन्तर्गत समझनी चाहिए।)

यह हुई उन हरित (वनस्पतियो की) प्ररूपणा।

५०. से किं त ओसहीओ ?

ओसहीओ अणेगविहाओ पण्णत्ताओ। त जहा—

साली १ वीही २ गोधूम ३ [1]जवजवा ४ कल ५ मसूर ६ तिल ७ मुग्गा ८।

मास ९ निप्फाव १० कुलत्थ ११ अलिसद १२ सतीण १३ पलिमथा १४ ॥४२॥

अयसी १५ कुसुंभ १६ कोद्दव १७ कगू १८ रालग १९ [2]वरसामग २० कोदूसा २१।

सण २२ सरिसव २३ मूलग २४ बीय २५ जा यावऽण्णा तहप्पगारा ॥४३॥

[५० प्र] वे ओषधिया किस प्रकार की होती हैं ?

[५० उ] ओषधिया अनेक प्रकार की कही गई है। वे इस प्रकार हैं—

[गाथार्थ—] १ शाली (धान), २ व्रीहि (चावल), ३ गोधूम (गेहूँ), ४ जौ (यवयव), ५ कलाय, ६ मसूर, ७ तिल, ८ मूग, ९ माष (उडद), १० निष्पाव, ११ कुलत्थ (कुलथ), ११ अलिसन्द, १३ सतीण, १४ पलिमन्थ ॥४२॥ १५ अलसी, १६ कुसुम्भ, १७ कोदो (कोद्रव), १८ कगू, १९ राल (रालक), २० वरश्यामाक (सावा धान) और २१ कोदूस (कोदूश), २२ शण-सन, २३ सरसो (दाने), २४ मूलक बीज, ये और इसी प्रकार की अन्य जो भी (वनस्पतिया) है, (उन्हे भी ओषधियो मे गिनना चाहिए।) ॥४३॥

यह हुआ ओषधियो का वर्णन।

५१. से किं त जलरुहा ?

जलरुहा अणेगविहा पण्णत्ता। त जहा—उदए अवए पणए सेवाले कलबुया हढे कसेरुया कच्छा भाणी उप्पले पउमे कुमुदे नलिणे सुभए सोगधिए पोंडरीए महापोंडरीए सयपत्ते सहस्सपत्ते कल्हारे कोकणदे अरविंदे तामरसे भिसे भिसमुणाले पोक्खले पोक्खलत्थिभए,[3] जे यावऽण्णे तहप्पगारा। से त्त जलरुहा।

[५१ प्र] वे जलरुह (रूप वनस्पतिया) किस प्रकार की है ?

[५१ उ] जल मे उत्पन्न होने वाली (जलरुह) वनस्पतिया अनेक प्रकार की कही गई हैं। वे इस प्रकार हैं—उदक, अवक, पनक, शैवाल, कलम्बुका, हढ (हठ), कसेरुका (कसेरू), कच्छा, भाणी, उत्पल, पद्म, कुमुद, नलिन, सुभग, सौगन्धिक, पुण्डरीक, महापुण्डरीक, शतपत्र, सहस्रपत्र,

पाठान्तर—१ जव जवजवा। २ वरट्ट साम। ३ पोक्खलत्थिभुए।

कल्हार, कोकनद, अरविन्द, तामरस कमल, भिम, भिसमृणाल, पुष्कर और पुष्करास्तिभज (पुष्करास्तिभुक्)। इसो प्रकार की और भी (जल मे उत्पन्न होने वाली जो वनस्पतिया है, उन्हे जलरुह के अन्तर्गत समझना चाहिए।) यह हुआ, जलरुहो का निरूपण।

५२. से किं त कुहणा ?

कुहणा अणेगविहा पण्णत्ता। त जहा—आए काए कुहणे कुणक्के दव्वहलिया सप्फाए [1]सज्जाए सित्ताए [2]वसी णहिया कुरए, जे यावऽण्णे तहप्पगारा। से त्त कुहणा।

[५२ प्र] वे कुहण वनस्पतिया किस प्रकार की है ?

[५२ उ] कुहण वनस्पतिया अनेक प्रकार की कही गई है। वे इस प्रकार—आय, काय, कुहण, कुनक्क, द्रव्यहलिका, शफाय, सद्यात (स्वाध्याय ?), सित्राक (छत्रोक) और वशी, नहिता, कुरक (वशीन, हिताकुरक)। इसी प्रकार की जो अन्य वनस्पतिया उन सवको कुहण के अन्तर्गत समझना चाहिए। यह हुआ कुहण वनस्पतियो का वर्णन।

५३. णाणाविहसठाणा रुक्खाण एगजीविया पत्ता।
खधो वि एगजीवो ताल-सरल-नालिएरीण ॥४४॥
जह सगलसरिसवाण सिलेसमिस्साण वट्टिया वट्टी।
पत्तेयसरीराण तह होंति सरीरसघाया ॥४५॥
जह वा तिलपप्पडिया बहुएहिं तिलेहिं सहता सती।
पत्तेयसरीराण तह होंति सरीरसंघाया ॥४६॥

से त्त पत्तेयसरीरबादरवणप्फइकाइया।

[५३ गाथार्थ—] वृक्षो (उपलक्षण से गुच्छ, गुल्म आदि) की आकृतिया नाना प्रकार की होती हैं। इनके पत्ते एकजीवक (एक जीव से अधिष्ठित) होते है, और स्कन्ध भी एक जीव वाला होता है। (यथा—) ताल, सरल, नारिकेल वृक्षो के पत्ते और स्कन्ध एक-एक जीव वाले होते है ॥३१॥ 'जैसे श्लेष द्रव्य से मिश्रित किये हुए समस्त सर्षपो (सरसो के दोनो) की वट्टी (मे सरसो के दाने पृथक्-पृथक् होते हुए भी) एकरूप प्रतीत होती है, वैसे ही (रागद्वेष से उपचित विशिष्टकर्मश्लेष से) एकत्र हुए प्रत्येकशरीरी जीवो के (शरीर भिन्न होते हुए भी) शरीरसघात रूप होते हैं ॥४५॥ जैसे तिलपपडी (तिलपट्टी) मे (प्रत्येक तिल अलग-अलग प्रतीत होते हुए भी) बहुत-से तिलो के सहत (एकत्र) होने पर होती है, वैसे ही प्रत्येकशरीरी जीवो के शरीरसघात होते हैं ॥४६॥

इस प्रकार उन (पूर्वोक्त) प्रत्येकशरीर बादरवनस्पतिकायिक जीवो की प्रज्ञापना पूर्ण हुई।

५४. [१] से किं त साहारणसरीरबादरवणस्सइकाइया ?

साहारणसरीरबादरवणस्सइकाइया अणेगविहा पण्णत्ता। त जहा—

अवए पणए सेवाले लोहिणी [3]मिहू त्थिहू त्थिभगा।
असकण्णी सीहकण्णी सिउढि तत्तो मुसुढी य ॥४७॥

पाठान्तर—१ सज्झाए छत्तोए। २ वसीण हिताकुरए। ३ मिहुत्थु हुत्थिभागा य।

रुरु कडुरिया [1]जारू छीरविराली तहेव किट्टीया[2] ।
हलिद्दा सिंगबेरे य आलूगा मूलए इ य ।।४८।।
[3]कबू य कण्हकडबू महुओ वलई तहेव महुसिंगी ।
णिरुहा सप्पसुयधा छिण्णरुहा चेव बीयरुहा ।।४९।।
पाढा [4]मियवालु की महुररसा चेव [5]रायवल्ली य ।
पउमा य माढरी दंती चडी किट्टि त्ति यावरा ।।५०।।
मासपण्णी मुग्गपण्णी जीवियरसभेय रेणुया चेव ।
काओली खीरकाओली तहा भगी णही इ य ।।५१।।
किमिरासि भद्दमुत्था णगलई [6]पलुगा इय ।
किण्हे पउले य हढे हरतणुया चेव लोयाणी ।।५२।।
कण्हे कदे वज्जे सूरणकदे तहेव खल्लूडे ।
एए अणतजीवा, जे यावऽण्णे तहाविहा ।।५३।।

[५४-१ प्र] वे (पूर्वोक्त) साधारणशरीर बादरवनस्पतिकायिक जीव किस प्रकार के है ?

[५४-१ उ] साधारणशरीर बादरवनस्पतिकायिक जीव अनेक प्रकार के कहे गए है । वे इस प्रकार—

[गाथार्थं—] अवक, पनक, शैवाल, लोहिनी, स्निहूपुष्प (थोहर का फूल), मिहू स्तिहू (मिहूत्यु), हस्तिभागा और अश्वकर्णी, सिंहकर्णी, सिउण्डी (शितुण्डी), तदनन्तर मुसुण्ढी ।।४७।। रुरु, कण्डुरिका (कुण्डरिका या कुन्दरिका), जीरु (जारु), क्षीरविरा(डा)ली, तथा किट्टिका, हरिद्रा (हल्दी), शृ गबेर (आदा या अदरक) और आलू एव मूला ।।४८।। कम्बू (काम्बोज) और कृष्णकटबू (कर्णोत्कट), मधुक (सुमात्रक), वलकी तथा मधुशृ गी, नीरूह, सर्पसुगन्धा, छिन्नरुह, और बीजरुह ।।४९।। पाढा, मृगवालु की, मधुररसा और राजपत्री, तथा पद्मा, माठरी, दन्ती, इसी प्रकार चण्डी और इसके बाद किट्टी (कृष्टि) ।।५०।। माषपर्णी, मुद्गपर्णी, जीवित, रसभेद, (जीवितरसह) और रेणुका, काकोली (काचोली), क्षीरकाकोली, तथा भृ गी, (भगी), इसी प्रकार नखी ।।५१।। कृमिराशि, भद्रमुस्ता (भद्रमुक्ता), नागलकी, पलुका (पेलुका), इसी प्रकार कृष्णप्रकुल, और हड, हरतनुका तथा लोयाणी ।।५२।। कृष्णकन्द, वज्रकन्द, सूरणकन्द, तथा खल्लूर, ये (पूर्वोक्त) अनन्तजीव वाले हैं । इनके अतिरिक्त और जितने भी इसी प्रकार के हैं, (वे सब अनन्त जीवात्मक हैं ।) ।।५३।।

[२] तणमूल कदमूले वसमूले त्ति यावरे ।
सखेज्जमसखेज्जा बोधव्वाऽणतजीवा य ।।५४।।
सिंघाडगस्स गुच्छो अणेगजीवो उ होति नायव्वो ।
पत्ता पत्तेयजिया, दोण्णि य जीवा फले भणिता ।।५५।।

---

१ जीरु । २ किट्टीया । ३ कबूय कन्नुक्कइ मुमत्तओ । ४ मियमालुकी । ५ रायवत्ती । ६ वेलुगा इय ।

[५४-२] तृणमूल, कन्दमूल और वशीमूल, ये और इसी प्रकार के दूसरे सख्यात, असस्यात अथवा अनन्त जीव वाले समझने चाहिए। सिंघाडे का गुच्छ अनेक जीव वाला होता है, यह जानना चाहिए और इसके पत्ते प्रत्येक जीव वाले होते हैं। इसके फल मे दो-दो जीव कहे गए है ॥५५॥

[३] जस्स मूलस्स भग्गस्स समो भगो पदीसए।
अणतजीवे उ से मूले, जे यावऽण्णे तहाविहा ॥५६॥
जस्स कदस्स भग्गस्स समो भगो पदीसए।
अणतजीवे उ से कदे, जे यावऽण्णे तहाविहा ॥५७॥
जस्स खधस्स भग्गस्स समो भगो पदीसई।
अणतजीवे उ से खधे, जे यावऽण्णे तहाविहा ॥५८॥
जीसे तयाए भग्गाए समो भगो पदीसए।
अणतजीवा तया सा उ, जा यावऽण्णा तहाविहा ॥५९॥
जस्स सालस्स भग्गस्स समो भगो पदीसई।
अणतजीवे उ से साले, जे यावऽण्णे तहाविहा ॥६०॥
जस्स पवालस्स भग्गस्स समो भगो पदीसई।
अणतजीवे पवाले से, जे यावऽण्णे तहाविहा ॥६१॥
जस्स पत्तस्स भग्गस्स समो भगो पदीसई।
अणतजीवे उ से पत्ते, जे यावऽण्णे तहाविहा ॥६२॥
जस्स पुप्फस्स भग्गस्स समो भगो पदीसई।
अणतजीवे उ से पुप्फे, जे यावऽण्णे तहाविहा ॥६३॥
जस्स फलस्स भग्गस्स समो भगो पदीसती।
अणतजीवे फले से उ, जे यावऽण्णे तहाविहा ॥६४॥
जस्स बीयस्स भग्गस्स समो भंगो पदीसई।
अणतजीवे उ से बीए, यावऽण्णे तहाविहा ॥६५॥

[५४-३] जिस मूल को भग करने (तोडने) पर समान (चक्राकार) दिखाई दे, वह मूल अनन्त जीव वाला है। इसी प्रकार के दूसरे जितने भी मूल हो, उन्हे भी अनन्तजीव समझना चाहिए। ॥५६॥ जिस टूटे या तोडे हुए कन्द का भग समान दिखाई दे, वह कन्द अनन्तजीव वाला है। इसी प्रकार के दूसरे जितने भी कन्द हो, उन्हे अनन्तजीव समझना चाहिए ॥५७॥ जिस टूटे हुए स्कन्ध का भग समान दिखाई दे, वह स्कन्ध (भी) अनन्तजीव वाला है। इसी प्रकार के दूसरे स्कन्धो को (भी अनन्तजीव समझना चाहिए) ॥५८॥ जिस छाल (त्वचा) के टूटने पर उसका भंग सम दिखाई दे, वह छाल भी अनन्तजीव वाली है। इसी प्रकार की अन्य छाल भी (अनन्तजीव वाली समझनी चाहिए) ॥५९॥ जिस टूटी हुई शाखा (साल)का भग समान दृष्टिगोचर हो, वह शाखा भी अनन्तजीव वाली है। इसी प्रकार की जो अन्य (शाखाएँ) हो, (उन्हे भी अनन्तजीव वाली समझो) ॥ ६० ॥

टूटे हुए जिस प्रवाल (कोपल) का भग समान दीखे, वह प्रवाल भी अनन्तजीव वाला है। इसी प्रकार के जितने भी अन्य (प्रवाल) हो, (उन्हे अनन्तजीव वाले समझो) ॥६१॥ टूटे हुए जिस पत्ते का भग समान दिखाई दे, वह पत्ता (पत्र) भी अनन्तजीव वाला है। इसी प्रकार जितने भी अन्य पत्र हो, उन्हे अनन्तजीव वाले समझने चाहिए ॥६२॥ टूटे हुए जिस फूल (पुष्प) का भग समान दिखाई दे, वह भी अनन्तजीव वाला है। इसी प्रकार के अन्य जितने भी पुष्प हो, उन्हे अनन्तजीव वाले समझने चाहिए ॥६३॥ जिस टूटे हुए फल का भग सम दिखाई दे, वह फल भी अनन्त जीव वाला है। इसी प्रकार के अन्य जितने भी फल हो, उन्हे अनन्तजीव वाले समझने चाहिए ॥६४॥ जिस टूटे हुए बीज का भग समान दिखाई दे, वह बीज भी अनन्तजीव वाला है। इसी प्रकार के अन्य जितने भी बीज हो, उन्हे अनन्तजीव वाले समझने चाहिए ॥६५॥

[४] जस्स मूलस्स भग्गस्स हीरो भगे पदीसई।
परित्तजीवे उ से मूले, जे यावऽण्णे तहाविहा ॥६६॥
जस्स कदस्स भग्गस्स हीरो भगे पदीसई।
परित्तजीवे उ से कदे, जे यावऽण्णे तहाविहा ॥६७॥
जस्स खधस्स भग्गस्स हीरो भगे पदीसई।
परित्तजीवे उ से खधे, जे यावऽण्णे तहाविहा ॥६८॥
जीसे तयाए भग्गाए हीरो भगे पदीसई।
परित्तजीवा तया सा उ, जा यावऽण्णा तहाविहा ॥६९॥
जस्स सालस्स भग्गस्स हीरो भगे पदीसती।
परित्तजीवे उ से साले, जे यावऽण्णे तहाविहा ॥७०॥
जस्स पवालस्स भग्गस्स हीरो भगे पदीसति।
परित्तजीवे पवाले उ, जे यावऽण्णे तहाविहा ॥७१॥
जस्स पत्तस्स भग्गस्स हीरो भगे पदीसति।
परित्तजीवे उ से पत्ते, जे यावऽण्णे तहाविहा ॥७२॥
जस्स पुप्फस्स भग्गस्स हीरो भगे पदीसति।
परित्तजीवे उ से पुप्फे, जे यावऽण्णे तहाविहा ॥७३॥
जस्स फलस्स भग्गस्स हीरो भगे पदीसति।
परित्तजीवे फले से उ, जे यावऽण्णे तहाविहा ॥७४॥
जस्स बीयस्स भग्गस्स हीरो भगे पदीसति।
परित्तजीवे उ से बीए, जे यावऽण्णे तहाविहा ॥७५॥

[५४-४] टूटे हुए जिस मूल का भग(-प्रदेश) हीर (विषमछेद) दिखाई दे, वह मूल प्रत्येक (परित्त) जीव वाला है।, इसी प्रकार के अन्य जितने भी मूल हो, (उन्हे भी प्रत्येकजीव वाले समझने चाहिए) ॥६६॥ टूटे हुए जिस कन्द के भग-प्रदेश मे हीर (विषमछेद) दिखाई दे, वह कन्द

प्रत्येक जीव वाला है । इसी प्रकार के अन्य जितने भी (कन्द हो, उन्हे प्रत्येकजीव वाले समझो) ।।६७।। टूटे हुए जिस स्कन्ध के भगप्रदेश मे हीर दिखाई दे, वह स्कन्ध प्रत्येकजीव वाला है । इसी प्रकार के और भी जितने स्कन्ध हो, (उन्हे भी प्रत्येकजीव वाले समझो ।) ।।६८।। जिस छाल के टूटने पर उसके भग (प्रदेश) मे हीर दिखाई दे, वह छाल प्रत्येक जीव वाली है । इसी प्रकार की अन्य जितनी भी छाले (त्वचाएँ) हो, (उन्हे भी प्रत्येकजीव वाले समझो ।) ।।६९।। जिस शाखा के टूटने पर उसके भग (प्रदेश) मे विपम छेद दीखे, वह शाखा प्रत्येक जीव वाली है । इसी प्रकार की अन्य जितनी भी शाखाएँ हो, (उन्हे भी प्रत्येकजीव वाली समझनी चाहिए ।) ।।७०।। जिस प्रवाल के टूटने पर उसके भगप्रदेश मे विषमछेद दिखाई दे, वह प्रवाल भी प्रत्येकजीव वाला है । इसी प्रकार के और भी जितने प्रवाल हो, (उन्हे प्रत्येकजीव वाले समझो ।) ।।७१।। जिस टूटे हुए पत्ते के भग-प्रदेश मे विषमछेद दिखाई दे, वह पत्ता प्रत्येकजीव वाला है । इसी प्रकार के और भी जितने पत्ते हो, (उन्हे भी प्रत्येकजीव वाले समझो ।) ।।७२।। जिस पुष्प के टूटने पर उसके भगप्रदेश मे विषम-छेद दिखाई दे, वह पुष्प प्रत्येकजीव वाला है । इसी प्रकार के और भी जितने (पुष्प हो, उन्हे प्रत्येक-जीवी समझना चाहिए) ।।७३।। जिस फल के टूटने पर उसके भगप्रदेश मे विषमछेद दृष्टिगोचर हो, वह फल भी प्रत्येकजीव वाला है । ऐसे और भी जितने (फल हो, उन्हे प्रत्येकजीव वाले समझने चाहिए ।) ।।७४।। जिस बीच के टूटने पर उसके भग मे विषमछेद दिखाई दे, वह बीज प्रत्येकजीव वाला है । ऐसे अन्य जितने भी बीज हो, (वे भी प्रत्येकजीव वाले जानने चाहिए) ।।७५।।

[५] जस्स मूलस्स कट्ठाओ छल्ली बहलतरी भवे ।
अणतजीवा उ सा छल्ली, जा यावऽण्णा तहाविहा ।।७६।।
जस्स कदस्स कट्ठाओ छल्ली बहलतरी भवे ।
अणतजीवा तु सा छल्ली, जा यावऽण्णा तहाविहा ।।७७।।
जस्स खधस्स कट्ठाओ छल्ली बहलतरी भवे ।
अणतजीवा उ सा छल्ली, जा यावऽण्णा तहाविहा ।।७८।।
जीसे सालाए कट्ठाओ छल्ली बहलतरी भवे ।
अणतजीवा उ सा छल्ली, जा यावऽण्णा तहाविहा ।।७९।।

[५४-५] जिस मूल के काष्ठ (मध्यवर्ती सारभाग) की अपेक्षा छल्ली (छाल) अधिक मोटी हो, वह छाल अनन्तजीव वाली है । इस प्रकार की जो भी अन्य छाले हो, उन्हे अनन्तजीव वाली समझनी चाहिए ।।७६।। जिस कन्द के काष्ठ से छाल अधिक मोटी हो, वह अनन्तजीव वाली है । इसी प्रकार की जो भी अन्य छाले हो, उन्हे अनन्तजीव वाली समझना चाहिए ।।७७।। जिस स्कन्ध के काष्ठ से छाल अधिक मोटी हो, वह छाल अनन्तजीव वाली है । इसी प्रकार की अन्य जितनी भी छाले हो, (उन सबको अनन्तजीव वाली समझनी चाहिए ।) ।।७८।। जिस शाखा के काष्ठ की अपेक्षा छाल अधिक मोटी हो, वह छाल अनन्तजीव वाली है । इस प्रकार जितनी भी छालें हो, उन सबको अनन्तजीव वाली समझना चाहिए ।।७९।।

[६] जस्स मूलस्स कट्ठाओ छल्ली तणुयतरी भवे ।
परित्तजीवा उ सा छल्ली, जा यावऽण्णा तहाविहा ।।८०।।

जस्स कंदस्स कट्ठाओ छल्ली तणुयतरी भवे।
परित्तजीवा उ सा छल्ली, जा यावऽण्णा तहाविहा ॥८१॥

जस्स खंधस्स कट्ठाओ छल्ली तणुयतरी भवे।
परित्तजीवा उ सा छल्ली, जा यावऽण्णा तहाविहा ॥८२॥

जीसे सालाए कट्ठाओ छल्ली तणुयतरी भवे।
परित्तजीवा उ सा छल्ली, जा यावऽण्णा तहाविहा ॥८३॥

[५४-६] जिस मूल के काष्ठ की अपेक्षा उसकी छाल अधिक पतली हो, वह छाल प्रत्येकजीव वाली है। इस प्रकार जितनी भी अन्य छाले हो, (उन्हे प्रत्येकजीव वाली समझो।) ॥८०॥ जिस कन्द के काष्ठ से उसकी छाल अधिक पतली हो, वह छाल प्रत्येकजीव वाली है। इस प्रकार की जितनी भी अन्य छाले हो, उन्हे प्रत्येकजीव वाली समझना चाहिए ॥८१॥ जिस स्कन्ध के काष्ठ की अपेक्षा उसकी छाल अधिक पतली हो, वह छाल प्रत्येकजीव वाली है। इस प्रकार की अन्य जो भी छाले हो, उन्हे प्रत्येकजीव वाली समझना चाहिए ॥८२॥ जिस शाखा के काष्ठ की अपेक्षा, उसकी छाल अधिक पतली हो, वह छाल प्रत्येकजीव वाली है। इस प्रकार की अन्य जो भी छालें हो, उन्हे, प्रत्येकजीव वाली समझना चाहिए ॥८३॥

[७] चक्काग भज्जमाणस्स गंठी चुण्णघणो भवे।
पुढविसरिसेण भेएण अणंतजीवं वियाणाहि ॥८४॥

गूढछिराग पत्तं सच्छीरं जं च होति णिच्छीरं।
जं पि य पणट्ठसंधि अणंतजीवं वियाणाहि ॥७५॥

[५४-७] जिस (मूल, कन्द, स्कन्ध, छाल, शाखा, पत्र और पुष्प आदि) को तोडने पर (उसका भगस्थान) चक्राकार अर्थात् सम हो, तथा जिसकी गाठ (पर्व, गाठ या भगस्थान) चूर्ण (रज) से सघन (व्याप्त) हो, उसे पृथ्वी के समान भेद से अनन्तजीवो वाला जानो ॥८४॥ जिस (मूल-कन्दादि) की शिराएँ गूढ (प्रच्छन्न या अदृश्य) हो, जो (मूलादि) दूध वाला हो अथवा जो दूध-रहित हो तथा जिस (मूलादि) की सन्धि नष्ट (अदृश्य) हो, उसे अनन्तजीवो वाला जानो ॥८५॥

[८] पुप्फा जलया थलया य वेंटबद्धा य णालबद्धा य।
संखेज्जमसंखेज्जा बोधव्वाऽणंतजीवा य ॥८६॥

जे केइ नालियाबद्धा पुप्फा संखेज्जजीविया भणिता।
णिहुया अणंतजीवा, जे यावऽण्णे तहाविहा ॥८७॥

पउमुप्पलिणीकंदे अंतरकंदे तहेव झिल्ली य।
एते अणंतजीवा एगो जीवो भिस-मुणाले ॥८८॥

पलंडू-ल्हसणकंदे य कंदली य कुसुंबए।
एए परित्तजीवा जे यावऽण्णे तहाविहा ॥८९॥

पउमुप्पल-नलिणाण सुभग-सोगंधियाण य ।
अरविंद-कोकणाण सतवत्त-सहस्सवत्ताण ।।९०।।
वेंट बाहिरपत्ता य कण्णिया चेव एगजीवस्स ।
अब्भितरगा पत्ता पत्तेय केसरा मिंजा ।।९१।।
वेणु णल इक्खुवाडियमसमासइक्खू य इक्कडेरंडे ।
करकर सु ठि विहुगु तणाण तह पव्वगाण च ।।९२।।
अच्छि पव्व बलिमोडओ य एगस्स होति जीवस्स ।
पत्तेय पत्ताइ पुप्फाइ अणेगजीवाइ ।।९३।।
पुस्सफल कालिंग तु ब तउसेलवालु वालु क ।
घोसाडग पडोल तिंदूय चेव तेंदूस ।।९४।।
विंट गिर कडाह एयाह होति एगजीवस्स ।
पत्तेय पत्ताइ सकेसरमकेसर मिंजा ।।९५।।
सप्फाए सज्जाए उव्वेहलिया य कुहण कदुक्के ।
एए अणतजीवा कदुक्के होति भयणा उ ।।९६।।

[५४-८] पुष्प जलज (जल मे उत्पन्न होने वाले) और स्थलज हो, वृन्तबद्ध हो या नालबद्ध, सख्यात जीवो वाले, असख्यात जीवो वाले और कोई-कोई अनन्त जीवो वाले समझने चाहिए ।।८६।। जो कोई नालिकाबद्ध पुष्प हो, वे सख्यात जीव वाले कहे गए हैं। थूहर (स्निहका) के फूल अनन्त जीवो वाले हैं। इसी प्रकार के (थूहर के फूलो के सदृश) जो अन्य फूल हो, (उन्हे भी अनन्त जीवो वाले समझने चाहिए ।) ।।८७।। पद्मकन्द, उत्पलिनीकन्द और अन्तरकन्द, इसी प्रकार झिल्ली (नामक वनस्पति), ये सब अनन्त जीवो वाले है, किन्तु (इनके) भिस और मृणाल मे एक-एक जीव है ।।८८।। पलाण्डुकन्द (प्याज), लहसुनकन्द, कन्दली नामक कन्द और कुसुम्बक (कुस्तुम्बक या कुटुम्बक) (नामक वनस्पति) ये प्रत्येकजीवाश्रित हैं। अन्य जो भी इस प्रकार की वनस्पतिया हैं, (उन्हे प्रत्येकजीव वाली समझो ।) ।।८९।। पद्म, उत्पल, नलिन, सुभग, सौगन्धिक, अरविन्द, कोकनद, शतपत्र और सहस्रपत्र—कमलो के वृन्त (डठल), बाहर के पत्ते और कर्णिका, ये सब एकजीवरूप हैं। इनके भीतरी पत्ते, केसर और मिंजा (अर्थात् —फल) भी प्रत्येक-जीव वाले होते हैं ।।९०-९१।। वेणु (बास), नल (नड), इक्षुवाटिक, समासेक्षु और इक्कड, रड, करकर, सु ठी (सोठ), विहुगु (विहगु) एव दूब आदि तृणो तथा पर्व (पोर=गाठ) वाली वनस्पतियो के जो अक्षि, पर्व तथा बलिमोटक (गाठो को परिवेष्टन करने वाला चक्राकार भाग) हो, वे सब एकजीवात्मक हैं। इनके पत्र (पत्ते) प्रत्येकजीवात्मक होते हैं, और इनके पुष्प अनेकजीवात्मक होते हैं ।।९२-९३।। पुष्यफल, कालिंग, तुम्ब, त्रपुष, एलवालुक (चिर्भट-चीभडा-ककडी), वालुक (चिर्भट-ककडी), तथा घोषाटक (घोषातक), पटोल, तिन्दूक, तिन्दूस फल, इनके सब पत्ते प्रत्येक जीव से (पृथक्-पृथक्) अधिष्ठित होते हैं। तथा वृन्त (डठल), गुद्दा और गिर (कटाह) के सहित तथा केसर (जटा) सहित या अकेसर (जटारहित) मिंजा (बीज), ये सब एक-एक जीव से अधिष्ठित होते हैं ।।९४-९५।। सप्फाक, सद्यात (सघ्यात), उव्वेहलिया और कुहण तथा कन्दुक्य

ये सब वनस्पतिया अनन्तजीवात्मक होती है, किन्तु कन्दुक्य वनस्पति मे भजना (विकल्प) है, (अर्थात्—कोई कन्दुक्य अनन्तजीवात्मक और कोई असख्यातजीवात्मक होती है।) ॥९६॥

[९] जोणिब्भूए बीए जीवो वक्कमइ सो व अण्णो वा।
जो वि य मूले जीवो सो वि य पत्ते पढमताए ॥९७॥
सव्वो वि किसलओ खलु उग्गममाणो अणतओ भणिओ।
सो चेव विवड्ढंतो होइ परित्तो अणंतो वा ॥९८॥

[५४-९] योनिभूत बीज मे जीव उत्पन्न होता है, वह जीव वही (पहले वाला बीज का जीव हो सकता है,) अथवा अन्य कोई जीव (भी वहाँ आकर उत्पन्न हो सकता है।) जो जीव मूल (रूप) मे (परिणत) होता है, वही जीव प्रथम पत्र के रूप मे भी (परिणत होता) है। (अत मूल और वह प्रथमपत्र दोनो एकजीवकर्तृक भी होते हैं।) ॥९७॥ सभी किसलय (कोपल) ऊगता हुआ अवश्य ही अनन्तकाय कहा गया है। वही (किसलयरूप अनन्तकायिक) वृद्धि पाता हुआ प्रत्येकशरीरी या अनन्तकायिक हो जाता है ॥९८॥

[१०] समय वक्कताण समय तेसिं सरीरनिव्वत्ती।
समय आणुग्गहण समय ऊसास-नीसासे ॥९९॥
एक्कस्स उ ज गहणं बहूण साहारणाण त चेव।
ज बहुयाण गहण समासओ तं पि एगस्स ॥१००॥
साहारणमाहारो साहारणमाणुपाणगहण च।
साहारणजीवाण साहारणलक्खण एय ॥१०१॥
जह अयगोलो धतो जाओ तत्ततवणिज्जसंकासो।
सव्वो अगणिपरिणतो निगोयजीवे तहा जाण ॥१०२॥
एगस्स दोण्ह तिण्ह व सखेज्जाण व न पासिउ सक्का।
दीसति सरीराइ णिओयजीवाणऽणंताणं ॥१०३॥

[५४-१०] एक साथ उत्पन्न (जन्मे) हुए उन (साधारण वनस्पतिकायिक जीवो की शरीर-निष्पत्ति (शरीररचना) एक ही काल मे होती (तथा) एक साथ ही (उनके द्वारा) प्राणापान-(के योग्य पुद्गलो का) ग्रहण होता है, (तत्पश्चात्) एक काल मे ही (उनका) उच्छ्वास और नि श्वास होता है ॥९९॥ एक जीव का जो (आहारादि पुद्गलो का) ग्रहण करना है, वही बहुत-से (साधारण) जीवो का ग्रहण करना (समझना चाहिए।) और जो (आहारादि पुद्गलो का) ग्रहण बहुत-से (साधारण) जीवो का होता है, वही एक का ग्रहण होता है ॥१००॥ (एक शरीर मे आश्रित) साधारण जीवो का आहार भी साधारण (एक) ही होता है, प्राणापान (के योग्य पुद्गलो) का ग्रहण (एव श्वासोच्छ्वास भी) साधारण होता है। यह (साधारण जीवो का) साधारण लक्षण (समझना चाहिए।) ॥१०१॥ जैसे (अग्नि मे) अत्यन्त तपाया हुआ लोहे का गोला, तपे हुए (सोने) के समान सारा का सारा अग्नि मे परिणत (अग्निमय) हो जाता है, उसी प्रकार (अनन्त) निगोद जीवो का निगोदरूप एक शरीर मे परिणमन होना समझ लो ॥१०२॥ एक, दो, तीन, सख्यात अथवा

(असख्यात) निगोदो (के पृथक्-पृथक् शरीरो) का देखना शक्य नही है। (केवल) (अनन्त-) निगोद-जीवो के शरीर ही दिखाई देते है ॥१०३॥

[११] लोगागासपएसे णिग्गोयजीव ठवेहि एक्केक्क ।
एव मवेज्जमाणा हवति लोया अणता उ ॥१०४॥
लोगागासपएसे परित्तजीव ठवेहि एक्केक्क ।
एव मविज्जमाणा हवति लोया असखेज्जा ॥१०५॥
पत्तेया पज्जत्ता पयरस्स असखेभागमेत्ता उ ।
लोगाऽसखाऽपज्जत्तगाण साहारणमणता ॥१०६॥
[एएहिं सरीरेहिं पच्चक्खं ते परूविया जीवा ।
सुहुमा आणागेज्झा चक्खुप्फासं ण ते एंति ॥१॥] [पक्खित्ता गाहा]

जे यावऽण्णे तहप्पगारा ।

[५४-११] लोकाकाश के एक-एक प्रदेश मे यदि एक-एक निगोदजीव को स्थापित किया जाए और उनका माप किया जाए तो ऐसे-ऐसे अनन्त लोकाकाश हो जाते है, (किन्तु लोकाकाश तो एक ही है, वह भी असख्यातप्रदेशी है।) ॥१०४॥ एक-एक लोकाकाश-प्रदेश मे, प्रत्येक वनस्पति काय के, एक-एक जीव को स्थापित किया जाए और उन्हे मापा जाए तो ऐसे-ऐसे असख्यात-लोकाकाश हो जाते है ॥१०५॥ प्रत्येक वनस्पतिकाय के पर्याप्तक जीव घनीकृत प्रतर के असख्यात-भाग मात्र (अर्थात्—लोक के असख्यातवे भाग मे जितने आकाशप्रदेश हैं, उतने) होते है। तथा अपर्याप्तक प्रत्येक वनस्पतिकाय के जीवो का प्रमाण असख्यात लोक के बराबर है, और साधारण जीवो का परिमाण अनन्तलोक के बराबर है ॥१०६॥

[प्रक्षिप्त गाथार्थ] "इन (पूर्वोक्त) शरीरो के द्वारा स्पष्टरूप से उन बादरनिगोद जीवो की प्ररूपणा की गई है। सूक्ष्म निगोदजीव केवल आज्ञाग्राह्य (तीर्थंकरवचनो द्वारा ही ज्ञेय) है। क्योकि ये (सूक्ष्मनिगोद जीव) आंखो से दिखाई नही देते ॥१॥" अन्य जो भी इस प्रकार की (न कही गई) वनस्पतिया हो, (उन्हे साधारण या प्रत्येक वनस्पतिकाय मे लक्षणानुसार यथायोग्य समझ लेनी चाहिए।)

५५ [१] ते समासओ दुविहा पण्णत्ता । तं जहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य ।

[५५-१] वे (पूर्वोक्त सभी प्रकार के वनस्पतिकायिक जीव) सक्षेप मे दो प्रकार के कहे गए है। वे इस प्रकार—पर्याप्तक और अपर्याप्तक ।

[२] तत्थ ण जे ते अपज्जत्तगा ते ण असंपत्ता ।

[५५-२] उनमे से जो अपर्याप्तक हैं, वे असम्प्राप्त (अपने योग्य पर्याप्तियो को पूर्ण नही किये हुए) हैं।

[३] तत्थ ण जे ते पज्जत्तगा तेसिं वण्णादेसेण गधादेसेण रसादेसेणं फासादेसेण सहस्सग्गसो विहाणाइ, सखेज्जाइ जोणिप्पमुहसयसहस्साइ । पज्जत्तगणिस्साए अपज्जत्तगा वक्कमति—जत्थ

एगो तत्थ सिय संखेज्जा सिय असंखेज्जा सिय अणंता। एएसि णं इमाओ गाहाओ अणुगंतव्वाओ। तं जहा—

कंदा य १ कंदमूला य २ रुक्खमूला इ ३ यावरे।
गुच्छा य ४ गुम्म ५ वल्ली य ६ वेणुयाणि ७ तणाणि य ८ ॥१०७॥
पउमुप्पल ९-१० संघाडे ११ हढे य १२ सेवाल १३ किण्हए १४ पणए १५।
अवए य १६ कच्छ १७ भाणी १८ कंडुक्केक्कूणवीसइमे १९ ॥१०८॥
तय-छल्लि-पवालेसु य पत्त-पुप्फ-फलेसु य।
मूलऽग्ग-मज्झ-बीएसु जोणी कस्स य कित्तिया ॥१०९॥

से त्तं साहारणसरीरबादरवणस्सइकाइया। से त्तं बादरवणस्सइकाइया। से त्तं वणस्सइकाइया। से त्तं एगिंदिया।

[५५-३] उनमे से जो पर्याप्तक है, उनके वर्ण की अपेक्षा से, गन्ध की अपेक्षा से, रस की अपेक्षा से और स्पर्श की अपेक्षा से हजारो प्रकार (विधान) हो जाते हैं। उनके सख्यात लाख योनिप्रमुख होते हैं। पर्याप्तको के आश्रय से अपर्याप्तक उत्पन्न होते है। जहाँ एक (बादर)पर्याप्तक जीव होता है, वहाँ (नियम से उसके आश्रय से) कदाचित् सख्यात, कदाचित् असख्यात और कदाचित् अनन्त (प्रत्येक) अपर्याप्तक जीव उत्पन्न होते है। (साधारण जीव तो नियम से अनन्त ही उत्पन्न होते है।)

इन (साधारण और प्रत्येक वनस्पति-विशेष) के विषय मे विशेष जानने के लिए इन (आगे कही जाने वाली) गाथाओ का अनुसरण करना चाहिए। वे इस प्रकार हैं—

[गाथार्थ—] १ कन्द (सूरण आदि कन्द), २ कन्दमूल और ३ वृक्षमूल (ये साधारण वनस्पति-विशेष है।) ४ गुच्छ, ५ गुल्म, ६ वल्ली और ७ वेणु (बास) और ८ तृण (अर्जुन आदि हरी घास), ९ पद्म, १० उत्पल, ११ शृगाटक (सिंघाडा), १२ हढ (जलज वनस्पति), १३ शैवाल, १४ कृष्णक, १५ पनक, १६ अवक, १७ कच्छ, १८ भाणी, और १९ कन्दक्य (नामक साधारण वनस्पति) ॥१०८॥

इन उपर्युक्त उन्नीस प्रकार की वनस्पतियो की त्वचा, छल्ली (छाल), प्रवाल (कोपल), पत्र, पुष्प, फल, मूल, अग्र, मध्य और बीज (इन) मे से किसी की योनि कुछ और किसी की कुछ कही गई है ॥१०९॥ यह हुआ साधारणशरीर वनस्पतिकायिक का स्वरूप। (इसके साथ ही) उस (पूर्वोक्त) बादर वनस्पतिकायिक का वक्तव्य पूर्ण हुआ। (साथ ही) वह (पूर्वोक्त) वनस्पतिकायिको का वर्णन भी समाप्त हुआ, और इस प्रकार उन एकेन्द्रियससारसमापन्न जीवो की प्ररूपणा पूर्ण हुई।

विवेचन—समस्त वनस्पतिकायिको की प्रज्ञापना—प्रस्तुत इक्कीस सूत्रो (सू ३५ से ५५ तक) मे वनस्पतिकायिक जीवो के भेद-प्रभेदो तथा प्रत्येकशरीर बादरवनस्पतिकायिको के वृक्ष, गुच्छ आदि सविवरण बारह भेदो तथा साधारणशरीर बादरवनस्पतिकायिको की विस्तृत प्ररूपणा की गई है।

क्रम—सर्वप्रथम वनस्पतिकाय के सूक्ष्म और बादर ये दो भेद, तदनन्तर सूक्ष्म के पर्याप्त और अपर्याप्त, ये दो प्रकार, फिर बादर के दो भेद—प्रत्येकशरीर और साधारणशरीर, तत्पश्चात् प्रत्येकशरीर के वृक्ष, गुच्छ आदि १२ भेद, क्रमश प्रत्येक भेद के अन्तर्गत विविध वनस्पतियो के नामो का उल्लेख, तदनन्तर साधारणवनस्पतिकायिको के अन्तर्गत अनेक नामो का उल्लेख तथा लक्षण एव अन्त मे उनके पर्याप्तक-अपर्याप्तक भेदो का वर्णन प्रस्तुत किया गया है।[1]

वृक्षादि बारह भेदो की व्याख्या—वृक्ष—जिसके आश्रित मूल, पत्ते, फूल, फल, शाखा-प्रशाखा, स्कन्ध, त्वचा आदि अनेक हो, ऐसे आम, नीम, जामुन, आदि वृक्ष कहलाते हैं। वृक्ष दो प्रकार के होते है—एकास्थिक (जिसके फल मे एक ही बीज या गुठली हो) और बहुबीजक (जिसके फल मे अनेक बीज हो)। आम, नीम आदि वृक्ष एकास्थिक के उदाहरण है तथा बिजौरा, वट, दाडिम, उदुम्बर आदि बहुबीजक वृक्ष है। ये दोनो प्रकार के वृक्ष तो प्रत्येकशरीरी होते है, लेकिन इन दोनो प्रकार के वृक्षो के मूल, कन्द, स्कन्ध, त्वचा, शाखा और प्रवाल, असख्यात जीवो वाले तथा पत्ते प्रत्येक जीव वाले और पुष्प अनेक जीवो वाले होते हैं। गुच्छ—वर्तमान युग की भाषा मे इसका अर्थ है—पौधा। इसके प्रसिद्ध उदाहरण है—वृन्ताकी (बैंगन), तुलसी, मातुलिंगी आदि पौधे। गुल्म—विशेषत फूलो के पौधो को गुल्म कहते है। जैसे—चम्पा, जाई, जूही, कुन्द, मोगरा, मल्लिका आदि पुष्पो के पौधे। लता—ऐसी बेलें जो प्राय वृक्षो पर चढ जाती है, वे लताएँ होती है। जैसे—चम्पकलता, नागलता, अशोकलता आदि। वल्ली—ऐसी बेले जो विशेषत जमीन पर ही फैलती है, वे वल्लिया कहलाती है। उदाहरणार्थ—कालिंगी (तरबूज की बेल), तुम्बी (तूम्बे की बेल), कर्कटिकी (ककडी की बेल), एला (इलायची की बेल) आदि। पर्वक—जिन वनस्पतियो मे बीच-बीच मे पर्व—पोर या गाठे हो, वे पर्वक वनस्पतिया कहलाती है। जैसे—इक्षु, सूठ, बेत, आदि। तृण—हरी घास आदि को तृण कहते हैं, जैसे—कुश, अर्जुन, दूब आदि। वलय—वलय के आकार की गोल-गोल पत्तो वाली वनस्पति 'वलय' कहलाती है। जैसे—ताल (ताड), कदली (केले) आदि के पौधे। ओषधि—जो वनस्पति फल (फसल) के पक जाने पर दानो के रूप मे होती है, वह ओषधि कहलाती है। जैसे—गेहूँ, चावल, मसूर, तिल, मूग आदि। हरित—विशेषत हरी सागभाजी को हरित कहते है—जैसे—चन्दलिया, बथुआ, पालक आदि। जलरुह—जल मे उत्पन्न होने वाली वनस्पति जलरुह कहलाती है। जैसे—पनक, शैवाल, पद्म, कुमुद, कमल आदि। कुहण—भूमि को फोड कर निकलने वाली वनस्पतिया कुहण कहलाती है। जैसे—छत्राक (कुकुरमुत्ता) आदि।[2]

प्रत्येकशरीरी अनेक जीवो का एक शरीराकार कैसे? प्रथम दृष्टान्त जैसे—पूर्ण सरसो के दानो को किसी श्लेषद्रव्य से मिश्रित कर देने पर वे बट्टी के रूप मे एकरूप—एकाकार हो जाते है। यद्यपि वे सब सरसो के दाने परिपूर्ण शरीर वाले होने के कारण पृथक्-पृथक् अपनी-अपनी अवगाहना मे रहते हैं, तथापि श्लेषद्रव्य से परस्पर चिपक जाने पर वे एकरूप प्रतीत होते है, उसी प्रकार प्रत्येक शरीरी जीवो के शरीरसघात भी परिपूर्ण शरीर होने के कारण पृथक्-पृथक् अपनी-अपनी

---

१ पण्णवणासुत्त (मूलपाठ) भाग-१, पृ १६ से २७ तक

२ प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक ३० से ३२ तक

अवगाहना मे रहते है, परन्तु विशिष्ट कर्मरूपी श्लेषद्रव्य से मिश्रित होने के कारण वे जीव भी एकशरीरात्मक, एकरूप एव एकशरीराकार प्रतीत होते है ।

द्वितीय दृष्टान्त—जैसे तिलपपडी बहुत-से तिलो के एकमेक होने से (गुड आदि श्लेषद्रव्य से मिश्रित करने से) बनती है । उस तिलपपडी मे तिल अपनी-अपनी अवगाहना मे स्थित हो कर अलग-अलग रहते है, फिर भी वह तिलपट्टी एकरूप प्रतीत होती है । इसी प्रकार प्रत्येक शरीरीजीवो के शरीरसघात पृथक्-पृथक् होने पर भी एकरूप प्रतीत होते है ।[1]

अनन्तजीवो वाली वनस्पति के लक्षण—(१) टूटे हुए या तोडे हुए जिस मूल, कन्द, स्कन्ध, त्वचा, शाखा, प्रवाल, पुष्प, फल, बीज का भगप्रदेश समान अर्थात्—चक्राकार दिखाई दे, उन मूल आदि को अनन्तजीवो वाले समझने चाहिए । (२) जिस मूल, कन्द, स्कन्ध और शाखा के काष्ठ यानी मध्यवर्ती सारभाग की अपेक्षा छाल अधिक मोटी हो, उस छाल को अनन्तजीव वाली समझनी चाहिए । (३) जिस मूल, कन्द, स्कन्ध, त्वचा, शाखा, पत्र और पुष्प आदि के तोडे जाने पर उसका भगस्थान चक्र के आकार का एकदम सम हो, वह मूल, कन्द आदि अनन्तजीव वाला समझना चाहिए । (४) जिस मूल, कन्द, स्कन्ध, छाल, शाखा, पत्र और पुष्प आदि के तोडे जाने पर पर्व—गाठ या भगस्थान रज से व्याप्त होता है, अथवा जिस पत्र आदि को तोडने पर चक्राकार का भग नही दिखता और भग (ग्रन्थि-) स्थान भी रज से व्याप्त नही होता, किन्तु भगस्थान का पृथ्वीसदृश भेद हो जाता है । अर्थात् सूर्य की किरणो से अत्यन्त तपे हुए खेत की क्यारियो के प्रतरखण्ड का-सा समान भग हो जाता है, तो उसे अनन्तजीवो वाला समझना चाहिए । (५) क्षीरसहित (दूधवाले) या क्षीर-रहित (बिना दूध के) जिस पत्र की शिराएँ दिखती न हो उसे, अथवा जिस पत्र की (पत्र के दोनो भागो को जोडने वाली) सन्धि सर्वथा दिखाई न दे, उसे भी अनन्तजीवो वाला समझना चाहिए । (६) पुष्प दो प्रकार के होते है—जलज और स्थलज । ये दोनो भी प्रत्येक दो-दो प्रकार के होते है—वृन्तबद्ध (अतिमुक्तक आदि) और नालबद्ध (जाई के फूल आदि), इन-पुष्पो मे से पत्रगत जीवो की अपेक्षा से कोई-कोई सख्यात जीवो वाले, कोई-कोई असख्यात जीवो वाले और कोई-कोई अनन्त जीवो वाले भी होते है । आगम के अनुसार उन्हे जान लेना चाहिए । विशेष यह है कि जो जाई आदि नालबद्ध पुष्प होते है, उन सभी को तीर्थकरो तथा गणधरो ने सख्यातजीवो वाले कहे है, किन्तु स्निहूपुष्प अर्थात्—थोहर के फूल या थोहर के जैसे अन्य फूल भी अनन्तजीवो वाले समझने चाहिए । (७) पद्मिनीकन्द, उत्पलिनीकन्द, अन्तरकन्द (जलज वनस्पतिविशेषकन्द) एव झिल्लिका नामक वनस्पति, ये सब अनन्तजीवो वाले होते है । विशेष यह है कि पद्मिनीकन्द आदि के बिस (भिस) और मृणाल मे एक जीव होता है । (८) सप्फाक, सज्जाय, उव्वेहलिया, कूहन और कन्दूका (देशभेद से) अनन्तजीवात्मक होती है । (९) सभी किसलय (कोपल) ऊगते समय अनन्तकायिक होते हैं । प्रत्येक-वनस्पतिकाय, चाहे वह प्रत्येकशरीरी हो या साधारण, जब किसलय अवस्था को प्राप्त होता है, तब तीर्थंकरो और गणधरो द्वारा उसे अनन्तकायिक कहा गया है । किन्तु वही किसलय बढता-बढता, बाद मे पत्र रूप धारण कर लेता है तब साधारणशरीर या अनन्तकाय अथवा प्रत्येकशरीरी जीव हो जाता है ।

प्रत्येकशरीर जीव वाली वनस्पति के लक्षण—(१) जिस मूल, कन्द, स्कन्ध, त्वचा, शाखा, प्रवाल, पत्र, पुष्प अथवा फल या बीज को तोडने पर उसके टूटे हुए (भग) प्रदेश (स्थान) मे हीर

१ प्रज्ञापनासूत्र, मलय वृत्ति, पत्राक ३३

दिखाई दे, अर्थात्—उसके टुकडे समरूप न हो, विषम हो, दतीले हो, उस मूल, कन्द या स्कन्ध आदि को प्रत्येक(शरीरी)जीव समझना चाहिए । (२) जिस मूल, कन्द, स्कन्ध या शाखा के काष्ठ (मध्यवर्ती सारभाग) की अपेक्षा उसकी छाल अधिक पतली हो, वह छाल प्रत्येकशरीर जीव वाली समझनी चाहिए । (३) पलाण्डुकन्द, लहसुनकन्द, कदलीकन्द और कुस्तुम्ब नामक वनस्पति, ये सब प्रत्येकशरीरजीवात्मक समझने चाहिए। इस प्रकार की सभी अनन्त जीवात्मकलक्षण से रहित वनस्पतिया प्रत्येकशरीरजीवात्मक समझनी चाहिए। (४) पद्म, उत्पल, नलिन, सुभग, सौगन्धिक, अरविन्द, कोकनद, शतपत्र और सहस्रपत्र, इन सब प्रकार के कमलो के वृन्त (डण्ठल), बाह्य पत्र और पत्तो की आधारभूत कर्णिका, ये तीनो एकजीवात्मक है । इनके भीतरी पत्ते, केसर (जटा) और मिंजा भी एकजीवात्मक है। (५) वास, नड नामक घास, इक्षुवाटिका, समासेक्षु, इक्कड घास, करकर, सू ठि, विहगु और दूब आदि तृणो तथा पर्ववाली वनस्पतियो की अक्षि, पर्व, बलिमोटक (पर्व को परिवेष्ठित करने वाला चक्राकार भाग) ये सब एकजीवात्मक हे। इनके पत्ते भी एक जीवाधिष्ठित होते है । किन्तु इनके पुष्प अनेक जीवो वाले होते है । (६) पुष्पफल, कालिंग आदि फलो का प्रत्येक पत्ता (पृथक्-पृथक्), वृन्त, गिरि और गूदा और जटावाले या बिना जटा के बीज एक-एक जीव से अधिष्ठित होते है ।[1]

बीज का जीव मूलादि का जीव बन सकता है या नहीं ?—बीज की दो अवस्थाएँ होती हैं—योनि-अवस्था और अयोनि-अवस्था । जब बीज योनि-अवस्था का परित्याग नही करता किन्तु जीव के द्वारा त्याग दिया जाता है, तब वह बीज योनिभूत कहलाता है । जीव के द्वारा बीज त्याग दिया गया है, यह छद्मस्थ के द्वारा निश्चयपूर्वक नही कहा जा सकता । अत आजकल चेतन या अचेतन, जो अविध्वस्तयोनि है, उसे योनिभूत कहते है । जो विध्वस्तयोनि है, वह नियमत अचेतन होने से अयोनिभूत बीज है । ऐसा बीज उगने मे समर्थ नही रहता । तात्पर्य यह है कि योनि कहते है—जीव के उत्पत्तिस्थान को । अविध्वस्तशक्ति-सम्पन्न बीज ही योनिभूत होता है, उसी मे जीव उत्पन्न होता है । प्रश्न यह है कि ऐसे योनिभूत बीज मे वही पहले के बीज वाला जीव आकर उत्पन्न होता है अथवा दूसरा कोई जीव आकर उत्पन्न होता है ? उत्तर है—दोनो ही विकल्प हो सकते है । तात्पर्य यह कि बीज मे जो जीव था, उसने अपनी आयु का क्षय होने पर बीज का परित्याग कर दिया । वह बीज निर्जीव हो गया किन्तु उस बीज को पुन पानी, काल और जमीन के सयोगरूप सामग्री मिले तो कदाचित् वही पहले वाला बीज मूल आदि का नाम-गोत्र बाध कर उसी पूर्व-बीज मे आ कर उत्पन्न हो जाता है, और कभी कोई अन्य पृथ्वीकायिक आदि नया जीव भी उस बीज मे उत्पन्न हो जाता है ।[2]

साधारणशरीर बादरवनस्पतिकायिकजीवों का लक्षण—साधारण वनस्पतिकायिक जीव एक साथ ही उत्पन्न होते हैं, एक साथ ही उनका शरीर बनता है, एक साथ ही वे प्राणापान के योग्य पुद्गलो को ग्रहण करते है और एक साथ ही उनका श्वासोच्छ्वास होता है । एक जीव का आहारादि के पुद्गलो को ग्रहण करना ही (उस शरीर के आश्रित) बहुत-से जीवो का ग्रहण करना है, इसी प्रकार बहुत-से जीवो का आहारादि-पुद्गल-ग्रहण करना भी एक जीव का आहारादि-पुद्गल-ग्रहण

---

१ (क) प्रज्ञापनासूत्र प्रमेयबोधिनी टीका, भा १, पृ ३०० से ३२५ तक

(ख) प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक ३५-३६-३७

२. प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक ३८

करना है, क्योकि वे सब जीव एक ही शरीर मे आश्रित होते है। एक शरीर मे आश्रित साधारण जीवो का आहार, प्राणापानयोग्य पुद्गलग्रहण एव श्वासोच्छ्वास साधारण ही होता है। यही साधारणजीवो का साधारणरूप लक्षण है। एक निगोदशरीर मे अनन्तजीवो का परिणमन कैसे होता है? इसका समाधान यह है—अग्नि मे प्रतप्त लोहे का गोला जैसे सारा-का-सारा अग्निमय बन जाता है, वैसे ही निगोदरूप एकशरीर मे अनन्त जीवो का परिणमन समझ लेना चाहिए। एक, दो, तीन, सख्यात या असख्यात निगोद जीवो के शरीर हमे नही दिखाई दे सकते, क्योकि उनके पृथक्-पृथक् शरीर ही नही है, वे तो अनन्तजीवो के पिण्डरूप ही होते है। अर्थात् अनन्तजीवो का एक ही शरीर होता है। हमे केवल अनन्तजीवो के शरीर ही दिखाई देते है, वे भी बादर निगोदजीवो के ही, सूक्ष्म निगोदजीवो के नही, क्योकि सूक्ष्म निगोदजीवो के शरीर अनन्त जीवात्मक होने पर भी वे अदृश्य (दृष्टि से अगोचर) ही होते है। स्वाभाविकरूप से उसी प्रकार के सूक्ष्मपरिणामो से परिणत उनके शरीर होते है। अनन्त निगोदजीवो का एक ही शरीर होता हे, इस विषय मे वीतराग सर्वज्ञ तीर्थंकर भगवान् के वचन ही प्रमाणभूत है। भगवान् का कथन है—**'सूई की नोक के बराबर निगोदकाय मे असख्यात गोले होते हैं, एक-एक गोले मे असख्यात-असख्यात निगोद होते हैं और एक-एक निगोद मे अनन्त-अनन्त जीव होते हैं।'**[1]

अनन्त निगोदिया जीवो का शरीर एक ही होता है यह कथन औदारिकशरीर की अपेक्षा जानना चाहिए। उन सब के तैजस और कार्मण शरीर भिन्न-भिन्न ही होते है।

द्वीन्द्रिय संसारसमापन्न जीवो की प्रज्ञापना—

५६. [१] से किं त बेंदिया? बेंदिया (से किं त बेइंदियससारसमावण्णजीवपण्णवणा? बेइंदियससारसमावण्णजीवपण्णवणा) अणेगविहा पन्नत्ता। त जहा—पुलाकिमिया कुच्छिकिमिया गडूयलगा गोलोमा णेउरा सोमगलगा वसीमुहा सूईमुहा गोजलोया जलोया जलोउया सख संखणगा घुल्ला खुल्ला गुलया खधा वराडा सोत्तिया मोत्तिया कलुयावासा एगओवत्ता दुहओवत्ता णदियावत्ता सबुक्का माईवाहा सिप्पिसपुडा चंदणा समुद्दलिक्खा, जे यावऽण्णे तहप्पगारा। सव्वेते सम्मुच्छिमा नपु सगा।

[५६-१ प्र] वे (पूर्वोक्त) द्वीन्द्रिय जीव किस प्रकार के है? [वह द्वीन्द्रिय ससारसमापन्न जीवो की प्रज्ञापना क्या है?]

[५६-१ उ] द्वीन्द्रिय (द्वीन्द्रिय ससारसमापन्न जीव-प्रज्ञापना) अनेक प्रकार के कहे गए हैं। (अनेक प्रकार की कही गई है।) वह इस प्रकार—पुलाकृमिक, कुक्षिकृमिक, गण्डूयलग, गोलोम, नूपर, सौमगलक, वशीमुख, सूचीमुख, गौजलोका, जलोका, जलोयुक (जालायुष्क), शख, शखनक, घुल्ला, खुल्ला, गुडज, स्कन्ध, वराटा (वराटिका=कौडी), सौक्तिक, मौक्तिक (सौत्रिक मूत्रिक), कलुकावास, एकतोवृत्त, द्विधातोवृत्त, नन्दिकावर्त्त, शम्बूक, मातृवाह, शुक्तिसम्पुट, चन्दनक, समुद्र-

---

१ (क) प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक ३९-४०

(ख) 'गोला य असखेज्जा होति नियोगा असखया गोले।
एक्केको य निगोओ अणत जीवो मुणेयव्वो ॥'

उप्पाया उक्कडा उप्पडा तणाहारा कट्ठाहारा मालुया पत्ताहारा तणविंटिया पत्तविंटिया पुप्फविंटिया फलविंटिया बीयविंटिया तेंबुरणमज्जिया[1] तउसमिंजिया कप्पासट्ठिमिंजिया हिल्लिया झिल्लिया झिंगिरा किंगिरिडा[2] पाहुया सुभगा सोवच्छिया सुयविंटा इंदिकाइया इंदगोवया उरुलुंचगा[3] कोत्थलवाहगा जूया हालाहला पिसुया सतवाइया गोम्ही हत्थिसोंडा, जे यावऽण्णे तहप्पगारा। सव्वेते सम्मुच्छिम-णपुंसगा।

[५७-१ प्र] वह (पूर्वोक्त) त्रीन्द्रिय संसारसमापन्न जीवों की प्रज्ञापना किस प्रकार की है?

[५७-१ उ] त्रीन्द्रिय संसारसमापन्न जीवों की प्रज्ञापना अनेक प्रकार की कही गई है। वह इस प्रकार है—औपयिक, रोहिणीक, कंथु (कुंथुआ), पिपीलिका (चींटी, कीड़ी), उद्दंशक, उद्देहिका (उदई—दीमक), उत्कलिक, उत्पाद, उत्कट, उत्पट, तृणाहार, काष्ठाहार (घुन), मालुक, पत्राहार, तृणवृन्तिक, पत्रवृन्तिक, पुष्पवृन्तिक, फलवृन्तिक, बीजवृन्तिक, तेंदुरणमज्जिक (तेंवुरणमिंजिक या तम्बुरुण-उमज्जिक), त्रपुषमिंजिक, कार्पासास्थिमिंजिक, हिल्लिक, झिल्लिक, झिंगिरा (झींगुर), किंगिरिट, बाहुक, लघुक, सुभग, सौवस्तिक, शुकवृन्त, इन्द्रिकायिक (इन्द्रकायिक), इन्द्रगोपक (इन्द्रगोप—बीरबहूटी), उरुलुंचक (तुरुतुम्बक), कुस्थलवाहक, यूका (जूं), हालाहल, पिशुक (पिस्सू—खटमल), शतपादिका (गजाई), गोम्ही (गोम्मयी), और हस्तिशौण्ड। इसी प्रकार के जितने भी अन्य (जीव हों, उन्हें त्रीन्द्रिय संसारसमापन्न समझना चाहिए।) ये (उपर्युक्त) सब सम्मूर्च्छिम और नपुंसक हैं।

[२] ते समासतो दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य। एएसि णं एवमाइयाणं तेइंदियाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं अट्ठ जातिकुलकोडिजोणिप्पमुहसतसहस्सा भवंतीति मक्खायं। से त्तं तेंदियसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा।

[५७-२] ये (पूर्वोक्त त्रीन्द्रिय जीव) संक्षेप में, दो प्रकार के कहे गए हैं, यथा—पर्याप्तक और अपर्याप्तक। इन पर्याप्तक और अपर्याप्तक त्रीन्द्रियजीवों के सात लाख जाति कुलकोटि-योनिप्रमुख (योनिद्वार) होते हैं, ऐसा कहा है। यह हुई उन त्रीन्द्रिय संसारसमापन्न जीवों की प्रज्ञापना।

विवेचन—त्रीन्द्रिय संसारसमापन्न जीवों की प्रज्ञापना—प्रस्तुत सूत्र (सू. ५७) में तीन इन्द्रियों वाले अनेक जाति के जीवों का निरूपण किया गया है।

गोम्ही का अर्थ—वृत्तिकार ने इसका अर्थ—'कर्णसियालिया' किया है। हिन्दी भाषा में इसे कनसला या कानखजूरा भी कहते हैं।[4]

चतुरिन्द्रिय संसारसमापन्न जीवों की प्रज्ञापना—

५८ [१] से किं तं चउरिंदियसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा?

चउरिंदियसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा अणेगविहा पण्णत्ता। तं जहा—

पाठान्तर—१ तंबुरुणुमज्जिया, तिंबुरणमज्जिया, तेंबुरणमिंजिया। २ झिंगिरिडा बाहुया। ३ उरुलुंभुगा, तुरुतुंबगा।
४ प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक ४२

लिक्षा । अन्य जितने भी इस प्रकार के है, (उन्हे द्वीन्द्रिय समझना चाहिए ।) ये (उपर्युक्त प्रकार के) सभी (द्वीन्द्रिय) सम्मूर्च्छिम और नपुसक हैं ।

[२] ते समासतो दुविहा पन्नत्ता । त जहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य । एएसि ण एवमादियाण बेइदियाण पज्जत्ताऽपज्जत्ताण सत्त जाइकुलकोडिजोणीपमुहसतसहस्सा भवतीति मक्खात । से त्त बेइदियससारसमावण्णजीवपण्णवणा ।

[५६-२] ये (द्वीन्द्रिय) सक्षेप मे दो प्रकार के कहे गए है । वे इस प्रकार—पर्याप्तक और अपर्याप्तक । इन पर्याप्तक और अपर्याप्तक द्वीन्द्रियो के सात लाख जाति-कुलकोटि-योनि-प्रमुख होते है, ऐसा कहा गया है । यह हुई द्वीन्द्रिय ससारसमापन्न जीवो की प्रज्ञापना ।

विवेचन—द्वीन्द्रिय ससारसमापन्न जीवो की प्रज्ञापना—प्रस्तुत सूत्र (सू ५६) मे द्वीन्द्रिय जीवो की विविध जातियो के नामो का उल्लेख है तथा उनके दो प्रकारो एव उनकी जीवयोनियो की सख्या का निरूपण किया गया है ।

कुछ शब्दो के विशेष अर्थ—'पुलाकिमिया'=पुलाकृमिक एक प्रकार के कृमि होते है, जो मलद्वार (गुदाद्वार) मे उत्पन्न होते हैं । **कुच्छिकिमिया**—कुक्षिकृमिक एक प्रकार के कृमि, जो उदर-प्रदेश मे उत्पन्न होते है । **सखणगा**=शखनक—छोटे शख, शखनी । **चंदणा**—चन्दनक—अक्ष । **गडूयलगा**=गिंडोला । **सबुक्का**=शम्बूक=घोघा । **घुल्ला**=घोघरी । **खुल्ला**=समुद्री शख के आकार के छोटे शख । **सिप्पिसपुटा**=शुक्तिसपुट—सपुटाकार सीप । **जलोया**=जोंक ।[१]

सव्वेते सम्मुच्छिमा—इसी प्रकार के मृतकलेवर मे पैदा होने वाले कृमि, कीट आदि सब द्वीन्द्रिय और सम्मूर्च्छिम समझने चाहिए । क्योकि सभी अशुचिस्थानो मे पैदा होने वाले कीडे सम्मूर्च्छिम ही होते हैं, गर्भज नही । और तत्त्वार्थसूत्र के **'नारक-सम्मूर्च्छिनो नपुसकानि'** इस सूत्रानुसार सभी सम्मूर्च्छिम जीव नपुसक ही होते है ।[२]

जाति, कुलकोटि एव योनि शब्द की व्याख्या—पूर्वाचार्यो ने इनका स्पष्टीकरण इस प्रकार किया है—जातिपद से तिर्यञ्चगति समझनी चाहिए । उसके कुल है—कृमि, कीट, वृश्चिक आदि । ये कुल योनि-प्रमुख होते है, अर्थात्—एक ही योनि मे अनेक कुल होते है । जैसे—एक ही छगण (गोबर या कडे) की योनि मे कृमिकुल, कीटकुल और वृश्चिककुल आदि होते है । इसी प्रकार एक ही योनि मे अवान्तर जातिभेद होने से अनेक जातिकुल के योनिप्रवाह होते है । द्वीन्द्रियो के सात लाख जातिकुलकोटिरूप योनिया हैं ।[३]

त्रीन्द्रिय संसारसमापन्न जीवो की प्रज्ञापना—

५७ [१] से किं त तेंदियससारसमावण्णजीवपण्णवणा ? तेंदियससारसमावण्णजीवपण्णवणा अणेगविहा पन्नत्ता । तं जहा—ओवइया रोहिणीया कुथू पिपीलिया उद्दसगा उद्देहिया उक्कलिया

१ (क) प्रज्ञापनासूत्र, मलय वृत्ति, पत्राक ४१, (ख) प्रज्ञापना प्रमेयबोधिनी टीका भा १, पृ-३४८-३४९

२ (क) प्रज्ञापना मलय वृत्ति, पत्राक ४१

(ख) तत्त्वार्थसूत्र अ २, सू ५०

३ प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक ४१

उप्पाया उक्कडा उप्पडा तणाहारा कट्ठाहारा मालुया पत्ताहारा तणविंटिया पत्तविंटिया पुप्फविंटिया फलविंटिया बीयविंटिया तेडुरणमज्जिया[1] तउसमिंजिया कप्पासट्ठिसमिंजिया हिल्लिया झिल्लिया झिंगिरा किंगिरिडा[2] पाहुया सुभगा सोवच्छिया सुयविंटा इंदिकाइया इंदगोवया उरुलुंचगा[3] कोत्थल-वाहगा जूया हालाहला पिसुया सतवाइया गोम्ही हत्थिसोंडा, जे यावऽण्णे तहप्पगारा। सव्वेते सम्मुच्छिम-णपुंसगा।

[५७-१ प्र] वह (पूर्वोक्त) त्रीन्द्रिय संसारसमापन्न जीवो की प्रज्ञापना किस प्रकार की है ?

[५७-१ उ] त्रीन्द्रिय संसारसमापन्न जीवो की प्रज्ञापना अनेक प्रकार की कही गई है। वह इस प्रकार है—औपयिक, रोहिणीक, कंथु (कुंथुआ), पिपीलिका (चीटी, कीडी), उद्दंशक, उद्देहिका (उदई—दीमक), उत्कलिक, उत्पाद, उत्कट, उत्पट, तृणाहार, काष्ठाहार (घुन), मालुक, पत्राहार, तृणवृन्तिक, पत्रवृन्तिक, पुष्पवृन्तिक, फलवृन्तिक, बीजवृन्तिक, तेदुरणमज्जिक (तेंवुरणमिंजिक या तम्बुरुण-उमज्जिक), त्रपुषमिंजिक, कार्पासास्थिमिंजिक, हिल्लिक, झिल्लिक, झिंगिरा (झींगुर), किंगिरिट, बाहुक, लघुक, सुभग, सौवस्तिक, शुकवृन्त, इन्द्रिकायिक (इन्द्रकायिक), इन्द्रगोपक (इन्द्रगोप—बीरबहूटी), उरुलुंचक (तुरुतुम्बक), कुस्थलवाहक, यूका (जूं), हालाहल, पिशुक (पिस्सू—खटमल), शतपादिका (गजाई), गोम्ही (गोम्मयी), और हस्तिशौण्ड। इसी प्रकार के जितने भी अन्य (जीव हो, उन्हे त्रीन्द्रिय संसारसमापन्न समझना चाहिए।) ये (उपर्युक्त) सब सम्मूर्च्छिम और नपुंसक है।

[२] ते समासतो दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य। एएसि णं एवमाइयाणं तेइंदियाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं अट्ठ जातिकुलकोडिजोणिप्पमुहसतसहस्सा भवतीति मक्खायं। से त्तं तेंदियसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा।

[५७-२] ये (पूर्वोक्त त्रीन्द्रिय जीव) संक्षेप मे, दो प्रकार के कहे गए है, यथा—पर्याप्तक और अपर्याप्तक। इन पर्याप्तक और अपर्याप्तक त्रीन्द्रियजीवो के सात लाख जाति कुल-कोटि-योनिप्रमुख (योनिद्वार) होते है, ऐसा कहा है। यह हुई उन त्रीन्द्रिय संसारसमापन्न जीवो की प्रज्ञापना।

विवेचन—त्रीन्द्रिय संसारसमापन्न जीवो की प्रज्ञापना—प्रस्तुत सूत्र (सू ५७) मे तीन इन्द्रियो वाले अनेक जाति के जीवो का निरूपण किया गया है।

गोम्ही का अर्थ—वृत्तिकार ने इसका अर्थ—'कर्णसियालिया' किया है। हिन्दी भाषा मे इसे कनसला या कानखजूरा भी कहते है।[4]

चतुरिन्द्रिय संसारसमापन्न जीवो की प्रज्ञापना—

५८. [१] से किं तं चउरिंदियसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा ?

चउरिंदियसंसारसमावण्णजीवपण्णवणा अणेगविहा पण्णत्ता। तं जहा—

पाठान्तर—१ तवुरुणुमज्जिया, तिंबुरणमज्जिया, तेंबुरणमिंजिया। २ झिंगिरिडा बाहुया। ३ उरुलु भुगा, तुरुतु बगा।
४ प्रज्ञापनासूत्र मलय, वृत्ति, पत्रांक ४२

अधिय णेत्तिय[1] मच्छिय मगमिगकीडे[2] तहा पयगे य ।
ढिंकुण कुक्कुड कुक्कुह णदावत्ते य सिंगिरिडे ॥११०॥

किण्हपत्ता नीलपत्ता लोहियपत्ता हलिद्दपत्ता सुक्किलपत्ता चित्तपक्खा विचित्तपक्खा ओभंजलिया जलचारिया गभीरा णीणिया ततवा अच्छिरोडा अच्छिवेहा सारगा णेउला ढोला भमरा भरिली जरुला तोट्टा विच्छुता पत्तविच्छुया छाणविच्छुया जलविच्छुया पियगाला कणगा गोमयकीडगा, जे यावऽण्णे तहप्पगारा । सव्वेते सम्मुच्छिमा नपु सगा ।

[५८-१ प्र] वह (पूर्वोक्त) चतुरिन्द्रिय ससारसमापन्न जीवो की प्रज्ञापना किस प्रकार की है ?

[५८-१ उ] चतुरिन्द्रिय संसारसमापन्न जीवो की प्रज्ञापना अनेक प्रकार की कही गई है । वह इस प्रकार है— [गाथार्थ] अधिक, नेत्रिक (या पत्रिक), मक्खी, मगमृगकीट (मशक—मच्छर, कीडा अथवा टिड्डी) तथा पतगा, ढिकुण (ढकुण), कुक्कुड (कुर्कुट), कुक्कुह, नन्द्यावर्त और शृ गिरिट (शृ गिरट) ॥ ११० ॥

कृष्णपत्र (कृष्णपक्ष), नीलपत्र (नीलपक्ष), लोहितपत्र (लोहितपक्ष), हारिद्रपत्र (हारिद्रपक्ष), शुक्लपत्र (शुक्लपक्ष), चित्रपक्ष, विचित्रपक्ष, अवभाजलिक (ओहाजलिक), जलचारिक, गम्भीर, नीनिक (नीतिक), तन्तव, अक्षिरोट, अक्षिवेध, सारग, नेवल (नूपुर), दोला, भ्रमर, भरिली, जरुला, तोट्ट, बिच्छू, पत्रवृश्चिक, छाणवृश्चिक (गोबर का बिच्छू), जलवृश्चिक, (जल का बिच्छू), प्रियगाल, कनक और गोमयकीट (गोबर का कीडा) । इसी प्रकार के जितने भी अन्य (प्राणी) है, (उन्हे भी चतुरिन्द्रिय समझना चाहिए । ये (पूर्वोक्त) सभी चतुरिन्द्रिय सम्मूर्च्छिम और नपु सक है ।

[२] ते समासतो दुविहा पण्णत्ता । तं जहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य । एतेसि ण एवमाइयाणं चउरिंदियाण पज्जत्ताऽपज्जत्ताण णव जातिकुलकोडिजोणिप्पमुहसयसहस्सा भवतीति मक्खाय । से त्त चउरिंदियससारसमावण्णजीवपण्णवणा ।

[५८-२] वे दो प्रकार के कहे गए हैं । यथा—पर्याप्तक और अपर्याप्तक । इस प्रकार के चतुरिन्द्रिय पर्याप्तको और अपर्याप्तको के नौ लाख जाति-कुलकोटि-योनिप्रमुख होते है, ऐसा (तीर्थंकरो ने) कहा है । यह हुई उन चतुरिन्द्रिय ससारसमापन्न जीवो की प्रज्ञापना ।

विवेचन—चतुरिन्द्रिय ससारसमापन्न जीवो की प्रज्ञापना—प्रस्तुत सूत्र (सू ५८) मे चतुरिन्द्रिय जीवो के अनेक प्रकारो और उनकी जातिकुलकोटि-योनियो की सख्या का निरूपण किया गया है ।

चतुर्विध पंचेन्द्रिय संसारसमापन्न जीवप्रज्ञापना—

५९ से किं त पंचिंदियससारसमावण्णजीवपण्णवणा ?

पंचिंदियससारसमावण्णजीवपण्णवणा चउव्विहा पण्णत्ता । त जहा—नेरइयपंचिंदियससार-

---

१ पोत्तिय । २ मसगाकीडे, मगसिरकीडे, मगासकीडे ।

समावण्णजीवपण्णवणा १ तिरिक्खजोणियपंचिदियससारसमावण्णजीवपण्णवणा २ मणुस्सपंचिंदिय-ससारसमावण्णजीवपण्णवणा ३ देवपंचिदियससारसामावण्णजीवपण्णवणा ४ ।

[५६ प्र] वह पचेन्द्रिय-ससारसमापन्न जीवो की प्रज्ञापना किस प्रकार की हे ?

[५६ उ] पचेन्द्रिय-ससारसमापन्न जीवो की प्रज्ञापना चार प्रकार की कही गई हे । वह इस प्रकार है—(१) नैरयिक-पचेन्द्रिय-ससारसमापन्न-जीवप्रज्ञापना, (२) तिर्यञ्चयोनिक-पचेन्द्रिय-ससारसमापन्न-जीवप्रज्ञापना, (३) मनुष्य-पचेन्द्रिय ससारसमापन्न-जीवप्रज्ञापना और (४) देव-पचेन्द्रिय ससारसमापन्न जीवप्रज्ञापना ।

विवेचन—चतुर्विध पचेन्द्रिय ससारसमापन्न जीवप्रज्ञापना—प्रस्तुत सूत्र (सू ५६) मे नैरयिक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव, इन चतुर्विध पचेन्द्रिय ससारसमापन्न जीवो का निरूपण किया गया है ।

नैरयिकजीवो की प्रज्ञापना—

६०. से किं तं नेरइया ?

नेरइया सत्तविहा पण्णत्ता । तं जहा—रयणप्पभापुढविनेरइया १ सक्करप्पभापुढविनेरइया २ वालुयप्पभापुढविनेरइया ३ पंकप्पभापुढविनेरइया ४ धूमप्पभापुढविनेरइया ५ तमप्पभापुढविनेरइया ६ तमतमप्पभापुढविनेरइया ७ ।

ते समासतो दुविहा पण्णत्ता । त जहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य । से त्त नेरइया ।

[६० प्र] वे (पूर्वोक्त) नैरयिक किस (कितने) प्रकार के हैं ?

[६० उ] नैरयिक सात प्रकार के कहे गए हैं । वे इस प्रकार है—(१) रत्नप्रभापृथ्वी-नैरयिक, (२) शर्कराप्रभापृथ्वी-नैरयिक (३) वालुकाप्रभापृथ्वी-नैरयिक, (४) पकप्रभापृथ्वी-नैरयिक, (५) धूमप्रभापृथ्वी-नैरयिक, (६) तम प्रभापृथ्वी-नैरयिक और (७) तमस्तम प्रभापृथ्वी-नैरयिक । वे (उपर्युक्त सातो प्रकार के नैरयिक) सक्षेप से दो प्रकार के कहे गए है । यथा—पर्याप्तक और अपर्याप्तक । यह नैरयिको की प्ररूपणा हुई ।

विवेचन—नैरयिक जीवो की प्रज्ञापना—प्रस्तुत सूत्र (सू ६०) मे नैरयिक और उनके सात प्रकारो की प्ररूपणा की गई है ।

'नैरयिक' शब्द का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ—निर्+अय का अर्थ है—जिससे अय अर्थात् इष्टफल देने वाला (शुभ कर्म) निर् अर्थात् निर्गत हो गया हो—निकल गया हो, जहाँ इष्टफल की प्राप्ति न होती हो, वह निरय अर्थात् नारकावास है । निरय मे उत्पन्न होने वाले जीव नैरयिक कहलाते है । ये नैरयिक (नारक) जीव ससारसमापन्न अर्थात्—जन्ममरण को प्राप्त हैं तुथा पाचो इन्द्रियो से युक्त होते है, अतएव पचेन्द्रिय-ससारसमापन्न कहलाते है ।[1]

समग्र पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक जीवों की प्रज्ञापना—

६१ से किं त पंचिदियतिरिक्खजोणिया ?

---

१ प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक ४३

पंचिंदियतिरिक्खजोणिया तिविहा पण्णत्ता । तं जहा—जलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणिया १ थलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणिया २ खहयरपंचिंदियतिरिक्खजोणिया ३ ।

[६१ प्र] वे पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक किस प्रकार के है ?

[६१ उ] पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक तीन प्रकार के कहे गए है । वे इस प्रकार है—(१) जलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक, (२) स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक और (३) खेचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक ।

६२. से किं त जलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणिया ?

जलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणिया पचविहा पण्णत्ता । त जहा—मच्छा १ कच्छभा २ गाहा ३ मगरा ४ सुसुमारा ५ ।

[६२ प्र] वे जलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक कैसे है ?

[६२ उ] जलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक पाच प्रकार के कहे गए है । वे इस प्रकार—(१) मत्स्य, (२) कच्छप, (कछुए), (३) ग्राह, (४) मगर और (५) सुसुमार ।

६३ से किं त मच्छा ?

मच्छा अणेगविहा पण्णत्ता । त जहा—सण्हमच्छा खवल्लमच्छा[1] जुगमच्छा विज्झिडियमच्छा हलिमच्छा मग्गरिमच्छा रोहियमच्छा हलीसागरा गागरा वडा वडगरा[2] तिमी तिमिंगिला णक्का तदुलमच्छा कणिक्कामच्छा सालिसत्थियामच्छा लभणमच्छा पडागा पडागातिपडागा, जे यावऽण्णे तहप्पगारा । से त्त मच्छा ।

[६३ प्र] वे (पूर्वोक्त) मत्स्य कितने प्रकार के हैं ?

[६३ उ] मत्स्य अनेक प्रकार के कहे गए है । वे इस प्रकार—श्लक्ष्णमत्स्य, खवल्लमत्स्य, युगमत्स्य (जुगमत्स्य), विज्झिडिय (विज्झडिय) मत्स्य, हलिमत्स्य, मकरीमत्स्य, रोहितमत्स्य, हलीसागर, गागर, वट, वटकर, (तथा गर्भज उसगार), तिमि, तिमिंगल, नक्र, तन्दुलमत्स्य, कणिक्कामत्स्य, शालिशस्त्रिक मत्स्य, लभनमत्स्य, पताका और पताकातिपताका । इसी प्रकार के जो भी अन्य प्राणी हैं, वे सब मत्स्यो के अन्तर्गत समझने चाहिए । यह मत्स्यो की प्ररूपणा हुई ।

६४ से किं तं कच्छभा ?

कच्छभा दुविहा पण्णत्ता । त जहा—अट्ठिकच्छभा य मसकच्छभा य । से त्त कच्छभा ।

[६४ प्र] वे (पूर्वोक्त) कच्छप किस प्रकार के है ?

[६४ उ] कच्छप दो प्रकार के कहे गए हैं । वे इस प्रकार हैं—अस्थिकच्छप (जिनके शरीर मे हड्डिया अधिक हो, वे) और मासकच्छप (जिनके शरीर मे मास की बहुलता हो, वे) । इस प्रकार कच्छप की प्ररूपणा पूर्ण हुई ।

पाठान्तर—१ जुगमच्छा । २ 'गब्भया उसगारा' यह अधिक पाठ है ।

६५ से किं तं गाहा ?

गाहा पचविहा पण्णत्ता । तं जहा—दिली १ वेढला[1] २ मुद्धया ३ पुलगा ४ सीमागारा ५ । से त्तं गाहा ।

[६५ प्र] वे (पूर्वोक्त) ग्राह कितने प्रकार के है ?

[६५ उ] ग्राह (घडियाल) पाच प्रकार के होते है। वे इस प्रकार है—(१) दिली, (२) वेढल या (वेटक), (३) मूर्धज, (४) पुलक और (५) सीमाकार। यह हुई ग्राह की वक्तव्यता।

६६ से किं तं मगरा ?

मगरा दुविहा पण्णत्ता । तं जहा—सोंडमगरा य मट्ठमगरा य । से त्तं मगरा ।

[६६ प्र] वे मगर किस प्रकार के होते है ?

[६६ उ] मगर (मगरमच्छ) दो प्रकार के कहे गए है। वे इस प्रकार—शौण्डमकर और मृष्टमकर। यह हुई (पूर्वोक्त) मकर की प्ररूपणा।

६७ से किं तं सुसुमारा ?

सुसुमारा एगागारा पण्णत्ता । से त्तं सुसुमारा । जे यावऽण्णे तहप्पगारा ।

[६७ प्र] वे सुसुमार (शिशुमार) किस प्रकार के है ?

[६७ उ] सुसुमार (शिशुमार) एक ही आकार-प्रकार के कहे गए है। यह हुआ (पूर्वोक्त) सुसुमार का निरूपण। अन्य जो इस प्रकार के हो।

६८ [१] ते समासतो दुविहा पण्णत्ता । तं जहा—सम्मुच्छिमा य गब्भवक्कतिया य ।

[६८-१] वे (उपर्युक्त सभी प्रकार के जलचर तिर्यञ्चपचेन्द्रिय) सक्षेप मे दो प्रकार के हैं। यथा—सम्मूच्छिम और गर्भज (गर्भव्युत्क्रान्तिक)।

[२] तत्थ णं जे ते सम्मुच्छिमा ते सव्वे नपुंसगा ।

[६८-२] इनमे से जो सम्मूच्छिम है, वे सब नपुसक होते है।

[३] तत्थ णं जे ते गब्भवक्कतिया ते तिविहा पण्णत्ता । तं जहा—इत्थी १ पुरिसा २ नपुंसगा ३ ।

[६४-३] इनमे से जो गर्भज हैं, वे तीन प्रकार के कहे गए हैं—स्त्री, पुरुष और नपुसक।

[४] एतेसि णं एवमाइयाणं जलयरपचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पज्जत्तापज्जत्ताणं अद्धतेरस जाइकुलकोडिजोणिप्पमुहसयसहस्सा भवतीति मक्खायं । से त्तं जलयरपचेंदियतिरिक्खजोणिया ।

[६८-४] इस प्रकार (मत्स्य) इत्यादि इन (पाचो प्रकार के) पर्याप्तक और अपर्याप्तक

पाठान्तर—१ वेढगा ।

जलचर-पचेन्द्रियतिर्यञ्चो के साढे बारह लाख जाति-कुलकोटि-योनिप्रमुख होते हैं, ऐसा कहा है। यह हुई जलचर पचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिको की प्ररूपणा।

६९. से किं त थलयरपचेंदियतिरिक्खजोणिया ?

थलयरपचेंदियतिरिक्खजोणिया दुविहा पण्णत्ता। त जहा—चउप्पयथलयरपचेंदियतिरिक्खजोणिया य परिसप्पथलयरपचेंदियतिरिक्खजोणिया य।

[६९ प्र] वे (पूर्वोक्त) स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक किस प्रकार के हे ?

[६९ उ] स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक दो प्रकार के कहे गए है। वे इस प्रकार—चतुष्पद-स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक और परिसर्प-स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक।

७० से किं त चउप्पयथलयरपचेंदियतिरिक्खजोणिया ?

चउप्पयथलयरपचेंदियतिरिक्खजोणिया चउव्विहा पण्णत्ता। त जहा—एगखुरा १ दुखुरा २ गंडीपदा ३ सणप्फदा ४।

[७० प्र] वे (पूर्वोक्त) चतुष्पद-स्थलचर-पचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक किस प्रकार के है ?

[७० उ] चतुष्पद-स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक चार प्रकार के कहे गए है। वे इस प्रकार हैं—१ एकखुरा (एक खुर वाले), २ द्विखुरा (दो खुर वाले), ३ गण्डीपद (सुनार की एरण जैसे पैर वाले) और ४ सनखपद (नखसहित पैरो वाले)।

७१ से किं त एगखुरा ?

एगखुरा अणेगविहा पण्णत्ता। त जहा—अस्सा अस्सतरा घोडगा गद्दभा गोरक्खरा कदलगा सिरिकदलगा आवत्ता, जे यावऽण्णे तहप्पगारा। से त्त एगखुरा।

[७१ प्र] वे एकखुरा किस प्रकार के है ?

[७१ उ] एकखुरा अनेक प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार है, जैसे कि—अश्व, अश्वतर, (खच्चर), घोटक (घोडा), गधा (गर्दभ), गोरक्षर, कन्दलक, श्रीकन्दलक और आवर्त (आवर्त्तक)। इसी प्रकार के अन्य जितने भी प्राणी हैं, (उन्हे एकखुर-स्थलचर-पचेन्द्रियतिर्यञ्च के अन्तर्गत समझना चाहिए।) यह हुआ एकखुरो का प्ररूपण।

७२ से किं त दुखुरा ?

दुखुरा अणेगविहा पण्णत्ता। त जहा—उट्टा गोणा गवया रोज्झा पसुया महिसा मिया सवरा वराहा अय-एलग-रुरु-सरभ-चमर-कुरग-गोकण्णमादी। से त्त दुखुरा।

[७२ प्र] वे द्विखुर किस प्रकार के कहे गए है ?

[७२ उ] द्विखुर (दो खुर वाले) अनेक प्रकार के कहे गए है। जैसे कि—उष्ट्र (ऊँट), गाय (गौ और वृषभ आदि), गवय (नील गाय), रोज, पशुक, महिष (भैस-भैसा), मृग, साभर, वराह (सूअर) अज (बकरा-बकरी), एलक (बकरा या भेडा), रुरु, सरभ, चमर (चमरी गाय), कुरग, गोकर्ण आदि। यह दो खुर वालो की प्ररूपणा हुई।

७३ से किं त गडीपया ?

गडीपया अणेगविहा पण्णत्ता । त जहा—हत्थी हत्थी-पूयणया मकुणहत्थी खग्गा गंडा, जे यावऽण्णे तहप्पगारा । से त्त गडीपया ।

[७३ प्र] वे (पूर्वोक्त) गण्डीपद किस प्रकार के है ?

[७३ उ] गण्डीपद अनेक प्रकार के कहे गए है । वे इस प्रकार—हाथी, हस्तिपूतनक, मत्कुण-हस्ती, (बिना दातो का छोटे कद का हाथी), खड्गी और गडा (गेडा) । इसी प्रकार के जो भी अन्य प्राणी हो, उन्हे गण्डीपद मे जान लेने चाहिए । यह हुई गण्डीपद जीवो की प्ररूपणा ।

७४ से किं तं सणप्फदा ?

सणप्फदा अणेगविहा पण्णत्ता । त जहा—सीहा वग्घा दीविया अच्छा तरच्छा परस्सरा सियाला बिडाला सुणगा कोलसुणगा[1] कोकंतिया ससगा चित्तगा चित्तलगा, जे यावऽण्णे तहप्पगारा । से त्त सणप्फदा ।

[७४ प्र] वे सनखपद किस प्रकार के है ?

[७४ उ] सनखपद अनेक प्रकार के कहे गए है । वे इस प्रकार—सिंह, व्याघ्र, द्वीपिक (दीपडा), रीछ (भालू), तरक्ष, पाराशर, शृगाल (सियार), विडाल (बिल्ली), श्वान, कोलश्वान, कोकन्तिक (लोमडी), शशक (खरगोश), चीता और चित्तलग (चिल्लक) । इसी प्रकार के अन्य जो भी प्राणी है, वे सब सनखपदो के अन्तर्गत समझने चाहिए । यह हुआ पूर्वोक्त सनखपदो का निरूपण ।

७५ [१] ते समासतो दुविहा पण्णत्ता । त जहा—सम्मुच्छिमा य गब्भवक्कतिया य ।

[७५-१] वे (उपर्युक्त सभी प्रकार के चतुष्पद-स्थलचर पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक) सक्षेप मे दो प्रकार के कहे गए है, यथा—सम्मूर्च्छिम और गर्भज ।

[२] तत्थ ण जे ते सम्मुच्छिमा ते सव्वे णपु सगा ।

[७५-२] उनमे जो सम्मूर्च्छिम है, वे सब नपु सक है ।

[३] तत्थ ण जे ते गब्भवक्कतिया ते तिविहा पण्णत्ता । त जहा—इत्थी १ पुरिसा २ णपु सगा ३ ।

[७५-३] उनमे जो गर्भज हैं, वे तीन प्रकार के कहे गए हैं । यथा—१ स्त्री, २ पुरुष और ३ नपु सक ।

[४] एतेसि ण एवमादियाण (चउप्पय) थलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणियाण पज्जत्ताऽपज्ज-त्ताण दस जाईकुलकोडिजोणिप्पमुहसयसहस्सा हवतीति मक्खात । से त्तं चउप्पयथलयरपचेंदिय-तिरिक्खजोणिया ।

[७५-४] इस प्रकार (एकखुर) इत्यादि इन स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिको के पर्याप्तक-

१ [ग्रन्थाग्रम् ५००]

अपर्याप्तको के दस लाख जाति-कुल-कोटि-योनिप्रमुख होते हैं, ऐसा कहा है। यह हुआ चतुष्पद-स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिको का निरूपण।

७६. से किं त परिसप्पथलयरपचेंदियतिरिक्खजोणिया ?

परिसप्पथलयरपचेंदियतिरिक्खजोणिया दुविहा पण्णत्ता। त जहा—उरपरिसप्पथलयरपचेंदियतिरिक्खजोणिया य भुयपरिसप्पथलयरपचेंदियतिरिक्खजोणिया य।

[७६ प्र] वे (पूर्वोक्त) परिसर्प-स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक किस प्रकार के है ?

[७६ उ] परिसर्प-स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं—उर परिसर्प-स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक एव भुजपरिसर्प-स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक।

७७ से किं त उरपरिसप्पथलयरपचेंदियतिरिक्खजोणिया ?

उरपरिसप्पथलयरपचेंदियतिरिक्खजोणिया चउव्विहा पण्णत्ता। त जहा—अही १ अयगरा २ आसालिया ३ महोरगा ४।

[७७ प्र] उर परिसर्प-स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक किस प्रकार के है ?

[७७ उ] उर परिसर्प-स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक चार प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं—१ अहि (सर्प), २ अजगर, ३ आसालिक और ४ महोरग।

७८ से किं त अही ?

अही दुविहा पण्णत्ता। त जहा—दव्वीकरा य मउलिणो य।

[७८ प्र] वे अहि किस प्रकार के होते हैं ?

[७८ उ] अहि दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार—दर्वीकर (फन वाले), और मुकुली (बिना फन वाले)।

७९ से किं त दव्वीकरा ?

दव्वीकरा अणेगविहा पण्णत्ता। त जहा—आसीविसा दिट्ठीविसा उग्गविसा भोगविसा तयाविसा लालाविसा उस्सासविसा निस्सासविसा कण्हसप्पा सेवसप्पा काओदरा दज्झपुप्फा कोलाहा मेलिमिंदा, सेसिंदा; जे यावऽण्णे तहप्पगारा। से त्तं दव्वीकरा।

[७९ प्र] वे दर्वीकर सर्प किस प्रकार के होते है ?

[७९ उ] दर्वीकर (फन वाले) सर्प अनेक प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं—आशीविष (दाढो मे विष वाले), दृष्टिविष (दृष्टि मे विष वाले), उग्रविष (तीव्र विष वाले), भोगविष (फन या शरीर मे विष वाले), त्वचाविष (चमडी मे विष वाले), लालाविष (लार मे विष वाले), उच्छ्वास-विष (श्वास लेने मे विष वाले), नि श्वासविष (श्वास छोडने मे विष वाले), कृष्णसर्प, श्वेतसर्प, काकोदर, दह्यपुष्प (दर्भपुष्प), कोलाह, मेलिभिन्द और शेषेन्द्र। इसी प्रकार के और भी जितने सर्प हो, वे सब दर्वीकर के अन्तर्गत समझना चाहिए। यह हुई दर्वीकर सर्प की प्ररूपणा।

८० से किं त मउलिणो ?

मउलिणो अणेगविहा पण्णत्ता । त जहा—दिव्वागा गोणसा कसाहिया वइउला चित्तलिणो मडलिणो मालिणो अही अहिसलागा वायपडागा, जे यावऽण्णे तहप्पगारा । से त्त मउलिणो । से त्तं अही ।

[८० प्र] वे (पूर्वोक्त) मुकुली (बिना फन वाले) सर्प कैसे होते है ?

[८० उ] मुकुली सर्प अनेक प्रकार के कहे गए है । जैसे कि—दिव्याक गोनस, कषाधिक, व्यतिकुल, चित्रली, मण्डली, माली, अहि, अहिशलाका और वातपताका (वासपताका) । अन्य जितने भी इसी प्रकार के सर्प हैं, (वे सब मुकुली सर्प की जाति के समझने चाहिए ।) यह हुआ मुकुली (सर्पों का वर्णन ।) (साथ ही), अहि सर्पों की (प्ररूपणा पूर्ण हुई) ।

८१ से किं त अयगरा ?

अयगरा एगागारा पण्णत्ता । से त्त अयगरा ।

[८१ प्र] वे (पूर्वोक्त) अजगर किस प्रकार के होते है ?

[८१ उ] अजगर एक ही आकार-प्रकार के कहे गए हैं । यह अजगर की प्ररूपणा हुई ।

८२. से किं त आसालिया ? कहि ण भते ! आसालिया सम्मुच्छति ?

गोयमा ! अतोमणुस्सखित्ते अड्ढाइज्जेसु दीवेसु, निव्वाघाएण पण्णरससु कम्मभूमीसु, वाघात पडुच्च पचसु महाविदेहेसु, चक्कवट्टिखधावारेसु वा वासुदेवखधावारेसु बलदेवखधावारेसु मडलियखधावारेसु महामडलियखधावारेसु वा गामनिवेसेसु नगरनिवेसेसु निगमणिवेसेसु खेडनिवेसेसु कब्बडनिवेसेसु मडबनिवेसेसु वा दोणमुहनिवेसेसु पट्टणनिवेसेसु आगरनिवेसेसु आसमनिवेसेसु सवाहनिवेसेसु रायहाणीनिवेसेसु एतेसि ण चेव विणासेसु एत्थ ण आसालिया सम्मुच्छति, जहण्णेण अगुलस्स असखेज्जइभागमेत्तीए ओगाहणाए उक्कोसेण बारसजोयणाइ, तयणुरूव च ण विक्खभबाहल्लेण भूमि दालित्ताण समुट्ठेति अस्सण्णी मिच्छद्दिट्ठी अण्णाणी अतोमुहुत्तद्धाउया चेव काल करेइ । से त्त आसालिया ।

[८२ प्र] आसालिक किस प्रकार के होते है ? भगवन् ! आसालिग (आसालिक) कहाँ सम्मूर्च्छित (उत्पन्न) होते हैं ?

[८२ उ] गौतम ! वे (आसालिक उर परिसर्प) मनुष्य क्षेत्र के अन्दर ढाई द्वीपो मे, निर्व्याघातरूप से (बिना व्याघात के) पन्द्रह कर्मभूमियो मे, व्याघात की अपेक्षा से पाच महाविदेह क्षेत्रो मे, अथवा चक्रवर्ती के स्कन्धावारो (सैनिकशिविरो-छावनियो) मे, या वासुदेवो के स्कन्धावारो मे, बलदेवो के स्कन्धावारो मे, माण्डलिको (अल्पवैभव वाले छोटे राजाओ) के स्कन्धावारो मे, महामाण्डलिको (अनेक देशो के अधिपति नरेशो) के स्कन्धावारो मे, ग्रामनिवेशो मे, नगरनिवेशो मे, निगम (वणिक्-निवास)-निवेशो मे, खेटनिवेशो मे, कर्बटनिवेशो मे, मडम्बनिवेशो मे, द्रोणमुखनिवेशो मे, पट्टणनिवेशो मे, आकरनिवेशो मे, आश्रमनिवेशो मे, सम्बाधनिवेशो मे और राजधानीनिवेशो मे । इन (चक्रवर्ती स्कन्धावार आदि स्थानो) का विनाश होने वाला हो तब इन (पूर्वोक्त

स्थानो मे आसालिक सम्मूर्च्छिमरूप से उत्पन्न होते है। वे (आसालिक) जघन्य अगुल के असख्यातवे भाग-मात्र की अवगाहना से और उत्कृष्ट बारह योजन की अवगाहना से (उत्पन्न होते हैं।) उस (अवगाहना) के अनुरूप ही उसका विष्कम्भ (विस्तार) और बाहल्य (मोटाई) होता है। वह (आसालिक) चक्रवर्ती के स्कन्धावार आदि के नीचे की भूमि को फाड (विदारण) कर प्रादुर्भूत (समुत्थित) होता है। वह असज्ञी, मिथ्यादृष्टि और अज्ञानी होता है, तथा अन्तर्मुहूर्त्त काल की आयु भोग कर मर (काल कर) जाता है। यह हुई उक्त आसालिक की प्ररूपणा।

८३ से किं त महोरगा ?

महोरगा अणेगविहा पण्णत्ता। त जहा—अत्थेगइया अगुल पि अगुलपुहत्तिया वि वियत्थिं पि वियत्थिपुहत्तिया वि रयणिं पि रयणिपुहत्तिया वि कुच्छि पि कुच्छिपुहत्तिया वि धणुं पि धणुपुहत्तिया वि गाउय पि गाउयपुहत्तिया वि जोयण पि जोयणपुहत्तिया वि जोयणसत पि जोयणसतपुहत्तिया वि जोयणसहस्स पि। ते ण थले जाता जले वि चरति थले वि चरति। ते णत्थि इह, बाहिरएसु दीव-समुद्दएसु हवति, जे यावऽण्णे तहप्पगारा। से त्त महोरगा।

[८३ प्र] महोरग किस प्रकार के होते है ?

[८३ उ] महोरग अनेक प्रकार के कहे गए है। वे इस प्रकार है—कई महोरग एक अगुल के भी होते है, कई अगुलपृथक्त्व (दो अगुल से नौ अगुल तक) के, कई वितस्ति (बीता=बारह अगुल) के भी होते है, कई वितस्तिपृथक्त्व (दो से नौ वितस्ति) के, कई एक रत्नि (हाथ) भर के, कई रत्निपृथक्त्व (दो हाथ से नौ हाथ तक) के भी, कई कुक्षिप्रमाण (दो हाथ के) होते है, कई कुक्षिपृथक्त्व (दो कुक्षि से नौ कुक्षि तक) के भी, कई धनुष (चार हाथ) प्रमाण भी, कई धनुषपृथक्त्व (दो धनुष से नौ धनुष तक) के भी, कई गव्यूति-(गाऊ=दो कोसदो हजारधनुष) प्रमाण भी, कई गव्यूति-पृथक्त्व के भी, कई योजनप्रमाण (चार गाऊ भर) भी, कई योजन पृथक्त्व के भी कई सौ योजन के भी, कई योजनशतपृथक्त्व (दो सौ से नौ सौ योजन तक) के भी और कई हजार योजन के भी होते हैं। वे स्थल मे उत्पन्न होते है, किन्तु जल मे विचरण (सचरण) करते है, स्थल मे भी विचरते है। वे यहाँ नही होते, किन्तु मनुष्यक्षेत्र के बाहर के द्वीप-समुद्रो मे होते है। इसी प्रकार के अन्य जो भी उर परिसर्प हो, उन्हे भी महोरगजाति के समझने चाहिए। यह हुई उन (पूर्वोक्त) महोरगो की प्ररूपणा।

८४ [१] **ते समासतो दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—सम्मुच्छिमा य गब्भवक्कतिया य।**

[८४-१] वे (चारो प्रकार के पूर्वोक्त उर परिसर्प स्थलचर) सक्षेप मे दो प्रकार के कहे गए हैं—सम्मूर्च्छिम और गर्भज।

[२] **तत्थ ण जे ते सम्मुच्छिमा ते सव्वे नपु सगा।**

[८४-२] इनमे से जो सम्मूर्च्छिम है, वे सभी नपु सक होते है।

[३] **तत्थ णं जे ते गब्भवक्कंतिया ते णं तिविहा पण्णत्ता। त जहा—इत्थी १ पुरिसा २ नपु सगा ३।**

[८४-३] इनमे से जो गर्भज हैं, वे तीन प्रकार के कहे गए है। १ स्त्री, २ पुरुष और ३ नपु सक।

[४] एएसि ण एवमाइयाण पज्जत्ताऽपज्जत्ताण उरपरिसप्पाण दस जाइकुलकोडीजोणिप्प-मुहसतसहस्सा हवतीति मक्खातं । से त्त उरपरिसप्पा ।

[८४-४] इस प्रकार (अहि) इत्यादि इन पर्याप्तक और अपर्याप्तक उर परिसर्पो के दस लाख जाति-कुलकोटि-योनि-प्रमुख होते है, ऐसा कहा है ।

यह उर परिसर्पो की प्ररूपणा हुई ।

८५ [१] से किं तं भुयपरिसप्पा ?

भुयपरिसप्पा अणेगविहा पण्णत्ता । त जहा– णउला गोहा सरडा सल्ला सरठा सारा खारा घरोइला विस्सभरा मूसा मंगूसा पयलाइया छीरविरालिया; जहा चउप्पाइया, जे यावऽण्णे तहप्पगारा ।

[८५-१ प्र] भुजपरिसर्प किस प्रकार के है ?

[८५-१ उ] भुजपरिसर्प अनेक प्रकार के कहे गए है । वे इस प्रकार—नकुल (नेवले), गोह, सरट (गिरगिट), शल्य, सरठ (सरठ), सार, खार (खोर), गृहकोकिला (घरोली=छिपकली), विषम्भरा (विसभरा), मूषक (चूहे), मगुसा (गिलहरी), पयोलातिक, क्षीरविडालिका, जैसे चतुष्पद (चौपाये) स्थलचर (का कथन किया, वैसे ही इनका समझना चाहिए ।) इसी प्रकार के अन्य जितने भी (भुजा से चलने वाले प्राणी हो, उन्हे भुजपरिसर्प समझना चाहिए ।)

[२] ते समासतो दुविहा पण्णत्ता । त जहा—सम्मुच्छिमा य गब्भवक्कतिया य ।

[८५-२] वे (नकुल आदि पूर्वोक्त भुजपरिसर्प) सक्षेप मे दो प्रकार के होते है । जैसे कि—सम्मूर्च्छिम और गर्भज ।

[३] तत्थ ण जे ते सम्मुच्छिमा ते सव्वे णपुंसगा ।

[८५-३] इनमे से जो सम्मूर्च्छिम हैं, वे सभी नपुसक होते है ।

[४] तत्थ ण जे ते गब्भवक्कंतिया ते ण तिविहा पण्णत्ता । त जहा—इत्थी १ पुरिसा २ नपुसगा ।

[८५-४] इनमे से जो गर्भज हैं, वे तीन प्रकार के कहे गए हैं । (१) स्त्री, (२) पुरुष और (३) नपुसक ।

[५] एतेसि ण एवमाइयाण पज्जत्ताऽपज्जत्ताण भुयपरिसप्पाण णव जाइकुलकोडिजोणीपमुह-सतसहस्सा हवतीति मक्खाय । से त्त भुयपरिसप्पथलयरपचेंदियतिरिक्खजोणिया । से त्त परिसप्प-थलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिया ।

[८५-५] इस प्रकार (नकुल) इत्यादि इन पर्याप्तक और अपर्याप्तक भुजपरिसर्पो के नौ लाख जाति-कुलकोटि-योनि-प्रमुख होते हैं, ऐसा कहा है ।

यह हुआ पूर्वोक्त भुजपरिसर्प-स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिको (का वर्णन ।) (साथ ही) परिसर्प-स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिको (की प्ररूपणा भी पूर्ण हुई ।)

८६. से किं त खहयरपचेंदियतिरिक्खजोणिया ?

खहयरपचेंदियतिरिक्खजोणिया चउव्विहा पण्णत्ता । त जहा—चम्मपक्खी १ लोमपक्खी समुग्गपक्खी ३ वियतपक्खी ४ ।

[८६-प्र] वे (पूर्वोक्त) खेचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक किस-किस प्रकार के है ?

[८६-उ] खेचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक चार प्रकार के कहे गए है । वे इस प्रकार है—(१) चर्मपक्षी (जिनकी पाखे चमडे की हो), (२) लोम (रोम) पक्षी (जिनकी पाखे रोएदार हो), (३) समुद्गकपक्षी [जिनकी पाखे उडते समय भी समुद्गक (डिब्वे या पेटी) जैसी रहे), और (४) विततपक्षी (जिनके पख फैले हुए रहे, सिकुडे नही) ।

८७ से किं त चम्मपक्खी ?

चम्मपक्खी अणेगविहा पण्णत्ता । त जहा—वग्गुली जलोया अडिला भारडपक्खी जीवजीवा समुद्दवायसा कण्णत्तिया पक्खिबिराली, जे यावऽण्णे तहप्पगारा । से त्त चम्मपक्खी ।

[८७-प्र] वे (पूर्वोक्त) चर्मपक्षी खेचर किस प्रकार के है ?

[८७-उ] चर्मपक्षी अनेक प्रकार के कहे गए है । वे इस प्रकार—वल्गुली(चमगीदड=चमचेड), जलौका, अडिल्ल, भारण्डपक्षी, जीवजीव (चक्रवाक-चकवे), समुद्रवायस (समुद्री कौए), कर्णत्रिक और पक्षिविडाली । अन्य जो भी इस प्रकार के पक्षी हो, (उन्हे चर्मपक्षी समझना चाहिए ।) यह हुई चर्मपक्षियो (की प्ररूपणा ।)

८८ से किं त लोमपक्खी ?

लोमपक्खी अणेगविहा पन्नत्ता । त जहा—ढका कका कुरला वायसा चक्कागा हंसा कलहसा पायहसा रायहसा अडा सेडी बगा बलागा पारिप्पवा कोंचा सारसा मेसरा मसूरा मयूरा सतवच्छा गहरा पोडरीया कागा कामजुगा वजुलगा तित्तिरा वट्टगा लावगा कवोया कविंजला पारेवया चिडगा चासा कुक्कुडा सुगा बरहिणा मदणसलागा कोइला सेहा वरेल्लगमादी । से त्त लोमपक्खी ।

[८८-प्र] वे (पूर्वोक्त) रोमपक्षी किस प्रकार के है ?

[८८-उ] रोमपक्षी अनेक प्रकार के कहे गए है । वे इस प्रकार है—ढक, कक, कुरल, वायस (कौए), चक्रवाक (चकवा), हस, कलहस, राजहस (लाल चोच एव पख वाले हस), पादहस, आड (अड), सेडी, बक (बगुले), बलाका (बकपक्ति), पारिप्लव, क्रौंच, सारस, मेसर, मसूर, मयूर (मोर), शतवत्स (सप्तहस्त), गहर, पौण्डरीक, काक, कामजुक (कामेज्जुक), वजुलक, तित्तिर (तीतर), वर्त्तक (बतक), लावक, कपोत, कपिंजल, पारावत (कबूतर), चिटक, चास, कुक्कुट (मुर्गे), शुक (सुग्गे-तोते), बर्ही (मोर विशेष), मदनशलाका (मैना), कोकिल (कोयल), सेह और वरिल्लक आदि । यह है (उक्त) रोमपक्षियो (का वर्णन ।)

८९ से किं त समुग्गपक्खी ?

समुग्गपक्खी एगागारा पण्णत्ता । ते ण णत्थि इह, बाहिरएसु दीव-समुद्दएसु भवति । से त्त समुग्गपक्खी ।

[८९-प्र] वे (पूर्वोक्त) समुद्गपक्षी कौन-से है?

[८९-उ] समुद्गपक्षी एक ही आकार-प्रकार के कहे गए हैं। वे यहाँ (मनुष्यक्षेत्र मे) नही होते। वे (मनुष्यक्षेत्र से) बाहर के द्वीप-समुद्रो मे होते है। यह समुद्गपक्षियो को प्ररूपणा हुई।

९०. से किं त विततपक्खी ?

विततपक्खी एगागारा पण्णत्ता। ते ण नत्थि इह, बाहिरएसु दीव-समुद्दएसु भवति। से त्त विततपक्खी।

[९०-प्र] वे (पूर्वोक्त) विततपक्षी कैसे हैं ?

[९०-उ] विततपक्षी एक ही आकार-प्रकार के होते है। वे यहाँ (मनुष्यक्षेत्र मे) नही होते। (मनुष्यक्षेत्र से) बाहर के द्वीप-समुद्रो मे होते हैं। यह विततपक्षियो की प्ररूपणा हुई।

९१ [१] ते समासतो दुविहा पण्णत्ता। त जहा—सम्मुच्छिमा य गब्भवक्कतिया य।

[९१-१] ये (पूर्वोक्त चारो प्रकार के खेचरपचेन्द्रिय-तिर्यञ्च) सक्षेप मे दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार—सम्मूर्च्छिम और गर्भज।

[२] तत्थ णं जे ते सम्मुच्छिमा ते सव्वे नपुंसगा।

[९१-२] इनमे से जो सम्मूर्च्छिम है, वे सभी नपुसक होते है।

[३] तत्थ ण जे ते गब्भवक्कतिया ते ण तिविहा पण्णत्ता। त जहा—इत्थी १ पुरिसा २ नपुसगा ३।

[९१-३] इनमे से जो गर्भज है, वे तीन प्रकार के कहे गए है। जैसे कि—(१) स्त्री, (२) पुरुष और (३) नपुसक।

[४] एएसि णं एवमाइयाण खहयरपचेंदियतिरिक्खजोणियाण पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं बारस जातीकुलकोडीजोणिप्पमुहसतसहस्सा भवतीति मक्खात।

सत्तट्ठ जातिकुलकोडिलक्ख नव अद्धतेरसाइं च।
दस दस य होंति णवगा तह बारस चेव बोद्धव्वा ॥१११॥

से त्तं खहयरपचेंदियतिरिक्खजोणिया। से त्त पचेंदियतिरिक्खजोणिया। से त्तं तिरिक्खजोणिया।

[९१-४] इस प्रकार चर्मपक्षी इत्यादि इन पर्याप्तक और अपर्याप्तक खेचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिको के बारह लाख जाति-कुलकोटि-योनिप्रमुख होते है, ऐसा कहा है।

[सग्रहणी गाथार्थ—] (द्वीन्द्रियजीवो की) सात लाख जातिकुलकोटि, (त्रीन्द्रियो की) आठ लाख, (चतुरिन्द्रियो की) नौ लाख, (जलचर तिर्यञ्चपचेन्द्रियो की) साढे बारह लाख, (चतुष्पद-स्थलचर पचेन्द्रियो की) दस लाख, (उर परिसर्प-स्थलचर पचेन्द्रियो की) दस लाख, (भुजपरिसर्प-स्थलचर-पचेन्द्रियो की) नौ लाख तथा (खेचर-पचेन्द्रियो की) बारह लाख, (यो द्वीन्द्रिय से लेकर खेचर पचेन्द्रिय तक की क्रमश) समझनी चाहिए ॥१११॥

यह खेचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिको की प्ररूपणा हुई। इसकी समाप्ति के साथ ही पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक जीवो की प्ररूपणा भी समाप्त हुई और इसके साथ ही समस्त तिर्यञ्चपचेन्द्रियो की प्ररूपणा भी पूर्ण हुई।

विवेचन—पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक जीवो की प्रज्ञापना—प्रस्तुत इकतीस सूत्रो (सू ६१ से ९१ तक) मे शास्त्रकार ने पचेन्द्रिय तिर्यञ्चो के जलचर आदि तीनो प्रकारो के भेद-प्रभेदो तथा उनकी विभिन्न जातियो एव जातिकुलकोटियो की सख्या का विशद निरूपण किया है।

गर्भज और सम्मूच्छिम की व्याख्या—जो जीव गर्भ मे उत्पन्न होते हैं, वे माता-पिता के सयोग से उत्पन्न होने वाले गर्भव्युत्क्रान्तिक या गर्भज कहलाते है। जो जीव माता-पिता के सयोग के बिना ही, गर्भ या उपपात के बिना, इधर-उधर के अनुकूल पुद्गलो के इकट्ठे हो जाने से उत्पन्न होते है, वे **सम्मूर्च्छिम** कहलाते है। सम्मूर्च्छिम सब नपु सक ही होते हैं, किन्तु गर्भजो मे स्त्री, पुरुष और नपु सक, ये तीनो प्रकार होते है।[1]

तिर्यञ्चयोनिक शब्द का निर्वचन—जो 'तिर्' अर्थात् कुटिल—टेढे-मेढे या वक्र, 'अञ्चन' अर्थात् गमन करते है, उन्हे तिर्यञ्च कहते है। उनकी योनि अर्थात्—उत्पत्तिस्थान को 'तिर्यग्योनि' कहते है। तिर्यग्योनि मे जन्मने—उत्पन्न होने वाले तैर्यग्योनिक है।[2]

'उरःपरिसर्प' और 'भुजपरिसर्प' का अर्थ—जो अपनी छाती (उर) से रेग (परिसर्पण) करके चलते हैं, वे सर्प आदि स्थलचर तिर्यञ्चपचेन्द्रिय 'उरःपरिसर्प' कहलाते है और जो अपनी भुजाओ के सहारे चलते हैं, ऐसे नेवले, गोह आदि स्थलचर तिर्यञ्चपचेन्द्रिय प्राणी 'भुजपरिसर्प' कहलाते हैं।[3]

'आसालिक' (उर परिसर्प) की व्याख्या—'आसालिया' शब्द के सस्कृत मे दो रूपान्तर होते हैं—आसालिका और आसालिगा। आसालिका या आसालिक किसे कहते है, वे किस-किस प्रकार के होते हैं और कहाँ उत्पन्न होते है ? इत्यादि प्रश्नो के उत्तर मे प्रज्ञापना सूत्रकार श्री श्यामार्य वाचक ने अन्य ग्रन्थ मे भगवान् द्वारा गोतम के प्रति प्ररूपित कथन को यहाँ उद्धृत किया है।

'आसालिया कहिं समुच्छइ ?' इस वाक्य मे प्रयुक्त 'समुच्छइ' क्रियापद से स्पष्ट सूचित होता है कि 'आसालिका' या 'आसालिक' गर्भज नही, किन्तु सम्मूर्च्छिम है।

आसालिका की उत्पत्ति मनुष्यक्षेत्र के अन्दर अढाई द्वीपो मे होती है, वस्तुत मनुष्यक्षेत्र, अढाई द्वीप को ही कहते हैं, किन्तु यहाँ जो अढाई द्वीप मे इनकी उत्पत्ति बताई है, वह यह सूचित करने के लिए है कि आसालिका की उत्पत्ति अढाई द्वीपो मे ही होती है, लवणसमुद्र मे या कालोदधि-समुद्र मे नही। किसी प्रकार के व्याघात के अभाव मे वह १५ कर्मभूमियो मे उत्पन्न होता है, इसका रहस्य यह है कि अगर ५ भरत एव ५ ऐरवत क्षेत्रो मे व्याघातहेतुक सुषम-सुषम आदि रूप या दु षम-दु षम आदिरूप काल व्याघातकारक न हो, तो १५ कर्मभूमियो मे आसालिका की उत्पत्ति होती है। यदि ५ भरत और ५ ऐरवत क्षेत्र मे पूर्वोक्त रूप का कोई व्याघात हो तो फिर वहाँ वह उत्पन्न नही होता। ऐसी (व्याघातकारक) स्थिति मे वह पाच महाविदेहक्षेत्रो मे उत्पन्न होता है। इससे यह भी

१ प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक ४४

२ वही, मलय वृत्ति, पत्राक ४३

३ वही, मलय वृत्ति, पत्राक ४६

ध्वनित हो जाता है कि तीस अकर्मभूमियो मे आसालिका की उत्पत्ति नही होती तथा १५ कर्मभूमियो एव महाविदेहो मे भी इसकी सर्वत्र उत्पत्ति नही होती, किन्तु चक्रवर्ती, बलदेव आदि के स्कन्धावारो (सैनिक छावनियो) मे वह उत्पन्न होता है। इनके अतिरिक्त ग्राम-निवेश से लेकर राजधानी-निवेश तक मे से किसी मे भी इसकी उत्पत्ति होती है, और वह भी जब चक्रवर्ती आदि के स्कन्धावारो या ग्रामादि-निवेशो का विनाश होने वाला हो। स्कन्धावारो या निवेशो के विनाशकाल मे उनके नीचे की भूमि को फाडकर उसमे से वह आसालिका निकलती है। यही आसालिका की उत्पत्ति की प्ररूपणा है। आसालिका की अवगाहना जघन्य अगुल के असख्यातवे भाग की, उत्कृष्ट बारह योजन की होती है। उसका विस्तार और मोटाई अवगाहना के अनुरूप होती है। आसालिका असज्ञी, मिथ्यादृष्टि और अज्ञानी होता है। इसकी आयु सिर्फ अन्तर्मुहूर्त भर की होती है।[1]

महोरगो का स्वरूप और स्थान—महोरग एक अगुल की अवगाहना से लेकर एक हजार योजन तक की अवगाहना वाले होते हैं। ये स्थल मे उत्पन्न होकर भी जल मे भी सचार करते हैं, स्थल मे भी, क्योकि इनका स्वभाव ही ऐसा है। महोरग इस मनुष्यक्षेत्र मे नही होते, किन्तु इससे बाहर के द्वीपो और समुद्रो मे, तथा समुद्रो मे भी पर्वत, देवनगरी आदि स्थलो मे उत्पन्न होते हैं। अत्यन्त स्थूल होने के कारण ये जल मे उत्पन्न नही होते। इसी कारण ये मनुष्यक्षेत्र मे नही दिखाई देते। मूलपाठ मे उक्त लक्षण वाले दस अगुल आदि की अवगाहना वाले जो उर परिसर्प हो, उन्हे महोरग समझना चाहिए।[2]

'दर्वीकर' और 'मुकुली' शब्दो का अर्थ—दर्वी कहते हैं—कुडछी या चाटु को, उसकी तरह दर्वी यानी फणा करने वाला दर्वीकर है। मुकुली अर्थात्—फन उठाने की शक्ति से विकल, जो बिना फन का हो।[3]

ग्राम आदि के विशेष अर्थ—**ग्राम**—बाड से घिरी हुई बस्ती। **नगर**—जहाँ अठारह प्रकार के कर न लगते हो। **निगम**—बहुत-से वणिक्जनो के निवास वाली बस्ती। **खेट**—खेडा, धूल के परकोटे से घिरी हुई बस्ती। **कर्बट**—छोटे-से प्राकार से वेष्टित बस्ती। **मडम्ब**—जिसके आसपास ढाई कोस तक दूसरी बस्ती न हो। **द्रोणमुख**—जिसमे प्राय जलमार्ग से ही आवागमन हो या बन्दरगाह। **पट्टण**—जहाँ घोडा, गाडी या नौका से पहुँचा जाए अथवा व्यापार की मडी, व्यापारिक केन्द्र। **आकर**—स्वर्णादि की खान। **आश्रम**—तापसजनो का निवासस्थान। **संबाध**—धान्यसुरक्षा के लिए कृषको द्वारा निर्मित दुर्गम भूमिगत स्थान या यात्रिको के पडाव का स्थान। **राजधानी**—राज्य का शासक जहाँ रहता हो।[4]

समग्र मनुष्य जीवो की प्रज्ञापना—

९२ से कि त मणुस्सा ?

मणुस्सा दुविहा पण्णत्ता। त जहा—सम्मुच्छिममणुस्सा य गब्भवक्कतियमणुस्सा य।

---

१ प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक ४७-४८

२ वही मलय वृत्ति, पत्राक ४८

३ वही मलय वृत्ति, पत्राक ४७

४ वही मलय वृत्ति, पत्राक ४७-४८

[९२ प्र] मनुष्य किस (कितने) प्रकार के होते हैं ?

[९२ उ] मनुष्य दो प्रकार के कहे गए है। वे इस प्रकार—सम्मूर्च्छिम मनुष्य और गर्भज मनुष्य।

९३. से किं त सम्मुच्छिममणुस्सा ? कहि ण भते ! सम्मुच्छिममणुस्सा सम्मुच्छति ?

गोयमा ! अतोमणुस्सखेत्ते पणुतालीसाए जोयणसयसहस्सेसु अड्ढाइज्जेसु दीव-समुद्देसु पन्नरससु कम्मभूमीसु तीसाए अकम्मभूमीसु छप्पण्णाए अतरदीवएसु गब्भवक्कतियमणुस्साण चेव उच्चारेसु वा १ पासवणेसु वा २ खेलेसु वा ३ सिंघाणेसु वा ४ वतेसु वा ५ पित्तेसु वा ६ पूएसु वा ७ सोणिएसु वा ८ सुक्केसु वा ९ सुक्कपोग्गलपरिसाडेसु वा १० विगतजीवकलेवरेसु वा ११ थी-पुरिससजोएसु वा १२ [1][गोमणिद्धमणेसु वा १३] णगरणिद्धमणेसु वा १४ सव्वेसु चेव असुइएसु ठाणेसु, एत्थ ण समुच्छिम-मणुस्सा सम्मुच्छति। अगुलस्स असखेज्जइभागमेत्तीए ओगाहणाए असण्णी मिच्छद्दिट्ठी सव्वाहि पज्जत्तीहिं अपज्जत्तगा अतोमुहुत्ताउया चेव काल करेंति। से त्त सम्मुच्छिममणुस्सा।

[९३ प्र] सम्मूर्च्छिम मनुष्य कैसे होते है ?, भगवन् ! सम्मूर्च्छिम मनुष्य कहाँ उत्पन्न होते है ?

[९३ उ] गौतम ! मनुष्य क्षेत्र के अन्दर, पैंतालीस लाख योजन विस्तृत द्वीप-समुद्रो मे, पन्द्रह कर्मभूमियो मे, तीस अकर्मभूमियो मे एव छप्पन अन्तर्द्वीपो मे गर्भज मनुष्यो के—(१) उच्चारो (विष्ठाओ—मलो) मे, (२) पेशाबो (मूत्रो) मे, (३) कफो मे, (४) सिंघाण—नाक के मैलो (लीट) मे, (५) वमनो मे, (६) पित्तो मे, (७) मवादो मे, (८) रक्तो मे, (९) शुक्रो—वीर्यों मे, (१०) पहले सूखे हुए शुक्र के पुद्गलो को गीला करने मे, (११) मरे हुए जीवो के कलेवरो (लाशो) मे, (१२) स्त्री-पुरुष के सयोगो मे या (१३) ग्राम की गटरो या मोरियो मे अथवा (१४) नगर की गटरो—मोरियो मे, अथवा सभी अशुचि (अपवित्र—गदे) स्थानो मे—इन सभी स्थानो मे सम्मूर्च्छिम मनुष्य (माता-पिता के सयोग के बिना स्वत) उत्पन्न होते है। इन सम्मूर्च्छिम मनुष्यो की अवगाहना अगल के असख्यातवे भाग मात्र की होती है। ये असज्ञी मिथ्यादृष्टि एव सभी पर्याप्तियो से अपर्याप्त होते है। ये अन्त-र्मुहूर्त्त की आयु भोग कर मर जाते है। यह सम्मूर्च्छिम मनुष्यो की प्ररूपणा हुई।

९४. से किं त गब्भवक्कतियमणुस्सा ?

गब्भवक्कतियमणुस्सा तिविहा पण्णत्ता। त जहा—कम्मभूमगा १ अकम्मभूमगा २ अतर-दीवगा ३।

[९४ प्र] गर्भज मनुष्य किस प्रकार के होते हैं ?

[९४ उ] गर्भज मनुष्य तीन प्रकार के कहे गए है। वे इस प्रकार—१ कर्मभूमिक, ९ अकर्म-भूमिक और ३ अन्तरद्वीपक।

९५. से किं त अतरदीवगा ?

अंतरदीवया अट्ठावीसतिविहा पण्णत्ता। त जहा—एगोरुया १ आभासिया २ वेसाणिया ३

---

१ "गामणिद्धमणेसु वा १३" पाठ मलयगिरि नन्दी टीका के उद्धरण मे है।

णंगोलिया ४ हयकण्णा ५ गयकण्णा ६ गोकण्णा ७ सक्कुलिकण्णा ८ आयंसमुहा ९ मेढमुहा १० अयोमुहा ११ गोमुहा १२ आसमुहा १३ हत्थिमुहा १४ सीहमुहा १५ वग्घमुहा १६ आसकण्णा १७ सीहकण्णा १८ अकण्णा १९ कण्णपाउरणा २० उक्कामुहा २१ मेहमुहा २२ विज्जुमुहा २३ विज्जुदंता २४ घणदंता २५ लट्ठदंता २६ गूढदंता २७ सुद्धदंता २८। से त्तं अंतरदीवगा।

[९५ प्र] अन्तरद्वीपक किस प्रकार के होते हैं ?

[९५ उ] अन्तरद्वीपक अट्ठाईस प्रकार के कहे गए है। वे इस प्रकार—(१) एकोरुक, (२) आभासिक, (३) वैषाणिक, (३) नागोलिक, (५) हयकर्ण, (६) गजकर्ण, (७) गोकर्ण, (८) शष्कुलिकर्ण, (९) आदर्शमुख, (१०) मेण्ढमुख, (११) अयोमुख, (१२) गोमुख, (१३) अश्वमुख, (१४) हस्तिमुख, (१५) सिंहमुख, (१६) व्याघ्रमुख, (१७) अश्वकर्ण, (१८) सिंहकर्ण (हरिकर्ण), (१९) अकर्ण, (२०) कर्णप्रावरण, (२१) उल्कामुख, (२२) मेघमुख, (२३) विद्युन्मुख, (२४) विद्युद्दन्त, (२५) घनदन्त, (२६) लष्टदन्त, (२७) गूढदन्त और (२८) शुद्धदन्त। यह अन्तरद्वीपकों की प्ररूपणा हुई।

९६. से किं तं अकम्मभूमगा ?

अकम्मभूमगा तीसतिविहा पन्नत्ता। तं जहा—पंचहिं हेमवएहिं पंचहिं हिरण्णवएहिं पंचहिं हरिवासेहिं पंचहिं रम्मगवासेहिं पंचहिं देवकुरूहिं पंचहिं उत्तरकुरूहिं। से त्तं अकम्मभूमगा।

[९६ प्र] अकर्मभूमक मनुष्य कौन-से हैं ?

[९६ उ] अकर्मभूमक मनुष्य तीस प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार—पांच हैमवत क्षेत्रों में, पांच हैरण्यवत क्षेत्रों में, पांच हरिवर्ष क्षेत्रों में, पांच रम्यकवर्ष क्षेत्रों में, पांच देवकुरुक्षेत्रों में और पांच उत्तरकुरुक्षेत्रों में। इस प्रकार यह अकर्मभूमक मनुष्य की प्ररूपणा हुई।

९७ [१] से किं तं कम्मभूमया ?

कम्मभूमया पण्णरसविहा पण्णत्ता। तं जहा—पंचहिं भरहेहिं पंचहिं एरवतेहिं पंचहिं महाविदेहेहिं।

[९७-१ प्र] कर्मभूमक मनुष्य किस प्रकार के हैं ?

[९७-१ उ] कर्मभूमक मनुष्य पन्द्रह प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार है—पांच भरत क्षेत्रों में, पांच ऐरवतक्षेत्रों में और पांच महाविदेहक्षेत्रों में।

[२] ते समासतो दुविहा पण्णत्ता तं जहा—आरिया य मिलक्खू य।

[९७-२] वे (पन्द्रह प्रकार के कर्मभूमक मनुष्य) संक्षेप में दो प्रकार के है—आर्य और म्लेच्छ।

९८ से किं तं मिलक्खू ?

मिलक्खू[1] अणेगविहा पण्णत्ता । त जहा—सग-जवण-चिलाय-सवर-बब्बर-काय-मुरु डोड्ड-भडग-णिण्णग-पक्कणिय- कुलक्ख- गोड-सिंहल- पारस-गाधोडव- दमिल-चिल्लल- पुलिंद- हारोस-डोब-वोक्काण-गधाहारग-बहलिय-अज्जल-रोम-पास-पउसा-मलया य चुचया य मूयलि-कोकणग-मेय-पल्हव-मालव-गग्गर-आभासिय-णक्क-चीणा ल्हसिय-खस-खासिय-णेडूर-मढ-डोंबिलग-लउस-बउस-केक्कया अरवागा हूण-रोसग-मरुग-रुय-विलायविसयवासी य एवमादी । से त्त मिलक्खू ।

[९८ प्र] म्लेच्छ मनुष्य किस-किस प्रकार के है ?

[९८ उ] म्लेच्छ मनुष्य अनेक प्रकार के कहे गए है । वे इस प्रकार—शक, यवन, किरात, शबर बर्बर, काय, मरुण्ड, उड्ड, भण्डक, (भडक), निन्नक (निण्णक), पक्कणिक, कुलाक्ष, गोड, सिंहल, पारस्य, (पारसक) आन्ध्र (क्रौच), उडम्ब (अम्बडक), तमिल (दमिल-द्रविड), चिल्लल (चिल्लस या चिल्लक) पुलिन्द, हारोस, डोंब (डोम), पोक्काण (वोक्काण), गन्धाहारक (कन्धारक), बहलिक (बाल्हीक), अज्जल (अज्झल), रोम, पास (मास), प्रदुष (प्रकुप), मलय (मलयाली) और चचूक (बन्धुक) तथा मूयली (चूलिक), कोकणक, मेद (मेव), पल्हव, मालव, गग्गर (मग्गर), आभाषिक, णक्क (कणवीर), चीना, ल्हासिक (लासा के), खस, खासिक (खासी जातीय), नेडूर (नेदूर), मढ (मोढ), डोम्बिलक, लओस, बकुश, कैकय, अरवाक (अक्खाग), हूण, रोसक (रूसवासी या रोमक), मरुक, रुत (भ्रमररुत) और विलात (चिलात) देशवासी इत्यादि । यह म्लेच्छो का (वर्णन हुआ ।)

९९ से किं त आरिया ?

आरिया दुविहा पण्णत्ता । तं जहा—इड्ढिपत्तारिया य अणिड्ढिपत्तारिया य ।

[९९ प्र] आर्य कौन-से है ?

[९९ उ] आर्य दो प्रकार के कहे गए है । वे इस प्रकार—ऋद्धिप्राप्त आर्य और ऋद्धि-अप्राप्त आर्य ।

१०० से किं तं इड्ढिपत्तारिया ?

इड्ढिपत्तारिया छव्विहा पण्णत्ता । त जहा—अरहता १ चक्कवट्टी २ बलदेवा ३ वासुदेवा ४ चारणा ५ विज्जाहरा ६ । से त्त इड्ढिपत्तारिया ।

---

१ प्रवचनसारोद्धार की तीन गाथाओ मे म्लेच्छ के बदले अनार्यों के नाम इस प्रकार गिनाए हैं—"सग-जवण-सबर-बब्बर-काय-मुरु डोड्ड-गोण-पक्कणया । अरबाग-होण-रोमय-पारस-खसखासिया चेव ॥१५८३॥ दु बिलय-लउस-बोक्कस-भिल्लऽन्ध-पुलिंद-कु च-भमररुया कोवाय-चीण-चचुय-मालव-दमिला कुलग्घा य ॥१५८४॥ केक्कय-किराय-हयमुह-खरमुह-गय-तुरय-मिंढयमुहा य । हयकन्ना गयकन्ना अन्ने वि अणारिया बहवे ॥१५८५॥"
"शका यवना शबरा बर्बरा काया मुरुण्डा उड्डा गौड्डा पक्कणगा अरवागा हूणा रोमका पारसा खसा खासिका द्रुम्बिलका लकुशा बोक्कशा भिल्ला अन्ध्रा पुलिन्द्रा कुञ्चा भ्रमररुचा कोर्पका चीना चञ्चुका मालवा द्रविडा कुलार्घा केकया किराता हयमुखा खरमुखा गजमुखा तुरङ्गमुखा मिण्ढकमुखा हयकर्णा गजकर्णाश्चेत्येते देशा अनार्या ।" इति वृत्ति । पत्र ४४५-२ ॥

[१०० प्र] ऋद्धिप्राप्त आर्य कौन-कौन-से है ?

[१०० उ] ऋद्धिप्राप्त आर्य छह प्रकार के है। वे इस प्रकार है—१ अर्हन्त (तीर्थंकर), २ चक्रवर्ती, ३ बलदेव, ४ वासुदेव, ५ चारण और ६ विद्याधर। यह हुई ऋद्धिप्राप्त आर्यो की प्ररूपणा।

१०१ से किं तं अणिड्ढिपत्तारिया ?

अणिड्ढिपत्तारिया णवविहा पण्णत्ता। तं जहा—खेत्तारिया १ जातिआरिया २ कुलारिया ३ कम्मारिया ४ सिप्पारिया ५ भासारिया ६ णाणारिया ७ दंसणारिया ८ चरित्तारिया ९।

[१०१ प्र] ऋद्धि-अप्राप्त आर्य किस प्रकार के है ?

[१०१ उ] ऋद्धि-अप्राप्त आर्य नौ प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार है—(१) क्षेत्रार्य, (२) जात्यार्य, (३) कुलार्य, (४) कर्मार्य, (५) शिल्पार्य, (६) भाषार्य, (७) ज्ञानार्य, (८) दर्शनार्य और (९) चारित्रार्य।

१०२. से किं तं खेत्तारिया ?

खेत्तारिया अद्धछव्वीसतिविहा पण्णत्ता। त जहा—

रायगिह मगह १, चपा अंगा २, तह तामलित्ति[1] वगा य ३।
कचणपुर कलिगा ४, वाणारसि चेव कासी य ५ ॥११२॥
साएय कोसला ६, गयपुर च कुरु ७, सोरिय कुसट्टा य ८।
कंपिल्ल पंचाला ९, अहिछत्ता जगला चेव १० ॥११३॥
बारवती य सुरट्ठा ११, मिहिल विदेहा य १२, वच्छ[2] कोसंबी १३।
णंदिपुर सडिल्ला १४, भद्दिलपुरमेव मलया य १५ ॥११४॥
वइराड मच्छ[3] १६, वरणा अच्छा १७, तह मत्तियावइ दसण्णा १८।

---

१ 'तामलित्ती' शब्द के सस्कृत मे दो रूपान्तर होते है—तामलिप्ती और ताम्रलिप्ती। प्रज्ञापना मलय वृत्ति, तथा प्रवचनसारोद्धार मे प्रथम रूपान्तर माना गया है, जब कि भगवती आदि की टीकाओ मे 'ताम्रलिप्ती' शब्द को ही प्रचलित माना है। जो हो, वर्तमान मे यह 'तामलूक' नाम से पश्चिम बगाल मे प्रसिद्ध है।—स

२ प्रवचनसारोद्धार की गाथा १५८९ से १५९२ तक की वृत्ति १३ वें आर्यक्षेत्र से पाठक्रम तथा इसी के समान वृत्ति मिलती है—'वत्सदेश कौशाम्बी नगरी १३ नन्दिपुर नगर शाण्डिल्यो शाण्डिल्या वा देश १४ भद्दिलपुर नगर मलयादेश १५ वैराटो देश वत्सा राजधानी, अन्ये तु 'वत्सादेशो वैराट पुर नगरम्' इत्याहु १६ वरुणा-नगर अच्छादेश, अन्ये तु 'वरुणेषु अच्छापुरी' इत्याहु १७ तथा मृत्तिकावती नगरी दशार्णो देश १८ शुक्तिमती नगरी चेदयो देश १९ वीतभय नगर सिन्धुसौवीरा जनपद २० मथुरा नगरी सुरसेनाख्यो देश २१ पापा नगरी भङ्गयो देश २२ मासपुरी नगरी वर्तो देश २३ तथा श्रावस्ती नगरी कुणाला देश २४।' —पत्राक ४४६।२

३ वैराट् नगर (वर्तमान मे वैराठ) अलवर के पास है, जहाँ प्राचीनकाल मे पाण्डवो का अज्ञातवास रहा है। यह वत्सदेश मे न होकर मत्स्यदेश मे है। क्योकि वच्छ कोसावी पाठ पहले आ चुका है। अत मूलपाठ मे यह 'वच्छ' न होकर मच्छ शब्द होना चाहिए। अन्यथा 'वइराड वच्छ पाठ होने से वत्सदेश नाम के दो देश होने का भ्रम हो जाएगा।—स। —देखिये, जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भा-२, पृ ९१।

सुत्तीमई य चेदी १९, वीइभय सिंधुसोवीरा २० ॥११५॥
महुरा य सूरसेणा २१, पावा भगी य २२, मास पुरिवट्टा २३ ।
सावत्थी य कुणाला २४, कोडीवरिस च लाढा य २५ ॥११६॥
सेयविया वि य णयरी केयइअद्धं च २५½ ॥ आरिय भणित ।
एत्थुप्पत्ति जिणाण चक्कीण राम-कण्हाण ॥११७॥

से त्तं खेत्तारिया ।

[१०२ प्र] क्षेत्रार्य किस-किस प्रकार के है ?

[१०२ उ] क्षेत्रार्य साढे पच्चीस प्रकार के कहे गए हैं । वे इस प्रकार से हैं—

[गाथाओ का अर्थ—] (१) मगध (देश मे) राजगृह (नगर), (२) अग (देश मे) चम्पा (नगरी), तथा (३) बग (देश मे) ताम्रलिप्ती (तामलूक नगरी), (४) कलिंग (देश मे) काञ्चनपुर और (५) काशी (देश मे) वाराणसी (नगरी), ॥११२॥ (६) कोशल (देश मे) साकेत (नगर), (७) कुरु (देश मे) गजपुर (हस्तिनापुर), (८) कुशार्त्त (कुशावर्त्त देश मे) सौरियपुर (सौरीपुर), (९) पचाल (देश मे) काम्पिल्य, (१०) जागल (देश मे) अहिच्छत्रा (नगरी) ॥११३॥ (११) सौराष्ट्र मे द्वारावती (द्वारिका), (१२) विदेह (जनपद मे) मिथिला (नगरी), (१३) वत्स (देश मे) कौशाम्बी (नगरी), (१४) शाण्डिल्य (देश मे) नन्दिपुर, (१५) मलय (देश मे) भद्दिलपुर ॥११४॥ (१६) मत्स्य (देश मे) वैराट नगर, (१७) वरण (देश मे) अच्छा (पुरी), तथा (१८) दशार्ण (देश मे) मृत्तिकावती (नगरी), (१९) चेदि (देश मे) शुक्तिमती (शौक्तिकावती), (२०) सिन्धु-सौवीर देश मे वीतभय नगर ॥११५॥ (२१) शूरसेन (देश मे) मथुरा (नगरी), (२२) भग (नामक जनपद मे) पावापुरी (अपापा नगरी), (२३) पुरिवर्त्त (परावर्त्त) (नामक जनपद मे) मासा पुरी (माषा नगरी), (२४) कुणाल (देश मे) श्रावस्ती (सेहटमेहट), (२५॥) लाढ (देश मे) कोटिवर्ष (नगर) ॥११६॥ और (२५½) केकयार्द्ध (जनपद मे) श्वेताम्बिका (नगरी), (ये सब २५॥ देश) आर्य (क्षेत्र) कहे गए हैं । इन (क्षेत्रो) मे तीर्थकरो, चक्रवर्तियो, राम और कृष्ण (बलदेवो और वासुदेवो) का जन्म (उत्पत्ति) होता है । ॥११७॥ यह हुआ उक्त क्षेत्रार्यो का वर्णन ।

१०३ से किं त जातिआरिया ?

जातिआरिया छव्विहा पण्णत्ता । त जहा—

अबट्ठा १ य कलिंदा २ विदेहा ३ वेदगा ४ इ य ।
हरिया ५ चु चुणा ६ चेव, छ एया इब्भजातिओ[1] ॥११८॥

से त्त जातिआरिया ।

[१०३ प्र] जात्यार्य किस प्रकार के हैं ?

[१०३ उ] जात्यार्य[2] छह प्रकार के कहे गए है । वे इस प्रकार है—

---

१. पाठान्तर— अज्जजातितो ।

२ जात्यार्य—उमास्वातिकृत तत्त्वार्थभाष्य मे इक्ष्वाकु, विदेह, हरि, अम्बष्ठ, ज्ञात, कुरु, बु बुनाल (?) उग्र, भोग, राजन्य आदि की गणना जात्यार्य मे की गई है ।

[गाथार्थ]—(१) अम्बष्ठ[1], (२) कलिन्द, (३) वैदेह[2], (४) वेदग (वेदग) आदि और (५) हरित एव (५) चु चुण, ये छह इभ्य (अर्चनीय-माननीय) जातिया है ।।११८।।

यह हुआ उक्त जात्यार्यो का निरूपण ।

१०४. से किं तं कुलारिया ?

कुलारिया छव्विहा पन्नत्ता । त जहा—उग्गा १ भोगा २ राइण्णा ३ इक्खागा ४ णाता २ कोरव्वा ६ । से त्त कुलारिया ।

[१०४ प्र] कुलार्य कौन-कौन-से है ?

[१०४ उ] कुलार्य[3] छह प्रकार के कहे गए है । वे इस प्रकार है—(१) उग्र[4] (२) भोग, (३) राजन्य, (४) इक्ष्वाकु, (५) ज्ञात और (६) कौरव्य । यह हुआ उक्त कुलार्यो का निरूपण ।

१०५. से किं त कम्मारिया ?

कम्मारिया अणेगविहा पण्णत्ता । त जहा—दोस्सिया सोत्तिया कप्पासिया सुत्तवेयालिया भडवेयालिया कोलालिया णरदावणिया, जे यावऽण्णे तहप्पगारा । से त्तं कम्मारिया ।

[१०५ प्र] कर्मार्य कौन-कौन-से है ?

[१०५ उ] कर्मार्य अनेक प्रकार के कहे गए हैं । वे इस प्रकार—दोषिक (दूष्यक), सौत्रिक, कार्पासिक, सूत्रवैतालिक, भाण्डवैतालिक, कौलालिक और नरवाहनिक । इसी प्रकार के अन्य जितने भी (आर्यकर्म वाले हो, उन्हे कर्मार्य समझना चाहिए) । यह हुई उक्त कर्मार्यों (की प्ररूपणा)।

१०६ से किं त सिप्पारिया ?

सिप्पारिया अणेगविहा पण्णत्ता । त जहा—तुण्णागा ततुवाया पट्टगारा देयडा वरणा[5] छव्विया कट्ठपाउयारा मु जपाउयारा छत्तारा वज्झारा पोत्थारा लेप्पारा चित्तारा सखारा दतारा भडारा जिज्झगारा[6] सेल्लगारा[7] कोड्डिगारा, जे यावऽण्णे तहप्पगारा । से त्त सिप्पारिया ।

[१०६ प्र] शिल्पार्य कौन-कौन-से है ?

[१०६ उ] शिल्पार्य (भी) अनेक प्रकार के कहे गए हैं । वे इस प्रकार—तुन्नाक—(रफ्फूगर) दर्जी, तन्तुवाय—जुलाहे, पट्टकार (पटवा), दृतिकार (चमडे की मशक बनाने वाले), वरण (या वरुट्ट = पिच्छिक-पिछी बनाने वाले), छविक (चटाई आदि बनाने वाले), काष्ठपादुकाकार (लकडी की

---

१ अम्बष्ठ—ब्राह्मण पुरुष और वैश्यस्त्री से उत्पन्न सन्तान, देखिये—मनुस्मृति तथा आचारागनिर्युक्ति (२०-२७)

२ वैदेह—वैश्य पुरुष और ब्राह्मणस्त्री से उत्पन्न । देखिये—मनुस्मृति तथा आचारागनिर्युक्ति (२०-२७)

३ कुलार्य—तत्त्वार्थभाष्य मे कुलकर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव आदि की गणना कुलार्य मे की गई है ।
—तत्त्वार्थभाष्य अ ३ । सू १५

४ उग्र—क्षत्रिय पुरुष और शूद्रस्त्री से उत्पन्न सन्तान । देखिये मनुस्मृति और आचाराग नियुक्ति ।

५ पाठान्तर—वरुणा, वरुट्टा । ६ जिब्भगारा, जिब्भारा । ७ सेल्लारा (शिलावट) ।

खडाऊँ बनाने वाले), मु जपादुकाकार (मू ज की खडाऊँ बनाने वाले), छत्रकार (छाते बनाने वाले), वज्झार-वाह्यकार (वाहन बनाने वाले), (अथवा वहकार=मोरपिच्छी बनाने वाले), पुच्छकार या पुस्तकार (पू छ के बालो से झाडू आदि बनाने वाले), या पुस्तककार—जिल्दसाज अथवा मिट्टी के पुतले बनाने वाले, लेप्यकार (लिपाई-पुताई करने वाले, अथवा मिट्टी के खिलौने आदि बनाने वाले), चित्रकार, शखकार, दन्तकार (दात बनाने वाले, या दाती), भाण्डकार (विविध वर्तन बनाने वाले), जिज्झकार(जिह्वाकार=नकली जीभ बनाने वाले), सेल्लकार (शैल्यकार—शिला तथा पाषाण आदि घडकर वस्तु बनाने वाले अथवा सैलकार=भाला बनाने वाले) और कोडिकार (कोडियो की माला आदि बनाने वाले), इसी प्रकार के अन्य जितने भी आर्य शिल्पकार हैं, उन सबको शिल्पार्य समझना चाहिए। यह हुई उन शिल्पार्यों की प्ररूपणा।

१०७ से किं त भासारिया ?

भासारिया जे ण अद्धमागहाए भासाए भासिंति, जत्थ वि य ण बभी लिवी पवत्तइ। बभीए ण लिवीए अट्ठारसविहे लेक्खविहाणे पण्णत्ते। त जहा—बभी १ जवणाणिया २ दोसापुरिया[1] ३ खरोट्ठी ४ पुक्खरसारिया ५ भोगवईया ६ पहराईयाओ य ७ अतक्खरिया ८ अक्खरपुट्ठिया ९ वेणइया १० णिण्हइया ११ अकलिवी १२ गणितलिवी १३ गधव्वलिवी १४ आयसलिवी १५ माहेसरी १६ दामिली[2] १७ पोलिंदी १८। से त्त भासारिया।

[१०७ प्र] भाषार्य कौन-कौन-से है ?

[१०७ उ] भाषार्य वे है, जो अर्धमागधी भाषा मे बोलते है, और जहाँ भी ब्राह्मी लिपि प्रचलित है। (अर्थात्—जिनमे ब्राह्मी लिपि का प्रयोग किया जाता है।) ब्राह्मी लिपि मे अठारह प्रकार का लेखविधान (लेखन-प्रकार) बताया गया है। जैसे कि—१ ब्राह्मी, २ यवनानी, ३ दोषा-पुरिका, ४ खरोष्ट्री ५ पुष्करशारिका, ६ भोगवतिका, ७ प्रहरादिका, ८ अन्ताक्षरिका, ९ अक्षरपुष्टिका, १० वैनयिका, ११ निह्नविका, १२ अकलिपि, १३ गणितलिपि, १४ गन्धर्व-लिपि, २५ आदर्शलिपि, १६ माहेश्वरी, १७ तामिली—द्राविडी, १८ पौलिन्दी। यह हुआ उक्त भाषार्य का वर्णन।

१०८ से किं त णाणारिया ?

णाणारिया पचविहा पण्णत्ता। त जहा—आभिणिबोहियणाणारिया १ सुयणाणारिया २ ओहिणाणारिया ३ मणपज्जवणाणारिया ४ केवलणाणारिया ५। से त्त णाणारिया।

[१०८ प्र] ज्ञानार्य कौन-कौन-से है।

[१०८ उ] ज्ञानार्य पाच प्रकार के कहे गए है। वे इस प्रकार है—१ आभिनिबोधिक-ज्ञानार्य, २ श्रुतज्ञानार्य, ३ अवधिज्ञानार्य, ४ मन पर्यवज्ञानार्य और ५ केवलज्ञानार्य। यह है उक्त ज्ञानार्यो की प्ररूपणा।

पाठान्तर—१ दासापुरिया। २ दोमिली, दोमिलिवी।

१०९ से किं त दंसणारिया ?

दसणारिया दुविहा पण्णत्ता । त जहा—सरागदसणारिया य वीयरागदसणारिया य ।

[१०९ प्र] वे दर्शनार्य कौन-कौन-से है ?

[१०९ उ] दर्शनार्य दो प्रकार के कहे गए हे। वे इस प्रकार—सरागदर्शनार्य और वीतरागदर्शनार्य ।

११० से किं त सरागदसणारिया ?

सरागदंसणारिया दसविहा पण्णत्ता । त जहा—

निस्सग्गुवएसरुई १-२ आणारुइ ३-सुत्त ४-बीयरुइ ५ मेव ।
अहिगम ६-वित्थाररुई ७ किरिया ८-सखेव ९-धम्मरुई १० ॥११९॥

भूअत्थेणाधिगया जीवाऽजीव च पुण्ण-पावं च ।
सहसम्मुइयाऽऽसव-सवरे य रोएइ उ णिसग्गो ॥१२०॥
जो जिणदिट्ठे भावे चउव्विहे सद्दहाइ सयमेव ।
एमेव णऽण्णह त्ति य णिस्सग्गरुइ त्ति णायव्वो १ ॥१२१॥
एते चेव उ भावे उवदिट्ठे जो परेण सद्दहइ ।
छउमत्थेण जिणेण व उवएसरुइ त्ति नायव्वो २ ॥१२२॥
जो हेउमयाणतो आणाए रोयए पवयण तु ।
एमेव णऽण्णह त्ति य एसो आणारुई नाम ३ ॥१२३॥
जो सुत्तमहिज्जतो सुएण ओगाहई उ सम्मत्त ।
अगेण बाहिरेण व सो सुत्तरुइ त्ति णायव्वो ४ ॥१२४॥
एगपएऽणेगाइ पदाइ जो पसरई उ सम्मत्त ।
उदए व्व तेल्लबिंदू सो बीयरुइ त्ति णायव्वो ५ ॥१२५॥
सो होइ अहिगमरुई सुयणाण जस्स अत्थओ दिट्ठं ।
एक्कारस अगाइ पइण्णग दिट्ठिवाओ य ६ ॥१२६॥
दव्वाण सव्वभावा सव्वपमाणेहिं जस्स उवलद्धा ।
सव्वाहिं णयविहीहिं वित्थाररुइ त्ति णायव्वो ७ ॥१२७॥
दसण-णाण-चरित्ते तव-विणए सव्वसमिइ-गुत्तीसु ।
जो किरियाभावरुई सो खलु किरियारुई णाम ८ ॥१२८॥
अणभिग्गहियकुदिट्ठी सखेवरुइ त्ति होइ णायव्वो ।
अविसारओ पवयणे अणभिग्गहिओ य सेसेसु ९ ॥१२९॥
जो अत्थिकायधम्म सुयधम्म खलु चरित्तधम्म च ।
सद्दहइ जिणाभिहिय सो धम्मरुइ त्ति नायव्वो १० ॥१३०॥

९ जिसने कुदर्शन (मिथ्यादर्शन) का ग्रहण नही किया है, तथा शेष अन्य दर्शनो का भी अभिग्रहण (परिज्ञान) नही किया है, और जो अर्हत्प्रणीत प्रवचन मे विशारद (पटु) नही है, उसे सक्षेपरुचि (सराग दर्शनार्य) समझना चाहिए ।।१२९।।

१० जो व्यक्ति जिनोक्त अस्तिकायधर्म (धर्मास्तिकाय आदि पाचो अस्तिकायो के धर्म) पर तथा श्रुतधर्म एव चारित्रधर्म पर श्रद्धा करता है, उसे धर्मरुचि (सरागदर्शनार्य) समझना चाहिए ।।१३०।।

परमार्थ (जीवादि तात्त्विक पदार्थो) का सस्तव करना (परिचय प्राप्त करना, अर्थात्—उन्हे समझने के लिए बहुमानपूर्वक प्रयत्न करना या संस्तुति—प्रशसा, आदर करना), जिन्होने परमार्थ (जीवादि तत्त्वार्थ) को सम्यक् प्रकार से श्रद्धापूर्वक जान लिया है, उनकी सेवा—उपासना करना (या उनका सेवन-सत्सग करना), और जिन्होने सम्यक्त्व का वमन कर दिया है, उन (निह्नवो) से तथा कुदृष्टियो से दूर रहना, यही सम्यक्त्व-श्रद्धान (सम्यग्दर्शन) है। (जो इनका पालन करता है, वही सरागदर्शनार्य होता है।) ।।१३१।।

(सरागदर्शन के) ये आठ आचार हैं—(१) नि शकित, (२) निष्काक्षित, (३) निर्विचिकित्स और (४) अमूढदृष्टि, (५) उपबृहण, (६) स्थिरीकरण, (७) वात्सल्य और (८) प्रभावना। (ये आठ दर्शनाचार जिसमे हो, वह सरागदर्शनार्य होता है।) ।।१३२।।

यह हुई उक्त सरागदर्शनार्यो की प्ररूपणा।

१११ से किं तं वीयरागदसणारिया ?

वीयरागदसणारिया दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—उवसतकसायवीयरायदसणारिया खीणकसाय-वीयरायदसणारिया।

[१११ प्र] वीतरागदर्शनार्य कैसे होते है ?

[१११ उ] वीतरागदर्शनार्य दो प्रकार के कहे गए है। वे इस प्रकार है—उपशान्तकषाय-वीतरागदर्शनार्य और क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य।

११२ से किं त उवसतकसायवीयरायदसणारिया ?

उवसतकसायवीयरायदसणारिया दुविहा पण्णत्ता। त जहा—पढमसमयउवसतकसायवीयराय-दसणारिया अपढमसमयउवसतकसायवीयरायदसणारिया, अहवा चरिमसमयउवसतकसायवीयराय-दसणारिया य अचरिमसमयउवसतकसायवीयरायदसणारिया य।

[११२ प्र] उपशान्तकषायवीतरागदर्शनार्य कैसे होते है ?

[११२ उ] उपशान्तकषायवीतरागदर्शनार्य दो प्रकार के कहे गए है। यथा—प्रथमसमय उपशान्तकषाय-वीतरागदर्शनार्य और अप्रथमसमय-उपशान्तकषाय-वीतरागदर्शनार्य अथवा चरम-समय-उपशान्तकषाय-वीतरागदर्शनार्य और अचरमसमय-उपशान्तकषाय-वीतरागदर्शनार्य।

११३ से किं तं खीणकसायवीयरायदसणारिया ?

खीणकसायवीयरायदसणारिया दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—छउमत्थखीणकसायवीयराग-दसणारिया य केवलिखीणकसायवीयरागदंसणारिया य।

परमत्थसथवो वा सुदिट्ठपरमत्थसेवणा वा वि ।
वावण्ण-कुदसणवज्जणा य सम्मत्तसद्दहणा ॥१३१॥
निस्सकिय १ निक्कखिय २ निव्वितिगिच्छा ३ अमूढदिट्ठी ४ य ।
उववूह ५ थिरीकरणे ६ वच्छल्ल ७ पभावणे ८ अट्ठ ॥१३२॥

से त्त सरागदसणारिया ।

[११० प्र] सरागदर्शनार्य किस-किस प्रकार के होते है ?

[११० उ] सरागदर्शनार्य दस प्रकार के कहे गए है । वे इस प्रकार है—

[गाथाओ का अर्थ—] १ निसर्गरुचि, २ उपदेशरुचि, ३ आज्ञारुचि, ४ सूत्ररुचि, और ५ बीजरुचि, ६ अभिगमरुचि, ७ विस्ताररुचि, ८ क्रियारुचि, ९ सक्षेपरुचि, और १० धर्मरुचि ॥११९॥

१ जो व्यक्ति (परोपदेश के बिना) स्वमति (जातिस्मरणादि) से जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आश्रव और सवर आदि तत्त्वो को भूतार्थ (तथ्य) रूप से जान कर उन पर रुचि—श्रद्धा करता है, वह निसर्ग—(रुचि सराग-दर्शनार्य) है ॥१२०॥ जो व्यक्ति तीर्थंकर भगवान् द्वारा उपदिष्ट भावो (पदार्थो) पर स्वयमेव (परोपदेश के बिना) चार प्रकार से (द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव से) श्रद्धान करता है, तथा (ऐसा विश्वास करता है कि जीवादि तत्त्वो का स्वरूप जैसा तीर्थकर भगवान् ने कहा है,) वह वैसा ही है, अन्यथा नही, उसे निसर्गरुचि जानना चाहिए ॥१२१॥

२ जो व्यक्ति छद्मस्थ या जिन (केवली) किसी दूसरे के द्वारा उपदिष्ट इन्ही (जीवादि) पदार्थो पर श्रद्धा करता है, उसे उपदेशरुचि जानना चाहिए ॥१२२॥

३ जो (व्यक्ति किसी अर्थ के साधक) हेतु (युक्ति या तर्क) को नही जानता हुआ, केवल जिनाज्ञा से प्रवचन पर रुचि—श्रद्धा रखता है, तथा यह समझता है कि जिनोपदिष्ट तत्त्व ऐसे ही है, अन्यथा नही, वह आज्ञारुचि नामक दर्शनार्य है ॥१२३॥

४ जो व्यक्ति शास्त्रो का अध्ययन करता हुआ श्रुत के द्वारा ही सम्यक्त्व का अवगाहन करता है, चाहे वह श्रुत अग-प्रविष्ट हो या अगबाह्य, उसे सूत्ररुचि (दर्शनार्य) जानना चाहिए ॥१२४॥

५ जैसे जल मे पडा हुआ तेल का बिन्दु फैल जाता है, उसी प्रकार जिसके लिए सूत्र (शास्त्र) का एक पद, अनेक पदो के रूप मे फैल (परिणत हो) जाता है, उसे बीजरुचि (दर्शनार्य) समझना चाहिए ॥१२५॥

६ जिसने ग्यारह अगो, प्रकीर्णको (पइन्नो) को तथा बारहवे दृष्टिवाद नामक अग तक का श्रुतज्ञान, अर्थरूप मे उपलब्ध (दृष्ट एव ज्ञात) कर लिया है, वह अभिगमरुचि होता है ॥१२६॥

७ जिसने द्रव्यो के सर्वभावो को, समस्त प्रमाणो से एव समस्त नयविधियो (नयविवक्षाओ) से उपलब्ध कर (जान) लिया, उसे विस्ताररुचि समझना चाहिए ॥१२७॥

८ दर्शन, ज्ञान और चारित्र मे, तप और विनय मे, सर्व समितियो और गुप्तियो मे जो क्रियाभावरुचि (आचरण-निष्ठा) वाला है, वह क्रियारुचि नामक (सरागदर्शनार्य) है ॥१२८॥

९ जिसने कुदर्शन (मिथ्यादर्शन) का ग्रहण नही किया है, तथा शेष अन्य दर्शनो का भी अभिग्रहण (परिज्ञान) नही किया है, और जो अर्हत्प्रणीत प्रवचन मे विशारद (पटु) नही है, उसे सक्षेपरुचि (सराग दर्शनार्य) समझना चाहिए ।।१२९।।

१० जो व्यक्ति जिनोक्त अस्तिकायधर्म (धर्मास्तिकाय आदि पाचो अस्तिकायो के धर्म) पर तथा श्रुतधर्म एव चारित्रधर्म पर श्रद्धा करता है, उसे धर्मरुचि (सरागदर्शनार्य) समझना चाहिए ।।१३०।।

परमार्थ (जीवादि तात्त्विक पदार्थों) का सस्तव करना (परिचय प्राप्त करना, अर्थात्—उन्हे समझने के लिए बहुमानपूर्वक प्रयत्न करना या सस्तुति—प्रशसा, आदर करना), जिन्होने परमार्थ (जीवादि तत्त्वार्थ) को सम्यक् प्रकार से श्रद्धापूर्वक जान लिया है, उनकी सेवा—उपासना करना (या उनका सेवन-सत्सग करना), और जिन्होने सम्यक्त्व का वमन कर दिया है, उन (निह्नवो) से तथा कुदृष्टियो से दूर रहना, यही सम्यक्त्व-श्रद्धान (सम्यग्दर्शन) है। (जो इनका पालन करता है, वही सरागदर्शनार्य होता है।) ।।१३१।।

(सरागदर्शन के) ये आठ आचार हैं—(१) नि शकित, (२) निष्काक्षित, (३) निर्विचिकित्स और (४) अमूढदृष्टि, (५) उपबृहण, (६) स्थिरीकरण, (७) वात्सल्य और (८) प्रभावना। (ये आठ दर्शनाचार जिसमे हो, वह सरागदर्शनार्य होता है।) ।।१३२।।

यह हुई उक्त सरागदर्शनार्यों की प्ररूपणा।

१११ से किं तं वीयरागदसणारिया ?

वीयरागदसणारिया दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—उवसतकसायवीयरायदसणारिया खीणकसाय-वीयरायदंसणारिया।

[१११ प्र] वीतरागदर्शनार्य कैसे होते है ?

[१११ उ] वीतरागदर्शनार्य दो प्रकार के कहे गए है। वे इस प्रकार है—उपशान्तकषाय-वीतरागदर्शनार्य और क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य।

११२ से किं त उवसतकसायवीयरायदसणारिया ?

उवसतकसायवीयरायदसणारिया दुविहा पण्णत्ता। त जहा—पढमसमयउवसतकसायवीयराय-दसणारिया अपढमसमयउवसतकसायवीयरायदसणारिया, अहवा चरिमसमयउवसतकसायवीयराय-दसणारिया य अचरिमसमयउवसतकसायवीयरायदसणारिया य।

[११२ प्र] उपशान्तकषायवीतरागदर्शनार्य कैसे होते हैं ?

[११२ उ] उपशान्तकषायवीतरागदर्शनार्य दो प्रकार के कहे गए है। यथा—प्रथमसमय उपशान्तकषाय-वीतरागदर्शनार्य और अप्रथमसमय-उपशान्तकषाय-वीतरागदर्शनार्य अथवा चरम-समय-उपशान्तकषाय-वीतरागदर्शनार्य और अचरमसमय-उपशान्तकषाय-वीतरागदर्शनार्य।

११३ से किं त खीणकसायवीयरायदंसणारिया ?

खीणकसायवीयरायदसणारिया दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—छउमत्थखीणकसायवीयराग-दसणारिया य केवलिखीणकसायवीयरागदसणारिया य।

[११३ प्र] क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य कैसे होते हैं ?

[११३ उ] क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य दो प्रकार के कहे गए है। वे इस प्रकार—छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य और केवलि-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य।

११४. से किं तं छउमत्थखीणकसायवीयरागदसणारिया ?

छउमत्थखीणकसायवीयरागदसणारिया दुविहा पण्णत्ता। त जहा—सयबुद्धछउमत्थखीण-कसायवीयरागदसणारिया य बुद्धबोहियछउमत्थखीणकसायवीयरागदसणारिया य।

[११४ प्र] छद्मस्थ क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य किस प्रकार के है ?

[११४ उ] छद्मस्थ क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य दो प्रकार के कहे गए है। वे इस प्रकार—स्वयबुद्ध-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य और बुद्धबोधित-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य।

११५ से किं तं सयंबुद्धछउमत्थखीणकसायवीयरागदंसणारिया ?

सयबुद्धछउमत्थखीणकसायवीयरागदसणारिया दुविहा पण्णत्ता। त जहा—पढमसमयसयबुद्ध-छउमत्थखीणकसायवीयरागदंसणारिया य अपढमसमयसयबुद्धछउमत्थखीणकसायवीयरायदसणारिया य, अहवा चरिमसमयसयबुद्धछउमत्थखीणकसायवीयरायदसणारिया य अचरिमसमयसयबुद्धछउमत्थ-खीणकसायवीयरायदंसणारिया य। से त्त सयबुद्धछउमत्थखीणकसायवीयरायदसणारिया।

[११५ प्र] स्वयबुद्ध-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य किस प्रकार के होते है ?

[११५ उ] स्वयबुद्ध-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार—प्रथमसमय-स्वयबुद्ध-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य और अप्रथमसमय-स्वयबुद्ध-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य अथवा चरमसमय स्वयबुद्धछद्मस्थ क्षीणकषाय वीतरागदर्शनार्य और अचरमसमय-स्वयबुद्ध-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-दर्शनार्य। यह हुआ उक्त स्वयबुद्ध-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्यो का वर्णन।

११६. से किं तं बुद्धबोहियछउमत्थखीणकसायवीयरायदसणारिया ?

बुद्धबोहियछउमत्थखीणकसायवीयरायदसणारिया दुविहा पण्णत्ता। त जहा—पढमसमयबुद्ध-बोहियछउमत्थखीणकसायवीयरायदसणारिया य अपढमसमयबुद्धबोहियछउमत्थखीणकसायवीयराग-दसणारिया य, अहवा चरिमसमयबुद्धबोहियछउमत्थखीणकसायवीयरायदसणारिया य अचरिमसमय-बुद्धबोहियछउमत्थखीणकसायवीयरायदसणारिया य। से त्त बुद्धबोहियछउमत्थखीणकसायवीयराग-दसणारिया। से त्तं छउमत्थखीणकसायवीयरायदंसणारिया।

[११६ प्र] बुद्धबोधित-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य कैसे होते है ?

[११६ उ] बुद्धबोधित-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य दो प्रकार के कहे गए हैं। यथा—प्रथमसमय-बुद्धबोधित-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य और अप्रथमसमय-बुद्धबोधित-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य, अथवा चरमसमय-बुद्धबोधित-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-दर्शनार्य और अचरमसमय-बुद्धबोधित-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य।

यह हुआ उक्त बुद्धबोधित-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य का निरूपण और इसके साथ ही उक्त छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य का निरूपण पूर्ण हुआ।

११७ से किं त केवलिखीणकसायवीतरागदसणारिया ?

केवलिखीणकसायवीतरागदसणारिया दुविहा पण्णत्ता। त जहा—सजोगिकेवलिखीणकसाय-वीतरागदसणारिया य अजोगिकेवलिखीणकसायवीतरागदसणारिया य।

[११७ प्र] केवलि-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य किस प्रकार के कहे गए है ?

[११७ उ] केवलि-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य दो प्रकार के कहे गए है—सयोगि-केवलि-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य और अयोगि-केवलि-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य।

११८. से किं त सजोगिकेवलिखीणकसायवीतरागदंसणारिया ?

सजोगिकेवलिखीणकसायवीतरागदसणारिया दुविहा पण्णत्ता। त जहा—पढमसमयसजोगि-केवलिखीणकसायवीतरागदसणारिया य अपढमसमयसजोगिकेवलिखीणकसायवीतरागदसणारिया य, अहवा चरिमसमयसजोगिकेवलिखीणकसायवीतरागदसणारिया य अचरिमसमयसजोगिकेवलिखीण-कसायवीतरागदसणारिया य। से त्त सजोगिकेवलिखीणकसायवीयरागदसणारिया।

[११८ प्र] सयोगि-केवलि-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य किस प्रकार के है ?

[११८ उ] सयोगि-केवलि-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य दो प्रकार के कहे गए है। वे इस प्रकार हैं—प्रथमसमय-सयोगिकेवलि-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य और अप्रथमसमय-सयोगिकेवलि-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य, अथवा चरमसमय-सयोगिकेवलि-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य और अचरमसमय-सयोगिकेवलि-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य।

यह हुई उक्त सयोगिकेवलि-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य की प्ररूपणा।

११९ से किं त अजोगिकेवलिखीणकसायवीयरागदसणारिया ?

अजोगिकेवलिखीणकसायवीयरागदसणारिया दुविहा पण्णत्ता। त जहा—पढमसमयअजोगि-केवलिखीणकसायवीतरागदंसणारिया य अपढमसमयअजोगिकेवलिखीणकसायवीतरागदसणारिया य, अहवा चरिमसमयअजोगिकेवलिखीणकसायवीतरागदंसणारिया य अचरिमसमयअजोगिकेवलिखीण-कसायवीयरागदसणारिया य। से त्त अजोगिकेवलिखीणकसायवीतरागदसणारिया। से त्त केवलिखीण-कसायवीतरागदसणारिया। से त्तं खीणकसायवीतरागदसणारिया। से त्त वीयरायदसणारिया। से त्त दसणारिया।

[११९ प्र] अयोगि-केवलि-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य किस प्रकार के होते हैं ?

[११९ उ] अयोगि-केवलि-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार—प्रथमसमय-अयोगिकेवलि-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य और अप्रथमसमय-अयोगिकेवलि-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य, अथवा चरमसमय-अयोगिकेवलि-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य और अचरमसमय-अयोगिकेवलि-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य।

यह हुआ उक्त अयोगिकेवलि-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्यो (का वर्णन)। (साथ ही, पूर्वोक्त) केवलि-क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्यो का वर्णन (भी पूर्ण हुआ और इसके पूर्ण होने के साथ ही) क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्यो का वर्णन भी समाप्त हुआ।

यह है उक्त दर्शनार्य (मनुष्यो) का (विवरण)।

१२० से किं तं चरित्तारिया ?

चरित्तारिया दुविहा पण्णत्ता। त जहा—सरागचरित्तारिया य वीयरागचरित्तारिया य।

[१२० प्र] चारित्रार्य (मनुष्य) कैसे होते है ?

[१२० उ] चारित्रार्य (मनुष्य) दो प्रकार के कहे गए है, यथा—सरागचारित्रार्य और वीतरागचारित्रार्य।

१२१. से किं त सरागचरित्तारिया ?

सरागचरित्तारिया दुविहा पन्नत्ता। त जहा—सुहुमसपरायसरागचरित्तारिया य बायर-सपरायसरागचरित्तारिया य।

[१२१ प्र] सरागचारित्रार्य मनुष्य कैसे होते है ?

[१२१ उ] सरागचारित्रार्य दो प्रकार के कहे गए है—सूक्ष्मसम्पराय-सराग-चारित्रार्य और बादरसम्पराय-सराग-चारित्रार्य।

१२२ से किं त सुहुमसपरायसरागचरित्तारिया ?

सुहुमसपरायसरागचरित्तारिया दुविहा पण्णत्ता। त जहा—पढमसमयसुहुमसंपरायसराग-चरित्तारिया य अपढमसमयसुहुमसपरायसरागचरित्तारिया य, अहवा चरिमसमयसुहुमसपरायसराग-चरित्तारिया य अचरिमसमयसुहुमसपरायसरागचरित्तारिया य; अहवा सुहुमसपरायसरागचरित्तारिया दुविहा पण्णत्ता, त जहा—सकिलिस्समाणा य विसुज्झमाणा य। से त्त सुहुमसपरायचरित्तारिया।

[१२२ प्र] सूक्ष्मसम्पराय-सरागचारित्रार्य किस प्रकार के होते हैं ?

[१२२ उ] सूक्ष्मसम्पराय-सरागचारित्रार्य दो प्रकार के होते है—प्रथमसमय-सूक्ष्मससम्पराय-सरागचारित्रार्य और अप्रथमसमय-सूक्ष्मसम्पराय-सरागचारित्रार्य, अथवा चरमसमय-सूक्ष्मसम्पराय-सरागचारित्रार्य और अचरमसमय-सूक्ष्मसम्पराय-सरागचारित्रार्य। अथवा सूक्ष्मसम्पराय-सराग-चारित्रार्य दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं—सक्लिश्यमान (ग्यारहवें गुणस्थान से गिर कर दशम गुणस्थान मे आये हुए) और विशुद्धयमान (नवम गुणस्थान से ऊपर चढ कर दशम गुणस्थान मे पहुँचे हुए)। यह हुई, उक्त सूक्ष्मसम्पराय-सरागचारित्रार्य की प्ररूपणा।

१२३ से किं त बादरसंपरायसरागचरित्तारिया ?

बादरसपरायसरागचरित्तारिया दुविहा पण्णत्ता। त जहा—पढमसमयबादरसपरायसराग-चरित्तारिया य अपढमसमयबादरसपरायसरागचरित्तारिया य, अहवा चरिमसमयबादरसपरायसराग-चरित्तारिया य अचरिमसमयबादरसपरायसरागचरित्तारिया य; अहवा बादरसपरायसराग-

चरित्तारिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—पडिवाती य अपडिवाती य। से त्तं बादरसंपरायसरागचरित्तारिया। से त्तं सरागचरित्तारिया।

[१२३ प्र] बादरसम्पराय-सराग-चारित्रार्य किस प्रकार के है ?

[१२३ उ] बादरसम्पराय-सराग-चारित्रार्य दो प्रकार के कहे गए है—प्रथमसमय-बादरसम्पराय-सराग-चारित्रार्य और अप्रथमसमय-बादरसम्पराय-सराग-चारित्रार्य अथवा चरमसमय-बादरसम्पराय-सराग-चारित्रार्य और अचरमसमय-बादरसम्पराय-सराग-चारित्रार्य अथवा (तीसरी तरह से) बादरसम्पराय-सराग-चारित्रार्य दो प्रकार के कहे गए है। वे इस प्रकार हैं—प्रतिपाती और अप्रतिपाती। यह हुआ बादरसम्पराय-सराग-चारित्रार्य (का वर्णन) (और साथ ही) सराग-चारित्रार्य (का वर्णन भी पूर्ण हुआ।)

१२४ से किं तं वीयरागचरित्तारिया ?

वीयरागचरित्तारिया दुविहा पण्णत्ता। त जहा—उवसतकसायवीयरायचरित्तारिया य खीणकसायवीतरागचरित्तारिया य।

[१२४ प्र] वीतराग-चारित्रार्य किस प्रकार है ?

[१२४ उ] वीतराग-चारित्रार्य दो प्रकार के हैं। वे इस प्रकार—उपशान्तकषाय-वीतराग-चारित्रार्य और क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य।

१२५ से किं त उवसतकसायवीयरायचरित्तारिया ?

उवसतकसायवीयरायचरित्तारिया दुविहा पण्णत्ता। त जहा—पढमसमयउवसतकसायवीयरायचरित्तारिया य अपढमसमयउवसतकसायवीयरायचरित्तारिया य, अहवा चरिमसमयउवसतकसायवीयरागचरित्तारिया य अचरिमसमयउवसतकसायवीयरागचरित्तारिया य। से त्त उवसतकसायवीयरागचरित्तारिया।

[१२५ प्र] उपशान्तकषाय-वीतराग-चारित्रार्य किस प्रकार के होते है ?

[१२५ उ] उपशान्तकषाय-वीतराग-चारित्रार्य दो प्रकार के कहे गए है। वे इस प्रकार है—प्रथमसमय-उपशान्तकषाय-वीतराग-चारित्रार्य और अप्रथमसमय-उपशान्तकषाय-वीतराग-चारित्रार्य, अथवा चरमसमय-उपशान्तकषाय-वीतराग-चारित्रार्य और अचरमसमय-उपशान्तकषाय-वीतराग-चारित्रार्य। यह हुआ उपशान्तकषाय-वीतराग-चारित्रार्य का निरूपण।

१२६ से किं त खीणकसायवीयरायचरित्तारिया ?

खीणकसायवीयरायचरित्तारिया दुविहा पण्णत्ता। त जहा—छउमत्थखीणकसायवीतरागचरित्तारिया य केवलिखीणकसायवीतरागचरित्तारिया य।

[१२६ प्र] क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य किस प्रकार के है ?

[१२६ उ] क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य दो प्रकार के कहे गए है—छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य और केवलि-क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य।

१२७. से किं त छउमत्थखीणकसायवीतरागचरित्तारिया ?

छउमत्थखीणकसायवीतरागचरित्तारिया दुविहा पण्णत्ता। त जहा—सयबुद्धछउमत्थखीणकसायवीयरागचरित्तारिया य बुद्धबोहियछउमत्थखीणकसायवीयरायचरित्तारिया य।

[१२७ प्र] छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य कौन हैं ?

[१२७ उ] छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य दो प्रकार के हैं। यथा—स्वयबुद्ध-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य और बुद्धबोधित-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य।

१२८ से किं त सयबुद्धछउमत्थखीणकसायवीयरागचरित्तारिया ?

सयबुद्धछउमत्थखीणकसायवीतरागचरित्तारिया दुविहा पण्णत्ता। त जहा—पढमसमयसयबुद्धछउमत्थखीणकसायवीतरागचरित्तारिया य अपढमसमयसयबुद्धछउमत्थखीणकसायवीतरागचरित्तारिया य, अहवा चरिमसमयसयबुद्धछउमत्थखीणकसायवीयरायचरित्तारिया य अचरिमसमयसयबुद्धछउमत्थखीणकसायवीतरागचरित्तारिया य। से त्त सयबुद्धछउमत्थखीणकसायवीतरागचरित्तारिया।

[१२८ प्र] वे स्वयबुद्ध-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य कौन हैं ?

[१२८ उ] स्वयबुद्ध-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं—प्रथमसमय-स्वयबुद्ध-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य और अप्रथमसमय-स्वयबुद्ध-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य, अथवा चरमसमय-स्वयबुद्ध-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य और अचरमसमय-स्वयबुद्ध-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य। यह हुआ, उक्त स्वयबुद्ध-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य का वर्णन।

१२९ से किं त बुद्धबोहियछउमत्थखीणकसायवीतरागचरित्तारिया ?

बुद्धबोहियछउमत्थखीणकसायवीतरागचरित्तारिया दुविहा पण्णत्ता। त जहा—पढमसमयबुद्धबोहियछउमत्थखीणकसायवीतरागचरित्तारिया य अपढमसमयबुद्धबोहियछउमत्थखीणकसायवीतरागचरित्तारिया य, अहवा चरिमसमयबुद्धबोहियछउमत्थखीणकसायवीतरागचरित्तारिया य अचरिमसमयबुद्धबोहियछउमत्थखीणकसायवीयरायचरित्तारिया य। से त्त बुद्धबोहियछउमत्थखीणकसायवीयरायचरित्तारिया। से त्त छउमत्थखीणकसायवीतरागचरित्तारिया।

[१२९ प्र] बुद्धबोधित-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य कौन हैं ?

[१२९ उ] बुद्धबोधित-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य दो प्रकार के हैं—प्रथमसमय-बुद्धबोधित-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य और अप्रथमसमय-बुद्धबोधित-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य, अथवा चरमसमयबुद्धबोधित-छद्मस्थ क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य और अचरम-समय-बुद्धबोधित-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतराग-चारित्रार्य।

यह बुद्धबोधित-छद्मस्थ-क्षीणकषाय-वीतरागचारित्रार्यों और साथ ही छद्मस्थक्षीणकषाय-वीतरागचारित्रार्यों का वर्णन सम्पूर्ण हुआ।

१३० से किं तं केवलिखीणकसायवीतरागचरित्तारिया ?

केवलिखीणकसायवीतरागचरित्तारिया दुविहा पण्णत्ता । त जहा—सजोगिकेवलिखीणकसाय-वीयरागचरित्तारिया य अजोगिकेवलिखीणकसायवीतरागचरित्तारिया य ।

[१३० प्र] केवलि-क्षीणकषायवीतराग-चारित्रार्य कौन है ?

[१३० उ] केवलि-क्षीणकषायवीतराग-चारित्रार्य दो प्रकार के कहे गए हैं—सयोगिकेवलि-क्षीणकषायवीतराग-चारित्रार्य और अयोगिकेवलि-क्षीणकषायवीतराग-चारित्रार्य ।

१३१ से किं तं सजोगिकेवलिखीणकसायवीयरागचरित्तारिया ?

सजोगिकेवलिखीणकसायवीयरागचरित्तारिया दुविहा पण्णत्ता । त जहा—पढमसमयसजोगि-केवलिखीणकसायवीयरायचरित्तारिया य अपढमसमयसजोगिकेवलिखीणकसायवीयरायचरित्तारिया य, अहवा चरिमसमयसजोगिकेवलिखीणकसायवीतरागचरित्तारिया य अचरिमसमयसजोगिकेवलि-खीणकसायवीयरायचरित्तारिया य । से त्त सजोगिकेवलिखीणकसायवीयरागचरित्तारिया ।

[२३१ प्र] सयोगिकेवलिक्षीणकषाय-वीतरागचारित्रार्य किस प्रकार के कहे है ?

[१३१ उ] सयोगिकेवलिक्षीणकषाय-वीतरागचारित्रार्य दो प्रकार के कहे गए है—प्रथमसमय-सयोगिकेवलिक्षीणकषाय-वीतरागचारित्रार्य और अप्रथमसमय-सयोगिकेवलिक्षीणकषाय-वीतरागचारित्रार्य, अथवा चरमसमय-सयोगिकेवलि-क्षीणकषायवीतरागचारित्रार्य और अचरमसमय-सयोगिकेवलि-क्षीणकषाय-वीतरागचारित्रार्य । यह सयोगिकेवलिक्षीणकषाय-वीतरागचारित्रार्यो का निरूपण हुआ ।

१३२ से किं त अजोगिकेवलिखीणकसायवीयरागचरित्तारिया ?

अजोगिकेवलिखीणकसायवीयरागचरित्तारिया दुविहा पन्नत्ता । त जहा—पढमसमयअजोगि-केवलिखीणकसायवीयरागचरित्तारिया य अपढमसमयअजोगिकेवलिखीणकसायवीयरागचरित्तारिया य, अहवा चरिमसमयअजोगिकेवलिखीणकसायवीयरागचरित्तारिया य अचरिमसमयअजोगिकेवलिखीण-कसायवीतरागचरित्तारिया य । से त्त अजोगिकेवलिखीणकसायवीयरागचरित्तारिया । से त्तं केवलि-खीणकसायवीतरागचरित्तारिया । से त्त खीणकसायवीतरागचरित्तारिया । से त्त वीतराग-चरित्तारिया ।

[१३२ प्र] अयोगिकेवलि-क्षीणकषाय-वीतरागचारित्रार्य कैसे होते है ?

[१३२ उ] अयोगिकेवलि-क्षीणकषाय-वीतरागचारित्रार्य दो प्रकार के कहे गए हैं—प्रथम-समय-अयोगिकेवलि-क्षीणकषाय-वीतरागचारित्रार्य और अप्रथमसमय-अयोगिकेवलि-क्षीणकषाय-वीतरागचारित्रार्य, अथवा चरमसमय-अयोगिकेवलि-क्षीणकषाय-वीतरागचारित्रार्य और अचरमसमय-अयोगिकेवलि-क्षीणकषाय-वीतरागचारित्रार्य । इस प्रकार अयोगिकेवलि-क्षीणकषाय-वीतरागचारित्रार्यो का, साथ ही केवलिक्षीणकषाय-वीतरागचारित्रार्यो का वर्णन (भी पूर्ण हुआ), (और इसके पूर्ण होने के साथ ही) वीतराग-चारित्रार्यो की प्ररूपणा (भी पूर्ण हुई) ।

१३३ अहवा चरित्तारिया पचविहा पन्नत्ता । त जहा—सामाइयचरित्तारिया १ छेदोवट्ठावणियचरित्तारिया २ परिहारविसुद्धियचरित्तारिया ३ सुहुमसपरायचरित्तारिया ४ अहक्खायचरित्तारिया ५ ।

[१३३ प्र] अथवा—प्रकारान्तर से चारित्रार्य पाच प्रकार के कहे गए है। यथा—१ सामायिक-चारित्रार्य, २ छेदोपस्थापनिक-चारित्रार्य, ३ परिहारविशुद्धिक-चारित्रार्य, ४ सूक्ष्मसम्पराय-चारित्रार्य और ५ यथाख्यात-चारित्रार्य ।

१३४ से किं त सामाइयचरित्तारिया ?

सामाइयचरित्तारिया दुविहा पण्णत्ता । त जहा—इत्तरियसामाइयचरित्तारिया य आवकहियसामाइयचरित्तारिया य । से त्त सामाइयचरित्तारिया ।

[१३४ प्र] वे [पूर्वोक्त) सामायिक-चारित्रार्य किस प्रकार के है ?

[१३४ उ] सामायिक-चारित्रार्य दो प्रकार के है—इत्वरिक सामायिक-चारित्रार्य और यावत्-कथिक सामायिक-चारित्रार्य । यह हुआ सामायिक-चारित्रार्य का निरूपण ।

१३५ से किं त छेदोवट्ठावणियचरित्तारिया ?

छेदोवट्ठावणियचरित्तारिया दुविहा पण्णत्ता । त जहा—साइयारछेदोवट्ठावणियचरित्तारिया य णिरइयारछेओवट्ठावणियचरित्तारिया य । से त्त छेदोवट्ठावणियचरित्तारिया ।

[१३५ प्र] छेदोपस्थापनिक-चारित्रार्य किस प्रकार के है ?

[१३५ उ] छेदोपस्थापनिक-चारित्रार्य दो प्रकार के कहे गए है—सातिचार-छेदोपस्थापनिक-चारित्रार्य और निरतिचार-छेदोपस्थापनिक-चारित्रार्य । यह हुआ छेदोपस्थापनिक-चारित्रार्यो का वर्णन ।

१३६ से किं त परिहारविसुद्धियचरित्तारिया ?

परिहारविसुद्धियचरित्तारिया दुविहा पण्णत्ता । त जहा—निव्विसमाणपरिहारविसुद्धियचरित्तारिया य निव्विट्ठकाइयपरिहारविसुद्धियचरित्तारिया य । से त्त परिहारविसुद्धियचरित्तारिया ।

[१३६ प्र] परिहारविशुद्धि-चारित्रार्य किस प्रकार के है ?

[१३६ उ] परिहारविशुद्धि-चारित्रार्य दो प्रकार के कहे गए है—निर्विश्यमानक-परिहारविशुद्धि-चारित्रार्य और निर्विष्टकायिक-परिहारविशुद्धि-चारित्रार्य । यह हुआ उक्त परिहारविशुद्धि-चारित्रार्यो का वर्णन ।

१३७ से किं त सुहुमसपरायचरित्तारिया ?

सुहुमसपरायचरित्तारिया दुविहा पण्णत्ता । त जहा—सकिलिस्समाणसुहुमसपरायचरित्तारिया य विसुज्झमाणसुहुमसंपरायचरित्तारिया य । से त्त सुहुमसपरायचरित्तारिया ।

[१३७ प्र] सूक्ष्मसम्पराय-चारित्रार्य कौन है ?

[१३७ उ] सूक्ष्मसम्पराय-चारित्रार्य दो प्रकार के हैं—सक्लिश्यमान-सूक्ष्मसम्पराय-चारित्रार्य और विशुद्ध्यमान-सूक्ष्मसम्पराय-चारित्रार्य ।

यह हुआ उक्त सूक्ष्मसम्पराय-चारित्रार्यो का निरूपण ।

१३८ से किं त अहक्खायचरित्तारिया ?

अहक्खायचरित्तारिया दुविहा पण्णत्ता । तं जहा—छउमत्थअहक्खायचरित्तारिया य केवलि-अहक्खायचरित्तारिया य । से त्त अहक्खायचरित्तारिया । से त्त चरित्तारिया । से त्त अणिड्ढिपत्तारिया । से त्त आरिया । से त्तं कम्मभूमगा । से त्त गब्भवक्कतिया । से त्त मणुस्सा ।

[१३८ प्र] यथाख्यात-चारित्रार्य किस प्रकार के है ?

[१३८ उ] यथाख्यात-चारित्रार्य दो प्रकार के कहे गए है—छद्मस्थयथाख्यात-चारित्रार्य और केवलियथाख्यात-चारित्रार्य । यह हुआ उक्त यथाख्यात-चारित्रार्यो का (निरूपण ।) इसके पूर्ण होने के साथ ही) चारित्रार्य का वर्णन (समाप्त हुआ ।) इस प्रकार आर्यो का वर्णन, कर्मभूमिजो का वर्णन तथा उक्त गर्भजो के वर्णन के समाप्त होने के साथ ही मनुष्यो की प्ररूपणा पूर्ण हुई ।

विवेचन—समग्र मनुष्यजीवो की प्रज्ञापना—प्रस्तुत ४७ सूत्रो (सू ९२ से १३८ तक) मे मनुष्यो के सम्मूर्च्छिम और गर्भज इन दो भेदो का उल्लेख करके गर्भजो के कर्मभूमक, अकर्मभूमक और अन्तरद्वीपज, यो तीन भेद और फिर इनके भेद-प्रभेदो का निरूपण किया गया है ।

कर्मभूमक और अकर्मभूमक की व्याख्या—कर्मभूमक—प्रस्तुत मे कृषि-वाणिज्यादि जीवन-निर्वाह के कार्यों को तथा मोक्षसम्बन्धी अनुष्ठान को कर्म कहा गया है । जिनकी कर्मप्रधान भूमि है, वे '**कर्मभूम**' या '**कर्मभूमक**' कहलाते है । अर्थात्—कर्मप्रधान भूमि मे रहने और उत्पन्न होने वाले मनुष्य कर्मभूमक है । **अकर्मभूमक**—जिन मनुष्यो की भूमि पूर्वोक्त कर्मो से रहित हो, जो कल्पवृक्षो से ही अपना जीवन निर्वाह करते हो, वे अकर्मभूम या अकर्मभूमक कहलाते है ।[1]

'अन्तरद्वीपक' मनुष्यो की व्याख्या—अन्तर शब्द मध्यवाचक है । अन्तर मे अर्थात्—लवण-समुद्र के मध्य मे जो द्वीप है, वे अन्तरद्वीप कहलाते है । उन अन्तरद्वीपो मे रहने वाले अन्तरद्वीपग या अन्तरद्वीपक कहलाते है । ये अन्तरद्वीपग मनुष्य अट्ठाईस प्रकार के है, जिनका मूल पाठ मे नामोल्लेख है ।

अन्तरद्वीपग मनुष्य वज्रऋषभनाराचसहनन वाले, ककपक्षी के समान परिणमन वाले, अनुकूल वायुवेग वाले एव समचतुरस्रसस्थान वाले होते है । उनके चरणो की रचना कच्छप के समान आकार वाली एव सुन्दर होती है । उनकी दोनो जाघे चिकनी, अल्परोमयुक्त, कुरुविन्द के समान गोल होती हैं । उनके घुटने निगूढ और सम्यक्तयाबद्ध होते हैं, उनके उरुभाग हाथी की सूड के समान गोलाई से युक्त होते हैं, उनका कटिप्रदेश सिंह के समान, मध्यभाग वज्र के समान, नाभि-मण्डल दक्षिणावर्त्त शख के समान तथा वक्ष स्थल विशाल, पुष्ट एव श्रीवत्स से लाञ्छित होता है । उनकी भुजाएँ नगर के फाटक की अर्गला के समान दीर्घ होती है । हाथ की कलाइया (मणिबन्ध) सुबद्ध होती है । उनके करतल और पदतल रक्तकमल के समान लाल होते हैं । उनकी गर्दन चार अगुल की, सम और वृत्ताकार शख-सी होती है । उनका मुखमण्डल शरदृऋतु के चन्द्रमा के समान सौम्य होता है । उनके छत्राकार मस्तक पर अस्फुटित-स्निग्ध, कान्तिमान एव चिकने केश होते है ।

---

१ प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक ५०

वे कमण्डलु, कलश, यूप, स्तूप, वापी, ध्वज, पताका, सौवस्तिक, यव, मत्स्य, मगर, कच्छप, रथ, स्थाल, अशुक, अष्टापद, अकुश, सुप्रतिष्ठक, मयूर, श्रीदाम, अभिषेक, तोरण, पृथ्वी, समुद्र, श्रेष्ठ-भवन, दर्पण, पर्वत, हाथी, वृषभ, सिंह, छत्र और चामर, इन ३२ उत्तम लक्षणो से युक्त होते है।

वहाँ की स्त्रिया भी सुनिर्मित-सर्वागसुन्दर तथा समस्त महिलागुणो से युक्त होती है। उनके चरण कच्छप के आकार के, तथा परस्पर सटी हुई अगुलियो वाले एव कमलदल के समान मनोहर होते है। उनके जघायुगल रोमरहित एव प्रशस्त लक्षणो से युक्त होते है, तथा जानुप्रदेश निगूढ एव पुष्ट होते है, उनके उरू केले के स्तम्भसदृश सहत, सुकुमार एव पुष्ट होते है। उनके नितम्ब विशाल, मासल एव शरीर के आयाम के अनुरूप होते है। उनकी रोमराजि मुलायम, कान्तिमय एव सुकोमल होती है। उनका नाभिमण्डल दक्षिणावर्त की तरगो के समान, उदर प्रशस्त लक्षणयुक्त एव स्तन स्वर्णकलशसम सहत, उन्नत, पुष्ट एव गोल होते है। पार्श्वभाग भी सगत होता है। उनकी वाहे लता के समान सुकुमार होती है। उनके अधरोष्ठ अनार के पुष्प के समान लाल, तालु एव जिह्वा रक्तकमल के समान तथा आखे विकसित नीलकमल के समान वडी एव कमनीय होती है। उनकी भौहे चढाए हुए धनुषवाण के आकार की सुसगत होती हैं। ललाट प्रमाणोपेत होता है। मस्तक के केश सुस्निग्ध एव सुन्दर होते है। करतल एव पदतल स्वस्तिक, शख, चक्र आदि की आकृति की रेखाओ से सुशोभित होते हैं। गर्दन ऊँची, मासल एव शख के समान होती है। वे ऊँचाई मे पुरुषो से कुछ कम होती है। स्वभाव से ही वे उदार, शृ गार और सुन्दर वेष वाली होती है। प्रकृति से हास्य, वचन, विलास एव विषय मे परम नैपुण्य से युक्त होती है।

वहाँ के पुरुष-स्त्री सभी स्वभाव से सुगन्धित वदन वाले होते है। उनके क्रोध, मान, माया और लोभ अत्यन्त मन्द होते है। वे सन्तोषी, उत्सुकता रहित, मृदुता-ऋजुतासम्पन्न होते है। मनोहर मणि, स्वर्ण और मोती आदि ममत्व के कारणो के विद्यमान होते हुए भी वे ममत्व के अभिनिवेश से तथा वैरानुबन्ध से रहित होते है। हाथी, घोडे, ऊट, गाय, भैस आदि के होते हुए भी वे उनके परिभोग से पराङ्‌मुख रह कर पैदल चलते है।

वे ज्वरादि रोग, भूत, प्रेत, यक्ष आदि की ग्रस्तता, महामारी आदि विपत्तियो के उपद्रव से भी रहित होते है। उनमे परस्पर स्वामि-सेवक का व्यवहार नही होता, अतएव सभी अहमिन्द्र जैसे होते है। उनकी पीठ मे ६४ पसलिया होती हैं। उनका आहार एक चतुर्थभक्त (उपवास) के बाद होता है और आहार भी शालि आदि धान्य से निष्पन्न नही, किन्तु पृथ्वी की मिट्टी एव कल्पवृक्षो के पुष्प, फल का होता है। क्योकि वहाँ चावल, गेहू, मू ग, उडद आदि अन्न होते हुए भी वे मनुष्यो के उपभोग मे नही आते, वहाँ की पृथ्वी ही शक्कर से अनन्तगुणी मधुर है, तथा कल्पवृक्षो के पुष्प-फलो का स्वाद चक्रवर्ती के भोजन से भी अनेक गुणा अच्छा है। वे इस प्रकार का स्वादिष्ट आहार करके प्रासाद के आकार के जो गृहाकार कल्पवृक्ष होते है, उनमे सुख से रहते है। उस क्षेत्र मे डास, मच्छर, जू, खटमल, मक्खी आदि शरीरोपद्रवकारी जन्तु पैदा नही होते। जो भी सिंह, व्याघ्र, सर्प आदि वहाँ होते है, वे मनुष्यो को कोई पीडा नही पहुँचाते। उनमे परस्पर हिंस्य-हिंसकभाव का व्यवहार नही है। क्षेत्र के प्रभाव से वहाँ के जीव रौद्र (भयकर) स्वभाव से रहित होते है। वहाँ के मनुष्यो (स्त्री-पुरुष) का जोडा अपने अवसान के समय एक जोडे (स्त्री-पुरुष) को जन्म देता है और ७९ दिन तक उसका पालन-पोषण करता है। उनके शरीर की ऊचाई ८०० धनुष की और उनकी आयु पल्योपम के असख्यातवे भाग जितनी होती है। वे मन्दकषायी,

मन्दराग-मोहानुबन्ध के कारण मर कर देवलोक मे जाते है। उनका मरण भी जभाई, खासी या छीक आदि से होता है, किन्तु किसी शरीरपीडापूर्वक नही।

अन्तरद्वीपगो के अन्तरद्वीप कहाँ और कैसी स्थिति मे ?—आगमानुसार छप्पन अन्तरद्वीपगो के अन्तरद्वीप हिमवान् और शिखरी इन दो पर्वतो की लवणसमुद्र मे निकली दाढाओ पर स्थित हैं। **हिमवान् पर्वत के अट्ठाईस अन्तरद्वीपो का वर्णन**—जम्बूद्वीप मे भरत और हैमवत क्षेत्रो की सीमा का विभाजन करने वाला हिमवान् नामक पर्वत है। वह भूमि मे २५ योजन गहरा और सौ योजन ऊँचा तथा भरत क्षेत्र से दुगुना विस्तृत, हेममय चीनाशुक के-से वर्ण वाला है। उसके दोनो पार्श्व नाना वर्णो से विशिष्ट कान्तिमय मणिसमूह से परिमण्डित है। उसका विस्तार ऊपर-नीचे सर्वत्र समान है। वह गगनमण्डल को स्पर्श करने वाले रत्नमय ग्यारह कूटो से सुशोभित है, उसका तल वज्रमय है, तटभाग विविध मणियो और सोने से सुशोभित है। वह दस योजन मे अवगाहित—जगह घेरे हुए है। वह पूर्व-पश्चिम मे हजार योजन लम्बा और दक्षिण-उत्तर मे पाच योजन विस्तीर्ण है। उसके मध्यभाग मे पद्महृद है तथा चारो ओर कल्पवृक्षो की पक्ति से अतीव कमनीय है। वह पूर्व और पश्चिम के छोरो (अन्तो) से लवणसमुद्र का स्पर्श करता है। लवणसमुद्र के जल के स्पर्श से लेकर पूर्व-पश्चिम दिशा मे दो गजदन्ताकार दाढे निकली है। उनमे से ईशानकोण मे जो दाढा निकली है, उस प्रदेश मे हिमवान् पर्वत से तीन सौ योजन की दूरी पर लवणसमुद्र मे ३०० योजन लम्बा-चौडा तथा कुछ कम ९४९ योजन की परिधिवाला एकोरुक नामक द्वीप है। जो कि ५०० धनुष विस्तृत, दो गाऊ ऊँची पद्मवरवेदिका से चारो ओर से मण्डित है। उसी हिमवान् पर्वत के पर्यन्तभाग से दक्षिण-पूर्वकोण मे तीन सौ योजन दूर स्थित लवणसमुद्र का अवगाहन करते ही दूसरी दाढा आती है, जिस पर एकोरुक द्वीप जितना ही लम्बा-चौडा 'आभासिक' नामक द्वीप है तथा उसी हिमवान् पर्वत के पश्चिम दिशा के छोर (पर्यन्त) से लेकर दक्षिण-पश्चिमदिशा (नैऋत्य-कोण) मे तीन-सौ योजन लवणसमुद्र का अवगाहन करने के बाद एक दाढ आती है, जिस पर उसी प्रमाण का वैषाणिक नामक द्वीप है, एव उसी हिमवान् पर्वत के पश्चिमदिशा के छोर से लेकर पश्चिमोत्तरदिशा (वायव्यकोण) मे तीन-सौ योजन दूर लवणसमुद्र मे एक दष्ट्रा (दाढ) आती है, जिस पर पूर्वोक्त प्रमाण वाला नांगोलिक द्वीप आता है। इस प्रकार ये चारो द्वीप हिमवान् पर्वत से चारो विदिशाओ मे हैं और समान प्रमाण वाले है।

तदनन्तर इन्ही एकोरुक आदि चारो द्वीपो के आगे यथाक्रम से पूर्वोत्तर आदि प्रत्येक विदिशा मे चार-चार सौ योजन आगे चलने के बाद चार-चार सौ योजन लम्बे-चौडे, कुछ कम १२६५ योजन की परिधि वाले, पूर्वोक्त पद्मवरवेदिका एव वनखण्ड से सुशोभित परिसर वाले तथा जम्बूद्वीप की वेदिका से ४०० योजन प्रमाण अन्तर वाले **हयकर्ण, गजकर्ण, गोकर्ण और शष्कुलीकर्ण** नाम के चार द्वीप है। एकोरुक द्वीप के आगे हयकर्ण है, आभासिक के आगे गजकर्ण, वैषाणिक के आगे गोकर्ण और नागोलिक के आगे शष्कुलीकर्ण द्वीप है।

तत्पश्चात् इन हयकर्ण आदि चार द्वीपो के आगे पाच-पाच सौ योजन की दूरी पर फिर चार द्वीप है—जो पाच-पाच सौ योजन लम्बे-चौडे है और पहले की तरह ही चारो विदिशाओ मे स्थित है। इनकी परिधि १५८१ योजन की है। इनके बाह्यप्रदेश भी पूर्वोक्त पद्मवरवेदिका तथा वनखण्ड से सुशोभित हैं तथा जम्बूद्वीप की वेदिका से ५०० योजन प्रमाण अन्तर वाले हैं। इनके

वे कमण्डलु, कलश, यूप, स्तूप, वापी, ध्वज, पताका, सौवस्तिक, यव, मत्स्य, मगर, कच्छप, रथ, स्थाल, अशुक, अष्टापद, अकुश, सुप्रतिष्ठक, मयूर, श्रीदाम, अभिषेक, तोरण, पृथ्वी, समुद्र, श्रेष्ठ-भवन, दर्पण, पर्वत, हाथी, वृषभ, सिंह, छत्र और चामर, इन ३२ उत्तम लक्षणो से युक्त होते ह।

वहाँ की स्त्रिया भी सुनिर्मित-सर्वांगसुन्दर तथा समस्त महिलागुणो से युक्त होती ह। उनके चरण कच्छप के आकार के, तथा परस्पर सटी हुई अगुलियो वाले एव कमलदल के समान मनोहर होते है। उनके जघायुगल रोमरहित एव प्रशस्त लक्षणो से युक्त होते ह, तथा जानुप्रदेश निगूढ एव पुष्ट होते है, उनके उरू केले के स्तम्भसदृश सहत, सुकुमार एव पुष्ट होते है। उनके नितम्ब विशाल, मासल एव शरीर के आयाम के अनुरूप होते है। उनकी रोमराजि मुलायम, कान्तिमय एव सुकोमल होती है। उनका नाभिमण्डल दक्षिणावर्त की तरगो के समान, उदर प्रशस्त लक्षणयुक्त एव स्तन स्वर्णकलशसम सहत, उन्नत, पुष्ट एव गोल होते है। पार्श्वभाग भी सगत होता है। उनकी बाहे लता के समान सुकुमार होती है। उनके अधरोष्ठ अनार के पुष्प के समान लाल, तालु एव जिह्वा रक्तकमल के समान तथा आखे विकसित नीलकमल के समान बडी एव कमनीय होती है। उनकी भौहे चढाए हुए धनुषबाण के आकार की सुसगत होती है। ललाट प्रमाणोपेत होता है। मस्तक के केश सुस्निग्ध एव सुन्दर होते है। करतल एव पदतल स्वस्तिक, शख, चक्र आदि की आकृति की रेखाओ से सुशोभित होते है। गर्दन ऊँची, मासल एव शख के समान होती है। वे ऊँचाई मे पुरुषो से कुछ कम होती है। स्वभाव से ही वे उदार, शृगार और सुन्दर वेष वाली होती है। प्रकृति से हास्य, वचन, विलास एव विषय मे परम नैपुण्य से युक्त होती है।

वहाँ के पुरुष-स्त्री सभी स्वभाव से सुगन्धित वदन वाले होते है। उनके क्रोध, मान, माया और लोभ अत्यन्त मन्द होते हे। वे सन्तोषी, उत्सुकता रहित, मृदुता-ऋजुतासम्पन्न होते है। मनोहर मणि, स्वर्ण और मोती आदि ममत्व के कारणो के विद्यमान होते हुए भी वे ममत्व के अभिनिवेश से तथा वैरानुबन्ध से रहित होते है। हाथी, घोडे, ऊट, गाय, भैस आदि के होते हुए भी वे उनके परिभोग से पराड्मुख रह कर पैदल चलते है।

वे ज्वरादि रोग, भूत, प्रेत, यक्ष आदि की ग्रस्तता, महामारी आदि विपत्तियो के उपद्रव से भी रहित होते है। उनमे परस्पर स्वामि-सेवक का व्यवहार नही होता, अतएव सभी अहमिन्द्र जैसे होते हैं। उनकी पीठ मे ६४ पसलिया होती है। उनका आहार एक चतुर्थभक्त (उपवास) के बाद होता है और आहार भी शालि आदि धान्य से निष्पन्न नही, किन्तु पृथ्वी की मिट्टी एव कल्पवृक्षो के पुष्प, फल का होता है। क्योकि वहाँ चावल, गेहू, मू ग, उडद आदि अन्न होते हुए भी वे मनुष्यो के उपभोग मे नही आते, वहाँ की पृथ्वी ही शक्कर से अनन्तगुणी मधुर है, तथा कल्पवृक्षो के पुष्प-फलो का स्वाद चक्रवर्ती के भोजन से भी अनेक गुणा अच्छा है। वे इस प्रकार का स्वादिष्ट आहार करके प्रासाद के आकार के जो गृहाकार कल्पवृक्ष होते है, उनमे सुख से रहते है। उस क्षेत्र मे डास, मच्छर, जू, खटमल, मक्खी आदि शरीरोपद्रवकारी जन्तु पैदा नही होते। जो भी सिंह, व्याघ्र, सर्प आदि वहाँ होते हैं, वे मनुष्यो को कोई पीडा नही पहुँचाते। उनमे परस्पर हिंस्य-हिंसकभाव का व्यवहार नही है। क्षेत्र के प्रभाव से वहाँ के जीव रौद्र (भयकर) स्वभाव से रहित होते है। वहाँ के मनुष्यो (स्त्री-पुरुष) का जोडा अपने अवसान के समय एक जोडे (स्त्री-पुरुष) को जन्म देता है और ७९ दिन तक उसका पालन-पोषण करता है। उनके शरीर की ऊंचाई ८०० धनुष की और उनकी आयु पल्योपम के असख्यातवें भाग जितनी होती है। वे मन्दकषायी,

मन्दराग-मोहानुबन्ध के कारण मर कर देवलोक में जाते हैं। उनका मरण भी जभाई, खासी या छींक आदि से होता है, किन्तु किसी शरीरपीडापूर्वक नही।

अन्तरद्वीपगो के अन्तरद्वीप कहाँ और कैसी स्थिति मे ?—आगमानुसार छप्पन अन्तरद्वीपगो के अन्तरद्वीप हिमवान् और शिखरी इन दो पर्वतों की लवणसमुद्र में निकली दाढाओं पर स्थित हैं। **हिमवान् पर्वत के अट्ठाईस अन्तरद्वीपो का वर्णन**—जम्बूद्वीप मे भरत और हैमवत क्षेत्रों की सीमा का विभाजन करने वाला हिमवान् नामक पर्वत है। वह भूमि मे २५ योजन गहरा और सौ योजन ऊँचा तथा भरत क्षेत्र से दुगुना विस्तृत, हेममय चीनांशुक के-से वर्ण वाला है। उसके दोनों पार्श्व नाना वर्णों से विशिष्ट कान्तिमय मणिसमूह से परिमण्डित है। उसका विस्तार ऊपर-नीचे सर्वत्र समान है। वह गगनमण्डल को स्पर्श करने वाले रत्नमय ग्यारह कूटो से सुशोभित है, उसका तल वज्रमय है, तटभाग विविध मणियो और सोने से सुशोभित है। वह दस योजन में अवगाहित—जगह घेरे हुए है। वह पूर्व-पश्चिम मे हजार योजन लम्बा और दक्षिण-उत्तर मे पाच योजन विस्तीर्ण है। उसके मध्यभाग मे पद्महृद है तथा चारो ओर कल्पवृक्षो की पंक्ति से अतीव कमनीय है। वह पूर्व और पश्चिम के छोरो (अन्तो) से लवणसमुद्र का स्पर्श करता है। लवणसमुद्र के जल के स्पर्श से लेकर पूर्व-पश्चिम दिशा मे दो गजदन्ताकार दाढे निकली है। उनमे से ईशानकोण मे जो दाढा निकली है, उस प्रदेश मे हिमवान् पर्वत से तीन सौ योजन की दूरी पर लवणसमुद्र मे ३०० योजन लम्बा-चौडा तथा कुछ कम ९४९ योजन की परिधिवाला एकोरुक नामक द्वीप है। जो कि ५०० धनुष विस्तृत, दो गाऊ ऊँची पद्मवरवेदिका से चारो ओर से मण्डित है। उसी हिमवान् पर्वत के पर्यन्तभाग से दक्षिण-पूर्वकोण मे तीन सौ योजन दूर स्थित लवणसमुद्र का अवगाहन करते ही दूसरी दाढा आती है, जिस पर एकोरुक द्वीप जितना ही लम्बा-चौडा 'आभासिक' नामक द्वीप है तथा उसी हिमवान् पर्वत के पश्चिम दिशा के छोर (पर्यन्त) से लेकर दक्षिण-पश्चिमदिशा (नैऋत्य-कोण) मे तीन-सौ योजन लवणसमुद्र का अवगाहन करने के बाद एक दाढ आती है, जिस पर उसी प्रमाण का वैषाणिक नामक द्वीप है, एव उसी हिमवान् पर्वत के पश्चिमदिशा के छोर से लेकर पश्चिमोत्तरदिशा (वायव्यकोण) मे तीन-सौ योजन दूर लवणसमुद्र मे एक दंष्ट्रा (दाढ) आती है, जिस पर पूर्वोक्त प्रमाण वाला नांगोलिक द्वीप आता है। इस प्रकार ये चारो द्वीप हिमवान् पर्वत से चारो विदिशाओ मे है और समान प्रमाण वाले है।

तदनन्तर इन्ही एकोरुक आदि चारो द्वीपो के आगे यथाक्रम से पूर्वोत्तर आदि प्रत्येक विदिशा मे चार-चार सौ योजन आगे चलने के बाद चार-चार सौ योजन लम्बे-चौडे, कुछ कम १२६५ योजन की परिधि वाले, पूर्वोक्त पद्मवरवेदिका एव वनखण्ड से सुशोभित परिसर वाले तथा जम्बू-द्वीप की वेदिका से ४०० योजन प्रमाण अन्तर वाले **हयकर्ण, गजकर्ण, गोकर्ण और शष्कुलीकर्ण** नाम के चार द्वीप है। एकोरुक द्वीप के आगे हयकर्ण है, आभासिक के आगे गजकर्ण, वैषाणिक के आगे गोकर्ण और नागोलिक के आगे शष्कुलीकर्ण द्वीप है।

तत्पश्चात् इन हयकर्ण आदि चार द्वीपो के आगे पाच-पाच सौ योजन की दूरी पर फिर चार द्वीप है—जो पाच-पाच सौ योजन लम्बे-चौडे हैं और पहले की तरह ही चारो विदिशाओ मे स्थित है। इनकी परिधि १५८१ योजन की है। इनके बाह्यप्रदेश भी पूर्वोक्त पद्मवरवेदिका तथा वनखण्ड से सुशोभित हैं तथा जम्बूद्वीप की वेदिका से ५०० योजन प्रमाण अन्तर वाले हैं। इनके

नाम हैं—**आदर्शमुख, मेण्ढमुख, अयोमुख और गोमुख**। इनमे मे हयकर्ण के आगे आदर्शमुख, गजकर्ण के आगे मेण्ढमुख, गोकर्ण के आगे अयोमुख और शष्कुलीकर्ण के आगे गोमुख द्वीप है।

इन आदर्शमुख आदि चारो द्वीपो के आगे छह-छह सौ योजन की दूरी पर पूर्वोत्तरादि विदिशाओ मे फिर चार द्वीप है—**अश्वमुख, हस्तिमुख, सिंहमुख और व्याघ्रमुख**। ये चारो द्वीप ६०० योजन लम्बे-चौडे और १८९७ योजन की परिधि वाले, पूर्वोक्त पद्मवरवेदिका तथा वनखण्ड से मण्डित बाह्यप्रदेश वाले एव जम्बूद्वीप की वेदिका से ६०० योजन अन्तर पर है।

इन अश्वमुखादि चारो द्वीपो के आगे क्रमश पूर्वोत्तरादि विदिशाओ मे ७००-७०० योजन की दूरी पर ७०० योजन लम्बे-चौडे तथा २२१३ योजन की परिधि वाले, पूर्वोक्त पद्मवरवेदिका तथा वनखण्ड से घिरे हुए एव जम्बूद्वीप की वेदिका से ७०० योजन के अन्तर पर क्रमश **अश्वकर्ण, हरिकर्ण, अकर्ण और कर्णप्रावरण** नाम के चार द्वीप है।

फिर इन्ही अश्वकर्ण आदि चार द्वीपो के आगे, यथाक्रम से पूर्वोत्तरादि विदिशाओ मे ८००-८०० योजन दूर जाने पर आठ सौ योजन लम्बे-चौडे, २५२९ योजन की परिधि वाले, पूर्वोक्त प्रमाण वाली पद्मवरवेदिका-वनखण्ड से मण्डित परिसर वाले, एव जम्बूद्वीप की वेदिका से ८०० योजन के अन्त पर **उल्कामुख, मेघमुख, विद्युन्मुख और विद्युद्दन्त** नाम के चार द्वीप है।

तदनन्तर इन्ही उल्कामुख आदि चारो द्वीपो के आगे क्रमश पूर्वोत्तरादि विदिशाओ मे ९००-९०० योजन की दूरी पर, नौ सौ योजन लम्बे-चौडे तथा २८४५ योजन की परिधि वाले, पूर्वोक्त प्रमाण वाली पद्मवरवेदिका एव वनखण्ड से सुशोभित परिसर वाले, जम्बूद्वीप की वेदिका से ९०० योजन के अन्तर पर चार द्वीप और है। जिनके नाम क्रमश ये है—**घनदन्त, लष्टदन्त, गूढदन्त और शुद्धदन्त**। इस हिमवान् पर्वत की दाढो पर चारो विदिशाओ मे स्थित ये सब द्वीप (७×४=२८) अट्ठाईस हैं।

शिखरी पर्वत के २८ अन्तरद्वीपो का वर्णन—इसी प्रकार हिमवान् पर्वत के समान वर्ण और प्रमाण वाले तथा पद्महृद के समान लम्बे-चौडे और गहरे पुण्डरीकहृद से सुशोभित शिखरी पर्वत पर लवणसमुद्र के जलस्पर्श से लेकर पूर्वोक्त दूरी पर यथोक्त प्रमाण वाली चारो विदिशाओ मे स्थित, एकोरुक आदि नाम के अट्ठाईस द्वीप है। इनकी लम्बाई-चौडाई परिधि, नाम आदि सब पूर्ववत् है। अतएव दोनो ओर के मिल कर कुल अन्तरद्वीप छप्पन हैं। इन द्वीपो मे रहने वाले मनुष्य भी इन्ही नामो से पुकारे जाते हैं। जैसे पजाब मे रहने वाले को पजाबी कहा जाता है।[1]

अकर्मभूमको का वर्णन—अकर्मभूमक मनुष्य तीस प्रकार के है। अढाई द्वीप रूप मनुष्यक्षेत्र मे पाच हैमवत, पाच हैरण्यवत, पाच हरिवर्ष, पाच रम्यकवर्ष, पाच देवकुरु और पाच उत्तरकुरु अकर्मभूमि के इन तीस क्षेत्रो मे ३० ही प्रकार के मनुष्य रहते हैं। इन्ही के नाम पर से इनमे रहने वाले मनुष्यो के प्रकार गिनाये गए हैं। इनमे से ५ हैमवत क्षेत्र और ५ हैरण्यवत क्षेत्र मे मनुष्य एक गव्यूति (गाऊ) ऊँचे, एक पल्योपम की आयु और वज्रऋषभनाराचसहनन तथा समचतुरस्रसस्थान वाले होते हैं। इनकी पीठ की पासलियाँ ६४ होती है, ये एक दिन के अन्तर से भोजन करते हैं और ७९ दिन तक अपनी सतान का पालन-पोषण करते हैं। पाच हरिवर्ष और पाच रम्यकवर्ष क्षेत्रो मे मनुष्यो की आयु दो पल्योपम की, शरीर की ऊँचाई दो गव्यूति की होती है।

१ प्रज्ञापनासूत्र म वृत्ति, पत्राक ५० से ५४ तक

ये वज्रऋषभनाराचसहनन और समचतुरस्रसस्थान वाले होते हैं। ये दो दिन के अन्तर मे आहार करते है। इनको पीठ की पसलिया १२८ होती है और ये अपनी सतान का पालन ६४ दिन तक करते है। पाच देवकुरु और पाच उत्तरकुरु क्षेत्रो मे मनुष्यो की आयु तीन पल्योपम की एव शरीर की ऊँचाई तीन गाऊ की होती है। ये भी वज्रऋषभनाराचसहनन और समचतुरस्रसस्थान वाले होते है। इनकी पीठ की पसलिया २५६ होती है। ये तीन दिनों के अनन्तर आहार करते है और ४९ दिनो तक अपनी सतति का पालन करते है।

इन सभी क्षेत्रो मे अन्तरद्वीपो की तरह मनुष्यो के भोगोपभोग के साधनो की पूर्ति कल्पवृक्षो से होती है। इतना अन्तर अवश्य है कि पाच हैमवत और पाच हैरण्यवत क्षेत्रो मे मनुष्यो के उत्थान, बल-वीर्य आदि तथा वहाँ के कल्पवृक्षो के फलो का स्वाद और वहाँ की भूमि का माधुर्य अन्तरद्वीप की अपेक्षा पर्यायो की दृष्टि से अनन्तगुणा अधिक है। ये ही सब पदार्थ पाच हरिवर्ष और पाच रम्यकवर्ष क्षेत्रो मे उनसे भी अनन्तगुणे अधिक तथा पाच देवकुरु और पाच उत्तरकुरु मे इनसे भी अनन्तगुणे अधिक होते है। यह सक्षेप मे अकर्मभूमको का निरूपण है।[1]

आर्य और म्लेच्छ मनुष्य—पाच भरत, पाच ऐरवत और पाच महाविदेह, इन १५ क्षेत्रो मे आर्य और म्लेच्छ दोनो प्रकार के कर्मभूमक मनुष्य रहते है। आर्य का अर्थ है—हेय धर्मों (अधर्मों या पापो) से जो दूर है, और उपादेय धर्मो (अहिंसा, सत्य आदि धर्मो) के निकट है या इन्हे प्राप्त किये हुये है। म्लेच्छ वे है—जिनके वचन (भाषा) और आचार अव्यक्त—अस्पष्ट हो। दूसरे शब्दो मे कहे तो जिनका समस्त व्यवहार शिष्टजनसम्मत न हो, उन्हे म्लेच्छ समझना चाहिए।

म्लेच्छ अनेक प्रकार के है, जिनका मूलपाठ मे उल्लेख है। इनमे से अधिकाश म्लेच्छो की जाति के नाम तो अमुक-अमुक देश मे निवास करने से पड गए है, जैसे—शक देश के निवासी शक, यवन देश के निवासी यवन इत्यादि।

आर्यो के प्रकार और उनके लक्षण—**क्षेत्रार्य**—मूलपाठ मे परिगणित साढे पच्चीस जनपदात्मक आर्य क्षेत्र मे उत्पन्न होने एव रहने वाले क्षेत्रार्य कहलाते है। ये क्षेत्र आर्य इसलिए कहे गए है कि इनमे तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव आदि उत्तम पुरुषो का जन्म होता है। इनसे भिन्न क्षेत्र अनार्य कहलाते है। **जात्यार्य**—मूलपाठ मे वर्णित अम्बष्ठ आदि ६ जातिया इभ्य—अभ्यर्चनीय एवं प्रसिद्ध है। इन जातियो से सम्बद्ध जन जात्यार्य कहलाते है। **कुलार्य**—शास्त्र-परिगणित उग्र आदि ६ कुलो मे से किसी कुल मे जन्म लेने वाले कुलार्य—कुल की अपेक्षा से आर्य कहलाते है। **कर्मार्य**—अहिंसा आदि एव शिष्टसम्मत तथा आजीविकार्थ किये जाने वाले कर्म आर्यकर्म कहलाते है। शास्त्रकार ने दोषिक, सौत्रिक आदि कुछ आर्यकर्म से सम्बन्धित मनुष्यो के प्रकार गिनाये है। विशेषता स्वयमेव समझ लेना चाहिए। **शिल्पार्य**—जो शिल्प अहिंसा आदि धर्मांगो से तथा शिष्टजनो के आचार के अनुकूल हो, वह आर्य शिल्प कहलाता है। ऐसे आर्य शिल्प से अपना जीवननिर्वाह करने वाले शिल्पार्यो मे परिगणित किये गए हैं। कुछ नाम तो शास्त्रकार ने गिनाये ही है। शेष स्वय चिन्तन द्वारा समझ लेना चाहिए। **भाषार्य**—अर्धमागधी उस समय आम जनता की, शिष्टजनो की भाषा थी, आज उसी का प्रचलित रूप हिन्दी एव विविध प्रान्तीय भाषाएँ है। अत वर्तमान युग

---

१ प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक ५४

मे भाषार्य उन्हे कहा जा सकता है, जिनकी भाषा उच्च संस्कृति और सभ्यता से सम्बन्धित हो, जिनकी भाषा तुच्छ और कर्कश न हो, किन्तु आदरसूचक कोमल, कान्त पदावली से युक्त हो। शेष ज्ञानार्य, दर्शनार्य और चारित्रार्य का स्वरूप स्पष्ट ही है। जो सम्यग्ज्ञान से युक्त हो, वे ज्ञानार्य, जो सम्यग्दर्शन से युक्त हो, वे दर्शनार्य और जो सम्यक्चारित्र से युक्त हो, वे चारित्रार्य कहलाते है। जो मिथ्याज्ञान से, मिथ्यात्व एव मिथ्यादर्शन से एव कुचारित्र से युक्त हो, उन्हे क्रमश ज्ञानार्य, दर्शनार्य एव चारित्रार्य नही कहा जा सकता। शास्त्रकार ने पाच प्रकार के सम्यग्ज्ञान से युक्त जनो को ज्ञानार्य, सराग और वीतराग रूप सम्यग्दर्शन से युक्त जनो को दर्शनार्य तथा सराग और वीतराग रूप सम्यक्चारित्र से युक्त जनो को चारित्रार्य बतलाया है। इन सबके अवान्तर भेद-प्रभेद विभिन्न अपेक्षाओ से बताए हे। इन सब अवान्तर भेदो वाले भी ज्ञानार्य, दर्शनार्य एव चारित्रार्य मे ही परिगणित होते हे।

सरागदर्शनार्य और वीतरागदर्शनार्य—जो दर्शन राग अर्थात् कषाय से युक्त होता है, वह सरागदर्शन तथा जो दर्शन राग अर्थात्—कषाय से रहित हो वह वीतरागदर्शन कहलाता है। सराग-दर्शन की अपेक्षा से आर्य सरागदर्शनार्य और वीतरागदर्शन की अपेक्षा से आर्य वीतरागदर्शनार्य कहलाते है। सरागदर्शन के निसर्गरुचि आदि १० प्रकार है। परमार्थसस्तव आदि तीन लक्षण है और नि शकित आदि ८ आचार है। वीतरागदर्शन दो प्रकार का हे—उपशान्तकषाय और क्षीणकषाय। इन दोनो के कारण जो आर्य हैं, उन्हे क्रमश उपशान्तकषायदर्शनार्य और क्षीणकषायदर्शनार्य कहा जाता है। उपशान्तकषाय-वीतरागदर्शनार्य वे है—जिनके समस्त कषायो का उपशमन हो चुका है, अतएव जिनमे वीतरागदशा प्रकट हो चुकी है, ऐसे ग्यारहवे गुणस्थानवर्ती मुनि। क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य वे है—जिनके समस्त कषाय समूल क्षीण हो चुके हैं, अतएव जिनमे वीतरागदशा प्रकट हो चुकी है, वे बारहवे से लेकर चौदहवे गुणस्थानवर्ती महामुनि। जिन्हे इस अवस्था मे पहुँचे प्रथम समय ही हो, वे प्रथमसमयवर्ती, और जिन्हे एक समय से अधिक हो गया हो, वे अप्रथमसमयवर्ती कहलाते है। इसी प्रकार चरमसमयवर्ती और अचरमसमयवर्ती ये दो भेद समयभेद के कारण है।

क्षीणकषाय-वीतरागदर्शनार्य के भी अवस्थाभेद से दो प्रकार है—जो बारहवे गुणस्थानवर्ती वीतराग हैं, वे छद्मस्थ है और जो तेरहवे, चौदहवें गुणस्थानवाले है, वे केवली है। बारहवे गुण-स्थानवर्ती छद्मस्थक्षीणकषायवीतराग भी दो प्रकार के हैं—स्वयबुद्ध और बुद्धबोधित। फिर इन दोनो मे से प्रत्येक के अवस्थाभेद से दो-दो भेद पूर्ववत् होते है—प्रथमसमयवर्ती और अप्रथमसमयवर्ती, तथा चरमसमयवर्ती और अचरमसमयवर्ती। स्वामी के भेद के कारण दर्शन मे भी भेद होता है और दर्शनभेद से उनके व्यक्तित्व (आर्यत्व) मे भी भेद माना गया है। केवलिक्षीणकषायवीतरागदर्शनार्य के सयोगिकेवली और अयोगिकेवली ये दो भेद होते है। जो केवलज्ञान तो प्राप्त कर चुके, लेकिन अभी तक योगो से युक्त हैं, वे सयोगिकेवली, और जो केवली अयोग दशा प्राप्त कर चुके, वे अयोगि-केवली कहलाते हैं। वे सिर्फ चौदहवे गुणस्थान वाले होते हैं। इन दोनो के भी समयभेद से प्रथम-समयवर्ती और अप्रथमसमयवर्ती अथवा चरमसमयवर्ती और अचरमसमयवर्ती, यो प्रत्येक के चार-चार भेद हो जाते है। इनके भेद से दर्शन मे भी भेद माना गया है और दर्शनभेद के कारण दर्शननिमित्तक आर्यत्व मे भी भेद होता है।

सरागचारित्रार्य और वीतरागचारित्रार्य—रागसहित चारित्र अथवा रागसहितपुरुष के चारित्र को सरागचारित्र और जिस चारित्र मे राग का सद्भाव न हो, या वीतरागपुरुष का जो चारित्र हो, उसे वीतरागचारित्र कहते है। सरागचारित्र के दो भेद हैं—सूक्ष्मसम्पराय-सरागचारित्र

(जिसमे सूक्ष्म कषाय की विद्यमानता होती है) तथा बादरसम्पराय-सरागचारित्र (जिसमे स्थूल कषाय हो, वह)। इनसे जो आर्य हो, वह तथारूप आर्य होता है। सूक्ष्मसम्पराय-चारित्रार्य के अवस्था भेद से चार भेद बताए है—प्रथमसमयवर्ती व अप्रथमसमयवर्ती, तथा चरमसमयवर्ती और अचरमसमयवर्ती। इनकी व्याख्या पूर्ववत् समझ लेनी चाहिए। सूक्ष्मसम्पराय-सरागचारित्रार्य के पुन दो भेद बताए गए है—सक्लिश्यमान (ग्यारहवे गुणस्थान मे गिरकर दसवे गुणस्थान मे आया हुआ)। और विशुद्धयमान (नौवे गुणस्थान से ऊपर चढकर दसवे गुणस्थान मे आया हुआ)। बादरसम्पराय-चारित्रार्य के भी पूर्ववत् प्रथमसमयवर्ती आदि चार भेद बताए गए है। इनके भी प्रकारान्तर से दो भेद किये गए है—प्रतिपाती और अप्रतिपाती। उपशमश्रेणी वाले प्रतिपाती (गिरने वाले) और क्षपकश्रेणीप्राप्त अप्रतिपाती (नही गिरने वाले) होते है। वीतराग के दो प्रकार है—उपशान्तकषायवीतराग और क्षीणकषायवीतराग। उपशान्तकषायवीतराग (एकादशम-गुणस्थान वर्ती) की व्याख्या तथा इसके चार भेदो की व्याख्या पूर्ववत् समझ लेनी चाहिए।

क्षीणकषायवीतराग के भी दो भेद होते है—छद्मस्थक्षीणकषायवीतराग और केवलिक्षीण-कषायवीतराग। इनमे से छद्मस्थक्षीणकषायवीतराग के दो प्रकार है—स्वयबुद्ध और बुद्धबोधित। इन दोनो के प्रथमसमयवर्ती आदि पूर्ववत् चार-चार भेद होते है। इन सबकी व्याख्या भी पूर्ववत् समझ लेनी चाहिए। इसी प्रकार केवलिक्षीणकषायवीतराग के भी पूर्ववत् सयोगिकेवली और अयोगिकेवली तथा प्रथमसमयवर्ती आदि चार भेद होते है। इनकी व्याख्या भी पूर्ववत् समझ लेनी चाहिए। इन सबकी अपेक्षा से जो आर्य होते है, वे तथारूप चारित्रार्य कहलाते है।[1]

सामायिकचारित्रार्य का स्वरूप—सम का अर्थ है—राग और द्वेष से रहित। समरूप आय को समाय कहते है। अथवा सम का अर्थ है—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र, इनके आय अर्थात् लाभ अथवा प्राप्ति को समाय कहते है। अथवा 'समाय' शब्द साधु की समस्त क्रियाओ का उपलक्षण है, क्योकि साधु की समस्त क्रियाएँ राग-द्वेष से रहित होती है। पूर्वोक्त 'समाय' से जो निष्पन्न हो, सम्पन्न हो अथवा 'समाय' मे होने वाला सामायिक है। अथवा समाय ही सामायिक है, जिसका तात्पर्य है—सर्व सावद्य कार्यों से विरति। महाव्रती साधु-साध्वियो के चारित्र को सामायिक-चारित्र कहा गया है, क्योकि महाव्रती जीवन अगीकार करते समय समस्तसावद्य कार्यो अथवा योगो से निवृत्तिरूप सामायिक चारित्र ग्रहण किया जाता है। यद्यपि सामायिकचारित्र मे साधु के समस्त चारित्रो का अन्तर्भाव हो जाता है, तथापि छेदोपस्थापना आदि विशिष्ट चारित्रो से सामायिक-चारित्र मे उत्तरोत्तर विशुद्धि और विशेषता आने के कारण उन चारित्रो को पृथक् ग्रहण किया गया है। सामायिकचारित्र के दो भेद है—इत्वरिक और यावत्कथिक। इत्वरिक का अर्थ है—अल्पकालिक और यावत्कथिक का अर्थ है—आजीवन (जीवनभर का, यावज्जीव का)। इत्वरिकसामायिक-चारित्र, भरत और ऐरवत क्षेत्रो मे, प्रथम और अन्तिम तीर्थंकर के तीर्थ मे, महाव्रतो का आरोपण नही किया गया हो, तब तक शैक्ष (नवदीक्षित) को दिया जाता है। अर्थात्—दीक्षाग्रहणकाल से महा-व्रतारोपण से पूर्व तक का शैक्ष (नवदीक्षित) का चारित्र इत्वरिकसामायिक-चारित्र होता है। भरत और ऐरवत क्षेत्र के मध्यवर्ती बाईस तीर्थंकरो तथा महाविदेहक्षेत्रीय तीर्थंकरो के तीर्थ मे साधुओ के यावत्कथिकसामायिक-चारित्र होता है। क्योकि उनके उपस्थापना नही होती, अर्थात्—

१ (क) प्रज्ञापनासूत्र, मलय वृत्ति, पत्राक ५५ से ६० तक,
(ख) प्रज्ञापना प्रमेयबोधिनी टीका भा १, पृ ४५३ से ५१३ तक

उन्हे महाव्रतारोपण के लिए दूसरी बार दीक्षा नही दी जाती। इस प्रकार के सामायिकचारित्र की आराधना के कारण से जो आर्य है वे सामायिकचारित्रार्य कहलाते है।

छेदोपस्थापनिक-चारित्रार्य—जिस चारित्र मे पूर्वपर्याय का छेद, और महाव्रतो मे उपस्थापन किया जाता है वह छेदोपस्थापनचारित्र है। वह दो प्रकार का है—सातिचार और निरतिचार। निरतिचार छेदोपस्थापनचारित्र वह है—जो इत्वरिक सामायिक वाले शैक्ष (नवदीक्षित) को दिया जाता है अथवा एक तीर्थ से दूसरे तीर्थ मे जाने पर अगीकार किया जाता है। जैसे पार्श्वनाथ के तीर्थ से वर्द्धमान के तीर्थ मे आने वाले श्रमण को पचमहाव्रतरूप चारित्र स्वीकार करने पर दिया जाने वाला छेदोपस्थापनचारित्र निरतिचार है। सातिचार छेदोपस्थापनचारित्र वह है जो मूलगुणो (महाव्रतो) मे से किसी का विघात करने वाले साधु को पुन महाव्रतोच्चारण के रूप मे दिया जाता है। यह दोनो ही प्रकार का छेदोपस्थापनचारित्र स्थितकल्प मे—अर्थात्—प्रथम और चरम तीर्थंकरो के तीर्थ मे होता है, मध्यवर्ती बाईस तीर्थकरो के तीर्थ मे नही। छेदोपस्थापनचारित्र की आराधना करने के कारण साधक को छेदोपस्थापनचारित्रार्य कहा जाता है।

परिहारविशुद्धिचारित्रार्य का स्वरूप—परिहार एक विशिष्ट तप है, जिससे दोषो का परिहार किया जाता है। अत जिस चारित्र मे उक्त परिहार तप से विशुद्धि प्राप्त होती है, उसे परिहारविशुद्धिचारित्र कहते है। उसके दो भेद है—निर्विशमानक और निर्विष्टकायिक। जिस चारित्र मे साधक प्रविष्ट होकर उस तपोविधि के अनुसार तपश्चरण कर रहे हो, उसे निर्विशमानक-चारित्र कहते हैं और जिस चारित्र मे साधक तपोविधि के अनुसार तप का आराधन कर चुके हो, उस चारित्र का नाम निर्विष्टकायिकचारित्र है। इस प्रकार के चारित्र अगीकार करने वाले साधको को भी क्रमश निर्विशमान और निर्विष्टकायिक कहा जाता है। नौ साधु मिल कर इस परिहारतप की आराधना करते है। उनमे से चार साधु निर्विशमानक होते है, जो इस तप को करते है और चार साधु उनके अनुचारी अर्थात्—वैयावृत्य करने वाले होते हैं तथा एक साधु कल्पस्थित वाचनाचार्य होता है। यद्यपि सभी साधु श्रुतातिशयसम्पन्न होते है, तथापि यह एक प्रकार का कल्प होने के कारण उनमे एक कल्पस्थित आचार्य स्थापित कर लिया जाता है। निर्विशमान साधुओ का परिहारतप इस प्रकार होता है—ज्ञानीजनो ने पारिहारिको का शीतकाल, उष्णकाल और वर्षाकाल मे जघन्य, मध्यम और उत्कष्ट तप इस प्रकार बताया है—ग्रीष्मकाल मे जघन्य चतुर्थभक्त, मध्यम षष्ठभक्त और उत्कृष्ट अष्टमभक्त होता है, शिशिरकाल मे जघन्य षष्ठभक्त (बेला), मध्यम अष्टमभक्त (तेला) और उत्कृष्ट दशमभक्त (चौला) तप होता है। वर्षाकाल मे जघन्य अष्टमभक्त, मध्यम दशमभक्त और उत्कृष्ट द्वादशभक्त (पचौला) तप। पारणे मे आयम्बिल किया जाता है। भिक्षा मे पाच (वस्तुओ) का ग्रहण और दो का अभिग्रह होता है। कल्पस्थित भी प्रतिदिन इसी प्रकार आयम्बिल करते है। इस प्रकार छह महीने तक तप करके पारिहारिक (निर्विशमानक) साधु अनुचारी (वैयावृत्य करने वाले) बन जाते है, और जो चार अनुचारी थे, वे छह महीने के लिए पारिहारिक बन जाते है। इसी प्रकार कल्पस्थित (वाचनाचार्य पदस्थित) साधु भी छह महीने के पश्चात् पारिहारिक बन कर अगले ६ महीनो तक के लिए तप करता है और शेष साधु अनुचारी तथा कल्पस्थित बन जाते हैं। यह कल्प कुल १८ मास का सक्षेप मे कहा गया है कल्प समाप्त हो जाने के पश्चात् वे साधु या तो जिनकल्प को अगीकार कर लेते हैं, या अपने गच्छ मे पुन लौट आते हैं। परिहार तप के प्रतिपद्यमानक इस तप को या तो तीर्थंकर भगवान् के सान्निध्य मे अथवा जिसने इस कल्प को तीर्थंकर

से स्वीकार किया हो, उसके पास से अगीकार करते है, अन्य के पास नही। [ऐसे मुनियो का चारित्र परिहारविशुद्धिचारित्र कहलाता है। इस चारित्र की आराधना करने वाले को परिहारविशुद्धि-चारित्रार्य कहते है।

परिहारविशुद्धिचारित्री दो प्रकार के होते है—इत्वरिक और यावत्कथिक। इत्वरिक वे होते हैं, जो कल्प की समाप्ति के बाद उसी कल्प या गच्छ मे आ जाते हैं। जो कल्प समाप्त होने ही बिना व्यवधान के तत्काल जिनकल्प को स्वीकार कर लेते है, वे यावत्कथिकचारित्री कहलाते हैं। इत्वरिक-परिहारविशुद्धिको को कल्प के प्रभाव से देवादिकृत उपसर्ग, प्राणहारक आतक या दु सह वेदना नही होती किन्तु जिनकल्प को अगीकार करने वाले यावत्कथिको को जिनकल्पी भाव का अनुभव करने के साथ ही उपसर्ग होने सम्भव हैं।

सूक्ष्मसम्परायचारित्रार्य का स्वरूप—जिसमे सूक्ष्म अर्थात्—सज्वलन के सूक्ष्म लोभरूप सम्पराय=कषाय का ही उदय रह गया हो, ऐसा चारित्र सूक्ष्मसम्परायचारित्र कहलाता है। यह चारित्र दसवे गुणस्थान वालो मे होता है, जहाँ सज्वलनकपाय का सूक्ष्म अश ही शेष रह जाता है। इसके दो भेद है—विशुद्धचमानक और सक्लिश्यमानक। क्षपकश्रेणी या उपशमश्रेणी पर आरोहण करने वाले का चारित्र विशुद्धचमानक होता है, जबकि उपशमश्रेणी के द्वारा ग्यारहवे गुणस्थान मे पहुँच कर वहाँ से गिरने वाला मुनि जब पुन दसवे गुणस्थान मे आता है, उस समय का सूक्ष्मसम्पराय-चारित्र सक्लिश्यमानक कहलाता है। सूक्ष्मसम्परायचारित्र की आराधना से जो आर्य हो, उन्हे सूक्ष्मसम्परायचारित्रार्य कहते है।

यथाख्यातचारित्रार्य —'यथाख्यात' शब्द मे यथा+आ+आख्यात, ये तीन शब्द सयुक्त है, जिनका अर्थ होता है—यथा (यथार्थरूप से) आ (पूरी तरह से) आख्यात (कपायरहित कहा गया) हो अथवा जिस प्रकार समस्त लोक मे ख्यात—प्रसिद्ध जो अकषायरूप हो, वह चारित्र, यथाख्यातचारित्र कहलाता है। इस चारित्र के भी दो भेद है—छाद्मस्थिक (छद्मस्थ—यानी ग्यारहवे, बारहवे गुणस्थानवर्ती जीव का) और कैवलिक (तेरहवें गुणस्थानवर्ती-सयोगिकेवली और चौदहवे गुणस्थानवर्ती अयोगिकेवली का)। इस प्रकार के यथाख्यातचारित्र की आराधना से जो आर्य हो, वे यथाख्यातचारित्रार्य कहलाते है।[1]

चतुर्विध देवो की प्रज्ञापना—

१३९ से किं त देवा ?

देवा चउव्विहा पण्णत्ता। त जहा—भवणवासी १ वाणमतरा २ जोइसिया ३ वेमाणिया ४।

[१३९ प्र] देव कितने प्रकार के है ?

---

१ (क) प्रज्ञापनासूत्र, मलय वृत्ति, पत्राक ६३ से ६८ तक

(ख) सव्वमिण सामाइय छेयाइविसेसिय पुण विभिन्न।
अविसेस सामाइय चियमिह सामन्नसन्नाए॥ —प्र म वृ, प ६३

(ग) अह सद्दो उ जहत्थे, आङोऽभिविहीए कहियमक्खाय।
चरणमकसायमुद्दय तहमक्खाय जहक्खाय॥ —प्रज्ञापना म वृत्ति, पत्राक ६८

उन्हे महाव्रतारोपण के लिए दूसरी बार दीक्षा नही दी जाती। इस प्रकार के सामायिकचारित्र की आराधना के कारण से जो आर्य है वे सामायिकचारित्रार्य कहलाते है।

छेदोपस्थापनिक-चारित्रार्य—जिस चारित्र मे पूर्वपर्याय का छेद, और महाव्रतो मे उपस्थापन किया जाता है वह छेदोपस्थापनचारित्र है। वह दो प्रकार का है—सातिचार और निरतिचार। निरतिचार छेदोपस्थापनचारित्र वह है—जो इत्वरिक सामायिक वाले शैक्ष (नवदीक्षित) को दिया जाता है अथवा एक तीर्थ से दूसरे तीर्थ मे जाने पर अगीकार किया जाता है। जैसे पार्श्वनाथ के तीर्थ से वर्द्धमान के तीर्थ मे आने वाले श्रमण को पचमहाव्रतरूप चारित्र स्वीकार करने पर दिया जाने वाला छेदोपस्थापनचारित्र निरतिचार है। सातिचार छेदोपस्थापनचारित्र वह है जो मूलगुणो (महाव्रतो) मे से किसी का विघात करने वाले साधु को पुन महाव्रतोच्चारण के रूप मे दिया जाता है। यह दोनो ही प्रकार का छेदोपस्थापनचारित्र स्थितकल्प मे—अर्थात्—प्रथम और चरम तीर्थंकरो के तीर्थ मे होता है, मध्यवर्ती बाईस तीर्थंकरो के तीर्थ मे नही। छेदोपस्थापनचारित्र की आराधना करने के कारण साधक को छेदोपस्थापनचारित्रार्य कहा जाता है।

परिहारविशुद्धिचारित्रार्य का स्वरूप—परिहार एक विशिष्ट तप है, जिससे दोषो का परिहार किया जाता है। अत जिस चारित्र मे उक्त परिहार तप से विशुद्धि प्राप्त होती है, उसे परिहारविशुद्धिचारित्र कहते है। उसके दो भेद हैं—निर्विशमानक और निर्विष्टकायिक। जिस चारित्र मे साधक प्रविष्ट होकर उस तपोविधि के अनुसार तपश्चरण कर रहे हो, उसे निर्विशमानक-चारित्र कहते है और जिस चारित्र मे साधक तपोविधि के अनुसार तप का आराधन कर चुके हो, उस चारित्र का नाम निर्विष्टकायिकचारित्र है। इस प्रकार के चारित्र अगीकार करने वाले साधको को भी क्रमश निर्विशमान और निर्विष्टकायिक कहा जाता है। नौ साधु मिल कर इस परिहारतप की आराधना करते है। उनमे से चार साधु निर्विशमानक होते है, जो इस तप को करते हैं और चार साधु उनके अनुचारी अर्थात्—वैयावृत्य करने वाले होते है तथा एक साधु कल्पस्थित वाचनाचार्य होता है। यद्यपि सभी साधु श्रुतातिशयसम्पन्न होते हैं, तथापि यह एक प्रकार का कल्प होने के कारण उनमे एक कल्पस्थित आचार्य स्थापित कर लिया जाता है। निर्विशमान साधुओ का परिहारतप इस प्रकार होता है—ज्ञानीजनो ने पारिहारिको का शीतकाल, उष्णकाल और वर्षाकाल मे जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट तप इस प्रकार बताया है—ग्रीष्मकाल मे जघन्य चतुर्थभक्त, मध्यम षष्ठभक्त और उत्कृष्ट अष्टमभक्त होता है, शिशिरकाल मे जघन्य षष्ठभक्त (बेला), मध्यम अष्टमभक्त (तेला) और उत्कृष्ट दशमभक्त (चौला) तप होता है। वर्षाकाल मे जघन्य अष्टमभक्त, मध्यम दशमभक्त और उत्कृष्ट द्वादशभक्त (पचौला) तप। पारणे मे आयम्बिल किया जाता है। भिक्षा मे पाच (वस्तुओ) का ग्रहण और दो का अभिग्रह होता है। कल्पस्थित भी प्रतिदिन इसी प्रकार आयम्बिल करते है। इस प्रकार छह महीने तक तप करके पारिहारिक (निर्विशमानक) साधु अनुचारी (वैयावृत्य करने वाले) बन जाते हैं, और जो चार अनुचारी थे, वे छह महीने के लिए पारिहारिक बन जाते है। इसी प्रकार कल्पस्थित (वाचनाचार्य पदस्थित) साधु भी छह महीने के पश्चात् पारिहारिक बन कर अगले ६ महीनो तक के लिए तप करता है और शेष साधु अनुचारी तथा कल्पस्थित बन जाते हैं। यह कल्प कुल १८ मास का सक्षेप मे कहा गया है कल्प समाप्त हो जाने के पश्चात् वे साधु या तो जिनकल्प को अगीकार कर लेते है, या अपने गच्छ मे पुन लौट आते हैं। परिहार तप के प्रतिपद्यमानक इस तप को या तो तीर्थंकर भगवान् के सान्निध्य मे अथवा जिसने इस कल्प को तीर्थंकर

से स्वीकार किया हो, उसके पास से अंगीकार करते है, अन्य के पास नही। ऐसे मुनियों का चारित्र परिहारविशुद्धिचारित्र कहलाता है। इस चारित्र की आराधना करने वाले को **परिहारविशुद्धि-चारित्रार्य** कहते है।

परिहारविशुद्धिचारित्री दो प्रकार के होते है—इत्वरिक और यावत्कथिक। इत्वरिक वे होते हैं, जो कल्प की समाप्ति के बाद उसी कल्प या गच्छ मे आ जाते हैं। जो कल्प समाप्त होते ही बिना व्यवधान के तत्काल जिनकल्प को स्वीकार कर लेते हैं, वे यावत्कथिकचारित्री कहलाते हैं। इत्वरिक-परिहारविशुद्धिको को कल्प के प्रभाव से देवादिकृत उपसर्ग, प्राणहारक आतंक या दु सह वेदना नही होती किन्तु जिनकल्प को अंगीकार करने वाले यावत्कथिको को जिनकल्पी भाव का अनुभव करने के साथ ही उपसर्ग होने सम्भव हैं।

सूक्ष्मसम्परायचारित्रार्य का स्वरूप—जिसमे सूक्ष्म अर्थात्—सज्वलन के सूक्ष्म लोभरूप सम्पराय=कषाय का ही उदय रह गया हो, ऐसा चारित्र सूक्ष्मसम्परायचारित्र कहलाता है। यह चारित्र दसवें गुणस्थान वालो मे होता है, जहाँ सज्वलनकषाय का सूक्ष्म अंश ही शेष रह जाता है। इसके दो भेद है—विशुद्धयमानक और सक्लिश्यमानक। क्षपकश्रेणी या उपशमश्रेणी पर आरोहण करने वाले का चारित्र विशुद्धयमानक होता है, जबकि उपशमश्रेणी के द्वारा ग्यारहवे गुणस्थान मे पहुँच कर वहाँ से गिरने वाला मुनि जब पुन दसवे गुणस्थान मे आता है, उस समय का सूक्ष्मसम्पराय-चारित्र सक्लिश्यमानक कहलाता है। सूक्ष्मसम्परायचारित्र की आराधना से जो आर्य हो, उन्हे **सूक्ष्मसम्परायचारित्रार्य** कहते है।

यथाख्यातचारित्रार्य—'यथाख्यात' शब्द मे यथा+आ+आख्यात, ये तीन शब्द सयुक्त है, जिनका अर्थ होता है—यथा (यथार्थरूप से) आ (पूरी तरह से) आख्यात (कषायरहित कहा गया) हो अथवा जिस प्रकार समस्त लोक मे ख्यात—प्रसिद्ध जो अकषायरूप हो, वह चारित्र, यथाख्यातचारित्र कहलाता है। इस चारित्र के भी दो भेद है—छाद्मस्थिक (छद्मस्थ—यानी ग्यारहवे, बारहवे गुणस्थानवर्ती जीव का) और कैवलिक (तेरहवे गुणस्थानवर्ती-सयोगिकेवली और चौदहवे गुणस्थानवर्ती अयोगिकेवली का)। इस प्रकार के यथाख्यातचारित्र की आराधना से जो आर्य हो, वे **यथाख्यातचारित्रार्य** कहलाते है।[1]

चतुर्विध देवो की प्रज्ञापना—

१३९. से किं त देवा ?

देवा चउव्विहा पण्णत्ता। त जहा—भवणवासी १ वाणमतरा २ जोइसिया ३ वेमाणिया ४।

[१३९ प्र] देव कितने प्रकार के हैं ?

---

१ (क) प्रज्ञापनासूत्र, मलय वृत्ति, पत्राक ६३ से ६८ तक

(ख) सव्वमिण सामाइय छेयाइविसेसिय पुण विभिन्न।
अविसेस सामाइय ठियमिह सामन्नसन्नाए॥ —प्र म वृ, प ६३

(ग) अह सद्दो उ जहत्थे, आङोऽभिविहीए कहियमक्खाय।
चरणमकसायमुइय तहमक्खाय जहक्खाय॥ —प्रज्ञापना म वृत्ति, पत्राक ६८

[१३९ उ] देव चार प्रकार के कहे गए है। वे इस प्रकार है—(१) भवनवासी, (२) वाणव्यन्तर, (३) ज्योतिष्क और (४) वैमानिक।

१४० [१] से किं त भवणवासी ?

भवणवासी दसविहा पन्नत्ता। त जहा—असुरकुमारा १ नागकुमारा २ सुवण्णकुमारा ३ विज्जुकुमारा ४ अग्गिकुमारा ५ दीवकुमारा ६ उदहिकुमारा ७ दिसाकुमारा ८ वाउकुमारा ९ थणियकुमारा १०।

[१४०-१ प्र] भवनवासी देव किस प्रकार के है ?

[१४०-१ उ] भवनवासी देव दस प्रकार के है—(१) असुरकुमार, (२) नागकुमार, (३) सुपर्णकुमार, (४) विद्युत्कुमार, (५) अग्निकुमार, (६) द्वीपकुमार, (७) उदधिकुमार, (८) दिशाकुमार, (९) पवन (वायु) कुमार और (१०) स्तनितकुमार।

[२] ते समासतो दुविहा पण्णत्ता। त जहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य। से त्त भवणवासी।

[१४०-२] ये (दस प्रकार के भवनवासी देव) सक्षेप मे दो प्रकार के कहे गए है। यथा-पर्याप्तक और अपर्याप्तक।

यह भवनवासी देवो की प्ररूपणा हुई।

१४१ [१] से किं त वाणमंतरा ?

वाणमतरा अट्ठविहा पण्णत्ता। त जहा—किन्नरा १ किंपुरिसा २ महोरगा ३ गधव्वा ४ जक्खा ५ रक्खसा ६ भूया ७ पिसाया ८।

[१४१-१ प्र] वाणव्यन्तर देव कितने प्रकार के है ?

[१४१-१ उ] वाणव्यन्तर देव आठ प्रकार के कहे गए हैं। जैसे—(१) किन्नर, (२) किम्पुरुष, (३) महोरग, (४) गन्धर्व, (५) यक्ष, (६) राक्षस, (७) भूत और (८) पिशाच।

[२] से समासतो दुविहा पण्णत्ता। त जहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य। से त्त वाणमतरा।

[१४१-२] वे (उपर्युक्त किन्नर आदि आठ प्रकार के वाणव्यन्तर देव) सक्षेप मे दो प्रकार के कहे गए हैं, पर्याप्तक और अपर्याप्तक। यह हुआ उक्त वाणव्यन्तरो का वर्णन।

१४२. [१] से किं त जोइसिया ?

जोइसिया पचविहा पन्नत्ता। त जहा—चदा १ सूरा २ गहा ३ नक्खत्ता ४ तारा ५।

[१४२-१ प्र] ज्योतिष्क देव कितने प्रकार के है ?

[१४२-१ उ] ज्योतिष्क देव पाच प्रकार के हैं। यथा—(१) चन्द्र, (२) सूर्य, (३) ग्रह, (४) नक्षत्र और (५) तारे।

[२] ते समासतो दुविहा पण्णत्ता त जहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य। से त्त जोइसिया।

[१४२-२] वे (उपर्युक्त पाच प्रकार के ज्योतिष्क देव) सक्षेप मे दो प्रकार के कहे गए है—पर्याप्तक और अपर्याप्तक। यह ज्योतिष्क देवो का निरूपण है।

१४३ से किं त वेमाणिया ?

वेमाणिया दुविहा पण्णत्ता। त जहा—कप्पोवगा य कप्पातीता य।

[१४३ प्र] वैमानिक देव कितने प्रकार के है ?

[१४३ उ] वैमानिक देव दो प्रकार के हे—कल्पोपपन्न और कल्पातीत।

१४४ [१] से किं त कप्पोवगा ?

कप्पोवगा बारसविहा पण्णत्ता। त जहा—सोहम्मा १ ईसाणा २ सणंकुमार ३ माहिंदा ४ बभलोया ५ लंतया ६ सुक्का ७ सहस्सारा ८ आणता ९ पाणता १० आरणा ११ अच्चुता १२।

[१४४-१ प्र] कल्पोपपन्न कितने प्रकार के है ?

[१४४-१ उ] कल्पोपपन्न देव बारह प्रकार के कहे गए है—(१) सौधर्म, (२) ईशान, (३) सनत्कुमार, (४) माहेन्द्र, (५) ब्रह्मलोक, (६) लान्तक, (७) महाशुक्र, (८) सहस्रार, (९) आनत, (१०) प्राणत, (११) आरण और (१२) अच्युत।

[२] ते समासतो दुविहा पण्णत्ता। त जहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य। से त्त कप्पोवगा।

[१४४-२] वे (बारह प्रकार के कल्पोपपन्न देव) सक्षेप मे दो प्रकार के कहे गए है। यथा—पर्याप्तक और अपर्याप्तक। यह कल्पोपपन्न देवो की प्ररूपणा हुई।

१४५. से किं त कप्पातीया ?

कप्पातीया दुविहा पण्णत्ता। त जहा—गेवेज्जगा य अणुत्तरोववाइया य।

[१४५ प्र] कल्पातीत देव कितने प्रकार के है ?

[१४५ उ] कल्पातीत देव दो प्रकार के है—ग्रैवेयकवासी और अनुत्तरौपपातिक।

१४६ [१] से किं त गेवेज्जगा ?

गेवेज्जगा णवविहा पण्णत्ता। त जहा—हेट्ठिमहेट्ठिमगेवेज्जगा १ हेट्ठिममज्झिमगेवेज्जगा २ हेट्ठिमउवरिमगेवेज्जगा ३ मज्झिमहेट्ठिमगेवेज्जगा ४ मज्झिममज्झिमगेवेज्जगा ५ मज्झिमउवरिम-गेवेज्जगा ६ उवरिमहेट्ठिमगेवेज्जगा ७ उवरिममज्झिमगेवेज्जगा ८ उवरिमउवरिमगेवेज्जगा ९।

[१४६-१ प्र] ग्रैवेयक देव कितने प्रकार के हैं ?

[१४६-१ उ] ग्रैवेयक देव नौ प्रकार के कहे गए है। वे इस प्रकार—(१) अधस्तन-अधस्तन-ग्रैवेयक, (२) अधस्तन-मध्यम-ग्रैवेयक, (३) अधस्तन-उपरिम-ग्रैवेयक, (४) मध्यम-

अधस्तन-ग्रैवेयक, (५) मध्यम-मध्यम-ग्रैवेयक, (६) मध्यम-उपरिम-ग्रैवेयक, (७) उपरिम-अधस्तन-ग्रैवेयक, (८) उपरिम-मध्यम-ग्रैवेयक और (९) उपरिम-उपरिम-ग्रैवेयक मे रहने वाले ।

[२] ते समासतो दुविहा पण्णत्ता । त जहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य । से त गेवेज्जगा ।

[१४६-२] ये (उपर्युक्त नौ प्रकार के ग्रैवेयक देव) सक्षेप मे दो प्रकार के कहे गए है—पर्याप्तक और अपर्याप्तक । यह ग्रैवेयको का निरूपण हुआ ।

१४७ [१] से किं त अणुत्तरोववाइया ?

अणुत्तरोववाइया पचविहा पण्णत्ता । त जहा—विजया १ वेजयता २ जयता ३ अपराजिता ४ सव्वट्ठसिद्धा ५ ।

[१४७-१ प्र] अनुत्तरौपपातिक देव कितने प्रकार के है ?

[१४७-१ उ] अनुत्तरौपपातिक देव पाच प्रकार के कहे गए हैं—(१) विजय, (२) वैजयन्त, (३) जयन्त, (४) अपराजित और (५) सर्वार्थसिद्ध, (विमानो मे रहने वाले) ।

[२] ते समासतो दुविहा पण्णत्ता । त जहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य । से त्त अणुत्तरोववाइया । से त्त कप्पाईया । से त्त वेमाणिया । से त्त देवा । से त्त पचिंदिया । से त्त ससारसमावण्ण-जीवपण्णवणा । से त्त जीवपण्णवणा । से त्त पण्णवणा ।

।। पण्णवणाए भगवईए पढम पण्णवणापय समत्त ।।

[१४७-२] ये सक्षेप मे दो प्रकार के है—पर्याप्तक और अपर्याप्तक । यह हुई अनुत्तरौपपातिक देवो की प्ररूपणा । साथ ही उक्त कल्पातीत देवो का निरूपण पूर्ण हुआ, और इससे सम्बन्धित वैमानिक देवो का निरूपण भी पूर्ण हुआ । इसके पूर्ण होने पर देवो का वर्णन भी पूर्ण हुआ । साथ ही पचेन्द्रिय जीवो का वर्णन भी पूरा हुआ । इसकी समाप्ति के साथ ही उक्त ससारसमापन्न जीवो की प्रज्ञापना पूर्ण हुई, और इससे सम्बन्धित जीवप्रज्ञापना भी समाप्त हुई । इस प्रकार यह प्रथम प्रज्ञापनापद पूर्ण हुआ ।

विवेचन—चतुर्विध देवो की प्रज्ञापना—प्रस्तुत नौ सूत्रो (सू १३९ से १४७ तक) मे चार प्रकार के देवो के भेद-प्रभेदो की प्ररूपणा की गई है ।

भवनवासी देवो का स्वरूप—जो देव प्राय भवनो मे निवास किया करते है, वे भवनवासी देव कहलाते हैं । यह कथन बहुलता से नागकुमार आदि देवो की अपेक्षा से समझना चाहिए, क्योकि वे (नागकुमारादि) ही प्राय भवनो मे निवास करते है, कदाचित् आवासो मे भी रहते है , किन्तु असुरकुमार प्राय आवासो मे रहते है, कदाचित् भवनो मे भी निवास करते हैं । भवन और आवास मे अन्तर यह है कि भवन तो बाहर से वृत्त (गोलाकार) तथा भीतर से समचौरस होते है, और नीचे कमल की कर्णिका के आकार के होते है, जबकि आवास कायप्रमाण स्थान वाले महामण्डप होते है, जो अनेक प्रकार के मणि-रत्नरूपी प्रदीपो से समस्त दिशाओ को प्रकाशित करते है । भवनवासी देवो के प्रत्येक प्रकार के नाम के साथ सलग्न 'कुमार' शब्द इनकी विशेषता का द्योतक है । ये दसो ही प्रकार के देव कुमारो के समान चेष्टा करते है अतएव 'कुमार' कहलाते हे । ये कुमारो की तरह सुकुमार होते है, इनकी चाल (गति) कुमारो की तरह मृदु, मधुर और ललित होती है । शृ गार-

प्रसाधनार्थ ये नाना प्रकार की विशिष्ट एव विशिष्टतर उत्तरविक्रिया किया करते है। कुमारो की तरह ही इनके रूप, वेशभूषा, भाषा, आभूषण, शस्त्रास्त्र, यान एव वाहन ठाठदार होते है। ये कुमारो के समान तीव्र अनुरागपरायण एव क्रीडातत्पर होते है।

वाणव्यन्तर देवो का स्वरूप—अन्तर का अर्थ है—अवकाश, आश्रय या जगह। जिन देवो का अन्तर (आश्रय), भवन, नगरावास आदि रूप हो, वे व्यन्तर कहलाते हे। वाणव्यन्तर देवो के भवन रत्नप्रभापृथ्वी के प्रथम रत्नकाण्ड मे ऊपर और नीचे सौ-सौ योजन छोड कर शेप आठ-सौ योजन-प्रमाण मध्यभाग मे है, इनके नगर तिर्यग्लोक मे भी हे, तथा इनके आवास तीन लोको मे है, जैसे ऊर्ध्वलोक मे इनके आवास पाण्डुकवन आदि मे हे। व्यन्तर शब्द का दूसरा अर्थ है—मनुष्यो से जिनका अन्तर नही (विगत) हो, क्योकि कई व्यन्तर चक्रवर्ती, वासुदेव आदि मनुष्यो की सेवक की तरह सेवा करते है। अथवा जिनके पर्वतान्तर, कन्दरान्तर या वनान्तर आदि आश्रयरूप विविध अन्तर हो, वे व्यन्तर कहलाते है। अथवा वानमन्तर का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है—वनो का अन्तर वनान्तर है, जो वनान्तरो मे रहते है, वे वानमन्तर।

वाणव्यन्तरो के किन्नर आदि आठ भेद है। किन्नर के दस भेद हैं—(१) किन्नर, (२) किम्पुरुष, (३) किम्पुरुषोत्तम, (४) किन्नरोत्तम, (५) हृदयगम, (६) रूपशाली, (७) अनिन्दित, (८) मनोरम, (९) रतिप्रिय और (१०) रतिश्रेष्ठ। किम्पुरुष भी दस प्रकार के होते है—(१) पुरुष, (२) सत्पुरुष, (३) महापुरुष, (४) पुरुषवृषभ, (५) पुरुषोत्तम (६) अतिपुरुष, (७) महादेव, (८) मरुत, (९) मेरुप्रभ और (१०) यशस्वन्त। महोरग भी दस प्रकार के होते है—(१) भुजग, (२) भोगशाली, (३) महाकाय, (४) अतिकाय, (५) स्कन्धशाली, (६) मनोरम, (७) महावेग, (८) महायक्ष, (९) मेरुकान्त और (१०) भास्वन्त। गन्धर्व १२ प्रकार के होते है—(१) हाहा, (२) हूहू, (३) तुम्बरव, (४) नारद, (५) ऋषिवादिक, (६) भूतवादिक, (७) कादम्ब, (८) महा-कदम्ब, (९) रैवत, (१०) विश्वावसु, (११) गीतरति और (१२) गीतयश। यक्ष तेरह प्रकार के होते है—(१) पूर्णभद्र, (२) मणिभद्र, (३) श्वेतभद्र, (४) हरितभद्र, (५) सुमनोभद्र, (६) व्यतिपा-तिकभद्र, (७) सुभद्र, (८) सर्वतोभद्र, (९) मनुष्ययक्ष, (१०) वनाधिपति, (११) वनाहार, (१२) रूपयक्ष और (१३) यक्षोत्तम। राक्षस देव सात प्रकार के होते है—(१) भीम, (२) महाभीम, (३) विघ्न, (४) विनायक, (५) जलराक्षस, (६) राक्षस-राक्षस और (७) ब्रह्मराक्षस। भूत नौ प्रकार के होते हैं—(१) सुरूप, (२) प्रतिरूप, (३) अतिरूप, (४) भूतोत्तम, (५) स्कन्द, (६) महास्कन्द, (७) महावेग, (८) प्रतिच्छन्न और (९) आकाशग। पिशाच सोलह प्रकार के होते हैं—(१) कूष्माण्ड, (२) पटक, (३) सुजोष, (४) आह्निक, (५) काल, (६) महाकाल, (७) चोक्ष, (८) अचोक्ष, (९) तालपिशाच, (१०) मुखरपिशाच, (११) अधस्तारक, (१२) देह, (१३) विदेह, (१४) महादेह, (१५) तूष्णीक और (१६) वनपिशाच।

ज्योतिष्क देवो का स्वरूप—जो लोक को द्योतित—ज्योतित—प्रकाशित करते वे ज्योतिष्क कहलाते है। अथवा जो द्योतित करते है, वे ज्योतिष्-विमान है, उन ज्योतिर्विमानो मे रहने वाले देव ज्योतिष्क देव कहलाते हैं। अथवा जो मस्तक के मुकुटो से आश्रित प्रभामण्डलसदृश सूर्यमण्डल आदि के द्वारा प्रकाश करते हैं, वे सूर्यादि ज्योतिष्कदेव कहलाते है। सूर्यदेव के मुकुट के अग्रभाग मे सूर्य के आकार का, चन्द्रदेव के मुकुट के अग्रभाग मे चन्द्र के आकार का, ग्रहदेव के मुकुट के अग्रभाग

बिइयं ठाणपयं

द्वितीय स्थानपद

प्राथमिक

* प्रज्ञापनासूत्र का यह द्वितीय स्थानपद है।

* प्रथम पद मे ससारी और सिद्ध, इन दो प्रकार के जीवो के भेद-प्रभेद बताए गए है। उन-उन जीवो के निवासस्थान का जानना आवश्यक होने से इस द्वितीय 'स्थानपद' मे उसका विचार किया गया है।

* जीवो के निवासस्थान का विचार करना इसलिए भी आवश्यक है कि अन्य दर्शनो की तरह जैनदर्शन मे आत्मा को सर्वव्यापक नही, किन्तु उस-उस जीव के शरीरप्रमाणव्यापी सकोच-विकासशील माना गया है। इसके अतिरिक्त जैनदर्शन मे अन्य दर्शनो की मान्यता की तरह आत्मा कूटस्थनित्य नही, किन्तु परिणामीनित्य मानी गई है। इस कारण ससार मे नाना पर्यायो के रूप मे उसका जन्म होता है तथा नियत स्थान मे ही वह शरीर धारण करती है। अतएव कौन-सा जीव किस स्थान मे होता है ?, इसका विचार करना अनिवार्य हो जाता है। दूसरे दर्शनो की दृष्टि से जीव सदैव सर्वत्र लोक मे उपलब्ध है ही, वे केवल शरीर की दृष्टि से भले ही निवास स्थान का विचार कर ले, आत्मा की दृष्टि से जीव के स्थान का विचार उनके लिए अनिवार्य नही।[1]

* प्रस्तुत 'स्थानपद' मे अकित मूलपाठ के अनुसार जीव के दो प्रकार के निवासस्थान फलित होते हैं—(१) स्थायी और (२) प्रासगिक। जन्म धारण करने से लेकर मृत्यु पर्यन्त जीव जहाँ (जिस स्थान में) रहता है, उस निवासस्थान को स्थायी कहा जा सकता है, शास्त्रकार ने जिसका उल्लेख 'स्वस्थान' के नाम से किया है। प्रासगिक निवासस्थान का विचार 'उपपात' और 'समुद्घात' इन दो प्रकारो से किया गया है।

* जैनशास्त्रीय परिभाषानुसार पूर्वभव की आयु समाप्त (मृत्यु) होते ही जीव नये नाम (पर्याय) से पहचाना जाता है। उदाहरणार्थ कोई जीव पूर्वभव मे देव था, किन्तु वहाँ से मर कर वह मनुष्य होने वाला हो तो देवायु समाप्त होने से वह मनुष्य नाम से पहचाना जाता है। परन्तु जीव (आत्मा) सर्वव्यापक न होने से, शरीरप्रमाणव्यापी जीव को मृत्यु के पश्चात् नया जीवन स्वीकार करने हेतु यात्रा करके स्वजन्मस्थान मे जाना पडता है। क्योकि देवलोक तो उस जीव ने छोड दिया और मनुष्यलोक मे अभी तक पहुँचा नही है, तब तक उसका यह यात्राकाल है। इस यात्रा के दौरान उस जीव ने जिस प्रदेश की यात्रा की, वह भी उस का स्थान तो है ही।

---

१ (क) प्रमाणनयतत्त्वालोक (रत्नाकरावतारिका) परि ४,
(ख) पण्णवणासुत्त पद २ की प्रस्तावना भा २, पृ ४७-४८

इसी स्थान को शास्त्रकार ने 'उपपातस्थान' कहा है। स्पष्ट है कि यह स्थान प्रासगिक है, फिर भी अनिवार्य तो है ही।

* दूसरा प्रासगिक स्थान है—'समुद्घात'। वेदना मृत्यु या विक्रिया आदि के विशिष्ट प्रसगो पर जैनमतानुसार जीव के प्रदेशो का विस्तार होता है, जिसे जैन परिभाषा मे 'समुद्घात' कहते है, जो कि अनेक प्रकार का है। समुद्घात के समय जीव के (आत्म-) प्रदेश शरीरस्थान मे रहते हुए भी किसी न किसी स्थान मे बाहर भी समुद्घातकाल पर्यन्त रहते हैं। अत समुद्घात की अपेक्षा से जीव के इस प्रासगिक या कादाचित्क निवासस्थान का विचार भी आवश्यक है। इसीलिए प्रस्तुत पद मे नानाविध जीवो के विषय मे स्वस्थान, उपपातस्थान और समुद्घात-स्थान, यो तीन प्रकार के निवासस्थानो का विचार किया गया है। षट्खण्डागम मे भी खेत्ताणु-गमप्रकरण मे स्वस्थान, उपपात और समुद्घात को लेकर स्थान—क्षेत्र का विचार किया गया है।[1]

* प्रस्तुत 'स्थानपद' मे जीवो के जिन भेदो के स्थानो के विषय मे विचार और क्रम बताया गया है, उस पर से मालूम होता है कि प्रथमपद मे निर्दिष्ट जीवभेदो मे से एकेन्द्रिय जैसे कई सामान्य भेदो का विचार नही किया गया, किन्तु 'पचेन्द्रिय' जैसे सामान्य भेदो का विचार किया गया है। प्रथमपद-निर्दिष्ट सभी विशेष भेद-प्रभेदो के स्थानो का विचार प्रस्तुत पद मे नही किया गया है, किन्तु मुख्य-मुख्य भेद-प्रभेदो के स्थानो का विचार किया गया है।

* अन्य सभी जीवो के भेद-प्रभेदो के स्थान के विषय मे विचार करते समय पूर्वोक्त तीनो स्थानो का विचार किया गया है, परन्तु सिद्धो के विषय मे केवल 'स्वस्थान' का ही विचार किया गया है। इसका कारण यह है कि सिद्धो का उपपात नही होता, क्योकि अन्य जीवो को उस-उस जन्मस्थान को प्राप्त करने से पूर्व उस-उस नाम, गोत्र और आयु कर्म का उदय होता है, इस कारण वे नाम धारण करके, नया जन्म ग्रहण करने हेतु उस गति को प्राप्त करते हैं। सिद्धो के कर्मों का अभाव है, इस कारण सिद्ध रूप मे उनका जन्म नही होता, किन्तु वे स्व (सिद्धि) स्थान की दृष्टि से स्वस्वरूप को प्राप्त करते है, वही उनका स्वस्थान है। मुक्त जीवो की लोकान्त-स्थान तक जो गति होती है, वह जैनमान्यतानुसार आकाश-प्रदेशो को स्पर्श करके नही होती, इसलिए मुक्त जीवो का गमन होते हुए भी आकाशप्रदेशो का स्पर्श न होने से उस-उस प्रदेश मे सिद्धो का 'स्थान' होना नही कहलाता। इस दृष्टि से सिद्धो का उपपातस्थान नही होता। समुद्घातस्थान भी सिद्धो को नही होता, क्योकि समुद्घात कर्मयुक्त जीवो के होता है, सिद्ध कर्मरहित हैं। इसलिए सिद्धो के विषय मे 'स्वस्थान' का ही विचार किया गया है।

* 'एकेन्द्रिय जीव समग्र लोक मे परिव्याप्त है' इस कथन का अर्थ केवल एक एकेन्द्रिय जीव से नही, अपितु समग्ररूप से—सामान्यरूप से एकेन्द्रिय जाति से हैं। तथा तीनो स्थानो का पृथक्-पृथक् कथन न करके तीनो स्थान समग्ररूप से समझना चाहिए। द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीव समग्र लोक मे नही, किन्तु लोक के असख्यातवे भाग मे है। सामान्य

१ (क) पण्णवणासुत्त (मूलपाठ) भा १, पृ ४६ से ८०
(ख) पण्णवणासुत्त पद दो की प्रस्तावना भा २, पृ ४७-४८ (ग) षट्खण्डागम पुस्तक ७, पृ २९९

पचेन्द्रियो का स्थान भी लोक के असख्यातवें भाग मे है, किन्तु विशेषपचेन्द्रिय के रूप मे नारको, तिर्यञ्चपचेन्द्रियो, मनुष्यो एव देवो के पृथक्-पृथक् सूत्रो मे उन-उनके स्थानो का पृथक्-पृथक् निर्देश है। सिद्ध लोक के अग्रभाग मे हैं।[1]

* जीवभेदो के अनुसार स्थान-निर्देश इस क्रम से किया गया है—(१) पृथ्वीकायिक (बादर-सूक्ष्म, पर्याप्त-अपर्याप्त), (२) अप्कायिक (पूर्ववत्), (३) तेजस्कायिक (पूर्ववत्), (४) वायुकायिक (पूर्ववत्), (५) वनस्पतिकायिक (पूर्ववत्), (६) द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय (पर्याप्त-अपर्याप्त), (७) पचेन्द्रिय (सामान्य), (८) नारक (सामान्य, पर्याप्त-अपर्याप्त), (९) प्रथम से सप्तम नरक तक (पर्याप्त-अपर्याप्त), (१०) पचेन्द्रिय तिर्यञ्च (पूर्ववत्), (११) मनुष्य (पूर्ववत्), (१२) भवनवासी देव (पर्याप्त-अपर्याप्त), (१३) असुरकुमार आदि दस भवनवासी (दाक्षिणात्य, औदीच्य, पर्याप्त-अपर्याप्त) (१४) व्यन्तर (पर्याप्त-अपर्याप्त), (१५)पिशाचादि ८ व्यन्तर (दक्षिण-उत्तर के, पर्याप्त-अपर्याप्त), (१६) ज्योतिष्कदेव, (१७) वैमानिकदेव, (१८) सौधर्म से अच्युत तक, (पर्याप्त-अपर्याप्त) (१९) ग्रैवेयकदेव (पर्याप्त-अपर्याप्त) (२०) अनुत्तरौपपातिकदेव (पर्याप्त-अपर्याप्त) और (२१) सिद्ध।[2]

---

१ (क) पण्णवणासुत्त (मूलपाठ) भा १, पृ ४६ से ८० तक
(ख) पण्णवणासुत्त पद दो की प्रस्तावना भा २, पृ ४९-५०
(ग) उत्तराध्ययन अ ३६, गा 'सुहुमा सव्वलोगम्मि'

२ पण्णवणासुत्त (मूलपाठ) विषयानुक्रम, पृ ३१

बि इयं ठाणपयं

द्वितीय स्थानपद

पृथ्वीकायिको के स्थानो का निरूपण—

१४८. कहि णं भंते ! बादरपुढविकाइयाण पज्जत्तगाण ठाणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! सट्ठाणेणं अट्ठसु पुढवीसु । त जहा—रयणप्पभाए १ सक्करप्पभाए २ वालुयप्पभाए ३ पकप्पभाए ४ धूमप्पभाए ५ तमप्पभाए ६ तमतमप्पभाए ७ इसीपब्भाराए ८-१ ।

अहोलोए पायालेसु भवणेसु भवणपत्थडेसु णिरएसु निरयावलियासु निरयपत्थडेसु २ ।

उड्ढलोए कप्पेसु विमाणेसु विमाणावलियासु विमाणपत्थडेसु ३ ।

तिरियलोए टकेसु कूडेसु सेलेसु सिहरीसु पब्भारेसु विजएसु वक्खारेसु वासेसु वासहरपव्वएसु वेलासु वेइयासु दारेसु तोरणेसु दीवेसु समुद्देसु(-४)ण्क[1] ।

एत्थ ण बादरपुढविकाइयाणं पज्जत्तगाण ठाणा पण्णत्ता ।

उववाएण लोयस्स असखेज्जइभागे, समुग्घाएण लोयस्स असखेज्जइभागे सट्ठाणेण लोयस्स असखेज्जइभागे ।

[१४८ प्र] भगवन् ! बादरपृथ्वीकायिक पर्याप्तक जीवो के स्थान कहाँ कहे हैं ?

[१४८ उ] गौतम ! स्वस्थान की अपेक्षा से वे आठ पृथ्वियो मे हैं । वे इस प्रकार—(१) रत्नप्रभा मे, (२) शर्कराप्रभा मे, (३) वालुकाप्रभा मे, (४) पकप्रभा मे, (५) धूमप्रभा मे, (६) तम प्रभा मे, (७) तमस्तम प्रभा मे और (८) ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी मे ।

१ अधोलोक मे—पातालो मे, भवनो मे, भवनो के प्रस्तटो (पाथडो) मे, नरको मे, नरकावलियो मे एव नरक के प्रस्तटो (पाथडो) मे ।

२ ऊर्ध्वलोक मे—कल्पो मे, विमानो मे, विमानावलियो मे और विमान के प्रस्तटो (पाथडो) मे ।

३ तिर्यक्लोक मे—टको मे, कूटो मे, शैलो मे, शिखर वाले पर्वतो मे, प्राग्भारो (कुछ झुके हुए पर्वतो) मे, विजयो मे, वक्षस्कार पर्वतो मे, (भारतवर्ष आदि) वर्षो (क्षेत्रो) मे, (हिमवान् आदि) वर्षधरपर्वतो मे, वेलाओ (समुद्रतटवर्ती ज्वारभूमियो) मे, वेदिकाओ मे, द्वारो मे, तोरणो मे, द्वीपो मे और समुद्रो मे ।

इन (उपर्युक्त भूमियो) मे बादरपृथ्वीकायिक पर्याप्तको के स्थान कहे गए हैं ।

उपपात की अपेक्षा से (वे) लोक के असख्यातवे भाग मे, समुद्घात की अपेक्षा से (वे) लोक के असख्यातवें भाग मे और स्वस्थान की अपेक्षा से (भी) लोक के असख्यातवें भाग मे है ।

---

१ 'ण्क' चार सख्या का द्योतक है ।

१४९. कहि णं भंते ! बादरपुढविकाइयाणं अपज्जत्तगाणं ठाणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! जत्थेव बादरपुढविकाइयाणं पज्जत्तगाणं ठाणा तत्थेव बादरपुढविकाइयाणं अपज्जत्तगाणं ठाणा पण्णत्ता । तं जहा—उववाएणं सव्वलोए, समुग्घाएणं सव्वलोए, सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेज्जइभागे ।

[१४९ प्र.] भगवन् ! बादरपृथ्वीकायिकों के अपर्याप्तकों के स्थान कहाँ कहे हैं ?

[१४९ उ.] गौतम ! जहाँ बादरपृथ्वीकायिक-पर्याप्तकों के स्थान कहे गए हैं, वहीं बादरपृथ्वीकायिक-अपर्याप्तकों के स्थान कहे हैं । जैसे कि—उपपात की अपेक्षा से सर्वलोक में, समुद्घात की अपेक्षा से समस्त लोक में तथा स्वस्थान की अपेक्षा से लोक के असंख्यातवें भाग में हैं ।

१५०. कहि णं भंते ! सुहुमपुढविकाइयाणं पज्जत्तगाणं अपज्जत्तगाणं य ठाणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! सुहुमपुढविकाइया जे पज्जत्तगा जे य अपज्जत्तगा ते सव्वे एगविहा अविसेसा अणाणत्ता सव्वलोयपरियावण्णगा पण्णत्ता समणाउसो !

[१५० प्र.] भगवन् ! सूक्ष्मपृथ्वीकायिक-पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों के स्थान कहाँ कहे गए हैं ?

[१५० उ.] गौतम ! सूक्ष्मपृथ्वीकायिक, जो पर्याप्तक हैं और जो अपर्याप्तक हैं, वे सब एक ही प्रकार के हैं, विशेषतारहित (सामान्य) हैं, नानात्व (अनेकत्व) से रहित हैं और हे आयुष्मन् श्रमणो ! वे समग्र लोक में परिव्याप्त कहे गए हैं ।

विवेचन—पृथ्वीकायिकों के स्थानों का निरूपण—प्रस्तुत तीन सूत्रों (सू. १४८ से १५० तक) में बादर, सूक्ष्म, पर्याप्तक और अपर्याप्तक सभी प्रकार के पृथ्वीकायिकों के स्थानों का निरूपण किया गया है ।

'स्थान' की परिभाषा और प्रकार—जीव जहाँ-जहाँ रहते हैं, जीवन के प्रारम्भ से अन्त तक जहाँ रहते हैं, उसे **'स्वस्थान'** कहते हैं, जहाँ एक भव से छूट कर दूसरे भव में जन्म लेने से पूर्व बीच में स्वस्थानाभिमुख होकर रहते हैं, उसे **'उपपातस्थान'** कहते हैं और समुद्घात करते समय जीव के प्रदेश जहाँ रहते हैं, जितने आकाशप्रदेश में रहते हैं, उसे **'समुद्घातस्थान'** कहते हैं ।

पृथ्वीकायिकों के तीनों लोकों में निवासस्थान कहाँ-कहाँ और कितने प्रदेश में ? शास्त्रकार ने पृथ्वीकायिकों (बादर-सूक्ष्म-पर्याप्त-अपर्याप्तों) के स्वस्थान तीन दृष्टियों से बताए हैं—(१) सात नरक पृथ्वियों में और आठवीं ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी में, तत्पश्चात् (२) अधोलोक, ऊर्ध्वलोक और तिर्यग्लोक के विभिन्न स्थानों में, तथा (३) स्वस्थान में भी लोक के असंख्यातवें भाग में । इसके अतिरिक्त बादर पर्याप्तक-अपर्याप्तक के उपपातस्थान क्रमशः लोक के असंख्यातवें भाग में तथा सर्वलोक में और समुद्घातस्थान पूर्वोक्त दोनों पृथ्वीकायिकों के क्रमशः लोक के असंख्यातवें भाग में तथा सर्वलोक में बताया गया है ।[1]

---

१ (क) पण्णवणासुत्तं (मूलपाठ) भा. १, पृ. ६४
(ख) पण्णवणासुत्तं भा. २, पद २ की प्रस्तावना

उपपात की अपेक्षा से लोक के असख्यातवें भाग मे—बादर पृथ्वीकायिक पर्याप्तक जीवो का जो स्वस्थान कहा गया है, उसकी प्राप्ति के अभिमुख होना उपपात है, उस उपपात को लेकर वे चतुर्दशरज्ज्वात्मक लोक के असख्यातवे भाग मे है, क्योकि उनका रत्नप्रभादि समुदित स्वस्थान भी लोक के असख्यातवे भाग मे है। पर्याप्त बादरपृथ्वीकायिक थोडे है, इसलिए उपपात के समय अपान्तरालगत होने पर भी वे सभी स्वस्थान लोक के असख्यातवे भाग मे होते है, इस कथन मे कोई दोष नही है।

समुद्घात की अपेक्षा से भी लोक के असंख्यातवें भाग मे—बादर पृथ्वीकायिक पर्याप्तक जीव समुद्घात-अवस्था मे स्वस्थान के अतिरिक्त क्षेत्रान्तरवर्ती होने पर भी लोक के असख्यातवें भाग मे ही होते है, कारण यह है कि बादर पृथ्वीकायिकजीव सोपक्रम आयु वाले हो या निरुपक्रम आयु वाले, जब भुज्यमान आयु का तृतीय भाग शेष रहने पर परभव की आयु का बन्ध करके मारणान्तिक समुद्घात करते है, तब उनके दण्डरूप मे फैले हुए आत्मप्रदेश भी लोक के असख्यातवे भाग मे ही होते हैं, क्योकि वे जीव थोडे ही होते है। उन बादर पृथ्वीकायिको की आयु अभी क्षीण नही हुई, इसलिए वे बादर पृथ्वीकायिक तब (समुद्घात-अवस्था मे) भी पर्याप्तरूप मे उपलब्ध होते है।

स्वस्थान की अपेक्षा से भी लोक के असख्यातवें भाग मे—स्वस्थान है—रत्नप्रभादि। वे सब मिल कर भी लोक के असख्यातवे भाग मे है। जैसे कि—रत्नप्रभा पृथ्वी का पिण्ड एक लाख, अस्सी हजार योजन का है। इसी प्रकार अन्य पृथ्वियो की भिन्न-भिन्न मोटाई भी कह लेनी चाहिए। पातालकलश भी एक लाख योजन अवगाह वाले होते है। नरकावास भी तीन हजार योजन ऊँचे होते हैं। विमान भी बत्तीस सौ योजन विस्तृत होते है। अतएव ये सभी परिमित होने के कारण सब मिल कर भी असख्यातप्रदेशात्मक लोक के असख्यातवे भागवर्ती ही होते है।

अपर्याप्त बादर पृथ्वीकायिक उपपात और समुद्घात की अपेक्षा से—दोनो अपेक्षाओ से ये समस्त लोक मे रहते है। अपर्याप्त बादर पृथ्वीकायिक उपपातावस्था मे विग्रहगति (अपान्तराल गति) मे होते हुए भी स्वस्थान मे भी अपर्याप्त बादर पृथ्वीकायिक की आयु का वेदन विशिष्ट विपाकवश करते है तथा वे देवो व नारको को छोडकर शेष सभी कायो से उत्पन्न होते है, उद्वृत्त होने पर (मरने पर) भी वे देवो और नारको को छोडकर शेष सभी स्थानो मे जाते है। मर कर स्वस्थान मे जाते समय वे विग्रहगति मे रहे हुए (उपपातावस्था मे) भी अपर्याप्त बादर पृथ्वीकायिक ही कहलाते है, ये स्वभाव से ही प्रचुरसख्या मे होते है, इसलिए उपपात और समुद्घात की अपेक्षा से सर्वलोकव्यापी होते है। इनमे से किन्ही का उपपात ऋजुगति से होता है, और किन्ही का वक्रगति से। ऋजुगति तो सुप्रतीत है। वक्रगति की स्थापना इस प्रकार है—जिस समय मे प्रथम वक्र (मोड) को कई जीव सहरण करते हैं, उसी समय दूसरे जीव उस वक्रदेश को आपूरित कर देते है। इसी प्रकार द्वितीय वक्रदेश के सहरण मे भी, वक्रोत्पत्ति मे भी प्रवाह से निरन्तर आपूरण होता रहता है।

सूक्ष्म पृथ्वीकायिक पर्याप्तो और अपर्याप्तो के तीन स्थान—सूक्ष्म पृथ्वीकायिको के जो पर्याप्त और अपर्याप्त जीव है, वे सभी एक ही प्रकार के हैं, पूर्वोक्त स्थान आदि के विचार की अपेक्षा से इनमे कोई भेद नही होता, कोई विशेष नही होता, जैसे पर्याप्त है, वैसे ही दूसरे है तथा वे नानात्व से रहित है, देशभेद से उनमे नानात्व परिलक्षित नही होता। तात्पर्य यह है कि जिन आधारभूत

आकाशप्रदेशो मे ये (एक) है, उन्ही मे दूसरे है। अत. वे सभी सूक्ष्म पृथ्वीकायिक उपपात, समुद्घात और स्वस्थान, इन तीनो अपेक्षाओ से सर्वलोकव्यापी है।[1]

कठिन शब्दो के विशेष अर्थ—'भवणेसु'=भवनपतियो के रहने के भवनो मे, 'भवन-पत्थडेसु'=भवनो के प्रस्तटो यानी भवनभूमिकाओ मे (भवनो के बीच के भागो—अन्तरालो मे)। 'णिरएसु निरयावलिकासु'—नरको (प्रकीर्णक नरकावासो) मे, तथा आवली रूप से स्थित नरकवासो मे। 'कप्पेसु'=कल्पो—सौधर्मादि बारह देवलोको मे। 'विमाणेसु'—ग्रैवेयकसम्बन्धी प्रकीर्णक विमानो मे। 'टंकेसु'=छिन्न टको (एक भाग कटे हुए पर्वतो) मे। 'कूटेसु'=कूटो—पर्वत के शिखरो मे। 'सेलेसु'=शैलो—शिखरहीन पर्वतो मे। 'विजयेसु'=विजयो—कच्छादि विजयो मे। 'वक्खारेसु'=विद्युत्प्रभ आदि वक्षस्कार पर्वतो मे। 'वेलासु'=समुद्रादि के जल की तटवर्ती रमणभूमियो मे। 'वेदिकासु'=जम्बूद्वीप की जगती आदि से सम्बन्धित वेदिकाओ मे। 'तोरणेसु'=विजय आदि द्वारो मे, द्वारादि सम्बन्धी तोरणो मे। 'दीवेसु समुद्देसुण्क'=समस्त द्वीपो और समस्त समुद्रो मे। यहाँ 'ण्क' शब्द 'चार' सख्या का द्योतक है, ऐसा किन्ही विद्वानो का अभिप्राय है।[2]

अप्कायिको के स्थानो का निरूपण—

१५१ कहि ण भते ! बादरआउकाइयाण पज्जत्ताण ठाणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! सट्ठाणेण सत्तसु घणोदहीसु सत्तसु घणोदधिवलएसु १।

अहोलोए पायालेसु भवणेसु भवणपत्थडेसु २।

उड्ढलोए कप्पेसु विमाणेसु विमाणावलियासु विमाणपत्थडेसु ३।

तिरियलोए अगडेसु तलाएसु नदीसु दहेसु वावीसु पुक्खरिणीसु दीहियासु गुंजालियासु सरेसु सरपतियासु सरसरपतियासु बिलेसु बिलपतियासु उज्झरेसु निज्झरेसु चिल्ललेसु पल्ललेसु वप्पिणेसु दीवेसु समुद्देसु सव्वेसु चेव जलासएसु जलट्ठाणेसु ४।

एत्थ ण बादरआउक्काइयाण पज्जत्ताण ठाणा पण्णत्ता।

उववाएण लोयस्स असखेज्जइभागे, समुग्घाएण लोयस्स असखेज्जइभागे, सट्ठाणेण लोयस्स असखेज्जइभागे।

[१५१ प्र] भगवन् ! बादर अप्कायिक-पर्याप्तको के स्थान कहाँ (-कहाँ) कहे गए है ?

[१५१ उ] गौतम ! (१) स्वस्थान की अपेक्षा से—सात घनोदधियो मे और सात घनोदधि-वलयो मे उनके स्थान है।

२—अधोलोक मे—पातालो मे, भवनो मे तथा भवनो के प्रस्तटो (पाथडो) मे है।

३—ऊर्ध्वलोक मे—कल्पो मे, विमानो मे, विमानावलियो (आवलीबद्ध विमानो) मे, विमानो के प्रस्तटो (मध्यवर्ती स्थानो) मे है।

---

१ प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक ७३-७४

२ (क) प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक ७३

(ख) पण्णवणासुत्त मूलपाठ-टिप्पण पृ ४६

४—तिर्यग्लोक मे—अवटो (कुओ) मे, तालाबो मे, नदियो मे, ह्रदो मे, वापियो (चौकोर बावडियो), पुष्करिणियो (गोलाकार बावडियो या पुष्कर=कमल वाली बावडियो) मे, दीर्घिकाओ (लम्बी बावडियो, सरल-छोटी नदियो) मे, गु जालिकाओ (टेढीमेढी बावडियो) मे, सरोवरो मे, पक्तिबद्ध सरोवरो मे, सर सर पक्तियो (नाली द्वारा जिनमे कुए का जल बहता है, ऐसे पक्तिवद्ध तालाबो मे), बिलो मे (स्वाभाविक बनी हुई छोटी कुइओ मे), पक्तिवद्ध बिलो मे, उज्झरो मे (पर्वतीय जलस्रोतो मे), निर्झरो (झरनो) मे, गड्ढो मे, पोखरो मे, वप्रो (क्यारियो) मे, द्वीपो मे, समुद्रो मे तथा समस्त जलाशयो मे और जलस्थानो मे (इनके स्थान) है।

इन (पूर्वोक्त) स्थानो मे बादर-अप्कायिको के पर्याप्तको के स्थान कहे गए हैं।

उपपात की अपेक्षा से—लोक के असख्यातवे भाग मे, समुद्घात की अपेक्षा से—लोक के असख्यातवे भाग मे और स्वस्थान की अपेक्षा मे (भी वे) लोक के असख्यातवे भाग मे होते है।

१५२ कहि ण भते ! बादरआउक्काइयाण अपज्जत्ताण ठाणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! जत्थेव बादरआउक्काइयाण पज्जत्तगाण ठाणा तत्थेव बादरआउक्काइयाण अपज्जत्तगाण ठाणा पण्णत्ता।

उववाएण सव्वलोए, समुग्घाएणं सव्वलोए, सट्ठाणेण लोयस्स असखेज्जइभागे।

[१५२ प्र] भगवन् ! बादर-अप्कायिको के अपर्याप्तको के स्थान कहाँ कहे गए है ?

[१५२ उ] गौतम ! जहाँ बादर-अप्कायिक-पर्याप्तको के स्थान कहे गए है, वही बादर-अप्कायिक-अपर्याप्तको के स्थान कहे गए है।

उपपात की अपेक्षा से सर्वलोक मे, समुद्घात की अपेक्षा से सर्वलोक मे और स्वस्थान की अपेक्षा से लोक के असख्यातवें भाग मे होते है।

१५३ कहि ण भते ! सुहुमआउक्काइयाण पज्जत्ताऽपज्जत्ताण ठाणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! सुहुमआउक्काइया जे पज्जत्तगा जे य अपज्जत्तगा ते सव्वे एगविहा अविसेसा अणाणत्ता सव्वलोयपरियावण्णगा पन्नत्ता समणाउसो !

[१५३ प्र] भगवन् ! सूक्ष्म-अप्कायिको के पर्याप्तको और अपर्याप्तको के स्थान कहाँ कहे है ?

[१५३ प्र] गौतम ! सूक्ष्म-अप्कायिको के जो पर्याप्तक और अपर्याप्तक है, वे सभी एक प्रकार के हैं, अविशेष (विशेषतारहित—सामान्य या भेदरहित) है, नानात्व से रहित हैं, और आयुष्मन् श्रमणो ! वे सर्वलोकव्यापी कहे गए है।

विवेचन—अप्कायिको के स्थानो का निरूपण—प्रस्तुत तीन सूत्रो (सू १५१ से १५३ तक) मे बादर, सूक्ष्म, पर्याप्तक एव अपर्याप्तक अप्कायिको के स्वस्थान, उपपात और समुद्घात, इन तीनो अपेक्षाओ से स्थानो का निरूपण किया गया है।

'घणोदधिवलएसु' इत्यादि शब्दो की व्याख्या—'घणोदधिवलएसु'=स्व-स्वपृथ्वी-पर्यन्त प्रदेश को वेष्टित करने वाले वलयाकारो मे। 'पायालेसु'=वलयामुख आदि पातालकलशो मे। क्योकि उनमे भी दूसरे मे देशत त्रिभाग मे और तीसरे मे त्रिभाग मे सर्वात्मना जल का सद्भाव रहता है।

'भवणेसु कप्पेसु विमाणेसु' = भवनपतियो के भवनो मे, कल्पो—देवलोको मे, तथा विमानो– सौधर्मादि-कल्पगत विमानो मे, तथा इसके प्रस्तटो एव विमानावलियो मे जल बावडी आदि मे होता है। ग्रैवेयक आदि विमानो मे बावडिया नही होती, अत वहाँ जल नही होता।[1]

तेजस्कायिकों के स्थानो का निरूपण—

१५४ कहि णं भंते ! बादरतेउकाइयाण पज्जत्तगाण ठाणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! सट्ठाणेण अंतोमणुस्सखेत्ते अड्ढाइज्जेसु दीव-समुद्देसु निव्वाघाएण पण्णरससु कम्म-भूमीसु, वाघाय पडुच्च पचसु महाविदेहेसु।

एत्थ ण बादरतेउक्काइयाण पज्जत्तगाण ठाणा पण्णत्ता।

उववाएण[2] लोयस्स असखेज्जइभागे, समुग्घाएण लोयस्स असखेज्जइभागे, सट्ठाणेण लोयस्स असखेज्जइभागे।

[१५४ प्र] भगवन् ! बादर तेजस्कायिक-पर्याप्तक जीवो के स्थान कहाँ (-कहाँ) कहे गए है ?

[१५४ उ] गौतम ! स्वस्थान की अपेक्षा से—मनुष्यक्षेत्र के अन्दर ढाई द्वीप-समुद्रो मे, निर्व्याघात (बिना व्याघात) से पन्द्रह कर्मभूमियो मे, व्याघात की अपेक्षा से— पाच महाविदेहो मे (इनके स्थान हैं।)

इन (उपर्युक्त) स्थानो मे बादर तेजस्कायिक-पर्याप्तको के स्थान कहे गए है।

उपपात की अपेक्षा से लोक के असख्यातवें भाग मे, समुद्घात की अपेक्षा से लोक के असख्यातवें भाग मे, तथा स्वस्थान की अपेक्षा से (भी) लोक के असख्यातवें भाग मे (वे) होते है।

१५५ कहि ण भंते ! बादरतेउकाइयाण अपज्जत्तगाण ठाणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! जत्थेव बादरतेउकाइयाण पज्जत्तगाण ठाणा तत्थेव बादरतेउकाइयाण अपज्जत्त-गाण ठाणा पन्नत्ता।

उववाएण लोयस्स दोसु उड्ढकवाडेसु[3] तिरियलोयतट्टे य, समुग्घाएण सव्वलोए, सट्ठाणेण लोयस्स असखेज्जइभागे।

[१५५ प्र] भगवन् ! बादर तेजस्कायिको के अपर्याप्तको के स्थान कहाँ (-कहाँ) कहे गए है ?

[१५५ उ] गौतम ! जहाँ बादर तेजस्कायिको के पर्याप्तको के स्थान है वही बादर तेज-स्कायिको के अपर्याप्तको के स्थान कहे गए है।

उपपात की अपेक्षा से—(वे) लोक के दो ऊर्ध्वकपाटो मे तथा तिर्यग्लोक के तट्ट (स्थालरूप

---

१ प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक ७४-७५

२ पाठान्तर—तीसु वि लोगस्स असखेज्जतिभागे

३ पाठान्तर—दोसुड्ढक्क

स्थान) मे एव समुद्घात की अपेक्षा से—सर्वलोक मे तथा स्वस्थान की अपेक्षा से लोक के असख्यातवे भाग मे होते है।

१५६ कहि ण भते ! सुहुमतेउक्काइयाण पज्जत्तगाण अपज्जत्तगाण य ठाणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! सुहुमतेउकाइया जे पज्जत्तगा जे य अपज्जत्तगा ते सव्वे एगविहा अविसेसा अणाणत्ता सव्वलोयपरियावण्णगा पण्णत्ता समणाउसो ! ।

[१५६ प्र] भगवन् ! सूक्ष्म तेजस्कायिको के पर्याप्तको और अपर्याप्तको के स्थान कहाँ कहे गए है ?

[१५६ उ] गौतम ! सूक्ष्म तेजस्कायिक, जो पर्याप्त हैं और जो अपर्याप्त हे, वे सव एक ही प्रकार के है, अविशेष हैं, (उनमे विशेषता या भिन्नता नही है) उनमे नानात्व नही है, हे आयुष्मन् श्रमणो ! वे सर्वलोकव्यापी कहे गए है।

विवेचन—तेजस्कायिक के स्थान का निरूपण—प्रस्तुत तीन सूत्रो (सू १५४ से १५६ तक) मे बादर-सूक्ष्म के पर्याप्त एव अपर्याप्त तेजस्कायिको के स्वस्थान, उपपातस्थान एव समुद्घातस्थान की प्ररूपणा की गई है।

बादर तेजस्कायिक पर्याप्तको के स्थान—स्वस्थान की अपेक्षा से—वे मनुष्यक्षेत्र के अन्दर-अन्दर है। अर्थात्—मनुष्यक्षेत्र के अन्तर्गत ढाई द्वीपो एव दो समुद्रो मे हैं। व्याघाताभाव से वे पाच भरत, पाच ऐरवत और पाच महाविदेह इन पन्द्रह कर्मभूमियो मे होते है, और व्याघात होने पर पाच महाविदेह क्षेत्रो मे होते हैं। तात्पर्य यह है कि अत्यन्तस्निग्ध या अत्यन्तरूक्ष काल व्याघात कहलाता है। इस प्रकार के व्याघात के होने पर अग्नि का विच्छेद हो जाता है। जब पाच भरत पाच ऐरवत क्षेत्रो मे सुषम-सुषम, सुषम, तथा सुषम-दुष्षम आरा प्रवृत्त होता है, तब वह अतिस्निग्ध काल कहलाता है। उधर दुष्षम-दुष्षम आरा अतिरूक्ष काल कहलाता है। ये दोनो प्रकार के काल हो तो व्याघात—अग्निविच्छेद होता है। अगर ऐसी व्याघात की स्थिति हो तो पचमहाविदेह क्षेत्रो मे ही बादर तेजस्कायिक पर्याप्तक जीव होते है। अगर इस प्रकार के व्याघात से रहित काल हो तो पन्द्रह ही कर्मभूमिक क्षेत्रो मे बादर तेजस्कायिक पर्याप्तक जीव होते है।

विग्रहगति मे यथोक्त स्वस्थान-प्राप्ति के अभिमुख—उपपात अवस्था मे स्थान का विचार करने पर ये लोक के असख्यातवे भाग मे ही होते है, क्योकि उपपात के समय वे बहुत थोडे होते है। समुद्घात की अपेक्षा से विचार करे तो मारणान्तिक समुद्घातवश दण्डरूप मे आत्म-प्रदेशो को फैलाने पर भी वे थोडे होने से लोक के असख्यातवे भाग मे ही समा जाते है। स्वस्थान की अपेक्षा से भी वे लोक के असख्यातवे भाग मे होते है। क्योकि मनुष्यक्षेत्र कुल ४५ लाख योजनप्रमाण लम्बा-चौडा है, जो कि लोक का असख्यातवा भागमात्र है।[1]

बादर तेजस्कायिक अपर्याप्तको के स्थान—पर्याप्तको के आश्रय से ही अपर्याप्त जीव रहते हैं, इस दृष्टि से जहाँ पर्याप्तको के स्थान हैं, वही अपर्याप्तको के है। उपपात की अपेक्षा से लोक के दो ऊर्ध्वकपाटो मे तथा तिर्यग्लोकतट्ट मे बादर तेजस्कायिक अपर्याप्तक रहते है। आशय यह है

---

१ प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक ७५

कि अढाई द्वीप-समुद्रो से निकले हुए, अढाई द्वीप-समुद्रप्रमाण विस्तृत एव पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर मे स्वयम्भूरमण समुद्रपर्यन्त जो दो कपाट है, वे केवलिसमुद्घातसमय के कपाट की तरह ऊपर भी लोक के अन्त को स्पृष्ट (छुए हुए) है और नीचे भी लोकान्त को स्पृष्ट (छुए हुए) है, ये ही 'दो ऊर्ध्वकपाट' कहलाते है। इसके अतिरिक्त तट्ट का अर्थ है—स्थाल (थाल)। अर्थात्—स्थालसदृश तिर्यग्लोकरूप तट्ट (स्थाल) कहलाता है। आशय यह है कि स्वयम्भूरमणसमुद्र की वेदिकापर्यन्त अठारह सौ योजन मोटा समस्त तिर्यग्लोकरूप तट्ट (स्थाल) है।

निष्कर्ष यह है कि उपपात की अपेक्षा से लोक के दो ऊर्ध्वकपाटो एव तिर्यग्लोकरूप तट्ट मे बादर तेजस्कायिक अपर्याप्तक जीवो के स्थान हैं।

'लोयस्स दोसुद्धकवाडेसु तिरियलोयतट्ठे' इस पाठान्तर के अनुसार यह अर्थ भी हो सकता है—लोक के उन दोनो ऊर्ध्वकपाटो मे जो स्थित हो, वह तट्ठ—'तत्स्थ'। इस प्रकार—तिर्यग्लोक रूप तत्स्थ मे—अर्थात्—उन दो ऊर्ध्वकपाटो के अदर स्थित तिर्यग्लोक मे वे होते हैं। निष्कर्ष यह हुआ कि पूर्वोक्त दोनो ऊर्ध्वकपाटो मे और तिर्यग्लोक मे भी (स्थित) उन्ही कपाटो मे अपर्याप्त बादर तेजस्कायिकजीवो का उपपातस्थान है, अन्यत्र नही।

अभिमुखनामगोत्र अपर्याप्त बादरतेजस्कायिक का प्रस्तुत अधिकार—यहाँ यह समझ लेना चाहिए कि बादर अपर्याप्तक-तेजस्कायिक तीन प्रकार के होते है—

(१) एकभविक, (२) बद्धायुष्क और (३) अभिमुखनामगोत्र। जो जीव एक विवक्षित भव के अनन्तर आगामी भव मे बादर अपर्याप्त-तेजस्कायिकरूप मे उत्पन्न होगे वे **एकभविक** कहलाते है, जो जीव पूर्वभव की आयु का त्रिभाग आदि समय शेष रहते बादर अपर्याप्त-तेजस्कायिक की आयु बाध चुके है, वे **बद्धायुष्क** कहलाते है और जो पूर्वभव को छोडने के पश्चात् बादर अपर्याप्त-तेजस्कायिक की आयु, नाम और गोत्र का साक्षात् वेदन (अनुभव) कर रहे है, अर्थात् बादर अपर्याप्त-तेजस्कायिक-पर्याय का अनुभव कर रहे है, वे **'अभिमुखनामगोत्र'** कहलाते है। इन तीन प्रकार के बादर अपर्याप्त-तेजस्कायिको मे से प्रथम के दो—एकभविक और बद्धायुष्क—द्रव्यनिक्षेप से ही बादर अपर्याप्त-तेजस्कायिक हैं, भावनिक्षेप से नही, क्योकि ये दोनो उस समय आयु, नाम और गोत्र का वेदन नही करते, अतएव यहाँ इन दोनो का अधिकार नही है, किन्तु यहाँ केवल अभिमुख-नामगोत्र बादर अपर्याप्तक-तेजस्कायिको का ही अधिकार समझना चाहिए, क्योकि वे ही स्वस्थान-प्राप्ति के आभिमुख्यरूप उपपात को प्राप्त करते है। यद्यपि ऋजुसूत्रनय की दृष्टि से वे भी बादर अपर्याप्त-तेजस्कायिक के आयुष्य, नाम एव गोत्र का वेदन करने के कारण पूर्वोक्त कपाटयुगल-तिर्यग्लोक के बाहर स्थित होते हुए भी बादर अपर्याप्त-तेजस्कायिक नाम को प्राप्त कर लेते है, तथापि यहाँ व्यवहारनय की दृष्टि को स्वीकार करने के कारण जो स्वस्थान मे समश्रेणिक कपाट-युगल मे स्थित है, और जो स्वस्थान से अनुगत तिर्यग्लोक मे प्रविष्ट है, उन्ही को बादर अपर्याप्त-तेजस्कायिक नाम से कहा जाता है, शेष जो कपाटो के अन्तराल मे स्थित हैं, उनका नही, क्योकि वे विषमस्थानवर्ती है। इस प्रकार जो अभी तक उक्त कपाटयुगल मे प्रवेश नही करते और न तिर्यग्लोक मे प्रविष्ट होते है, वे अभी पूर्वभव मे ही स्थित है, अतएव उनकी गणना बादर अपर्याप्त-तेजस्कायिको मे नही की जाती। कहा भी है—

पणयाललक्खपिहुला दुन्नि कवाडा य छद्दिसिं पुट्ठा।
लोगते तेसिऽतो जे तेऊ ते उ घिप्पंति॥

अर्थात्—पैंतालीस लाख योजन चौडे दो कपाट है, जो छहो दिशाओ मे लोकान्त का स्पर्श करते हैं। उनके अन्दर-अन्दर जो तेजस्कायिक है, उन्ही का यहाँ ग्रहण किया जाता है।

इसकी स्थापना (आकृति) इस प्रकार है—

अत इस सूत्र की व्याख्या व्यवहारनय की दृष्टि से की गई है।
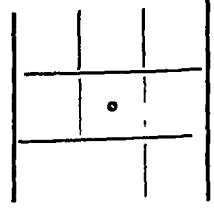
समुद्घात की अपेक्षा से बादर अपर्याप्त-तेजस्कायिको का स्थान—समुद्घात की दृष्टि से ये सर्वलोक मे होते हैं। इसका आशय यो समझना चाहिए—पूर्वोक्तस्वरूप वाले दोनो कपाटो के मध्य (अपान्तरालो) मे जो सूक्ष्मपृथ्वीकायिकादि जीव है, वे बादर अपर्याप्त-तेजस्कायिको मे उत्पन्न होते हुए मारणान्तिक समुद्घात करते हैं, उस समय वे विस्तार और मोटाई मे शरीरप्रमाण और लम्बाई मे उत्कृष्टत लोकान्त तक अपने आत्मप्रदेशो को बाहर फैलाते है। जैसा कि अवगाहनासस्थानपद मे आगे कहा जाएगा—

*[प्र] भगवन्! मारणान्तिक समुद्घात किये हुए पृथ्वीकायिक के तैजसशरीर की शारीरिक अवगाहना कितनी बडी होती है?

[उ] गौतम! (उन की शरीरावगाहना) विस्तार और मोटाई की अपेक्षा से शरीरप्रमाण होती है, और लम्बाई की अपेक्षा से जघन्य अगुल के असख्यातवे भाग और उत्कृष्ट लोकान्तप्रमाण होती है।

उसके पश्चात् वे सूक्ष्म पृथ्वीकायिक आदि अपने उत्पत्तिदेश तक दण्डरूप मे आत्मप्रदेशो को फैलाते है और अपान्तरालगति (विग्रहगति) मे वर्तमान होते हुए वे बादर अपर्याप्तक-तेजस्कायिक की आयु का वेदन करने के कारण बादर अपर्याप्त-तेजस्कायिक नाम को धारण करते हैं। वे समुद्घात अवस्था मे ही विग्रहगति मे विद्यमान होते हैं तथा समुद्घात-गत जीव समस्त लोक को व्याप्त करते हैं। इस दृष्टि से समुद्घात की अपेक्षा से इन्हे सर्वलोकव्यापी कहा गया है।

दूसरे आचार्यो का कहना है—बादर अपर्याप्त-तेजस्कायिक जीव सख्या मे बहुत-अधिक होते हैं, क्योकि एक-एक पर्याप्त के आश्रय से असख्यात अपर्याप्तो की उत्पत्ति होती है। वे सूक्ष्मो मे भी उत्पन्न होते हैं और सूक्ष्म तो सर्वत्र विद्यमान है। इसलिए बादर अपर्याप्तक-तेजस्कायिक अपने-अपने भव के अन्त मे मारणान्तिक समुद्घात करते हुए समस्त लोक को आपूरित करते हैं। इसलिए इन्हे समग्र की दृष्टि से, समुद्घात की अपेक्षा सकललोकव्यापी कहने मे कोई दोष नही है।[1]

स्वस्थान की अपेक्षा से बादर अपर्याप्तक-तेजस्कायिक—लोक के असख्यातवे भाग मे होते है, क्योकि पर्याप्तो के आश्रय से अपर्याप्तो की उत्पत्ति होती है। पर्याप्तो का स्थान मनुष्यक्षेत्र है, जो कि सम्पूर्ण लोक का असख्यातवा भागमात्र है। इसलिए इन्हे लोक के असख्यातवे भाग मे कहना उचित ही है।

---

* 'पुढवीकाइयस्स ण भते! मारणतियसमुग्घाएण समोहयस्स तेयासरीरस्स के महालिया सरीरोगाहणा प?' 'गोयमा! सरीरपमाणमेत्तविक्खभबाहल्लेण, आयामेण जहन्नेण अगुलस्स असखेज्जइभागे, उक्कोसेण लोगतो।'

—प्रज्ञापना म वृत्ति, पत्राक ७६ मे उद्धृत

१ प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति पत्राक ७५ से ७७ तक

वायुकायिको के स्थानो का निरूपण—

१५७ कहि ण भते ! बादरवाउकाइयाण पज्जत्तगाण ठाणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! सट्ठाणेण सत्तसु घणवाएसु सत्तसु घणवायवलएसु सत्तसु तणुवाएसु सत्तसु तणुवायवलएसु १।

अहोलोए पायालेसु भवणेसु भवणपत्थडेसु भवणछिद्देसु भवणणिक्खुडेसु निरएसु निरयावलियासु णिरयपत्थडेसु णिरयछिद्देसु णिरयणिक्खुडेसु २।

उड्ढलोए कप्पेसु विमाणेसु विमाणावलियासु विमाणपत्थडेसु विमाणछिद्देसु विमाणणिक्खुडेसु ३।

तिरियलोए पाईण-पडीण-दाहिण-उदीण सव्वेसु चेव लोगागासछिद्देसु लोगनिक्खुडेसु य ४।

एत्थ ण बायरवाउकाइयाण पज्जत्तगाण ठाणा पन्नत्ता।

उववाएण लोयस्स असखेज्जेसु भागेसु, समुग्घाएण लोयस्स असंखेज्जेसु भागेसु, सट्ठाणेण लोयस्स असखेज्जेसु भागेसु।

[१५७ प्र] भगवन् ! बादर वायुकायिक-पर्याप्तको के स्थान कहाँ (-कहाँ) कहे गए है ?

[१७५ उ] १—गौतम ! स्वस्थान की अपेक्षा से सात घनवातो मे, सात घनवातवलयो मे, सात तनुवातो मे और सात तनुवातवलयो मे (वे होते है।)

२ अधोलोक मे—पातालो मे, भवनो मे, भवनो के प्रस्तटो (पाथडो) मे, भवनो के छिद्रो मे, भवनो के निष्कुट प्रदेशो मे नरको मे, नरकावलियो मे, नरको के प्रस्तटो मे, छिद्रो मे और नरको के निष्कुट-प्रदेशो मे (वे हैं।)

३ ऊर्ध्वलोक मे—(वे) कल्पो मे, विमानो मे, आवली (पक्ति) बद्ध विमानो मे, विमानो के प्रस्तटो (पाथडो—बीच के भागो) मे, विमानो के छिद्रो मे, विमानो के निष्कुट-प्रदेशो मे (है।)

४ तिर्यग्लोक मे—(वे) पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर मे समस्त लोकाकाश के छिद्रो मे, तथा लोक के निष्कुट-प्रदेशो मे, इन (पूर्वोक्त सभी स्थलो) मे बादर वायुकायिक-पर्याप्तक जीव के स्थान कहे गए हैं।

उपपात की अपेक्षा से—लोक के असख्येयभागो मे, समुद्घात की अपेक्षा से—लोक के असख्येयभागो मे, तथा स्वस्थान की अपेक्षा से लोक के असख्येयभागो मे (बादर वायुकायिक-पर्याप्तक जीवो के स्थान है।

१५८ कहि ण भते अपज्जत्तबादरवाउकाइयाण ठाणा पन्नत्ता ?

गोयमा ! जत्थेव बादरवाउक्काइयाण पज्जत्तगाण ठाणा तत्थेव बादरवाउकाइयाण अपज्जत्तगाण ठाणा पण्णत्ता।

उववाएण सव्वलोए, समुग्घाएण सव्वलोए, सट्ठाणेण लोयस्स असंखेज्जेसु भागेसु।

[१५८ प्र] भगवन् ! अपर्याप्त-बादर-वायुकायिको के स्थान कहाँ (-कहाँ) कहे गए है ?

[१५८ उ] गौतम ! जहाँ बादर-वायुकायिक-पर्याप्तकों के स्थान हैं, वहीं बादर-वायुकायिक-अपर्याप्तकों के स्थान कहे गए हैं ।

उपपात की अपेक्षा से (वे) सर्वलोक में है, समुद्घात की अपेक्षा से—(वे) सर्वलोक में हैं, और स्वस्थान की अपेक्षा से (वे) लोक के असख्यात भागों में हैं ।

१५९ कहि णं भंते ! सुहुमवाउकाइयाणं पज्जत्तगाणं अपज्जत्तगाणं ठाणा पन्नत्ता ?

गोयमा ! सुहुमवाउकाइया जे य पज्जत्तगा जे य अपज्जत्तगा ते सव्वे एगविहा अविसेसा अणाणत्ता सव्वलोयपरियावण्णगा पण्णत्ता समणाउसो ! ।

[१५९ प्र] भगवन् ! सूक्ष्मवायुकायिकों के पर्याप्तों और अपर्याप्तों के स्थान कहाँ कहे गए हैं ?

[१५९ उ] गौतम ! सूक्ष्मवायुकायिक, जो पर्याप्त है और जो अपर्याप्त हैं, वे सब एक ही प्रकार के है, अविशेष (विशेषता या भेद से रहित) हे, नानात्व से रहित है और हे आयुष्मन् श्रमणो ! वे सर्वलोक में परिव्याप्त हैं ।

विवेचन—वायुकायिकों के स्थानों का निरूपण—प्रस्तुत तीन सूत्रों (सू १५७ से १५९ तक) में वायुकायिक जीवों के बादर, सूक्ष्म और उनके पर्याप्तकों-अपर्याप्तकों के स्थानों का निरूपण तीनों अपेक्षाओं से किया गया है ।

'भवणछिद्देसु' 'भवणणिक्खुडेसु' आदि पदों के विशेषार्थ—**भवणछिद्देसु**=भवनपतिदेवों के भवनों के छिद्रों—अवकाशान्तरों में । **'भवणणिक्खुडेसु'**=भवनों के निष्कुटों अर्थात् गवाक्ष आदि के समान भवनप्रदेशों में । **णिरयणिक्खुडेसु**=नरकों के निष्कुटों यानी गवाक्ष आदि के समान नरकावास प्रदेशों में ।[1]

पर्याप्त बादरवायुकायिक उपपात आदि तीनों की अपेक्षा से—ये तीनों की अपेक्षा से लोक के असख्यात भागों में हैं, क्योंकि जहाँ भी खाली जगह है—पोल है, वहाँ वायु बहती है । लोक में खाली जगह (पोल) बहुत है । इसलिए पर्याप्त वायुकायिक जीव बहुत अधिक है । इस कारण उपपात, समुद्घात और स्वस्थान इन तीनों अपेक्षाओं में बादर पर्याप्तवायुकायिक लोक के असख्येय भागों में कहे हैं ।

अपर्याप्त बादरवायुकायिकों के स्थान—उपपात और समुद्घात की अपेक्षा से अपर्याप्त बादरवायुकायिक जीव सर्वलोक में व्याप्त है, क्योंकि देवों और नारकों को छोड कर शेष सभी कायों से जीव बादर अपर्याप्तवायुकायिकों में उत्पन्न होते हैं । विग्रहगति में भी बादर अपर्याप्तवायुकायिक पाए जाते है तथा उनके बहुत-से स्वस्थान है । अतएव व्यवहारनय की दृष्टि से भी उपपात को लेकर बादरप र्याप्त-अपर्याप्तवायुकायिकों की सकललोकव्यापिता में कोई बाधा नहीं है । समुद्घात की अपेक्षा से उनकी समग्रलोकव्यापिता प्रसिद्ध ही है, क्योंकि समस्त सूक्ष्म जीवों में और लोक में सर्वत्र वे उत्पन्न हो सकते है । स्वस्थान की अपेक्षा से बादर-अपर्याप्तवायुकायिकजीव लोक के असख्येय-भागों में होते है, यह पहले बतलाया जा चुका है ।[2]

---

१ प्रज्ञापनासूत्र, मलय वृत्ति, पत्राक ७८

२ प्रज्ञापनासूत्र, मलय वृत्ति, पत्राक ७८

वनस्पतिकायिकों के स्थानों का निरूपण—

१६० कहि णं भंते ! बादरवणस्सइकाइयाणं पज्जत्तगाणं ठाणा पन्नत्ता ?

गोयमा ! सट्ठाणेण सत्तसु घणोदहीसु सत्तसु घणोदहिवलएसु १।

अहोलोए पायालेसु भवणेसु भवणपत्थडेसु २।

उड्ढलोए कप्पेसु विमाणेसु विमाणावलियासु विमाणपत्थडेसु ३।

तिरियलोए अगडेसु तडागेसु नदीसु दहेसु वावीसु पुक्खरिणीसु दीहियासु गुंजालियासु सरेसु सरपंतियासु सरसरपंतियासु बिलेसु बिलपंतियासु उज्झरेसु निज्झरेसु चिल्ललेसु पल्ललेसु वप्पिणेसु दीवेसु समुद्देसु सव्वेसु चेव जलासएसु जलट्ठाणेसु ४।

एत्थ णं बादरवणस्सइकाइयाणं पज्जत्तगाणं ठाणा पन्नत्ता।

उववाएणं सव्वलोए, समुग्घाएणं सव्वलोए, सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेज्जइभागे।

[१६० प्र.] भगवन् ! बादर वनस्पतिकायिक-पर्याप्तक जीवों के स्थान कहाँ (-कहाँ) कहे गए हैं ?

[१६० उ.] गौतम ! १—स्वस्थान की अपेक्षा से—सात घनोदधियों में और सात घनोदधिवलयों में (हैं।)

२—अधोलोक में—पातालों में, भवनों में और भवनों के प्रस्तटों (पाथडों) में (हैं।)

३—ऊर्ध्वलोक में—कल्पों में, विमानों में, आवलिकाबद्ध विमानों में और विमानों के प्रस्तटों (पाथडों) में (वे हैं।)

४—तिर्यग्लोक में—कुंओं में, तालाबों में, नदियों में, ह्रदों में, वापियों (चौरस बावडियों) में, पुष्करिणियों में, दीर्घिकाओं में, गुंजालिकाओं (वक्र—टेढीमेढी बावडियों) में, सरोवरों में, पंक्तिबद्धसरोवरों में, सर-सर-पंक्तियों में, बिलों (स्वाभाविकरूप से बनी हुई कुइयों) में, पंक्तिबद्ध बिलों में, उझंरों (पर्वतीयजल के अस्थायी प्रवाहों) में, निर्झरों (झरनों) में, तलैयों में, पोखरों में, क्षेत्रों (खेतों या क्यारियों) में, द्वीपों में, समुद्रों में और सभी जलाशयों में तथा जल के स्थानों में, इन (सभी स्थलों) में बादर वनस्पतिकायिक-पर्याप्तक जीवों के स्थान कहे गए हैं।

उपपात की अपेक्षा से (ये) सर्वलोक में हैं, समुद्घात की अपेक्षा से सर्वलोक में हैं और स्वस्थान की अपेक्षा से (ये) लोक के असंख्यातवें भाग में हैं।

१६१ कहि णं भंते ! बादरवणस्सइकाइयाणं अपज्जत्तगाणं ठाणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! जत्थेव बादरवणस्सइकाइयाणं पज्जत्तगाणं ठाणा तत्थेव बादरवणस्सइकाइयाणं अपज्जत्तगाणं ठाणा पण्णत्ता।

उववाएणं सव्वलोए, समुग्घाएणं सव्वलोए, सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेज्जइभागे।

[१६१ प्र.] भगवन् ! बादर वनस्पतिकायिक-अपर्याप्तकों के स्थान कहाँ (-कहाँ) कहे गए हैं ?

[१६१ उ] गौतम ! जहाँ बादर वनस्पतिकायिक-पर्याप्तको के स्थान हैं, वही बादर वनस्पतिकायिक-अपर्याप्तको के स्थान कहे गए है ।

उपपात की अपेक्षा से—(वे) सर्वलोक मे है, समुद्घात की अपेक्षा से (भी) सर्वलोक मे हैं, (किन्तु) स्वस्थान की अपेक्षा से लोक के असख्यातवे भाग मे है ।

१६२. कहि ण भते ! सुहुमवणस्सइकाइयाणं पज्जत्तगाण अपज्जत्तगाण य ठाणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! सुहुमवणस्सइकाइया जे य पज्जत्तगा जे य अपज्जत्तगा ते सव्वे एगविहा अविसेसा अणाणत्ता सव्वलोयपरियावण्णगा पण्णत्ता समणाउसो ! ।

[१६२ प्र] भगवन् ! सूक्ष्मवनस्पतिकायिको के पर्याप्तको एव अपर्याप्तको के स्थान कहाँ (-कहाँ) कहे गए है ?

[१६२ उ] गौतम ! सूक्ष्मवनस्पतिकायिक, जो पर्याप्त हैं और जो अपर्याप्त हैं, वे सब एक ही प्रकार के है, विशेषता से रहित है, नानात्व से भी रहित है और हे आयुष्मन् श्रमणो ! वे सर्वलोक मे व्याप्त कहे गए हैं ।

विवेचन—वनस्पतिकायिको के स्थानो की प्ररूपणा—प्रस्तुत तीन सूत्रो मे वादर-सूक्ष्म वनस्पतिकायिको के पर्याप्तक-अपर्याप्तक-भेदो के स्वस्थान, उपपातस्थान और समुद्घातस्थान की प्ररूपणा की गई है ।

पर्याप्त-बादरवनस्पतिकायिको के स्थान—जहाँ जल होता है, वहाँ वनस्पति अवश्य होती है, इस दृष्टि से समस्त जलस्थानो मे पर्याप्त वादरवनस्पतिकायिक जीव होते है । उपपात की अपेक्षा से वे सर्वलोक मे है, क्योकि उनके स्वस्थान घनोदधि आदि है, उनमे शैवाल आदि वादरनिगोद के जीव होते है । सूक्ष्मनिगोद जीवो की भवस्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की ही होती है, तत्पश्चात् वे वादर पर्याप्तनिगोदो मे उत्पन्न होकर वादर निगोदपर्याप्त की आयु का वेदन करते हुए सुविशुद्ध ऋजुसूत्रनय की अपेक्षा से वादर पर्याप्तवनस्पतिकायिक नाम पा लेते है, उपपात की अपेक्षा से (वे) समस्त काल और समस्त लोक को व्याप्त कर लेते है ।

समुद्घात की अपेक्षा से भी वे सर्वलोक मे व्याप्त है, क्योकि जब वादरनिगोद सूक्ष्मनिगोदसम्बन्धी आयु का बन्ध करके और आयु के अन्त मे मारणान्तिकसमुद्घात करके आत्मप्रदेशो को उत्पत्तिदेश तक फैलाते हैं, तव तक उनकी पर्याप्तबादरनिगोद की आयु क्षीण नही होती । अतएव वे उस समय भी वादर पर्याप्तनिगोद ही रहते है और समुद्घातावस्था मे वे समस्तलोक मे व्याप्त होते हैं । इस दृष्टि से कहा गया है कि वादर पर्याप्तवनस्पतिकायिक समुद्घात की अपेक्षा से सर्वलोक मे व्याप्त होते है ।

स्वस्थान की अपेक्षा से वे लोक के असख्यातवे भाग मे होते है, क्योकि घनोदधि आदि पूर्वोक्त सभी स्थान मिल कर भी लोक के असख्यातवे भागमात्र मे ही है ।[1]

---

१ प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक ७८

द्वि-त्रि-चतुरिन्द्रिय-सामान्य पंचेन्द्रियों के स्थानो की प्ररूपणा—

१६३ कहि ण भंते ! बेइंदियाण पज्जत्तगाऽपज्जत्तगाण ठाणा पन्नत्ता ?

गोयमा ! उड्ढलोए तदेक्कदेसभागे १, अहोलोए तदेक्कदेसभाए २, तिरियलोए अगडेसु तलाएसु नदीसु दहेसु वावीसु पुक्खरिणीसु दीहियासु गुंजालियासु सरेसु सरपंतियासु सरसरपंतियासु बिलेसु बिलपंतियासु उज्झरेसु निज्झरेसु चिल्ललेसु पल्ललेसु वप्पिणेसु दीवेसु समुद्देसु सव्वेसु चेव जलासएसु जलट्ठाणेसु ३, एत्थ ण बेइंदियाण पज्जत्ताऽपज्जत्ताण ठाणा पण्णत्ता ।

उववाएण लोगस्स असंखेज्जइभागे, समुग्घाएण लोयस्स असंखेज्जइभागे, सट्ठाणेण लोयस्स असंखेज्जइभागे ।

[१६३ प्र] भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त द्वीन्द्रिय जीवो के स्थान कहाँ(-कहाँ)कहे गए हैं ?

[१६३ उ] गौतम ! १ ऊर्ध्वलोक मे—उसके एकदेशभाग मे (वे) होते हे, २ अधोलोक मे—उसके एकदेशभाग मे (होते है), ३ तिर्यग्लोक मे–कुओ मे, तालावो मे, नदियो मे, ह्रदो मे, वापियो (बावडियो) मे, पुष्करिणियो मे, दीर्घिकाओ मे, गुंजालिकाओ मे, सरोवरो मे, पक्तिबद्ध सरोवरो मे, सर-सर-पक्तियो मे, बिलो मे, पक्तिबद्ध बिलो मे, पर्वतीय जलप्रवाहो मे, निर्झरो मे, तलैयो मे, पोखरो मे, वप्रो (खेतो या क्यारियो) मे, द्वीपो मे, समुद्रो मे और सभी जलाशयो मे तथा समस्त जलस्थानो मे द्वीन्द्रिय पर्याप्तक और अपर्याप्तक जीवो के स्थान कहे गए हैं ।

उपपात की अपेक्षा से (वे) लोक के असख्यातवे भाग मे होते हे, समुद्घात की अपेक्षा से (भी वे) लोक के असख्यातवे भाग मे होते हे और स्वस्थान की अपेक्षा से (भी वे) लोक के असख्यातवे भाग मे होते हे ।

१६४ कहि ण भंते ! तेइंदियाण पज्जत्ताऽपज्जत्ताण ठाणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! उड्ढलोए तदेक्कदेसभाए १, अहोलोए तदेक्कदेसभाए २ तिरियलोए अगडेसु तलाएसु नदीसु दहेसु वावीसु पुक्खरिणीसु दीहियासु गुंजालियासु सरेसु सरपंतियासु सरसरपंतियासु बिलेसु बिलपंतियासु उज्झरेसु निज्झरेसु चिल्ललेसु पल्ललेसु वप्पिणेसु दीवेसु समुद्देसु सव्वेसु चेव जलासएसु जलट्ठाणेसु ३, एत्थ ण तेइंदियाण पज्जत्ताऽपज्जत्ताण ठाणा पण्णत्ता ।

उववाएण लोयस्स असंखेज्जइभागे, समुग्घाएण लोयस्स असंखेज्जइभागे, सट्ठाणेण लोयस्स असंखेज्जइभागे ।

[१६४ प्र] भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त त्रीन्द्रिय जीवो के स्थान कहाँ(-कहाँ) कहे गए हे ?

[१६४ उ.] गौतम ! १ ऊर्ध्वलोक मे—उसके एकदेशभाग मे (होते हे), २ अधोलोक मे—उसके एकदेशभाग मे (होते है), ३ तिर्यग्लोक मे—कुओ मे, तालाबो मे, नदियो मे, ह्रदो मे, वापियो मे, पक्तिबद्ध सरोवरो मे, सर-सर-पक्तियो मे, बिलो मे, बिलपक्तियो मे, पर्वतीय जलप्रवाहो मे, निर्झरो मे, तलैयो (छोटे गड्ढो) मे, पोखरो मे, वप्रो (खेतो या क्यारियो) मे, द्वीपो मे, समुद्रो मे और सभी जलाशयो मे तथा समस्त जलस्थानो मे, इन (सभी स्थानो) मे पर्याप्तक और अपर्याप्तक त्रीन्द्रिय जीवो के स्थान कहे गए है ।

[१६१ उ] गौतम ! जहाँ बादर वनस्पतिकायिक-पर्याप्तको के स्थान है, वही बादर वनस्पतिकायिक-अपर्याप्तको के स्थान कहे गए है ।

उपपात की अपेक्षा से—(वे) सर्वलोक मे है, समुद्घात की अपेक्षा से (भी) सर्वलोक मे हे, (किन्तु) स्वस्थान की अपेक्षा से लोक के असख्यातवे भाग मे है ।

१६२. कहि ण भते ! सुहुमवणस्सइकाइयाण पज्जत्तगाण अपज्जत्तगाण य ठाणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! सुहुमवणस्सइकाइया जे य पज्जत्तगा जे य अपज्जत्तगा ते सव्वे एगविहा अविसेसा अणाणत्ता सव्वलोयपरियावण्णगा पण्णत्ता समणाउसो ! ।

[१६२ प्र] भगवन् ! सूक्ष्मवनस्पतिकायिको के पर्याप्तको एव अपर्याप्तको के स्थान कहाँ (-कहाँ) कहे गए है ?

[१६२ उ] गौतम ! सूक्ष्मवनस्पतिकायिक, जो पर्याप्त है और जो अपर्याप्त है, वे सव एक ही प्रकार के है, विशेषता से रहित है, नानात्व से भी रहित है और हे आयुष्मन् श्रमणो ! वे सर्वलोक मे व्याप्त कहे गए है ।

विवेचन—वनस्पतिकायिको के स्थानो की प्ररूपणा—प्रस्तुत तीन सूत्रो मे बादर-सूक्ष्म वनस्पतिकायिको के पर्याप्तक-अपर्याप्तक-भेदो के स्वस्थान, उपपातस्थान और समुद्घातस्थान की प्ररूपणा की गई है ।

पर्याप्त-बादरवनस्पतिकायिको के स्थान—जहाँ जल होता है, वहाँ वनस्पति अवश्य होती है, इस दृष्टि से समस्त जलस्थानो मे पर्याप्त बादरवनस्पतिकायिक जीव होते है । उपपात की अपेक्षा से वे सर्वलोक मे है, क्योकि उनके स्वस्थान घनोदधि आदि है, उनमे शैवाल आदि बादरनिगोद के जीव होते है । सूक्ष्मनिगोद जीवो की भवस्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की ही होती है, तत्पश्चात् वे बादर पर्याप्तनिगोदो मे उत्पन्न होकर बादर निगोदपर्याप्त की आयु का वेदन करते हुए सुविशुद्ध ऋजुसूत्रनय की अपेक्षा से बादर पर्याप्तवनस्पतिकायिक नाम पा लेते है, उपपात की अपेक्षा से (वे) समस्त काल और समस्त लोक को व्याप्त कर लेते है ।

समुद्घात की अपेक्षा से भी वे सर्वलोक मे व्याप्त है, क्योकि जब बादरनिगोद सूक्ष्मनिगोद-सम्बन्धी आयु का बन्ध करके और आयु के अन्त मे मारणान्तिकसमुद्घात करके आत्मप्रदेशो को उत्पत्तिदेश तक फैलाते है, तब तक उनकी पर्याप्तबादरनिगोद की आयु क्षीण नही होती । अतएव वे उस समय भी बादर पर्याप्तनिगोद ही रहते है और समुद्घातावस्था मे वे समस्तलोक मे व्याप्त होते है । इस दृष्टि से कहा गया है कि बादर पर्याप्तवनस्पतिकायिक समुद्घात की अपेक्षा से सर्वलोक मे व्याप्त होते है ।

स्वस्थान की अपेक्षा से वे लोक के असख्यातवे भाग मे होते है, क्योकि घनोदधि आदि पूर्वोक्त सभी स्थान मिल कर भी लोक के असख्यातवे भागमात्र मे ही है ।[1]

---

१ प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्रांक ७८

द्वि-त्रि-चतुरिन्द्रिय-सामान्य पंचेन्द्रियो के स्थानो की प्ररूपणा—

१६३ कहि ण भते ! बेइंदियाणं पज्जत्तगाऽपज्जत्तगाण ठाणा पन्नत्ता ?

गोयमा ! उड्ढलोए तदेक्कदेसभागे १, अहोलोए तदेक्कदेसभाए २, तिरियलोए अगडेसु तलाएसु नदीसु दहेसु वावीसु पुक्खरिणीसु दीहियासु गुंजालियासु सरेसु सरपंतियासु सरसरपंतियासु बिलेसु बिलपंतियासु उज्झरेसु निज्झरेसु चिल्ललेसु पल्ललेसु वप्पिणेसु दीवेसु समुद्देसु सव्वेसु चेव जलासएसु जलट्ठाणेसु ३, एत्थ ण बेइंदियाण पज्जत्ताऽपज्जत्ताण ठाणा पण्णत्ता ।

उववाएणं लोगस्स असखेज्जइभागे, समुग्घाएण लोयस्स असखेज्जइभागे, सट्ठाणेण लोयस्स असखेज्जइभागे ।

[१६३ प्र] भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त द्वीन्द्रिय जीवो के स्थान कहाँ(-कहाँ)कहे गए है ?

[१६३ उ] गौतम ! १ ऊर्ध्वलोक मे—उसके एकदेशभाग मे (वे) होते है, २ अधोलोक मे—उसके एकदेशभाग मे (होते है), ३ तिर्यग्लोक मे—कुंओ मे, तालावो मे, नदियो मे, ह्रदो मे, वापियो (बावडियो) मे, पुष्करिणियो मे, दीर्घिकाओ मे, गुंजालिकाओ मे, सरोवरो मे, पंक्तिबद्ध सरोवरो मे, सर-सर-पंक्तियो मे, बिलो मे, पंक्तिबद्ध बिलो मे, पर्वतीय जलप्रवाहो मे, निर्भरो मे, तलैयो मे, पोखरो मे, वप्रो (खेतो या क्यारियो) मे, द्वीपो मे, समुद्रो मे और सभी जलाशयो मे तथा समस्त जलस्थानो मे द्वीन्द्रिय पर्याप्तक और अपर्याप्तक जीवो के स्थान कहे गए है ।

उपपात की अपेक्षा से (वे) लोक के असख्यातवे भाग मे होते है, समुद्घात की अपेक्षा से (भी वे) लोक के असख्यातवे भाग मे होते है और स्वस्थान की अपेक्षा से (भी वे) लोक के असख्यातवें भाग मे होते है ।

१६४ कहि ण भते ! तेइंदियाण पज्जत्ताऽपज्जत्ताण ठाणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! उड्ढलोए तदेक्कदेसभाए १, अहोलोए तदेक्कदेसभाए २ तिरियलोए अगडेसु तलाएसु नदीसु दहेसु वावीसु पुक्खरिणीसु दीहियासु गुंजालियासु सरेसु सरपंतियासु सरसरपंतियासु बिलेसु बिलपंतियासु उज्झरेसु निज्झरेसु चिल्ललेसु पल्ललेसु वप्पिणेसु दीवेसु समुद्देसु सव्वेसु चेव जलासएसु जलट्ठाणेसु ३, एत्थ ण तेइंदियाण पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ।

उववाएण लोयस्स असखेज्जइभागे, समुग्घाएण लोयस्स असखेज्जइभागे, सट्ठाणेण लोयस्स असखेज्जइभागे ।

[१६४ प्र] भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त त्रीन्द्रिय जीवो के स्थान कहाँ(-कहाँ) कहे गए है ?

[१६४ उ] गौतम ! १ ऊर्ध्वलोक मे—उसके एकदेशभाग मे (होते है), २ अधोलोक मे—उसके एकदेशभाग मे (होते है), ३ तिर्यग्लोक मे—कुंओ मे, तालाबो मे, नदियो मे, ह्रदो मे, वापियो मे, पंक्तिबद्ध सरोवरो मे, सर-सर-पंक्तियो मे, बिलो मे, बिलपंक्तियो मे, पर्वतीय जलप्रवाहो मे, निर्भरो मे, तलैयो (छोटे गड्ढो) मे, पोखरो मे, वप्रो (खेतो या क्यारियो) मे, द्वीपो मे, समुद्रो मे और सभी जलाशयो मे तथा समस्त जलस्थानो मे, इन (सभी स्थानो) मे पर्याप्तक और अपर्याप्तक त्रीन्द्रिय जीवो के स्थान कहे गए है ।

उपपात की अपेक्षा से—(वे) लोक के असख्यातवे भाग मे (होते है), समुद्घात की अपेक्षा से (वे) लोक के असख्यातवे भाग मे (होते है), और स्वस्थान की अपेक्षा से (भी वे) लोक के असख्यातवें भाग मे होते है ।

१६५ कहि ण भते ! चउरिंदियाण पज्जत्ताऽपज्जत्ताण ठाणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! उड्ढलोए तदेक्कदेसभाए १, अहोलोए तदेक्कदेसभाए २, तिरियलोए अगडेसु तलाएसु नदीसु दहेसु वावीसु पुक्खरिणीसु दीहियासु गु जालियासु सरेसु सरपतियासु सरसरपतियासु बिलेसु बिलपतियासु उज्झरेसु निज्झरेसु चिल्ललेसु पल्ललेसु वप्पिणेसु दीवेसु समुद्देसु सव्वेसु चेव जलासएसु जलट्ठाणेसु ३ ।

एत्थ ण चउरिंदियाण पज्जत्ताऽपज्जत्ताण ठाणा पन्नत्ता ।

उववाएण लोयस्स असखेज्जइभागे समुग्घाएण लोयस्स असखेज्जइभागे, सट्ठाणेण लोयस्स असंखेज्जइभागे ।

[१६५ प्र] भगवन् ! पर्याप्तक और अपर्याप्तक चतुरिन्द्रिय जीवो के स्थान कहाँ (-कहाँ) कहे गए है ?

[१६५ उ] गौतम ! १ (वे) उर्ध्वलोक मे—उसके एकदेशभाग मे (होते है), २ अधोलोक मे—उसके एकदेशभाग मे (होते है), ३ तिर्यग्लोक मे—कूपो मे, तालाबो मे, नदियो मे, ह्रदो मे, वापियो मे, पुष्करिणियो मे, दीर्घिकाओ मे, गु जालिकाओ मे, सरोवरो मे, पक्तिबद्ध सरोवरो मे, सर-सरपक्तियो मे, बिलो मे, पक्तिबद्ध बिलो मे, पर्वतीय जलस्रोतो मे, झरनो मे, छोटे गड्ढो मे, पोखरो मे, वप्रो (खेतो या क्यारियो) मे, द्वीपो मे, समुद्रो मे और समस्त जलाशयो मे तथा सभी जलस्थानो मे (होते है ।) इन (पूर्वोक्त सभी स्थलो) मे पर्याप्तक और अपर्याप्तक चतुरिन्द्रिय जीवो के स्थान कहे गए है ।

उपपात की अपेक्षा से—(वे) लोक के असख्यातवे भाग मे (होते है), समुद्घात की अपेक्षा से—लोक के असख्यातवे भाग मे (होते है), और स्वस्थान की अपेक्षा से (भी वे) लोक के असख्यातवें भाग मे (होते है) ।

१६६ कहि ण भते ! पंचिंदियाण पज्जत्ताऽपज्जत्ताण ठाणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! उड्ढलोए तदेक्कदेसभाए १, अहोलोए तदेक्कदेसभाए २, तिरियलोए अगडेसु तलाएसु नदीसु दहेसु वावीसु पुक्खरिणीसु दीहियासु गु जालियासु सरेसु सरपतियासु सरसरपतियासु बिलेसु बिलपतियासु उज्झरेसु निज्झरेसु चिल्ललेसु पल्ललेसु वप्पिणेसु दीवेसु समुद्देसु सव्वेसु चेव जलासएसु जलट्ठाणेसु ३, एत्थ ण पचेंदियाण पज्जत्ताऽपज्जत्ताण ठाणा पण्णत्ता ।

उववाएण लोयस्स असखेज्जइभागे समुग्घाएण लोयस्स असखेज्जइभागे, सट्ठाणेण लोयस्स असखेज्जइभागे ।

[१६६ प्र] भगवन् ! पर्याप्तक और अपर्याप्तक पचेन्द्रिय जीवो के स्थान कहाँ (-कहाँ) कहे गए है ?

[१६६ उ] गौतम ! १ (वे) ऊर्ध्वलोक मे—उसके एकदेशभाग मे (होते हैं), अधोलोक मे—उसके एकदेशभाग मे (होते हैं), और ३ तिर्यग्लोक मे—कुओ मे, तालावो मे, नदियो मे, ह्रदो मे, वापियो मे, पुष्करिणियो मे, दीर्घिकाओ मे, गुजालिकाओ मे, सरोवरो मे, सरोवर-पक्तियो मे, सर-सरपक्तियो मे, बिलो मे, बिलपक्तियो मे, पर्वतीय जलप्रवाहो मे, झरनो मे, छोटे गड्ढो मे, पोखरो मे, वप्रो मे, द्वीपो मे, समुद्रो मे, और सभी जलाशयो तथा समस्त जलस्थानो मे (होते हैं)। इन (सभी उपर्युक्त स्थलो) मे पर्याप्तक और अपर्याप्तक पचेन्द्रियो के स्थान कहे गए है।

उपपात की अपेक्षा से—(वे) लोक के असख्यातवे भाग मे (होते है), समुद्घात की अपेक्षा से—(वे) लोक के असख्यातवे भाग मे (होते हैं) और स्वस्थान की अपेक्षा से (भी वे) लोक के असख्यातवे भाग मे (होते है)।

विवेचन—द्वि-त्रि-चतु.-पचेन्द्रिय जीवो के स्थानो की प्ररूपणा—प्रस्तुत चार सूत्रो (सू १६३ से १६६ तक) मे क्रमश द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और सामान्य पचेन्द्रिय जीवो के पर्याप्तको और अपर्याप्तको के स्थानो की प्ररूपणा की गई है।

द्वीन्द्रियादि जीवो के तीनो लोको की दृष्टि से स्वस्थान—द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और सामान्य पचेन्द्रिय, इन चारो के सूत्रपाठ एक समान है। ये सभी ऊर्ध्वलोक मे उसके एकदेशभाग मे—अर्थात्—मेरुपर्वत आदि की वापी आदि मे होते है। अधोलोक मे भी उसके एकदेशभाग मे, अर्थात्—अधोलौकिक वापी, कूप तालाब आदि मे होते है तथा तिर्यग्लोक मे भी कूप, तडाग, नदी आदि मे होते हैं।

तथा पूर्वोक्त युक्ति के अनुसार उपपात, समुद्घात एव स्वस्थान की अपेक्षा से द्वीन्द्रिय से सामान्य पचेन्द्रिय तक के जीव लोक के असख्यातवे भाग मे होते है।[1]

नैरयिको के स्थानो की प्ररूपणा—

१६७ कहि ण भते ! नेरइयाण पज्जत्ताऽपज्जत्ताण ठाणा पण्णत्ता ? कहि ण भते ! नेरइया परिवसति ?

गोयमा ! सट्ठाणेण सत्तसु पुढवीसु। त जहा—रयणप्पभाए सक्करप्पभाए वालुयप्पभाए पकप्पभाए धूमप्पभाए तमप्पभाए तमतमप्पभाए, एत्थ ण णेरइयाण चउरासीति णिरयावाससतसहस्सा भवतीति मक्खाय।

ते ण णरगा अतो वट्टा बाहिं चउरंसा अहे खुरप्पसठाणसठिता णिच्चंधयारतमसा ववगयगह-चद-सूर-णक्खत्त-जोइसपहा मेद-वसा-पूय-रुहिर-मसचिक्खिल्ललित्ताणुलेवणतला असुई वीसा परमदुब्भिगधा, काऊअगणिवण्णाभा कक्खडफासा दुरहियासा असुभा णरगा असुभा णरगेसु वेयणाओ, एत्थ ण णेरइयाण पज्जत्ताऽपज्जत्ताण ठाणा पण्णत्ता।

उववाएण लोयस्स असखेज्जइभागे, समुग्घाएणं लोयस्स असखेज्जइभागे, सट्ठाणेण लोयस्स असखेज्जइभागे।

---

[1] ...नासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक ७९

एत्थ णं बहवे णेरइया परिवसंति काला कालोभासा गंभीरलोमहरिसा भीमा उत्तासणगा परमकण्हा वण्णेण पण्णत्ता समणाउसो !।

ते ण तत्थ णिच्चं भीता णिच्च तत्था णिच्च तसिया णिच्च उव्विग्गा णिच्च परममसुह सवद्ध णरगभय पच्चणुभवमाणा विहरति ।

[१६७ प्र] भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त नारको के स्थान कहाँ, किस और कितने, तथा कैसे प्रदेश मे कहे गए है ? नैरयिक कहाँ निवास करते है ?

[१६७ उ] गौतम ! स्वस्थान की अपेक्षा से (वे) सात (नरक-) पृथ्वियो मे रहते है। तथा इस प्रकार है—(१) रत्नप्रभा मे, (२) शर्कराप्रभा मे, (३) वालुकाप्रभा मे, (४) पकप्रभा मे, (५) धूमप्रभा मे, (६) तम प्रभा मे और (७) तमस्तम प्रभा मे। इन (सातो नरक-पृथ्वियो) मे चौरासी लाख नरकावास होते है, वे नरक (नारकावास) अन्दर से गोल और बाहर से चोकौर (होते हैं।), नीचे से छुरे के आकार (सस्थान) से युक्त (सस्थित) है। सतत अन्धकार होने से वे गाढ अधकार (से ग्रस्त होते है।) (वे नारकावास) ग्रह, चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र आदि ज्योतिष्को की प्रभा से रहित है। उनके तलभाग (फर्श) मेद, चर्बी, मवाद के पटल, रुधिर (रक्त) और मास के कीचड के लेप से लिप्त, अशुचि (गदे), बीभत्स (घिनौने), अत्यन्त दुर्गन्धित, (धधकती) कापोत वर्ण की अग्नि जैसे रग के, कठोरस्पर्श वाले, दु सह एव अशुभ नरक है। नरको मे अशुभ वेदनाएँ होती है। इन (ऐसे अशुभ नरकावासो) मे पर्याप्त-अपर्याप्त नारको के स्थान कहे गए है।

उपपात की अपेक्षा से—लोक के असख्यातवे भाग मे, समुद्घात की अपेक्षा से—लोक के असख्यातवे भाग मे, और स्वस्थान की अपेक्षा से (भी) लोक के असख्यातवे भाग मे, इनमे (पूर्वोक्त नरकावासो मे) बहुत-से नैरयिक निवास करते है। हे आयुष्मन् श्रमणो ! वे (नारक) काले, काली आभा वाले, (भयवश) गम्भीर रोमाञ्च वाले, भीम (भयानक), उत्कट त्रासजनक, तथा वर्ण (रग) से अतीव काले कहे गए है।

वे (वहाँ) नित्य भीत (डरते), सदैव त्रस्त, सदा (परमाधार्मिक असुरो से परस्पर) त्रासित (त्रास पहुँचाए हुए), सदैव उद्विग्न (घबराए हुए) तथा नित्य अत्यन्त अशुभ, अपने नरक का भय प्रत्यक्ष अनुभव करते रहते है।

१६८ कहि ण भते ! रयणप्पभापुढविणेरइयाण पज्जत्ताऽपज्जत्ताण ठाणा पण्णत्ता ?

कहि ण भते ! रयणप्पभापुढविणेरइया परिवसति ?

गोयमा ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए असीउत्तरजोयणसतसहस्सबाहल्लाए उवरि एग जोयणसहस्स ओगाहित्ता हेट्ठा चेग जोयणसहस्स वज्जेत्ता मज्झे अट्ठहत्तरे जोयणसतसहस्से, एत्थ ण रयणप्पभापुढविनेरइयाण तीस णिरयावाससतसहस्सा भवतीति मक्खात।

ते ण णरगा अतो वट्टा बाहिं चउरसा अहे खुरप्पसठाणसठिता णिच्चधयारतमसा ववगय-गह-चद-सूर-णक्खत्तजोइसप्पभा मेद-वसा-पूयपडल-रुहिर-मसचिक्खिल्ललित्ताणुलेवणतला असुई वीसा परमदुब्भिगंधा काऊअगणिवण्णाभा कक्खडफासा दुरहियासा असुभा णरगा असुभा णरगेसु वेयणाओ, एत्थ ण रयणप्पभापुढविणेरइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताण ठाणा पण्णत्ता।

उववाएण लोयस्स असखेज्जइभागे, समुग्घातेण लोयस्स असखेज्जइभागे, सट्ठाणेण लोयस्स असखेज्जइभागे।

एत्थ ण बहवे रयणप्पभापुढविनेरइया परिवसति, काला कालोभासा गभीरलोमहरिसा भीमा उत्तासणगा परमकिण्हा वण्णेण पण्णत्ता समणाउसो !

ते ण णिच्चं भीता णिच्च तत्था णिच्च तसिया णिच्च उव्विग्गा णिच्च परममसुह सवद्ध णरगभय पच्चणुभवमाणा विहरंति।

[१६८ प्र] भगवन् ! रत्नप्रभापृथ्वी के पर्याप्त और अपर्याप्त नारको के स्थान कहाँ कहे गए है ? रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिक कहाँ निवास करते है ?

[१६८ उ] गौतम ! इस एक लाख अस्सी हजार योजन मोटाई वाली रत्नप्रभापृथ्वी के ऊपर एक हजार योजन अवगाहन करने पर, तथा नीचे एक हजार योजन छोड कर, मध्य मे एक लाख अठहत्तर हजार योजन (जगह) मे, रत्नप्रभापृथ्वी के तीस लाख नारकावास होते है, ऐसा कहा गया है।

वे नरक अन्दर से गोल, बाहर से चौकोर और नीचे से छुरे के आकार से युक्त (सस्थित) है, वे नित्य घने अधकार से ग्रस्त, ग्रह, चन्द्रमा, सूर्य, नक्षत्र आदि ज्योतिष्को की प्रभा से रहित है। उनके तलभाग मेद, चर्बी, मवाद के पटल, रुधिर और मास के कीचड के लेप से लिप्त होते है। (अतएव) अशुचि (अपवित्र—गदे), बीभत्स, अत्यन्त दुर्गन्धित, कापोतरग की अग्नि के वर्ण-सदृश, कर्कश स्पर्श वाले, दु सह तथा अशुभ नरक है। नरको मे अशुभ वेदनाएँ है। इनमे रत्नप्रभापृथ्वी के पर्याप्त एव अपर्याप्त नैरयिको के स्थान कहे गए है।

उपपात की अपेक्षा से (वे) लोक के असख्यातवे भाग मे (होते है), समुद्घात की अपेक्षा से लोक के असख्यातवे भाग मे (होते हैं), और स्वस्थान की अपेक्षा से (भी वे) लोक के असख्यातवे भाग मे हैं।

यहाँ रत्नप्रभापृथ्वी के बहुत-से नैरयिक निवास करते है। (वे) काले, काली आभा वाले, (भयवश) गम्भीर रोमाञ्च वाले, भीम (भयकर), उत्कट त्रासजनक और हे आयुष्मन् श्रमणो ! वे वर्ण से अत्यन्त काले कहे गए है।

वे (वहाँ) नित्य भयभीत, सदैव त्रस्त, सदा (परमाधार्मिक असुरो द्वारा एवं परस्पर) त्रासित (त्रास पहुँचाए हुए), नित्य उद्विग्न (घबराये हुए), तथा सदैव अत्यन्त अशुभ (स्व-)सम्बद्ध (लगातार) नरक का भय प्रत्यक्ष अनुभव करते रहते है।

१६९ कहि ण भते ! सक्करप्पभापुढविनेरइयाण पज्जत्ताऽपज्जत्ताण ठाणा पण्णत्ता ?

कहि ण भते ! सक्करप्पभापुढविनेरइया परिवसति ?

गोयमा ! सक्करप्पभाए पुढवीए बत्तीसुत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए उर्वारं एग जोयणसहस्स ओगाहित्ता हेट्ठा वेग जोयणसहस्स वज्जित्ता मज्झे तीसुत्तरे जोयणसतसहस्से, एत्थ ण सक्करप्पभापुढविणेरइयाण पणवीस णिरयावासतसहस्सा हवतीति मक्खात।

ते णं णरगा अंतो वट्टा बाहिं चउरंसा अहे खुरप्पसंठाणसंठिता णिच्चंधयारतमसा ववगयगह-चंद-सूर-णक्खत्तजोइसप्पहा मेद-वसा-पूयपडल-रुहिर-मंसचिक्खिल्ललित्ताणुलेवणतला असुई वीसा परमदुब्भिगंधा काऊअगणिवण्णाभा कक्खडफासा दुरहियासा असुभा नरगा असुभा नरगेसु वेयणाओ, एत्थ णं सक्करप्पभापुढविनेरइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ।

उववाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे, समुग्घाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे, सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेज्जइभागे ।

तत्थ णं बहवे सक्करप्पभापुढविणेरइया परिवसंति, काला कालोभासा गंभीरलोमहरिसा भीमा उत्तासणगा परमकिण्हा वण्णेणं पण्णत्ता समणाउसो !

ते णं णिच्चं भीता णिच्चं तत्था णिच्चं तसिया णिच्चं उव्विग्गा णिच्चं परममसुहं संबद्धं नरगभयं पच्चणुभवमाणा विहरंति ।

[१६९ प्र.] भगवन् ! शर्कराप्रभापृथ्वी के पर्याप्त और अपर्याप्त नैरयिकों के स्थान कहाँ कहे गए हैं ? शर्कराप्रभापृथ्वी के नैरयिक कहाँ निवास करते हैं ?

[१६९ उ.] गौतम ! एक लाख बत्तीस हजार योजन मोटी शर्कराप्रभा पृथ्वी के ऊपर एक हजार योजन अवगाहन करने पर तथा नीचे भी एक हजार योजन छोड कर, मध्य में एक लाख, तीस हजार योजन (जगह) में, शर्कराप्रभापृथ्वी के नैरयिकों के पच्चीस लाख नारकावास हैं, ऐसा कहा गया है ।

वे नरक अन्दर से गोल, बाहर से चौकोर और नीचे से छुरे के आकार से युक्त (संस्थित) हैं । वे नित्य घने अन्धकार से ग्रस्त, ग्रह, चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र आदि ज्योतिष्कों की प्रभा से रहित हैं । उनके तलभाग मेद, चर्बी, मवाद के पटल, रुधिर और मांस के कीचड के लेप से लिप्त होते हैं । (अतएव वे) अशुचि, बीभत्स (घृणास्पद) हैं, अथवा अपक्व गन्ध वाले हैं, घोर दुर्गन्ध से युक्त हैं, कापोत अग्नि के वर्ण-सदृश (धोंकी जाती हुई लोहाग्नि के समान नीली आभा वाले) हैं, उनका स्पर्श बडा कठोर होता है, (अतएव वे) नरक दुःसह और अशुभ हैं । नरकों की वेदनाएँ अशुभ हैं । इन (पूर्वोक्त नरकावासों) में शर्कराप्रभापृथ्वी के पर्याप्त और अपर्याप्त नैरयिकों के (स्व-) स्थान कहे गए हैं ।

उपपात की अपेक्षा से (वे) लोक के असंख्यातवें भाग में, समुद्घात की अपेक्षा से लोक के असंख्यातवें भाग में (और) स्वस्थान की अपेक्षा से (भी) लोक के असंख्यातवें भाग में हैं ।

उनमें बहुत-से शर्कराप्रभापृथ्वी के नारक निवास करते हैं । (वे) काले, काली आभा वाले, अत्यन्त गम्भीर रोमाञ्चयुक्त, भयंकर, उत्कट त्रासजनक, तथा वर्ण से अत्यन्त काले कहे गए हैं ।

हे आयुष्मन् श्रमणो ! वे (नारक) वहाँ नित्य भयभीत, नित्य त्रस्त, तथा (परमाधार्मिकों द्वारा) सदैव त्रासित, सदा उद्विग्न (घबराए हुए) और नित्य अत्यन्त अशुभ तत्सम्बद्ध नरक के भय का प्रत्यक्ष अनुभव करते हुए रहते हैं ।

१७०. कहि णं भंते ! वालुयप्पभापुढविनेरइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! वालुयप्पभाए पुढवीए अट्ठावीसुत्तरजोयणसतसहस्सबाहल्लाए उवरिं एगं जोयणसहस्स

ओगाहेत्ता हेट्ठा वेगं जोयणसहस्सं वज्जेत्ता मज्झे छव्वीसुत्तरे जोयणसतसहस्से, एत्थ णं वालुयप्पभा-पुढविनेरइयाणं पण्णरस णिरयावाससतसहस्सा भवतीति मक्खातं।

ते णं णरगा अतो वट्टा बाहिं चउरंसा अहे खुरप्पसंठाणसंठिता णिच्चंधयारतमसा ववगयगह-चंद-सूर-नक्खत्तजोइसप्पहा मेद-वसा-पूयपडल-रुहिर-मंसचिक्खिल्ललित्ताणुलेवणतला असुई वीसा परमदुब्भिगंधा काऊअगणिवण्णाभा कक्खडफासा दुरहियासा असुभा नरगा असुभा नरएसु वेदणाओ, एत्थ णं वालुयप्पभापुढविनेरइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता।

उववाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे, समुग्घाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे, सट्ठाणेणं लोगस्स असंखेज्जइभागे।

तत्थ णं बहवे वालुयप्पभापुढविनेरइया परिवसंति काला कालोभासा गंभीरलोमहरिसा भीमा उत्तासणगा परमकिण्हा वण्णेणं पण्णत्ता समणाउसो ! ।

ते णं णिच्चं भीता णिच्चं तत्था णिच्चं तसिता णिच्चं उव्विग्गा णिच्चं परममसुहं संबद्धं णरगभयं पच्चणुभवमाणा विहरंति।

[१७० प्र] भगवन् ! वालुकाप्रभापृथ्वी के पर्याप्त और अपर्याप्त नैरयिकों के स्थान कहाँ कहे गए हैं ?

[१७० उ] गौतम ! एक लाख अट्ठाईस हजार योजन मोटी वालुकाप्रभापृथ्वी के ऊपर के एक हजार योजन अवगाहन (पार) करके अर्थात् नीचे, और नीचे से एक हजार योजन छोड़ कर बीच में एक लाख छव्वीस हजार योजन प्रदेश में, वालुकाप्रभापृथ्वी के नैरयिकों के पन्द्रह लाख नारकावास हैं, ऐसा कहा है।

वे नरक अन्दर से गोल, बाहर से चौरस और नीचे से छुरे के आकार से युक्त, नित्य गाढ अन्धकार से व्याप्त, ग्रह, चन्द्रमा, सूर्य, नक्षत्र आदि ज्योतिष्कों की प्रभा से रहित हैं। उनके तलभाग मेद, चर्बी, मवाद-पटल, रुधिर और मांस के कीचड़ के लेप से लिप्त होते हैं, अतएव वे अशुचि (अपवित्र), बीभत्स, अतीव दुर्गन्धित, कापोत रंग की धधकती अग्नि के वर्णसदृश, दुःसह एवं अशुभ नरक हैं। उन नरकों में वेदनाएँ अशुभ हैं। इन (ऐसे नारकावासों) में वालुकाप्रभापृथ्वी के पर्याप्त एवं अपर्याप्त नारकों के स्थान कहे हैं।

उपपात की अपेक्षा से (वे नारकावास) लोक के असंख्यातवें भाग में (हैं), समुद्घात की अपेक्षा से लोक के असंख्यातवें भाग में (हैं), (और) स्वस्थान की अपेक्षा से (भी) लोक के असंख्यातवें भाग में (हैं)।

जिनमें बहुत-से वालुकाप्रभापृथ्वी के नारक निवास करते हैं। हे आयुष्मन् श्रमणो ! वे काले, काली आभा वाले गम्भीर-लोमहर्षक, भीम, उत्कृष्ट त्रासजनक, वर्ण से अत्यन्त कृष्ण कहे हैं।

वे नारक (वहाँ) नित्य भयभीत, सदैव त्रस्त, सदा (परमाधार्मिक असुरों द्वारा) त्रास पहुँचाये हुए, नित्य उद्विग्न और सदैव परम अशुभ तत्सम्बद्ध नरकभय का प्रत्यक्ष अनुभव करते हुए जीवनयापन करते हैं।

१७१ कहि ण भंते ! पंकप्पभापुढविनेरइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! पंकप्पभाए पुढवीए वीसुत्तरजोयणसतसहस्सबाहल्लाए उवरिं एगं जोयणसहस्सं ओगाहित्ता हिट्ठा वेगं जोयणसहस्सं वज्जेत्ता मज्झे अट्ठारसुत्तरे जोयणसतसहस्से, एत्थ णं पंकप्पभापुढविनेरइयाणं दस णिरयावाससतसहस्सा भवंतीति मक्खातं।

ते णं णरगा अंतो वट्टा बाहिं चउरंसा अहे खुरप्पसंठाणसंठिता णिच्चंधयारतमसा ववगयगह-चंद-सूर-नक्खत्तजोइसपहा मेद-वसा-पूयपडल-रुहिर-मंसचिक्खिल्ललित्ताणुलेवणतला असुई वीसा परमदुब्भिगंधा काऊअगणिवण्णाभा कक्खडफासा दुरहियासा असुभा नरगा असुभा नरगेसु वेयणाओ, एत्थ णं पंकप्पभापुढविनेरइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता।

उववाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे, समुग्घाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे, सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेज्जइभागे। तत्थ णं बहवे पंकप्पभापुढविनेरइया परिवसंति काला कालोभासा गंभीरलोमहरिसा भीमा उत्तासणगा परमकिण्हा वण्णेणं पण्णत्ता समणाउसो ! ।

ते णं निच्चं भीता निच्चं तत्था निच्चं तसिया निच्चं उव्विग्गा निच्चं परममसुहं संबद्धं णरगभयं पच्चणुभवमाणा विहरंति।

[१७१ प्र.] भगवन् ! पंकप्रभापृथ्वी के पर्याप्त एवं अपर्याप्त नैरयिकों के स्थान कहाँ कहे गए हैं ?

[१७१ उ.] गौतम ! एक लाख बीस हजार योजन मोटी पंकप्रभापृथ्वी के ऊपर से एक हजार योजन भाग अवगाहन (पार) करके और नीचे का एक हजार योजन भाग छोड़ कर, बीच के एक लाख अठारह हजार योजन प्रदेश में, पंकप्रभापृथ्वी के नैरयिकों के दस लाख नरकावास हैं, ऐसा कहा है।

वे नरक (नारकावास) अन्दर से गोल, बाहर से चौरस और नीचे से छुरे के आकार से युक्त, सदा अन्धकार से व्याप्त, ग्रह, चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र आदि ज्योतिष्कों की प्रभा से रहित, मेद, चर्बी, मवाद के पटल, रुधिर और मांस के कीचड़ के लेप से लिप्त तलवाले, अपवित्र, बीभत्स, अत्यन्त दुर्गन्धयुक्त, कापोतरंग की (धधकती) अग्नि के वर्ण-सदृश, कठोरस्पर्शयुक्त हैं अतएव अत्यन्त दुःसह एवं अशुभ हैं। उन नरकों में अशुभ वेदनाएँ होती हैं, जहाँ कि पंकप्रभापृथ्वी के पर्याप्त और अपर्याप्त नारकों के स्थान बताए गए हैं।

उपपात की अपेक्षा से (वे नरकावास) लोक के असंख्यातवें भाग में (हैं), समुद्घात की अपेक्षा से लोक के असंख्यातवें भाग में (हैं) और स्वस्थान की अपेक्षा से (वे) लोक के असंख्यातवें भाग में (हैं), जहाँ पंकप्रभापृथ्वी के बहुत-से नैरयिक निवास करते हैं, जो काले, काली प्रभावाले, गम्भीर रोमहर्षक, भयंकर, उत्त्रासजनक एवं परमकृष्णवर्ण के कहे गए हैं।

हे आयुष्मन् श्रमणो ! वे नारक (वहाँ) सदैव भयभीत, सदा त्रस्त, नित्य परस्पर त्रासित, नित्य उद्विग्न और सदैव सम्बद्ध (निरन्तर) अतीव अशुभ नरकभय का प्रत्यक्ष अनुभव करते हुए रहते हैं।

१७२ कहि णं भंते ! धूमप्पभापुढविनेरइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! धूमप्पभाए पुढवीए अट्ठारसुत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए उवरिं एगं जोयणसहस्सं

ओगाहित्ता हिट्ठा वेग जोयणसहस्स वज्जेत्ता मज्झे सोलसुत्तरे जोयणसतसहस्से, एत्थ ण धूमप्पभा-पुढविनेरइयाण तिन्नि निरयावाससतसहस्सा भवतीति मक्खातं।

ते ण णरगा अतो वट्टा बाहिं चउरसा अहे खुरप्पसठाणसठिता णिच्चधयारतमसा ववगयगह-चंद-सूर नक्खत्तजोइसपहा मेद-वसा-पूयपडल-रुहिर-मसचिक्खिल्ललित्ताणुलेवणतला असुई वीसा परमदुब्भिगधा काऊअगणिवण्णाभा कक्खडफासा दुरहियासा असुभा नरगा असुभा णरगेसु वेयणाओ, एत्थ णं धूमप्पभापुढविनेरइयाण पज्जत्ताऽपज्जत्ताण ठाणा पण्णत्ता।

उववाएण लोयस्स असखेज्जइभागे, समुग्घाएण लोयस्स असखेज्जइभागे, सट्ठाणेण लोयस्स असंखेज्जइभागे। तत्थ ण बहवे धूमप्पभापुढविनेरइया परिवसति काला कालोभासा गभीरलोमहरिसा भीमा उत्तासणगा परमकिण्हा वण्णेण पण्णत्ता समणाउसो!

ते ण णिच्च भीता णिच्च तत्था णिच्च तसिया णिच्च उव्विग्गा णिच्च परममसुह सबद्ध णरगभयं पच्चणुभवमाणा विहरति।

[१७२ प्र] भगवन्! धूमप्रभापृथ्वी के पर्याप्त और अपर्याप्त नैरयिको के स्थान कहाँ (किस प्रदेश मे) कहे है?

[१७२ उ] गौतम! एक लाख अठारह हजार योजन मोटी धूमप्रभापृथ्वी के ऊपर के एक हजार योजन को अवगाहन (पार) करके, नीचे के एक हजार योजन (क्षेत्र) को छोड कर बीच के एक लाख सोलह हजार योजन प्रदेश मे, धूमप्रभापृथ्वी के नारको के तीन लाख नारकावास है, ऐसा कहा है।

वे नरक (नारकावास) भीतर से गोल और बाहर से चौकोर है, नीचे से छुरे के-से आकार के तीक्ष्ण हैं, (वे) सदैव गाढ अन्धकार से (पूर्ण रहते है), वे ग्रह, चन्द्रमा, सूर्य, नक्षत्र आदि ज्योतिष्कों की प्रभा से दूर हैं। उनके तलभाग मेद, चर्बी, मवाद के पटल, रुधिर और मास के कीचड के लेप से लिप्त होते है। अत वे नरक अत्यन्त अपवित्र, बीभत्स, अत्यन्त दुर्गन्धयुक्त, कापोत रग की जाज्वल्यमान अग्नि के वर्ण के समान, कठोरस्पर्श वाले दु सह एव अशुभ है। उन नरको मे अशुभ वेदनाएँ हैं।

उपपात की अपेक्षा से (वे) लोक के असख्यातवे भाग मे है, समुद्घात की अपेक्षा से लोक के असख्यातवे भाग मे है, (तथा) स्वस्थान की अपेक्षा से (भी) लोक के असख्यातवे भाग मे हैं, जहाँ उन (नरकावासो) मे धूमप्रभापृथ्वी के बहुत-से नैरयिक रहते है, जो काले, काली कान्तिवाले, गभीर रोमाञ्चकारी, भयानक, उत्त्रासदायक, वर्ण से परम कृष्ण कहे गए है।

हे आयुष्मन् श्रमणो! वे (नारक वहाँ) नित्य भयभीत, सदैव त्रस्त, सदैव परस्पर त्रासित, नित्य उद्विग्न और सदैव अविच्छिन्नरूप से परम अशुभ नरकभय का प्रत्यक्ष अनुभव करते हुए जीवनयापन करते है।

१७३. कहि ण भंते! तमप्पभापुढविनेरइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताण ठाणा पण्णत्ता?

गोयमा! तमप्पभाए पुढवीए सोलसुत्तरजोयणसतसहस्सबाहल्लाए उवरिं एग जोयणसहस्स ओगाहित्ता हिट्ठा वि एग जोयणसहस्स वज्जेत्ता मज्झे चोद्दसुत्तरे जोयणसतसहस्से, एत्थ ण तमप्पभा-पुढविनेरइयाण एगे पंचूणे णरगावाससतसहस्से हवतीति मक्खात।

ते णं णरगा अंतो वट्टा बाहिं चउरंसा अहे खुरप्पसंठाणसंठिता निच्चंधयारतमसा ववगयगह-चंद-सूर-नक्खत्तजोइसप्पहा मेद-वसा-पूयपडल-रुहिर-मंसचिक्खिल्ललित्ताणुलेवणतला असुई वीसा परमदुब्भिगंधा कक्खडफासा दुरहियासा असुभा णरगा असुभा नरगेसु वेदणाओ, एत्थ णं तमप्पभा-पुढविनेरइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ।

उववाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे समुग्घाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे, सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेज्जइभागे । तत्थ णं बहवे तमप्पभापुढविणेरइया परिवसंति ।

काला कालोभासा गंभीरलोमहरिसा भीमा उत्तासणगा परमकिण्हा वण्णेणं पण्णत्ता समणाउसो !

ते णं णिच्चं भीता णिच्चं तत्था णिच्चं तसिया णिच्चं उव्विग्गा णिच्चं परममसुहं संबद्धं नरगभयं पच्चणुभवमाणा विहरंति ।

[१७३ प्र.] भगवन् ! तमःप्रभापृथ्वी के पर्याप्त और अपर्याप्त नैरयिकों के स्थान कहाँ कहे हैं ?

[१७३ उ.] गौतम ! एक लाख सोलह हजार योजन मोटी तमःप्रभापृथ्वी के ऊपर का एक हजार योजन (प्रदेश) अवगाहन (पार) करके और नीचे का एक हजार योजन (प्रदेश) छोड़कर मध्य में एक लाख चौदह हजार योजन (प्रदेश) में, वहाँ तमःप्रभापृथ्वी के नैरयिकों के पांच कम एक लाख नरकावास हैं, ऐसा कहा गया है ।

वे नरक (नारकावास) भीतर से गोल, बाहर से चौरस और नीचे से छुरे के (आकार के-से तीक्ष्ण) संस्थान से युक्त हैं । वे सदैव (घने) अंधेरे से (भरे होते हैं,) वे ग्रह, चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र आदि ज्योतिष्कों के प्रकाश से वंचित हैं, उनके तल मेद, वसा, मवाद की मोटी परत, रक्त और मांस के कीचड़ के लेप से लिप्त होते हैं, अतएव वे अपवित्र, बीभत्स, अतिदुर्गन्धित, कर्कश स्पर्शयुक्त, दुःसह एवं अशुभ या सुखरहित (असुख) नरक हैं, इन नरकों में अशुभ वेदनाएँ होती हैं । इन (नरकावासों) में तमःप्रभापृथ्वी के पर्याप्त एवं अपर्याप्त नारकों के स्थान कहे हैं ।

उपपात की अपेक्षा से (वे नरकावास) लोक के असंख्यातवें भाग में (हैं), समुद्घात की अपेक्षा से लोक के असंख्यातवें भाग में (हैं), और स्वस्थान की अपेक्षा से (भी वे) लोक के असंख्यातवें भाग में (हैं), जहाँ कि बहुत-से तमःप्रभापृथ्वी के नैरयिक निवास करते हैं ।

(वे नैरयिक) काले, काली प्रभा वाले, गम्भीरलोमहर्षक, भयानक, उत्त्रासदायक, वर्ण से अतीव कृष्ण कहे गए हैं । हे आयुष्मन् श्रमणो ! वे (वहाँ) सदैव भयभीत, सदैव त्रस्त, नित्य त्रासित, सदैव उद्विग्न, नित्य परम अशुभ तत्सम्बद्ध नरकभय का सतत प्रत्यक्ष अनुभव करते हुए रहते हैं ।

१७४. कहि णं भंते ! तमतमापुढविनेरइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! तमतमाए पुढवीए अट्ठोत्तरजोयणसतसहस्सबाहल्लाए उवरिं अद्धतेवण्णं जोयण-सहस्साइं ओगाहित्ता हिट्ठा वि अद्धतेवण्णं जोयणसहस्साइं वज्जेत्ता मज्झे तिसु जोयणसहस्सेसु, एत्थ णं तमतमापुढविनेरइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं पंचदिसिं पंच अणुत्तरा महइमहालया महाणिरया पण्णत्ता, तं जहा—

काले १ महाकाले २ रोरुए ३ महारोरुए ४ अपइट्ठाणे ५ ।

ते णं णरगा अंतो वट्टा बाहिं चउरंसा अहे खुरप्पसंठाणसंठिता निच्चंधयारतमसा ववगयगह-चंद-सूर-नक्खत्तजोइसपहा मेद-वसा-पूयपडल रुहिर-मंसचिक्खल्ललित्ताणुलेवणतला असुई वीसा परम-दुब्भिगंधा कक्खडफासा दुरहियासा असुभा नरगा असुभा नरगेसु वेयणाओ, एत्थ णं तमतमापुढविनेर-इयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ।

उववाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे, समुग्घाएणं लोयस्स असंखेज्जइभागे, सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेज्जइभागे ।

तत्थ णं बहवे तमतमापुढविनेरइया परिवसंति काला कालोभासा गंभीरलोमहरिसा भीमा उत्तासणया परमकिण्हा वण्णेणं पण्णत्ता समणाउसो !

ते णं णिच्चं भीता णिच्चं तत्था णिच्चं तसिया णिच्चं उव्विग्गा णिच्चं परममसुहं संबद्धं णरगभयं पच्चणुभवमाणा विहरंति ।

आसीतं १ बत्तीसं २ अट्ठावीसं च होइ ३ वीसं च ४ ।
अट्ठारस ५ सोलसगं ६ अट्ठुत्तरमेव ७ हिट्ठिमया ॥१३३॥
अट्ठुत्तरं च १ तीसं २ छव्वीसं चेव सतसहस्सं तु ३ ।
अट्ठारस ४ सोलसगं ५ चोद्दसमहियं तु छट्ठीए ६ ॥१३४॥
अद्धतिवण्णसहस्सा उवरिमऽहे वज्जिऊण तो भणियं ।
मज्झे उ तिसु सहस्सेसु होंति नरगा तमतमाए ७ ॥१३५॥
तीसा य १ पण्णवीसा २ पण्णरस ३ दसेव सयसहस्साइं ४ ।
तिण्णि य ५ पंचूणेगं ६ पंचेव अणुत्तरा नरगा ७ ॥१३६॥

[१७४ प्र.] भगवन् ! तमस्तमपृथ्वी के पर्याप्त और अपर्याप्त नैरयिकों के स्थान कहाँ कहे गए हैं ?

[१७४ उ.] गौतम ! एक लाख, आठ हजार मोटी तमस्तमपृथ्वी के ऊपर के साढे बावन हजार योजन (प्रदेश) को अवगाहन (पार) करके तथा नीचे के भी साढे बावन हजार योजन (प्रदेश) को छोड़कर बीच के तीन हजार योजन (प्रदेश) में, तमस्तमप्रभा पृथ्वी के पर्याप्त और अपर्याप्त नारकों के पांच दिशाओं में पांच अनुत्तर, अत्यन्त विस्तृत महान् महानिरय (बड़े-बड़े नरकावास) कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं—(१) काल, (२) महाकाल, (३) रौरव, (४) महारौरव और (५) अप्रतिष्ठान ।

वे नरक (नारकावास) अंदर से गोल और बाहर से चौरस हैं, नीचे से छुरे के समान तीक्ष्ण-संस्थान से युक्त हैं। वे नित्य अन्धकार से आवृत रहते हैं, वहाँ ग्रह, चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र आदि ज्योतिष्कों की प्रभा नहीं है। उनके तलभाग मेद, चर्बी, मवाद के पटल, रुधिर और मांस के कीचड़ के लेप से लिप्त रहते हैं। अतएव वे अपवित्र, घृणित, अतिदुर्गन्धित, कठोरस्पर्शयुक्त, दुःसह एव

अशुभ (अनिष्ट) नरक (नारकावास) है। उन नरको मे अशुभ वेदनाएँ होती हैं। यही तमस्तम प्रभा-पृथ्वी के पर्याप्त और अपर्याप्त नारको के स्थान कहे गए हैं।

उपपात की अपेक्षा से (वे नारकावास) लोक के असख्यातवे भाग मे है, समुद्घात की अपेक्षा से (वे) लोक के असख्यातवे भाग मे है तथा स्वस्थान की अपेक्षा से (भी वे) लोक के असख्यातवे भाग मे है।

हे आयुष्मन् श्रमणो ! इन्ही (पूर्वोक्त स्थलो) मे तमस्तम पृथ्वी के बहुत-से नैरयिक निवास करते है, जो कि काले, काली प्रभा वाले, (भयकर) गभीररोमाञ्चकारी, भयकर, उत्कृष्ट त्रासदायक (आतक उत्पन्न करने वाले), वर्ण से अत्यन्त काले कहे है।

वे (नारक वहाँ) नित्य भयभीत, सदैव त्रस्त, सदैव परस्पर त्रास पहुँचाये हुए, नित्य (दु ख से) उद्विग्न, तथा सदैव अत्यन्त अनिष्ट तत्सम्बद्ध नरकभय का सतत साक्षात् अनुभव करते हुए जीवनयापन करते है।

[सग्रहणी गाथाओ का अर्थ—] (नरकपृथ्वियो की क्रमश मोटाई एक लाख से ऊपर की सख्या मे)—१ अस्सी (हजार), २ बत्तीस (हजार), ३ अट्ठाईस (हजार), ४ बीस (हजार), ५ अठारह (हजार), ६ सोलह (हजार) और ७ सबसे नीचली की आठ (हजार), (सबके साथ 'योजन' शब्द जोड देना चाहिए।) ॥१३३॥

(नारकावासो का भूमिभाग—) (ऊपर और नीचे एक-एक हजार योजन छोडकर छठी नरक तक, एक लाख से ऊपर की सख्या मे)—१ अठहत्तर (हजार), २ तीस (हजार), ३ छब्बीस (हजार), ४ अठारह (हजार), ५ सोलह (हजार), और ६ छठी नरकपृथ्वी मे—चौदह (हजार) ये सब एक लाख योजन से ऊपर (की सख्याएँ) है। और ७ सातवी तमस्तमा नरकपृथ्वी मे ऊपर और नीचे साढे बावन-साढे बावन हजार छोड कर मध्य मे तीन हजार योजनो मे नरक (नारकावास) होते है, ऐसा कहा है ॥१३४-१३५॥

(नारकावासो की सख्या) (छठी नरक तक लाख की सख्या मे)—१ (प्रथम पृथ्वी मे) तीस (लाख), २ (दूसरी मे) पच्चीस (लाख), ३ (तीसरी मे) पन्द्रह (लाख), ४ (चौथी पृथ्वी मे) दस लाख, ५ (पाचवी मे) तीन (लाख), तथा ६ (छठी पृथ्वी मे) पाच कम एक (लाख) और ७ (सातवी नरकपृथ्वी मे) केवल पाच ही अनुत्तर नरक (नारकावास) है ॥१३६॥

विवेचन—नैरयिको के स्थानो की प्ररूपणा—प्रस्तुत आठ सूत्रो (सू १६७ से १७४ तक) मे सामान्य नैरयिको तथा तत्पश्चात् क्रमश पृथक्-पृथक् सातो नारको के नैरयिको के स्थानो की सख्या तथा उन स्थानो के स्वरूप एव उन स्थानो मे रहने वाले नारको की प्रकृति एव परिस्थिति पर प्रकाश डाला गया है। आठो सूत्रो मे उल्लिखित निरूपण कुछ बातो को छोड कर प्राय एक सरीखा है।

नारकावासो की सख्या—सातो नरको के नारकावासो की कुल मिला कर ८४ लाख सख्या होती है, जिसका विवरण सग्रहणी गाथाओ मे दिया गया है। इसके अतिरिक्त नारक कहाँ (किस प्रदेश मे) रहते हैं ?, इसका विवरण भी पूर्वोक्त सग्रहणी गाथाओ मे दिया है, जैसे कि—१ हजार योजन ऊपर और १ हजार योजन नीचे छोड कर बीच के एक लाख अठहत्तर हजार योजन प्रदेश मे प्रथम पृथ्वी के नारक रहते हैं, इत्यादि। सातो पृथ्वियो के नारको के स्थानादि का वर्णन प्राय समान है।[1]

---

१ देखिये सग्रहणी गाथाएँ—पण्णवणासुत्त (मूलपाठ-टिप्पण) भा १, पृ ५४-५५

नारकावासो की भूमि—नारकावासो का भूमितल ककरीला होने पर भी नारको के पैर रखने पर ककडो का स्पर्श ऐसा लगता है, मानो छुरे से पैर कट गए हो। उनमे प्रकाश का अभाव होने से सदैव गाढ अन्धकार व्याप्त रहता है। वादलो से आच्छादित काली घोर रात्रि की तरह वहाँ सदैव अन्धकार रहता है, क्योकि प्रकाशक ग्रह-सूर्य-चन्द्रादि का या उनकी प्रभा का वहाँ अभाव है। वहाँ मेद, चर्बी, मवाद, रक्त, मास आदि दुर्गन्धित वस्तुओ के कीचड से भूमितल व्याप्त रहता है, इसलिए वे नारकावास सदैव गदे, घृणित या दुर्गन्धयुक्त रहते है। मरी हुई गाय, भैंस आदि के कलेवरो की-सी दुर्गन्ध से भी अत्यन्त अनिष्ट घोर दुर्गन्ध वहाँ रहती है। धौकनी से लोहे को खूब धौकने पर जैसे गहरे नीले रग की (कपोत के रग-जैसी) ज्वाला निकलती है, वैसी ही आभा वाले नारकावास होते है, क्योकि नारको के उत्पत्तिस्थान को छोड कर वे सर्वत्र उष्ण होते है। यह कथन छठी-सातवी पृथ्वी के सिवाय अन्यपृथ्वियो के विषय मे समझना चाहिए। आगे कहा जाएगा कि छठी और सातवी नरक के नारकावास कापोतवर्ण की अग्नि के वर्ण-सदृश नही होते। उन नारकावासो का स्पर्श तलवार की धार के समान अतीव कर्कश और दु सह होता है। वे देखने मे भी अत्यन्त अशुभ होते है। उन नरको की वेदनाएँ भी दु सह शब्द, रूप, गन्ध, रस और स्पर्श के कारण अतीव अशुभ या असुखकर होती है।

नारको की शरीररचना, प्रकृति और परिस्थिति—वे रग से काले-कलूटे और भयकर होते हैं। उनके शरीर से काली प्रभा निकलती है। उनको देखने मात्र से रोमाच हो जाता है, अथवा वे दूसरे नारको मे अत्यन्त भय उत्पन्न करके रोमाच खडा कर देते है। इस कारण वे अत्यन्त आतक पैदा करते रहते है। तथा वे सदैव भयभीत, त्रस्त, आतंकित, उद्विग्न रहते है, तथा सतत अनिष्ट नरकभय का अनुभव करते रहते है।[1]

पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिको के स्थानो की प्ररूपणा—

१७५ कहि णं भंते ! पंचिदियतिरिक्खजोणियाण पज्जत्ताऽपज्जत्ताण ठाणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! उड्ढलोए तदेक्कदेसभाए १, अहोलोए तदेक्कदेसभाए २, तिरियलोए अगडेसु तलाएसु नदीसु दहेसु वावीसु पुक्खरिणीसु दीहियासु गुंजालियासु सरेसु सरपंतियासु सरसरपंतियासु बिलेसु बिलपंतियासु उज्झरेसु निज्झरेसु चिल्ललेसु पल्ललेसु वप्पिणेसु दीवेसु समुद्देसु सव्वेसु चेव जलासएसु जलट्ठाणेसु ३, एत्थ ण पचेंदियतिरिक्खजोणियाण पज्जत्ताऽपज्जत्ताण ठाणा पण्णत्ता।

उववाएण लोयस्स असखेज्जइभागे, समुग्घाएणं लोयस्स असखेज्जइभागे, सट्ठाणेण लोगस्स असखेज्जइभागे।

[१७५ प्र] भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त पचेन्द्रियतिर्यंचो के स्थान कहाँ (-कहाँ) कहे गए हैं ?

[१७५ उ] गौतम ! १ ऊर्ध्वलोक मे उसके एकदेशभाग मे, २ अधोलोक मे उसके एकदेशभाग मे, ३ तिर्यग्लोक मे कुओ मे, तालाबो मे, नदियो मे, वापियो मे, ह्रदो मे, पुष्करिणियो मे, दीर्घिकाओ मे, गु जालिकाओ मे, सरोवरो मे, पक्तिबद्ध सरोवरो मे, सर-सर-पक्तियो मे, बिलो मे, पक्तिबद्ध बिलो मे, पर्वतीय जलस्रोतो मे, झरनो मे, छोटे गड्ढो मे, पोखरो मे, क्यारियो अथवा खेतो

---

१ प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति पत्राक ८०—८१ का साराश

मे, द्वीपो मे, समुद्रो मे तथा सभी जलाशयो एव जल के स्थानो मे, इन (सभी पूर्वोक्त स्थलो) मे पचेन्द्रियतिर्यञ्चो के पर्याप्तको और अपर्याप्तको के स्थान कहे गए है।

उपपात की अपेक्षा से (वे) लोक के असख्यातवे भाग मे है, समुद्घात की अपेक्षा से लोक के असख्यातवे भाग मे हैं, और स्वस्थान की अपेक्षा से (भी) वे लोक के असख्यातवे भाग मे है।

विवेचन—पचेन्द्रिय तिर्यञ्चो के स्थानो की प्ररूपणा—प्रस्तुत सूत्र (सू. १७५) मे पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिको के पर्याप्तको और अपर्याप्तको के स्थानो की प्ररूपणा की गई है। इसमे प्रयुक्त शब्दो का स्पष्टीकरण पहले ही किया जा चुका है।

मनुष्यों के स्थानो की प्ररूपणा—

१७६ कहि ण भते ! मणुस्साण पज्जत्ताऽपज्जत्ताण ठाणा पण्णत्ता ?

गोयमा ! अंतोमणुस्सखेत्ते पणतालीसाए जोयणसतसहस्सेसु अड्ढाइज्जेसु दीव-समुद्देसु पण्णरससु कम्मभूमीसु तीसाए अकम्मभूमीसु छप्पण्णाए अतरदीवेसु, एत्थ ण मणुस्साण पज्जत्ता-ऽपज्जत्ताण ठाणा पण्णत्ता।

उववाएण लोयस्स असखेज्जइभागे, समुग्घाएणं सव्वलोए, सट्ठाणेण लोयस्स असखेज्जइभागे।

[१७६ प्र] भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त मनुष्यो के स्थान कहाँ (-कहाँ) कहे गए है ?

[१७६ उ] गौतम ! मनुष्यक्षेत्र के अन्दर पैतालीस लाख योजनो मे, ढाई द्वीप-समुद्रो मे, पन्द्रह कर्मभूमियो मे, तीस अकर्मभूमियो मे, और छप्पन अन्तर्द्वीपो मे, इन स्थलो मे पर्याप्त और अपर्याप्त मनुष्यो के स्थान कहे गए है।

उपपात की अपेक्षा से (वे) लोक के असख्यातवे भाग मे, समुद्घात की अपेक्षा से सर्वलोक मे हैं, और स्वस्थान की अपेक्षा से लोक के असख्यातवे भाग मे है।

विवेचन—मनुष्यो के स्थानो की प्ररूपणा—प्रस्तुतसूत्र (सू १७६) मे पर्याप्तक और अपर्याप्तक मनुष्यो के स्थानो की प्ररूपणा की गई है।

समुद्घात की अपेक्षा से सर्वलोक मे—समुद्घात की अपेक्षा से पर्याप्त और अपर्याप्त मनुष्य सर्वलोक मे होते हैं, कह कथन केवलिसमुद्घात की अपेक्षा से सम्भव है।[1]

सर्व भवनवासी देवो के स्थानों की प्ररूपणा—

१७७. कहि ण भते ! भवणवासीण देवाण पज्जत्ताऽपज्जत्ताण ठाणा पण्णत्ता ? कहि ण भते ! भवणवासी देवा परिवसति ?

गोयमा ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए असीउत्तरजोयणसतसहस्सबाहल्लाए उवरि एग जोयण-सहस्स ओगाहित्ता हेट्ठा वेग जोयणसहस्स वज्जेत्ता मज्झिमअट्ठहत्तरे जोयणसतसहस्से, एत्थ ण भवणवासीण देवाण सत्त भवणकोडीओ बावत्तरिं च भवणावाससतसहस्सा भवतीति मक्खात।

---

१ प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक ८४

ते णं भवणा बाहिं वट्टा अंतो समचउरंसा अहे पुक्खरकण्णियासंठाणसंठिता उक्किण्णंतरविउल-गंभीरखात-परिहा पागार-ऽट्टालय-कवाड-तोरण-पडिदुवारदेसभागा जंत सयग्घि-मुसल-मुसंढिपरिय-रिया अउज्झा सदाजता सदागुत्ता अडयालकोट्ठगरइया अडयालकयवणमाला खेमा सिवा किंकरामर-दंडोवरक्खिया लाउल्लोइयमहिया गोसीस-सरसरत्तचंदणदद्दरदिण्णपंचंगुलितला उवचियचंदणकलसा चंदणघडसुकततोरणपडिदुवारदेसभागा आसत्तोसत्तविउलवट्टवग्घारियमल्लदामकलावा पंचवण्णसरस-सुरहिमुक्कपुप्फपुंजोवयारकलिया[1] कालागरु-पवरकुंदुरुक्क-तुरुक्कधूवमघमघेंतगंधुद्धुयाभिरामा सुगंध-वरगंधगंधिया गंधवट्टिभूता अच्छरगणसंघसंविगिण्णा दिव्वतुडितसद्दसंपणदिता सव्वरयणामया अच्छा सण्हा लण्हा घट्ठा मट्ठा णीरया णिम्मला निप्पंका निक्कंकडच्छाया सप्पहा सस्सिरिया समरिया सउज्जोया पासादीया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा, एत्थ णं भवणवासीणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता।

उववाएणं लोगस्स असंखेज्जइभागे, समुग्घाएणं लोगस्स असंखेज्जइभागे, सट्ठाणेणं लोयस्स असंखेज्जइभागे। तत्थ णं बहवे भवणवासी देवा परिवसंति। तं जहा—

असुरा १ नाग २ सुवण्णा ३ विज्जू ४ अग्गी य ५ दीव ६ उदही य ७।
विसि ८ पवण ९ थणिय १० नामा दसहा एए भवणवासी ॥१३७॥

चूडामणिमउडरयण १-भूसणनिउत्तणागफड २-गरुल ३-वइर ४-पुण्णकलसविउप्फेस ५-सीह ६-मगर ७-गयअंक ८-हयवर ९-वद्धमाण १०-निज्जुत्तचित्तचिंधगता सुरूवा महिड्ढीया महज्जुतीया महा-यसा महब्बला महाणुभागा महासोक्खा हारविराइयवच्छा कडग-तुडियथंभियभुया अंगद-कुंडल-मट्ठ-गंडतल कण्णपीढधारी विचित्तहत्थाभरणा विचित्तमाला-मउलीमउडा कल्लाणगपवरवत्थपरिहिया कल्लाणगपवरमल्लाणुलेवणधरा भासुरबोंदी पलंबवणमालधरा दिव्वेणं वण्णेणं दिव्वेणं गंधेणं दिव्वेणं फासेणं दिव्वेणं संघयणेणं दिव्वेणं संठाणेणं दिव्वाए इड्ढीए दिव्वाए जुतीए दिव्वाए पभाए दिव्वाए छायाए दिव्वाए अच्चीए दिव्वेणं तेएणं दिव्वाए लेसाए दस दिसाओ उज्जोवेमाणा पभासेमाणा।

ते णं तत्थ साणं साणं भवणावाससयसहस्साणं साणं साणं सामाणियसाहस्सीणं साणं साणं तायत्तीसगाणं साणं साणं लोगपालाणं साणं साणं अग्गमहिसीणं साणं साणं परिसाणं साणं साणं अणियाणं साणं साणं अणियाहिवतीणं साणं साणं आयरक्खदेवसाहस्सीणं अण्णेसिं च बहूणं भवणवासीणं देवाण य देवीण य आहेवच्चं पोरेवच्चं सामित्तं भट्टित्तं महयरगत्तं आणाईसरसेणावच्चं कारेमाणा पालेमाणा महताऽहतनट्ट-गीत-वाइततंती-तल-ताल-तुडिय-घणमुयंग-पडुप्पवाइयरवेणं दिव्वाइं भोग-भोगाइं भुंजमाणा विहरंति।

[१७७ प्र] भगवन्! पर्याप्त और अपर्याप्त भवनवासी देवों के स्थान कहाँ कहे गए हैं? भवनवासी देव कहाँ निवास करते हैं?

[१७७ उ] गौतम! एक लाख अस्सी हजार योजन मोटी इस रत्नप्रभापृथ्वी के ऊपर एक

---

१ ग्रन्थाग्रम् १०००

हजार योजन (प्रदेश) अवगाहन (पार) करके और नीचे भी एक हजार योजन छोड कर वीच मे एक लाख अठहत्तर हजार योजन मे भवनवासी देवो के सात करोड, बहत्तर लाख भवनावास हैं, ऐसा कहा गया है।

वे भवन वाहर से गोल और भीतर से समचतुरस्र (चौकोर), तथा नीचे पुष्कर (कमल) की कर्णिका के आकार के है। (उन भवनो के चारो ओर) गहरी और विस्तीर्ण खाइयाँ और परिखाएँ खुदी हुई होती है, जिनका अन्तर स्पष्ट (प्रतीत होता) है। (यथास्थान) प्राकारो (परकोटो), अटारियो, कपाटो, तोरणो और प्रतिद्वारो से (वे भवन) सुशोभित है। (तथा वे भवन) विविध यन्त्रो, शतघ्नियो (महाशिलाओ या महायष्टियो), मूसलो, मुसुण्ढी नामक शस्त्रो से चारो ओर वेष्टित (घिरे हुए) होते है, तथा वे शत्रुओ द्वारा अयोध्य (युद्ध न कर सकने योग्य), सदाजय (सदैव जयशील), सदागुप्त (सदैव सुरक्षित) एव अडतालीस कोठो (प्रकोष्ठो—कमरो) से रचित, अडतालीस वनमालाओ से सुसज्जित, क्षेममय (उपद्रवरहित), शिव (मगल)मय किकरदेवो के दण्डो से उपरिक्षत है। (गोबर आदि से) लीपने और (चूने आदि से) पोतने के कारण (वे भवन) प्रशस्त रहते है। (उन भवनो पर) गोशीर्षचन्दन और सरस रक्तचन्दन से (लिप्त) पाचो अगुलियो (वाले हाथ) के छापे लगे होते है। (यथास्थान) चन्दन के कलश (मागल्यघट) रखे होते हैं। उनके तोरण और प्रतिद्वारदेश के भाग चन्दन के घडो से सुशोभित (सुकृत) होते हैं। (वे भवन) ऊपर से नीचे तक लटकती हुई लम्बी विपुल एव गोलाकार पुष्पमालाओ के कलाप से युक्त होते है, तथा पचरगे ताजे सरस सुगन्धित पुष्पो के उपचार से भी युक्त होते है। वे काले अगर, श्रेष्ठ चीडा, लोबान तथा धूप की महकती हुई सुगन्ध से रमणीय, उत्तम सुगन्धित, होने से गधवट्टी के समान लगते है। वे अप्सरागण के सघो से व्याप्त, दिव्य वाद्यो के शब्दो से भलीभाति शब्दायमान, सर्वरत्नमय, स्वच्छ, चिकने (स्निग्ध), कोमल, घिसे हुए, पोछे हुए, रज से रहित, निर्मल, निष्पक, आवरणरहित कान्ति (छाया) वाले, प्रभायुक्त, श्रीसम्पन्न, किरणो से युक्त, उद्योतयुक्त (शीतल प्रकाश से युक्त), प्रसन्न करने वाले, दर्शनीय, अभिरूप (अतिरमणीय) एव सुरूप होते है। इन (पूर्वोक्त विशेषताओ से युक्त भवनो) मे पर्याप्त और अपर्याप्त भवनवासी देवो के स्थान कहे गए है।

(वे) उपपात की अपेक्षा से लोक के असख्यातवे भाग मे है, समुद्घात की अपेक्षा से लोक के असख्यातवे भाग मे हैं, और स्वस्थान की अपेक्षा से (भी) लोक के असख्यातवे भाग मे है। वहाँ बहुत-से भवनवासी देव निवास करते है। वे इस प्रकार है—

[गाथार्थ—] १-असुरकुमार, २-नागकुमार, ३-सुप(व)र्णकुमार, ४-विद्युत्कुमार, ५-अग्नि-कुमार, ६-द्वीपकुमार, ७-उदधिकुमार, ८-दिशाकुमार, ९-पवनकुमार और १०-स्तनितकुमार, इन नामो वाले दस प्रकार के ये भवनवासी देव है॥ १३७॥

इनके मुकुट या आभूषणो मे अकित चिह्न क्रमश इस प्रकार है—(१) चूडामणि, (२) नाग का फन, (३) गरुड, (४) वज्र, (५) पूर्णकलश चिह्न से अकित मुकुट, (६) सिंह, (७) मकर (मगरमच्छ), (८) हस्ती का चिह्न, (९) श्रेष्ठ अश्व और (१०) वर्द्धमानक (शरावसम्पुट=सकोरा), इनसे युक्त विचित्र चिह्नो वाले, सुरूप, महर्द्धिक (महती ऋद्धि वाले) महाद्युति (कान्ति) वाले, महान् बलशाली, महायशस्वी, महान् अनुभाग (अनुभाव—प्रभाव या शापानुग्रहसामर्थ्य) वाले, महान् (अतीव) सुख वाले, हार से सुशोभित वक्षस्थल वाले, कडो और बाजूबन्दो से स्तम्भित भुजा वाले, कपोलो को चिकने बनाने वाले अगद, कुण्डल तथा कर्णपीठ के धारक, हाथो मे विचित्र

(नानारूप) आभूषण वाले, विचित्र पुष्पमाला और मस्तक पर मुकुट धारण किये हुए, कल्याणकारी उत्तम वस्त्र पहने हुए, कल्याणकारी श्रेष्ठ माला और अनुलेपन के धारक, देदीप्यमान शरीर वाले, लम्बी वनमाला के धारक तथा दिव्य वर्ण से, दिव्य गन्ध से, दिव्य स्पर्श से, दिव्य सहनन से, दिव्य सस्थान (आकृति) से, दिव्य ऋद्धि से, दिव्य द्युति (कान्ति) से, दिव्य प्रभा से, दिव्य छाया (शोभा) से, दिव्य अर्चि (ज्योति) से, दिव्य तेज से एव दिव्य लेश्या से दसो दिशाओ को प्रकाशित करते हुए, सुशोभित करते हुए वे (भवनवासी देव) वहाँ अपने-अपने लाखो भवनावासो का, अपने-अपने हजारो सामानिकदेवो का, अपने-अपने त्रायस्त्रिश देवो का, अपने-अपने लोकपालो का, अपनी-अपनी अग्रमहिषियो का, अपनी-अपनी परिषदाओ का, अपने-अपने सैन्यो (अनीको) का, अपने-अपने सेनाधिपतियो का, अपने-अपने आत्मरक्षक देवो का, तथा अन्य बहुत-से भवनवासी देवो और देवियो का आधिपत्य, पौरपत्य (अग्रेसरत्व), स्वामित्व (नायकत्व), भर्तृत्व (पोषकत्व), महात्तरत्व (महानता), आज्ञैश्वरत्व (अपनी आज्ञा का पालन कराने का प्रभुत्व) एव सेनापतित्व (अपनी सेना को आज्ञा पालन कराने का प्राधान्य) करते-कराते हुए तथा पालन करते-कराते हुए, अहत (अव्याहत—व्याघात-रहित अथवा आहत-आख्यानको से प्रतिबद्ध) नृत्य, गीत, वादित, एव तन्त्री, तल, ताल (कासा), त्रुटित (वाद्य) और घनमृदग बजाने से उत्पन्न महाध्वनि के साथ दिव्य एव उपभोग्य भोगो को भोगते हुए विचरते है।

१७८ [१] कहि ण भंते ! असुरकुमाराण देवाण पज्जत्ताऽपज्जत्ताण ठाणा पण्णत्ता ? कहि ण भते ! असुरकुमारा देवा परिवसति ?

गोयमा ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए असीउत्तरजोयणसतसहस्सबाहल्लाए उवरिं एग जोयण-सहस्स ओगाहित्ता हेट्ठा वेग जोयणसहस्स वज्जेत्ता मज्झे अट्ठहुत्तरे जोयणसतसहस्से, एत्थ णं असुर-कुमाराण देवाण चोवट्ठि भवणावाससतसहस्सा हवतीति मक्खाय।

ते ण भवणा बाहिं वट्टा अतो चउरसा अहे पुक्खरकण्णियासठाणसठिता उक्किण्णतरविउल-गभीरखाय-परिहा पागार-ऽट्टालय-कवाड-तोरण-पडिदुवारदेसभागा जतसयग्घि मुसल-मुसु ढिपरियरिया अओज्झा सदाजया सदागुत्ता अडयालकोट्ठगरइया अडयालकयवणमाला खेमा सिवा किंकरामरदडोव-रक्खिया लाउल्लोइयमहिया गोसीस-सरसरत्तचदणदद्दरदिण्णपचगुलितला उवचितचदणकलसा चदण-घडसुकयतोरणपडिदुवारदेसभागा आसत्तोसत्तविउलवट्टवग्घारियमल्लदामकलावा पचवण्णसरससुरभि-मुक्कपुप्फपु जोवयारकलिया कालागरु-पवरकु दुरुक्क-तुरुक्कधूवमघमघेंतगधुद्धुयाभिरामा सुगधवर-गधगधिया गधवट्टिभूता अच्छरगणसघसविगिण्णा दिव्वतुडितसद्दसपणदिया सव्वरयणामया अच्छा सण्हा लण्हा घट्ठा मट्ठा णीरया निम्मला निप्पका णिक्ककडच्छाया सप्पभा समरीया सउज्जोया पासाईया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा, एत्थ ण असुरकुमाराण देवाण पज्जत्ताऽपज्जत्ताण ठाणा पण्णत्ता।

उववाएण लोयस्स असखेज्जइभागे, समुग्घाएण लोयस्स असखेज्जइभागे, सट्ठाणेण लोयस्स असखेज्जइभागे।

तत्थ ण बहवे असुरकुमारा देवा परिवसति, काला लोहियक्ख-बिबोट्ठा धवलपुप्फदता असिय-केसा वामेयकु डलधरा अद्दचदणाणुलित्तगत्ता, ईसीसिलिंधपुप्फपगासाइ असकिलिट्ठाइ सुहुमाइ वत्थाइ

पवरपरिहिया, वय च पढम समइक्कता, बिइय च असपत्ता, भद्दे जोव्वणे वट्टमाणा, तलभगय-तुडित-पवरभूसण-निम्मलमणि-रयणमडितभुया दसमुद्दामडियग्गहत्था चूडामणिचित्तचिधगता सुरूवा महिड्डीया महज्जुइया महायसा महब्बला महाणुभागा महासोक्खा हारविराइयवच्छा कडय-तुडियथभियभुया अगय-कु डल-मट्ठगडयलकण्णपीढधारी विचित्तहत्थाभरणा विचित्तमाला-मउली कल्लाणगपवरवत्थ-परिहिया कल्लाणगपवरमल्लाणुलेवणधरा भासुरबोदी पलबवणमालधरा दिव्वेण वण्णेण दिव्वेण गधेण दिव्वेण फासेण दिव्वेण सघयणेण दिव्वेण सठाणेण दिव्वाए इड्ढीए दिव्वाए जुईए दिव्वाए पभाए दिव्वाए छायाए दिव्वाए अच्चीए दिव्वेण तेएण दिव्वाए लेसाए दस दिसाओ उज्जोवेमाणा पभासे-माणा । ते ण तत्थ साण साण भवणावाससतसहस्साण साण साण सामाणियसाहस्सीण साण साण तायत्तीसाण साण साण लोगपालाण साण साण अग्गमहिसीण साण साण परिसाण साण साण अणियाण साण साण अणियाधिवतीण साण साण आयरक्खदेवसाहस्सीण अण्णेसि च बहूण भवणवासीण देवाण य देवीण य आहेवच्च पोरेवच्च सामिच्च भट्टित्त महत्तरगत्त आणाईसरसेणावच्च कारेमाणा पालेमाणा महताऽहतणट्ट-गीत-वाइयतती-तल-ताल-तुडिय-घणमुइगपडुप्पवाइयरवेण दिव्वाइ भोगभोगाइ भु जमाणा विहरति ।

[१७८-१ प्र] भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त असुरकुमार देवो के स्थान कहाँ कहे गए है ? असुरकुमार देव कहाँ निवास करते है ?

[१७८-१ उ] गौतम ! एक लाख अस्सी हजार योजन मोटी इस रत्नप्रभापृथ्वी के ऊपर एक हजार योजन अवगाहन करके और नीचे एक हजार योजन (प्रदेश) छोड कर, बीच मे (स्थित) जो एक लाख अठहत्तर हजार योजन (प्रदेश है,) वहाँ असुरकुमारदेवो के चौंसठ लाख भवन-आवास है, ऐसा कहा गया है ।

वे भवन (भवनावास) बाहर से गोल, अदर से चौरस (चौकोर), और नीचे से पुष्कर-(नील-कमल) कर्णिका के आकार मे सस्थित है । (उन भवनो के चारो ओर) गहरी और विस्तीर्ण खाइयाँ और परिखाएँ खुदी हुई है, जिनका अन्तर स्पष्ट (प्रतीत होता) है । (यथास्थान) प्राकारो (परकोटो), अटारियो, कपाटो, तोरणो और प्रतिद्वारो से भवनो के एकदेशभाग सुशोभित होते है, (तथा वे भवन) यत्रो, शतघ्नियो (महाशिलाओ या महायष्टियो), मूसलो और मुसुण्ढी नामक शस्त्रो से (चारो ओर से) वेष्टित (घिरे हुए) होते हैं, तथा शत्रुओ द्वारा अयोध्य (युद्ध न कर सकने योग्य), सदाजय, सदागुप्त (सदैव सुरक्षित) तथा अडतालीस कोठो से रचित, अडतालीस वनमालाओ से सुसज्जित, क्षेममय, शिवमय, किंकर-देवो के दण्डो से उपरक्षित है । (गोबर आदि से) लीपने और (चूने आदि से) पोतने के कारण (वे भवन) प्रशस्त रहते है । (उन भवनो पर) गोशीर्षचन्दन और सरस रक्तचन्दन से (लिप्त) पाचो अगुलियो (वाले हाथ) के छापे लगे होते हैं, (यथास्थान) चन्दन के (मागल्य) कलश रखे होते हैं । उनके तोरण और प्रतिद्वारदेश के भाग चन्दन के घडो से सुशोभित (सुकृत) होते हैं । (वे भवन) ऊपर से नीचे तक लटकती हुई लम्बी विपुल एव गोलाकार पुष्पमालाओ के समूह से युक्त होते है, तथा पचरगे ताजे सरस सुगन्धित पुष्पो के द्वारा उपचार से भी युक्त होते है । (वे भवन) काले अगर, श्रेष्ठ चीडा, लोबान तथा धूप की महकती हुई सुगन्ध से रमणीय, उत्तम सुगन्ध से सुगन्धित, गन्धवट्टी (अगरबत्ती) के समान लगते हैं । (वे भवन) अप्सरागण के सघो से व्याप्त,

दिव्य वाद्यो के शब्दो से शब्दायमान, सर्वरत्नमय, स्वच्छ, चिकने (स्निग्ध), कोमल, घिसे हुए, पोंछे हुए, रज से रहित, निर्मल, निष्पक (कलकरहित), आवरणरहित-कान्तिमान्, प्रभायुक्त, श्रीसम्पन्न, किरणो से युक्त, उद्योतयुक्त (प्रकाशमान), प्रसन्नता (आह्लाद) उत्पन्न करने वाले, दर्शनीय, अभिरूप (अतिरमणीय) एव प्रतिरूप (सुन्दर) होते है। इन (पूर्वोक्त विशेषताओ से युक्त भवनावासो) मे पर्याप्त और अपर्याप्त असुरकुमार देवो के स्थान कहे गए हैं।

(वे) उपपात की अपेक्षा से लोक के असख्यातवे भाग मे है, समुद्घात की अपेक्षा से लोक के असख्यातवे भाग मे है (और) स्वस्थान की अपेक्षा से (भी) लोक के असख्यातवे भाग मे (वे) हैं।

उन (पूर्वोक्त स्थानो) मे बहुत-से असुरकुमार देव निवास करते है। (वे असुरकुमार देव) काले, लोहिताक्षरत्न तथा बिम्बफल के समान ओठो वाले, श्वेत '(धवल) पुष्पो के समान दातो तथा काले केशो वाले, बाएँ एक कुण्डल के धारक, गीले चन्दन से लिप्त शरीर (गात्र) वाले, शिलिन्ध्र-पुष्प के समान थोडे-से प्रकाशमान (किञ्चित् रक्त) तथा सक्लेश उत्पन्न न करने वाले सूक्ष्म अतीव उत्तम वस्त्र पहने हुए, प्रथम (कौमार्य) वय को पार किये हुए (कुमारावस्था के किनारे पहुँचे हुए) और द्वितीय वय को असप्राप्त (प्राप्त नही किये हुए) (अतएव) भद्र (अतिप्रशस्त) यौवन मे वर्तमान होते है। (तथा वे) तलभगक (भुजा का आभूषणविशेष), त्रुटित (बाहुरक्षक) एव अन्यान्य श्रेष्ठ आभूषणो मे जटित निर्मल मणियो तथा रत्नो से मण्डित भुजाओ वाले, दस मुद्रिकाओ (अगूठियो) से सुशोभित अग्रहस्त (अगुलियो) वाले, चूडामणिरूप अद्भुत चिह्न वाले, सुरूप, महर्द्धिक, महाद्युतिमान, महायशस्वी, महाबली, महानुभाग (सामर्थ्य) युक्त, महासुखी, हार से सुशोभित वक्षस्थल वाले, कडो और बाजूबदो से स्तम्भित भुजा वाले, अगद एव कुण्डल से चिकने कपोल वाले तथा कर्णपीठ के धारक, हाथो मे विचित्र आभरण वाले, विचित्र पुष्पमाला मस्तक मे धारण किये हुए, कल्याणकारी उत्तम वस्त्र पहने हुए, कल्याणकारी श्रेष्ठ माला और अनुलेपन के धारक देदीप्यमान (चमकते हुए) शरीर वाले, लम्बी वनमाला के धारक तथा दिव्यवर्ण से, दिव्य गन्ध से, दिव्य स्पर्श से, दिव्य सहनन से, दिव्य सस्थान (शरीर के डीलडौल) से, दिव्य ऋद्धि से, दिव्य द्युति से, दिव्य प्रभा से, दिव्य छाया (कान्ति) से, दिव्य अर्चि (ज्योति) से, दिव्य तेज से और दिव्य लेश्या से दसो दिशाओ को प्रकाशित करते हुए, सुशोभित करते हुए वे (भवनवासी देव) वहाँ अपने-अपने लाखो भवनावासो का, अपने-अपने हजारो सामानिक देवो का, अपने-अपने त्रायस्त्रिश देवो का, अपने-अपने लोकपालो का, अपनी-अपनी अग्रमहिषियो का, अपनी-अपनी परिषदो का, अपनी-अपनी सेनाओ का, अपने-अपने सैन्याधिपतिदेवो का, अपने-अपने आत्मरक्षकदेवो का तथा और भी अन्य बहुत-से भवनवासी देवो और देवियो का आधिपत्य, पौरपत्य (अग्रेसरत्व), स्वामित्व (नेतृत्व), भर्तृत्व (पोषणकर्तृत्व), महत्तरत्व (महानता), आज्ञेश्वरत्व एव सेनापत्य करते-कराते तथा पालन करते-कराते हुए, महान् आहत से (बडे जोरो से अथवा महान् व्याघातरहित) नृत्य, गीत, वादित, तल, ताल, त्रुटित और घनमृदग के बजाने से उत्पन्न महाध्वनि के साथ दिव्य एव उपभोग्य भोगो का उपभोग करते हुए विहरण करते है।

[२] चमर-बलिणो यऽत्थ दुवे असुरकुमारिंदा असुरकुमाररायाणो परिवसंति काला महानीलसरिसा णीलगुलिय-गवल-अयसिकुसुमप्पगासा वियसियसयवत्तणिम्मलईसीसित-रत्त-तबणयणा गरुलाययउज्जुतुंगणासा ओयवियसिलप्पवालबिंबफलसन्निभाहरोट्ठा पडरससिसगलविमल-निम्मलदहि-

घण-सख-गोखीर-कु द-दगरय-मुणालियाधवलदंतसेढी हुयवहणिद्धंतधोयतत्ततवणिज्जरत्ततल-तालु-जीहा अंजण-घणकसिणरुयगरमणिज्जणिद्धकेसा वामेयकु डलधरा, अद्दचदणाणुलित्तगत्ता, ईसीसिलिंध-पुप्फपगासाइ असकिलिट्ठाइ सुहुमाइ वत्थाइ पवर परिहिया, वय च पढमं समइक्कता, बिइय तु असपत्ता, भद्दे जोव्वणे वट्टमाणा, तलभगय-तुडित-पवरभूसण-निम्मलमणि-रयणमडितभुया दसमुद्दा-मडियग्गहत्था चूडामणिचित्तचिधगता सुरूवा महिड्ढीया महज्जुईया महायसा महाबला महाणुभागा महासोक्खा हारविराइयवच्छा कडय-तुडियथमियभुया अगद-कु डल-मट्ठगडतलकण्णपीढधारी विचित्त-हत्थाभरणा विचित्तमाला-मउली कल्लाणगपवरवत्थपरिहिया कल्लाणगपवरमल्लाणुलेवणा भासुरबोंदी पलबवणमालधरा दिव्वेण वण्णेण दिव्वेण गधेण दिव्वेण फासेणं दिव्वेण सघयणेण दिव्वेण सठाणेण दिव्वाए इड्ढीए दिव्वाए जुतीए दिव्वाए पभाए दिव्वाए छायाए दिव्वाए अच्चीए दिव्वेण तेएण दिव्वाए लेसाए दस दिसाओ उज्जोवेमाणा पभासेमाणा । ते ण तत्थ साण साण भवणावाससत-सहस्साण साण साण सामाणियसाहस्सीण साण साण तायत्तीसाण साण साण लोगपालाण साण साण अग्गमहिसीण साण साण परिसाण साण साण अणियाण साण साण अणियाधिवतीण साणं साण आतरक्खदेवसाहस्सीण अण्णेसिं च बहूण भवणवासीण देवाण य देवीण य आहेवच्चं पोरेवच्च सामित्त भट्टित्त महयरगत्त आणाईसरसेणावच्च कारेमाणा पालेमाणा महताऽहतनट्ट-गीत-वाइततती-तल-ताल-तुडित-घणमुइगपडुप्पवाइतरवेण दिव्वाइ भोगभोगाइ भु जमाणा विहरति ।

[१७८-२] यहाँ (इन्ही स्थानो मे) जो दो असुरकुमारो के राजा—चमरेन्द्र और बलीन्द्र निवास करते है, वे काले, महानील के समान, नील की गोली, गवल (भैस के सीग), अलसी के फूल के समान (रग वाले), विकसित कमल (शतपत्र) के समान निर्मल, कही श्वेत, रक्त एव ताम्रवर्ण के नेत्रो वाले, गरुड के समान विशाल सीधी और ऊँची नाक वाले, पुष्ट या तेजस्वी (उप-चित) मू गा तथा बिम्बफल के समान अधरोष्ठ वाले, श्वेत विमल एव निर्मल चन्द्रखण्ड, जमे हुए दही, शख, गाय के दूध, कुन्द, जलकण और मृणालिका के समान धवल दन्तपक्ति वाले, अग्नि मे तपाये और धोये हुए तपनीय (सोने) के समान लाल तलवो, तालु तथा जिह्वा वाले, अजन तथा मेघ के समान काले, रुचकरत्न के समान रमणीय एव स्निग्ध (चिकने) केशो वाले, बाए एक कान मे कुण्डल के धारक, गीले (सरस) चन्दन से लिप्त शरीर वाले, शिलीन्ध्र-पुष्प के समान किंचित् लाल रग के एव क्लेश उत्पन्न न करने वाले (अत्यन्त सुखकर) सूक्ष्म एव अत्यन्त श्रेष्ठ वस्त्र पहने हुए, प्रथम वय (कौमार्य) को पार किये हुए, दूसरी वय को अप्राप्त, (अतएव) नवयौवन मे वर्तमान, तल-भगक, त्रुटित तथा अन्य श्रेष्ठ आभूषणो एव निर्मल मणियो और रत्नो से मण्डित भुजाओ वाले, दस मुद्रिकाओ (अगूठियो) से सुशोभित अग्रहस्त (हाथ की अगुलियो) वाले, विचित्र चूडामणि के चिह्न से युक्त, सुरूप, महर्द्धिक, महाद्युतिमान्, महायशस्वी, महाबलवान्, महासामर्थ्यशाली (प्रभाव-शाली), महासुखी, हार से सुशोभित वक्षस्थल वाले, कडो तथा बाजूबदो से स्तम्भित भुजाओ वाले, अगद, कुण्डल तथा कपोल भाग को मर्षण करने वाले कर्णपीठ (कर्णाभूषण) के धारक, हाथो मे विचित्र आभूषणो वाले, अद्भुत मालाओ से युक्त मुकुट वाले, कल्याणकारी श्रेष्ठ वस्त्र पहने हुए, कल्याणकारी श्रेष्ठ माला और अनुलेपन के धारक, देदीप्यमान (चमकते हुए) शरीर वाले, लम्बी वनमालाओ के धारक तथा दिव्य वर्ण से, दिव्य गन्ध से, दिव्य स्पर्श से, दिव्य सहनन से, दिव्य सस्थान (आकृति) से, दिव्य ऋद्धि से, दिव्य द्युति से, दिव्य प्रभा से, दिव्य कान्ति से, दिव्य अर्चि

(ज्योति) से, दिव्य तेज से और दिव्य लेश्या (शारीरिकवर्ण-सौन्दर्य) से दसो दिशाओं को प्रकाशित एव प्रभासित (सुशोभित) करते हुए, वे (असुरकुमारो के इन्द्र चमरेन्द्र और बलीन्द्र) वहाँ अपने-अपने लाखो भवनावासो का, अपने-अपने हजारो सामानिको का, अपने-अपने त्रायस्त्रिशक देवो का, अपने-अपने लोकपालो का, अपनी-अपनी अग्रमहिषियो का, अपनी-अपनी परिषदो का, अपनी-अपनी सेनाओ का, अपने-अपने सैन्याधिपतियो का, अपने-अपने हजारो आत्मरक्षक देवो का और अन्य बहुत-से भवनवासी देवो और देवियो का आधिपत्य, पौरपत्य (अग्रेसरत्व), स्वामित्व, भर्तृत्व, महत्तरकत्व (महानता) और आज्ञैश्वरत्व तथा सेनापत्य करते-कराते तथा पालन करते-कराते हुए महान् आहत (बडे जोर से, अथवा अहत—व्याघातरहित) नाट्य, गीत, वादित, (वजाए गए) तत्री, तल, ताल, त्रुटित और घनमृदग आदि से उत्पन्न महाध्वनि के साथ दिव्य उपभोग्य भोगो को भोगते हुए रहते हैं।

१७९. [१] कहि णं भंते ! दाहिणिल्लाण असुरकुमाराण देवाण पज्जत्ताऽपज्जत्ताण ठाणा पण्णत्ता ? कहि ण भते ! दाहिणिल्ला असुरकुमारा देवा परिवसति ?

गोयमा ! जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वतस्स दाहिणेण इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए असीउत्तर-जोयणसतसहस्सबाहल्लाए उवरिं एग जोयणसहस्स ओगाहित्ता हेट्ठा वेग जोयणसहस्स वज्जित्ता मज्झे अट्ठहत्तरे जोयणसतसहस्से, एत्थ ण दाहिणिल्लाण असुरकुमाराण देवाण चोत्तीस भवणावाससत-सहस्सा भवतीति मक्खात।

ते णं भवणा बाहिं वट्टा अतो चउरंसा, सो च्चेव वण्णओ[1] जाव पडिरूवा। एत्थ ण दाहिणिल्लाणं असुरकुमाराण देवाण पज्जत्ताऽपज्जत्ताण ठाणा पण्णत्ता। तिसु वि लोगस्स असखेज्जइभागे। तत्थ णं बहवे दाहिणिल्ला असुरकुमारा देवा य देवीओ य परिवसति। काला लोहियक्खा तहेव[2] जाव भुजमाणा विहरति। एतेसि ण तहेव[3] तायत्तीसगलोगपाला भवति। एव सव्वत्थ भाणितव्वं भवणवासीण।

[१७९-१ प्र] भगवन् ! पर्याप्त एव अपर्याप्त दाक्षिणात्य (दक्षिण दिशा वाले) असुरकुमार देवो के स्थान कहाँ कहे गए हैं ? भगवन् दाक्षिणात्य असुरकुमार देव कहाँ निवास करते है ?

[१७९-१ उ] गौतम ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे सुमेरुपर्वत के दक्षिण मे, एक लाख अस्सी हजार योजन मोटी इस रत्नप्रभापृथ्वी के ऊपर के एक हजार योजन अवगाहन करके तथा नीचे के एक हजार योजन छोड कर, बीच मे जो एक लाख अठहत्तर हजार योजन क्षेत्र है, वहाँ दाक्षिणात्य असुरकुमार देवो के एक लाख चौतीस हजार भवनावास है, ऐसा कहा गया है।

वे (दाक्षिणात्य असुरकुमारो के) भवन (भवनावास) बाहर से गोल और अन्दर से चौरस (चौकोर) हैं, शेष समस्त वर्णन यावत् 'प्रतिरूप है', तक सूत्र १७८-१ के अनुसार समझना चाहिए। यहाँ पर्याप्त और अपर्याप्त दाक्षिणात्य असुरकुमार देवो के स्थान कहे गए हैं, जो कि तीनो अपेक्षाओ

---

१ 'वण्णओ' से सूत्र १७८ [१] के अनुसार पाठ समझना चाहिए।

२ 'तहेव' से सूत्र १७८ [१] के अनुसार तत्स्थानीय पूर्ण पाठ ग्राह्य है।

३ 'तहेव' से सूत्र १७८-१ के अनुसार तत्स्थानीय समग्र पाठ समझना चाहिए।

(उपपात, समुद्घात एव स्वस्थान की अपेक्षा) से लोक के असख्यातवे भाग मे हैं। वहाँ दाक्षिणात्य असुरकुमार देव एव देवियाँ निवास करती हैं। वे (दाक्षिणात्य असुरकुमार देव) काले, लोहिताक्ष रत्न के समान ओठ वाले है, इत्यादि सब वर्णन यावत् 'भोगते हुए रहते हैं' (भु जमाणा विहरति) तक सूत्र १७८-१ के अनुसार समझना चाहिए।

इनके उसी प्रकार त्रायस्त्रिशक और लोकपाल देव आदि होते है, (जिन पर वे आधिपत्य आदि करते-कराते, पालन करते-कराते हुए यावत् विचरण करते हैं।) इस प्रकार सर्वत्र 'भवनवासियो के' ऐसा उल्लेख करना चाहिए।

[२] चमरे अत्थ असुरकुमारिंदे असुरकुमाराया परिवसति काले महानीलसरिसे जाव[1] पभासेमाणे।

से णं तत्थ चोत्तीसाए भवणावाससतसहस्साण चउसट्ठीए सामाणियसाहस्सीण तावत्तीसाए तायत्तीसाण चउण्ह लोगपालाण पंचण्ह अग्गमहिसीण सपरिवाराण तिण्ह परिसाणं सत्तण्ह अणियाण सत्तण्ह अणियाधिवतीण चउण्ह य चउसट्ठीण आयरक्खदेवसाहस्सीण अण्णेसिं च बहूण दाहिणिल्लाण देवाणं देवीण य आहेवच्च पोरेवच्च जाव[1] विहरति।

[१७९-२] इन्ही (पूर्वोक्त स्थानो) मे (दाक्षिणात्य) असुरकुमारो का इन्द्र असुरराज चमरेन्द्र निवास करता है, वह कृष्णवर्ण है, महानीलसदृश है, इत्यादि सारा वर्णन यावत् प्रभासित-सुशोभित करता हुआ ('पभासेमाणे') तक सूत्र १७८-२ के अनुसार समझना चाहिए।

वह (चमरेन्द्र) वहाँ चौतीस लाख भवनावासो का, चौसठ हजार सामानिको का, तेतीस त्रायस्त्रिशक देवो का, चार लोकपालो का, पाच सपरिवार अग्रमहिषियो का, तीन परिषदो का, सात सेनाओ का, सात सेनाधिपति देवो का, चार चौसठ हजार—अर्थात्—दो लाख छप्पन हजार आत्मरक्षक देवो का तथा अन्य बहुत-से दाक्षिणात्य असुरकुमार देवो और देवियो का आधिपत्य एव अग्रेसरत्व करता हुआ यावत् विचरण करता है।

१८०. [१] कहि ण भते ! उत्तरिल्लाण असुरकुमाराण देवाण पज्जत्ताऽपज्जत्ताण ठाणा पण्णत्ता ? कहि ण भते ! उत्तरिल्ला असुरकुमारा देवा परिवसति ?

गोयमा ! जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स उत्तरेण इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए[2] असीउत्तर-जोयणसयसहस्सबाहल्लाए उवरिं एग जोयणसहस्सं ओगाहेत्ता हेट्ठा वेग जोयणसहस्स वज्जेत्ता मज्झे अट्ठहत्तरे जोयणसतसहस्से, एत्थ णं उत्तरिल्लाण असुरकुमाराण देवाण तीस भवणावाससतसहस्सा भवतीति मक्खात।

ते ण भवणा बाहिं वट्टा अतो चउरसा, सेस जहा[1] दाहिणिल्लाण जाव[1] विहरति।

---

१ 'जाव' तथा 'जहा' से सूचित तत्स्थानीय समग्र पाठ समझना चाहिए।

२ ग्रन्थागम् ११००

[१८०-१ प्र] भगवन् ! उत्तरदिशा मे पर्याप्त और अपर्याप्त असुरकुमार देवो के स्थान कहाँ कहे गए है ? भगवन् ! उत्तरदिशा के असुरकुमार देव कहाँ निवास करते हैं ?

[१८०-१ उ] गौतम ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे, सुमेरुपर्वत के उत्तर मे, एक लाख अस्सी हजार योजन मोटी इस रत्नप्रभापृथ्वी के ऊपर एक हजार योजन अवगाहन करके तथा नीचे (भी) एक हजार योजन छोड कर, मध्य मे एक लाख अठहत्तर हजार योजन प्रदेश मे, वहाँ उत्तरदिशा के असुरकुमार देवो के तीस लाख भवनावास है, ऐसा कहा गया है। वे भवन (भवनावास) वाहर से गोल और अन्दर से चौरस (चौकोर) है, शेष सब वर्णन यावत् विचरण करते ह (विहरति) तक, दाक्षिणात्य असुरकुमार देवो के समान (सूत्र १७९-१ के अनुसार) जानना चाहिए।

[२] बली यऽत्थ वइरोयणिंदे वइरोयणराया परिवसति काले महानीलसरिसे जाव (सु १७८ [२]) पभासेमाणे। से ण तत्थ तीसाए भवणावाससयसहस्साण सट्ठीए सामाणियसाहस्सीण तावत्तीसाए तायत्तीसगाण चउण्ह लोगपालाण पचण्ह अग्गमहिसीण सपरिवाराण तिण्ह परिसाण सत्तण्ह अणियाण सत्तण्ह अणियाधिवतीण चउण्ह य सट्ठीण आयरक्खदेवसाहस्सीण अण्णेसि च बहूण उत्तरिल्लाण असुरकुमाराण देवाण य देवीण य आहेवच्च पोरेवच्च कुव्वमाणे विहरति।

[१८०-२] इन्ही (पूर्वोक्त स्थानो) मे वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज बलीन्द्र निवास करता है, (जो) कृष्णवर्ण है, महानीलसदृश है, इत्यादि समग्र वर्णन यावत् 'प्रभासित-सुशोभित करता हुआ' ('पभासमाणे' तक सूत्र १७८-२ से अनुसार समझना चाहिए।) वह वहाँ तीस लाख भवनावासो का, साठ हजार सामानिक देवो का, तैतीस त्रायस्त्रिशक देवो का, चार लोकपालो का, सपरिवार पाच अग्रमहिषियो का, तीन परिषदो का, सात सेनाओ का, सात सेनाधिपति देवो का, चार साठ हजार अर्थात् दो लाख चालीस हजार आत्मरक्षक देवो का तथा और भी बहुत-से उत्तरदिशा के असुरकुमार देवो और देवियो का आधिपत्य एव पुरोवर्त्तित्व (अग्रेसरत्व) करता हुआ विचरण करता है।

१८१ [१] कहि ण भते ! णागकुमाराण देवाण पज्जत्ताऽपज्जत्ताण ठाणा पण्णत्ता ? कहि ण भते ! णागकुमारा देवा परिवसति ?

गोयमा ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए असीउत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए उर्वार एग जोयण-सहस्स ओगाहित्ता हेट्ठा वेग जोयणसहस्स वज्जिऊण मज्झे अट्ठहत्तरे जोयणसयसहस्से, एत्थ ण णाग-कुमाराण देवाण पज्जत्ताऽपज्जत्ताण चुलसीइ भवणावाससयसहस्सा हवतीति मक्खात।

ते ण भवणा बाहि वट्टा अतो चउरसा जाव (सु १७७) पडिरूवा। तत्थ ण णागकुमाराण देवाण पज्जत्ताऽपज्जत्ताण ठाणा पण्णत्ता। तिसु वि लोगस्स असखेज्जइभागे। तत्थ ण बहवे णागकुमारा देवा परिवसति महिड्ढीया महाजुतीया, सेस जहा ओहियाण (सु १७७) जाव विहरति।

[१८१-१ प्र] भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त नागकुमार देवो के स्थान कहाँ कहे गए है ? भगवन् ! नागकुमार देव कहाँ निवास करते है ?

[१८१-१ उ] गौतम ! एक लाख अस्सी हजार योजन मोटी इस रत्नप्रभापृथ्वी के ऊपर

एक हजार योजन अवगाहन करके और नीचे एक हजार योजन छोड कर वीच मे एक लाख अठहत्तर हजार योजन (प्रदेश) मे, पर्याप्त और अपर्याप्त नागकुमार देवो के चौरासी लाख भवनावास (भवन) हैं, ऐसा कहा है। वे भवन बाहर से गोल और अन्दर से चौरस (चौकोर) हैं, यावत् प्रतिरूप (अत्यन्त सुन्दर) है तक, (सू १७७ के अनुसार सारा वर्णन जानना चाहिए।)

वहाँ (पूर्वोक्त भवनावासो मे) पर्याप्त और अपर्याप्त नागकुमार देवो के स्थान कहे गए है। तीनो अपेक्षाओ से (उपपात, समुद्घात और स्वस्थान की अपेक्षा से) (वे स्थान) लोक के असख्यातवे भाग मे है। वहाँ बहुत-से नागकुमार देव निवास करते है। वे महर्द्धिक है, महाद्युति वाले है, इत्यादि शेष वर्णन, यावत् विचरण करते है (विहरति) तक, औधिको (सामान्य भवनवासी देवो) के समान (सू १७७ के अनुसार समझना चाहिए।)

[२] धरण-भूयाणदा एत्थ दुहे णागकुमारिंदा णागकुमाररायाणो परिवसति महिड्ढीया, सेस जहा ओहियाण जाव (सु. १७७) विहरति।

[१८१-२] यहाँ (इन्ही पूर्वोक्त स्थानो मे) जो दो नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज—धरणेन्द्र और भूतानन्देन्द्र—निवास करते हैं, (वे) महर्द्धिक है, शेष वर्णन औधिको (सामान्य भवनवासियो) के समान (सूत्र १७७ के अनुसार) यावत् 'विचरण करते हैं' (विहरति) तक समझना चाहिए।

१८२ [१] कहि ण भते! दाहिणिल्लाण णागकुमाराण देवाण पज्जत्ताऽपज्जत्ताण ठाणा पण्णत्ता? कहि ण भते! दाहिणिल्ला णागकुमारा देवा परिवसति?

गोयमा! जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स दाहिणेण इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए असीउत्तर-जोयणसयसहस्सबाहल्लाए उवरि एग जोयणसहस्सं ओगाहेत्ता हेट्ठा वेगं जोयणसहस्सं वज्जेत्ता मज्झे अट्ठहत्तरे जोयणसयसहस्से, एत्थ ण दाहिणिल्लाण णागकुमाराण देवाण चोयालीस भवणावाससय-सहस्सा भवतीति मक्खात।

ते ण भवणा बाहिं वट्टा अतो चउरसा जाव[१] पडिरूवा। एत्थ ण दाहिणिल्लाण णागकुमाराण देवाण पज्जत्ताऽपज्जत्ताण ठाणा पण्णत्ता। तिसु वि लोगस्स असखेज्जइभागे। एत्थ ण बहवे दाहिणिल्ला नागकुमारा देवा परिवसति महिड्ढीया जाव (सू १७७) विहरति।

[१८२-१ प्र] भगवन्! पर्याप्त और अपर्याप्त दाक्षिणात्य नागकुमारो के स्थान कहाँ कहे गए है? भगवन्! दाक्षिणात्य नागकुमार देव कहाँ निवास करते हैं?

[१८२-१ उ] गौतम! जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे सुमेरुपर्वत के दक्षिण मे, एक लाख अस्सी हजार मोटी इस रत्नप्रभापृथ्वी के ऊपर एक हजार योजन अवगाह करके और नीचे एक हजार योजन छोड कर, मध्य मे एक लाख अठहत्तर हजार योजन (प्रदेश) मे, यहाँ दाक्षिणात्य नागकुमार देवो के चवालीस लाख भवन हैं, ऐसा कहा गया है।

वे भवन (भवनावास) बाहर से गोल और भीतर से चौरस हैं, यावत् प्रतिरूप (अतीव सुन्दर) हैं। यहाँ (इन्ही भवनावासो मे) दाक्षिणात्य पर्याप्त और अपर्याप्त नागकुमारो के स्थान कहे गए है।

१ 'जाव' शब्द से तत्स्थानीय समग्र वर्णन सू १७७ के अनुसार समझना चाहिए।

(वे स्थान) तीनो अपेक्षाओ से (उपपात, समुद्घात और स्वस्थान की अपेक्षा से) लोक के असख्यातवें भाग मे है, जहाँ कि बहुत-से दाक्षिणात्य नागकुमार देव निवास करते है, जो महर्द्धिक है, (इत्यादि शेष समग्र वर्णन) यावत् विचरण करते हे (विहरति) तक (सू १७७ के अनुसार समझना चाहिए ।)

[२] धरणे यऽत्थ णागकुमारिंदे णागकुमारराया परिवसति महिड्ढीए जाव (सु १७८) पभासेमाणे । से णं तत्थ चोयालीसाए भवणावाससयसहस्साण छण्ह सामाणियसाहस्सीण तायत्तीसाए तायत्तीसगाण चउण्ह लोगपालाण पचण्ह अग्गमहिसीण सपरिवाराण तिण्ह परिसाण सत्तण्ह अणिया-ण सत्तण्हं अणियाधिवतीण चउव्वीसाए आयरक्खदेवसाहस्सीण अण्णेसिं च बहूण दाहिणिल्लाण नाग-कुमाराणं देवाण य देवीण य आहेवच्च पोरेवच्च कुव्वमाणे विहरति ।

[१८२-२] इन्ही (पूर्वोक्त स्थानो) मे नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज धरणेन्द्र निवास करता है, जो कि महर्द्धिक है, (इत्यादि समग्र वर्णन) यावत् प्रभासित करता हुआ ('पभासमाणे') तक (सू १७८-२ के अनुसार समझना चाहिए ।)

वहाँ वह (धरणेन्द्र) चवालीस लाख भवनावासो का, छह हजार सामानिको का, तेतीस त्रायस्त्रिशक देवो का, चार लोकपालो का, सपरिवार पाच अग्रमहिषियो का, तीन परिषदो का, सात सैन्यो का, सात सेनाधिपति देवो का, चौवीस हजार आत्मरक्षक देवो का और अन्य बहुत-से दाक्षिणात्य नागकुमार देवो और देवियो का आधिपत्य और अग्रेसरत्व करता हुआ विचरण करता है ।

१८३ [१] कहि ण भते ! उत्तरिल्लाण णागकुमाराण देवाण पज्जत्ताऽपज्जत्ताण ठाणा पण्णत्ता ? कहि ण भते ! उत्तरिल्ला णागकुमारा देवा परिवसति ?

गोयमा ! जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वतस्स उत्तरेण इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए असीउत्तर-जोयणसतसहस्सबाहल्लाए उवरिं एग जोयणसहस्स ओगाहेत्ता हेट्ठा वेग जोयणसहस्स वज्जेत्ता मज्झे अट्ठहत्तरे जोयणसतसहस्से, एत्थ ण उत्तरिल्लाण णागकुमाराण देवाण चत्तालीस भवणावाससतसहस्सा भवतीति मक्खात ।

ते ण भवणा बाहिं वट्टा सेस जहा दाहिणिल्लाण (सु १८२ [१]) जाव विहरति ।

[१८३-१ प्र] भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त उत्तरदिशा के नागकुमार देवो के स्थान कहाँ कहे गए है ? भगवन् ! उत्तरदिशा के नागकुमार देव कहाँ निवास करते है ?

[१८३-१ उ] गौतम ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे, सुमेरुपर्वत के उत्तर मे, एक लाख अस्सी हजार योजन मोटी इस रत्नप्रभापृथ्वी के ऊपर एक हजार योजन अवगाहन करके तथा नीचे एक हजार योजन छोड कर, बीच मे एक लाख अठहत्तर हजार योजन (प्रदेश) मे, वहाँ उत्तरदिशा के नागकुमार देवो के चालीस लाख भवनावास हैं, ऐसा कहा गया है । वे भवन (भवनावास) बाहर से गोल है, शेष सारा वर्णन दाक्षिणात्य नागकुमारो के वर्णन, सू १८२-१ के अनुसार यावत् विचरण करते हैं (विहरति) (तक समझ लेना चाहिए ।)

[२] भूयाणदे यऽत्थ णागकुमारिंदे नागकुमारराया परिवसति महिड्ढीए जाव (सु १७७) पभासेमाणे। से ण तत्थ चत्तालीसाए भवणावाससतसहस्साणं आहेवच्चं जाव[1] (सु १७७) विहरति।

[१८३-२] इन्ही (पूर्वोक्त स्थानो) मे (औदीच्य) नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज भूतानन्द निवास करता है, जो कि महर्द्धिक है, (शेप वर्णन) यावत् प्रभासित करता हुआ ('पभासमाणे') तक (सू १७७ के अनुसार समझ लेना चाहिए।)

वहाँ वह (भूतानन्देन्द्र) चालीस लाख भवनावासो का यावत् आधिपत्य एव अग्रेसरत्व करता हुआ विचरण करता है, तक (सारा वर्णन सू १७७ के अनुसार समझ लेना चाहिए।)

१८४ [१] कहि ण भते! सुवण्णकुमाराण देवाण पज्जत्ताऽपज्जत्ताण ठाणा पण्णत्ता? कहि ण भते! सुवण्णकुमारा देवा परिवसति?

गोयमा! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए जाव एत्थ ण सुवण्णकुमाराण देवाण बावत्तरिं भवणावाससतसहस्सा भवतीति मक्खात। ते ण भवणा बाहिं वट्टा जाव पडिरूवा। तत्थ ण सुवण्णकुमाराण देवाण पज्जत्ताऽपज्जत्ताण ठाणा पण्णत्ता। तिसु वि लोगस्स असखेज्जइभागे। तत्थ ण बहवे सुवण्णकुमारा देवा परिवसति महिड्ढीया, सेस जहा ओहियाण (सु १७७) जाव विहरति।

[१८४-१ प्र] भगवन्! पर्याप्त और अपर्याप्त सुपर्णकुमार देवो के स्थान कहाँ कहे गए है? भगवन्! सुपर्णकुमार देव कहाँ निवास करते है?

[१८४-१ उ] गौतम! इस रत्नप्रभापृथ्वी के एक-एक हजार ऊपर और नीचे के भाग को छोड कर शेष भाग मे यावत् सुपर्णकुमार देवो के बहत्तर लाख भवनावास हैं, ऐसा कहा गया है। वे भवन (भवनावास) बाहर से गोल यावत् प्रतिरूप तक (समग्र वर्णन पूर्ववत् समझना चाहिए।) वहाँ पर्याप्त और अपर्याप्त सुपर्णकुमार देवो के स्थान कहे गए है। (वे स्थान) (पूर्वोक्त) तीनो अपेक्षाओ से लोक के असख्यातवे भाग मे है। वहाँ बहुत-से सुपर्णकुमार देव निवास करते है, जो कि महर्द्धिक हैं, (इत्यादि समग्र वर्णन) यावत् 'विचरण करते हैं' (तक) औघिक (सामान्य असुरकुमारो) की तरह (सू १७७ के अनुसार समझना चाहिए।)

[२] वेणुदेव-वेणुदाली यऽत्थ सुवण्णकुमारिंदा सुवण्णकुमाररायाणो परिवसति महड्ढीया जाव (सु. १७७) विहरति।

[१८४-२] इन्ही (पूर्वोक्त स्थानो) मे दो सुपर्णकुमारेन्द्र सुपर्णकुमारराज—वेणुदेव और वेणुदाली निवास करते हैं, जो महर्द्धिक हैं, (शेष समग्र वर्णन सू १७७ के अनुसार) यावत् 'विचरण करते हैं', तक समझ लेना चाहिए।

१८५ [१] कहि ण भते! दाहिणिल्लाण सुवण्णकुमाराणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता? कहि ण भते! दाहिणिल्ला सुवण्णकुमारा देवा परिवसति?

गोयमा! इमीसे जाव मज्झे अट्ठहत्तरे जोयणसतसहस्से, एत्थ ण दाहिणिल्लाण सुवण्णकुमाराण अट्ठत्तीस भवणावाससतसहस्सा भवतीति मक्खातं। ते ण भवणा बाहिं वट्टा जाव पडिरूवा।

---

१ 'जाव' एव 'जहा' शब्द से तत्स्थानीय समग्र वर्णन सकेतित सूत्र के अनुसार समझ लेना चाहिए।

एत्थ णं दाहिणिल्लाण सुवण्णकुमाराण पज्जत्ताऽपज्जत्ताण ठाणा पण्णत्ता । तिसु वि लोगस्स असखेज्जइभागे । एत्थ ण बहवे सुवण्णकुमारा देवा परिवसति ।

[१८५-१ प्र.] भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त दाक्षिणात्य सुपर्णकुमारो के स्थान कहाँ कहे गए है ? भगवन् ! दाक्षिणात्य सुपर्णकुमार देव कहाँ निवास करते है ?

[१८५-१ उ] गौतम ! इसी रत्नप्रभापृथ्वी के यावत् मध्य मे एक लाख अठहत्तर हजार योजन (प्रदेश) मे, दाक्षिणात्य सुपर्णकुमारो के अडतीस लाख भवनावास हैं, ऐसा कहा गया है। वे भवन (भवनावास) बाहर से गोल यावत् प्रतिरूप है, (यहाँ तक का शेष वर्णन पूर्ववत् समझना चाहिए), यहाँ पर्याप्तक और अपर्याप्तक दाक्षिणात्य सुपर्णकुमारो के स्थान कहे गए है। (वे स्थान) तीनो (पूर्वोक्त) अपेक्षाओ से लोक के असख्यातवे भाग मे है। यहाँ बहुत-से सुपर्णकुमार देव निवास करते है ।

[२] वेणुदेवे यऽत्थ सुवण्णिदे सुवण्णकुमारराया परिवसइ। सेसं जहा णागकुमाराण (सु १८२ [२]) ।

[१८५-२] इन्ही (पूर्वोक्त स्थानो) मे (दाक्षिणात्य) सुपर्णेन्द्र सुपर्णकुमारराज वेणुदेव निवास करता है, शेष सारा वर्णन नागकुमारो के वर्णन की तरह (सू. १८२-२ के अनुसार) समझ लेना चाहिए ।

१८६ [१] कहि णं भते ! उत्तरिल्लाण सुवण्णकुमाराण देवाण पज्जत्ताऽपज्जत्ताण ठाणा पण्णत्ता ? कहि ण भते ! उत्तरिल्ला सुवण्णकुमारा देवा परिवसति ?

गोयमा ! इमीसे रयणप्पभाए जाव एत्थ ण उत्तरिल्लाण सुवण्णकुमाराण चोत्तीस भवणावाससतसहस्सा भवतीति मक्खात । ते णं भवणा जाव एत्थ णं बहवे उत्तरिल्ला सुवण्णकुमारा देवा परिवसति महिड्ढिया जाव (सु १७७) विहरति ।

[१८६-१ प्र] भगवन् ! उत्तरदिशा के पर्याप्त और अपर्याप्त सुपर्णकुमार देवो के स्थान कहाँ कहे गए हैं ? भगवन् ! उत्तरदिशा के सुपर्णकुमार देव कहाँ निवास करते हैं ?

[१८६-१ उ] गौतम ! एक लाख अस्सी हजार योजन मोटी इस रत्नप्रभापृथ्वी के एक लाख अठहत्तर योजन मे, आदि (समग्र वर्णन पूर्ववत् कहना चाहिए।) यावत् 'यहाँ उत्तरदिशा के सुपर्णकुमार देवो के चौतीस लाख भवनावास है, ऐसा कहा गया है। वे भवन (भवनावास) (जिनका समग्र वर्णन पूर्ववत् समझना चाहिए) यावत् यहाँ (इन्ही भवनावासो मे) बहुत-से उत्तरदिशा के सुपर्णकुमार देव निवास करते है, जो कि महर्द्धिक है, यावत् विचरण करते है (तक का शेष समग्र वर्णन सू. १७७ के अनुसार) समझ लेना चाहिए ।

[२] वेणुदाली यऽत्थ सुवण्णकुमारिंदे सुवण्णकुमारराया परिवसति महिड्ढीए, सेस जहा णागकुमाराणं (सु. १८३[२]) ।

[१८६-२] इन्ही (पूर्वोक्त स्थानो) मे यहाँ सुपर्णकुमारेन्द्र सुपर्णकुमारराज वेणुदाली निवास

करता है, जो महर्द्धिक है, शेष सारा वर्णन नागकुमारो की तरह (सू १८३-२ के अनुसार) समझना चाहिए।

१८७. एव जहा सुवण्णकुमाराण वत्तव्वया भणिता तहा सेसाण वि चोद्दसण्ह इदाण भाणितव्वा। नवर भवणनाणत्तं इदणाणत्त वण्णणाणत्त परिहाणणाणत्त च इमाहि गाहाहि अणुगतव्व--

चोवट्ठि असुराणं १ चुलसीती चेव होति णागाण २।
बावत्तरि सुवण्णे ३ वाउकुमाराण छण्णउई ४ ॥१३८॥
दीव-दिसा-उदहीण विज्जुकुमारिंद-थणिय-मग्गीण।
छण्ह पि जुअलयाण छावत्तरिमो सतसहस्सा १० ॥१३९॥
चोत्तीसा १ चोयाला २ अट्ठत्तीस च सयसहस्साइं ३।
पण्णा ४ चत्तालीसा ५-१० दाहिणओ होति भवणाइ ॥१४०॥
तीसा १ चत्तालीसा २ चोत्तीस चेव सयसहस्साइ ३।
छायाला ४ छत्तीसा ५-१० उत्तरओ होति भवणाइं ॥१४१॥
चउसट्ठी मट्ठी, १ खलु छ च्च सहस्सा २-१० उ असुरवज्जाण।
सामाणिया उ एए, चउग्गुणा आयरक्खा उ ॥१४२॥
चमरे १ धरणे २ तह वेणुदेव ३ हरिकत ४ अग्गिसीहे य।
पुण्णे ६ जलकते या ७ अमिय ८ विलबे य ९ घोसे य १० ॥१४३॥
बलि १ भूयाणदे २ वेणुदालि ३ हरिस्सहे ४ अग्गिमाणव ५ वसिट्ठे ६।
जलप्पहे ७ अमियवाहण ८ पभजणे या ९ महाघोसे १० ॥१४४॥

उत्तरिल्लाण जाव विहरति।

काला असुरकुमारा, णागा उदही य पडरा दो वि।
वरकणगणिहसगोरा होति सुवण्णा दिसा थणिया ॥१४५॥
उत्तत्तकणगवन्ना विज्जू अग्गी य होति दीवा य।
सामा पियगुवण्णा वाउकुमारा मुणेयव्वा ॥१४६॥
असुरेसु होति रत्ता, सिलिंधपुप्फप्पभा अ नागुदही।
आसासगवसणधरा होति सुवण्णा दिसा थणिया ॥१४७॥
णीलाणुरागवसणा विज्जू अग्गी य होति दीवा य।
सझाणुरागवसणा वाउकुमारा मुणेयव्वा ॥१४८॥

[१८७] इस प्रकार जैसी वक्तव्यता सुपर्णकुमारो की कही है, वैसी ही शेष भवनवासियो की भी और उनके चौदह इन्द्रो की भी कहनी चाहिए। विशेषता यह है कि उनके भवनो की सख्या मे, इन्द्रो के नामो मे, उनके वर्णों तथा परिधानो (वस्त्रो) मे अन्तर है, जो इन गाथाओ द्वारा समझ लेना चाहिए

(गाथाओ का अर्थ—) भवनावास—१—(असुरकुमारो के) चौसठ लाख है, २—(नागकुमारो के) चौरासी लाख है, ३—(सुपर्णकुमारो के) वहत्तर लाख हे, ४—(वायुकुमारो के) छियानवे लाख है ॥१३८॥ ५ से १० तक अर्थात् (द्वीपकुमारो, दिशाकुमारो, उदधिकुमारो, विद्युत्कुमारो, स्तनितकुमारो और अग्निकुमारो,) इन छहो के युगलो के प्रत्येक के छहत्तर-छहत्तर लाख (भवनावास) है ॥ १३९ ॥

दक्षिणदिशा के (असुरकुमारो आदि के) भवनो की सख्या (इस प्रकार है)—१—(असुरकुमारो के) चौतीस लाख, २—(नागकुमारो के) चवालीस लाख, ३—(सुपर्णकुमारो के) अडतीस लाख, ४—(वायुकुमारो के) पचास लाख, ५ से १० तक—(द्वीपकुमारो, उदधिकुमारो, विद्युत्कुमारो, स्तनितकुमारो और अग्निकुमारो के) प्रत्येक के चालीस-चालीस लाख भवन (भवनावास) है ॥१४०॥

उत्तरदिशा के (असुरकुमारो आदि के) भवनो की सख्या (इस प्रकार है—) १—(असुरकुमारो के) तीस लाख, २—(नागकुमारो के) चालीस लाख, ३—(सुपर्णकुमारो के) चौतीस लाख, ४—(वायुकुमारो के) छयालीस लाख, ५ से १०तक—अर्थात् द्वीपकुमारो, दिशाकुमारो, उदधिकुमारो, विद्युत्कुमारो, स्तनितकुमारो और अग्निकुमारो के प्रत्येक के छत्तीस-छत्तीस लाख भवन है ॥१४१॥

सामानिको और आत्मरक्षको की सख्या—इस प्रकार है—१—(दक्षिण दिशा के) असुरेन्द्र के ६४ हजार और (उत्तरदिशा के असुरेन्द्र के) ६० हजार है, असुरेन्द्र को छोड कर (शेष सब २ से १०—दक्षिण-उत्तर के इन्द्रो के प्रत्येक) के छह-छह हजार सामानिकदेव हैं। आत्मरक्षकदेव (प्रत्येक इन्द्र के सामानिको की अपेक्षा) चौगुने-चौगुने होते है ॥ १४२ ॥

दाक्षिणत्य इन्द्रो के नाम— १—(असुरकुमारो का) चमरेन्द्र, २—(नागकुमारो का) धरणेन्द्र, ३—(सुपर्णकुमारो का) वेणुदेवेन्द्र, ४—(विद्युत्कुमारो का) हरिकान्त, ५—(अग्निकुमारो का) अग्निसिंह (या अग्निशिख), ६—(द्वीपकुमारो का) पूर्णेन्द्र, ७—(उदधिकुमारो का) जलकान्त, ८—(दिशाकुमारो का) अमित, ९—(वायुकुमारो का) वैलम्ब और १०—(स्तनितकुमारो का) इन्द्रघोष है ॥ १४३ ॥

उत्तरदिशा के इन्द्रो के नाम— १—(असुरकुमारो का) बलीन्द्र, २—(नागकुमारो का) भूतानन्द, ३—(सुपर्णकुमारो का) वेणुदालि, ४—(विद्युत्कुमारो का) हरिस्सह, ५—(अग्निकुमारो का) अग्निमाणव, ६—द्वीपकुमारो का वशिष्ठ, ७—(उदधिकुमारो का) जलप्रभ, ८—(दिशाकुमारो का) अमितवाहन, ९—(वायुकुमारो का) प्रभजन और १०—(स्तनितकुमारो का) महाघोष इन्द्र है ॥ १४४ ॥

(ये दसो) उत्तरदिशा के इन्द्र यावत् विचरण करते है।

वर्णो का कथन—सभी असुरकुमार काले वर्ण के होते है, नागकुमारो और उदधिकुमारो का वर्ण पाण्डुर अर्थात्—शुक्ल होता है, सुपर्णकुमार, दिशाकुमार और स्तनितकुमार कसौटी (निकष-पाषाण) पर बनी हुई श्रेष्ठ स्वर्णरेखा के समान गौर वर्ण के होते हैं ॥ १४५ ॥

विद्युत्कुमार, अग्निकुमार और द्वीपकुमार तपे हुए सोने के समान (किञ्चित् रक्त) वर्ण के होते है और वायुकुमार श्याम प्रियगु के वर्ण के समझने चाहिए ॥ १४६ ॥

इनके वस्त्रो के वर्ण—असुरकुमारो के वस्त्र लाल होते है, नागकुमारो और उदधिकुमारो के

करता है, जो महर्द्धिक है, शेष सारा वर्णन नागकुमारो की तरह (सू. १८३-२ के अनुसार) समझना चाहिए।

१८७. एवं जहा सुवण्णकुमाराणं वत्तव्वया भणिता तहा सेसाण वि चोद्दसण्ह इंदाणं भाणितव्वा। नवरं भवणनाणत्तं इंदणाणत्तं वण्णणाणत्तं परिहाणणाणत्तं च इमाहिं गाहाहिं अणुगतव्वं--

चोवट्ठि असुराणं १ चुलसीती चेव होंति णागाणं २ ।
बावत्तरिं सुवण्णे ३ वाउकुमाराण छण्णउई ४ ॥१३८॥
दीव-दिसा-उदहीणं विज्जुकुमारिंद-थणिय-मग्गीणं ।
छण्हं पि जुअलयाणं छावत्तरिमो सतसहस्सा १० ॥१३९॥
चोत्तीसा १ चोयाला २ अट्ठत्तीसं च सयसहस्साइं ३ ।
पण्णा ४ चत्तालीसा ५-१० दाहिणओ होंति भवणाइं ॥१४०॥
तीसा १ चत्तालीसा २ चोत्तीसं चेव सयसहस्साइं ३ ।
छायाला ४ छत्तीसा ५-१० उत्तरओ होंति भवणाइं ॥१४१॥
चउसट्ठी सट्ठी, १ खलु छ च्च सहस्सा २-१० उ असुरवज्जाणं ।
सामाणिया उ एए, चउग्गुणा आयरक्खा उ ॥१४२॥
चमरे १ धरणे २ तह वेणुदेव ३ हरिकंत ४ अग्गिसीहे य ।
पुण्णे ६ जलकंते या ७ अमिय ८ विलंबे य ९ घोसे य १० ॥१४३॥
बलि १ भूयाणंदे २ वेणुदालि ३ हरिस्सहे ४ अग्गिमाणव ५ वसिट्ठे ६ ।
जलप्पहे ७ अमियवाहण ८ पभंजणे या ९ महाघोसे १० ॥१४४॥

उत्तरिल्लाणं जाव विहरंति ।

काला असुरकुमारा, णागा उदही य पंडरा दो वि ।
वरकणगणिहसगोरा होंति सुवण्णा दिसा थणिया ॥१४५॥
उत्तत्तकणगवण्णा विज्जू अग्गी य होंति दीवा य ।
सामा पियंगुवण्णा वाउकुमारा मुणेयव्वा ॥१४६॥
असुरेसु होंति रत्ता, सिलिंधपुप्फप्पभा य नागुदही ।
आसासगवसणधरा होंति सुवण्णा दिसा थणिया ॥१४७॥
णीलाणुरागवसणा विज्जू अग्गी य होंति दीवा य ।
संझाणुरागवसणा वाउकुमारा मुणेयव्वा ॥१४८॥

[१८७] इस प्रकार जैसी वक्तव्यता सुपर्णकुमारो की कही है, वैसी ही शेष भवनवासियो की भी और उनके चौदह इन्द्रो की भी कहनी चाहिए। विशेषता यह है कि उनके भवनो की संख्या मे, इन्द्रो के नामो मे, उनके वर्णों तथा परिधानो (वस्त्रो) मे अन्तर है, जो इन गाथाओ द्वारा समझ लेना चाहिए—

(गाथाओं का अर्थ—) भवनावास—१—(असुरकुमारो के) चौसठ लाख है, २—(नाग-कुमारो के) चौरासी लाख है, ३—(सुपर्णकुमारो के) बहत्तर लाख हे, ४—(वायुकुमारो के) छियानवे लाख है ।।१३८।। ५ से १० तक अर्थात् (द्वीपकुमारो, दिशाकुमारो, उदधिकुमारो, विद्युत्-कुमारो, स्तनितकुमारो और अग्निकुमारो,) इन छहो के युगलो के प्रत्येक के छहत्तर-छहत्तर लाख (भवनावास) है ।। १३९ ।।

दक्षिणदिशा के (असुरकुमारो आदि के) भवनो की सख्या (इस प्रकार है)—१—(असुर-कुमारो के) चौतीस लाख, २—(नागकुमारो के) चवालीस लाख, ३—(सुपर्णकुमारो के) अडतीस लाख, ४—(वायुकुमारो के) पचास लाख, ५ से १० तक—(द्वीपकुमारो, उदधिकुमारो, विद्युत्कुमारो, स्तनितकुमारो और अग्निकुमारो के) प्रत्येक के चालीस-चालीस लाख भवन (भवनावास) है ।।१४०।।

उत्तरदिशा के (असुरकुमारो आदि के) भवनो की सख्या (इस प्रकार है—) १—(असुर-कुमारो के) तीस लाख, २—(नागकुमारो के) चालीस लाख, ३—(सुपर्णकुमारो के) चौतीस लाख, ४—(वायुकुमारो के) छयालीस लाख, ५ से १०तक—अर्थात् द्वीपकुमारो, दिशाकुमारो, उदधिकुमारो, विद्युत्कुमारो, स्तनितकुमारो और अग्निकुमारो के प्रत्येक के छत्तीस-छत्तीस लाख भवन है ।।१४१।।

सामानिको और आत्मरक्षको की सख्या—इस प्रकार है—१—(दक्षिण दिशा के) असुरेन्द्र के ६४ हजार और (उत्तरदिशा के असुरेन्द्र के) ६० हजार है, असुरेन्द्र को छोड कर (शेप सब २ से १०—दक्षिण-उत्तर के इन्द्रो के प्रत्येक) के छह-छह हजार सामानिकदेव है। आत्मरक्षकदेव (प्रत्येक इन्द्र के सामानिको की अपेक्षा) चौगुने-चौगुने होते है ।। १४२ ।।

दाक्षिणात्य इन्द्रो के नाम— १—(असुरकुमारो का) चमरेन्द्र, २—(नागकुमारो का) धरणेन्द्र, ३—(सुपर्णकुमारो का) वेणुदेवेन्द्र, ४—(विद्युत्कुमारो का) हरिकान्त, ५—(अग्निकुमारो का) अग्निसिंह (या अग्निशिख), ६—(द्वीपकुमारो का) पूर्णेन्द्र, ७—(उदधिकुमारो का) जलकान्त, ८—(दिशाकुमारो का) अमित, ९—(वायुकुमारो का) वैलम्ब और १०—(स्तनितकुमारो का) इन्द्र घोष है ।। १४३ ।।

उत्तरदिशा के इन्द्रो के नाम— १—(असुरकुमारो का) बलीन्द्र, २—(नागकुमारो का) भूतानन्द, ३—(सुपर्णकुमारो का) वेणुदालि, ४—(विद्युत्कुमारो का) हरिस्सह, ५—(अग्निकुमारो वा) अग्निमाणव, ६—द्वीपकुमारो का वशिष्ठ, ७—(उदधिकुमारो का) जलप्रभ, ८—(दिशाकुमारो का) अमितवाहन, ९—(वायुकुमारो का) प्रभजन और १०—(स्तनितकुमारो का) महाघोष इन्द्र है ।। १४४ ।।

(ये दसो) उत्तरदिशा के इन्द्र यावत् विचरण करते है।

वर्णों का कथन—सभी असुरकुमार काले वर्ण के होते है, नागकुमारो और उदधिकुमारो का वर्ण पाण्डुर अर्थात्—शुक्ल होता है, सुपर्णकुमार, दिशाकुमार और स्तनितकुमार कसौटी (निकष-पाषाण) पर बनी हुई श्रेष्ठ स्वर्णरेखा के समान गौर वर्ण के होते हैं ।। १४५ ।।

विद्युत्कुमार, अग्निकुमार और द्वीपकुमार तपे हुए सोने के समान (किञ्चित् रक्त) वर्ण के होते है और वायुकुमार श्याम प्रियगु के वर्ण के समझने चाहिए ।। १४६ ।।

इनके वस्त्रो के वर्ण—असुरकुमारो के वस्त्र लाल होते है, नागकुमारो और उदधिकुमारो के

वस्त्र शिलिन्ध्रपुष्प की प्रभा के समान (नीले) होते हे, सुपर्णकुमारो, दिशाकुमारो और स्तनितकुमारो के वस्त्र अश्व के मुख के फेन के सदृश अतिश्वेत होते है ॥ १४७ ॥

विद्युत्कुमारो, अग्निकुमारो और द्वीपकुमारो के वस्त्र नीले रग के होते हे और वायुकुमारो के वस्त्र सन्ध्याकाल की लालिमा जैसे वर्ण के जानने चाहिए ॥ १४८ ॥

विवेचन —सर्व भवनवासी देवों के स्थानो की प्ररूपणा—प्रस्तुत ग्यारह सूत्रो (सू १७७ से १८७ तक) मे शास्त्रकार ने सामान्य भवनवासी देवो से लेकर असुरकुमारादि दस प्रकार के, तथा उनमे भी दक्षिण और उत्तर दिशाओ के, फिर उनके भी प्रत्येक निकाय के इन्द्रो के (विविध अपेक्षाओ से) स्थानो, भवनावासो की सख्या और विशेषता तथा प्रत्येक प्रकार के भवनवासी देवो और इन्द्रो के स्वरूप, वैभव एव सामर्थ्य, प्रभाव आदि का विस्तृत वर्णन किया है। अन्त मे—सग्रहणी गाथाओ द्वारा प्रत्येक प्रकार के भवनवासी देवो के भवनो, सामानिको और आत्मरक्षक देवो की सख्या, दाक्षिणात्य और औदीच्य कुल २० इन्द्रो के नाम तथा दस प्रकार के भवनवासियो के प्रत्येक के शारीरिक और वस्त्र सम्बन्धी वर्ण का उल्लेख किया है।[1]

कुछ कठिन शब्दो की व्याख्या—**पुक्खरकण्णियासठाणसठिया**=पुष्कर=कमल की कर्णिका के समान आकार मे सस्थित हैं। कर्णिका उन्नत एव समान चित्रविचित्र विन्दु रूप होती है। **'उक्किण्णतरविउलगभीरखातपरिहा'**=उन भवनो के चारो ओर खाइयाँ और परिखाएँ है। जिनका अन्तर उत्कीर्ण की तरह स्पष्ट प्रतीत होता है। वे विपुल यानी अत्यन्त गभीर (गहरी) है। जो ऊपर से चौडी और नीचे से सकडी हो, उसे परिखा कहते है और जो ऊपर-नीचे समान हो, उसे खात (खाई) कहते है। यही परिखा और खाई मे अन्तर है। **पागारऽट्टालय-कवाड-तोरण-पडिदुवार-देसभागा**—प्रत्येक भवन मे प्राकार, अट्टालक, कपाट, तोरण और प्रतिद्वार यथास्थान बने हुए है। प्राकार कहते हैं—साल या परकोटे को। उस पर भृत्यवर्ग के लिए बने हुए कमरो को अट्टालक या अटारी कहते हैं। बडे दरवाजो (फाटको) के निकट छोटे द्वार 'तोरण' कहलाते है। बडे द्वारो के सामने जो छोटे द्वार रहते हैं उन्हे प्रतिद्वार कहते है। **अउज्झा**=जहाँ शत्रुओ द्वारा युद्ध करना अशक्य हो, ऐसे अयोध्य भवन। **खेमा**—शत्रुकृत उपद्रव से रहित। **सिवा**—सदा मगलयुक्त। **चदण-घडसुकयतोरणपडिदुवारदेसभागा**=जिन भवनो के प्रतिद्वारो के देशभाग मे चन्दन के घडो से अच्छी तरह बनाए हुए तोरण है। **'सव्वरयणामया लण्हा**=वे असुरकुमारो के भवन पूर्णरूप से रत्नमय, अच्छा—स्फटिक के समान स्वच्छ, सण्हा—स्निग्ध पुद्गलस्कन्धो से निर्मित, और कोमल होते है। **निप्पका**=कलक या कीचड से रहित। **निक्ककडछाया**=वे भवन उपघात या आवरण से रहित (निष्ककट) छाया यानी कान्ति वाले होते है। **समरिया**=उनमे से किरणो का जाल बाहर निकलता रहता है। **सउज्जोया**=उद्योतयुक्त अर्थात्—बाहर स्थित वस्तुओ को भी प्रकाशित करने वाले। **पासा-दीया**=मन को प्रसन्न करने वाले। **दरिसणिज्जा**=दर्शनीय=दर्शनयोग्य, जिन्हे देखने मे नेत्र थकें नही। **दिव्वतुडियसद्दसपणादिया**=दिव्य वीणा, वेणु, मृदग आदि वाद्यो की मनोहर ध्वनि सदा गूजते रहने वाले। **पडिरूवा**=प्रतिरूप—उनमे प्रतिक्षण नया-नया रूप दृष्टिगोचर होता है। **धवलपुप्फदता**=कुद आदि के श्वेतवर्ण-पुष्पो के समान श्वेत दात वाले, **असियकेसा**=काले केश वाले। ये दात और केश औदारिक पुद्गलो के नही, वैक्रिय के समझने चाहिए। **महिड्डिया**=

---

१ पण्णवणासुत्त (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) भा १, पृ ५५ से ६३ तक

भवन, परिवार आदि महान् ऋद्धियो से युक्त। महज्जुइया=जिनके शरीरगत और आभूषणगत महती द्युति है। महब्बला=शारीरिक और प्राणगत महती शक्ति वाले। महाणुभागे=महान् अनुभाग—सामर्थ्यशील, अर्थात् जिनमे शाप और अनुग्रह का महान् सामर्थ्य हो। दिव्वेण सघयणेण= दिव्य सहनन से। यहाँ देवो के सहनन का कथन शक्तिविशेष की अपेक्षा से कहा गया है। क्योंकि सहनन अस्थिरचनात्मक (हड्डियो की रचना विशेष) होता है, देवो के हड्डियाँ नही होती। इसीलिए जीवाभिगमसूत्र मे कहा है—'देवा असघयणी, जम्हा तेसि नेवट्ठी नेव सिरा ' (देव असहनन होते है, क्योकि उनके न तो हड्डी होती है, न ही नसे (शिराएँ) होती है, दिव्वाए पभाए=दिव्य प्रभा से, भवनावासगत प्रभा से। दिव्वाए छायाए—दिव्य छाया से—देवो के समूह की शोभा से। दिव्वाए अच्चीए=शरीरस्थ रत्नो आदि के तेज की ज्वाला से। दिव्वेण तेएण=शरीर से निकलते हुए दिव्य तेज से। दिव्वाए लेसाए=देह के वर्ण की दिव्य सुन्दरता से। आणाईसरसेणावच्च=आज्ञा से ईश्वरत्व (आज्ञा पर प्रभुत्व) एव सेनापतित्व करते हुए।

भवनवासियो के मुकुट और आभूषणो मे अकित चिह्न—मूलपाठ मे असुरकुमारादि की पहिचान के लिए चिह्न बताए है। वे उनके मुकुटो तथा अन्य आभूषणो मे अकित होते है।[1]

समस्त वाणव्यन्तर देवो के स्थानो की प्ररूपणा—

१८८. कहि ण भते ! वाणमतराण देवाण पज्जत्ताऽपज्जत्ताण ठाणा पण्णत्ता ? कहि ण भते ! वाणमतरा देवा परिवसति ?

गोयमा ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए रयणामयस्स कडस्स जोयणसहस्सबाहल्लस्स उवरि एग जोयणसत ओगाहित्ता हेट्ठा वि एग जोयणसत वज्जेत्ता मज्झे अट्ठसु जोयणसएसु, एत्थ ण वाणमतराण देवाण तिरियमसखेज्जा भोमेज्जणगरावाससतसहस्सा भवतीति मक्खात।

ते ण भोमेज्जा णगरा बाहिं वट्टा अतो चउरसा अहे पुक्खरकण्णियासंठाणसठिता उक्किण्णतर-विउलगंभीरखाय-परिहा पागार-ऽट्टालय-कवाड-तोरण-पडिदुवारदेसभागा जत-सयग्घि-मुसल-मुसु ढि-परियरिया अओज्झा सदाजला सदागुत्ता अडयालकोट्ठगरइया अडयालकयवणमाला खेमा सिवा किंकरामरदडोवरक्खिया लाउल्लोइयमहिया गोसीस-सरसरत्तचंदणदद्दरदिन्नपचगुलितला उवचित-चदणकलसा चदणघडसुकयतोरणपडिदुवारदेसभागा आसत्तोसत्तविउलवट्टवग्घारियमल्लदामकलावा पचवण्णसरससुरभिमुक्कपुप्फपु जोवयारकलिया कालागरु-पवरकु दुरुक्क-तुरुक्कधूवमघमघेंतगधुद्धुया-भिरामा सुगधवरगधगधिया गंधवट्टिभूता अच्छरगणसघसविकिण्णा दिव्वतुडितसद्दसपणदिता पडाग-मालाउलाभिरामा सव्वरयणामया अच्छा सण्हा लण्हा घट्ठा मट्ठा नीरया निम्मला निप्पका णिक्ककड-च्छाया सप्पभा समरीया सउज्जोता पासादीया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा, एत्थ ण वाणमतराण देवाण पज्जत्ताऽपज्जत्ताण ठाणा पण्णत्ता।

तिसु वि लोगस्स असखेज्जइभागे। तत्थ ण बहवे वाणमतरा देवा परिवसति। त जहा—पिसाया १ भूया २ जक्खा ३ रक्खसा ४ किन्नरा ५ किंपुरिसा ६ भुयगवइणो य महाकाया ७ गधव्व-

---

१ प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक ८५ से ९५ तक

वस्त्र शिलिन्ध्रपुष्प की प्रभा के समान (नीले) होते हैं, सुपर्णकुमारो, दिशाकुमारो और स्तनितकुमारो के वस्त्र अश्व के मुख के फेन के सदृश अतिश्वेत होते हैं ।। १४७ ।।

विद्युत्कुमारो, अग्निकुमारो और द्वीपकुमारो के वस्त्र नीले रग के होते हैं और वायुकुमारो के वस्त्र सन्ध्याकाल की लालिमा जैसे वर्ण के जानने चाहिए ।। १४८ ।।

विवेचन—सर्व भवनवासी देवो के स्थानो की प्ररूपणा—प्रस्तुत ग्यारह सूत्रो (सू १७७ से १८७ तक) मे शास्त्रकार ने सामान्य भवनवासी देवो से लेकर असुरकुमारादि दस प्रकार के, तथा उनमे भी दक्षिण और उत्तर दिशाओ के, फिर उनके भी प्रत्येक निकाय के इन्द्रो के (विविध अपेक्षाओ से) स्थानो, भवनावासो की सख्या और विशेषता तथा प्रत्येक प्रकार के भवनवासी देवो और इन्द्रो के स्वरूप, वैभव एव सामर्थ्य, प्रभाव आदि का विस्तृत वर्णन किया है। अन्त मे—सग्रहणी गाथाओ द्वारा प्रत्येक प्रकार के भवनवासी देवो के भवनो, सामानिको और आत्मरक्षक देवो की सख्या, दाक्षिणात्य और औदीच्य कुल २० इन्द्रो के नाम तथा दस प्रकार के भवनवासियो के प्रत्येक के शारीरिक और वस्त्र सम्बन्धी वर्ण का उल्लेख किया है ।[1]

कुछ कठिन शब्दो की व्याख्या—पुक्खरकण्णियासंठाणसठिया=पुष्कर=कमल की कर्णिका के समान आकार मे सस्थित हैं। कर्णिका उन्नत एव समान चित्रविचित्र बिन्दु रूप होती है। **'उक्किण्णतरविउलगभीरखातपरिहा'**=उन भवनो के चारो ओर खाइयाँ और परिखाएँ है। जिनका अन्तर उत्कीर्ण की तरह स्पष्ट प्रतीत होता है। वे विपुल यानी अत्यन्त गभीर (गहरी) है। जो ऊपर से चौडी और नीचे से सकडी हो, उसे परिखा कहते है और जो ऊपर-नीचे समान हो, उसे खात (खाई) कहते हैं। यही परिखा और खाई मे अन्तर है। **पागारऽट्टालय-कवाड-तोरण-पडिदुवार-देसभागा**—प्रत्येक भवन मे प्राकार, अट्टालक, कपाट, तोरण और प्रतिद्वार यथास्थान बने हुए है। प्राकार कहते है—साल या परकोटे को। उस पर भृत्यवर्ग के लिए बने हुए कमरो को अट्टालक या अटारी कहते है। बडे दरवाजो (फाटको) के निकट छोटे द्वार 'तोरण' कहलाते है। बडे द्वारो के सामने जो छोटे द्वार रहते हैं उन्हे प्रतिद्वार कहते है। **अउज्झा**=जहाँ शत्रुओ द्वारा युद्ध करना अशक्य हो, ऐसे अयोध्य भवन। **खेमा**—शत्रुकृत उपद्रव से रहित। **सिवा**—सदा मगलयुक्त। **चदण-घडसुकयतोरणपडिदुवारदेसभागा**=जिन भवनो के प्रतिद्वारो के देशभाग मे चन्दन के घडो से अच्छी तरह बनाए हुए तोरण है। **'सव्वरयणामया लण्हा**=वे असुरकुमारो के भवन पूर्णरूप से रत्नमय, **अच्छा**—स्फटिक के समान स्वच्छ, **सण्हा**—स्निग्ध पुद्गलस्कन्धो से निर्मित, और कोमल होते हैं। **निप्पका**=कलक या कीचड से रहित। **निक्ककडछाया**=वे भवन उपघात या आवरण से रहित (निष्ककट) छाया यानी कान्ति वाले होते है। **समरिया**=उनमे से किरणो का जाल बाहर निकलता रहता है। **सउज्जोया**=उद्योतयुक्त अर्थात्—बाहर स्थित वस्तुओ को भी प्रकाशित करने वाले। **पासादीया**=मन को प्रसन्न करने वाले। **दरिसणिज्जा**=दर्शनीय=दर्शनयोग्य, जिन्हे देखने मे नेत्र थके नही। **दिव्वतुडियसद्दसपणादिया**=दिव्य वीणा, वेणु, मृदग आदि वाद्यो की मनोहर ध्वनि सदा गूजते रहने वाले। **पडिरूवा**=प्रतिरूप—उनमे प्रतिक्षण नया-नया रूप दृष्टिगोचर होता है। **धवलपुप्फदता**=कुद आदि के श्वेतवर्ण-पुष्पो के समान श्वेत दात वाले, **असियकेसा**=काले केश वाले। ये दात और केश औदारिक पुद्गलो के नही, वैक्रिय के समझने चाहिए। **महिड्ढिया**=

१ पण्णवणासुत्त (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) भा १, पृ ५५ से ६३ तक

भवन, परिवार आदि महान् ऋद्धियो से युक्त। महज्जुइया=जिनके शरीरगत और आभूषणगत महती द्युति है। महब्बला=शारीरिक और प्राणगत महती शक्ति वाले। महाणुभागे=महान् अनुभाग—सामर्थ्यशील, अर्थात् जिनमे शाप और अनुग्रह का महान् सामर्थ्य हो। दिव्वेण संघयणेण=दिव्य सहनन से। यहाँ देवो के सहनन का कथन शक्तिविशेष की अपेक्षा से कहा गया है। क्योकि सहनन अस्थिरचनात्मक (हड्डियो की रचना विशेष) होता है, देवो के हड्डियाँ नही होती। इसीलिए जीवाभिगमसूत्र मे कहा है—'देवा असघयणी, जम्हा तेसिं नेवट्ठी नेव सिरा ' (देव असहनन होते है, क्योकि उनके न तो हड्डी होती है, न ही नसे (शिराएँ) होती है, दिव्वाए पभाए=दिव्य प्रभा से, भवनावासगत प्रभा से। दिव्वाए छायाए—दिव्य छाया से—देवो के समूह की शोभा से। दिव्वाए अच्चीए=शरीरस्थ रत्नो आदि के तेज की ज्वाला से। दिव्वेण तेएण=शरीर से निकलते हुए दिव्य तेज से। दिव्वाए लेसाए=देह के वर्ण की दिव्य सुन्दरता से। आणाईसरसेणावच्च=आज्ञा से ईश्वरत्व (आज्ञा पर प्रभुत्व) एव सेनापतित्व करते हुए।

भवनवासियो के मुकुट और आभूषणो मे अकित चिह्न—मूलपाठ मे असुरकुमारादि की पहिचान के लिए चिह्न बताए है। वे उनके मुकुटो तथा अन्य आभूषणो मे अकित होते है।[1]

समस्त वाणव्यन्तर देवो के स्थानो की प्ररूपणा—

१८८. कहि ण भते ! वाणमतराण देवाण पज्जत्ताऽपज्जत्ताण ठाणा पण्णत्ता ? कहि ण भते ! वाणमतरा देवा परिवसति ?

गोयमा ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए रयणामयस्स कडस्स जोयणसहस्सबाहल्लस्स उवरिं एग जोयणसत ओगाहित्ता हेट्ठा वि एग जोयणसत वज्जेत्ता मज्झे अट्ठसु जोयणसएसु, एत्थ ण वाणमतराणं देवाण तिरियमसखेज्जा भोमेज्जणगरावाससतसहस्सा भवतीति मक्खातं।

ते णं भोमेज्जा णगरा बाहिं वट्टा अतो चउरसा अहे पुक्खरकण्णियासंठाणसंठिता उक्किण्णतर-विउलगंभीरखाय-परिहा पागार-ऽट्टालय-कवाड-तोरण-पडिदुवारदेसभागा जत-सयग्घि-मुसल-मुसुंढि-परियरिया अओज्झा सदाजता सदागुत्ता अडयालकोट्ठगरइया अडयालकयवणमाला खेमा सिवा किंकरामरदंडोवरक्खिया लाउल्लोइयमहिया गोसीस-सरसरत्तचदणदद्दरदिण्णपचगुलितला उवचित-चदणकलसा चदणघडसुकयतोरणपडिदुवारदेसभागा आसत्तोसत्तविउलवट्टवग्घारियमल्लदामकलावा पचवण्णसरससुरभिमुक्कपुप्फपुंजोवयारकलिया कालागरु-पवरकुंदुरुक्क-तुरुक्कधूवमघमघेंतगंधुद्धुया-भिरामा सुगधवरगंधगंधिया गंधवट्टिभूता अच्छरगणसघसविकिण्णा दिव्वतुडितसद्दसंपणदिता पडाग-मालाउलाभिरामा सव्वरयणामया अच्छा सण्हा लण्हा घट्ठा मट्ठा नीरया निम्मला निप्पंका णिक्ककड-च्छाया सप्पभा समरीया सउज्जोता पासादीया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा, एत्थ ण वाणमतराण देवाण पज्जत्ताऽपज्जत्ताण ठाणा पण्णत्ता।

तिसु वि लोगस्स असखेज्जइभागे। तत्थ णं बहवे वाणमतरा देवा परिवसति। त जहा—पिसाया १ भूया २ जक्खा ३ रक्खसा ४ किन्नरा ५ किंपुरिसा ६ भुयगवइणो य महाकाया ७ गधव्व-

---

१ प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक ८५ से ९५ तक

गणा य निउणगन्धव्वगीतरइणो ८ अणवण्णिय १-पणवण्णिय २-इसिवाइय ३-भूयवाइय ४-कंदित ५-महाकंदिया य ६-कुहंड ७-पयगदेवा ।

८ चचलचलचवलचित्तकीलण-दवप्पिया गहिरहसिय-गीय-णच्चणरई वणमाला-मेल-मउल-कुंडल-सच्छंदविउव्वियाभरणचारुभूसणधरा सव्वोउयसुरभिकुसुमसुरइयपलंबसोहंतकंतवियसंतचित्त-वणमालरइयवच्छा कामकामा[1] कामरूवदेहधारी णाणाविहवण्णरागवरवत्थचित्तचिल्ल[ल]गणियसणा विविहदेसिणेवच्छगहियवेसा पमुइयकंदप्प-कलह-केलि-कोलाहलप्पिया हास-बोलबहुला असि-मोग्गर-सत्ति-कोंत-हत्था अणेगमणि-रयणविविहणिजुत्तविचित्तचिंधगया सुरूवा महिड्ढीया महज्जुतीया महायसा महाबला महाणुभागा महासोक्खा हारविराइयवच्छा कडय-तुडितथंभियभुया अंगय-कुंडल-मट्ठगंडयलकण्णपीढधारी विचित्तहत्थाभरणा विचित्तमाला-मउली कल्लाणगपवरवत्थपरिहिया कल्लाण-गपवरमल्लाणुलेवणधरा भासुरबोंदी पलंबवणमालधरा दिव्वेणं वण्णेणं दिव्वेणं गंधेणं दिव्वेणं फासेणं दिव्वेणं संघयणेणं दिव्वेणं संठाणेणं दिव्वाए इड्ढीए दिव्वाए जुतीए दिव्वाए पभाए दिव्वाए छायाए दिव्वाए अच्चीए दिव्वेणं तेएणं दिव्वाए लेस्साए दस दिसाओ उज्जोवेमाणा पभासेमाणा, ते णं तत्थ साणं साणं भोमेज्जगणगरावाससतसहस्साणं साणं साणं सामाणियसाहस्सीणं साणं साणं अग्गमहिसीणं साणं साणं परिसाणं साणं साणं अणियाणं साणं साणं अणियाधिवतीणं साणं साणं आयरक्खदेव-साहस्सीणं अण्णेसिं च बहूणं वाणमंतराणं देवाण य देवीण य आहेवच्चं पोरेवच्चं सामित्तं भट्टित्तं महत्तरगत्तं आणाईसरसेणावच्चं कारेमाणा पालेमाणा महयाऽहतणट्ट-गीय-वाइयतंती-तल-ताल-तुडिय-घणमुइंगपडुप्पवाइयरवेणं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणा विहरंति ।

[१८८ प्र.] भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त वाणव्यन्तर देवों के स्थान कहाँ कहे गए हैं ? भगवन् ! वाणव्यन्तर देव कहाँ निवास करते हैं ?

[१८८ उ.] गौतम ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के एक हजार योजन मोटे रत्नमय काण्ड के ऊपर से एक सौ योजन अवगाहन (प्रवेश) करके तथा नीचे भी एक सौ योजन छोड़ कर, बीच में आठ सौ योजन (प्रदेश) में, वाणव्यन्तर देवों के तिरछे असंख्यात भौमेय (भूमिगृह के समान) लाखों नगरावास हैं, ऐसा कहा गया है ।

वे भौमेयनगर बाहर से गोल और अंदर से चौरस तथा नीचे से कमल की कर्णिका के आकार में संस्थित हैं । (उन नगरावासों के चारों ओर) गहरी और विस्तीर्ण खाइयाँ एवं परिखाएँ खुदी हुई हैं, जिनका अन्तर स्पष्ट (प्रतीत होता) है । (यथास्थान) प्राकारों, अट्टालकों, कपाटों, तोरणों प्रतिद्वारों से (वे नगरावास) युक्त हैं । (तथा वे नगरावास) विविध यन्त्रों, शतघ्नियों, मूसलों एवं मुसुण्ढी नामक शस्त्रों से परिवेष्टित (घिरे हुए) होते हैं । (वे शत्रुओं द्वारा) अयोध्य (युद्ध न कर सकने योग्य), सदाजयशील, सदागुप्त (सुरक्षित), अड़तालीस कोष्ठकों (कमरों) से रचित, अड़तालीस वनमालाओं से सुसज्जित, क्षेममय, शिव (मंगल)मय, और किंकर देवों के दण्डों से उपरक्षित हैं । लिपे-पुते होने के

---

१ पाठान्तर—मलय वृत्ति में 'कामगमा' पाठ है, जिसका अर्थ किया है—काम-इच्छानुसार गम—प्रवृत्ति करने वाले अर्थात्—स्वेच्छाचारी ।

कारण (वे नगरावास) प्रशस्त रहते है। (उन नगरावासो पर) गोशीर्षचन्दन और सरस रक्तचन्दन से (लिप्त) पाँचो अगुलियो (वाले हाथ) के छापे लगे होते हे। उनके तोरण और प्रतिद्वार-देश के भाग चन्दन के घडो से भलीभाति निर्मित होते है, (वे नगरावास) ऊपर से नीचे तक लटकती हुई लम्बी विपुल एव गोलाकार पुष्पमालाओ के समूह से युक्त होते है। पाच वर्णो के सरस सुगन्धित मुक्त पुष्पपु ज से उपचार (अर्चन)-युक्त होते है। वे काले अगर, उत्तम चीडा, लोवान, गुग्गल आदि के धूप की महकती हुई सौरभ से रमणीय तथा सुगन्धित वस्तुओ की उत्तमगन्ध से सुगन्धित, मानो गन्धवट्टी (अगरबत्ती) के समान (वे नगरावास लगते है।) अप्सरागण के सघो से व्याप्त, दिव्य वाद्यो की ध्वनि से निनादित, पताकाओ की पक्ति से मनोहर, सर्वरत्नमय, स्फटिकसम स्वच्छ, स्निग्ध, कोमल, घिसे, पोछे, रजरहित, निर्मल, निष्पक, आवरण-रहित छाया (कान्ति) वाले, प्रभायुक्त किरणो से युक्त, उद्योतयुक्त, (प्रकाशमान), प्रसन्नता उत्पन्न करने वाले, दर्शनीय, अभिरूप एव प्रतिरूप होते हैं। इन (पूर्वोक्त नगरावासो) मे पर्याप्त और अपर्याप्त वाणव्यन्तर देवो के स्थान कहे गए है।

(वे स्थान) तीनो अपेक्षाओ से लोक के असख्यातवे भाग मे है, जहाँ कि बहुत-से वाण-व्यन्तरदेव निवास करते हैं। वे इस प्रकार हैं—

१—पिशाच, २—भूत, ३—यक्ष, ४—राक्षस, ५—किन्नर, ६—किम्पुरुष, ७—महाकाय भुजगपति तथा ८—निपुणगन्धव-गीतो मे अनुरक्त गन्धर्वगण। (इनके आठ अवान्तर भेद—)

१—अणपर्णिक, २—पणपर्णिक, ३—ऋषिवादित, ४—भूतवादित, ५—क्रन्दित, ६—महा-क्रन्दित, ७—कूष्माण्ड और ८—पतगदेव।

ये अनवस्थित चित्त के होने से अत्यन्त चपल, क्रीडा-तत्पर और परिहास—(द्रव) प्रिय होते है। गभीर हास्य, गीत और नृत्य मे इनकी अनुरक्ति रहती है। वनमाला, कलगी, मुकुट, कुण्डल तथा इच्छानुसार विकुर्वित आभूषणो से वे भलीभाति मण्डित रहते हैं। सभी ऋतुओ मे होने वाले सुगन्धित पुष्पो से सुरचित, लम्बी, शोभनीय, सुन्दर एव खिलती हुई विचित्र वनमाला से (उनका) वक्षस्थल सुशोभित रहता है। अपनी कामनानुसार काम-भोगो का सेवन करने वाले, इच्छानुसार रूप एव देह के धारक, नाना प्रकार के वर्णो वाले, श्रेष्ठ, विचित्र चमकीले वस्त्रो के धारक, विविध देशो की वेशभूषा धारण करने वाले होते हैं, इन्हे प्रमोद, कन्दर्प (कामक्रीडा) कलह, केलि (क्रीडा) और कोलाहल प्रिय है। इनमे हास्य और विवाद (बोल) बहुत होता है। इन के हाथो मे खड्ग, मुद्गर, शक्ति और भाले भी रहते हैं। ये अनेक मणियो और रत्नो के विविध चिह्न वाले होते हैं। ये महर्द्धिक, महाद्युतिमान, महायशस्वी, महाबली, महानुभाव या महासामर्थ्यशाली, महासुखी, हार से सुशोभित वक्षस्थल वाले होते है। कडे और बाजूबद से इनकी भुजाएँ मानो स्तब्ध रहती हैं। अगद और कुण्डल इनके कपोलस्थल को स्पर्श किये रहते है। ये कानो मे कर्णपीठ धारण किये रहते है, इनके हाथो मे विचित्र आभूषण एव मस्तक मे विचित्र मालाएँ होती हैं। ये कल्याणकारी उत्तम वस्त्र पहने हुए तथा कल्याणकारी माला एव अनुलेपन धारण किये रहते हैं। इनके शरीर अत्यन्त देदीप्यमान होते हैं। ये लम्बी वनमालाएँ धारण करते है तथा दिव्य वर्ण से, दिव्य गन्ध से, दिव्य स्पर्श से, दिव्य सहनन से, दिव्य सस्थान (आकृति) से, दिव्य ऋद्धि से, दिव्य द्युति से, दिव्य प्रभा से, दिव्य छाया (कान्ति) से दिव्य अर्चि (ज्योति) से, दिव्य तेज से एव दिव्य लेश्या से दशो दिशाओ को उद्योतित एव प्रभासित करते हुए वे (वाणव्यन्तर देव) वहाँ (पूर्वोक्त स्थानो मे) अपने-अपने लाखो भौमेय नगरावासो का, अपने-अपने हजारो सामानिक देवो का, अपनी-

अपनी अग्रमहिषियों का, अपनी-अपनी परिषदों का, अपनी-अपनी सेनाओं का, अपने-अपने सेनाधिपति देवों का, अपने-अपने आत्मरक्षक देवों का और अन्य बहुत-से वाणव्यन्तर देवों और देवियों का आधिपत्य, पौरपत्य, स्वामित्व, भर्तृत्व, महत्तरकत्व, आज्ञैश्वरत्व एवं सेनापतित्व करते-कराते तथा उनका पालन करते-कराते हुए वे (वाणव्यन्तर देवगण) महान् उत्सव के साथ नृत्य, गीत और वीणा, तल, ताल (कांसा), त्रुटित, घनमृदंग आदि वाद्यों को बजाने से उत्पन्न महाध्वनि के साथ दिव्य उपभोग्य भोगों को भोगते हुए रहते हैं।

१८९. [१] कहि णं भंते ! पिसायाणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ? कहि णं भंते ! पिसाया देवा परिवसंति ?

गोयमा ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए रयणामयस्स कंडस्स जोयणसहस्सबाहल्लस्स उवरिं एगं जोयणसतं ओगाहित्ता हेट्ठा वेगं जोयणसतं वज्जेत्ता मज्झे अट्ठसु जोयणसएसु, एत्थ णं पिसायाणं देवाणं तिरियमसंखेज्जा भोमेज्जणगरावाससतसहस्सा भवंतीति मक्खातं। ते णं भोमेज्जणगरा बाहिं वट्टा जहा ओहिओ भवणवण्णओ (सु. १७७) तहा भाणितव्वो जाव पडिरूवा। एत्थ णं पिसायाणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता। तिसु वि लोगस्स असंखेज्जइभागे। तत्थ णं बहवे पिसाया देवा परिवसंति महिड्ढिया जहा ओहिया जाव (सु. १८८) विहरंति।

[१८९-१ प्र] भंते ! पर्याप्तक और अपर्याप्तक पिशाच देवों के स्थान कहाँ कहे गए हैं ? भगवन् ! पिशाच देव कहाँ रहते हैं ?

[१८९-१ उ] गौतम ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के एक हजार योजन मोटे रत्नमय काण्ड के ऊपर के एक सौ योजन (प्रदेश) को अवगाहन (पार) करके तथा नीचे एक सौ योजन (प्रदेश) को छोड़कर, बीच के आठ सौ योजन (प्रदेश) में, पिशाच देवों के तिरछे असंख्यात भूगृह के समान लाखों (भौमेय) नगरावास हैं, ऐसा कहा है।

वे भौमेय नगर (नगरावास) बाहर से गोल (वर्तुल), हैं, इत्यादि सब वर्णन जैसे सू. १७७ में सामान्य भवनों का कहा, वैसा ही यहाँ यावत् 'प्रतिरूप हैं' तक कहना चाहिए। इन (नगरावासों) में पर्याप्तक और अपर्याप्तक पिशाच देवों के स्थान कहे गए हैं। (वे स्थान) तीनों (पूर्वोक्त) अपेक्षाओं से लोक के असंख्यातवें भाग में हैं, जहाँ कि बहुत-से पिशाच देव निवास करते हैं। जो महर्द्धिक हैं, (इत्यादि सब वर्णन) जैसे (सू. १८८ में) सामान्य वाणव्यन्तरों का कहा गया है, वैसे ही यहाँ यावत् 'विचरण करते हैं' (विहरंति) तक जान लेना चाहिए।

[२] काल-महाकाला यऽत्थ दुवे पिसाइंदा पिसायरायाणो परिवसंति महिड्ढिया महज्जुइया जाव (सु. १८८) विहरंति।

[१८९-२] इन्हीं (पूर्वोक्त नगरावासों) में जो दो पिशाचेन्द्र पिशाचराज—काल और महाकाल, निवास करते हैं, वे 'महर्द्धिक हैं, महाद्युतिमान हैं,' इत्यादि आगे का समस्त वर्णन, यावत् 'विचरण करते हैं' ('विहरंति') तक सू. १८८ के अनुसार कहना चाहिए।

१९०. [१] कहि णं भंते ! दाहिणिल्लाणं पिसायाणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ? कहि णं भंते ! दाहिणिल्ला पिसाया देवा परिवसंति ?

गोयमा ! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए रयणामयस्स कंडस्स जोयणसहस्सबाहल्लस्स उवरिं एगं जोयणसतं ओगाहित्ता हेट्ठा वेगं जोयणसतं वज्जेत्ता मज्झे अट्ठसु जोयणसएसु, एत्थ णं दाहिणिल्लाणं पिसायाणं देवाणं तिरियमसंखेज्जा भोमेज्जनगरावाससत-सहस्सा भवतीति मक्खातं।

ते णं भोमेज्जणगरा बाहिं वट्टा जहा ओहिओ भवणवण्णओ (सु. १७७) तहा भाणियव्वो जाव पडिरूवा। एत्थ णं दाहिणिल्लाणं पिसायाणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता। तिसु वि लोगस्स असंखेज्जइभागे। तत्थ णं बहवे दाहिणिल्ला पिसाया देवा परिवसंति महिड्ढिया जहा ओहिया जाव (सु १८८) विहरंति।

[१९०-१ प्र] भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त दाक्षिणात्य पिशाच देवो के स्थान कहाँ कहे गए हैं ? भगवन् ! दाक्षिणात्य पिशाच देव कहाँ निवास करते है ?

[१९०-१ उ] गौतम ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे, सुमेरु पर्वत के दक्षिण मे, इस रत्नप्रभा-पृथ्वी के एक हजार योजन मोटे रत्नमय काण्ड के ऊपर का एक सौ योजन (प्रदेश) अवगाहन (पार) करके तथा नीचे एक सौ योजन छोड कर बीच मे जो आठ सौ योजन (प्रदेश) है, उनमे दाक्षिणात्य पिशाच देवो के तिरछे असख्येय भूमिगृह-जैसे (भौमेय) लाखो नगरावास है, ऐसा कहा है।

वे (भौमेय) नगर बाहर से गोल है, इत्यादि सब कथन जैसे (सू १७७ मे) औघिक (सामान्य) भवनो का कहा, उसी प्रकार यहाँ भी यावत्—'प्रतिरूप है' तक कहना चाहिए। इन (पूर्वोक्त नगरावासो) मे पर्याप्त और अपर्याप्त दाक्षिणात्य पिशाच देवो के स्थान कहे गए है। (ये स्थान) तीनो अपेक्षाओ से लोक के असख्यातवे भाग मे हैं। इन्ही (स्थानो) मे बहुत-से दाक्षिणात्य पिशाच देव निवास करते हैं, 'वे महर्द्धिक हैं', इत्यादि समग्र वर्णन जैसे (सू १८८ मे) सामान्य वाणव्यन्तर देवो का किया है, तदनुसार यावत् 'विचरण करते है' (विहरति) तक करना चाहिए।

[२] काले यऽत्थ पिसायइंदे पिसायराया परिवसति महिड्ढीए (सु १८८) जाव पभासेमाणे। से णं तत्थ तिरियमसंखेज्जाणं भोमेज्जगनगरावाससतसहस्साणं चउण्हं सामाणियसाहस्सीणं चउण्हमग्गमहिसीणं सपरिवाराणं तिण्हं परिसाणं सत्तण्हं अणियाणं सत्तण्हं अणियाधिवतीणं सोलसण्हं आतरक्खदेवसाहस्सीणं अण्णेसिं च बहूणं दाहिणिल्लाणं वाणमंतराणं देवाण य देवीण य आहेवच्चं (सु १८८) जाव विहरति।

[१९०-२] इन्ही (पूर्ववर्णित स्थानो) मे पिशाचेन्द्र पिशाचराज काल निवास करते है, जो महर्द्धिक है, (इत्यादि सब वर्णन सू १८८ के अनुसार) यावत् प्रभासित करता हुआ ('पभासेमाणे') तक समझना चाहिए। वह (दाक्षिणात्य पिशाचेन्द्र काल) तिरछे असख्यात भूमिगृह जैसे लाखो नगरावासो का, चार हजार सामानिक देवो का, सपरिवार चार अग्रमहिषियो का, तीन परिषदो का, सात सेनाओ का, सात सेनाधिपति देवो का, सोलह हजार आत्मरक्षक देवो का तथा और भी बहुत-से दक्षिण दिशा के वाणव्यन्तर देवो और देवियो का 'आधिपत्य करता हुआ' यावत् 'विचरण करता है' (विहरति) तक (आगे का सारा कथन सू १८८ के अनुसार करना चाहिए।)

१९१ [१] उत्तरिल्लाण पुच्छा।

गोयमा ! जहेव दाहिणिल्लाण वत्तव्वया (सु १९० [१]) तहेव उत्तरिल्लाण पि। नवर मदरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं।

[१९१-१ प्र] भगवन् ! उत्तर दिशा के पर्याप्त और अपर्याप्त पिशाच देवों के स्थान कहाँ कहे गए है ? भगवन् ! उत्तर दिशा के पिशाच देव कहाँ निवास करते हैं ?

[१९१-१ उ] गौतम ! जैसे (सू १९१-१ मे) दक्षिण दिशा के पिशाच देवो का वर्णन किया है, वैसे ही उत्तर दिशा के पिशाच देवो का वर्णन समझना चाहिए। विशेप यह है कि (इनके नगरावास) मेरुपर्वत के उत्तर मे हैं।

[२] महाकाले यऽत्थ पिसायइदे पिसायराया परिवसति जाव (सु १९० [२]) विहरति।

[१९१-२] इन्ही (पूर्वोक्त स्थानो) मे (उत्तर दिशा का) पिशाचेन्द्र पिशाचराज—महाकाल निवास करता है, (जिसका सारा वर्णन) यावत् 'विचरण करता है' (विहरति) तक, सू १९०-२ के अनुसार (समझना चाहिए।)

१९२ एव जहा पिसायाणं (सु १८९-१९०) तहा भूयाण पि जाव गधव्वाण। णवर इदेसु णाणत्त भाणियव्व इमेण विहिणा—भूयाणं सुरूव-पडिरूवा, जक्खाण पुण्णभद्द-माणिभद्दा, रक्खसाण भीम-महाभीमा, किण्णराण किण्णर-किंपुरिसा, किंपुरिसाण सप्पुरिस-महापुरिसा, महोरगाण अइकाय-महाकाया, गधव्वाण गीतरती-गीतजसे जाव (सु. १८८) विहरति।

काले य महाकाले १ सुरूव पडिरूव २ पुण्णभद्दे य।
अमरवइ माणिभद्दे ३ भीमे य तहा महाभीमे ४॥ १४९॥
किण्णर किंपुरिसे खलु ५ सप्पुरिसे खलु तहा महापुरिसे ६।
अइकाय महाकाए ७ गीयरई चेव गीतजसे ८॥ १५०॥

[१९२] इस प्रकार जैसे (सू १८९-१९० मे) (दक्षिण और उत्तर दिशा के) पिशाचो और उनके इन्द्रो (के स्थानो) का वर्णन किया गया, उसी तरह भूत देवो का यावत् गन्धर्वो तक का वर्णन समझना चाहिए। विशेष—इनके इन्द्रो मे इस प्रकार से भेद (अन्तर) कहना चाहिए। यथा—भूतो के (दो इन्द्र)—सुरूप और प्रतिरूप, यक्षो के (दो इन्द्र)—पूर्णभद्र और माणिभद्र, राक्षसो के (दो इन्द्र)—भीम और महाभीम, किन्नरो के (दो इन्द्र)—किन्नर और किम्पुरुष, किम्पुरुषो के (दो इन्द्र) सत्पुरुष और महापुरुष, महोरगो के (दो इन्द्र)—अतिकाय और महाकाय तथा गन्धर्वो के (दो इन्द्र)—गीतरति और गीतयश, (आगे का इनका सारा वर्णन) सूत्र १८८ के अनुसार, यावत् 'विचरण करता है, (विहरति)' तक समझ लेना चाहिए।

[सग्रहगाथाओ का अर्थ—] (आठ प्रकार के वाणव्यन्तर देवो के प्रत्येक के दो-दो इन्द्र क्रमश इस प्रकार हैं)—१ काल और महाकाल, २ सुरूप और प्रतिरूप, ३ पूर्णभद्र और माणिभद्र इन्द्र, ४ भीम तथा महाभीम, ५ किन्नर और किम्पुरुष, ६ सत्पुरुष और महापुरुष, ७ अतिकाय और महाकाय तथा ८ गीतरति और गीतयश।

१९३ [१] कहि ण भंते ! अणवन्नियाण देवाण [पज्जत्ताऽपज्जत्ताण] ठाणा पण्णत्ता ? कहि ण भंते ! अणवण्णिया देवा परिवसंति ?

गोयमा ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए रयणामयस्स कंडस्स जोयणसहस्सबाहल्लस्स उवरि हेट्ठा य एग जोयणसय वज्जेत्ता मज्झे अट्ठसु जोयणसतेसु, एत्थ ण अणवण्णियाण देवाण तिरियमसखेज्जा णगरावाससयसहस्सा भवतीति मक्खात । ते ण जाव (सु १८८) पडिरूवा । एत्थ ण अणवण्णियाण देवाण ठाणा । उववाएण लोयस्स असखेज्जइभागे, समुग्घाएण लोयस्स असखेज्जइभागे, सट्ठाणेण लोयस्स असखेज्जइभागे । तत्थ ण बहवे अणवन्निया देवा परिवसति महड्ढिया जहा पिसाया (सु १८९[१]) जाव विहरति ।

[१९३-१ प्र] भगवन् ! पर्याप्तक और अपर्याप्तक अणपर्णिक देवो के स्थान कहाँ कहे गए है ? भगवन् ! अणपर्णिक देव कहाँ निवास करते है ?

[१९३-१ उ] गौतम ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के एक हजार योजन मोटे रत्नमय काण्ड के ऊपर और नीचे एक-एक सौ योजन छोड कर मध्य मे आठ-सौ योजन (प्रदेश) मे, अणपर्णिक देवो के तिरछे असख्यात लाख नगरावास है, ऐसा कहा गया है । वे नगरावास (सू १८८ के अनुसार) यावत् प्रतिरूप तक पूर्ववत् समझने चाहिए । इन (पूर्वोक्त स्थानो) मे अणपर्णिक देवो के स्थान है । (वे स्थान) उपपात की अपेक्षा से लोक के असख्यातवे भाग मे है, समुद्घात की अपेक्षा से लोक के असख्यातवे भाग मे है, स्वस्थान की अपेक्षा से भी लोक के असख्यातवे भाग मे है । वहाँ बहुत-से अणपर्णिक देव निवास करते हैं, वे महर्द्धिक है, (इत्यादि आगे का समग्र वर्णन) (सू १८९-१ मे) जैसे पिशाचो का वर्णन है, तदनुसार यावत् 'विचरण करते हैं' (विहरति) तक (समझना चाहिए ।)

[२] सन्निहिय-सामाणा यऽत्थ दुवे अणवण्णिदा अणवण्णियकुमाररायाणो परिवसति महिड्ढीया जहा काल-महाकाला (सु. १८९ [२]) ।

[१९३-२] इन्ही (पूर्वोक्त स्थानो) मे दोनो अणपर्णिकेन्द्र अणपर्णिककुमारराज—सन्निहित और सामान निवास करते हैं, जो कि महर्द्धिक हैं, (इत्यादि सारा वर्णन सू १८९-२ मे वर्णित) काल और महाकाल की तरह (समझना चाहिए ।)

१९४ एव जहा काल-महाकालाण दोण्ह पि दाहिणिल्लाण उत्तरिल्लाण य भणिया (सु १९०[२],१९१[२]) तहा सन्निहिय-सामाणाईं ण पि भाणियव्वा । सगहणिगाहा—

अणवन्निय १ पणवन्निय २ इसिवाइय ३ भूयवाइया चेव ४ ।
कद ५ महाकदिय ६ कुहडे ७ पययदेवा ८ इमे इदा ।। १५१ ।।
सण्णिहिया सामाणा १ धाय विधाए २ इसी य इसिपाले ३ ।
ईसर महेसरे या ४ हवइ सुवच्छे विसाले य ५ ।। १५२ ।।
हासे हासरई वि य ६ सेते य तहा भवे महासेते ७ ।
पयते पययपई वि य ८ नेयव्वा आणुपुव्वीए ।। १५३ ।।

[१९४] इस प्रकार जैसे दक्षिण और उत्तर दिशा के (पिशाचेन्द्र) काल और महाकाल के सम्बन्ध मे जैसे (क्रमश सूत्र १९०-२ और १९१-२ मे) कहा है, उसी प्रकार सन्निहित और सामान आदि (दक्षिण और उत्तर दिशा के अणपर्णिक आदि देवो के समस्त इन्द्रो) के विषय मे कहना चाहिए।

[सग्रहणी गाथाओ का अर्थ—] (वाणव्यन्तर देवो के आठ अवान्तर भेद—) १ अणपर्णिक, २. पणपर्णिक, ३ ऋषिवादिक, ४ भूतवादिक, ५ क्रन्दित, ६ महाक्रन्दित, ७ कुष्माण्ड और ८ पतगदेव। इनके (प्रत्येक के दो-दो) इन्द्र ये है—॥१५१॥ १ सन्निहित और सामान, २ धाता और विधाता, ३ ऋषि और ऋषिपाल, ४ ईश्वर और महेश्वर, ५ सुवत्स और विशाल ॥१५२॥ ६ हास और हासरति, तथा ७ श्वेत और महाश्वेत, और ८ पतग और पतगपति क्रमश जानने चाहिए ॥१५३॥

विवेचन—समस्त वाणव्यन्तर देवो के स्थानो का निरूपण—प्रस्तुत सात सूत्रो (सू १८८ से १९४ तक) मे सामान्य वाणव्यन्तर देवो तथा पिशाच आदि उनके मूल आठ भेदो तथा अणपर्णिक आदि आठ अवान्तर भेदो एव तत्पश्चात् इनके दक्षिण और उत्तर दिशा के देवो तथा इन सोलह के प्रत्येक के दो-दो इन्द्रो के स्थानो, उनकी विशेषताओ, उन सबकी प्रकृति, रुचि, शरीर-वैभव, तथा अन्य ऋद्धि आदि का स्पष्ट वर्णन किया गया है।[1]

ज्योतिष्कदेवो के स्थानो की प्ररूपणा—

१९५ [१] कहि ण भते! जोइसियाण देवाण पज्जत्ताऽपज्जत्ताण ठाणा पण्णत्ता? कहि ण भते! जोइसिया देवा परिवसति?

गोयमा! इमोसे रयणप्पभाए पुढवीए बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ सत्ताणउते जोयणसते उड्ढ उप्पइत्ता दसुत्तरे जोयणसतबाहल्ले तिरियमसखेज्जे जोतिसविसये, एत्थ ण जोइसियाण देवाण तिरियमसखेज्जा जोइसियविमाणावाससतसहस्सा भवतीति मक्खातं।

ते ण विमाणा अद्धकविट्ठगसठाणसठिता सव्वफलियामया अब्भुग्गयमूसियपहसिया इव विविहमणि-कणग-रतणभत्तिचित्ता वाउद्धुतविजयवेजयतीपडाग-छत्ताइछत्तकलिया तुंगा गगणतल-मणुलिहमाणसिहरा जालतररतण-पजरुम्मिलिय व्व मणि-कणगथूभियागा वियसियसयवत्तपुडरीया (य-)तिलय-रयणद्धचदचित्ता णाणामणिमयदामालकिया अतो बहिं च सण्हा तवणिज्जरुइलवालुया-पत्थडा सुहफासा सस्सिरीया सुरूवा पासाईया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा।

एत्थ ण जोइसियाण देवाण पज्जत्ताऽपज्जत्ताण ठाणा पण्णत्ता। तिसु वि लोगस्स असखिज्ज-तिभागे।

तत्थ ण बहवे जोइसिया देवा परिवसति, त जहा—बहस्सती चदा सूरा सुक्का सणिच्छरा राहू धूमकेऊ बुहा अगारगा तत्ततवणिज्जकणगवण्णा, जे य गहा जोइसम्मि चार चरति केतू य गइरइया अट्ठावीसतिविहा य नक्खत्तदेवयगणा, णाणासठाणसठियाओ य पचवण्णाओ तारयाओ, ठितलेस्सा चारिणो अविस्सामसडलगई पत्तेयणामकपागडियचिधमउडा महिड्ढिया जाव (सु १८८) पभासेमाणा।

---

१ (क) पण्णवणा सुत्त (मूलपाठ) भा १, पृ ६४ से ६७ तक
(ख) प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक ९६-९७

ते णं तत्थ साणं साणं विमाणावाससतसहस्साणं साणं साणं सामाणियसाहस्सीणं साणं साणं अग्गमहिसीणं सपरिवाराणं साणं साणं परिसाणं साणं साणं अणियाणं साणं साणं अणियाधिवतीणं साणं साणं आयरक्खदेवसाहस्सीणं अण्णेसिं च बहूणं जोइसियाणं देवाण य देवीण य आहेवच्चं पोरेवच्चं जाव (सु १८८) विहरंति।

[१९५-१ प्र] भगवन्! पर्याप्तक और अपर्याप्तक ज्योतिष्क देवों के स्थान कहाँ कहे गए हैं ? भंते! ज्योतिष्क देव कहाँ निवास करते हैं ?

[१९५-१ उ] गौतम! इस रत्नप्रभापृथ्वी के अत्यन्त सम एवं रमणीय भूभाग से सात सौ नव्वे (७९०) योजन की ऊंचाई पर एक सौ दस योजन विस्तृत एवं तिरछे असंख्यात योजन में ज्योतिष्क क्षेत्र है, जहाँ ज्योतिष्क देवों के तिरछे असंख्यात लाख ज्योतिष्कविमानावास हैं, ऐसा कहा गया है।

वे विमान (विमानावास) आधे कवीठ (कपित्थ) के आकार के हैं और पूर्णरूप से स्फटिकमय हैं। वे सामने से चारों ओर ऊपर उठे (निकले) हुए, सभी दिशाओं में फैले हुए तथा प्रभा से श्वेत हैं। विविध मणियों, स्वर्ण और रत्नों की छटा से वे चित्र-विचित्र हैं, हवा से उड़ी हुई विजय-वैजयन्ती, पताका, छत्र पर छत्र (अतिछत्र) से युक्त है, वे बहुत ऊँचे, गगनतलचुम्बी शिखरों वाले हैं। (उनकी) जालियों के बीच में लगे हुए रत्न ऐसे लगते हैं, मानो पींजरे से बाहर निकाले गए हों। वे मणियों और रत्नों की स्तूपिकाओं से युक्त हैं। उनमें शतपत्र और पुण्डरीक कमल खिले हुए हैं। तिलकों तथा रत्नमय अर्धचन्द्रों से वे चित्र-विचित्र हैं तथा नानामणिमय मालाओं से सुशोभित हैं। वे अंदर और बाहर से चिकने हैं। उनके प्रस्तट (पाथडे) सोने की रुचिर बालू वाले हैं। वे सुखद स्पर्श वाले, श्री से सम्पन्न, सुरूप, प्रसन्नता-उत्पादक, दर्शनीय, अभिरूप (अतिरमणीय) एवं प्रतिरूप (अतिसुन्दर) हैं।

इन (विमानावासों) में पर्याप्त और अपर्याप्त ज्योतिष्कदेवों के स्थान कहे गए हैं। (ये स्थान) तीनों (पूर्वोक्त) अपेक्षाओं से—लोक के असंख्यातवें भाग में हैं।

वहाँ (ज्योतिष्क विमानावासों में) बहुत-से ज्योतिष्क देव निवास करते हैं। वे इस प्रकार हैं—बृहस्पति, चन्द्र, सूर्य, शुक्र, शनैश्चर, राहु, धूमकेतु, बुध एवं अंगारक (मंगल), ये तपे हुए तपनीय स्वर्ण के समान वर्ण वाले हैं (अर्थात्—ये किञ्चित् रक्त वर्ण के हैं।) और जो ग्रह ज्योतिष्कक्षेत्र में गति (संचार) करते हैं तथा गति में रत रहने वाला केतु, अट्ठाईस प्रकार के नक्षत्रदेवगण, नाना आकारों वाले, पांच वर्णों के तारे तथा स्थितलेश्या वाले, संचार करने वाले, अविश्रान्त (बिना रुके) मंडल (वृत्त, गोलाकार) में गति करने वाले, (ये सभी ज्योतिष्क देव हैं।) (इन सब में से) प्रत्येक के मुकुट में अपने-अपने नाम का चिह्न व्यक्त होता है। 'ये महर्द्धिक होते हैं,' इत्यादि सब वर्णन (सू १८८ के अनुसार), यावत् प्रभासित करते हुए ('पभासेमाणे') तक (पूर्ववत् समझना चाहिए।)

वे (ज्योतिष्क देव) वहाँ (ज्योतिष्कविमानावासों में) अपने-अपने लाखों विमानावासों का, अपने-अपने हजारों सामानिक देवों का, अपनी-अपनी सपरिवार अग्रमहिषियों का, अपनी-अपनी परिषदों का, अपनी-अपनी सेनाओं का, अपने-अपने सेनाधिपति देवों का, अपने-अपने हजारों आत्मरक्षक देवों का तथा और भी बहुत-से ज्योतिष्क देवों और देवियों का आधिपत्य, पुरोवर्त्तित्व (अग्रेसरत्व),

करते हुए (आगे का समग्र वर्णन) यावत् विचरण करते है ('विहरति') तक सू १८८ के अनुसार समझना चाहिए ।

[२] चदिम-सूरिया यऽत्थ दुवे जोइसिंदा जोइसियरायाणो परिवसति महिड्डिया जाव (सु १८८) पभासेमाणा । ते ण तत्थ साण साण जोइसियविमाणावाससतसहस्साण चउण्ह सामाणिय-साहस्सीण चउण्ह अग्गमहिसीण सपरिवाराण तिण्ह परिसाण सत्तण्ह अणियाण सत्तण्ह अणियाधिवतीण सोलसण्ह आयरक्खदेवसाहस्सीण अण्णेसि च बहूण जोइसियाण देवाण य देवीण य आहेवच्च पोरेवच्च जाव विहरति ।

[१९५-२] इन्ही (पूर्वोक्त ज्योतिष्कविमानावासो) मे दो ज्योतिष्केन्द्र ज्योतिष्कराज—चन्द्रमा और सूर्य—निवास करते है, 'जो महर्द्धिक है' (इत्यादि सब वर्णन सू १८८ के अनुसार) यावत् प्रभासित करते हुए ('पभासेमाजे') (तक पूर्ववत् समझना चाहिए ।) वे वहाँ अपने-अपने लाखो ज्योतिष्कविमानावासो का, चार हजार सामानिक देवो का, सपरिवार चार अग्रमहिषियो का, तीन परिषदो का, सात सेनाओ का, सात सेनाधिपति देवो का, सोलह हजार आत्मरक्षक देवो का तथा अन्य बहुत-से ज्योतिष्क देवो और देवियो का आधिपत्य, पुरोवर्त्तित्व करते हुए यावत् विचरण करते है ।

विवेचन—ज्योतिष्क देवो के स्थानो की प्ररूपणा—प्रस्तुत सूत्र (सू १९५-१, २) मे ज्योतिष्क देवो तथा उनके परिवारो एव उनके चन्द्र, सूर्य नामक दो इन्द्रो के स्थानो, उनकी प्रकृति, विशेषता, प्रभुता एव ऐश्वर्य आदि की प्ररूपणा की गई है ।[1]

सर्व वैमानिक देवो के स्थानो की प्ररूपणा—

१९६ कहि ण भते ! वेमाणियाण देवाण पज्जत्ताऽपज्जत्ताण ठाणा पण्णत्ता ? कहि ण भते ! वेमाणिया देवा परिवसति ?

गोयमा ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए बहुसमरमणिज्जातो भूमिभागातो उड्ढ चदिम-सूरिय-गह-णक्खत्त-ताराख्वाण बहूइ जोयणसताइ बहूइ जोयणसहस्साइं बहूइ जोयणसयसहस्साइ बहुगीओ जोयणकोडीओ बहुगीओ जोयणकोडाकोडीओ उड्ढ दूर उप्पइत्ता एत्थ ण सोहम्मीसाण-सणकुमार-माहिंद-बभलोय-लतग-महासुक्क-सहस्सार-आणय-पाणय-आरण-अच्चुत-गेवेज्ज-अणुत्तरेसु एत्थ ण वेमाणियाण देवाण चउरासीइ विमाणावाससतसहस्सा सत्ताणउइ च सहस्सा तेवीस च विमाणा भवंतीति मक्खात ।

ते ण विमाणा सव्वरतणामया अच्छा सण्हा लण्हा घट्ठा मट्ठा नीरया निम्मला निप्पका निक्ककडच्छाया सप्पभा सस्सिरीया सउज्जोया पासादीया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा । एत्थ ण वेमाणियाण देवाण पज्जत्ताऽपज्जत्ताण ठाणा पन्नत्ता । तिसु वि लोयस्स असखेज्जइभागे ।

तत्थ ण बहवे वेमाणिया देवा परिवसति । त जहा—सोहम्मीसाण-सणकुमार-माहिंद-बभलोग-लतग-महासुक्क-सहस्सार-आणय-पाणय-आरण-ऽच्चुय-गेवेज्जगा-ऽणुत्तरोववाइया देवा ।

---

१६ (क) प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक ९९

(ख) पण्णवणासुत्त भा १ (मूलपाठ) पृ ६७-६८

ते ण मिग १-महिस २-वराह ३-सीह ४-छगल ५-दद्दुर ६-हय ७-गयवइ ८-भुयग ९-खग्ग १०-उसभक ११-विडिम १२-पागडियचिंधमउडा पसढिलवरमउड-किरीडधारिणो वर-कुडलुज्जोइयाणणा मउडदित्तसिरया रत्ताभा पउमपम्हगोरा सेया सुहवण्ण-गध-फासा उत्तमवेउव्विणो पवरवत्थ गध-मल्लाणुलेवणधरा महिड्ढीया महाजुइया महायसा महाबला महाणुभागा महासोक्खा हारविराइयवच्छा कडय-तुडियथभियभुया अगद-कुडल-मट्ठगडतलकण्णपीढधारी विचित्तहत्थाभरणा विचित्त-माला-मउली कल्लाणगपवरवत्थपरिहिया कल्लाणगपवरमल्लाऽणुलेवणा भासरबोंदी पलबवणमालधरा दिव्वेण वण्णेण दिव्वेण गधेण दिव्वेण फासेण दिव्वेण सघयणेण दिव्वेण सठाणेण दिव्वाए इड्ढीए दिव्वाए जतीए दिव्वाए पभाए दिव्वाए छायाए दिव्वाए अच्चीए दिव्वेण तेएण दिव्वाए लेस्साए दस दिसाओ उज्जोवेमाणा पभासेमाणा । ते ण तत्थ साण साण विमाणावाससयसहस्साण साण साण सामाणियसाहस्सीण साण साण तायत्तीसगाण साण साण लोगपालाण साण साण अग्गमहिसीण सपरिवाराण साण साण परिसाण साण साण अणियाण साण साण अणियाधिवतीण साण साण आयरक्खदेवसाहस्सीण अण्णेसिं च बहूण वेमाणियाण देवाण देवीण य आहेवच्च पोरेवच्च सामित्त भट्टित्त महयरगत्त आणाईसरसेणावच्च कारेमाणा पालेमाणा महयाऽहतनट्ट-गीय-वाइततती-तल-ताल-तुडित-घणमुइगपडुप्पवाइतरवेण दिव्वाइ भोगभोगाइं भुजमाणा विहरति ।

[१९६ प्र] भगवन् ! पर्याप्तक और अपर्याप्तक वैमानिक देवो के स्थान कहाँ कहे गए हैं ? भगवन् ! वैमानिक देव कहाँ निवास करते है ?

[१९६ उ] गौतम ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के अत्यधिक सम एव रमणीय भूभाग से ऊपर, चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र तथा तारकरूप ज्योतिष्को के अनेक सौ योजन, अनेक हजार योजन, अनेक लाख योजन, बहुत करोड योजन और बहुत कोटाकोटी योजन ऊपर दूर जा कर, सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्मलोक, लान्तक, महाशुक्र, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण, अच्युत, ग्रैवेयक और अनुत्तर विमानो मे वैमानिक देवो के चौरासी लाख, सत्तानवे हजार, तेईस विमान एव विमानावास है, ऐसा कहा गया है ।

वे विमान सर्वरत्नमय, स्फटिक के समान स्वच्छ, चिकने, कोमल, घिसे हुए, चिकने बनाए हुए, रजरहित, निर्मल, पक-(या कलक) रहित, निरावरण कान्ति वाले, प्रभायुक्त, श्रीसम्पन्न, उद्योतसहित, प्रसन्नता उत्पन्न करने वाले, दर्शनीय, रमणीय-रूपसम्पन्न और प्रतिरूप (अप्रतिम सुन्दर) हैं । इन्ही (विमानावासो) मे पर्याप्तक और अपर्याप्तक वैमानिक देवो के स्थान कहे गए है । (ये स्थान) तीनो (पूर्वोक्त) अपेक्षाओ से लोक के असख्यातवे भाग मे हैं ।

उनमे बहुत-से वैमानिक देव निवास करते है । वे (वैमानिक देव) इस प्रकार है—सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्मलोक, लान्तक, महाशुक्र, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण, अच्युत, (नौ) ग्रैवेयक एव (पाच) अनुत्तरोपपातिक देव ।

वे (सौधर्म से अच्युत तक के देव क्रमश)—१ मृग, २ महिष, ३ वराह (शूकर), ४ सिंह, ५ बकरा (छगल), ६ दर्दुर (मेढक), ७ हय (अश्व), ८ गजराज, ९ भुजग (सर्प), १० खड्ग, (चौपाया वन्य जानवर या गैंडा), ११ वृषभ (बैल) और १२ विडिम के प्रकट चिह्न से युक्त मुकुट वाले, शिथिल और श्रेष्ठ मुकुट और किरीट के धारक, श्रेष्ठ कुण्डलो से उद्योतित मुख वाले, मुकुट

के कारण शोभायुक्त, रक्त आभायुक्त, कमल के पत्र के समान गोरे, श्वेत, सुखद वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श वाले, उत्तम विक्रियाशक्तिधारी, प्रवर वस्त्र, गन्ध, माल्य और अनुलेपन के धारक, महर्द्धिक, महाद्युतिमान्, महायशस्वी, महाबली, महानुभाग, महासुखी, हार से सुशोभित वक्षस्थल वाले है। कडे और बाजूबदो से मानो भुजाओ को उन्होने स्तब्ध कर रखी है, अगद, कुण्डल आदि आभूषण उनके कपोलस्थल को सहला रहे है, कानो मे वे कर्णपीठ और हाथो मे विचित्र कराभूषण धारण किये हुए है। विचित्र पुष्पमालाएँ मस्तक पर शोभायमान है। वे कल्याणकारी उत्तम वस्त्र पहने हुए तथा कल्याणकारी श्रेष्ठ माला और अनुलेपन धारण किये हुए होते हैं। उनका शरीर (तेज से) देदीप्यमान होता है। वे लम्बी वनमाला धारण किये हुए होते हैं तथा दिव्य वर्ण से, दिव्य गन्ध से, दिव्य स्पर्श से दिव्य सहनन से, दिव्य सस्थान से, दिव्य ऋद्धि से, दिव्य द्युति से, दिव्य प्रभा से, दिव्य छाया से, दिव्य अर्चि (ज्योति) से, दिव्य तेज से, दिव्य लेश्या से दसो दिशाओ को उद्योतित एव प्रभासित करते हुए, वे (वैमानिक देव) वहाँ अपने-अपने लाखो विमानावासो का, अपने-अपने हजारो सामानिक देवो का, अपने-अपने त्रायस्त्रिंशक देवो का, अपने-अपने लोकपालो का, सपरिवार अपनी-अपनी अग्रमहिषियो का, अपनी-अपनी परिषदो का, अपनी-अपनी सेनाओ का, अपने-अपने सेनाधिपति देवो का, अपने-अपने हजारो आत्मरक्षक देवो का तथा अन्य बहुत-से वैमानिक देवो और देवियो का आधिपत्य, पुरोवर्त्तित्व (अग्रेसरत्व), स्वामित्व, भर्तृत्व, महत्तरकत्व, आज्ञैश्वरत्व तथा सेनापतित्व करते-कराते और पालते-पलाते हुए निरन्तर होने वाले महान् नाट्य, गीत तथा कुशल वादको द्वारा बजाये जाते हुए वीणा, तल, ताल, त्रुटित, घनमृदग आदि वाद्यो की समुत्पन्न ध्वनि के साथ दिव्य शब्दादि कामभोगो को भोगते हुए विचरण करते है।

१९७ [१] कहि ण भते ! सोहम्मगदेवाण पज्जत्ताऽपज्जत्ताण ठाणा पण्णत्ता ? कहि ण भते ! सोहम्मगदेवा परिवसति ?

गोयमा ! जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वतस्स दाहिणेण इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ उड्ढ चदिम-सूरिम-गह-नक्खत्त-तारारूवाण बहूणि जोयणसताणि बहूइ जोयणसहस्साइ बहूइ जोयणसतसहस्साइं बहुगीओ जोयणकोडीओ बहुगीओ जोयणकोडाकोडीओ उड्ढ दूर उप्पइत्ता एत्थ ण सोहम्मे णामं कप्पे पण्णत्ते पाईण-पडीणायते उदीण-दाहिणवित्थिण्णे अद्धचदसठाणसठिते अच्चिमालिभासरासिवण्णाभे असखेज्जाओ जोयणकोडीओ असखेज्जाओ जोयणकोडाकोडीओ आयाम-विक्खभेण, असखेज्जाओ जोयणकोडाकोडीओ परिक्खेवेण, सव्वरयणामए अच्छे जाव (सु १९६) पडिरूवे। तत्थ ण सोहम्मगदेवाण बत्तीस विमाणावाससतसहस्सा हवतीति मक्खात। ते ण विमाणा सव्वरयणामया अच्छा जाव (सु १९६) पडिरूवा।

तेसि ण विमाणाण बहुमज्झदेसभागे पच वडेंसया पण्णत्ता। त जहा—असोगवडेंसए १ सत्तिवण्णवडेंसए २ चपगवडेंसए ३ चूयवडेंसए ४ मज्झे यऽत्थ सोहम्मवडेंसए ५। ते ण वडेंसया सव्वरयणामया अच्छा जाव (सु १९६) पडिरूवा। एत्थ ण सोहम्मगदेवाण पज्जत्ताऽपज्जत्ताण ठाणा पण्णत्ता। तीसु वि लोगस्स असखेज्जइभागे।

तत्थ ण बहवे सोहम्मगदेवा परिवसति महिड्ढीया जाव (सु १९६) पभासेमाणा। ते ण तत्थ साण साण विमाणावाससतसहस्साण साण साण सामाणियसाहस्सीण एव जहेव ओहियाण

(सु. १९६) तहेव एतेसिं पि भाणितव्वं जाव आयरक्खदेवसाहस्सीणं अण्णेसिं च बहूणं सोहम्मग-कप्पवासीणं वेमाणियाणं देवाण य देवीण य आहेवच्चं पोरेवच्चं जाव (सु १९६) विहरति।

[१९७-१ प्र] भगवन्! पर्याप्त और अपर्याप्त सौधर्मकल्पगत देवो के स्थान कहाँ कहे है? भगवन्! सौधर्मकल्पगत देव कहाँ निवास करते है?

[१९७-१ उ] गौतम! जम्बूद्वीपनामक द्वीप मे सुमेरु पर्वत के दक्षिण मे, इस रत्नप्रभापृथ्वी के अत्यधिक सम एव रमणीय भूभाग से ऊपर चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र तथा तारकरूप ज्योतिष्को के अनेक सौ योजन, अनेक हजार योजन, अनेक लाख योजन, बहुत करोड योजन और बहुत कोटाकोटी योजन ऊपर दूर जाने पर सौधर्म नामक कल्प कहा गया है। वह पूर्व-पश्चिम मे लम्बा, उत्तर दक्षिण मे विस्तीर्ण, अर्द्ध चन्द्र के आकार मे सस्थित, अर्चियो—ज्योतियो की माला तथा दीप्तियो की राशि के समान वर्ण-कान्ति वाला है। उसकी लम्बाई और चौडाई असख्यात कोटि योजन ही नही, बल्कि असख्यात कोटाकोटि योजन की है, तथा परिधि भी असख्यात कोटाकोटि योजन की है। वह सर्वरत्नमय है, स्वच्छ है, (इत्यादि सब वर्णन,) यावत् 'प्रतिरूप है' तक सू १९६ के अनुसार (समझना चाहिए।) उस (सौधर्मकल्प) मे सौधर्मक देवो के बत्तीस लाख विमानावास है, ऐसा कहा गया है। वे विमान पूर्णरूप से रत्नमय हैं, स्वच्छ है, (इत्यादि सब वर्णन) सू १९६ के अनुसार यावत् प्रतिरूप है, तक, समझना चाहिए।

इन विमानो के बिलकुल मध्यदेशभाग मे (ठीक बीचोबीच) पाच अवतसक कहे गए है। वे इस प्रकार है—१-अशोकावतसक, २-सप्तपर्णावतसक, ३-चपकावतसक ४-चूतावतसक और इन चारो के मध्य मे ५-पाचवा सौधर्मावतसक। ये अवतसक पूर्णतया रत्नमय है, स्वच्छ है, यावत् 'प्रतिरूप है' तक सब वर्णन सू १९६ के अनुसार समझ लेना चाहिए। इन्ही (अवतसको) मे पर्याप्त और अपर्याप्त सौधर्मक देवो के स्थान कहे गए है। (वे स्थान) तीनो (पूर्वोक्त) अपेक्षाओ से लोक के असख्यातवे भाग मे है। उनमे बहुत से सौधर्मक देव निवास करते हैं, जो कि 'महर्द्धिक हैं' (इत्यादि शेष वर्णन) यावत् प्रभासित करते हुए ('पभासेमाणा') तक (सू १९६ के अनुसार) (पूर्ववत् कहना चाहिए।) वे वहाँ अपने-अपने लाखो विमानो का, अपने-अपने हजारो सामानिक देवो का, इस प्रकार जैसे औधिक (सामान्य) वैमानिको के विषय मे (सू १९६ मे) कहा है, वैसे ही इनके विषय मे भी कहना चाहिए। यावत् हजारो आत्मरक्षक देवो का, तथा अन्य बहुत-से सौधर्मकल्पवासी वैमानिक देवो और देवियो का आधिपत्य, पुरोवर्त्तित्व इत्यादि यावत् विचरण करते हैं ('विहरति') तक (सू १९६ के अनुसार) कहना चाहिए।

[२] सक्के यऽत्थ देविंदे देवराया परिवसति वज्जपाणी पुरदरे सतक्कतू सहस्सक्खे मघवं पागसासणे दाहिणड्ढलोगाधिवती बत्तीसविमाणावाससतसहस्साधिवती एरावणवाहणे सुरिंदे अरयबर-वत्थधरे आलइयमाल-मउडे णवहेमचारुचित्तचंचलकुंडलविलिहिज्जमाणगडे महिड्ढिए जाव (सु. १९६) पभासेमाणे।

से णं तत्थ बत्तीसाए विमाणावाससतसहस्साणं चउरासीए सामाणियसाहस्सीणं तायत्तीसाए तायत्तीसगाणं चउण्हं लोगपालाणं अट्ठण्हं अग्गमहिसीणं सपरिवाराणं तिण्हं परिसाणं सत्तण्हं अणियाणं सत्तण्हं अणियाधिवतीणं चउण्हं चउरासीईणं आयरक्खदेवसाहस्सीणं अण्णेसिं च बहूणं सोहम्मगकप्प-वासीणं वेमाणियाणं देवाण य देवीण य आहेवच्चं पोरेवच्चं कुव्वमाणे जाव (सु १९६) विहरइ।

[१९७-२] इन्ही (पूर्वोक्त स्थानो) मे देवेन्द्र देवराज शक्र निवास करता है, जो वज्रपाणि, पुरन्दर, शतक्रतु, सहस्राक्ष, मघवा, पाकशासन, दक्षिणार्द्धलोकाधिपति, बत्तीस लाख विमानो का अधिपति है। ऐरावत हाथी जिसका वाहन है, जो सुरेन्द्र है, रजरहित स्वच्छ वस्त्रो का धारक है, सयुक्त माला और मुकुट पहनता है तथा जिसके कपोलस्थल नवीन स्वर्णमय, सुन्दर, विचित्र एव चचल कुण्डलो से विलिखित होते है। वह महर्द्धिक है, (इत्यादि आगे का सब वर्णन) यावत् प्रभासित करता हुआ, तक (सू १९६ के अनुसार) पूर्ववत् (जानना चाहिए।)

वह (देवेन्द्र देवराज शक्र) वहाँ बत्तीस लाख विमानावासो का, चौरासी हजार सामानिक देवो का, तेतीस त्रायस्त्रिशक देवो का, चार लोकपालो का, आठ सपरिवार अग्रमहिषियो का, तीन परिषदो का, सात सेनाओ का, सात सेनाधिपति देवो का, चार चौरासी हजार—अर्थात्—तीन लाख छत्तीस हजार आत्मरक्षक देवो का तथा अन्य बहुत-से सौधर्मकल्पवासी वैमानिक देवो और देवियो का आधिपत्य एव अग्रेसरत्व करता हुआ, (इत्यादि सब वर्णन सू १९६ के अनुसार) यावत् 'विचरण करता है' तक पूर्ववत् (समझना चाहिए।)

१९८ [१] कहि णं भते ! ईसाणगदेवाण पज्जत्ताऽपज्जत्ताण ठाणा पण्णत्ता ? कहि ण भते ! ईसाणगदेवा परिवसति ?

गोयमा ! जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वतस्स उत्तरेण इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ उड्ढ चदिम-सूरिय-गहगण-णक्खत्त-तारारूवाण बहूइ जोयणसताइ बहूइ जोयणसहस्साइ जाव (सु. १९७ [१]) उप्पइत्ता एत्थ ण ईसाणे णाम कप्पे पण्णत्ते पाईण-पडीणायते उदीण-दाहिणविच्छिण्णे एव जहा सोहम्मे (सु १९७ [१]) जाव पडिरूवे।

तत्थ ण ईसाणगदेवाणं अट्ठावीस विमाणावाससतसहस्सा हवंतीति मक्खात। ते ण विमाणा सव्वरयणामया जाव पडिरूवा।

तेसि णं बहुमज्झदेसभाए पच वडेंसगा पण्णत्ता, त जहा—अकवडेंसए १ फलिहवडेंसए २ रतणवडेंसए ३ जातरूववडेंसए ४ मज्झे एत्थ ईसाणवडेंसए ५। ते णं वडेंसया सव्वरयणामया जाव (सु १९६) पडिरूवा।

एत्थ ण ईसाणाण देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता। तिसु वि लोगस्स असखेज्जतिभागे। सेस जहा सोहम्मगदेवाण जाव (सु. १९७ [१]) विहरति।

[१९८-१ प्र] भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त ईशानक देवो के स्थान कहाँ कहे गए हैं ? भगवन् ! ईशानक देव कहाँ निवास करते हैं ?

[१९८-१ उ] गौतम ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे सुमेरुपर्वत के उत्तर मे, इस रत्नप्रभापृथ्वी के अत्यधिक सम और रमणीय भूभाग से ऊपर, चन्द्र, सूर्य, ग्रहगण, नक्षत्र और तारारूप ज्योतिष्को से अनेक सौ योजन, अनेक हजार योजन, अनेक लाख योजन, बहुत करोड योजन और बहुत कोटाकोटी योजन ऊपर दूर जा कर ईशान नामक कल्प (देवलोक) कहा गया है, जो पूर्व-पश्चिम मे लम्बा और उत्तर-दक्षिण मे विस्तीर्ण है, इस प्रकार (शेष वर्णन) सौधर्म (कल्प के वर्णन) के समान (सू १९७-१ के अनुसार) यावत्—'प्रतिरूप है' तक समझना चाहिए।

उस (ईशानकल्प) मे ईशान देवो के अट्ठाईस लाख विमानावास है । वे विमान सर्व-रत्नमय यावत् (पूर्ववत्) प्रतिरूप है ।

उन विमानावासो के ठीक मध्यदेशभाग मे पाच अवतसक कहे गए है । वे इस प्रकार हैं—१-अकावतसक, २-स्फटिकावतसक, ३-रत्नावतसक, ४-जातरूपावतसक और इनके मध्य मे ५-ईशानावतसक । वे (सब) अवतसक पूर्णरूप से रत्नमय यावत् प्रतिरूप है, (यह सब वर्णन सू १९६ के अनुसार जानना चाहिए ।)

इन्ही (अवतसको) मे पर्याप्तक और अपर्याप्तक ईशान देवो के स्थान कहे गए है । (वे स्थान) तीनो अपेक्षाओ से लोक के असख्यातवे भाग मे है । शेष सब (वर्णन) सौधर्मक देवो के (सू १९७-१ मे कथित) (वर्णन के) अनुसार यावत् विचरण करते है ('विहरति') तक (समझना चाहिए ।)

[२] ईसाणे यऽत्थ देविंदे देवराया परिवसति सूलपाणी वसभवाहणे उत्तरड्ढलोगाधिवती अट्ठावीसविमाणावाससतसहस्साधिवती अरयबरवत्थधरे सेसं जहा सक्कस्स (सु १९७ [२]) जाव पभासेमाणे ।

से ण तत्थ अट्ठावीसाए विमाणावाससतसहस्साण असीतीए सामाणियसाहस्सीण तायत्तीसाए तायत्तीसगाण चउण्ह लोगपालाणं अट्ठण्ह अग्गमहिसीण सपरिवाराण तिण्ह परिसाण सत्तण्ह अणियाणं सत्तण्ह अणियाधिवतीण चउण्ह असीतीण आयरक्खदेवसाहस्सीण अण्णेसिं च बहूण ईसाणकप्पवासीण वेमाणियाण देवाण य देवीण य आहेवच्चं पोरेवच्चं कुव्वमाणे जाव (सु १९६) विहरति ।

[१९८-२] इस ईशानकल्प मे देवेन्द्र देवराज ईशान निवास करता है, जो शूलपाणि, वृषभ-वाहन, उत्तरार्द्धलोकाधिपति, अट्ठाईस लाख विमानावासो का अधिपति, रजरहित स्वच्छ वस्त्रो का धारक है, शेष वर्णन (सू १९७-२ मे अकित) शक्र के (वर्णन के) समान, यावत् 'प्रभासित करता हुआ' तक, (समझना चाहिए ।)

वह (ईशानेन्द्र) वहाँ अट्ठाईस लाख विमानावासो का, अस्सी हजार सामानिक देवो का, तेतीस त्रायस्त्रिशक देवो का, चार लोकपालो का, आठ सपरिवार अग्रमहिषियो का, तीन परिषदो का, सात सेनाओ का, सात सेनाधिपति देवो का, चार अस्सी हजार, अर्थात्—तीन लाख बीस हजार आत्मरक्षक देवो का तथा अन्य बहुत-से ईशानकल्पवासी देवो और देवियो का आधिपत्य, अग्रेसरत्व करता हुआ, (आगे का सब वर्णन सू १९६ के अनुसार) यावत् 'विचरण करता है' तक (पूर्ववत् समझना चाहिए ।)

१९९ [१] कहि ण भते ! सणकुमारदेवाण पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ? कहि ण भते ! सणकुमारा देवा परिवसंति ?

गोयमा ! सोहम्मस्स कप्पस्स उप्पि सपक्खि सपडिदिसिं बहूइ जोयणाइ बहूइ जोयणसताइ बहूइ जोयणसहस्साइ बहूइ जोयणसतसहस्साइ बहुगीओ जोयणकोडीओ बहुगीओ जोयणकोडाकोडीओ उड्ढं दूर उप्पइत्ता एत्थ णं सणकुमारे णामं कप्पे पाईण-पडीणायते उदीण-दाहिण-विच्छिण्णे जहा सोहम्मे (सु १९७ [१]) जाव पडिरूवे ।

एत्थ ण सणकुमाराण देवाण बारस विमाणावाससतसहस्सा भवतीति मक्खात । ते ण विमाणा सव्वरयणामया जाव (सु १९६) पडिरूवा । तेसि ण विमाणाण बहुमज्झदेसभागे पच वडेंसगा पण्णत्ता । त जहा—असोगवडेंसए १ सत्तिवण्णवडेंसए २ चपगवडेंसए ३ चूयवडेंसए ४ मज्झे यऽत्थ सणकुमारवडेंसए ५ । ते ण वडेंसया सव्वरयणामया अच्छा जाव (सु. १९६) पडिरूवा । एत्थ ण सणकुमारदेवाण पज्जत्ताऽपज्जत्ताण ठाणा पण्णत्ता । तिसु वि लोगस्स असखेज्जइभागे । तत्थ ण बहवे सणकुमारा देवा परिवसति महिड्ढिया जाव (सु १९६) पभासेमाणा विहरति । णवर अग्गमहिसीओ णत्थि ।

[१९९-१ प्र] भगवन् ! पर्याप्तक और अपर्याप्तक सनत्कुमार देवो के स्थान कहाँ कहे गए हैं ? भगवन् ! सनत्कुमार देव कहाँ निवास करते है ?

[१९९-१ उ] गौतम ! सौधर्म-कल्प के ऊपर समान (पूर्वापर दक्षिणोत्तररूप) पक्ष (पार्श्व) और समान प्रतिदिशा (विदिशा) मे बहुत योजन, अनेक सौ योजन, अनेक हजार योजन, अनेक लाख योजन, अनेक करोड योजन और अनेक कोटाकोटी योजन ऊपर दूर जाने पर वहाँ सनत्कुमार नामक कल्प कहा गया है, जो पूर्व-पश्चिम मे लम्बा और उत्तर-दक्षिण मे विस्तीर्ण है, (इत्यादि सब वर्णन) सौधर्मकल्प के (सू १९७-१ मे उल्लिखित वर्णन के) अनुसार यावत् 'प्रतिरूप है' तक (समझना चाहिए ।)

इसी (सनत्कुमारकल्प) मे सनत्कुमार देवो के बारह लाख विमान है, ऐसा कहा गया है । वे विमान पूर्णरूप से रत्नमय है, यावत् 'प्रतिरूप है', तक (सू १९६ को अनुसार पूर्ववत् वर्णन समझना चाहिए ।) उन विमानो के एकदम बीचोबीच मे पाच अवतसक कहे गए है । वे इस प्रकार है—१—अशोकावतसक, २—सप्तपर्णावतसक, ३—चपकावतसक, ४—चूतावतसक और इनके मध्य मे ५—सनत्कुमारावतसक है । वे अवतसक सर्वरत्नमय, स्वच्छ है यावत् प्रतिरूप है, (तक का वर्णन सू १९६ के अनुसार) (पूर्ववत् समझना चाहिए ।) इन (अवतसको) मे पर्याप्तक और अपर्याप्तक सनत्कुमार देवो के स्थान कहे गए हैं । (ये स्थान) तीनो अपेक्षाओ से लोक के असख्यातवें भाग मे है । उन (स्थानो) मे बहुत-से सनत्कुमार देव निवास करते है, जो महर्द्धिक हैं, (इत्यादि सब वर्णन सू १९६ के अनुसार) यावत् 'प्रभासित करते हुए विचरण करते हैं' तक पूर्ववत् समझना चाहिए । विशेष यह है कि यहाँ अग्रमहिषिया नही है ।

[२] सणकुमारे यऽत्थ देविंदे देवराया परिवसति, अरयबरवत्थधरे सेस जहा सक्कस्स (सु. १९७ [२]) । से ण तत्थ बारसण्ह विमाणावाससतसहस्साण बावत्तरीए सामाणियसाहस्सीण सेस जहा सक्कस्स (सु १९७ [२]) अग्गमहिसीवज्ज । णवरं चउण्ह बावत्तरीण आयरक्खदेव-साहस्सीण जाव (सु १९६) विहरइ ।

[१९९-२] यही देवेन्द्र देवराज सनत्कुमार निवास करता है, जो रज से रहित वस्त्रो के धारक है, (इत्यादि) शेष वर्णन जैसे (सू १९७-२ मे) शक्र का कहा है, (उसी प्रकार इसका समझना चाहिए ।) वह (सनत्कुमारेन्द्र) बारह लाख विमानावासो का, बहत्तर हजार सामानिक देवो का' (इत्यादि) शेष सब वर्णन (जैसे सू १९७-२ मे) शक्रेन्द्र का किया गया है, इसी प्रकार (यहाँ भी) 'अग्रमहिषियो को छोड कर (करना चाहिए ।) विशेषता यह कि चार बहत्तर हजार, अर्थात्—दो लाख अठासी हजार आत्मरक्षक देवो का यावत् 'विचरण करता है ।' (यह कहना चाहिए ।'

२०० [१] कहि ण भते ! माहिंदाण देवाण पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ? कहि ण भते ! माहिंदगदेवा परिवसति ?

गोयमा ! ईसाणस्स कप्पस्स उप्पि सपक्खि सपडिदिसि बहूइ जोयणाइ जाव (सु १९९ [१]) बहुगीओ जोयणकोडाकोडीओ उड्ढ दूर उप्पइत्ता एत्थ ण माहिंदे णाम कप्पे पाईण-पडीणायए एव जहेव सणकुमारे (सु १९९ [१]), णवर अट्ठ विमाणावाससतसहस्सा । वडेंसया जहा ईसाणे (सु १९८ [१]), णवर मज्झे यऽत्थ माहिंदवडेंसए । एव सेस जहा सणकुमारगदेवाण (सु. १९६) जाव विहरति ।

[२००-१ प्र] भगवन् ! पर्याप्तक और अपर्याप्तक माहेन्द्र देवो के स्थान कहाँ कहे गए है ? भगवन् ! माहेन्द्र देव कहाँ निवास करते है ?

[२००-१ उ] गौतम ! ईशानकल्प के ऊपर समान पक्ष (पार्श्व या दिशा) और समान विदिशा मे बहुत योजन, यावत्—(सू १९९-१ के अनुसार) बहुत कोडाकोडी योजन ऊपर दूर जाने पर वहाँ माहेन्द्र नामक कल्प कहा गया है, पूर्व-पश्चिम मे लम्बा इत्यादि वर्णन जैसे (सू १९९-१ मे) सनत्कुमारकल्प का किया गया है, वैसे इसका भी समझना चाहिए । विशेष यह है कि इस कल्प मे विमान आठ लाख है । इनके अवतसक (सू १९८-१ मे प्रतिपादित) ईशानकल्प के अवतसको के समान जानने चाहिए । विशेषता यह है कि इनके बीच मे माहेन्द्रअवतसक है । इस प्रकार शेष सब वर्णन (सू १९६ मे वर्णित) सनत्कुमार देवो के समान, यावत् 'विचरण करते है', तक समझना चाहिए।

[२] माहिंदे यऽत्थ देविंदे देवराया परिवसति अरयवरवत्थधरे, एव जहा सणकुमारे (सु १९९ [२]) जाव विहरति । णवर अट्ठण्ह विमाणावाससतसहस्साण सत्तरीए सामाणिय-साहस्सीण चउण्ह सत्तरीण आयरक्खदेवसाहस्सीण जाव (सु. १९६) विहरइ ।

[२००-२] यही देवेन्द्र देवराज माहेन्द्र निवास करता है, जो रज से रहित स्वच्छ—श्वेत वस्त्र-धारक है, इस प्रकार (आगे का समस्त वर्णन सू १९९-२ मे उक्त) सनत्कुमारेन्द्र के वर्णन की तरह यावत् 'विचरण करता है' तक समझना चाहिए । विशेष यह है कि माहेन्द्र आठ लाख विमानावासो का, सत्तर हजार सामानिक देवो का, चार सत्तर हजार अर्थात्—दो लाख अस्सी हजार आत्मरक्षक देवो का—(शेष सू १९६ के अनुसार) यावत् 'विचरण करता है' (तक समझना चाहिए।)

२०१ [१] कहि ण भते ! बभलोगदेवाण पज्जत्ताऽपज्जत्ताण ठाणा पण्णत्ता ? कहि णं भते ! बभलोगदेवा परिवसति ? गोयमा ! सणकुमार-माहिंदाण कप्पाणं उप्पि सपक्खि सपडिदिसि बहूइ जोयणाइ जाव[1] (सु १९९ [१]) उप्पइत्ता एत्थ ण बभलोए णाम कप्पे पाईण-पडीणायए उदीण-दाहिणविच्छिण्णे पडिपुन्नचदसठाणसंठिते अच्चिमाली-भासरासिप्पभे अवसेस जहा सणकुमाराण (सु १९९[१]), णवरं चत्तारि विमाणावाससतसहस्सा । वडिसगा जहा सोहम्मवडेंसया (सु १९७ [१]), णवर मज्झे यऽत्थ बभलोयवडिंसए । एत्थ ण बभलोगाण देवाण ठाणा पन्नत्ता । सेसं तहेव जाव (सु १९६) विहरति ।

---

१. 'जाव' और 'जहा' शब्द से तत्स्थानीय सारा बीच का पाठ ग्राह्य है ।

[२०१-१ प्र] भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त ब्रह्मलोक देवो के स्थान कहाँ कहे गए हैं ? भगवन् ! ब्रह्मलोक देव कहाँ निवास करते है ?

[२०१-१ उ] गौतम ! सनत्कुमार और माहेन्द्र कल्पो के ऊपर समान पक्ष (पार्श्व या दिशा) और समान विदिशा मे बहुत योजन यावत् ऊपर दूर जाने पर, वहाँ ब्रह्मलोक नामक कल्प है, जो पूर्व-पश्चिम मे लम्बा और उत्तर-दक्षिण मे विस्तीर्ण, परिपूर्ण चन्द्रमा के आकार का, ज्योतिमाला तथा दीप्तिराशि की प्रभा वाला है। शेष वर्णन, सनत्कुमारकल्प की तरह (सू १९९-१ के अनुसार) समझना चाहिए। विशेष यह है कि (इस कल्प मे) चार लाख विमानावास है। इनके अवतसक (सू १९७-१ मे कथित) सौधर्म-अवतसको के समान समझने चाहिए। विशेष यह है कि इन (चारो अवतसको) के मध्य मे ब्रह्मलोक अवतसक है, जहाँ कि ब्रह्मलोक देवो के स्थान कहे गए हैं। शेष वर्णन उसी प्रकार (सू १९६ मे कथित वर्णन के अनुसार) यावत् 'विचरण करते हैं', तक समझना चाहिए।

[२] बंभे यऽत्थ देविंदे देवराया परिवसति अरयबरवत्थधरे, एव जहा सणकुमारे (सु १९९ [२]) जाव विहरति। णवर चउण्ह विमाणावाससतसहस्साण सट्ठीए सामाणियसाहस्सीण चउण्ह य सट्ठीण आयरक्खदेवसाहस्सीण अण्णेसिं च बहूण जाव (सु १९६) विहरति।

[२०१-२] ब्रह्मलोकावतसक मे देवेन्द्र देवराज ब्रह्म निवास करता है, जो रज-रहित स्वच्छ वस्त्रो का धारक है, इस प्रकार जैसे (सू १९९-२ मे) सनत्कुमारेन्द्र का वर्णन है, वैसे ही यहाँ यावत् 'विचरण करता हैं', तक कहना चाहिए। विशेष यह है कि (यह ब्रह्मेन्द्र) चार लाख विमानावासो का, साठ हजार सामानिको का, चार साठ हजार अर्थात्—दो लाख चालीस हजार आत्मरक्षक देवो का तथा अन्य बहुत से ब्रह्मलोककल्प के देवो का आधिपत्य करता हुआ (इत्यादि शेष वर्णन सू. १९६ के अनुसार) यावत् 'विचरण करता है' तक (समझना चाहिए।)

२०२ [१] कहि ण भते ! लतगदेवाण पज्जत्ताऽपज्जत्ताण ठाणा पण्णत्ता ? कहि ण भते ! लतगदेवा परिवसति ?

गोयमा ! बभलोगस्स कप्पस्स उप्पिं सपक्खि सपडिदिसिं बहूइ जोयणसयाइ जाव (सु १९९ [१]) बहुगीओ जोयणकोडाकोडीओ उड्ढ दूर उप्पइत्ता एत्थ ण लतए णाम कप्पे पण्णत्ते पाईण-पडीणायए जहा बंभलोए (सु २०१ [१]), णवर पण्णास विमाणावाससहस्सा भवतीति मक्खाय। वडेंसगा जहा ईसाणवडेंसगा (सु १९८ [१]), णवर मज्झे यऽत्थ लंतगवडेंसए। देवा तहेव जाव (सु १९६) विहरति।

[२०२-१ प्र] भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त लान्तक देवो के स्थान कहाँ कहे गए है ? भगवन् ! लान्तक देव कहाँ निवास करते है ?

[२०२-१ उ] गौतम ! ब्रह्मलोक कल्प के ऊपर समान दिशा और समान विदिशा मे अनेक सौ योजन यावत् बहुत कोटाकोटी योजन ऊपर दूर जाने पर, लान्तक नामक कल्प कहा गया है, जो पूर्व-पश्चिम मे लम्बा है, (इत्यादि सब वर्णन) जैसे (सू २०१-१ मे) ब्रह्मलोक (कल्प) का (किया गया) है, (उसी तरह यहाँ भी करना चाहिए।) विशेष यह है कि (इस कल्प मे) पचास

हजार विमानावास हैं, (इनके) अवतसक ईशानावतसको (सू १९८-१ मे उक्त) के समान समझने चाहिए। विशेष यह है कि इन (चारो) के मध्य मे (पाचवा) लान्तक अवतसक है। (सू १९६ मे) (जिस प्रकार सामान्य वैमानिक देवो का वर्णन है,) उसी प्रकार (लान्तक) देवो का भी यावत् 'विचरण करते है,' तक (वर्णन समझना चाहिए।)

[२] लतए यऽत्थ देविंदे देवराया परिवसति जहा सणकुमारे। (सु १९९[२]) णवर पण्णासाए विमाणावाससहस्साण पण्णासाए सामाणियसाहस्सीण चउण्ह य पण्णासाण आयरक्खदेव-साहस्सीण अण्णेसि च बहूण जाव (सु १९६) विहरति।

[२०२-२] इस लान्तक अवतसक मे देवेन्द्र देवराज लान्तक निवास करता है, (इसका समग्र वर्णन) (सू १९९-२ मे अकित) सनत्कुमारेन्द्र की तरह (समझना चाहिए।) विशेष यह है कि (लान्तकेन्द्र) पचास हजार विमानावासो का, पचास हजार सामानिको का चार पचास हजार अर्थात्—दो लाख आत्मरक्षक देवो का, तथा अन्य बहुत-से लान्तक देवो का आधिपत्य करता हुआ इत्यादि (शेष समग्र वर्णन सू १९६ के अनुसार) यावत् 'विचरण करता है' तक (समझ लेना चाहिए।)

२०३ [१] कहि ण भते! महासुक्काण देवाण पज्जत्ताऽपज्जत्ताण ठाणा पण्णत्ता? कहि ण भते! महासुक्का देवा परिवसति?

गोयमा! लतयस्स कप्पस्स उप्पि सपक्खि सपडिदिसि जाव (सु १९९[१]) उप्पइत्ता एत्थ ण महासुक्के णाम कप्पे पण्णत्ते पायीण-पडीणायए उदीण-दाहिणविच्छिण्णे जहा बभलोए णवर चत्तालीस विमाणावाससहस्सा भवतीति मक्खात। वडेंसगा जहा सोहम्मवडेंसगा (सु १९७[१]), णवर मज्झे यऽत्थ महासुक्कवडेंसए जाव (सु. १९६) विहरति।

[२०३-१ प्र] भगवन्! पर्याप्तक और अपर्याप्तक महाशुक्र देवो के स्थान कहाँ कहे गए हैं? भगवन्! महाशुक्र देव कहाँ निवास करते हैं?

[२०३-१ उ] गौतम! लान्तककल्प के ऊपर समान दिशा मे (सू १९९-१ के आगे का वर्णन) यावत् ऊपर जाने पर, महाशुक्र नामक कल्प कहा गया है, जो पूर्व-पश्चिम मे लम्बा और उत्तर-दक्षिण मे विस्तीर्ण है, इत्यादि, जैसे (सू २०१-१ मे) ब्रह्मलोक का वर्णन है, उसी प्रकार यहाँ भी समझना चाहिए। विशेष इतना ही है कि (इसमे) चालीस हजार विमानावास है, ऐसा कहा गया है। इनके अवतसक (सू १९७-१ मे उक्त) सौधर्मावतसक के समान समझने चाहिए। विशेष यह है कि इन (चारो) के मध्य मे (पाचवा) महाशुक्रावतसक है, (इससे आगे का) यावत् 'विचरण करते हैं', तक (का वर्णन) (सू १९६-१ के अनुसार) (कह देना चाहिए।)

[२] महासुक्के यऽत्थ देविंदे देवराया जहा सणकुमारे (सु १९९[२]), णवर चत्तालीसाए विमाणावाससहस्साण चत्तालीसाए सामाणियसाहस्सीण चउण्ह य चत्तालीसाणं आयरक्खदेवसाहस्सीण जाव (सु १९६) विहरति।

[२०३-२] इस महाशुक्रावतसक मे देवेन्द्र देवराज महाशुक्र रहता है, (जिसका सर्व वर्णन सू १९९ मे उक्त) सनत्कुमारेन्द्र के समान समझना चाहिए। विशेष यह है कि (वह महाशुक्रेन्द्र)

चालीस हजार विमानावासो का, चालीस हजार सामानिको का, और चार चालीस हजार, अर्थात् एक लाख साठ हजार आत्मरक्षक देवो का अधिपतित्व करता हुआ (आगे का वर्णन सू १९६ के अनुसार) यावत् 'विचरण करता है' तक (समझना चाहिए।)

२०४ [१] कहि ण भते ! सहस्सारदेवाण पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ? कहि ण भते ! सहस्सारदेवा परिवसति ?

गोयमा ! महासुक्कस्स कप्पस्स उप्पि सपक्खि सपडिदिसि जाव (सु १९९ [१]) उप्पइत्ता एत्थ ण सहस्सारे णाम कप्पे पण्णत्ते पाईण-पडीणायते जहा बभलोए (सु. २०१ [१]), णवरं छव्विमाणावाससहस्सा भवंतीति मक्खात। देवा तहेव (सु. १९७ [१]) जाव वडेंसगा जहा ईसाणस्स वडेंसगा (सु १९८ [१]), णवर मज्झे यऽत्थ सहस्सारवडेंसए जाव (सु १९६) विहरति।

[२०४-१ प्र] भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त सहस्रार देवो के स्थान कहाँ कहे गए हैं ? भगवन् ! सहस्रार देव कहाँ निवास करते है ?

[२०४-१ उ] गौतम ! महाशुक्र कल्प के ऊपर समान दिशा और समान विदिशा मे यावत् (सू १९९-१ के अनुसार) ऊपर दूर जाने पर, वहाँ सहस्रार नामक कल्प कहा गया है, जो पूर्व-पश्चिम मे लम्बा है, (इत्यादि समस्त वर्णन) जैसे (सू २०१-१ मे) ब्रह्मलोक कल्प का है, (उसी प्रकार यहाँ भी समझना चाहिए।) विशेष यह है कि (इस सहस्रार कल्प मे) छह हजार विमानावास हैं, ऐसा कहा गया है। (सहस्रार) देवो का वर्णन सू १९७-१ के अनुसार यावत् 'अवतसक है' तक उसी प्रकार (पूर्ववत्) कहना चाहिए। इनके अवतसको के विषय मे ईशान (कल्प) के अवतसको की तरह (सू १९८-१ के अनुसार) जानना चाहिए। विशेष यह है कि इन (चारो) के बीच मे (पाचवा) 'सहस्रारावतसक' समझना चाहिए। (इससे आगे) यावत् 'विचरण करते हैं' तक का भी वर्णन (सू १९६ के अनुसार) जान लेना चाहिए।

[२] सहस्सारे यऽत्थ देविंदे देवराया परिवसति जहा सणकुमारे (सु १९९ [२]), णवर छण्ह विमाणावाससहस्साण तीसाए सामाणियसाहस्सीण चउण्ह य तीसाए आयरक्खदेवसाहस्सीण जाव (सु. १९६) आहेवच्च कारेमाणे विहरति।

[२०४-२] इसी स्थान पर देवेन्द्र देवराज सहस्रार निवास करता है। (उसका वर्णन) जैसे (सू १९९-२ मे) सनत्कुमारेन्द्र का वर्णन है, उसी प्रकार (समझना चाहिए।) विशेष यह है कि (सहस्रारेन्द्र) छह हजार विमानावासो का, तीस हजार सामानिक देवो का और चार तीस हजार, अर्थात्—एक लाख बीस हजार आत्मरक्षक देवो का यावत् (सू १९६ के अनुसार बीच का वर्णन) आधिपत्य करता हुआ विचरण करता है।

२०५ [१] कहि ण भते ! आणय-पाणयाण देवाण पज्जत्ताऽपज्जत्ताण ठाणा पण्णत्ता ? कहि ण भते ! आणय-पाणया देवा परिवसति ?

गोयमा ! सहस्सारस्स कप्पस्स उप्पि सपक्खि सपडिदिसि जाव (सु १९९ [१]) उप्पइत्ता एत्थ ण आणय-पाणयनामेण दुवे कप्पा पण्णत्ता पाईण-पडीणायता उदीण-दाहिणविच्छिण्णा अद्धचद-

संठाणसठिता अच्चिमाली-भासरासिप्पभा, सेस जहा सणकुमारे (सु. १९९ [१]) जाव पडिरूवा। तत्थ ण आणय-पाणयदेवाण चत्तारि विमाणावाससता भवतीति मक्खाय जाव पडिरूवा। वडिसगा जहा सोहम्मे (सु १९७ [१]), णवर मज्झे पाणयवडेंसए। ते ण वडेंसगा सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा (सु १९६)। एत्थ ण आणय-पाणयदेवाण पज्जत्ताऽपज्जत्ताण ठाणा पण्णत्ता। तिसु वि लोगस्स असखेज्जइभागे। तत्थ ण बहवे आणय-पाणयदेवा परिवसति महिड्ढीया जाव (सु १९६) पभासेमाणा। ते ण तत्थ साणं साण विमाणावाससयाण जाव (सु १९६) विहरति।

[२०५-१ प्र] भगवन्! पर्याप्तक और अपर्याप्तक आनत एव प्राणत देवो के स्थान कहाँ कहे गए है? भगवन्! आनत-प्राणत देव कहाँ निवास करते हैं?

[२०५-१ उ] गौतम! सहस्रार कल्प के ऊपर समान दिशा और समान विदिशा मे, (इत्यादि सू १९९-१ के अनुसार) यावत् ऊपर दूर जा कर, यहाँ आनत एव प्राणत नाम के दो कल्प कहे गए है, जो पूर्व-पश्चिम मे लम्बे और उत्तर-दक्षिण मे विस्तीर्ण, अर्द्धचन्द्र के आकार मे सस्थित, ज्योतिमाला और दीप्तिराशि की प्रभा के समान है, शेष सब वर्णन (सू १९९-१ मे उक्त) सनत्कुमारकल्प के वर्णन की तरह यावत् प्रतिरूप है, तक (समझना चाहिए।) उन कल्पो मे आनत और प्राणत देवो के चार सौ विमानावास है, ऐसा कहा है, विमानावासो का वर्णन यावत् प्रतिरूप हैं, तक पूर्ववत् कहना चाहिए। जिस प्रकार सौधर्मकल्प के अवतसक सू १९७-१ मे कहे है, इसी प्रकार इनके अवतसक कहने चाहिए। विशेष यह है कि इन (चारो) के बीच मे (पाचवा) प्राणतावतसक है। वे अवतसक पूर्णरूप से रत्नमय है, स्वच्छ हैं, (बीच का वर्णन सू १९६ के अनुसार) यावत् 'प्रतिरूप है' तक कहना चाहिए। इन (अवतसको) मे पर्याप्त-अपर्याप्त आनत-प्राणत देवो के स्थान कहे गए है। ये स्थान तीनो अपेक्षाओ से, लोक के असख्यातवे भाग मे है, जहाँ बहुत-से आनत-प्राणत देव निवास करते हैं, जो महर्द्धिक हैं, यावत् (बीच का पाठ सू १९६ के अनुसार) 'प्रभासित करते हुए' तक समझ लेना चाहिए। वे (आनत-प्राणत देव) वहाँ अपने-अपने सैकडो विमानो का यावत् आधिपत्य करते हुए विचरते हैं।

[२] पाणए यऽत्थ देविंदे देवराया परिवसति जहा सणकुमारे (सु १९९ [२]), णवर चउण्ह विमाणावाससयाण वीसाए सामाणियसाहस्सीण असीतीए आयरक्खदेवसाहस्सीण अण्णेसि च बहूण जाव (सु १९६) विहरति।

[२०५-२] यही देवेन्द्र देवराज प्राणत निवास करता है, जिस प्रकार (सू १९९-२ मे) सनत्कुमारेन्द्र का वर्णन है, (तदनुसार यहाँ भी प्राणतेन्द्र का समझना चाहिए।) विशेष यह है कि (यह प्राणतेन्द्र) चार सौ विमानावासो का, बीस हजार सामानिक देवो का तथा अस्सी हजार आत्म-रक्षकदेवो का एव अन्य बहुत-से देवो का अधिपतित्व करता हुआ यावत् 'विचरण करता है' तक (का वर्णन सू १९६ के अनुसार समझना चाहिए।)

२०६ [१] कहि ण भते! आरण-ऽच्चुताण देवाण पज्जत्ताऽपज्जत्ताण ठाणा पण्णत्ता? कहि ण भते! आरण-ऽच्चुता देवा परिवसति?

गोयमा! आणय-पाणयाण कप्पाण उप्पिं सपक्खि सपडिदिसिं एत्थ ण आरणऽच्चुया णाम दुवे

कप्पा पण्णत्ता, पाईण-पडीणायया उदीण-दाहिणवित्थिण्णा अद्धचदसठाणसठिता अच्चिमाली-भासरासिवण्णप्पभा असंखेज्जाओ जोयणकोडाकोडीओ आयामविक्खभेण असखेज्जाओ जोयणकोडा-कोडीओ परिक्खेवेण सव्वरयणामया अच्छा सण्हा लण्हा घट्टा मट्ठा नीरया निम्मला निप्पका निक्क-कडच्छाया सप्पभा सस्सिरीया सउज्जोया पासाईया दरिसणिज्जा अभिरूवा, एत्थ ण आरण-ऽच्चुताण देवाण तिन्नि विमाणावाससता हवतीति मक्खाय ।

ते ण विमाणा सव्वरयणामया अच्छा सण्हा लण्हा घट्टा मट्ठा नीरया निम्मला निप्पका निक्ककडच्छाया सप्पभा सस्सिरीया सउज्जोता पासाईया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा । तेसि ण विमाणाण बहुमज्झदेसभाए पच वडेंसगा पण्णत्ता, त जहा—अकवडेंसए १ फलिहवडेंसए २ रयणवडेंसए ३ जायरूववडेंसए ४ मज्झे यऽत्थ अच्चुतवडेंसए ५ । ते ण वडेंसया सव्वरयणामया जाव (सु. २०६ [१]) पडिरूवा । एत्थ ण आरणऽच्चुयाण देवाण पज्जत्ताऽपज्जत्ताण ठाणा पण्णत्ता । तिसु वि लोगस्स असखेज्जइभागे । तत्थ ण बहवे आरणऽच्चुता देवा जाव (सु १९६) विहरति ।

[२०६-१ प्र] भगवन् ! पर्याप्तक और अपर्याप्तक आरण और अच्युत देवो के स्थान कहाँ कहे गए हैं ? भगवन् ! आरण और अच्युत देव कहाँ निवास करते हैं ?

[२०६-१ उ] गौतम ! आनत-प्राणत कल्पो के ऊपर समान दिशा और समान विदिशा मे, यहाँ आरण और अच्युत नाम के दो कल्प कहे गए है, जो पूर्व-पश्चिम मे लम्बे और उत्तर-दक्षिण मे विस्तीर्ण हैं, अर्द्धचन्द्र के आकार मे सस्थित और अचिमाली (सूर्य) की तेजोराशि के समान प्रभा वाले है । उनकी लम्बाई-चौडाई असख्यात कोटा-कोटी योजन तथा परिधि भी असख्यात कोटा-कोटी योजन की है । वे विमान पूर्णत रत्नमय, स्वच्छ, स्निग्ध, कोमल, घिसे हुए तथा चिकने किये हुए, रज से रहित, निर्मल, निष्पक, निरावरण कान्ति से युक्त, प्रभामय, श्रीसम्पन्न, उद्योतमय, प्रसन्नता-उत्पादक, दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप (अतीव सुन्दर) है । उन विमानो के ठीक मध्यदेशभाग मे पाच अवतसक कहे गए हैं । वे इस प्रकार है—१ अकावतसक, २ स्फटिकावतसक, ३ रत्नाव-तसक, ४ जातरूपावतसक और इन चारो के मध्य मे ५ अच्युतावतसक है । ये अवतसक सर्वरत्नमय हैं, (तथा सू २०६-१ मे कहे अनुसार) यावत् प्रतिरूप हैं । इनमे आरण और अच्युत देवो के पर्याप्तको एव अपर्याप्तको के स्थान कहे गए हैं । (ये स्थान) तीनो अपेक्षाओ से लोक के असख्यातवे भाग मे है । इनमे बहुत-से आरण और अच्युत देव यावत् (सू १९६ के वर्णन के अनुसार) विचरण करते हैं ।

[२] अच्चुते यऽत्थ देविंदे देवराया परिवसति जहा पाणए (सु २०५[२]) जाव विहरति । णवर तिण्ह विमाणावाससताण दसण्ह सामाणियसाहस्सीण चत्तालीसाए आयरक्खदेवसाहस्सीण आहेवच्च कुव्वमाणे जाव (सु १९६(विहरति ।

बत्तीस अट्ठवीसा बारस अट्ठ चउरो सतसहस्सा ।
पण्णा चत्तालीसा छ च्च सहस्सा सहस्सारे ॥१५४॥
आणय-पाणकप्पे चत्तारि सयाऽऽरण-ऽच्चुए तिन्नि ।
सत्त विमाणसयाइ चउसु वि एएसु कप्पेसु ॥१५५॥

सामाणियसंगहणीगाहा—

चउरासीइ १ असीई २ बावत्तरि ३ सत्तरी य ४ सट्ठी य ५ ।
पण्णा ६ चत्तालीसा ७ तीसा ८ बीसा ९-१० दस सहस्सा ११-१२ ॥१५६॥

एते चेव आयरक्खा चउगुणा ।

[२०६-२] यही अच्युतावतंसक में देवेन्द्र देवराज अच्युत निवास करता है। इसका सारा वर्णन (सू २०५-२ में अंकित) प्राणत की तरह, यावत् विचरण करता है, तक कहना चाहिए। विशेष यह है कि अच्युतेन्द्र तीन सौ विमानावासों का, दस हजार सामानिक देवों का तथा चालीस हजार आत्मरक्षक देवों का आधिपत्य करता हुआ यावत् विचरण करता है।

(द्वादश कल्प-विमानसंख्या-संग्रहणीगाथाओं का अर्थ—क्रमश) १ बत्तीस लाख, २ अट्ठाईस लाख, ३ बारह लाख, ४ आठ लाख, ५ चार लाख, ६ पचास हजार, ७ चालीस हजार, ८ सहस्रारकल्प में छह हजार, ९-१० आनत-प्राणत कल्पों में चार सौ, तथा ११-१२ आरण-अच्युत कल्पों में तीन सौ विमान होते हैं। अन्तिम इन चार कल्पों में (कुल मिला कर ४००+३००=७००) सात सौ विमान होते हैं ॥१५४-१५५॥

(द्वादशकल्प) सामानिक (संख्या)—संग्रहणीगाथा (का अर्थ—) १ चौरासी हजार, २ अस्सी हजार, ३ बहत्तर हजार, ४ सत्तर हजार, ५ साठ हजार, ६ पचास हजार, ७ (महाशुक्र में) चालीस हजार, ८ (सहस्रार में) तीस हजार, ९-१० बीस हजार, ११-१२ (आरण-अच्युत में) दस हजार (क्रमश है।) ॥१५६॥

इन्हीं बारह कल्पों के आत्मरक्षक इन (सामानिकों) से (क्रमश) चार-चार गुने हैं।

२०७ कहि णं भंते ! हेट्ठिमगेवेज्जगदेवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ? कहि णं भंते ! हेट्ठिमगेवेज्जगा देवा परिवसंति ?

गोयमा ! आरणच्चुताणं कप्पाणं उप्पिं जाव (सु २०६[१]) उड्ढं दूरं उप्पइत्ता एत्थ णं हेट्ठिमगेवेज्जगाणं देवाणं तओ गेवेज्जगविमाणपत्थडा पण्णत्ता पाईण-पडीणायया उदीण-दाहिणवित्थिण्णा पडिपुण्णचंदसंठाणसंठिता अच्चिमाली-भासरासिवण्णाभा सेसं जहा बंभलोगे जाव (सु. २०१[१]) पडिरूवा। तत्थ णं हेट्ठिमगेवेज्जगाणं देवाणं एक्कारसुत्तरे विमाणावाससते हवंतीति मक्खातं। ते णं विमाणा सव्वरयणामया जाव (सु २०६[१]) पडिरूवा। एत्थ णं हेट्ठिमगेवेज्जगाणं देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता। तिसु वि लोगस्स असंखिज्जइ-भागे। तत्थ णं बहवे हेट्ठिमगेवेज्जगा देवा परिवसंति सव्वे समिड्ढिया सव्वे समज्जुतीया सव्वे समजसा सव्वे समबला सव्वे समाणुभावा महासोक्खा अणिंदा अप्पेस्सा अपुरोहिया अहमिंदा णाम ते देवगणा पण्णत्ता समणाउसो ! ।

[२०७ प्र] भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त अधस्तन ग्रैवेयक देवों के स्थान कहाँ कहे गए हैं ? भगवन् ! अधस्तन ग्रैवेयक देव कहाँ निवास करते हैं ?

[२०७ उ] गौतम ! आरण और अच्युत कल्पों के ऊपर यावत् (सू २०६-१ के अनुसार) ऊपर दूर जाने पर अधस्तन-ग्रैवेयक देवों के तीन ग्रैवेयक-विमान—प्रस्तट कहे गए हैं, जो पूर्व-

पश्चिम मे लम्बे और उत्तर-दक्षिण मे विस्तीर्ण है। वे परिपूर्ण चन्द्रमा के आकार मे सस्थित हैं, सूर्य की तेजोराशि के वर्ण की-सी प्रभा वाले हैं, शेष वर्णन (सू २०१-१ मे अकित) ब्रह्मलोक-कल्प के समान यावत् 'प्रतिरूप हैं' तक (समझना चाहिए।) उनमे अधस्तन ग्रैवेयक देवो के एक-सौ ग्यारह विमान है, ऐसा कहा गया है। वे विमान पूर्णरूप से रत्नमय है, (इत्यादि सब वर्णन) यावत् 'प्रतिरूप है' तक (सू २०६-१ के अनुसार समझना चाहिए।) यहाँ पर्याप्तक और अपर्याप्तक अधस्तन-ग्रैवेयक देवो के स्थान कहे गए हैं। (ये स्थान) तीनो (पूर्वोक्त) अपेक्षाओ से लोक के असख्यातवे भाग मे है। उनमे बहुत-से अधस्तन-ग्रैवेयक देव निवास करते है, वे सब समान ऋद्धि वाले, सभी समान द्युति वाले, सभी समान यशस्वी, सभी समान बली, सब समान अनुभाव (प्रभाव) वाले, महासुखी, इन्द्ररहित, प्रेष्य (दास) रहित, पुरोहितहीन है। हे आयुष्मन् श्रमणो! वे देवगण 'अहमिन्द्र' नाम से कहे गए हैं।

२०८ कहि ण भते! मज्झिमगाण गेवेज्जगदेवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताण ठाणा पण्णत्ता? कहि ण भते! मज्झिमगेवेज्जगा देवा परिवसति?

गोयमा! हेट्ठिमगेवेज्जगाण उप्पि सपक्खि सपडिदिसि जाव (सु २०६ [१]) उप्पइत्ता एत्थ ण मज्झिमगेवेज्जगदेवाण तम्रो गेविज्जगविमाणपत्थडा पण्णत्ता। पाईण-पडीणायता जहा हेट्ठिमगेवेज्जगाण णवर सत्तुत्तरे विमाणावाससते हवतीति मक्खात। ते ण विमाणा जाव (सु २०६ [१]) पडिरूवा। एत्थ ण मज्झिमगेवेज्जगाण देवाण जाव (सु २०७) तिसु वि लोगस्स असखेज्जतिभागे। तत्थ णं बहवे मज्झिमगेवेज्जगा देवा परिवसति जाव (सु २०७) अहमिंदा नाम ते देवगणा पण्णत्ता समणाउसो!।

[२०८ प्र] भगवन्! पर्याप्तक और अपर्याप्तक मध्यम ग्रैवेयक देवो के स्थान कहाँ कहे गए है? भगवन्! मध्यम ग्रैवेयक देव कहाँ रहते हैं?

[२०८ उ] गौतम! अधस्तन ग्रैवेयको के ऊपर समान दिशा और समान विदिशा मे यावत् ऊपर दूर जाने पर, मध्यम ग्रैवेयक देवो के तीन ग्रैवेयकविमान-प्रस्तट कहे गए हैं, जो पूर्व-पश्चिम मे लम्बे हैं, इत्यादि वर्णन जैसा अधस्तन ग्रैवेयको का (सू २०७ मे) कहा गया है, वैसा ही यहाँ कहना चाहिए। विशेष यह है कि (इनके) एक सौ सात विमानावास कहे गये है। वे विमान (विमानावास) (सू २०६-१ के अनुसार) यावत् 'प्रतिरूप हैं' तक (समझने चाहिए।) यहाँ (इन विमानावासो मे) पर्याप्त और अपर्याप्त मध्यम-ग्रैवेयक देवो के स्थान कहे गए हैं। (ये स्थान) तीनो (पूर्वोक्त) अपेक्षाओ से लोक के असख्यातवे भाग मे हैं। वहाँ बहुत-से मध्यम ग्रैवेयकदेव निवास करते हैं (इत्यादि शेष वर्णन सू २०७ के अनुसार) यावत् हे आयुष्मन् श्रमणो! वे देवगण 'अहमिन्द्र' कहे गए हैं, (तक समझना चाहिए।)

२०९ कहि ण भते! उवरिमगेवेज्जगदेवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता? कहि ण भते! उवरिमगेवेज्जगा देवा परिवसति?

गोयमा! मज्झिमगेवेज्जगदेवाण उप्पि जाव (सु २०६ [१]) उप्पइत्ता एत्थ णं उवरिमगेवेज्जगाणं देवाण तम्रो गेविज्जगविमाणपत्थडा पण्णत्ता पाईण-पडीणायता सेस जहा हेट्ठिमगेविज्जगाण

(सु २०७), नवर एगे विमाणावाससते भवंतीति मक्खात । सेस तहेव भाणियव्व (सु २०७) जाव अहमिंदा णाम ते देवगणा पण्णत्ता समणाउसो ! ।

एक्कारसुत्तर हेट्ठिमेसु सत्तुत्तरं च मज्झिमए ।
सयमेग उवरिमए पचेव अणुत्तरविमाणा ॥१५७॥

[२०९ प्र] भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त उपरितन ग्रैवेयक देवो के स्थान कहाँ कहे गए हैं ? भगवन् ! उपरितन ग्रैवेयक देव कहाँ निवास करते है ?

[२०९ उ] गौतम ! मध्यम ग्रैवेयको के ऊपर यावत् (सू २०६-१ के अनुसार) दूर जाने पर, वहाँ उपरितन ग्रैवेयक देवो के तीन ग्रैवेयक विमान प्रस्तट कहे गए है, जो पूर्व-पश्चिम मे लम्बे है, शेष वर्णन (सू २०७ मे कथित) अधस्तन ग्रैवेयको के समान (जानना चाहिए ।) विशेष यह है कि (इनके) विमानावास एक सौ होते हैं, ऐसा कहा है । शेष वर्णन (जैसा सू २०७ मे कहा गया है,) वैसा ही यहाँ यावत् हे आयुष्मन् श्रमणो ! वे देवगण 'अहमिन्द्र' कहे गए हैं, तक कहना चाहिए ।

[विमानसख्याविषयक सग्रहणी गाथार्थ—] अधस्तन ग्रैवेयको मे एक सौ ग्यारह, मध्यम ग्रैवेयको मे एक सौ सात, उपरितन के ग्रैवेयको मे एक सौ और अनुत्तरौपपातिक देवो के पाच ही विमान है ॥१५७॥

२१० कहि ण भते ! अणुत्तरोववाइयाण देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताण ठाणा पण्णत्ता ? कहि णं भते ! अणुत्तरोववाइया देवा परिवसति ?

गोयमा ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ उड्ढं चदिम-सूरिय-गह-नक्खत्त-ताराख्वाणं बहूइ जोयणसयाइ बहूइ जोयणसहस्साइं बहूइ जोयणसतसहस्साइ बहुगीओ जोयणकोडीओ बहुगीओ जोयणकोडाकोडीओ उड्ढ दूर उप्पइत्ता सोहम्मीसाण-सणंकुमार-माहिंद-बम्भलोय-लतग-सुक्क-सहस्सार-आणय-पाणय-आरण-अच्चुयकप्पा तिण्णि य अट्ठारसुत्तरे गेविज्ज-विमाणावाससते वीतीवतित्ता तेण पर दूर गता णीरया निम्मला वितिमिरा विसुद्धा पचदिसिं पंच अणुत्तरा महतिमहालया विमाणा पण्णत्ता । त जहा—विजये १ वेजयते २ जयते ३ अपराजिते ४ सव्वट्ठसिद्धे ५ ।

ते ण विमाणा सव्वरयणामया अच्छा सण्हा लण्हा घट्ठा मट्ठा नीरया निम्मला निप्पका निक्क-कडच्छाया सप्पभा सस्सिरीया सउज्जोया पासाईया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा, तत्थ णं अणुत्तरो-ववाइयाण देवाण पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता । तिसु वि लोगस्स असंखेज्जतिभागे । तत्थ ण बहवे अणुत्तरोववाइया देवा परिवसति सव्वे समिड्ढिया सव्वे समबला सव्वे समाणुभावा महासोक्खा अणिंदा अपेस्सा अपुरोहिता अहमिंदा णामं ते देवगणा पण्णत्ता समणाउसो ! ।

[२१० प्र] भगवन् ! पर्याप्तक और अपर्याप्तक अनुत्तरौपपातिक देवो के स्थान कहाँ कहे गए हैं ? अनुत्तरौपपातिक देव कहाँ निवास करते हैं ?

पश्चिम मे लम्बे और उत्तर-दक्षिण मे विस्तीर्ण है। वे परिपूर्ण चन्द्रमा के आकार मे संस्थित है, सूर्य की तेजोराशि के वर्ण की-सी प्रभा वाले हैं, शेष वर्णन (सू २०१-१ मे अंकित) ब्रह्मलोक-कल्प के समान यावत् 'प्रतिरूप हैं' तक (समझना चाहिए।) उनमे अधस्तन ग्रैवेयक देवो के एक-सौ ग्यारह विमान है, ऐसा कहा गया है। वे विमान पूर्णरूप से रत्नमय हैं, (इत्यादि सब वर्णन) यावत् 'प्रतिरूप है' तक (सू २०६-१ के अनुसार समझना चाहिए।) यहाँ पर्याप्तक और अपर्याप्तक अधस्तन-ग्रैवेयक देवो के स्थान कहे गए है। (ये स्थान) तीनो (पूर्वोक्त) अपेक्षाओ से लोक के असख्यातवें भाग मे है। उनमे बहुत-से अधस्तन-ग्रैवेयक देव निवास करते है, वे सब समान ऋद्धि वाले, सभी समान द्युति वाले, सभी समान यशस्वी, सभी समान बली, सब समान अनुभाव (प्रभाव) वाले, महासुखी, इन्द्ररहित, प्रेष्य (दास) रहित, पुरोहितहीन है। हे आयुष्मन् श्रमणो! वे देवगण 'अहमिन्द्र' नाम से कहे गए हैं।

२०८ कहि णं भंते! मज्झिमगाण गेवेज्जगदेवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताण ठाणा पण्णत्ता? कहि ण भंते! मज्झिमगेवेज्जगा देवा परिवसंति?

गोयमा! हेट्ठिमगेवेज्जगाण उप्पिं सपक्खि सपडिदिसिं जाव (सु. २०६ [१]) उप्पइत्ता एत्थ ण मज्झिमगेवेज्जगदेवाणं तओ गेविज्जगविमाणपत्थडा पण्णत्ता। पाईण-पडीणायता जहा हेट्ठिमगेवेज्जगाण णवरं सत्तुत्तरे विमाणावाससते हवतीति मक्खातं। ते णं विमाणा जाव (सु २०६ [१]) पडिरूवा। एत्थ ण मज्झिमगेवेज्जगाण देवाण जाव (सु २०७) तिसु वि लोगस्स असखेज्जतिभागे। तत्थ ण बहवे मज्झिमगेवेज्जगा देवा परिवसंति जाव (सु २०७) अहमिंदा नाम ते देवगणा पण्णत्ता समणाउसो!।

[२०८ प्र] भगवन्! पर्याप्तक और अपर्याप्तक मध्यम ग्रैवेयक देवो के स्थान कहाँ कहे गए है? भगवन्! मध्यम ग्रैवेयक देव कहाँ रहते हैं?

[२०८ उ] गौतम! अधस्तन ग्रैवेयको के ऊपर समान दिशा और समान विदिशा मे यावत् ऊपर दूर जाने पर, मध्यम ग्रैवेयक देवो के तीन ग्रैवेयकविमान-प्रस्तट कहे गए है, जो पूर्व-पश्चिम मे लम्बे;है, इत्यादि वर्णन जैसा अधस्तन ग्रैवेयको का (सू २०७ मे) कहा गया है, वैसा ही यहाँ कहना चाहिए। विशेष यह है कि (इनके) एक सौ सात विमानावास कहे गये है। वे विमान (विमानावास) (सू २०६-१ के अनुसार) यावत् 'प्रतिरूप है' तक (समझने चाहिए।) यहाँ (इन विमानावासो मे) पर्याप्त और अपर्याप्त मध्यम-ग्रैवेयक देवो के स्थान कहे गए है। (ये स्थान) तीनो (पूर्वोक्त) अपेक्षाओ से लोक के असख्यातवे भाग मे है। वहाँ बहुत-से मध्यम ग्रैवेयकदेव निवास करते है (इत्यादि शेष वर्णन सू २०७ के अनुसार) यावत् हे आयुष्मन् श्रमणो! वे देवगण 'अहमिन्द्र' कहे गए हैं, (तक समझना चाहिए।)

२०९ कहि ण भंते! उवरिमगेवेज्जगदेवाण पज्जत्ताऽपज्जत्ताण ठाणा पण्णत्ता? कहि ण भंते! उवरिमगेवेज्जगा देवा परिवसंति?

गोयमा! मज्झिमगेवेज्जगदेवाण उप्पिं जाव (सु २०६ [१]) उप्पइत्ता एत्थ ण उवरिम-गेवेज्जगाण देवाण तओ गेविज्जगविमाणपत्थडा पण्णत्ता पाईण-पडीणायता सेस जहा हेट्ठिमगेविज्जगाण

(सु २०७), नवरं एगे विमाणावाससते भवतीति मक्खात । सेसं तहेव भाणियव्व (सु २०७) जाव अहमिदा णाम ते देवगणा पण्णत्ता समणाउसो ! ।

एक्कारसुत्तर हेट्ठिमेसु सत्तुत्तरं च मज्झिमए ।
सयमेग उवरिमए पचेव अणुत्तरविमाणा ।।१५७।।

[२०९ प्र] भगवन् ! पर्याप्त और अपर्याप्त उपरितन ग्रैवेयक देवो के स्थान कहाँ कहे गए हैं ? भगवन् ! उपरितन ग्रैवेयक देव कहाँ निवास करते है ?

[२०९ उ] गौतम ! मध्यम ग्रैवेयको के ऊपर यावत् (सू २०६-१ के अनुसार) दूर जाने पर, वहाँ उपरितन ग्रैवेयक देवो के तीन ग्रैवेयक विमान प्रस्तट कहे गए है, जो पूर्व-पश्चिम मे लम्बे हैं, शेष वर्णन (सू २०७ मे कथित) अधस्तन ग्रैवेयको के समान (जानना चाहिए ।) विशेप यह है कि (इनके) विमानावास एक सौ होते हैं, ऐसा कहा है । शेष वर्णन (जैसा सू २०७ मे कहा गया है,) वैसा ही यहाँ यावत् हे आयुष्मन् श्रमणो ! वे देवगण 'अहमिन्द्र' कहे गए हैं, तक कहना चाहिए ।

[विमानसख्याविषयक सग्रहणी गाथार्थ—] अधस्तन ग्रैवेयको मे एक सौ ग्यारह, मध्यम ग्रैवेयको मे एक सौ सात, उपरितन के ग्रैवेयको मे एक सौ और अनुत्तरौपपातिक देवो के पाच ही विमान हैं ।।१५७।।

२१०. कहि ण भते ! अणुत्तरोववाइयाण देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता ? कहि णं भते ! अणुत्तरोववाइया देवा परिवसति ?

गोयमा ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ उड्ढं चदिम-सूरिय-गह-नक्खत्त-ताराख्वाण बहूइ जोयणसयाइ बहूइं जोयणसहस्साइं बहूइ जोयणसतसहस्साइ बहुगीओ जोयणकोडीओ बहुगीओ जोयणकोडाकोडीओ उड्ढ दूर उप्पइत्ता सोहम्मीसाण-सणंकुमार-माहिंद-बंभलोय-लतग-सुक्क-सहस्सार-आणय-पाणय-आरण-अच्चुयकप्पा तिण्णि य अट्ठारसुत्तरे गेविज्ज-विमाणावाससते वीतीवतित्ता तेण पर दूर गता णीरया निम्मला वितिमिरा विसुद्धा पचदिसिं पच अणुत्तरा महतिमहालया विमाणा पण्णत्ता । त जहा—विजये १ वेजयते २ जयते ३ अपराजिते ४ सव्वट्ठसिद्धे ५ ।

ते ण विमाणा सव्वरयणामया अच्छा सण्हा लण्हा घट्ठा मट्ठा नीरया निम्मला निप्पका निक्क-कडच्छाया सप्पभा सस्सिरीया सउज्जोया पासाईया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा, तत्थ णं अणुत्तरो-ववाइयाण देवाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं ठाणा पण्णत्ता । तिसु वि लोगस्स असंखेज्जतिभागे । तत्थ ण बहवे अणुत्तरोववाइया देवा परिवसति सव्वे समिड्ढिया सव्वे समबला सव्वे समाणुभावा महासोक्खा अणिंदा अपेस्सा अपुरोहिता अहमिंदा णामं ते देवगणा पण्णत्ता समणाउसो ! ।

[२१० प्र] भगवन् ! पर्याप्तक और अपर्याप्तक अनुत्तरौपपातिक देवो के स्थान कहाँ कहे गए हैं ? अनुत्तरौपपातिक देव कहाँ निवास करते हैं ?

[२१० उ] गौतम ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के अत्यधिक सम एव रमणीय भूभाग से ऊपर चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और तारारूप ज्योतिष्क देवो के अनेक सौ योजन, अनेक हजार योजन, अनेक लाख योजन, बहुत करोड योजन और बहुत कोटाकोटी योजन ऊपर दूर जाकर, सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्मलोक, लान्तक, शुक्र, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण और अच्युत कल्पो तथा तीनो ग्रैवेयकप्रस्तटो के तीन सौ अठारह विमानवासो को पार (उल्लघन) करके उससे आगे सुदूर स्थित, पाच दिशाओ मे रज से रहित, निर्मल , अन्धकाररहित एव विशुद्ध बहुत बडे पाच अनुत्तर (महा) विमान कहे गए है । वे इस प्रकार हे—१ विजय २ वैजयन्त, ३ जयन्त, ४ अपराजित और ५ सर्वार्थसिद्ध ।

वे विमान पूर्णरूप से रत्नमय, स्फटिकसम स्वच्छ, चिकने, कोमल, घिसे हुए, चिकने किये हुए, रज से रहित, निर्मल, निष्पक, निरावरण छायायुक्त, प्रभा से युक्त, श्रीसम्पन्न, उद्योतयुक्त, प्रसन्नताकारक, दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप है । वही पर्याप्त और अपर्याप्त अनुत्तरौपपातिक देवो के स्थान कहे गए है । (ये स्थान) तीनो अपेक्षाओ से लोक के असख्यातवे भाग मे है । वहाँ बहुत-से अनुत्तरौपपातिक देव निवास करते है । हे आयुष्मन् श्रमणो ! वे सब समान ऋद्धिसम्पन्न, सभी समान बली, सभी समान अनुभाव (प्रभाव) वाले, महासुखी, इन्द्ररहित, प्रेष्यरहित, पुरोहित-रहित हैं । वे देवगण 'अहमिन्द्र' कहे जाते हैं ।

विवेचन—सर्व वैमानिक देवो के स्थानो की प्ररूपणा—प्रस्तुत पन्द्रह सूत्रो (सू १९६ से २१० तक) मे सामान्य वैमानिको से ले कर सौधर्मादि विशिष्ट कल्पोपपन्नो एव नौ ग्रैवेयक तथा पच अनुत्तरौपपातिकरूप कल्पातीत वैमानिको के स्थानो, विमानो, उनकी विशेषताओ, वहाँ बसने वाले देवो, इन्द्रो, अहमिन्द्रो आदि सबका स्फुट वर्णन किया गया है ।

सामान्य वैमानिको की विमानसख्या—सौधर्म आदि विशिष्ट कल्पोपपन्न वैमानिको के क्रमश बत्तीस, अट्ठाईस, बारह, आठ, चार लाख विमान आदि ही कुल मिला कर ८४ लाख ९७ हजार २३ विमान, सामान्य वैमानिको के होते है ।

द्वादश कल्पो के देवो के पृथक्-पृथक् मुकुटचिह्न—१ सौधर्म देवो के मुकुट मे मृग का, २ ऐशान देवो के मुकुट मे महिष (भैसे) का, ३ सनत्कुमार देवो के मुकुट मे वराह (शूकर) का, ४ माहेन्द्र देवो के मुकुट मे सिंह का, ५ ब्रह्मलोक देवो के मुकुट मे छगल (बकरे) का, ६ लान्तक देवो के मुकुट मे दर्दुर (मेढक) का, ७ (महा) शुक्रदेवो के मुकुट मे अश्व का, ८ सहस्रारकल्पदेवो के मुकुट मे गजपति का, ९ आनतकल्पदेवो के मुकुट मे भुजग (सर्प) का, १० प्राणतकल्पदेवो के मुकुट मे खड्ग (वन्य पशु या गेंडे) का, ११ आरणकल्पदेवो के मुकुट मे वृषभ (बैल) का और १२ अच्युतकल्पदेवो के मुकुट मे विडिम का[1] चिह्न होता है ।

सपक्खि सपडिदिसि की व्याख्या—जिनके पूर्व-पश्चिम-उत्तर-दक्षिणरूप पक्ष अर्थात् पार्श्व समान हैं, वे 'सपक्ष' यानी समान दिशा वाले कहलाते हैं तथा जहाँ प्रतिदिशाएँ—विदिशाएं समान है, वे 'सप्रतिदिश' कहलाते है ।[2]

१ प्रज्ञापना मलय वृत्ति, पत्राक १००

२ प्रज्ञापना मलय वृत्ति, पत्राक १०५

कल्पो के अवतसको का रेखाचित्र—

क्रम	कल्प का नाम	मध्य मे	पूर्वदिशा मे	दक्षिणदिशा मे	पश्चिमदिशा मे	उत्तरदिशा मे
१	सौधर्मकल्प	सौधर्मावतसक	अशोकावतसक	सप्तपर्णावतसक	चम्पकावतसक	चूतावतसक
३	सनत्कुमारकल्प	सनत्कुमारावतसक	"	"	"	"
५	ब्रह्मलोककल्प	ब्रह्मलोकावतसक	"	"	"	"
७	महाशुक्रकल्प	महाशुक्रावतसक	"	"	"	"
(९) १०	(आनत) प्राणतकल्प	प्राणतावतसक	"	"	"	"
२	ईशानकल्प	ईशानावतसक	अकावतसक	स्फटिकावतसक	रत्नावतसक	जातरूपावतसक
४	माहेन्द्रकल्प	माहेन्द्रावतसक	"	"	"	"
६	लान्तककल्प	लान्तकावतसक	"	"	"	"
८	सहस्रारकल्प	सहस्रारावतसक	"	"	"	"
(११) १२	(आरण) अच्युतकल्प	अच्युतावतसक	"	"	"	"

'अणिंदा' आदि शब्दो की व्याख्या—'अणिंदा'=जिन देवो के कोई इन्द्र यानी अधिपति नही है, वे अनिन्द्र। 'अपेस्सा'—जिनके कोई दास या भृत्य नही है, वे अप्रेष्य। 'अपुरोहिया'—जिनके कोई पुरोहित—शान्तिकर्म करने वाला नही होता, वे अपुरोहित है, क्योकि इन कल्पातीत देवलोको को किसी प्रकार की अशान्ति नही होती। 'अहमिंदा'='अहमिन्द्र', जिनमे सबके सब स्वय इन्द्र हो, वे अहमिन्द्र कहलाते है।[1]

तात्पर्य यह है कि बारह कल्पो मे जैसा स्वामी-सेवक आदि का भेद होता है, वैसा भेद नव-ग्रैवेयको एव अनुत्तरविमानो के देवो मे नही है। वहाँ के सभी देवो की ऋद्धि आदि समान है, अतएव सभी अपने को इन्द्र-जैसा (स्वाधीन) अनुभव करते हैं। हाँ, सर्वार्थसिद्ध विमान को छोड कर उनकी आयु मे अन्तर हो सकता है।

२११ कहि णं भंते! सिद्धाण ठाणा पण्णत्ता ? कहि णं भंते! सिद्धा परिवसंति ?

गोयमा! सव्वट्ठसिद्धस्स महाविमाणस्स उवरिल्लाओ थूभियग्गाओ दुवालस जोयणे उड्ढं अबाहाए एत्थ णं ईसीपब्भारा णामं पुढवी पण्णत्ता, पणतालीसं जोयणसतसहस्साणि आयाम-

१ प्रज्ञापना मलय वृत्ति, पत्राक १०५-१०६

विक्खम्भेण एगा जोयणकोडी बायालीसं च सतसहस्साइं तीसं च सहस्साइं दोण्णि य अउणापण्णे जोयणसते किंचि विसेसाहिए परिक्खेवेणं पण्णत्ता। ईसीपब्भाराए णं पुढवीए बहुमज्झदेसभाए अट्ठजोयणिए खेत्ते अट्ठ जोयणाइं बाहल्लेणं पण्णत्ते, ततो अणंतरं च णं माताए माताए पएसपरिहाणीए परिहायमाणी परिहायमाणी सव्वेसु चरिमंतेसु मच्छियपत्तातो तणुययरी अंगुलस्स असंखेज्जतिभागं बाहल्लेणं पण्णत्ता।

ईसीपब्भाराए णं पुढवीए दुवालस नामधिज्जा पण्णत्ता। तं जहा—ईसी ति वा १ ईसीपब्भारा इ वा २ तणू ति वा ३ तणुतणू ति वा ४ सिद्धी ति वा ५ सिद्धालए ति वा ६ मुत्ती इ वा ७ मुत्तालए ति वा ८ लोयग्गे इ वा ९ लोयग्गथूभिया ति वा १० लोयग्गपडिवुज्झणा इ वा ११ सव्वपाण-भूत-जीवसत्तसुहावहा इ वा १२।

ईसीपब्भारा णं पुढवी सेता संखदलविमलसोत्थिय-मुणाल-दगरय-तुसार-गोक्खीर-हारवण्णा उत्ताणयछत्तसंठाणसंठिता सव्वज्जुणसुवण्णमई अच्छा सण्हा लण्हा घट्ठा मट्ठा नीरया निम्मला निप्पंका निक्कंकडच्छाया सप्पभा सस्सिरीया सउज्जोता पासादीया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा।

ईसीपब्भाराए णं सीताए जोयणम्मि लोगंतो। तस्स णं जोयणस्स जे से उवरिल्ले गाउए तस्स णं गाउयस्स जे से उवरिल्ले छब्भागे एत्थ णं सिद्धा भगवंतो सादीया अपज्जवसिता अणेगजाति-जरा-मरण-जोणिसंसारकलंकलीभाव-पुणब्भवगब्भवासवसहीपवंचसमतिक्कंता सासयमणागतद्धं कालं चिट्ठंति।

तत्थ वि य ते अवेदा अवेदणा निम्ममा असंगा य।
संसारविप्पमुक्का पदेसनिव्वत्तसंठाणा ॥१५८॥

कहिं पडिहता सिद्धा ? कहिं सिद्धा पइट्ठिता ? ।
कहिं बोंदिं चइत्ता णं ? कहिं गंतूण सिज्झई ? ॥१५९॥

अलोए पडिहता सिद्धा, लोयग्गे य पइट्ठिया।
इहं बोंदिं चइत्ता णं तत्थ गंतूण सिज्झई ॥१६०॥

दीहं वा हुस्सं वा जं चरिमभवे हवेज्ज संठाणं।
तत्तो तिभागहीणा सिद्धाणोगाहणा भणिया ॥१६१॥

जं संठाणं तु इहं भवं चयंतस्स चरिमसमयम्मि।
आसी य पदेसघणं तं संठाणं तहिं तस्स ॥१६२॥

तिण्णि सया तेत्तीसा धणुत्तिभागो य होति बोधव्वो।
एसा खलु सिद्धाणं उक्कोसोगाहणा भणिया ॥१६३॥

चत्तारि य रयणीओ रयणितिभागूणिया य बोद्धव्वा।
एसा खलु सिद्धाणं मज्झिम ओगाहणा भणिया ॥१६४॥

एगा य होइ रयणी अट्ठेव य अंगुलाइं साहीया।
एसा खलु सिद्धाणं जहण्ण ओगाहणा भणिता ॥१६५॥

ओगाहणाए सिद्धा भवत्तिभागेण होंति परिहीणा ।
संठाणमणित्थथं[1] जरा-मरणविप्पमुक्काण ॥१६६॥

जत्थ य एगो सिद्धो तत्थ अणंता भवक्खयविमुक्का ।
अण्णोण्णसमोगाढा पुट्ठा सव्वे वि लोयंते ॥१६७॥

फुसइ अणंते सिद्धे सव्वपएसेहिं नियमसो सिद्धा ।
ते वि असंखेज्जगुणा देस-पदेसेहिं जे पुट्ठा ॥१६८॥

असरीरा जीवघणा उवउत्ता दंसणे य नाणे य ।
सागारमणागारं लक्खणमेयं तु सिद्धाणं ॥१६९॥

केवलणाणुवउत्ता जाणंती सव्वभावगुण-भावे ।
पासंति सव्वतो खलु केवलदिट्ठीहऽणंताहिं ॥१७०॥

न वि अत्थि माणुसाणं तं सोक्खं न वि य सव्वदेवाणं ।
जं सिद्धाणं सोक्खं अव्वाबाहं उवगयाणं ॥१७१॥

सुरगणसुहं समत्तं सव्वद्धापिंडितं अणंतगुणं ।
ण वि पावे मुत्तिसुहं णंताहिं वि वग्गवग्गूहिं ॥१७२॥

सिद्धस्स सुहो रासी सव्वद्धापिंडितो जइ हवेज्जा ।
सोऽणंतवग्गभइतो सव्वागासे ण माएज्जा ॥१७३॥

जह णाम कोइ मेच्छो णगरगुणे बहुविहे वियाणंतो ।
न चएइ परिकहेउं उवमाए तहिं असंतीए ॥१७४॥

इय सिद्धाणं सोक्खं अणोवमं, णत्थि तस्स ओवम्मं ।
किंचि विसेसेणेत्तो सारिक्खमिणं सुणह वोच्छं ॥१७५॥

जह सव्वकामगुणितं पुरिसो भोत्तूण भोयणं कोइ ।
तण्हा-छुहाविमुक्को अच्छेज्ज जहा अमियतित्तो ॥१७६॥

इय सव्वकालतित्ता अतुलं णेव्वाणमुवगया सिद्धा ।
सासयमव्वाबाहं चिट्ठंति सुही सुहं पत्ता ॥१७७॥

सिद्ध त्ति य बुद्ध त्ति य पारगत त्ति य परंपरगत त्ति ।
उम्मुक्ककम्मकवया अजरा अमरा असंगा य ॥१७८॥

णित्थिण्णसव्वदुक्खा जाति-जरा-मरणबंधणविमुक्का ।
अव्वाबाहं सोक्खं अणुहुंती सासयं सिद्धा ॥१७९॥[2]

॥ पण्णवणाए भगवईए बिइयं ठाणपयं समत्तं ॥

---

१ [ग्रन्थाग्रम् १५००]
२ [ग्रन्थाग्रम् १५२०]

विक्खंभेण एगा जोयणकोडी बायालीसं च सतसहस्साइं तीसं च सहस्साइं दोण्णि य अउणापण्णे जोयणसते किंचि विसेसाहिए परिक्खेवेण पण्णत्ता। ईसीपब्भाराए णं पुढवीए बहुमज्झदेसभाए अट्ठजोयणिए खेत्ते अट्ठ जोयणाइं बाहल्लेणं पण्णत्ते, ततो अणंतरं च णं माताए माताए पएसपरिहाणीए परिहायमाणी परिहायमाणी सव्वेसु चरिमंतेसु मच्छियपत्तातो तणुययरी अंगुलस्स असंखेज्जतिभागं बाहल्लेणं पण्णत्ता।

ईसीपब्भाराए णं पुढवीए दुवालस नामधिज्जा पण्णत्ता। तं जहा—ईसी ति वा १ ईसीपब्भारा इ वा २ तणू ति वा ३ तणुतणू ति वा ४ सिद्धी ति वा ५ सिद्धालए ति वा ६ मुत्ती इ वा ७ मुत्तालए ति वा ८ लोयग्गे इ वा ९ लोयग्गथूभिया ति वा १० लोयग्गपडिवुज्झणा इ वा ११ सव्वपाण-भूत-जीवसत्तसुहावहा इ वा १२।

ईसीपब्भारा णं पुढवी सेता संखदलविमलसोत्थिय-मुणाल-दगरय-तुसार-गोक्खीर-हारवण्णा उत्ताणयछत्तसंठाणसंठिता सव्वज्जुणसुवण्णमई अच्छा सण्हा लण्हा घट्ठा मट्ठा नीरया निम्मला निप्पंका निक्कंकडच्छाया सप्पभा सस्सिरीया सउज्जोता पासादीया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा।

ईसीपब्भाराए णं सीताए जोयणम्मि लोगंतो। तस्स णं जोयणस्स जे से उवरिल्ले गाउए तस्स णं गाउयस्स जे से उवरिल्ले छब्भागे एत्थ णं सिद्धा भगवंतो सादीया अपज्जवसिता अणेगजाति-जरा-मरण-जोणिसंसारकलंकलीभाव-पुणब्भवगब्भवासवसहीपवंचसमतिक्कंता सासयमणागतद्धं कालं चिट्ठंति।

तत्थ वि य ते अवेदा अवेदणा निम्ममा असंगा य।
संसारविप्पमुक्का पदेसनिव्वत्तसंठाणा ॥१५८॥

कहिं पडिहता सिद्धा ? कहिं सिद्धा पइट्ठिता ? ।
कहिं बोंदिं चइत्ता णं ? कहिं गंतूण सिज्झई ? ॥१५९॥

अलोए पडिहता सिद्धा, लोयग्गे य पइट्ठिया।
इहं बोंदिं चइत्ता णं तत्थ गंतूण सिज्झई ॥१६०॥

दीहं वा हस्सं वा जं चरिमभवे हवेज्ज संठाणं।
तत्तो तिभागहीणा सिद्धाणोगाहणा भणिया ॥१६१॥

जं संठाणं तु इहं भवं चयंतस्स चरिमसमयम्मि।
आसी य पदेसघणं तं संठाणं तहिं तस्स ॥१६२॥

तिण्णि सया तेत्तीसा धणुत्तिभागो य होति बोधव्वो।
एसा खलु सिद्धाणं उक्कोसोगाहणा भणिया ॥१६३॥

चत्तारि य रयणीओ रयणितिभागूणिया य बोद्धव्वा।
एसा खलु सिद्धाणं मज्झिम ओगाहणा भणिया ॥१६४॥

एगा य होइ रयणी अट्ठेव य अंगुलाइं साहीया।
एसा खलु सिद्धाणं जहण्ण ओगाहणा भणिता ॥१६५॥

ओगाहणाए सिद्धा भवत्तिभागेण होंति परिहीणा ।
संठाणमणित्थंथं[1] जरा-मरणविप्पमुक्काणं ॥१६६॥

जत्थ य एगो सिद्धो तत्थ अणंता भवक्खयविमुक्का ।
अण्णोण्णसमोगाढा पुट्ठा सव्वे वि लोयंते ॥१६७॥

फुसइ अणंते सिद्धे सव्वपएसेहिं नियमसो सिद्धा ।
ते वि असंखेज्जगुणा देस-पदेसेहिं जे पुट्ठा ॥१६८॥

असरीरा जीवघणा उवउत्ता दंसणे य नाणे य ।
सागारमणागारं लक्खणमेयं तु सिद्धाणं ॥१६९॥

केवलणाणुवउत्ता जाणंती सव्वभावगुण-भावे ।
पासंति सव्वतो खलु केवलदिट्ठीहऽणंताहिं ॥१७०॥

न वि अत्थि माणुसाणं तं सोक्खं न वि य सव्वदेवाणं ।
जं सिद्धाणं सोक्खं अव्वाबाहं उवगयाणं ॥१७१॥

सुरगणसुहं समत्तं सव्वद्धापिंडितं अणंतगुणं ।
ण वि पावे मुत्तिसुहं णंताहिं वि वग्गवग्गूहिं ॥१७२॥

सिद्धस्स सुहो रासी सव्वद्धापिंडितो जइ हवेज्जा ।
सोऽणंतवग्गभइतो सव्वागासे ण माएज्जा ॥१७३॥

जह णाम कोइ मेच्छो णगरगुणे बहुविहे वियाणंतो ।
न चएइ परिकहेउं उवमाए तहिं असंतीए ॥१७४॥

इय सिद्धाणं सोक्खं अणोवमं, णत्थि तस्स ओवम्मं ।
किंचि विसेसेणेत्तो सारिक्खमिणं सुणह वोच्छं ॥१७५॥

जह सव्वकामगुणितं पुरिसो भोत्तूण भोयणं कोइ ।
तण्हा-छुहाविमुक्को अच्छेज्ज जहा अमियतित्तो ॥१७६॥

इय सव्वकालतित्ता अतुलं णेव्वाणमुवगया सिद्धा ।
सासयमव्वाबाहं चिट्ठंति सुही सुहं पत्ता ॥१७७॥

सिद्ध त्ति य बुद्ध त्ति य पारगत त्ति य परंपरगत त्ति ।
उम्मुक्ककम्मकवया अजरा अमरा असंगा य ॥१७८॥

णित्थिण्णसव्वदुक्खा जाति-जरा-मरणबंधणविमुक्का ।
अव्वाबाहं सोक्खं अणुहुंती सासयं सिद्धा ॥१७९॥[2]

॥ पण्णवणाए भगवईए बिइयं ठाणपयं समत्तं ॥

१ [ग्रन्थाग्रम् १५००]
२ [ग्रन्थाग्रम् १५२०]

[२११ प्र] भगवन् ! सिद्धो के स्थान कहाँ कहे गए है ? भगवन् ! सिद्ध कहाँ निवास करते है ?

[२११ उ] गौतम ! सर्वार्थसिद्ध महाविमान की ऊपरी स्तूपिका के अग्रभाग से बारह योजन ऊपर विना व्यवधान के, ईषत्प्राग्भारा नामक पृथ्वी कही है, जिसकी लम्बाई-चौडाई पैंतालीस लाख योजन है। उसकी परिधि एक करोड बयालीस लाख, तीस हजार, दो सौ उनचास योजन से कुछ अधिक है। ईषत्प्राग्भारा-पृथ्वी के बहुत (एकदम) मध्यभाग मे (लम्बाई-चौडाई मे) आठ योजन का क्षेत्र है, जो आठ योजन मोटा (ऊँचा) कहा गया है। उसके अनन्तर (सभी दिशाओ और विदिशाओ मे)[1] मात्रा-मात्रा से अर्थात्—अनुक्रम से प्रदेशो की कमी होते जाने से हीन (पतली) होती-होती वह सबसे अन्त मे मक्खी के पख से भी अधिक पतली, अगुल के असख्यातवे भाग मोटी कही गई है।

ईषत्प्राग्भारा-पृथ्वी के बारह नाम कहे गए हैं। वे इस प्रकार है—(१) ईषत्, (२) ईषत्प्राग्भारा, (३) तनु, (४) तनु-तनु, (५) सिद्धि, (६) सिद्धालय, (७) मुक्ति, (८) मुक्तालय (९) लोकाग्र, (१०) लोकाग्र-स्तूपिका, या (११) लोकाग्रप्रतिवाहिनी (बोधना) और (१२) सर्व-प्राण-भूत-जीव-सत्त्वसुखावहा।

ईषत्प्राग्भारा-पृथ्वी श्वेत है, शखदल के निर्मल चूर्ण के स्वस्तिक, मृणाल, जलकण, हिम, गोदुग्ध तथा हार के समान वर्ण वाली, उत्तान (उलटे किये हुए) छत्र के आकार मे स्थित, पूर्णरूप से अर्जुनस्वर्ण के समान श्वेत, स्फटिक-सी स्वच्छ, चिकनी, कोमल, घिसी हुई, चिकनी की हुई (मृष्ट), निर्मल, निष्पक, निरावरण छाया (कान्ति) युक्त, प्रभायुक्त, श्रीसम्पन्न, उद्योतमय, प्रसन्नताजनक, दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप (सर्वागसुन्दर) है।

ईषत्प्राग्भारा-पृथ्वी से निःश्रेणीगति से एक योजन पर लोक का अन्त है। उस योजन का जो ऊपरी गव्यूति है, उस गव्यूति का जो ऊपरी छठा भाग है, वहाँ सादि-अनन्त, अनेक जन्म, जरा, मरण, योनिससरण (गमन), बाधा (कलकली भाव), पुनर्भव (पुनर्जन्म), गर्भवासरूप वसति तथा प्रपच से अतीत (अतिक्रान्त) सिद्ध भगवान् शाश्वत अनागतकाल तक रहते हैं।

[सिद्धविषयक गाथाओ का अर्थ—] वहाँ (पूर्वोक्त सिद्धस्थान मे) भी वे (सिद्ध भगवान्) वेदरहित, वेदनारहित, ममत्वरहित, (बाह्य-आभ्यन्तर-) सग (सयोग या आसक्ति) से रहित, ससार (जन्म-मरण) से सर्वथा विमुक्त एव (आत्म) प्रदेशो से बने हुए आकार वाले है ॥१५८॥

'सिद्ध कहाँ प्रतिहत—रुक जाते है ? सिद्ध किस स्थान मे प्रतिष्ठित (विराजमान) हैं ? कहाँ शरीर को त्याग कर, कहाँ जा कर सिद्ध होते है ? ॥१५९॥

(आगे) अलोक के कारण सिद्ध (लोकाग्र मे) रुके हुए (प्रतिहत) हैं। वे लोक के अग्रभाग (लोकाग्र) मे प्रतिष्ठित हैं तथा यहाँ (मनुष्यलोक मे) शरीर को त्याग कर वहाँ (लोक के अग्रभाग मे) जा कर सिद्ध (निष्ठितार्थ) हो जाते है ॥१६०॥

दीर्घ अथवा ह्रस्व, जो अन्तिमभव मे सस्थान (आकार) होता है, उससे तीसरा भाग कम सिद्धो की अवगाहना कही गई है ॥१६१॥

इस भव को त्यागते समय अन्तिम समय मे (त्रिभागहीन जितने) प्रदेशो से सघन सस्थान (आकार) था, वही सस्थान वहाँ(लोकाग्र मे सिद्ध अवस्था मे)रहता है, ऐसा जानना चाहिए ।।१६२।।

(जिनकी यहाँ पाच सौ धनुष की उत्कृष्ट अवगाहना थी, उनकी वहाँ) तीन सौ तेतीस धनुष और एक धनुष के तीसरे भाग जितनी अवगाहना होती है । यह सिद्धो की उत्कृष्ट अवगाहना कही गई है ।।१६३।।

(पूर्ण) चार रत्नि (मुण्ड हाथ) और त्रिभागन्यून एक रत्नि यह सिद्धो की मध्यम अवगाहना कही है, ऐसा समझना चाहिए ।।१६४।।

एक (पूर्ण) रत्नि और आठ अगुल अधिक जो अवगाहना होती है, यह सिद्धो की जघन्य अवगाहना कही है ।।१६५।।

(अन्तिम) भव (चरम शरीर) से त्रिभाग हीन (कम) सिद्धो की अवगाहन होती है । जरा और मरण से सर्वथा विमुक्त सिद्धो का संस्थान (आकार) अनित्थस्थ होता है । अर्थात् 'ऐसा है' यह नही कहा जा सकता ।।१६६।।

जहाँ (जिस प्रदेश मे) एक सिद्ध है, वहाँ भवक्षय के कारण विमुक्त अनन्त सिद्ध रहते है । वे सब लोक के अन्त भाग (सिरे) से स्पृष्ट एव परस्पर समवगाढ (पूर्णरूप से एक दूसरे मे समाविष्ट) होते हैं ।।१७६।।

एक सिद्ध सर्वप्रदेशो से नियमत अनन्तसिद्धो को स्पर्श करता(स्पृष्ट हो कर रहता) है । तथा जो देश-प्रदेशो से स्पृष्ट(हो कर रहे हुए) है, वे सिद्ध तो (उनसे भी) असख्यातगुणा अधिक है ।।१६८।।

सिद्ध भगवान् अशरीरी है, जीवघन (सघन आत्मप्रदेश वाले) है तथा ज्ञान और दर्शन मे उपयुक्त (सदैव उपयोगयुक्त) रहते है, (क्योकि) साकार (ज्ञान) और अनाकार (दर्शन) उपयोग होना, यही सिद्धो का लक्षण है ।।१६९।।

केवलज्ञान से (सदैव) उपयुक्त (उपयोगयुक्त) होने से वे समस्त पदार्थो को, उनके समस्त गुणो और पर्यायो को जानते हैं तथा अनन्त केवलदर्शन से सर्वत [समस्त-पदार्थो को सर्वप्रकार से) देखते हैं ।।१७०।।

अव्याबाध को प्राप्त (उपगत) सिद्धो को जो सुख होता है, वह न तो (चक्रवर्ती आदि) मनुष्यो को होता है, और न ही (सर्वार्थसिद्धपर्यन्त) समस्त देवो को होता है ।।१७१।।

देवगण के समस्त सुख को सर्वकाल के साथ पिण्डित (एकत्रित या सयुक्त) किया जाय, फिर उसको अनन्त गुणा किया जाय तथा अनन्त वर्गो से वर्गित किया जाए तो भी वह मुक्ति-सुख को नही पा सकता (उसकी बराबरी नही कर सकता) ।।१७२।।

एक सिद्ध के (प्रतिसमय के) सुखो की राशि, यदि सर्वकाल से पिण्डित (एकत्रित) की जाए, और उसे अनन्तवर्गमूलो से भाग दिया (कम किया) जाए, तो वह (भाजित=न्यूनकृत) सुख भी (इतना अधिक होगा कि) सम्पूर्ण आकाश मे नही समाएगा ।।१७३।।

जैसे कोई म्लेच्छ (आरण्यक अनार्य) अनेक प्रकार के नगर-गुणो को जानता हुआ भी उसके सामने कोई उपमा न होने से कहने मे समर्थ नही होता ।।१७४।।

इसी प्रकार सिद्धो का सुख अनुपम है । उसकी कोई उपमा नही है । फिर भी कुछ विशेष रूप से इसकी उपमा (सदृशता) बताऊगा, इसे सुनो ।।१७५।।

जैसे कोई पुरुष सर्वकामगुणित भोजन का उपभोग करके प्यास और भूख से विमुक्त हो कर ऐसा हो जाता है, जैसे कोई अमृत से तृप्त हो । वैसे ही सर्वकाल मे तृप्त अतुल (अनुपम), शाश्वत, एव अव्याबाध निर्वाण-सुख को प्राप्त सिद्ध भगवान् (सदैव) सुखी रहते है ।।१७६-१७७।।

वे मुक्त जीव सिद्ध है, बुद्ध हैं, पारगत हैं, परम्परागत हैं, कर्मरूपी कवच से उन्मुक्त हैं, अजर अमर और असग है । उन्होने सर्वदु खो को पार कर दिया है । वे जन्म जरा, मरण के वन्धन से सर्वथा मुक्त, सिद्ध (होकर) अव्याबाध एव शाश्वत सुख का अनुभव करते हैं ।।१७८-१७९।।

विवेचन—सिद्धो के स्थान आदि का निरूपण—प्रस्तुत गाथावहुल सूत्र (सू २११) मे शास्त्रकार ने सिद्धो के स्थान, उसकी विशेषता, उसके पर्यायवाचक नाम, सिद्धो के गुण, अवगाहना सुख तथा उनकी विशेषता आदि का निरूपण किया है ।

ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी के अन्वर्थक पर्यायवाची नाम—(१)सक्षेप मे कहने के लिए 'ईषत्' नाम है । (२) थोडी-सी आगे को झुकी हुई होने से ईषत्प्राग्भरा है । (३) शेष पृथ्वियो की अपेक्षा पतली होने से **'तनु'** नाम है । (४) जगत् प्रसिद्ध पतली मक्खी की पाख से भी पतली होने से इसका **'तनुतन्वी'** नाम है । (५) सिद्ध क्षेत्र के निकट होने से इसका नाम **'सिद्धि'** है, (६) सिद्ध क्षेत्र के निकट होने से उपचार से इसका नाम **'सिद्धालय'** भी है । (७-८) इसी प्रकार **'मुक्ति'** और **'मुक्तालय'** नाम भी सार्थक है । (९) लोक के अग्रभाग मे स्थित होने से **'लोकाग्र'** नाम है । (१०) लोकाग्र की स्तूपिका-समान होने से इसका नाम **'लोकाग्रस्तूपिका'** भी है । (११) लोक के अग्रभाग मे होने से उसके आगे जाना रुक जाता है, इसलिए एक नाम **'लोकाग्र-प्रतिवाहिनी'** भी है । (१२) समस्त प्राण, भूत, जीव और सत्त्वो के लिए निरुपद्रवकारी भूमि होने से **'सर्व प्राण-भूत-जीव-सत्त्वसुखावहा'** नाम भी सार्थक है ।[1]

सिद्धो के कुछ विशेषणो की व्याख्या—'सादीया अपज्जवसिता'=सादि-अपर्यवसित—अनन्त । प्रत्येक सिद्ध सर्वकर्मो का सर्वथा क्षय होने पर ही सिद्ध-अवस्था प्राप्त करता है, इस कारण से सिद्ध सादि (आदि युक्त) हैं, किन्तु सिद्धत्व प्राप्त कर लेने पर कभी उसका अन्त नही होता, इस कारण उन्हे अपर्यवसित—'अनन्त' कहा है । इस विशेषण के द्वारा 'अनादिशुद्ध' पुरुष की मान्यता का निराकरण किया गया है । सिद्धो के रागद्वेषादि विकारो का समूल विनाश हो जाने के कारण उनका सिद्धत्वदशा से प्रतिपात नही होता, क्योकि पतन के कारण रागादि हैं, जो उनके सर्वथा निर्मूल हो चुके है । जैसे बीज के जल जाने पर उससे अकुर की उत्पत्ति नही होती, वैसे ही ससारबीज—रागद्वेषादि के विनष्ट हो जाने से पुन ससार मे आना और जन्ममरण पाना नही होता । इसीलिए उन्हे **'अणेगजाति-जरा-मरण-जोणि-ससार-कलकलीभाव-पुणब्भव-गब्भवासवसही-पवचसमतिक्कता'** कहा गया है । अर्थ स्पष्ट है । **अवेदा**=सिद्ध भगवान् स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपु सकवेद (काम) से अतीत होते हैं । अर्थात्—शरीर का अभाव होने से उनमे द्रव्यवेद नही रहता और नोकषायमोहनीय का

१ प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक १०७

अभाव हो जाने से भाववेद भी नही रहता, इसलिए इन्हे अवेदी कहा है। **अवेदणा**—साता और असातावेदनीय कर्म का अभाव होने से वे वेदना से रहित होते है। **'निम्ममा असगा य'** ममत्व से तथा बाह्य एव आभ्यन्तर सग (आसक्ति या परिग्रह) से रहित होने के कारण वे निर्मम और असग होते हैं। **ससारविप्पमुक्का**—ससार से वे सर्वथा मुक्त और अलिप्त है, ऊपर उठे हुए है। **पदेसनिव्वत्त-संठाणा**—सिद्धो मे जो आकार होता है, वह पौद्‌गलिक शरीर के कारण नही होता, क्योकि शरीर का वहाँ सर्वथा अभाव है, अत उनका सस्थान (आकार) आत्मप्रदेशो से ही निष्पन्न होता है। **सव्वकालतित्ता**—सर्वकाल यानी सादि-अनन्तकाल तक वे तृप्त है, क्योकि औत्सुक्य से सर्वथा निवृत्त होने से वे परमसतोष को प्राप्त हैं। **'अतुल सासय अव्वाबाह णेव्वाण सुह पत्ता**=सिद्ध भगवान् अतुल—उपमातीत—अनन्यसदृश शाश्वत तथा अव्याबाध (किसी प्रकार की लेशमात्र भी बाधा न होने से) निर्वाण (मोक्ष) सबधी—सुख को प्राप्त है। **'सिद्धत्ति य'**=सित यानी बद्ध जो अष्टप्रकारक कर्म, उसे जिन्होने ध्मात=भस्मीकृत कर दिया है, वे सिद्ध। सामान्यतया जो कर्म, शिल्प, विद्या, मत्र, योग, आगम, अर्थ, यात्रा, अभिप्राय, तप और कर्मक्षय, इन सबसे सिद्ध होता है,[1] उसे भी उस-उस विशेषणयुक्त कहते है, किन्तु यहाँ इन सबकी विवक्षा न करके एक **'कर्मक्षयसिद्ध'** की विवक्षा की गई है। शेष सबको निरस्त करने हेतु **'बुद्ध'** शब्द का प्रयोग किया गया है। **बुद्ध** का अर्थ है—अज्ञान-निद्रा मे प्रसुप्त जगत् को स्वय जिन्होने तत्त्वबोध देकर जागृत किया है, सर्वज्ञ एव सर्वदर्शी होने से उनका स्वभाव ही बोधरूप है। परोपदेश के बिना ही केवलज्ञान के द्वारा स्वत वस्तुस्वरूप या जीवादितत्त्वो को जान लिया है। अर्हन्त भगवान् भी 'बुद्ध' होते है, इसलिए विशेषण दिया है—पारगता—जो ससार से या समस्त प्रयोजनो से पार हो चुके हैं। अतएव कृतकृत्य है। अक्रमसिद्धो का निराकरण करने के लिए यहाँ कहा गया है—**'परपरगता'**=जो परम्परागत है। अर्थात्—जो ज्ञान-दर्शन-चारित्र रूप परम्परा से अथवा मिथ्यात्व से लेकर यथासभव चतुर्थ, षष्ठ, आदि गुणस्थानो को पार करके सिद्ध हुए है। अमरा=आयुकर्म से सर्वथा रहित होने से वे **अजर-अमर** है। देह के अभाव मे जन्म, जरा, मरण आदि के बन्धनो से विमुक्त है। जन्मजरामरणादि ही दु ख रूप है और सिद्ध इन सब दु खो से पार हो चुके हैं। इसलिए कहा गया है—**'निस्थिन्नसव्वदुक्खा-जाति-जरा-मरणबधणो विमुक्का'**। सिद्धो के 'असरीरा', णेव्वाणमुवगया, उम्मुक्ककम्मकवचा, सव्वकालतित्ता आदि विशेषण प्रसिद्ध है, इनके अर्थ भी स्पष्ट है।[2]

'अलोए पडिहता सिद्धा' की व्याख्या—सिद्ध भगवान् लोकाग्र के आगे अलोकाकाश होने से अलोक के कारण प्रतिहत हो (रुक) जाते हैं। गति मे निमित्त कारण धर्मास्तिकाय है। वह लोकाकाश मे ही है, अलोकाकाश मे नही होता। इसलिए ज्यो ही आलोकाकाश प्रारम्भ होता है, सिद्धो की गति मे रुकावट आ जाती है। इस प्रकार वे धर्मास्तिकाय के अभाव के कारण प्रतिहत हो जाते है और मनुष्य क्षेत्र का परित्याग करके एक ही समय मे अस्पृशद्‌गति से लोक के अग्रभाग (ऊपरी भाग) मे स्थित हो जाते है।[3]

---

१ प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक १०८ से ११२ तक

२ (क) सित बद्ध अष्टप्रकार कर्मध्मात भस्मीकृत यैस्ते सिद्धा ।

(ख) 'कम्मे सिप्पे य विज्जाए, मते जोगे य आगमे ।
अत्थजत्ताभिप्पाए, तवे कम्मक्खए इ य ॥'

३ प्रज्ञापना मलय वृत्ति पत्राक १०८

चरमभव मे सिद्धो का सस्थान—अन्तिम भव मे जो भी दीर्घ (५०० धनुप), ह्रस्व (दो हाथ प्रमाण) अथवा विचित्र प्रकार का मध्यम सस्थान (आकार) उनका होता है, सिद्धावस्था मे उससे तीसरा भाग कम आकार (सस्थान) रह जाता है, क्योकि सिद्धावस्था मे मुख, पेट, कान आदि के छिद्र भी भर जाते है, आत्मप्रदेश सघन हो जाते है। तात्पर्य यह है कि भवपरित्याग से कुछ पहले सूक्ष्मक्रियाऽप्रतिपाती नाम तीसरे शुक्लध्यान के वल से मुख, उदर आदि के छिद्र भर जाने से जो त्रिभागन्यून सस्थान रह जाता है, वही सस्थान सिद्धावस्था मे वना रहता है।

सिद्धो की अवगाहना—जिन सिद्धो की चरमभव मे अन्तिम समय मे ५०० धनुष की अवगाहना होती है, उनकी त्रिभागन्यून होने पर ३३३⅓ धनुष की होती है, यह सिद्धो की उत्कृष्ट अवगाहना है। इस सम्बन्ध मे एक शका है, कि जैन इतिहासप्रसिद्ध नाभिकुलकर की पत्नी मरुदेवी सिद्ध हुई है। नाभिकुलकर के शरीर की अवगाहना ५२५ धनुप की थी, और इतनी ही अवगाहना मरुदेवी की थी, क्योकि आगमिक कथन है—'सहनन, सस्थान और ऊचाई कुलकरो के समान ही समझनी चाहिए।' अत सिद्धिप्राप्त मरुदेवी के शरीर की अवगाहना मे से तीसरा भाग कम किया जाए तो वह ३५० धनुष सिद्ध होता है। ऐसी स्थिति मे ऊपर जो उत्कृष्ट अवगाहना ३३३⅓ धनुप बतलाई है, उसके साथ इसकी सगति कैसे वैठेगी ? इसका समाधान यह है कि मरुदेवी के शरीर की अवगाहना नाभिराज से कुछ कम होना सम्भव है, क्योकि उत्तम सस्थान वाली स्त्रियो की अवगाहना उत्तम सस्थान वाले पुरुषो की अवगाहना से अपने अपने समय की अपेक्षा से कुछ कम होती है। इस उक्ति के अनुसार मरुदेवी की अवगाहना ५०० धनुष की मानी जाए तो कोई दोष नही। इसके अतिरिक्त मरुदेवी हाथी के हौदे पर बैठी-बैठी सिद्ध हुई थी, अतएव उनका शरीर उस समय सिकुडा हुआ था। इस कारण अधिक अवगाहना होना सभव नही है। इस प्रकार सिद्धो की जो उत्कृष्ट अवगाहना ऊपर कही गई है, उसमे विरोध नही आता।

सिद्धो की मध्यम अवगाहना चार हाथ पूर्ण और एक हाथ मे त्रिभाग कम है। आगम मे जघन्य सात हाथ की अवगाहना वाले जीवो को सिद्धि बताई गई है, इस दृष्टि से यह अवगाहना मध्मम न हो कर जघन्य सिद्ध होती है, इस शका का समाधान यह है कि सात हाथ की अवगाहना वाले जीवो की जो सिद्धि कही गई है, वह तीर्थकर की अपेक्षा से समझनी चाहिए। सामान्य केवली तो इससे कम अवगाहना वाले भी सिद्ध होते हैं। ऊपर जो अवगाहना बताई गई है, वह सामान्य की अपेक्षा से ही है, तीर्थंकरो की अपेक्षा से नही। सिद्धो की जघन्य अवगाहना एक हाथ और आठ अगुल की है। यह जघन्य अवगाहना कूर्मापुत्र आदि की समझनी चाहिए, जिनके शरीर की अवगाहना दो हाथ की होती है।

भाष्यकार ने कहा है—'उत्कृष्ट अवगाहना ५०० धनुष वालो की अपेक्षा से, मध्यम अवगाहना ७ हाथ के शरीर वालो की अपेक्षा से और जघन्य अवगाहना दो हाथ के शरीर वालो की अपेक्षा से कही गई है, जो उनके शरीर से त्रिभागन्यून होती है।'

सिद्धो का सस्थान अनियत—जरामरणरहित सिद्धो का आकार (सस्थान) अनित्थस्थ होता है। जिस आकार को इस प्रकार का है, ऐसा न कहा जा सके, वह अनित्थस्थ—यानी अनिर्देश्य कहलाता है। मुख एव उदर आदि के छिद्रो के भर जाने से सिद्धो के शरीर का पहले वाला आकार बदल जाता है, इस कारण सिद्धो का सस्थान अनित्थस्थ कहलाता है, यही भाष्यकार ने कहा है। आगम मे जो यह कहा गया है कि 'सिद्धात्मा न दीर्घ है, न ह्रस्व हैं' आदि कथन भी सगत हो जाता

है। अत सिद्धो के सस्थान की अनियतता पूर्वाकार की अपेक्षा से है, आकार का अभाव होने के कारण नही। क्योकि सिद्धो मे सस्थान का एकान्तत अभाव नही है।[1]

सिद्धो का अवस्थान—जहाँ एक सिद्ध अवस्थित है, वहाँ अनन्त सिद्ध अवस्थित होते है। वे परस्पर अवगाढ होकर रहते है, क्योकि अमूर्त्तिक होने से सिद्धो को परस्पर एक दूसरे मे समाविष्ट होने मे कोई बाधा नही पडती। जैसे धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय एक दूसरे मे मिले हुए लोक मे अवस्थित है, इसी प्रकार अनन्त सिद्ध एक ही परिपूर्ण अवगाहनक्षेत्र मे परस्पर मिलकर लोक मे अवस्थित है। वे सभी सिद्ध लोकान्त से स्पृष्ट रहते है। नियम से अनन्त सिद्ध आत्मा के सर्वप्रदेशो से स्पृष्ट रहते है। इसका अर्थ यह है कि अनन्त सिद्ध ऐसे है, जो पूर्ण रूप मे एक दूसरे से मिले हुए रहते है और जिनका स्पर्श देश—(किंचित्) प्रदेशो से है ऐसे सिद्ध तो उनसे भी असख्यात गुणे अधिक है। क्योकि अवगाढ प्रदेश असख्यात है।

सिद्ध, केवलज्ञान से सदैव उपयुक्त—सिद्ध भगवान् के केवलज्ञान-दर्शन का उपयोग सदैव लगा रहता है, इसलिए वे केवलज्ञानोपयुक्त होकर जानते है, अन्त करण आदि से नही, क्योकि वे शुद्ध आत्ममय होने से अन्त करणादि से रहित हैं।

सिद्ध जीवघन कैसे?—सिद्धो को जीवघन अर्थात् सघन आत्मप्रदेशो वाला, इसलिए कहा गया है कि सिद्धावस्था प्राप्त करने से पूर्व तेरहवे गुणस्थान के अन्तिम काल मे उनके मुख, उदर आदि रन्ध्र आत्मप्रदेशो से भर जाते है, कही भी आत्मप्रदेशो से वे रिक्त नही रहते।[2]

।। प्रज्ञापनासूत्र : द्वितीय स्थानपद समाप्त ।।

---

१ (क) प्रज्ञापना मलय वृत्ति, पत्राक १०८ से ११० तक

(ख) कह मरुदेवामाण ? नाभीतो जेण किंचिदूणा सा।
तो किर पचसयच्चिय अहवा सकोचओ सिद्धा ।। —भाष्यकार

(ग) जेट्ठा उ पचधणुसय-तणुस्स, मज्झा य सत्तहत्थस्स।
देहत्तिभागहीणा जहन्निया जा बिहत्थस्स ।।१।।
सत्तूसिय एसु सिद्धी जहन्नओ कहमिह विहत्थेसु ?
सा किर तित्थयरेसु, सेयाण सिज्झमाणाण ।।२।।
ते पुण होज्ज बिहत्था कुम्मापुत्तादयो जहन्नेण।
अन्ने सवट्टिय सत्तहत्थ सिद्धस्स हीणत्ति ।।३।। —भाष्यकार

(घ) सुसिरपरिपूरणाओ पुव्वागारन्नहावत्थाओ। सठाणमणित्थत्थ ज भणिय मणिययागार।
एतोच्चिय पडिसेहो सिद्धाइगुणेसु दीहयाईण। जमणित्थथ पुव्वागाराविक्खाए नाभावो ।।२।। —भाष्य
दीह वा हस्से वा। —

२ प्रज्ञापना म वृत्ति, पत्राक ११०

तइयं बहुवत्तव्वयपयं (अप्पाबहुत्तपयं)

तृतीय बहुवक्तव्यपद (अल्पबहुत्वपद)

प्राथमिक

* प्रज्ञापनासूत्र का यह तृतीय पद है, इसके दो नाम है—'बहुवक्तव्यपद' और 'अल्पबहुत्वपद'।

* तत्त्वो या पदार्थो का सख्या की दृष्टि से भी विचार किया जाता है। उपनिषदो मे वेदान्त का दृष्टिकोण बताया है कि विश्व मे एक ही तत्त्व—'ब्रह्म' है, समग्र विश्व उसी का 'विवर्त्त' या 'परिणाम' है, दूसरी ओर साख्यो का मत है कि जीव तो अनेक है, परन्तु अजीव एक ही है। बौद्धदर्शन अनेक 'चित्त' और अनेक 'रूप' मानता है। जैनदर्शन मे षड्द्रव्यो की दृष्टि से सख्या का निरूपण ही नही, किन्तु परस्पर एक दूसरे से तारतम्य, अल्पबहुत्व का भी निरूपण किया गया है। अर्थात् कौन किससे अल्प है, बहुत है, तुल्य है या विशेषाधिक है ? इसका पृथक्-पृथक् अनेक पहलुओ से विचार किया गया है। प्रस्तुत पद मे यही वर्णन है।

* इसमे दिशा, गति, इन्द्रिय, काय, योग आदि से लेकर महादण्डक तक सत्ताईस द्वारो के माध्यम से केवल जीवो का ही नही, यथाप्रसग धर्मास्तिकाय आदि ६ द्रव्यो का, पुद्गलास्तिकाय का वर्गीकरण करके उनके अल्प-बहुत्व का विचार किया गया है। षट्खण्डागम मे गति आदि १४ द्वारो से अल्पबहुत्व का विचार है।[1]

* सर्वप्रथम (सू २१३-२२४ मे) दिशाओ की अपेक्षा से सामान्यत जीवो के, फिर पृथ्वीकायादि पाच स्थावरो के, तीन विकलेन्द्रियो के, नैरयिको के, सप्त नरको के नैरयिको के, तिर्यचपचेन्द्रिय जीवो के, मनुष्यो के, भवनपति-वाणव्यन्तर-ज्योतिष्क-वैमानिक देवो के पृथक्-पृथक् अल्पबहुत्व का एव सिद्धो के भी अल्पबहुत्व का विचार किया गया है।[2]

* तत्पश्चात् सू २२५ से २७५ तक दूसरे से तेईसवे द्वार तक के माध्यम से नरकादि चारो गतियो के, इन्द्रिय-अनिन्द्रिययुक्त जीवो के, पर्याप्तक-अपर्याप्तको के, षट्कायिक-अकायिक, अपर्याप्तक-पर्याप्तक, पर्याप्तक-अपर्याप्तको के, बादर-सूक्ष्मषट्कायिको के, सयोगी-मनोयोगी-वचनयोगी काययोगी-अयोगी के, सवेदक-स्त्रीवेदक-पुरुषवेदक-नपुसक वेदक-अवेदको के, सकषायी-क्रोध-

१ (क) पण्णवणासुत्त भाग-२, प्रस्तावना पृष्ठ ५२ (ख) प्रज्ञापना मलय वृत्ति, पत्राक ११३
(ग) षट्खण्डागम पुस्तक ७, पृ ५२० (घ) प्रज्ञापना -प्रमेयबोधिनी टीका भा २, पृ २०३

२ पण्णवणासुत्त भाग-१, पृ ८१ से ८४ तक

मान-माया-लोभ कषायी-अकषायी के, सलेश्य-षट्लेश्य-अलेश्य जीवो के, सम्यग् मिथ्या-मिश्र दृष्टि के, पाच ज्ञान-तीन अज्ञान से युक्त जीवो के, चक्षुर्दर्शनादि चार दर्शनो से युक्त जीवो के, सयत-असयत सयतासयत-नोसयत-नोअसयत-नोसयतासयत जीवो के, साकारोपयुक्त-अनाकारोपयुक्त जीवो के, आहारक-अनाहारक जीवो के, भाषक-अभाषक जीवो के, परीत्त-अपरीत्त-नोपरीत्त-नोअपरीत्त जीवो के, पर्याप्त-अपर्याप्त-नोपर्याप्त-नोअपर्याप्तको के, सूक्ष्म-बादर-नोसूक्ष्म-नोबादरो के, सज्ञी-असज्ञी-नोसज्ञी-नोअसज्ञी जीवो के, भवसिद्धिक-अभवसिद्धिक-नोभवसिद्धिक-नोअभवसिद्धिक जीवो के, धर्मास्तिकाय आदि षट्द्रव्यो के द्रव्य, प्रदेश तथा द्रव्य-प्रदेश की दृष्टि से पृथक्-पृथक् एव समुच्चय जीवो के, चरम-अचरम जीवो के, जीव-पुद्गल-काल-सर्वद्रव्य सर्वप्रदेश-सर्वपर्यायो के अल्पबहुत्व का विचार किया गया है ।[1]

* इसके पश्चात् सू २७६ से ३२३ तक चौवीसवे क्षेत्रद्वार के माध्यम से ऊर्ध्वलोक, अधोलोक, तिर्यक्लोक, ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक, अधोलोक-तिर्यक्लोक एव त्रैलोक्य मे सामान्य जीवो के, तथा नैरयिक, तिर्यचयोनिक पुरुष-स्त्री, मनुष्यपुरुष-स्त्री, देव-देवी, भवनपति देव-देवी, वाणव्यन्तर देव-देवी, ज्योतिष्क देव-देवी, वैमानिक देव-देवी, एकेन्द्रिय से लेकर पचेन्द्रिय-पर्याप्तक-अपर्याप्तक जीवो के तथा षट्कायिक पर्याप्तक-अपर्याप्तक जीवो के अल्पबहुत्व का निरूपण किया गया है ।

* पच्चीसवें बन्धद्वार (सू ३२५) मे आयुष्यकर्मबन्धक-अबन्धक, पर्याप्तक-अपर्याप्तक, सुप्त-जागृत, समवहृत-असमवहृत, सातावेदक-असातावेदक, इन्द्रियोपयुक्त-नोइन्द्रियोपयुक्त, एव साकारोपयुक्त-अनाकारोपयुक्त जीवो के अल्पबहुत्व की प्ररूपणा है ।

* छब्बीसवे पुद्गलद्वार मे क्षेत्र और दिशाओ की अपेक्षा से पुद्गलो तथा द्रव्यो का एव द्रव्य, प्रदेश और द्रव्य-प्रदेश की अपेक्षा से परमाणु पुद्गलो एव सख्यात, असख्यात, और अनन्तप्रदेशी स्कन्धो का तथा एक प्रदेशावगाढ सख्यातप्रदेशावगाढ एव असख्यातप्रदेशावगाढ पुद्गलो का, एकसमयस्थितिक, सख्यातसमयस्थितिक और असख्यातसमयस्थितिक पुद्गलो का एव एकगुण काला, सख्यातगुण काला, असख्यातगुण काला और अनन्तगुण काला आदि पुद्गलो का अल्पबहुत्व प्ररूपित किया गया है ।

* सत्ताईसवे महादण्डकद्वार मे समग्रभाव से पृथक्-पृथक् सविशेष जीवो के अल्पबहुत्व का ९८ क्रमो मे कथन किया गया है । षट्खण्डागम के महादण्डक द्वार मे भी सर्वजीवो की अपेक्षा से अल्पबहुत्व का विचार किया गया है ।[2]

* महादण्डक द्वार मे समग्ररूप से जीवो की अल्पबहुत्व-प्ररूपणा की है । इस लम्बी सूची पर से फलित होता है कि उस युग मे भी आचार्यों ने जीवो की सख्या का तारतम्य बताने का प्रयत्न किया है तथा मनुष्य हो, देव हो या तिर्यंच हो, सभी मे पुरुष की अपेक्षा स्त्रियो की सख्य अधिक मानी गई है । अधोलोक मे पहली से सातवी नरक तक क्रमश जीवो की सख्या घटती जाती

---

१ (क) पण्णवणासुत्त भा १, पृ ८४ से १०१ तक (ख) प्रज्ञापना मलय वृत्ति, पत्राक ११३ से १६८ तक
२ (क) पण्णवणासुत्त भा १, पृ १०१ से १११ तक (ख) पण्णवणासुत्त भा २, पृ ५२-५३ (प्रस्तावना)

है, जबकि ऊर्ध्वलोक मे इससे उलटा क्रम है, वहाँ सबसे ऊपर के अनुत्तर विमानवासी देवो की सख्या सब से कम है, फिर नीचे के देवो मे क्रमश बढते-बढते सौधर्म देवो की सख्या सबसे अधिक बताई गई है। पर मनुष्य लोक के नीचे भवनपति देव है, उनकी सख्या सौधर्म से अधिक है, उससे ऊँचे होते हुए भी व्यन्तर तथा ज्योतिष्क देवो की सख्या उत्तरोत्तर अधिक है। सबसे कम सख्या मनुष्यो की है, इसी कारण मनुष्यभव दुर्लभ माना जाता है। जैसे-जैसे इन्द्रिया कम है, वैसे-वैसे जीवो की सख्या अधिक होती है, अर्थात् विकसित जीवो की अपेक्षा अविकसित जीवो की सख्या अधिक है। सिद्ध (पूर्णताप्राप्त) जीवो की सख्या एकेन्द्रिय जीवो से कम है। सबसे नीची सातवे नरक मे और सर्वोच्च अनुत्तर देवलोक मे सबसे कम जीव है, इस पर से ध्वनित होता है, जैसे अत्यन्त पुण्यशाली कम होते है , वैसे अत्यन्त पापी भी कम हैं।[1]

---

१ (क) पण्णवणासुत्त भा २, प्रस्तावना पृ ५४ (ख) षट्खण्डागम पुस्तक ७, पृ ५७५ से

तइयं हु त्तव यपयं (अप्पा हुत्तपयं)

तृतीय बहुवक्तव्यतापद (अल्पबहुत्वपद)

द्वारसंग्रह-गाथाएँ

दिशादि २७ द्वारों के नाम

२१२ दिसि १ गति २ इंदिय ३ काए ४ जोगे ५ वेदे ६ कसाय ७ लेस्सा य ८ ।
सम्मत्त ९ णाण १० दंसण ११ संजय १२ उवओग १३ आहारे १४ ॥१८०॥

भासग १५ परित्त १६ पज्जत्त १७ सुहुम १८ सण्णी १९ भवऽत्थिए २०-२१ चरिमे २२।
जीवे य २३ खेत्त २४ बंधे २५ पोग्गल २६ महदंडए २७ चेव ॥१८१॥

[२१२ गाथार्थ—] १ दिक् (दिशा), २ गति, ३ इन्द्रिय, ४ काय, ५ योग, ६ वेद, ७ कषाय, ८. लेश्या, ९ सम्यक्त्व, १० ज्ञान, ११ दर्शन, १२ सयत, १३ उपयोग, १४ आहार, १५ भाषक, १६ परीत, १७ पर्याप्त, १८ सूक्ष्म, १९ सज्ञी, २० भव, २१ अस्तिक, २२ चरम, २३ जीव, २४ क्षेत्र, २५ बन्ध, २६ पुद्गल और २७ महादण्डक, (तृतीय पद मे ये २७ द्वार है, जिनके माध्यम से पृथ्वीकाय आदि जीवो के अल्पबहुत्व की प्ररूपणा की जाएगी) ॥१८१-१८२॥

प्रथम दिशाद्वार : दिशा की अपेक्षा से जीवों का अल्पबहुत्व—

२१३. दिसाणुवाएण सव्वत्थोवा जीवा पच्चत्थिमेण, पुरत्थिमेण विसेसाहिया, दाहिणेण विसेसाहिया, उत्तरेण विसेसाहिया ।

[२१३] दिशाओ की अपेक्षा से सबसे थोडे जीव पश्चिमदिशा मे है, (उनसे) विशेषाधिक पूर्वदिशा मे हैं, (उनसे) विशेषाधिक दक्षिणदिशा मे है, (और उनसे) विशेषाधिक (जीव) उत्तर-दिशा मे है ।

२१४ [१] दिसाणुवाएण सव्वत्थोवा पुढविकाइया दाहिणेण, उत्तरेण विसेसाहिया, पुरत्थिमेण विसेसाहिया, पच्चत्थिमेण विसेसाहिया ।

[२१४-१] दिशाओ की अपेक्षा से सबसे थोडे पृथ्वीकायिक जीव दक्षिणदिशा मे है, (उनसे) उत्तर मे विशेषाधिक हैं, (उनसे) पूर्वदिशा मे विशेषाधिक हैं, (उनसे भी) पश्चिम मे (पृथ्वीकायिक) विशेषाधिक हैं ।

[२] दिसाणुवाएण सव्वत्थोवा आउक्काइया पच्चत्थिमेण, पुरत्थिमेण विसेसाहिया, दाहिणेणं विसेसाहिया, उत्तरेण विसेसाहिया ।

[२१४-२] दिशाओ की अपेक्षा से सबसे थोडे अप्कायिक जीव पश्चिम मे है, उनसे विशेषाधिक पूर्व मे हैं, (उनसे) विशेषाधिक दक्षिण मे है और (उनसे भी) विशेषाधिक उत्तरदिशा मे हे।

[३] दिसाणुवाएण सव्वत्थोवा तेउक्काइया दाहिणुत्तरेण, पुरत्थिमेण सखेज्जगुणा, पच्चत्थिमेण विसेसाहिया।

[२१४-३] दिशाओ की अपेक्षा से सबसे थोडे तेजस्कायिक जीव दक्षिण और उत्तर मे हैं, पूर्व मे (उनसे) सख्यातगुणा अधिक है,(और उनसे भी) पश्चिम मे विशेपाधिक है।

[४] दिसाणुवाएण सव्वत्थोवा वाउकाइया पुरत्थिमेण, पच्चत्थिमेण विसेसाहिया, उत्तरेण विसेसाहिया, दाहिणेण विसेसाहिया।

[२१४-४] दिशाओ की अपेक्षा से सबसे कम वायुकायिक जीव पूर्वदिशा मे है, उनसे विशेषाधिक पश्चिम मे है, उनसे विशेषाधिक उत्तर मे है और उनसे भी विशेषाधिक दक्षिण मे है।

[५] दिसाणुवाएण सव्वत्थोवा वणस्सइकाइया पच्चत्थिमेण, पुरत्थिमेण विसेसाहिया, दाहिणेण विसेसाहिया, उत्तरेण विसेसाहिया।

[२१४-५] दिशाओ की अपेक्षा से सबसे थोडे वनस्पतिकायिक जीव पश्चिम मे है, (उनसे) विशेषाधिक पूर्व मे है, (उनसे) विशेषाधिक दक्षिण मे है, (और उनसे भी) विशेषाधिक उत्तर मे हैं।

२१५ [१] दिसाणुवाएण सव्वत्थोवा बेइंदिया पच्चत्थिमेण, पुरत्थिमेण विसेसाहिया, दक्खिणेण विसेसाहिया, उत्तरेण विसेसाहिया।

[२१५-१] दिशाओ की अपेक्षा से सबसे कम द्वीन्द्रिय जीव पश्चिम मे है, (उनसे) विशेषाधिक पूर्व मे है, (उनसे) विशेषाधिक दक्षिण मे है, (और उनसे भी) विशेषाधिक उत्तरदिशा मे है।

[२] दिसाणुवाएण सव्वत्थोवा तेइंदिया पच्चत्थिमेण, पुरत्थिमेण विसेसाहिया, दाहिणेण विसेसाहिया, उत्तरेण विसेसाहिया।

[२१५-२] दिशाओ की अपेक्षा से सबसे कम त्रीन्द्रिय जीव पश्चिमदिशा मे है, (उनसे) विशेषाधिक पूर्व मे हैं, (उनसे) विशेषाधिक दक्षिण मे है और (उनसे भी) विशेषाधिक उत्तर मे है।

[३] दिसाणुवाएण सव्वत्थोवा चउरिंदिया पच्चत्थिमेण, पुरत्थिमेण विसेसाहिया, दाहिणेण विसेसाहिया, उत्तरेण विसेसाहिया।

[२१५-३] दिशाओ की अपेक्षा से सबसे कम चतुरिन्द्रिय जीव पश्चिम मे है, (उनसे) विशेषाधिक पूर्वदिशा मे हैं, (उनसे) विशेषाधिक दक्षिण मे हैं (और उनसे भी) विशेषाधिक उत्तरदिशा मे है।

२१६ [१] दिसाणुवाएण सव्वत्थोवा नेरइया पुरत्थिम-पच्चत्थिम-उत्तरेण, दाहिणेण, असंखेज्जगुणा ।

[२१६-१] दिशाओ की अपेक्षा से सबसे थोडे नैरयिक पूर्व, पश्चिम और उत्तर दिशा मे हे, (उनसे) असख्यातगुणे अधिक दक्षिणदिशा मे है ।

[२] दिसाणुवाएण सव्वत्थोवा रयणप्पभापुढविनेरइया पुरत्थिम-पच्चत्थिम-उत्तरेण, दाहिणेण असखेज्जगुणा ।

[२१६-२] दिशाओ की अपेक्षा से सबसे कम रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिक जीव पूर्व, पश्चिम और उत्तर मे है और (उनसे) असख्यातगुणे अधिक दक्षिणदिशा मे हे ।

[३] दिसाणुवाएण सव्वत्थोवा सक्करप्पभापुढविनेरइया पुरत्थिम-पच्चत्थिम उत्तरेण, दाहिणेण असखेज्जगुणा ।

[२१६-३] दिशाओ की अपेक्षा से सबसे कम शर्कराप्रभापृथ्वी के नैरयिक जीव पूर्व, पश्चिम और उत्तर मे है और (उनसे) असख्यातगुणे अधिक दक्षिणदिशा मे है ।

[४] दिसाणुवाएण सव्वत्थोवा वालुयप्पभापुढविनेरइया पुरत्थिम-पच्चत्थिम-उत्तरेण, दाहिणेण असखेज्जगुणा ।

[२१६-४] दिशाओ की अपेक्षा से सबसे कम वालुकाप्रभापृथ्वी के नैरयिक जीव पूर्व, पश्चिम और उत्तर मे है (और उनसे) असख्यातगुणे अधिक दक्षिणदिशा मे है ।

[५] दिसाणुवाएण सव्वत्थोवा पकप्पभापुढविनेरइया पुरत्थिम-पच्चत्थिम-उत्तरेण, दाहिणेण असखेज्जगुणा ।

[२१६-५] दिशाओ की अपेक्षा से सबसे अल्प पकप्रभापृथ्वी के नैरयिक जीव पूर्व, पश्चिम तथा उत्तर मे है (और उनसे) असख्यातगुणे अधिक दक्षिणदिशा मे है ।

[६] दिसाणुवातेण सव्वत्थोवा धूमप्पभापुढविनेरइया पुरत्थिम-पच्चत्थिम-उत्तरेण, दाहिणेण असखेज्जगुणा ।

[२१६-६] दिशाओ की अपेक्षा से सबसे थोडे धूमप्रभापृथ्वी के नैरयिक जीव पूर्व, पश्चिम और उत्तर मे है, एव (उनसे) असख्यातगुणे अधिक दक्षिणदिशा मे हैं ।

[७] दिसाणुवाएण सव्वत्थोवा तमप्पभापुढविनेरइया पुरत्थिम-पच्चत्थिम-उत्तरेणं, दाहिणेण असखेज्जगुणा ।

[२१६-७] दिशाओ की अपेक्षा से सबसे कम तम प्रभापृथ्वी के नैरयिक जीव पूर्व, पश्चिम तथा उत्तर मे है और (उनसे) असख्यातगुणे अधिक दक्षिणदिशा मे हैं ।

[८] दिसाणुवाएणं सव्वत्थोवा अहेसत्तमापुढविनेरइया पुरत्थिम-पच्चत्थिम-उत्तरेण, दाहिणेण असंखेज्जगुणा ।

[२१६-८] दिशाओ की अपेक्षा से सबसे थोडे अध सप्तमा (तमस्तम प्रभा) पृथ्वी के नैरयिक जीव पूर्व, पश्चिम तथा उत्तर मे है और (उनसे) असख्यातगुणे अधिक दक्षिणदिशा मे हैं ।

२१७. [१] दाहिणिल्लेहिंतो अहेसत्तमापुढविनेरइएहिंतो छट्ठीए तमाए पुढवीए नेरइया पुरत्थिम-पच्चत्थिम-उत्तरेण असंखेज्जगुणा, दाहिणेण असंखेज्जगुणा ।

[२१७-१] दक्षिणदिशा के अध सप्तमपृथ्वी के नैरयिको से छठी तम प्रभापृथ्वी के नैरयिक पूर्व, पश्चिम और उत्तर मे असख्यातगुणे है, और (उनसे भी) असख्यातगुणे दक्षिणदिशा मे है ।

[२] दाहिणिल्लेहिंतो तमापुढविणेरइएहिंतो पचमाए धूमप्पभाए पुढवीए नेरइया पुरत्थिम-पच्चत्थिम-उत्तरेण असंखेज्जगुणा, दाहिणेण असंखेज्जगुणा ।

[२१७-२] दक्षिणदिशावर्ती तम प्रभापृथ्वी के नैरयिको से पाचवी धूमप्रभापृथ्वी के नैरयिक पूर्व, पश्चिम तथा उत्तर मे असख्यातगुणे है और (उनसे भी) असख्यातगुणे दक्षिणदिशा मे है ।

[३] दाहिणिल्लेहिंतो धूमप्पभापुढविनेरइएहिंतो चउत्थीए पकप्पभाए पुढवीए नेरइया पुरत्थिम पच्चत्थिम-उत्तरेण असंखेज्जगुणा, दाहिणेण असंखेज्जगुणा ।

[२१७-३] दक्षिणदिशावर्ती धूमप्रभापृथ्वी के नैरयिको से चौथी पकप्रभापृथ्वी के नैरयिक पूर्व, पश्चिम और उत्तर मे असख्यातगुणे हैं, (उनसे) असख्यातगुणे दक्षिणदिशा मे है ।

[४] दाहिणिल्लेहिंतो पकप्पभापुढविनेरइएहिंतो तइयाए वालुयप्पभाए पुढवीए नेरइया पुरत्थिम-पच्चत्थिम-उत्तरेण असंखेज्जगुणा, दाहिणेण असखिज्जगुणा ।

[२१७-४] दाक्षिणात्य पकप्रभापृथ्वी के नैरयिको से तीसरी वालुकाप्रभापृथ्वी के नैरयिक पूर्व, पश्चिम तथा उत्तर मे असख्यातगुणे हैं और दक्षिणदिशा मे (उनसे भी) असख्यातगुणे हैं ।

[५] दाहिणिल्लेहिंतो वालुयप्पभापुढविनेरइएहिंतो दुइयाए सक्करप्पभाए पुढवीए णेरइया पुरत्थिम-पच्चत्थिम-उत्तरेण असखिज्जगुणा, दाहिणेणं असखिज्जगुणा ।

[२१७-५] दक्षिणदिशा के वालुकाप्रभापृथ्वी के नैरयिको से दूसरी शर्कराप्रभापृथ्वी के नैरयिक पूर्व, पश्चिम तथा उत्तर मे असख्यातगुणे हैं और दक्षिणदिशा मे उनसे भी असख्यातगुणे है ।

[६] दाहिणिल्लेहिंतो सक्करप्पभापुढविनेरइएहिंतो इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए नेरइया पुरत्थिम-पच्चत्थिम-उत्तरेणं असंखेज्जगुणा, दाहिणेण असंखेज्जगुणा ।

[२१७-६] दक्षिणदिशा के शर्कराप्रभापृथ्वी के नैरयिको से इस पहली रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिक पूर्व, पश्चिम और उत्तर मे असख्यातगुणे है और उनसे भी दक्षिणदिशा मे असख्यातगुणे हैं ।

२१८. दिसाणुवातेण सव्वत्थोवा पंचेंदियतिरिक्खजोणिया पच्चत्थिमेण, पुरत्थिमेण विसेसाहिया, दाहिणेणं विसेसाहिया, उत्तरेण विसेसाहिया।

[२१८] दिशाओ की अपेक्षा से सबसे थोडे पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीव पश्चिम मे है। पूर्व मे (इनसे) विशेषाधिक है, दक्षिण मे (इनसे) विशेषाधिक है और उत्तर मे (इनसे भी) विशेषाधिक हैं।

२१९ दिसाणुवातेण सव्वत्थोवा मणुस्सा दाहिणउत्तरेण, पुरत्थिमेण सखेज्जगुणा, पच्चत्थिमेणं विसेसाहिया।

[२१९] दिशाओ की अपेक्षा सबसे कम मनुष्य दक्षिण एव उत्तर मे है, पूर्व मे (उनसे) सख्यातगुणे अधिक है और पश्चिमदिशा मे (उनसे भी) विशेषाधिक है।

२२० दिसाणुवातेण सव्वत्थोवा भवणवासी देवा पुरत्थिम-पच्चत्थिमेण, उत्तरेण असंखेज्जगुणा, दाहिणेण असंखेज्जगुणा।

[२२०] दिशाओ की अपेक्षा से सबसे थोडे भवनवासी देव पूर्व और पश्चिम मे है। (उनसे) असख्यातगुणे अधिक उत्तर मे है और (उनसे भी) असख्यातगुणे दक्षिणदिशा मे है।

२२१ दिसाणुवातेण सव्वत्थोवा वाणमतरा देवा पुरत्थिमेण, पच्चत्थिमेण विसेसाहिया, उत्तरेण विसेसाहिया, दाहिणेण विसेसाहिया।

[२२१] दिशाओ की अपेक्षा से सबसे अल्प वाणव्यन्तर देव पूर्व मे है, उनसे विशेषाधिक पश्चिम मे हैं, उनसे विशेषाधिक उत्तर मे है और उनसे भी विशेषाधिक दक्षिण मे है।

२२२ दिसाणुवातेण सव्वत्थोवा जोइसिया देवा पुरत्थिम-पच्चत्थिमेण, दाहिणेण विसेसाहिया, उत्तरेणं विसेसाहिया।

[२२२] दिशाओ की अपेक्षा से सबसे थोडे ज्योतिष्क देव पूर्व एव पश्चिम मे है, दक्षिण मे उनसे विशेषाधिक है और उत्तर मे उनसे भी विशेषाधिक है।

२२३ [१] दिसाणुवातेण सव्वत्थोवा देवा सोहम्मे कप्पे पुरत्थिम-पच्चत्थिमेण, उत्तरेण असखेज्जगुणा, दाहिणेण विसेसाहिया।

[२२३-१] दिशाओ की अपेक्षा से सबसे अल्प देव सौधर्मकल्प मे पूर्व तथा पश्चिम दिशा मे है, उत्तर मे (उनसे) असख्यातगुणे हैं और दक्षिण मे (उनसे भी) विशेषाधिक हैं।

[२] दिसाणुवातेण सव्वत्थोवा देवा ईसाणे कप्पे पुरत्थिम-पच्चत्थिमेण, उत्तरेण असखेज्जगुणा, दाहिणेण विसेसाहिया।

[२२३-२] दिशाओ की अपेक्षा से सबसे कम देव ईशान-कल्प मे पूर्व एव पश्चिम मे है। उत्तर मे (उनसे) असख्यातगुणे है और दक्षिण मे (उनसे भी) विशेषाधिक है।

[३] दिसाणुवातेण सव्वत्थोवा देवा सणकुमारे कप्पे पुरत्थिम-पच्चत्थिमेण, उत्तरेण असंखेज्ज-गुणा, दाहिणेण विसेसाहिया।

[२२३-३] दिशाओं की अपेक्षा सबसे अल्प देव सनत्कुमारकल्प में पूर्व और पश्चिम में हैं, उत्तर में (उनसे) असंख्यातगुणे हैं और दक्षिण में (उनसे भी) विशेषाधिक हैं।

[४] दिसाणुवातेण सव्वत्थोवा देवा माहिंदे कप्पे पुरत्थिम पच्चत्थिमेण, उत्तरेण असंखेज्ज-गुणा, दाहिणेण विसेसाहिया।

[२२३-४] दिशाओं की अपेक्षा से सबसे अल्प देव माहेन्द्रकल्प में पूर्व तथा पश्चिम में हैं, उत्तर में (उनसे) असंख्यातगुणे हैं और दक्षिण में (उनसे भी) विशेषाधिक हैं।

[५] दिसाणुवाएण सव्वत्थोवा देवा बंभलोए कप्पे पुरत्थिम-पच्चत्थिम-उत्तरेण, दाहिणेण असंखेज्जगुणा।

[२२३-५] दिशाओं की अपेक्षा से सबसे कम देव ब्रह्मलोककल्प में पूर्व, पश्चिम और उत्तर में हैं, दक्षिणदिशा में (उनसे) असंख्यातगुणे हैं।

[६] दिसाणुवातेण सव्वत्थोवा देवा लंतए कप्पे पुरत्थिम-पच्चत्थिम-उत्तरेण, दाहिणेण असंखेज्जगुणा।

[२२३-६] दिशाओं को लेकर सबसे थोड़े देव लान्तककल्प में पूर्व, पश्चिम और उत्तर में हैं। (उनसे) असंख्यातगुणे दक्षिण में हैं।

[७] दिसाणुवाएण सव्वत्थोवा देवा महासुक्के कप्पे पुरत्थिम-पच्चत्थिम-उत्तरेण, दाहिणेण असंखेज्जगुणा।

[२२३-७] दिशाओं की दृष्टि से सबसे कम देव महाशुक्रकल्प में पूर्व, पश्चिम एवं उत्तर में हैं। दक्षिण में (उनसे) असंख्यातगुणे हैं।

[८] दिसाणुवातेण सव्वत्थोवा देवा सहस्सारे कप्पे पुरत्थिम-पच्चत्थिम-उत्तरेण, दाहिणेण असंखेज्जगुणा।

[२२३-८] दिशाओं की अपेक्षा से सबसे कम देव सहस्रारकल्प में पूर्व, पश्चिम और उत्तर में हैं। दक्षिण में (उनसे) असंख्यातगुणे हैं।

[९] तेण परं बहुसमोववण्णगा समणाउसो!।

[२२३-९] हे आयुष्मन् श्रमणो! उससे आगे (के प्रत्येक कल्प में, प्रत्येक ग्रैवेयक में तथा प्रत्येक अनुत्तरविमान में चारों दिशाओं में) बहुत (बिलकुल) सम उत्पन्न होने वाले हैं।

२२४ दिसाणुवातेण सव्वत्थोवा सिद्धा दाहिणुत्तरेण, पुरत्थिमेण सखेज्जगुणा, पच्चत्थिमेण विसेसाहिया । दार १ ॥

[२२४] दिशाओ की अपेक्षा से सबसे अल्प सिद्ध दक्षिण और उत्तरदिशा मे है । पूर्व मे (उनसे) सख्यातगुणे है और पश्चिम मे (उनसे) विशेषाधिक है । —प्रथमद्वार ॥१॥

विवेचन—प्रथम दिशाद्वार . दिशाओ की अपेक्षा से जीवो का अल्पबहुत्व—प्रस्तुत बारह सूत्रो (सू २१३ से २२४ तक) मे से प्रथमसूत्र मे दिशा की अपेक्षा से औधिक जीवो के अल्पबहुत्व की और शेष ११ सूत्रो मे पृथ्वीकायादि एकेन्द्रिय जीवो से लेकर अनुत्तर विमानवासी वैमानिक देवो तक के पृथक्-पृथक् अल्पबहुत्व की प्ररूपणा की गई है ।

दिशाओ की अपेक्षा से—आचाराग प्रथम श्रुतस्कन्ध मे द्रव्यदिशा और भावदिशा के अनेक भेद बताए गए हैं, किन्तु यहाँ उनमे से क्षेत्रदिशाओ का ही ग्रहण किया गया है, क्योकि अन्य दिशाएँ यहाँ अनुपयोगी हैं और प्राय अनियत है । क्षेत्रदिशाओ की उत्पत्ति (प्रभव) तिर्यक्लोक के मध्य मे स्थित आठ रुचकप्रदेशो से है । वही सब दिशाओ का केन्द्र है ।

औधिक जीवो का अल्पबहुत्व—दिशाओ की अपेक्षा से सबसे अल्प जीव पश्चिम दिशा मे है, क्योकि उस दिशा मे बादर वनस्पति की अल्पता है । यहाँ बादर जीवो की अपेक्षा से ही अल्पबहुत्व का विचार किया गया है, सूक्ष्म जीवो की अपेक्षा से नही, क्योकि सूक्ष्मजीव तो समग्र लोक मे व्याप्त है, इसलिए प्राय सर्वत्र समान ही है । बादर जीवो मे वनस्पतिकायिक जीव सबसे अधिक है । ऐसी स्थिति मे जहाँ वनस्पति अधिक है, वहाँ जीवो की सख्या अधिक है, जहाँ वनस्पति की अल्पता है,वहाँ जीवो की सख्या भी अल्प है । वनस्पति वहीं अधिक होती है, जहाँ जल की प्रचुरता होती है । '**जत्थ जल तत्थ वण**' इस उक्ति के अनुसार जहाँ जल होता है, वहाँ वन अर्थात् पनक, शैवाल आदि वनस्पति अवश्य होती है । बादरनामकर्म के उदय से पनक आदि की गणना बादर वनस्पतिकाय मे होने पर भी उनकी अवगाहना अतिसूक्ष्म होने तथा उनके पिण्डीभूत हो कर रहने के कारण सर्वत्र विद्यमान होने पर भी वे नेत्रो से ग्राह्य नही होते । 'जहाँ अप्काय होता है, वहाँ नियमत वनस्पतिकायिक जीव होते है,' इस वचनानुसार समुद्र आदि मे प्रचुर जल होता है और समुद्र द्वीपो की अपेक्षा दुगुने विस्तार वाले है । उन समुद्रो मे भी प्रत्येक मे पूर्व और पश्चिम मे क्रमश चन्द्रद्वीप और सूर्यद्वीप है । जितने प्रदेश मे चन्द्र-सूर्यद्वीप स्थित है, उतने प्रदेश मे जल का अभाव है । जहाँ जल का अभाव है, वहाँ वनस्पतिकायिक जीवो का अभाव होता है । इसके अतिरिक्त पश्चिमदिशा मे लवणसमुद्र के अधिपति सुस्थित नामक देव का आवासरूप गौतमद्वीप है, जो लवणसमुद्र से भी अधिक विस्तृत है । वहाँ भी जल का अभाव होने से वनस्पतिकायिको का अभाव है । इसी कारण पश्चिम दिशा मे सबसे कम जीव पाए जाते है । पश्चिमदिग्वर्ती जीवो से पूर्वदिशा मे विशेषाधिक जीव है, क्योकि पूर्वदिशा मे गौतमद्वीप नही है, अतएव वहाँ उतने जीव अधिक है, दक्षिणदिशा मे पूर्वदिग्वर्ती जीवो से विशेषाधिक जीव है, क्योकि दक्षिण मे चन्द्र-सूर्यद्वीप न होने से प्रचुर जल है, इस कारण वनस्पतिकायिक जीव भी बहुत है । उत्तर मे दक्षिणदिग्वर्ती जीवो की अपेक्षा विशेषाधिक जीव हैं, क्योकि उत्तरदिशा मे सख्यात योजन वाले द्वीपो मे से एक द्वीप मे सख्यातकोटि-योजन-प्रमाण लम्बा-चौडा एक मानस-सरोवर है, उसमे जल की प्रचुरता होने से वनस्पतिकायिक जीवो की बहुलता है । इसी प्रकार जलाश्रित शखादि द्वीन्द्रिय जीव, समुद्रादितटोत्पन्न शख आदि के आश्रित चीटी

(पिपीलिका) आदि त्रीन्द्रिय जीव, कमल आदि मे निवास करने वाले भ्रमर आदि चतुरिन्द्रिय जीव तथा जलचर मत्स्य आदि पचेन्द्रिय जीव भी उत्तर मे विशेपाधिक हे ।[1]

विशेषरूप से दिशाओ की अपेक्षा जीवो का अल्पबहुत्व—(१) पृथ्वीकायिको का अल्पबहुत्व— दक्षिणदिशा मे सवसे कम पृथ्वीकायिक इसलिए है कि पृथ्वीकायिक जीव वही अधिक होते है, जहाँ ठोस स्थान होता है, जहाँ छिद्र या पोल होती है, वहाँ वहुत कम होते हैं। दक्षिणदिशा मे वहुत-से भवनपतियो के भवन और नरकावास होने के कारण छिद्रो और पोली जगहो की वहुलता हे । दक्षिण दिशा की अपेक्षा उत्तरदिशा मे पृथ्वीकायिक जीव विशेषाधिक हैं, क्योकि उत्तरदिशा मे भवनपतियो के भवन और नरकावास कम है । अत वहाँ सघन स्थान अधिक है । पूर्वदिशा मे चन्द्र-सूर्यद्वीप होने से पृथ्वीकायिक जीव विशेषाधिक है । इसकी अपेक्षा भी पश्चिम मे पृथ्वीकायिकजीव विशेषाधिक है क्योकि वहाँ चन्द्र-सूर्यद्वीप के अतिरिक्त लवणसमुद्रीय गौतमद्वीप भी है ।

(२) अप्कायिको का अल्पबहुत्व—पश्चिम मे वे सव से कम है, क्योकि पश्चिम मे गौतमद्वीप होने के कारण जल कम है । पूर्व मे गौतमद्वीप नही होने से अप्कायिक विशेपाधिक हैं, दक्षिण मे चन्द्र-सूर्यद्वीप न होने से अप्कायिक विशेषाधिक है और उत्तर मे मानससरोवर होने से जल की प्रचुरता है, इसलिए वहाँ अप्कायिक विशेषाधिक है ।

(३) तेजस्कायिको का अल्पबहुत्व—दक्षिण और उत्तर दिशा मे अग्निकायिक जीव सवसे कम इसलिए हैं कि मनुष्यक्षेत्र मे ही वादर तेजस्कायिक जीवो का अस्तित्व होता है, अन्यत्र नही । उसमे भी जहाँ मनुष्यो की सख्या अधिक होती है, वहाँ पचन-पाचन की प्रवृत्ति अधिक होने से तेजस्कायिक जीवो की अधिकता होती है । दक्षिण मे पाच भरत क्षेत्रो तथा उत्तर मे पाच ऐरवत क्षेत्रो मे क्षेत्र की अल्पता होने से मनुष्य कम है, अतएव वहाँ तेजस्कायिक भी कम है । स्वस्थान मे (अर्थात् दोनो मे) प्राय समान हैं । इन दोनो दिशाओ की अपेक्षा पूर्व मे क्षेत्र सख्यातगुण अधिक होने से तेजस्कायिक पूर्व मे सख्यातगुण अधिक है, तथा उनसे भी विशेषाधिक तेजस्कायिक पश्चिमदिशा मे है, क्योकि वहाँ अधोलौकिक ग्राम होते हैं, जहाँ मनुष्यो की वहुलता होती है ।

(४) वायुकायिक जीवो का अल्पबहुत्व—सब से अल्प वायुकायिक जीव पूर्व मे है, क्योकि जहाँ पोल होती है वही वायु का सचार होता है, सघन स्थान मे नही । पूर्व मे सघन (ठोस) स्थान अधिक होने से वायु अल्प है । पूर्व की अपेक्षा पश्चिम मे वायुकायिक जीव विशेषाधिक है, क्योकि वहाँ अधोलौकिक ग्राम होते हैं । उत्तर मे उससे विशेषाधिक हैं, क्योकि नारकावासो की वहाँ बहुलता होने से पोल अधिक है । दक्षिण मे उत्तर की अपेक्षा पोल अधिक है, क्योकि दक्षिण मे भवनो और नारकावासो की प्रचुरता है, इसलिए दक्षिण मे वे विशेषाधिक है ।

(५) वनस्पतिकायिक जीवो का अल्पबहुत्व—वे सबसे कम पश्चिम मे हैं, क्योकि पश्चिम मे

---

१ (क) प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक ११३-११४

(ख) अट्ठपएसो रुयगो तिरियलोयस्स मज्झयारम्मि ।
एस पभवो दिसाण, एसेव भवे अणुदिसाण ॥ १ ॥

(ग) 'ते ण वालग्गा सुहुमपणग जीवस्स सरीरोगाहणाहिंतो असखेज्जगुणा ।' —अनुयोगद्वारसूत्र

(घ) 'जत्थ आउकाओ, तत्थ नियमा वणस्सइकाइया ।'

गौतमद्वीप होने से जल की अल्पता है और जल अल्प होने से वनस्पतिकायिक जीव भी कम है। पश्चिम की अपेक्षा पूर्व मे वनस्पतिकायिक विशेषाधिक है, क्योकि पूर्व मे गौतमद्वीप न होने से जल अधिक है। उनसे दक्षिणदिशा मे वनस्पतिकायिक विशेषाधिक है, क्योकि वहाँ चन्द्र-सूर्य द्वीप का अभाव होने से जल की प्रचुरता है।

(६) **द्वीन्द्रिय जीवो का अल्पबहुत्व**—सबसे कम द्वीन्द्रिय पश्चिमदिशा मे है, क्योकि वहाँ गौतमद्वीप होने से जल कम है और जल कम होने से शख आदि द्वीन्द्रिय जीव कम है। उनसे पूर्वदिशा मे विशेषाधिक है, क्योकि वहाँ गौतमद्वीप का अभाव होने से जल का प्राचुर्य है, इस कारण शख आदि द्वीन्द्रिय जीवो की अधिकता है। दक्षिण मे उनसे भी विशेषाधिक है, क्योकि वहाँ चन्द्र-सूर्य द्वीप न होने से जल अधिक है और इस कारण शखादि भी अधिक है। उत्तर मे तो मानस-सरोवर होने से जलाधिक्य है ही, इसलिए वहाँ द्वीन्द्रिय विशेषाधिक है।

(७) **त्रीन्द्रिय जीवो का अल्पबहुत्व**—कुथुआ, चीटी आदि त्रीन्द्रिय शखादि-कलेवरो के आश्रित होने से द्वीन्द्रिय जीवो की तरह जलाधिक्य पर निर्भर है। इसलिए इनके अल्पबहुत्व का समाधान भी द्वीन्द्रिय की तरह समझ लेना चाहिए।

(८) **चतुरिन्द्रिय जीवो का अल्पबहुत्व**—भ्रमर आदि चतुरिन्द्रिय जीव भी प्राय कमल आदि के आश्रित होते हैं और कमल (जलज) भी जलजन्य होने से चतुरिन्द्रिय जीवो की अल्पता-अधिकता भी जलाभाव-जलप्राचुर्य पर निर्भर है। अत इनके अल्पबहुत्व का स्पष्टीकरण भी द्वीन्द्रियो की तरह समझना चाहिए।

(९) **नारको का अल्पबहुत्व**—पूर्व, पश्चिम और उत्तर मे सबसे कम नारक है, क्योकि इन दिशाओ मे पुष्पावकीर्ण नरकावास थोडे है, और वे प्राय सख्यात योजन विस्तृत है। इन दिशाओ की अपेक्षा दक्षिणदिशा मे असख्यात-गुणा नारक है, क्योकि दक्षिण मे पुष्पावकीर्णनरकावासो की बहुलता है और वे प्राय असख्यात योजन विस्तृत है। इसके अतिरिक्त कृष्णपाक्षिक जीवो की उत्पत्ति दक्षिणदिशा मे बहुत होती है। ससार मे दो प्रकार के जीव है—कृष्णपाक्षिक और शुक्लपाक्षिक। जिनका ससार (भवभ्रमण) कुछ कम अपार्द्ध पुद्गलपरावर्तन मात्र ही शेष है, वे शुक्लपाक्षिक है और जिनका ससार (भवभ्रमण) इससे बहुत अधिक है, वे कृष्णपाक्षिक है। शुक्लपाक्षिक (परिमित-ससारी) जीव अल्प होते हैं, जबकि कृष्णपाक्षिक जीव अत्यधिक होते है। वे क्रूरकर्मा एव दीर्घतर भवभ्रमणकर्ता जीव स्वभावत दक्षिणदिशा मे उत्पन्न होते है। प्राय क्रूरकर्मा भवसिद्धिक जीव भी दक्षिणदिशा मे स्थित नारको, तिर्यंचो, मनुष्यो और असुरो आदि के स्थानो मे उत्पन्न होते है।

(१०) **विशेषरूप से रत्नप्रभादि के नारको का अल्पबहुत्व**—रत्नप्रभा नामक प्रथम नरक-भूमि से तमस्तम प्रभा नामक सप्तम नरकभूमि तक के नारक पूर्व, पश्चिम और उत्तर मे सबसे कम है, किन्तु दक्षिण दिशा मे उनसे असख्यातगुणे अधिक है। इसका कारण पहले बतलाया जा चुका है।

(११) **सातो नरकपृथ्वियो के जीवो का परस्पर अल्पबहुत्व**—सप्तम नरकपृथ्वी के पूर्व-पश्चिमोत्तरदिग्वर्ती नारको की अपेक्षा इसी पृथ्वी के दक्षिणदिग्वर्ती नारक असख्यातगुणे अधिक है, इसका कारण पहले बताया जा चुका है। सप्तम नरकपृथ्वी के दक्षिणदिग्वर्ती नैरयिको की अपेक्षा छठी नरकपृथ्वी (तम प्रभा) के पूर्वोत्तरपश्चिमदिग्वर्ती नैरयिक असख्यातगुणे है, इसका कारण यह है कि ससार मे सबसे अधिक पापकर्मकारी सज्ञीपचेन्द्रिय तिर्यञ्च और मनुष्य सप्तम

नरकपृथ्वी मे उत्पन्न होते है, किञ्चित् हीन, हीनतर पापकर्मकारी छठी, पाचवी आदि पृथ्वियो मे उत्पन्न होते हैं। सर्वोत्कृष्ट पापकर्मकारी सबसे थोडे है, इसलिए सप्तम नरकपृथ्वी के दक्षिण मे सबसे कम नारक है, उनसे छठी नरकपृथ्वी के पूर्व-पश्चिमोत्तरदिग्वर्ती नारक असख्येयगुणे है, छठी नरकपृथ्वी के पूर्व-पश्चिम-उत्तरदिग्वर्ती नारको की अपेक्षा दक्षिणदिग्वर्ती नारक असख्यातगुणे हैं। कारण पहले बताया जा चुका है। उनमे क्रमश पचम, चतुर्थ, तृतीय, द्वितीय और प्रथम नरक के पूर्वपश्चिमोत्तरदिग्वर्ती तथा दक्षिणदिग्वर्ती नैरयिक अनुक्रम से असख्यातगुणे समझ लेने चाहिए।

(१२) **तिर्यञ्चपञ्चेन्द्रिय जीवो का अल्पबहुत्व**—तिर्यञ्चपञ्चेन्द्रिय जीवो का अल्पबहुत्व अप्कायिक सूत्र की तरह समझ लेना चाहिए।

(१३) **मनुष्यो का अल्पबहुत्व**—सबसे कम मनुष्य दक्षिण और उत्तर दिशा मे हैं, क्योकि इन दिशाओ मे पाच भरत और पाच ऐरावत क्षेत्र छोटे ही है। उनसे पूर्वदिशा मे सख्यातगुणे है, क्योकि वहाँ क्षेत्र सख्यातगुणे बडे है। पश्चिम दिशा मे इनसे भी विशेपाधिक हैं, क्योकि वहाँ अधोलौकिक ग्राम है, जिनमे स्वभावत मनुष्यो की बहुलता है।

(१४) **भवनवासी देवो का अल्पबहुत्व**—सबसे अल्प भवनवासी देव पूर्व और पश्चिम मे है, क्योकि इन दोनो दिशाओ मे उनके भवन थोडे है। इनकी अपेक्षा उत्तर मे असख्यातगुणे अधिक है, क्योकि स्वस्थान होने से वहाँ भवन बहुत हैं। दक्षिणदिशा मे इनसे भी असख्यातगुणे है, क्योकि वहाँ प्रत्येक निकाय के चार-चार लाख भवन अधिक है तथा बहुत-से कृष्णपाक्षिक इसी दिशा मे उत्पन्न होते हैं, अत वे असख्यातगुणे अधिक है।

(१५) **वाणव्यन्तर देवो का अल्पबहुत्व**—जहाँ पोले स्थान है, वही प्राय व्यन्तरो का सचार होता है, पूर्वदिशा मे ठोस स्थान अधिक है, इस कारण वहाँ व्यन्तर थोडे ही है। पश्चिमदिशा मे उनसे विशेषाधिक है, क्योकि वहाँ अधोलौकिक ग्रामो मे पोल अधिक है, उनकी अपेक्षा उत्तरदिशा मे विशेषाधिक है, क्योकि वहाँ उनके स्वस्थान होने से नगरावासो की बहुलता है। उत्तर की अपेक्षा दक्षिण मे विशेषाधिक है, क्योकि दक्षिणदिशा मे उनके नगरावास अत्यधिक है।

(१६) **ज्योतिष्क देवों का अल्पबहुत्व**—सबसे कम ज्योतिष्क देव पूर्व एव पश्चिम दिशाओ मे होते है, क्योकि इन दोनो दिशाओ मे चन्द्र और सूर्य के उद्यान जैसे द्वीपो मे ज्योतिष्क देव अल्प ही होते है। दक्षिण मे उनकी अपेक्षा विशेषाधिक है, क्योकि दक्षिण मे उनके विमान अधिक है और कृष्णपाक्षिक दक्षिणदिशा मे ही होते है। उत्तरदिशा मे उनसे भी विशेषाधिक है, क्योकि उत्तर मे मानससरोवर मे ज्योतिष्क देवो के क्रीडास्थल बहुत है। क्रीडारत होने के कारण वहाँ ज्योतिष्क देव सदैव रहते है। मानससरोवर के मत्स्य आदि जलचरो को अपने निकटवर्ती विमानो को देख कर जातिस्मरणज्ञान उत्पन्न होता है, जिससे वे किंचित् व्रत अगीकार कर अशनादि का त्याग करके निदान के कारण वहाँ उत्पन्न होते हैं। इस कारण उत्तर मे दक्षिण की अपेक्षा ज्योतिष्क देव विशेषाधिक है।

(१७) **सौधर्म आदि वैमानिक देवो का अल्पबहुत्व**—वैमानिक देव सौधर्मकल्प मे सबसे कम पूर्व और पश्चिम मे है, क्योकि आवलिकाप्रविष्ट विमान तो चारो दिशाओ मे समान है, किन्तु बहुसख्यक और असख्यातयोजन-विस्तृत पुष्पावकीर्ण विमान दक्षिण और उत्तर मे ही है, पूर्व और पश्चिम मे नही। इसी कारण पूर्व और पश्चिम मे सबसे कम वैमानिक देव है। इनकी अपेक्षा उत्तर मे वे असख्यातगुणे अधिक है, क्योकि उत्तर मे असख्यात योजन-विस्तृत पुष्पावकीर्ण विमान बहुत है

और उनसे भी विशेषाधिक है, क्योकि कृष्णपाक्षिको का वहाँ अधिकतर गमन होता है। ईशान, सनत्कुमार एवं माहेन्द्र कल्प के देवो का भी दिशा की अपेक्षा से अल्पवहुत्व इसी प्रकार है और उनका कारण भी पूर्ववत् ही समझ लेना चाहिए। ब्रह्मलोककल्प के देव सबसे कम पूर्व, पश्चिम और उत्तर दिशा मे है, क्योकि बहुसख्यक कृष्णपाक्षिक दक्षिणदिशा मे उत्पन्न होते है और शुक्लपाक्षिक थोडे ही होते है। दक्षिणदिशा मे उनकी अपेक्षा असख्यातगुणे देव है, क्योकि वहाँ बहुत कृष्णपाक्षिक उत्पन्न होते है। इसी प्रकार लान्तक, महाशुक्र एव सहस्रार कल्प के देवो का (दिशाओ की अपेक्षा) अल्पबहुत्व एव कारण पूर्ववत् समझ लेना चाहिए। सहस्रारकल्प के बाद ऊपर के कल्पो के तथा नौ ग्रैवेयक एव पाच अनुत्तर विमानो के देव चारो दिशाओ मे समान है, क्योकि वहाँ मनुष्य ही उत्पन्न होते हैं।

(१८) **सिद्धजीवो का अल्पबहुत्व**—सबसे अल्प सिद्ध दक्षिण और उत्तर मे है, क्योकि मनुष्य ही सिद्ध होते है, अन्य जीव नही। सिद्ध होने वाले मनुष्य चरम समय मे जिन आकाश प्रदेशो मे अवगाढ (स्थित) होते है, उन्ही आकाशप्रदेशो की दिशा मे ऊपर जाते है, उसी सीध मे ऊपर जाकर वे लोकाग्र मे स्थित हो जाते है। दक्षिणदिशा मे पाच भरतक्षेत्रो मे तथा उत्तर मे पाच ऐरावत क्षेत्रो मे मनुष्य अल्प हैं, क्योकि सिद्धक्षेत्र अल्प है। फिर सुषम-सुषमा आदि आरो मे सिद्धि प्राप्त नही होती। इस कारण दक्षिण और उत्तर मे सिद्ध सबसे कम है। पूर्वदिशा मे उनसे असख्यातगुणे हैं, क्योकि भरत और ऐरावत क्षेत्र की अपेक्षा पूर्वविदेह सख्यातगुणा विस्तृत है, इसलिए वहाँ मनुष्य भी सख्यातगुणे हैं और वहाँ से सर्वकाल मे सिद्धि होती रहती है। उनसे भी पश्चिम दिशा मे विशेषाधिक है, क्योकि अधोलौकिक ग्रामो मे मनुष्यो की अधिकता है।[1]

द्वितीय गतिद्वार : पाच या आठ गतियो की अपेक्षा जीवो का अल्पबहुत्व—

२२५ एएसि ण भते! नेरइयाण तिरिक्खजोणियाण मणुस्साण देवाण सिद्धाण य पचगति[2] समासेण कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवा मणुस्सा १, नेरइया असखेज्जगुणा २, देवा असखेज्जगुणा ३, सिद्धा अणतगुणा ४, तिरिक्खजोणिया अणतगुणा ५।

[२२५ प्र] भगवन्! नारको, तिर्यंचो, मनुष्यो, देवो और सिद्धो की पाच गतियो की अपेक्षा से सक्षेप मे कौन किनसे अल्प है, बहुत है, तुल्य है अथवा विशेषाधिक हैं?

[२२५ उ] गौतम! १ सबसे थोडे मनुष्य हैं, २ (उनसे) नैरयिक असख्यातगुणे हैं, ३. (उनसे) देव असख्यातगुणे है, ४ उनसे सिद्ध अनन्तगुणे हैं और ५ (उनसे भी) तिर्यंचयोनिक जीव अनन्तगुणे है।

२२६. एतेसि ण भते! नेरइयाण तिरिक्खजोणियाणं तिरिक्खजोणिणीण मणुस्साण मणुस्सीण देवाण देवीण सिद्धाण य[3] अट्ठगति[3] समासेण कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

---

१ प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक ११६ से ११९ तक

२ 'पचगति अणुवाएण समासेण' यह पाठान्तर मिलता है। —स

३ 'अट्ठगति अणुवाएण समासेण' यह पाठान्तर मिलता है। —स

नरकपृथ्वी मे उत्पन्न होते है, किञ्चित् हीन, हीनतर पापकर्मकारी छठी, पाचवी आदि पृथ्वियो मे उत्पन्न होते है। सर्वोत्कृष्ट पापकर्मकारी सबसे थोडे हे, इसलिए सप्तम नरकपृथ्वी के दक्षिण मे सबसे कम नारक है, उनसे छठी नरकपृथ्वी के पूर्व-पश्चिमोत्तरदिग्वर्ती नारक असख्येयगुणे हैं, छठी नरकपृथ्वी के पूर्व-पश्चिम-उत्तरदिग्वर्ती नारको की अपेक्षा दक्षिणदिग्वर्ती नारक असख्यातगुणे है। कारण पहले बताया जा चुका है। उनसे क्रमश पचम, चतुर्थ, तृतीय, द्वितीय और प्रथम नरक के पूर्वपश्चिमोत्तरदिग्वर्ती तथा दक्षिणदिग्वर्ती नैरयिक अनुक्रम से असख्यातगुणे समझ लेने चाहिए।

(१२) **तिर्यञ्चपञ्चेन्द्रिय जीवो का अल्पबहुत्व**—तिर्यञ्चपञ्चेन्द्रिय जीवो का अल्पबहुत्व अप्कायिक सूत्र की तरह समझ लेना चाहिए।

(१३) **मनुष्यो का अल्पबहुत्व**—सबसे कम मनुष्य दक्षिण और उत्तर दिशा मे है, क्योकि इन दिशाओ मे पाच भरत और पाच ऐरावत क्षेत्र छोटे ही है। उनसे पूर्वदिशा मे सख्यातगुणे हे, क्योकि वहाँ क्षेत्र सख्यातगुणे बडे है। पश्चिम दिशा मे इनसे भी विशेषाधिक है, क्योकि वहाँ अधोलौकिक ग्राम हैं, जिनमे स्वभावत मनुष्यो की बहुलता है।

(१४) **भवनवासी देवो का अल्पबहुत्व**—सबसे अल्प भवनवासी देव पूर्व और पश्चिम मे हैं, क्योकि इन दोनो दिशाओ मे उनके भवन थोडे है। इनकी अपेक्षा उत्तर मे असख्यातगुणे अधिक है, क्योकि स्वस्थान होने से वहाँ भवन बहुत है। दक्षिणदिशा मे इनसे भी असख्यातगुणे है, क्योकि वहाँ प्रत्येक निकाय के चार-चार लाख भवन अधिक है तथा बहुत-से कृष्णपाक्षिक इसी दिशा मे उत्पन्न होते है, अत वे असख्यातगुणे अधिक हैं।

(१५) **वाणव्यन्तर देवो का अल्पबहुत्व**—जहाँ पोले स्थान है, वही प्राय व्यन्तरो का सचार होता है, पूर्वदिशा मे ठोस स्थान अधिक है, इस कारण वहाँ व्यन्तर थोडे ही है। पश्चिमदिशा मे उनसे विशेषाधिक हैं, क्योकि वहाँ अधोलौकिक ग्रामो मे पोल अधिक है, उनकी अपेक्षा उत्तरदिशा मे विशेषाधिक है, क्योकि वहाँ उनके स्वस्थान होने से नगरावासो की बहुलता है। उत्तर की अपेक्षा दक्षिण मे विशेषाधिक है, क्योकि दक्षिणदिशा मे उनके नगरावास अत्यधिक है।

(१६) **ज्योतिष्क देवो का अल्पबहुत्व**—सबसे कम ज्योतिष्क देव पूर्व एव पश्चिम दिशाओ मे होते है, क्योकि इन दोनो दिशाओ मे चन्द्र और सूर्य के उद्यान जैसे द्वीपो मे ज्योतिष्क देव अल्प ही होते है। दक्षिण मे उनकी अपेक्षा विशेषाधिक है, क्योकि दक्षिण मे उनके विमान अधिक है और कृष्णपाक्षिक दक्षिणदिशा मे ही होते हैं। उत्तरदिशा मे उनसे भी विशेषाधिक है, क्योकि उत्तर मे मानससरोवर मे ज्योतिष्क देवो के क्रीडास्थल बहुत है। क्रीडारत होने के कारण वहाँ ज्योतिष्क देव सदैव रहते है। मानससरोवर के मत्स्य आदि जलचरो को अपने निकटवर्ती विमानो को देख कर जातिस्मरणज्ञान उत्पन्न होता है, जिससे वे किंचित् व्रत अगीकार कर अशनादि का त्याग करके निदान के कारण वहाँ उत्पन्न होते है। इस कारण उत्तर मे दक्षिण की अपेक्षा ज्योतिष्क देव विशेषाधिक है।

(१७) **सौधर्म आदि वैमानिक देवो का अल्पबहुत्व**—वैमानिक देव सौधर्मकल्प मे सबसे कम पूर्व और पश्चिम मे है, क्योकि आवलिकाप्रविष्ट विमान तो चारो दिशाओ मे समान है, किन्तु बहुसख्यक और असख्यातयोजन-विस्तृत पुष्पावकीर्ण विमान दक्षिण और उत्तर मे ही है, पूर्व और पश्चिम मे नही। इसी कारण पूर्व और पश्चिम मे सबसे कम वैमानिक देव है। इनकी अपेक्षा उत्तर मे वे असख्यातगुणे अधिक हैं, क्योकि उत्तर मे असख्यात योजन-विस्तृत पुष्पावकीर्ण विमान बहुत है

और उनसे भी विशेषाधिक है, क्योकि कृष्णपाक्षिको का वहाँ अधिकतर गमन होता है। ईशान, सनत्कुमार एव माहेन्द्र कल्प के देवो का भी दिशा की अपेक्षा से अल्पबहुत्व इसी प्रकार है और उनका कारण भी पूर्ववत् ही समझ लेना चाहिए। ब्रह्मलोककल्प के देव सबसे कम पूर्व, पश्चिम और उत्तर दिशा मे है, क्योकि बहुसख्यक कृष्णपाक्षिक दक्षिणदिशा मे उत्पन्न होते है और शुक्लपाक्षिक थोडे ही होते है। दक्षिणदिशा मे उनकी अपेक्षा असख्यातगुणे देव हैं, क्योकि वहाँ बहुत कृष्णपाक्षिक उत्पन्न होते है। इसी प्रकार लान्तक, महाशुक्र एव सहस्रार कल्प के देवो का (दिशाओ की अपेक्षा) अल्पबहुत्व एव कारण पूर्ववत् समझ लेना चाहिए। सहस्रारकल्प के बाद ऊपर के कल्पो के तथा नौ ग्रैवेयक एव पाच अनुत्तर विमानो के देव चारो दिशाओ मे समान है, क्योकि वहाँ मनुष्य ही उत्पन्न होते हैं।

(१८) **सिद्धजीवो का अल्पबहुत्व**—सबसे अल्प सिद्ध दक्षिण और उत्तर मे है, क्योकि मनुष्य ही सिद्ध होते है, अन्य जीव नही। सिद्ध होने वाले मनुष्य चरम समय मे जिन आकाश प्रदेशो मे अवगाढ (स्थित) होते है, उन्ही आकाशप्रदेशो की दिशा मे ऊपर जाते है, उसी सीध मे ऊपर जाकर वे लोकाग्र मे स्थित हो जाते है। दक्षिणदिशा मे पाच भरतक्षेत्रो मे तथा उत्तर मे पाच ऐरावत क्षेत्रो मे मनुष्य अल्प हैं, क्योकि सिद्धक्षेत्र अल्प है। फिर सुषम-सुषमा आदि आरो मे सिद्धि प्राप्त नही होती। इस कारण दक्षिण और उत्तर मे सिद्ध सबसे कम है। पूर्वदिशा मे उनसे असख्यातगुणे है, क्योकि भरत और ऐरावत क्षेत्र की अपेक्षा पूर्वविदेह सख्यातगुणा विस्तृत है, इसलिए वहाँ मनुष्य भी सख्यातगुणे हैं और वहाँ से सर्वकाल मे सिद्धि होती रहती है। उनसे भी पश्चिम दिशा मे विशेषाधिक है, क्योकि अधोलौकिक ग्रामो मे मनुष्यो की अधिकता है।[1]

द्वितीय गतिद्वार : पाच या आठ गतियो की अपेक्षा जीवो का अल्पबहुत्व—

२२५ एएसि ण भते! नेरइयाण तिरिक्खजोणियाण मणुस्साण देवाण सिद्धाण य पचगति[2] समासेण कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा! सव्वत्थोवा मणुस्सा १, नेरइया असखेज्जगुणा २, देवा असंखेज्जगुणा ३, सिद्धा अणतगुणा ४, तिरिक्खजोणिया अणंतगुणा ५।

[२२५ प्र] भगवन्! नारको, तिर्यंचो, मनुष्यो, देवो और सिद्धो की पाच गतियो की अपेक्षा से सक्षेप मे कौन किनसे अल्प हैं, बहुत है, तुल्य है अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२२५ उ] गौतम! १ सबसे थोडे मनुष्य हैं, २ (उनसे) नैरयिक असख्यातगुणे हैं, ३. (उनसे) देव असख्यातगुणे है, ४ उनसे सिद्ध अनन्तगुणे है और ५ (उनसे भी) तिर्यंचयोनिक जीव अनन्तगुणे हैं।

२२६. एतेसि ण भते! नेरइयाण तिरिक्खजोणियाण तिरिक्खजोणिणीण मणुस्साण मणुस्सीण देवाण देवीण सिद्धाण य[3] अट्ठगति[3] समासेण कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

---

१ प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक ११६ से ११९ तक

२ 'पचगति अणुवाएण समासेण' यह पाठान्तर मिलता है। —स

३ 'अट्ठगति अणुवाएण समासेण' यह पाठान्तर मिलता है। —स

गोयमा ! सव्वत्थोवाओ मणुस्सीओ १, मणुस्सा असखेज्जगुणा २, नेरइया असखेज्जगुणा ३, तिरिक्खजोणिणीओ असखेज्जगुणाओ ४, देवा असखेज्जगुणा ५, देवीओ सखेज्जगुणाओ ६, सिद्धा अणतगुणा ७, तिरिक्खजोणिया अणतगुणा ८। दार २॥

[२२६ प्र.] भगवन् ! इन नैरयिको, तिर्यंचो, तिर्यंचिनियो, मनुष्यो, मनुष्यस्त्रियो, देवो, देवियो और सिद्धो का आठ गतियो की अपेक्षा से, सक्षेप मे, कौन किनसे अल्प है, बहुत है, तुल्य है अथवा विशेषाधिक है ?

[२२६ उ] गौतम ! १ सबसे कम मानुषी (मनुष्यस्त्री) है, २ (उनसे) मनुष्य असख्यातगुणे हैं, ३ (उनसे) नैरयिक असख्यातगुणे है, ४ (उनसे) तिर्यञ्चिनिया असख्यातगुणी है, ५ (उनसे) देव असख्यातगुणे है, ६ (उनसे) देविया सख्यातगुणी है, ७ (उनसे) सिद्ध अनन्तगुणे हैं, और ८ (उनसे भी) तिर्यंचयोनिक अनन्तगुणे हैं ।　　　　द्वितीय द्वार ॥२॥

विवेचन—द्वितीय गतिद्वार—पाच या आठ गतियो की अपेक्षा जीवो का अल्पबहुत्व—प्रस्तुत दो सूत्रो (सू २२५-२२६) मे नरक, तिर्यंच, मनुष्य, देव और सिद्धि, इन पाच गतियो की अपेक्षा से तथा नारक, तिर्यंच, तिर्यंचनी, मनुष्य, मानुषी, देव, देवी और सिद्ध, इन आठ गतियो की अपेक्षा से जीवो के अल्पबहुत्व का निरूपण किया गया है ।

पांच गतियो की अपेक्षा से अल्पबहुत्व—गतियो की अपेक्षा से सबसे थोडे मनुष्य है, क्योकि वे ९६ छेदनक-छेदराशिप्रमाण ही है । उनके नैरयिक असख्यातगुणे है, क्योकि वे अगुलप्रमाण क्षेत्र के प्रदेशो की राशि के प्रथम वर्गमूल का द्वितीय वर्गमूल से गुणाकार करने पर जो प्रदेशराशि होती है, उतनी ही घनीकृतलोक की एकप्रादेशिकी श्रेणियो मे जितने आकाशप्रदेश होते है, उतना ही नारको का प्रमाण है । नैरयिको की अपेक्षा देव असंख्यातगुणे हैं, क्योकि व्यन्तर और ज्योतिष्क देव प्रतर की असख्यातभागवर्ती श्रेणियो के आकाशप्रदेशो की राशि के तुल्य हैं । सिद्ध उनसे भी अनन्तगुणे हैं, क्योकि वे अभव्यो से अनन्तगुणे है । सिद्धो से तिर्यञ्च अनन्तगुणे है, क्योकि अकेले वनस्पतिकायिक जीव ही सिद्धो से अनन्तगुणे है ।[1]

आठ बोलो की अपेक्षा से अल्पबहुत्व—पाच गतियो के ही अवान्तर भेद करके प्रस्तुत आठ गतिया बता कर उनकी दृष्टि से अल्पबहुत्व का निरूपण करते हैं—सबसे कम मानुषी (मनुष्यस्त्रिया) हैं, क्योकि उनकी सख्या सख्यातकोटाकोटी प्रमाण है । उनसे मनुष्य असख्यातगुणे अधिक हैं, क्योकि इनमे वेद की विवक्षा न करने से सम्मूर्च्छिम मनुष्यो का भी समावेश हो जाता है और सम्मूर्च्छनज मनुष्य उच्चार, प्रस्रवण, वमन आदि से लेकर नगर की नालियो (मोरियो) आदि (१४ स्थानो) मे असख्येय उत्पन्न होते हैं । मनुष्यो की अपेक्षा नारक असख्यातगुणे है, क्योकि मनुष्य उत्कृष्ट सख्या मे श्रेणी के असख्यातवे भागगत प्रदेशो की राशि प्रमाण पाए जाते हैं, जबकि नारक अगुलमात्र क्षेत्र के प्रदेशो की राशिवर्ती तृतीय वर्गमूल से गुणित प्रथम वर्गमूलप्रमाण-श्रेणिगत आकाशप्रदेशो की राशि के बराबर है । अत वे उनसे असख्यातगुणे है । नारको से तिर्यंचिनी असख्यातगुणी है, क्योकि वे प्रतरासख्येय भाग मे रहे हुए असख्यातश्रेणियो के आकाशप्रदेशो के समान हैं । देव इनसे भी असख्यातगुणे है, क्योकि वे असख्येयगुणप्रतर के असख्येयभागवर्ती असख्येय श्रेणिगतप्रदेशो की राशि-

---

१ प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक ११९

प्रमाण है। देवो की अपेक्षा देविया सख्येयगुणी अधिक है, क्योकि वे देवो से बत्तीसगुणी हे। देवियो की अपेक्षा सिद्ध अनन्तगुणे है और सिद्धो से तिर्यञ्च अनन्तगुणे अधिक है। इनकी अधिकता का कारण पहले बताया जा चुका है।[1]

तृतीय इन्द्रियद्वार : इन्द्रियो की अपेक्षा से जीवो का अल्पबहुत्व—

२२७ एतेसि ण भते ! सइंदियाण एगिंदियाण बेइंदियाण तेइंदियाण चउरिंदियाण पचेंदियाण अणिंदियाण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा पचेंदिया १, चउरिंदिया विसेसाहिया २, तेइंदिया विसेसाहिया ३, बेइंदिया विसेसाहिया ४, अणिंदिया अणतगुणा ५, एगिंदिया अणतगुणा ६, सइंदिया विसेसाहिया ७।

[२२७ प्र] भगवन् ! इन इन्द्रिययुक्त, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पचेन्द्रिय और अनिन्द्रियो मे कौन किन से अल्प, बहुत, तुल्य और विशेषाधिक है ?

[२२७ उ] गौतम ! १ सबसे थोडे पचेन्द्रिय जीव है, २ (उन से) चतुरिन्द्रिय जीव विशेषाधिक है, ३ (उनसे) त्रीन्द्रिय जीव विशेषाधिक है, ४ (उनसे) द्वीन्द्रिय जीव विशेषाधिक है, ५ (उनसे) अनिन्द्रिय जीव अनन्तगुणे हैं, ६ (उनसे) एकेन्द्रिय जीव अनन्तगुणे है और ७ उनसे इन्द्रियसहित जीव विशेषाधिक है।

२२८. एतेसि ण भते ! सइंदियाण एगिंदियाण बेइंदियाण तेइंदियाण चउरिंदियाण पचेंदियाण अपज्जत्तगाण कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा पचेंदिया अपज्जत्तगा १, चउरिंदिया अपज्जत्तया विसेसाहिया २, तेइंदिया अपज्जत्तया विसेसाहिया ३, बेइंदिया अपज्जत्तया विसेसाहिया ४, एगिंदिया अपज्जत्तया अणतगुणा ५, सइंदिया अपज्जत्तया विसेसाहिया ६।

[२२८ प्र] भगवन् ! इन इन्द्रियसहित, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्तको मे कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[२२८ उ] गौतम ! १ सबसे थोडे पचेन्द्रिय अपर्याप्तक हैं, २ (उनसे) चतुरिन्द्रिय अपर्याप्तक विशेषाधिक है, ३ (उनसे) त्रीन्द्रिय अपर्याप्तक विशेषाधिक है, ४. (उनसे) द्वीन्द्रिय अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ५ (उनसे) एकेन्द्रिय अपर्याप्तक अनन्तगुणे है और ६. (उनसे भी) इन्द्रियसहित अपर्याप्तक जीव विशेषाधिक हैं।

२२९. एतेसि ण भते ! सइंदियाण एगिंदियाण बेइंदियाण तेइंदियाण चउरिंदियाण पचेंदियाण पज्जत्तयाण कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाधिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा चउरिंदिया पज्जत्तगा १, पचेंदिया पज्जत्तगा विसेसाहिया २, बेंदिया पज्जत्तगा विसेसाहिया ३, तेंदिया पज्जत्तगा विसेसाहिया ४, एगिंदिया पज्जत्तगा अणतगुणा ५, सइंदिया पज्जत्तगा विसेसाहिया ६।

---

१ प्रज्ञापनासूत्र, मलय वृत्ति, पत्राक १२०

गोयमा ! सव्वत्थोवाओ मणुस्सीओ १, मणुस्सा असखेज्जगुणा २, नेरइया असखेज्जगुणा ३, तिरिक्खजोणिणीओ असखेज्जगुणाओ ४, देवा असखेज्जगुणा ५, देवीओ सखेज्जगुणाओ ६, सिद्धा अणतगुणा ७, तिरिक्खजोणिया अणतगुणा ८ । दार २ ॥

[२२६ प्र.] भगवन् ! इन नैरयिको, तिर्यचो, तिर्यंचिनियो, मनुष्यो, मनुष्यस्त्रियो, देवो, देवियो और सिद्धो का आठ गतियो की अपेक्षा से, सक्षेप मे, कौन किनसे अल्प हैं, बहुत हैं, तुल्य हैं अथवा विशेषाधिक है ?

[२२६ उ.] गौतम ! १ सबसे कम मानुषी (मनुष्यस्त्री) है, २ (उनसे) मनुष्य असख्यातगुणे है, ३ (उनसे) नैरयिक असख्यातगुणे है, ४ (उनसे) तिर्यञ्चिनिया असख्यातगुणी हैं, ५ (उनसे) देव असख्यातगुणे हैं, ६ (उनसे) देविया सख्यातगुणी है, ७ (उनसे) सिद्ध अनन्तगुणे है, और ८ (उनसे भी) तिर्यंचयोनिक अनन्तगुणे है । द्वितीय द्वार ॥२॥

विवेचन—द्वितीय गतिद्वार—पांच या आठ गतियो की अपेक्षा जीवो का अल्पबहुत्व—प्रस्तुत दो सूत्रो (सू २२५-२२६) मे नरक, तिर्यच, मनुष्य, देव और सिद्धि, इन पाच गतियो की अपेक्षा से तथा नारक, तिर्यंच, तिर्यंचनी, मनुष्य, मानुषी, देव, देवी और सिद्ध, इन आठ गतियो की अपेक्षा से जीवो के अल्पबहुत्व का निरूपण किया गया है ।

पांच गतियो की अपेक्षा से अल्पबहुत्व—गतियो की अपेक्षा से सबसे थोडे मनुष्य हैं, क्योकि वे ९६ छेदनक-छेद्यराशिप्रमाण ही है । उनके नैरयिक असख्यातगुणे है, क्योकि वे अगुलप्रमाण क्षेत्र के प्रदेशो की राशि के प्रथम वर्गमूल का द्वितीय वर्गमूल से गुणाकार करने पर जो प्रदेशराशि होती है, उतनी ही घनीकृतलोक की एकप्रादेशिकी श्रेणियो मे जितने आकाशप्रदेश होते है, उतना ही नारको का प्रमाण है । नैरयिको की अपेक्षा देव असख्यातगुणे हैं, क्योकि व्यन्तर और ज्योतिष्क देव प्रतर की असख्यातभागवर्ती श्रेणियो के आकाशप्रदेशो की राशि के तुल्य हैं । सिद्ध उनसे भी अनन्तगुणे है, क्योकि वे अभव्यो से अनन्तगुणे है । सिद्धो से तिर्यञ्च अनन्तगुणे हैं, क्योकि अकेले वनस्पतिकायिक जीव ही सिद्धो से अनन्तगुणे है ।[1]

आठ बोलो की अपेक्षा से अल्पबहुत्व—पाच गतियो के ही अवान्तर भेद करके प्रस्तुत आठ गतियां बता कर उनकी दृष्टि से अल्पबहुत्व का निरूपण करते है—सबसे कम मानुषी (मनुष्यस्त्रिया) हैं, क्योकि उनकी सख्या सख्यातकोटाकोटी प्रमाण है । उनसे मनुष्य असख्यातगुणे अधिक हैं, क्योकि इनमे वेद की विवक्षा न करने से सम्मूर्च्छिम मनुष्यो का भी समावेश हो जाता है और सम्मूर्च्छनज मनुष्य उच्चार, प्रस्रवण, वमन आदि से लेकर नगर की नालियो (मोरियो) आदि (१४ स्थानो) मे असख्येय उत्पन्न होते हैं । मनुष्यो की अपेक्षा नारक असख्यातगुणे है, क्योकि मनुष्य उत्कृष्ट सख्या मे श्रेणी के असख्यातवे भागगत प्रदेशो की राशि प्रमाण पाए जाते है, जबकि नारक अगुलमात्र क्षेत्र के प्रदेशो की राशिवर्ती तृतीय वर्गमूल से गुणित प्रथम वर्गमूलप्रमाण-श्रेणिगत आकाशप्रदेशो की राशि के बराबर है । अत वे उनसे असख्यातगुणे है । नारको से तिर्यंचिनी असख्यातगुणी है, क्योकि वे प्रतरासख्येय भाग मे रहे हुए असख्यातश्रेणियो के आकाशप्रदेशो के समान है । देव इनसे भी असख्यातगुणे हैं, क्योकि वे असख्येयगुणप्रतर के असख्येयभागवर्ती असख्येय श्रेणिगतप्रदेशो की राशि-

---

१ प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक ११९

प्रमाण है। देवो की अपेक्षा देविया सख्येयगुणी अधिक है, क्योकि वे देवो से वत्तीसगुणी ह। देवियो की अपेक्षा सिद्ध अनन्तगुणे है और सिद्धो से तिर्यञ्च अनन्तगुणे अधिक है। इनकी अधिकता का कारण पहले बताया जा चुका है।[1]

तृतीय इन्द्रियद्वार : इन्द्रियो की अपेक्षा से जीवो का अल्पबहुत्व—

२२७ एतेसि ण भते ! सइंदियाण एगिंदियाण बेइंदियाण तेइंदियाण चउरिंदियाण पचेंदियाण अणिंदियाण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा पचेंदिया १, चउरिंदिया विसेसाहिया २, तेइंदिया विसेसाहिया ३, बेइंदिया विसेसाहिया ४, अणिंदिया अणंतगुणा ५, एगिंदिया अणतगुणा ६, सइंदिया विसेसाहिया ७।

[२२७ प्र] भगवन् ! इन इन्द्रिययुक्त, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पचेन्द्रिय और अनिन्द्रियो मे कौन किन से अल्प, बहुत, तुल्य और विशेषाधिक है ?

[२२७ उ] गौतम ! १ सबसे थोडे पचेन्द्रिय जीव है, २ (उन से) चतुरिन्द्रिय जीव विशेषाधिक है, ३ (उनसे) त्रीन्द्रिय जीव विशेषाधिक है, ४ (उनसे) द्वीन्द्रिय जीव विशेषाधिक है, ५ (उनसे) अनिन्द्रिय जीव अनन्तगुणे है, ६ (उनसे) एकेन्द्रिय जीव अनन्तगुणे है और ७ उनसे इन्द्रियसहित जीव विशेषाधिक हैं।

२२८. एतेसि ण भते ! सइंदियाण एगिंदियाण बेइंदियाण तेइंदियाण चउरिंदियाण पचेंदियाण अपज्जत्तगाण कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा पचेंदिया अपज्जत्तगा १, चउरिंदिया अपज्जत्तया विसेसाहिया २, तेइंदिया अपज्जत्तया विसेसाहिया ३, बेइंदिया अपज्जत्तया विसेसाहिया ४, एगिंदिया अपज्जत्तया अणतगुणा ५, सइंदिया अपज्जत्तया विसेसाहिया ६।

[२२८ प्र] भगवन् ! इन इन्द्रियसहित, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्तको मे कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[२२८ उ] गौतम ! १ सबसे थोडे पचेन्द्रिय अपर्याप्तक हैं, २ (उनसे) चतुरिन्द्रिय अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ३ (उनसे) त्रीन्द्रिय अपर्याप्तक विशेषाधिक है, ४. (उनसे) द्वीन्द्रिय अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ५ (उनसे) एकेन्द्रिय अपर्याप्तक अनन्तगुणे हैं और ६. (उनसे भी) इन्द्रियसहित अपर्याप्तक जीव विशेषाधिक हैं।

२२९. एतेसि ण भते ! सइंदियाण एगिंदियाण बेइंदियाण तेइंदियाण चउरिंदियाण पचेंदियाण पज्जत्तयाण कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा चउरिंदिया पज्जत्तगा १, पचेंदिया पज्जत्तगा विसेसाहिया २, बेंदिया पज्जत्तगा विसेसाहिया ३, तेंदिया पज्जत्तगा विसेसाहिया ४, एगिंदिया पज्जत्तगा अणतगुणा ५, सइंदिया पज्जत्तगा विसेसाहिया ६।

---

१ प्रज्ञापनासूत्र, मलय वृत्ति, पत्राक १२०

[२२९ प्र] भगवन्! इन इन्द्रियसहित, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्तक जीवों में कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है?

[२२९ उ] गौतम! १ सबसे कम चतुरिन्द्रिय पर्याप्तक जीव हैं, २ (उनसे) पंचेन्द्रिय पर्याप्तक जीव विशेषाधिक है, ३ (उनसे) द्वीन्द्रिय पर्याप्तक विशेषाधिक है, ४ (उनसे) त्रीन्द्रिय पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ५, (उनसे) एकेन्द्रिय पर्याप्तक अनन्तगुणे है और ६ उनमें भी इन्द्रियसहित पर्याप्तक जीव विशेषाधिक है।

२३० [१] एतेसि णं भंते! सइंदियाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवा सइंदिया अपज्जत्तगा, सइंदिया पज्जत्तगा संखेज्जगुणा।

[२३०-१ प्र] भगवन्! इन्द्रिययुक्त (सेन्द्रिय) पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों में कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है?

[२३०-१ उ] गौतम! सबसे थोड़े सेन्द्रिय अपर्याप्तक है, (उनसे) सेन्द्रिय पर्याप्तक जीव संख्यातगुणे है।

[२] एतेसि णं भंते! एगिंदियाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवा एगिंदिया अपज्जत्तगा, एगिंदिया पज्जत्तगा संखेज्जगुणा।

[२३०-२ प्र] भगवन्! इन एकेन्द्रिय पर्याप्तक और अपर्याप्तक जीवों में कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं?

[२३०-२ उ] गौतम! सबसे अल्प एकेन्द्रिय अपर्याप्तक है, (उनसे) एकेन्द्रिय पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं।

[३] एतेसि णं भंते! बेंदियाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवा बेंदिया पज्जत्तगा, बेंदिया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा।

[२३०-३ प्र] भगवन्! इन पर्याप्तक और अपर्याप्तक द्वीन्द्रिय जीवों में कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं?

[२३०-३ उ.] गौतम! सबसे कम द्वीन्द्रिय पर्याप्तक है, (उनसे) द्वीन्द्रिय अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं।

[४] एतेसि णं भंते! तेइंदियाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवा तेंदिया पज्जत्तगा, तेंदिया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा।

[२३०-४ प्र.] भगवन् ! इन त्रीन्द्रिय पर्याप्तक और अपर्याप्तक जीवो कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[२३०-४ उ] गौतम ! सबसे थोडे त्रीन्द्रिय पर्याप्तक है, (उनसे) त्रीन्द्रिय अपर्याप्तक असख्यातगुणे है ।

[५] एतेसि ण भते ! चउरिंदियाण पज्जत्ताऽपज्जत्ताण कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा चउरिंदिया पज्जत्तगा, चउरिंदिया अपज्जत्तगा असखेज्जगुणा ।

[२३०-५ प्र] भगवन् ! इन चतुरिन्द्रिय पर्याप्तक और अपर्याप्तक जीवो मे कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[२३०-५ उ] गौतम ! सबसे थोडे चतुरिन्द्रिय पर्याप्तक है, (उनसे) चतुरिन्द्रिय अपर्याप्तक असख्यातगुणे हैं ।

[६] एएसि ण भते ! पचेंदियाण पज्जत्ताऽपज्जत्ताण कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा पचेंदिया पज्जत्तगा, पचेंदिया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ।

[२३०-६ प्र] भगवन् ! इन पर्याप्तक और अपर्याप्तक पचेन्द्रिय जीवो मे कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[२३०-६ उ] गौतम ! सबसे अल्प पर्याप्तक पचेन्द्रिय जीव है, उनसे अपर्याप्तक पचेन्द्रिय जीव असख्यातगुणे हैं ।

२३१ एएसि ण भते ! सइंदियाण एगिंदियाण बेंदियाण तेंदियाण चउरिंदियाणं पचेंदियाण पज्जत्ताऽपज्जत्ताण कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा चउरिंदिया पज्जत्तगा १, पचेंदिया पज्जत्तगा विसेसाहिया २, बेंदिया पज्जत्तगा विसेसाहिया ३, तेइंदिया पज्जत्तगा विसेसाहिया ४, पचेंदिया अपज्जत्तगा असखेज्जगुणा ५, चउरिंदिया अपज्जत्तगा विसेसाहिया ६, तेइंदिया अपज्जत्तगा विसेसाहिया ७, बेंदिया अपज्जत्तगा विसेसाहिया ८, एगेंदिया अपज्जत्तगा अणतगुणा ९, सइंदिया अपज्जत्तगा विसेसाहिया १०, एगिंदिया पज्जत्तगा सखेज्जगुणा ११, सइंदिया पज्जत्तगा विसेसाहिया १२, सइंदिया विसेसाहिया १३ । दार ३ ॥

[२३१ प्र] भगवन् ! इन सेन्द्रिय, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पचेन्द्रिय के पर्याप्तक और अपर्याप्तक जीवो मे कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२३१ उ] गौतम ! १ सबसे अल्प चतुरिन्द्रिय पर्याप्तक हैं । २ (उनसे) पचेन्द्रिय पर्याप्तक विशेषाधिक हैं । ३ (उनसे) द्वीन्द्रिय पर्याप्तक विशेषाधिक है । ४ (उनसे) त्रीन्द्रिय पर्याप्तक विशेषाधिक है । ५ (उनसे) पचेन्द्रिय अपर्याप्तक असख्यातगुणे है । ६ (उनसे) चतुरिन्द्रिय

अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं। ७ (उनसे) त्रीन्द्रिय अपर्याप्तक विशेषाधिक है। ८ (उनसे) द्वीन्द्रिय अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं। ९ (उनसे) एकेन्द्रिय अपर्याप्तक अनन्तगुणे है। १० (उनसे) सेन्द्रिय अपर्याप्तक विशेषाधिक है। ११ (उनसे) एकेन्द्रिय पर्याप्तक सख्यातगुणे है १२ (और उनसे) सेन्द्रिय पर्याप्तक विशेषाधिक है १३ (तथा उनसे भी) सेन्द्रिय (इन्द्रियवान्) विशेपाधिक है।

तृतीय द्वार ॥३॥

विवेचन—तृतीय इन्द्रियद्वार इन्द्रियो की अपेक्षा से जीवो का अल्पबहुत्व—प्रस्तुत पाच सूत्रो (सू २२७ से २३१ तक) मे इन्द्रियो की अपेक्षा से सेन्द्रिय, अनिन्द्रिय तथा एकेन्द्रिय से लेकर पचेन्द्रिय जीवो तक के अल्पबहुत्व की प्ररूपणा विभिन्न पहलुओ से की गई है।

(१) सेन्द्रिय-अनिन्द्रिय तथा एकेन्द्रिय से पचेन्द्रिय तक के जीवो का अल्पबहुत्व—सबसे कम पचेन्द्रिय (पाचो इन्द्रियो वाले नारक, तिर्यंच, मनुष्य और देव) जीव है, क्योकि वे सख्यात कोटाकोटी-योजनप्रमाण विष्कम्भसूची से प्रमित प्रतर के असख्येयभागवर्ती असख्येय श्रेणीगत आकाश-प्रदेशो की राशि-प्रमाण है। उनसे विशेषाधिक चार इन्द्रियो वाले भ्रमर आदि चतुरिन्द्रिय जीव हैं, क्योकि वे विष्कम्भसूची के प्रचुर सख्येयकोटाकोटीयोजनप्रमाण है। उनसे त्रीन्द्रिय (चीटी आदि तीन इन्द्रियो वाले) जीव विशेषाधिक है, क्योकि वे विष्कम्भसूची से प्रचुरतर सख्यातकोटाकोटी-योजनप्रमाण है। द्वीन्द्रिय (शख आदि दो इन्द्रियो वाले) जीव उनकी अपेक्षा विशेषाधिक है, क्योकि वे विष्कम्भसूची के प्रचुरतम सख्येयकोटाकोटीयोजनप्रमाण है। द्वीन्द्रियो से अनिन्द्रिय (सिद्ध) जीव अनन्तगुणे है, क्योकि वे अनन्त है। अनिन्द्रियो से एकेन्द्रिय जीव अनन्तगुणे है, क्योकि अकेले वनस्पतिकायिक जीव सिद्धो से अनन्तगुणे अधिक है। एकेन्द्रिय जीवो से भी सेन्द्रिय (सभी इन्द्रियो वाले) जीव विशेषाधिक है, क्योकि द्वीन्द्रिय आदि सभी जीवो का उसमे समावेश हो जाता है। यह समुच्चय जीवो का अल्पबहुत्व हुआ।

(२) अपर्याप्त समुच्चय जीवो का अल्पबहुत्व—अपर्याप्त पचेन्द्रिय जीव सबसे थोडे हैं, क्योकि वे एक प्रतर मे जितने भी अगुल के असख्यात भागमात्र खण्ड होते हैं, उतने ही है। उनसे चतुरिन्द्रिय अपर्याप्त विशेषाधिक इसलिए है कि वे प्रचुर अगुल के असख्यातभाग खण्डप्रमाण हैं। उनसे त्रीन्द्रिय अपर्याप्त विशेषाधिक है, क्योकि वे प्रचुरतरप्रतरागुल के असख्येयभागखण्डप्रमाण है। द्वीन्द्रिय अपर्याप्त उनसे विशेषाधिक है, क्योकि वे प्रचुरतम प्रतरागुल के असख्यातभागखण्ड-प्रमाण है। एकेन्द्रिय अपर्याप्त उनसे अनन्तगुणे है, क्योकि अपर्याप्त वनस्पतिकायिक सदैव अनन्त पाए जाते है। इनसे विशेषाधिक सेन्द्रिय अपर्याप्त जीव है, क्योकि सेन्द्रिय सामान्य जीवो मे एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय आदि सभी इन्द्रियवान् जीवो का समावेश हो जाता है।

(३) पर्याप्तक जीवो का अल्पबहुत्व—चतुरिन्द्रिय पर्याप्तक जीव सबसे अल्प है, क्योकि चतुरिन्द्रिय जीवो की आयु बहुत अल्प होती है, इसलिए अधिक काल तक न रहने से वे प्रश्न के समय थोडे ही पाए जाते है। उनकी अपेक्षा पचेन्द्रिय-पर्याप्तक विशेषाधिक है, क्योकि वे प्रचुर प्रतरागुल के असख्येयभाग-खण्ड-प्रमाण है। उनसे द्वीन्द्रिय-पर्याप्तक विशेषाधिक है, क्योकि वे प्रचुरतर प्रतरागुल के सख्यातभाग-प्रमाण खण्डो के बराबर हैं। उनकी अपेक्षा त्रीन्द्रिय पर्याप्तक विशेषाधिक होते है, क्योकि वे स्वभावत प्रचुरतम प्रतरागुल के सख्यातभागप्रमाण खण्डो के बराबर है। उनसे अनन्तगुणे एकेन्द्रिय पर्याप्तक हैं, क्योकि अकेले वनस्पतिकायिक जीव अनन्त होते है। सेन्द्रिय-पर्याप्त उनसे भी विशेषाधिक है, क्योकि उनमे पर्याप्तक द्वीन्द्रिय आदि का भी समावेश हो जाता है।

(४) पर्याप्तक-अपर्याप्तक जीवो का अल्पबहुत्व—सबसे कम सेन्द्रिय अपर्याप्तक जीव है, क्योकि, सेन्द्रियो मे सूक्ष्म-एकेन्द्रिय ही सर्वलोकव्याप्त होने के कारण बहुत है, किन्तु उनमे अपर्याप्त सबसे कम होते हैं। उनकी अपेक्षा सेन्द्रिय-पर्याप्त सख्यातगुणे अधिक है। इसी प्रकार एकेन्द्रिय अपर्याप्त सबसे कम और पर्याप्त उनसे सख्यातगुणे अधिक है। द्वीन्द्रियो मे पर्याप्तक सबसे कम है क्योकि वे प्रतरागुल के सख्येयभागमात्रखण्ड-प्रमाण है, जबकि द्वीन्द्रिय-अपर्याप्तक प्रतरवर्ती अगुल के असख्येयभागखण्ड-प्रमाण होते है। इसके पश्चात् त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पचेन्द्रिय जीवो मे प्रत्येक मे पर्याप्तक सबसे कम है, अपर्याप्तक उनसे असख्यातगुणे है, कारण वही पूर्ववत् समझना चाहिए।

(५) समुच्चय मे सेन्द्रिय आदि समुदित पर्याप्त-अपर्याप्त जीवो का अल्पबहुत्व—इनमे सबसे कम चतुरिन्द्रिय पर्याप्तक है, कारण पहले बताया जा चुका है। उनसे पचेन्द्रिय पर्याप्तक, द्वीन्द्रिय पर्याप्तक, त्रीन्द्रिय पर्याप्तक, ये तीनो क्रमश उत्तरोत्तर विशेषाधिक है। उनसे पचेन्द्रिय अपर्याप्त, चतुरिन्द्रिय अपर्याप्त, त्रीन्द्रिय अपर्याप्त एव द्वीन्द्रिय अपर्याप्तक क्रमश उत्तरोत्तर असख्यातगुणे, विशेषाधिक, विशेषाधिक एव विशेषाधिक है। आगे क्रमश एकेन्द्रिय अपर्याप्त उनसे अनन्तगुणे सेन्द्रिय अपर्याप्तक विशेषाधिक, एकेन्द्रिय पर्याप्तक सख्यातगुणे, सेन्द्रिय पर्याप्तक विशेषाधिक तथा सेन्द्रिय जीव इनसे भी विशेषाधिक होते है। इनके अल्पबहुत्व का कारण पूर्ववत् समझ लेना चाहिए।[1]

चतुर्थ कायद्वार : काय की अपेक्षा से सकायिक, अकायिक एवं षट्कायिक जीवो का अल्पबहुत्व—

२३२ एएसि ण भते ! सकाइयाणं पुढविकाइयाण आउकाइयाण तेउकाइयाण वाउकाइयाण वणस्सतिकाइयाण तसकाइयाण अकाइयाण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा तसकाइया १, तेउकाइया असखेज्जगुणा २, पुढविकाइया विसेसाहिया ३, आउकाइया विसेसाहिया ४, वाउकाइया विसेसाहिया ५, अकाइया अणंतगुणा ६, वणस्सइकाइया असंखगुणा ७, सकाइया विसेसाहिया ८।

[२३२ प्र] भगवन् ! इन सकायिक, पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, त्रसकायिक और अकायिक जीवो मे से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[२३२ उ] गौतम ! १ सबसे अल्प त्रसकायिक है, २ (उनसे) तेजस्कायिक असख्यातगुणे है, ३ (उनसे) पृथ्वीकायिक विशेषाधिक हैं, ४ (उनसे) अप्कायिक विशेषाधिक है, ५ (उनसे) वायुकायिक विशेषाधिक हैं, ६ (उनसे) अकायिक अनन्तगुणे है, ७ (उनसे) वनस्पतिकायिक अनन्तगुणे हैं, ८ और (उनसे भी) सकायिक विशेषाधिक है।

२३३. एतेसि ण भते ! सकाइयाण पुढविकाइयाण आउकाइयाणं तेउकाइयाण वाउकाइयाणं वणस्सतिकाइयाणं तसकाइयाण य अपज्जत्तयाण कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

---

१ प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक १२१, १२२

गोयमा ! सव्वत्थोवा तसकाइया अपज्जत्तगा १, तेउकाइया अपज्जत्तगा असखेज्जगुणा २, पुढविकाइया अपज्जत्तगा विसेसाहिया ३, आउकाइया अपज्जत्तगा विसेसाहिया ४, वाउकाइया अपज्जत्तगा विसेसाहिया ५, वणप्फइकाइया अपज्जत्तगा अणतगुणा ६, सकाइया अपज्जत्तगा विसेसाहिया ७ ।

[२३३ प्र] भगवन् ! इन सकायिक, पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक और त्रसकायिक अपर्याप्तको मे से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[२३३ उ] गौतम ! १ सबसे थोडे त्रसकायिक अपर्याप्तक है, २ (उनसे) तेजस्कायिक अपर्याप्तक असख्यातगुणे है, ३ (उनसे) पृथ्वीकायिक अपर्याप्तक विशेषाधिक है, ४ (उनसे) अप्कायिक अपर्याप्तक विशेषाधिक है, ५ (उनसे) वायुकायिक अपर्याप्तक विशेषाधिक है, ६ (उनसे) वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक अनन्तगुणे है, ७ और (उनसे भी) सकायिक अपर्याप्तक विशेषाधिक है ।

२३४ एतेसि ण भते ! सकाइयाण पुढविकाइयाण आउकाइयाण तेउकाइयाण वाउकाइयाण वणस्सइकाइयाण तसकाइयाण य पज्जत्तयाण कतरे कतरेहितो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा तसकाइया पज्जत्तगा १, तेउकाइया पज्जत्तगा असखेज्जगुणा २, पुढविकाइया पज्जत्तगा विसेसाहिया ३, आउकाइया पज्जत्तगा विसेसाहिया ४, वाउकाइया पज्जत्तगा विसेसाहिया ५, वणप्फइकाइया पज्जत्तगा अणतगुणा ६, सकाइया पज्जत्तगा विसेसाहिया ७ ।

[२३४ प्र] भगवन् ! इन सकायिक, पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक और त्रसकायिक पर्याप्तको मे से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[२३४ उ] गौतम ! १ सबसे अल्प त्रसकायिक पर्याप्तक हैं, २ (उनसे) तेजस्कायिक पर्याप्तक असख्यातगुणे है, ३ (उनसे) पृथ्वीकायिक पर्याप्तक विशेषाधिक है, ४ (उनसे) अप्कायिक पर्याप्तक विशेषाधिक है, ५ (उनसे) वायुकायिक पर्याप्तक विशेषाधिक है, ६ (उनसे) वनस्पतिकायिक पर्याप्तक अनन्तगुणे है और ७ (उनसे भी) सकायिक पर्याप्तक विशेषाधिक है ।

२३५ [१] एतेसि ण भते ! सकाइयाण पज्जत्ताऽपज्जत्ताण कतरे कतरेहितो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा सकाइया अपज्जत्तगा, सकाइया पज्जत्तगा सखिज्जगुणा ।

[२३५-१ प्र] भगवन् ! इन पर्याप्त और अपर्याप्त सकायिको मे से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य, अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२३५-१ उ] गौतम ! सबसे थोडे सकायिक अपर्याप्तक हैं, (उनसे) सकायिक पर्याप्तक सख्यातगुणे है ।

[२] एतेसि णं भंते ! पुढविकाइयाण पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा पुढविकाइया अपज्जत्तगा, पुढविकाइया पज्जत्तगा संखेज्जगुणा ।

[२३५-२ प्र] भगवन् ! पर्याप्तक और अपर्याप्तक पृथ्वीकायिको मे से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[२३५-२ उ] गौतम ! सबसे अल्प पृथ्वीकायिक अपर्याप्तक हैं, (उनसे) पृथ्वीकायिक पर्याप्तक सख्यातगुणे है ।

[३] एतेसि ण भंते ! आउकाइयाण पज्जत्ताऽपज्जत्ताण कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा आउकाइया अपज्जत्तगा, आउकाइया पज्जत्तगा संखेज्जगुणा ।

[२३५-३ प्र] भगवन् ! पर्याप्तक और अपर्याप्तक अप्कायिको मे से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[२३५-३ उ] गौतम ! सबसे कम अप्कायिक अपर्याप्तक है, (उनसे) अप्कायिक पर्याप्तक सख्यातगुणे है ।

[४] एतेसि ण भंते ! तेउकाइयाण पज्जत्ताऽपज्जत्ताण कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा तेउकाइया अपज्जत्तगा, तेउक्काइया पज्जत्तगा संखेज्जगुणा ।

[२३५-४ प्र] भगवन् ! तेजस्कायिक पर्याप्तको और अपर्याप्तको मे से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[२३५-४ उ] गौतम ! सबसे कम अपर्याप्तक तेजस्कायिक हैं । (उनसे) पर्याप्तक तेजस्कायिक सख्यातगुणे हैं ।

[५] एतेसि ण भंते ! वाउकाइयाण पज्जत्ताऽपज्जत्ताण कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा वाउकाइया अपज्जत्तगा, वाउकाइया पज्जत्तगा संखेज्जगुणा ।

[२३५-५ प्र] भगवन् ! पर्याप्तक और अपर्याप्तक वायुकायिको मे से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[२३५-५ उ] गौतम ! सबसे अल्प अपर्याप्तक वायुकायिक है, (उनसे) पर्याप्तक वायुकायिक सख्यातगुणे हैं ।

[६] एएसि ण भंते ! वणस्सइकाइयाण पज्जत्ताऽपज्जत्तगाण कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा वणप्फइकाइया अपज्जत्तगा, वणप्फइकाइया पज्जत्तगा संखेज्जगुणा ।

[२३५-६ प्र] भगवन् ! इन पर्याप्तक और अपर्याप्तक वनस्पतिकायिको मे से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[२३५-६ उ] गौतम ! सबसे थोडे अपर्याप्तक वनस्पतिकायिक हे, (उनसे) पर्याप्तक वनस्पतिकायिक सख्यातगुणे है ।

[७] एतेसि ण भते ! तसकाइयाण पज्जत्ताऽपज्जत्ताण कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा तसकाइया पज्जत्तगा, तसकाइया अपज्जत्तगा असखेज्जगुणा ।

[२३५-७ प्र] भगवन् ! इन पर्याप्तक और अपर्याप्तक त्रसकायिको मे से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[२३५-७ उ] गौतम ! सबसे कम पर्याप्तक त्रसकायिक हे, (उनसे) अपर्याप्तक त्रसकायिक असख्यातगुणे है ।

२३६ एतेसि ण भते ! सकाइयाण पुढविकाइयाण आउकाइयाण तेउकाइयाण वाउकाइयाण वणस्सइकाइयाण तसकाइयाण पज्जत्ताऽपज्जत्ताण कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा तसकाइया पज्जत्तगा १, तसकाइया अपज्जत्तगा असखेज्जगुणा २, तेउकाइया अपज्जत्तगा असखेज्जगुणा ३, पुढविकाइया अपज्जत्तगा विसेसाहिया ४, आउकाइया अपज्जत्तगा विसेसाहिया ५, वाउकाइया अपज्जत्तगा विसेसाहिया ६, तेउकाइया पज्जत्तगा सखेज्जगुणा ७, पुढविकाइया पज्जत्तगा विसेसाहिया ८, आउकाइया पज्जत्तगा विसेसाहिया ९, वाउकाइया पज्जत्तगा विसेसाहिया १०, वणस्सइकाइया अपज्जत्तगा अणतगुणा ११, सकाइया अपज्जत्तगा विसेसाहिया १२, वणप्फतिकाइया पज्जत्तगा सखेज्जगुणा १३, सकाइया पज्जत्तगा विसेसाहिया १४, सकाइया विसेसाधिया १५ ।

[२३६ प्र] भगवन् ! इन सकायिक, पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक और त्रसकायिक पर्याप्तक और अपर्याप्तक मे से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[२३६ उ] गौतम ! १ सबसे अल्प त्रसकायिक पर्याप्तक है, २ (उनसे) त्रसकायिक अपर्याप्तक असख्यातगुणे है, ३ (उनसे) तेजस्कायिक अपर्याप्तक असख्यातगुणे है, ४ (उनसे) पृथ्वीकायिक अपर्याप्तक विशेषाधिक है, ५ (उनसे) अप्कायिक अपर्याप्तक विशेषाधिक है ६ (उनसे) वायुकायिक अपर्याप्तक विशेषाधिक है, ७ (उनसे) तेजस्कायिक पर्याप्तक सख्यातगुणे है, ८ (उनसे) पृथ्वीकायिक पर्याप्तक विशेषाधिक है, ९ (उनसे) अप्कायिक पर्याप्तक विशेषाधिक है, १० (उनसे) वायुकायिक पर्याप्तक विशेषाधिक है, ११ (उनसे) वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक अनन्तगुणे है, १२ (उनसे) सकायिक अपर्याप्तक विशेषाधिक है, १३ (उनसे) वनस्पतिकायिक पर्याप्तक सख्यातगुणे है, १४ (उनसे) सकायिक पर्याप्तक विशेषाधिक है, १५ और (उनसे भी) सकायिक विशेषाधिक है ।

विवेचन—चतुर्थ कायद्वार : काय की अपेक्षा से सकायिक, अकायिक एव षट्कायिक जीवो का अल्पबहुत्व—प्रस्तुत पाच सूत्रो (सू २३२ से २३६ तक) मे काय की अपेक्षा षट्कायिक, सकायिक, तथा अकायिक जीवो का समुच्चयरूप मे, इनके अपर्याप्तको तथा पर्याप्तको का एव पृथक्-पृथक् एव समुदित पर्याप्तक, अपर्याप्तक जीवो का अल्पबहुत्व प्रतिपादित किया गया है।

(१) षट्कायिक, सकायिक, अकायिक जीवो का अल्पबहुत्व—सबसे थोडे त्रसकायिक हैं, क्योकि त्रसकायिको मे द्वीन्द्रिय से लेकर पचेन्द्रिय तक के जीव हैं, वे अन्य कायो (पृथ्वीकायादि) की अपेक्षा अल्प हैं। उनसे तेजस्कायिक असख्येयगुणे हैं, क्योकि वे असख्येय लोकाकाश-प्रदेश-प्रमाण हैं। उनसे पृथ्वीकायिक विशेषाधिक है, क्योकि वे प्रचुर असख्येय लोकाकाश-प्रदेश-प्रमाण हैं। उनसे अप्कायिक विशेषाधिक है, क्योकि वे प्रचुरतर असख्येय लोकाकाश-प्रदेश-प्रमाण हैं। उनसे वायुकायिक विशेषाधिक है, क्योकि वे प्रचुरतम असख्येय लोकाकाश-प्रदेश-प्रमाण हैं। उनकी अपेक्षा अकायिक (सिद्ध भगवान्) अनन्तगुणे हैं, क्योकि सिद्ध जीव अनन्त हैं। उनसे वनस्पतिकायिक अनन्तगुणे हैं, क्योकि वे अनन्त लोकाकाशप्रदेशराशि-प्रमाण हैं। उनसे भी सकायिक विशेषाधिक है, क्योकि उनमे पृथ्वीकायिक आदि सभी कायवान् प्राणियो का समावेश हो जाता है।

(२) सकायिक आदि अपर्याप्तको का अल्पबहुत्व—इनमे सबसे अल्प त्रसकायिक अपर्याप्तक से लेकर क्रमश सकायिक अपर्याप्तक पर्यन्तविशेषाधिक है। यहाँ तक के अल्पबहुत्व का स्पष्टीकरण पूर्ववत् समझ लेना चाहिए।

(३) सकायिक आदि पर्याप्तको का अल्पबहुत्व—इनका अल्पबहुत्व भी पूर्ववत् युक्ति से समझ लेना चाहिए।

(४) सकायिकादि प्रत्येक के पर्याप्तक-अपर्याप्तको का अल्पबहुत्व—सबसे थोडे सकायिक अपर्याप्तक हैं, उनसे सकायिक पर्याप्तक सख्येयगुणे है। इसी तरह आगे के सभी सूत्रपाठ सुगम हैं। इन सब मे अपर्याप्तक सबसे थोडे और उनकी अपेक्षा पर्याप्तक सख्यातगुणे बताए गए हैं, इसका कारण यह है कि पर्याप्तको के आश्रय से अपर्याप्तको का उत्पाद होता है। अर्थात् पर्याप्तक अपर्याप्तको के आधारभूत हैं।

(५) समुच्चय मे सकायिक आदि समुदित पर्याप्तकों-अपर्याप्तको का अल्पबहुत्व—इनमे सबसे कम त्रसकायिक पर्याप्तक है, उनसे त्रसकायिक अपर्याप्तक असख्यातगुणे है, क्योकि पर्याप्त द्वीन्द्रियादि से अपर्याप्त द्वीन्द्रियादि असख्यातगुणे अधिक है। उनसे तेजस्कायिक अपर्याप्त असख्येयगुणे हैं, क्योकि वे असख्यात लोकाकाशप्रदेश-प्रमाण है। उनसे पृथ्वीकायिक, अप्कायिक एव वायुकायिक अपर्याप्तक क्रमश विशेषाधिक है। पृथ्वीकाय के अपर्याप्तको की आयु अधिक होने से वे तेजस्कायिक अपर्याप्त से अधिक है। उनसे अप्काय के अपर्याप्तक बहुत अधिक होने से विशेषाधिक है। उनसे वायुकायिक अपर्याप्तक पूर्वोक्त युक्ति से विशेषाधिक है। उनसे पृथ्वीकायिक, अप्कायिक और वायुकायिक पर्याप्तक क्रमश विशेषाधिक हैं, क्योकि अपर्याप्तको की अपेक्षा पर्याप्तक विशेषाधिक होते हैं। आगे वनस्पति काय के अपर्याप्तक अनन्तगुणे पर्याप्तक सख्यातगुणे तथा सकायिक पर्याप्त उनसे सख्यातगुणे है। इसका कारण पहले बता चुके है।[1] यद्यपि इस सूत्र (सू २३६) के अल्पबहुत्व मे १५ पद हैं, जिनका उल्लेख अन्य प्रतियो मे है, किन्तु वृत्तिकार ने प्रज्ञापनावृत्ति मे केवल १२ पदो का ही निर्देश किया है। अत.

१ प्रज्ञापना मलय वृत्ति, पत्राक १२३

प्रज्ञापनासूत्र (मूलपाठ-टिप्पणसहित) मे अन्य प्रतियो के अनुसार तीन पद अधिक अकित किये गए हैं—यथा १३ सकायिक अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, १४ (उनसे) सकायिक पर्याप्तक (वीच मे वनस्पति कायिक पर्याप्तक सख्यातगुणे हैं के पश्चात्) विशेषाधिक है, तथा १५ सकायिक विशेषाधिक हैं।[1]

कायद्वार के अन्तर्गत सूक्ष्म-बादरकायद्वार—

२३७ एतेसि ण भते ! सुहुमाण सुहुमपुढविकाइयाण सुहुमआउकाइयाण सुहुमतेउक्काइयाण सुहुमवाउकाइयाण सुहुमवणप्फइकाइयाण सुहुमणिओयाण य कतरे कतरेहितो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा सुहुमतेउकाइया १, सुहुमपुढविकाइया विसेसाहिया २, सुहुमआउकाइया विसेसाहिया ३, सुहुमवाउकाइया विसेसाहिया ४, सुहुमनिगोदा असखेज्जगुणा ५, सुहुमवणप्फइकाइया अणतगुणा ६, सुहुमा विसेसाहिया ७ ।

[२३७ प्र] भगवन् ! इन सूक्ष्म, सूक्ष्म पृथ्वीकायिक, सूक्ष्म अप्कायिक, सूक्ष्म तेजस्कायिक, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक एव सूक्ष्मनिगोदो मे से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२३७ उ] गौतम ! १ सबसे अल्प सूक्ष्म तेजस्कायिक है, २ (उनसे) सूक्ष्म पृथ्वीकायिक विशेषाधिक है, ३ (उनसे) सूक्ष्म अप्कायिक विशेषाधिक है, ४ (उनसे) सूक्ष्म वायुकायिक विशेषाधिक है, ५ (उनसे) सूक्ष्म निगोद असख्यातगुणे है, ६ (उनसे) सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अनन्त-गुणे है और ७ (उनसे भी) सूक्ष्म जीव विशेषाधिक है ।

२३८ एतेसि ण भते ! सुहुमअपज्जत्तगाण सुहुमपुढविकाइयापज्जत्तयाण सुहुमआउकाइया-पज्जत्तयाण सुहुमतेउकाइयापज्जत्तयाण सुहुमवाउकाइयापज्जत्तयाण सुहुमवणप्फइकाइयापज्जत्तयाण सुहुमणिगोदापज्जत्तयाण य कतरे कतरेहितो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा सुहुमतेउकाइया अपज्जत्तया १, सुहुमपुढविकाइया अपज्जत्तया विसेसा-हिया २, सुहुमआउकाइया अपज्जत्तया विसेसाहिया ३, सुहुमवाउकाइया अपज्जत्तया विसेसाहिया ४, सुहुमनिगोदा अपज्जत्तगा असखेज्जगुणा ५, सुहुमवणप्फतिकाइया अपज्जत्तगा अणतगुणा ६, सुहुमा अपज्जत्तगा विसेसाहिया ७ ।

[२३८ प्र] भगवन् ! इन सूक्ष्म अपर्याप्तक, सूक्ष्म पृथ्वीकायिक अपर्याप्तक, सूक्ष्म अप्कायिक अपर्याप्तक, सूक्ष्म तेजस्कायिक अपर्याप्तक, सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्तक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक, सूक्ष्म निगोद अपर्याप्तक जीवो मे से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

---

१ (क) प्रज्ञापना म वृत्ति, पत्राक १२४
(ख) पण्णवणासुत्त (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) भा १, पृ ८८
(ग) प्रज्ञापनासूत्र (प्रमेयबोधिनी टीका) भाग २, पृ ७४ एव ९२

[२३८ उ] गौतम ! १ सबसे थोडे सूक्ष्म तेजस्कायिक अपर्याप्तक हैं, २ (उनसे) सूक्ष्म पृथ्वीकायिक अपर्याप्तक विशेषाधिक है, ३ (उनसे) सूक्ष्म अप्कायिक, अपर्याप्त विशेषाधिक हैं, ४ (उनसे) सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्तक विशेषाधिक है, ५ (उनसे) सूक्ष्म निगोद अपर्याप्तक असख्यातगुणे है, ६ (उनसे) सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक अनन्तगुणे है और ७ (उनसे भी) सूक्ष्म अपर्याप्तक जीव विशेषाधिक है ।

२३९. एतेसि ण भते ! सुहुमपज्जत्तगाण सुहुमपुढविकाइयपज्जत्तगाण सुहुमआउकाइयपज्जत्तगाण सुहुमतेउकाइयपज्जत्तगाण सुहुमवाउकाइयपज्जत्तगाण सुहुमवणप्फइकाइयपज्जत्तगाण सुहुमनिगोदपज्जत्तगाण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा सुहुमतेउक्काइया पज्जत्तगा १, सुहुमपुढविकाइया पज्जत्तगा विसेसाहिया २, सुहुमआउकाइया पज्जत्तगा विसेसाहिया ३, सुहुमवाउकाइया पज्जत्तगा विसेसाहिया ४, सुहुमणिओया पज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ५, सुहुमवणप्फइकाइया पज्जत्तया अणतगुणा ६, सुहुमा पज्जत्तगा विसेसाहिया ७ ।

[२३९ प्र] भगवन् ! इन सूक्ष्म पर्याप्तक, सूक्ष्म पृथ्वीकायिक पर्याप्तक, सूक्ष्म अप्कायिक पर्याप्तक, सूक्ष्म तेजस्कायिक पर्याप्तक, सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्तक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्तक और सूक्ष्म निगोद पर्याप्तक जीवो मे से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[२३९ उ] गौतम ! १ सबसे थोडे सूक्ष्म तेजस्कायिक पर्याप्तक है, २ (उनसे) सूक्ष्म पृथ्वीकायिक पर्याप्तक विशेषाधिक है, ३ (उनसे) सूक्ष्म अप्कायिक पर्याप्तक विशेषाधिक है, ४ (उनसे) सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्तक विशेषाधिक है, ५ (उनसे) सूक्ष्म निगोद पर्याप्तक असख्यातगुणे है, ६ (उनसे) सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्तक अनन्तगुणे है और ७ (उनसे भी) विशेषाधिक सूक्ष्म पर्याप्तक जीव हैं ।

२४० [१] एतेसि ण भते ! सुहुमाण पज्जत्ताऽपज्जत्तयाण कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा सुहुमा अपज्जत्तगा, सुहुमा पज्जत्तगा सखेज्जगुणा ।

[२४०-१ प्र] भगवन् ! इन सूक्ष्म पर्याप्तक-अपर्याप्तक जीवो मे कौन किन से अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[२४० १ उ] गौतम ! सबसे अल्प सूक्ष्म अपर्याप्तक जीव हैं, उनसे सूक्ष्म पर्याप्तक जीव सख्यातगुणे हैं ।

[२] एतेसि ण भते ! सुहुमपुढविकाइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताण कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा सुहुमपुढविकाइया अपज्जत्तगा, सुहुमपुढविकाइया पज्जत्तगा सखेज्जगुणा ।

[२४०-२ प्र] भगवन् ! इन सूक्ष्म पृथ्वीकायिक पर्याप्तक और अपर्याप्तको मे से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२४०-२ उ] गौतम ! सबसे अल्प सूक्ष्म पृथ्वीकायिक अपर्याप्तक हैं, (उनसे) सूक्ष्म पृथ्वीकायिक पर्याप्तक सख्यातगुणे है ।

[३] एतेसि ण भते ! सुहुमग्राउकाइयाण पज्जत्ताऽपज्जत्ताण कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा सुहुमग्राउकाइया अपज्जत्तया, सुहुमग्राउकाइया पज्जत्तगा सखेज्जगुणा ।

[२४०-३ प्र] भगवन् ! इन सूक्ष्म अप्कायिक पर्याप्तको और अपर्याप्तको मे से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[२४०-३ उ] गौतम ! सबसे कम सूक्ष्म अप्कायिक अपर्याप्तक हैं, (उनसे) सूक्ष्म अप्कायिक पर्याप्तक सख्यातगुणे हैं ।

[४] एतेसि ण भते ! सुहुमतेउकाइयाण पज्जत्ताऽपज्जत्ताण कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा सुहुमतेउकाइया अपज्जत्तया, सुहुमतेउकाइया पज्जत्तगा सखेज्जगुणा ।

[२४०-४ प्र] भगवन् ! इन सूक्ष्म तेजस्कायिक पर्याप्तक और अपर्याप्तको मे से कौन किन से अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२४०-उ] गौतम ! सबसे कम सूक्ष्म तेजस्कायिक अपर्याप्तक हैं, (उनसे) सूक्ष्म तेजस्कायिक पर्याप्तक सख्यातगुणे है ।

[५] एएसि ण भते ! सुहुमवाउकाइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताण कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा सुहुमवाउकाइया अपज्जत्तया, सुहुमवाउकाइया पज्जत्तगा सखेज्जगुणा ।

[२४०-५ प्र] भगवन् ! इन सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्तको और अपर्याप्तको मे से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२४०-५ उ] गौतम ! सबसे थोडे सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्तक जीव हैं, (उनसे) सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्तक जीव सख्यातगुणे है ।

[६] एएसि ण भते ! सुहुमवणप्फइकाइयाण पज्जत्ताऽपज्जत्ताण कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा सुहुमवणप्फइकाइया अपज्जत्तगा, सुहुमवणप्फइकाइया पज्जत्तगा सखेज्जगुणा ।

[२४०-६ प्र] भगवन् ! इन सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्तक और अपर्याप्तक जीवो मे से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२४०-६ उ] गौतम ! सबसे अल्प सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक है, (उनसे) सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्तक सख्यातगुणे है ।

[७] एएसि ण भंते ! सुहुमनिगोदाण पज्जत्ताऽपज्जत्ताण कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा सुहुमनिगोदा अपज्जत्तगा, सुहुमनिगोदा पज्जत्तया संखेज्जगुणा ।

[२४०-७ प्र] भगवन् ! इन सूक्ष्म निगोद के पर्याप्तक और अपर्याप्तक जीवो मे से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[२४०-७ उ] गौतम ! सबसे थोडे सूक्ष्म निगोद अपर्याप्तक है, (उनसे) सूक्ष्म निगोद अपर्याप्तक सख्यातगुणे हैं ।

२४१. एतेसि ण भंते ! सुहुमाणं सुहुमपुढविकाइयाण सुहुमआउकाइयाण सुहुमतेउकाइयाणं सुहुमवाउकाइयाणं सुहुमवणस्सइकाइयाणं सुहुमनिगोदाण य पज्जत्ताऽपज्जत्ताण कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा सुहुमतेउकाइया अपज्जत्तगा १, सुहुमपुढविकाइया अपज्जत्तया विसेसाहिया २, सुहुमआउकाइया अपज्जत्तया विसेसाहिया ३, सुहुमवाउकाइया अपज्जत्तया विसेसाहिया ४, सुहुमतेउकाइया पज्जत्तगा सखेज्जगुणा ५, सुहुमपुढविकाइया पज्जत्तया विसेसाहिया ६, सुहुमआउकाइया पज्जत्तया विसेसाहिया ७, सुहुमवाउकाइया पज्जत्तया विसेसाहिया ८, सुहुमनिगोदा अपज्जत्तया असखेज्जगुणा ९, सुहुमनिगोदा पज्जत्तया सखेज्जगुणा १०, सुहुमवणप्फइकाइया अपज्जत्तया अणतगुणा ११, सुहुमा अपज्जत्तया विसेसाहिया १२, सुहुमवणप्फइकाइया पज्जत्तया सखेज्जगुणा १३, सुहुमा पज्जत्तया विसेसाहिया १४, सुहुमा विसेसाहिया १५ ।

[२४१ प्र] भगवन् ! इन सूक्ष्म जीव, सूक्ष्म पृथ्वीकायिक, सूक्ष्म अप्कायिक, सूक्ष्म तेजस्कायिक, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक एव सूक्ष्म निगोदो के पर्याप्तको और अपर्याप्तको मे से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक है ?

[२४१ उ] गौतम ! १ सबसे थोडे सूक्ष्म तेजस्कायिक अपर्याप्तक है, २. (उनसे) सूक्ष्म पृथ्वीकायिक अपर्याप्तक विशेषाधिक है, ३ (उनसे) सूक्ष्म अप्कायिक अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ४ (उनसे) सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्तक विशेषाधिक है, ५ (उनसे) सूक्ष्म तेजस्कायिक पर्याप्तक सख्यातगुणे हैं, ६ (उनसे) सूक्ष्म पृथ्वीकायिक पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ७ (उनसे) सूक्ष्म अप्कायिक पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ८ (उनसे) सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्तक विशेषाधिक है, ९ (उनसे) सूक्ष्म निगोद अपर्याप्तक असख्यातगुणे है, १० (उनसे) सूक्ष्म निगोद पर्याप्तक सख्यातगुणे हैं, ११ (उनसे) सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक अनन्तगुणे है, १२ (उनसे) सूक्ष्म अपर्याप्तक जीव विशेषाधिक हैं, १३ (उनसे) सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्तक सख्यातगुणे है, १४ (उनसे) सूक्ष्म पर्याप्तक जीव विशेषाधिक है और १५ (उनसे भी) सूक्ष्म जीव विशेषाधिक हैं ।

२४२. एतेसि ण भंते ! बादराणं बादरपुढविकाइयाणं बादरग्राउकाइयाण बादरतेउकाइयाण बादरवाउकाइयाण बादरवणस्सइकाइयाण पत्तेयसरीरबादरवणप्फइकाइयाण बादरनिगोदाण बादरतसकाइयाण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा बादरा तसकाइया १, बादरा तेउकाइया असखेज्जगुणा २ पत्तेयसरीरबादरवणप्फइकाइया असखेज्जगुणा ३, बादरा निगोदा असखेज्जगुणा ४, बादरा पुढविकाइया असखेज्जगुणा ५, बादरा आउकाइया असखेज्जगुणा ६, बादरा वाउकाइया असखेज्जगुणा ७, बादरा वणप्फइकाइया अणतगुणा ८, बादरा विसेसाहिया ९ ।

[२४२ प्र] भगवन् ! इन बादर जीवो, बादर पृथ्वीकायिको, बादर अप्कायिको, बादर तेजस्कायिको, बादर वायुकायिको, बादर वनस्पतिकायिको, प्रत्येकशरीर बादर वनस्पतिकायिको, बादर निगोदो और बादर त्रसकायिको मे से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[२४२ उ] गौतम ! १ सबसे थोडे बादर त्रसकायिक है, २ (उनसे) बादर तेजस्कायिक असख्येयगुणे है, ३ (उनसे) प्रत्येक शरीर बादर वनस्पतिकायिक असख्येयगुणे है, ४ (उनसे) बादर निगोद असख्येयगुणे है, ५ (उनसे) बादर पृथ्वीकायिक असख्येयगुणे है, ६ (उनसे) बादर अप्कायिक असख्येयगुणे है, ७ (उनसे) बादर वायुकायिक असख्येयगुणे है, ८ (उनसे) बादर वनस्पतिकायिक अनन्तगुणे है, और ९. (उनसे भी) बादर जीव विशेषाधिक है ।

२४३ एतेसि ण भंते ! बादरअपज्जत्तगाण बादरपुढविकाइयअपज्जत्तगाण बादरआउकाइयअपज्जत्तगाण बादरतेउकाइयअपज्जत्तगाण बादरवाउकाइयअपज्जत्तगाण बादरवणप्फइकाइयअपज्जत्तगाणं पत्तेयसरीरबादरवणप्फइकाइयअपज्जत्तगाण बादरनिगोदापज्जत्तगाण बादरतसकाइयापज्जत्ताण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा बादरतसकाइया अपज्जत्तगा १, बादरतेउकाइया अपज्जत्तगा असखेज्जगुणा २, पत्तेयसरीरबादरवणप्फइकाइया अपज्जत्तया असखेज्जगुणा ३, बादरनिगोदा अपज्जत्तगा असखेज्जगुणा ४, बादरपुढविकाइया अपज्जत्तगा असखेज्जगुणा ५, बादरआउकाइया अपज्जत्तगा असखेज्जगुणा ६, बादरवाउकाइया अपज्जत्तगा असखेज्जगुणा ७, बादरवणप्फइकाइया अपज्जत्तगा अणंतगुणा ८, बादरअपज्जत्तगा विसेसाहिया ९ ।

[२४३ प्र] भगवन् ! इन बादर अपर्याप्तको, बादर पृथ्वीकायिक-अपर्याप्तको, बादर अप्कायिक-अपर्याप्तको, बादर तेजस्कायिक-अपर्याप्तको, बादर वायुकायिक-अपर्याप्तको, बादर वनस्पतिकायिक-अपर्याप्तको, प्रत्येकशरीर बादर वनस्पतिकायिक-अपर्याप्तको, बादर निगोद-अपर्याप्तको एव बादर त्रसकायिक-अपर्याप्तको मे से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[२४३ उ] गौतम ! १ सबसे कम बादर त्रसकायिक अपर्याप्तक है, २ (उनसे) बादर तेजस्कायिक अपर्याप्तक असख्यातगुणे है, ३ (उनसे) प्रत्येकशरीर बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक असख्यातगुणे है, ४ (उनसे) बादर निगोद अपर्याप्तक असख्यातगुणे है, ५ (उनसे) बादर पृथ्वी-

कायिक अपर्याप्तक असख्यातगुणे हैं, ६ (उनसे) बादर अप्कायिक अपर्याप्तक असख्यातगुणे हैं, ७. (उनसे) बादर वायुकायिक अपर्याप्तक असख्यातगुणे है, ८ (उनसे) बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक अनन्तगुणे है और ९ (उनसे भी) बादर अपर्याप्तक जीव विशेषाधिक है।

२४४. एतेसि ण भंते ! बादरपज्जत्तयाण बादरपुढविकाइयपज्जत्तयाण बादरआउकाइयपज्जत्तयाण बादरतेउकाइयपज्जत्तयाण बादरवाउकाइयपज्जत्तयाण बादरवणप्फइकाइयपज्जत्तयाणं पत्तेयसरीरबादरवणप्फइकाइयपज्जत्तयाण बादरनिगोदपज्जत्तयाण बादरतसकाइयपज्जत्तयाण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा बादरतेउक्काइया पज्जत्तया १, बादरतसकाइया पज्जत्तया असखेज्जगुणा २, पत्तेयसरीरबायरवणप्फइकाइया पज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ३, बायरनिगोदा पज्जत्तगा असखेज्जगुणा ४, बादरपुढविकाइया पज्जत्तगा असखेज्जगुणा ५, बादरआउकाइया पज्जत्तगा असखिज्जगुणा ६, बादरवाउकाइया पज्जत्तया असखेज्जगुणा ७, बादरवणप्फइकाइया पज्जत्तया अणतगुणा ८, बायरपज्जत्तया विसेसाहिया ९।

[२४४ प्र] भगवन् ! इन बादर पर्याप्तको, बादर पृथ्वीकायिक-पर्याप्तको, बादर अप्कायिक-पर्याप्तको, बादर तेजस्कायिक-पर्याप्तको, बादर वायुकायिक-पर्याप्तको, बादर वनस्पतिकायिक-पर्याप्तको, प्रत्येक-शरीर बादर वनस्पतिकायिक-पर्याप्तको, बादर निगोद-पर्याप्तको एव बादर त्रसकायिक-पर्याप्तको मे से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[२४४ उ] गौतम ! १. सबसे कम बादर तेजस्कायिक पर्याप्तक है, २ (उनसे) बादर त्रसकायिक पर्याप्तक असख्यातगुणे है, ३. (उनसे) प्रत्येकशरीर बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्तक असख्यातगुणें है, ४ (उनसे) बादर पृथ्वीकायिक पर्याप्तक असख्यातगुणें है, ५. (उनसे) बादर पृथ्वीकायिक पर्याप्तक असख्यातगुणे है, ६ (उनसे) बादर अप्कायिक-पर्याप्तक असख्यातगुणे है, ७. (उनसे) बादर वायुकायिक पर्याप्तक असख्यातगुणे है, ८ (उनसे) बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्तक अनन्तगुणे है और (उनसे भी) ९ बादर पर्याप्तक जीव विशेषाधिक है।

२४५ [१] एतेसि ण भंते ! बादराण पज्जत्ताऽपज्जत्ताण कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा बादरा पज्जत्तगा, बायरा अपज्जत्तगा असखेज्जगुणा।

[२४५-१ प्र] भगवन् ! इन बादर पर्याप्तको और अपर्याप्तको मे से कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[२४५-१ प्र] गौतम ! सबसे अल्प बादर पर्याप्तक जीव है, (उनसे) बादर अपर्याप्तक असख्यातगुणे है।

[२] एतेसि ण भंते ! बादरपुढविकाइयाण पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा बादरपुढविकाइया पज्जत्तगा, बादरपुढविकाइया अपज्जत्तगा असखेज्जगुणा।

२४२. एतेसि ण भंते ! बादराण बादरपुढविकाइयाण बादरआउकाइयाण बादरतेउकाइयाण बादरवाउकाइयाण बादरवणस्सइकाइयाण पत्तेयसरीरबादरवणप्फइकाइयाणं बादरनिगोदाण बादरतसकाइयाण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा बादरा तसकाइया १, बादरा तेउकाइया असखेज्जगुणा २. पत्तेयसरीरबादरवणप्फइकाइया असखेज्जगुणा ३, बादरा निगोदा असखेज्जगुणा ४, बादरा पुढविकाइया असखेज्जगुणा ५, बादरा आउकाइया असखेज्जगुणा ६, बादरा वाउकाइया असखेज्जगुणा ७, बादरा वणप्फइकाइया अणतगुणा ८, बादरा विसेसाहिया ९ ।

[२४२ प्र] भगवन् ! इन बादर जीवो, बादर पृथ्वीकायिको, बादर अप्कायिको, बादर तेजस्कायिको, बादर वायुकायिको, बादर वनस्पतिकायिको, प्रत्येकशरीर बादर वनस्पतिकायिको, बादर निगोदो और बादर त्रसकायिको मे से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[२४२ उ] गौतम ! १ सबसे थोडे बादर त्रसकायिक है, २ (उनसे) बादर तेजस्कायिक असख्येयगुणे है, ३ (उनसे) प्रत्येक शरीर बादर वनस्पतिकायिक असख्येयगुणे है, ४ (उनसे) बादर निगोद असख्येयगुणे है, ५ (उनसे) बादर पृथ्वीकायिक असख्येयगुणे है, ६ (उनसे) बादर अप्कायिक असख्येयगुणे है, ७ (उनसे) बादर वायुकायिक असख्येयगुणे है, ८ (उनसे) बादर वनस्पतिकायिक अनन्तगुणे है, और ९ (उनसे भी) बादर जीव विशेषाधिक है ।

२४३ एतेसि ण भंते ! बादरअपज्जत्तगाण बादरपुढविकाइयअपज्जत्तगाण बादरआउकाइयअपज्जत्तगाण बादरतेउकाइयअपज्जत्तगाण बादरवाउकाइयअपज्जत्तगाण बादरवणप्फइकाइयअपज्जत्तगाण पत्तेयसरीरबादरवणप्फइकाइयअपज्जत्तगाण बादरनिगोदापज्जत्तगाण बादरतसकाइयापज्जत्ताण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा बादरतसकाइया अपज्जत्तगा १, बादरतेउकाइया अपज्जत्तगा असखेज्जगुणा २, पत्तेयसरीरबादरवणप्फइकाइया अपज्जत्तथा असखेज्जगुणा ३, बादरनिगोदा अपज्जत्तगा असखेज्जगुणा ४, बादरपुढविकाइया अपज्जत्तगा असखेज्जगुणा ५, बादरआउकाइया अपज्जत्तगा असखेज्जगुणा ६, बादरवाउकाइया अपज्जत्तगा असखेज्जगुणा ७, बादरवणप्फइकाइया अपज्जत्तगा अणंतगुणा ८, बादरअपज्जत्तगा विसेसाहिया ९ ।

[२४३ प्र] भगवन् ! इन बादर अपर्याप्तको, बादर पृथ्वीकायिक-अपर्याप्तको, बादर अप्कायिक-अपर्याप्तको, बादर तेजस्कायिक-अपर्याप्तको, बादर वायुकायिक-अपर्याप्तको, बादर वनस्पतिकायिक-अपर्याप्तको, प्रत्येकशरीर बादर वनस्पतिकायिक-अपर्याप्तको, बादर निगोद-अपर्याप्तको एव बादर त्रसकायिक-अपर्याप्तको मे से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[२४३ उ] गौतम ! १ सबसे कम बादर त्रसकायिक अपर्याप्तक है, २ (उनसे) बादर तेजस्कायिक अपर्याप्तक असख्यातगुणे है, ३ (उनसे) प्रत्येकशरीर बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक असख्यातगुणे है, ४ (उनसे) बादर निगोद अपर्याप्तक असख्यातगुणे है, ५ (उनसे) बादर पृथ्वी-

कायिक अपर्याप्तक असख्यातगुणे हैं, ६ (उनसे) बादर अप्कायिक अपर्याप्तक असख्यातगुणे हैं, ७. (उनसे) बादर वायुकायिक अपर्याप्तक असख्यातगुणे हैं, ८ (उनसे) बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक अनन्तगुणे हैं और ९ (उनसे भी) बादर अपर्याप्तक जीव विशेषाधिक हैं।

२४४. एतेसि ण भंते ! बादरपज्जत्तयाण बादरपुढविकाइयपज्जत्तयाण बादरआउकाइयपज्जत्तयाण बादरतेउकाइयपज्जत्तयाणं बादरवाउकाइयपज्जत्तयाण बादरवणप्फइकाइयपज्जत्तयाणं पत्तेयसरीरबादरवणप्फइकाइयपज्जत्तयाणं बादरनिगोदपज्जत्तयाण बादरतसकाइयपज्जत्तयाण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा बादरतेउक्काइया पज्जत्तया १, बादरतसकाइया पज्जत्तया असखेज्जगुणा २, पत्तेयसरीरबायरवणप्फइकाइया पज्जत्तगा असखेज्जगुणा ३, बायरनिगोदा पज्जत्तगा असखेज्जगुणा ४, बादरपुढविकाइया पज्जत्तगा असखेज्जगुणा ५, बादरआउकाइया पज्जत्तगा असखिज्जगुणा ६, बादरवाउकाइया पज्जत्तया असखेज्जगुणा ७, बादरवणप्फइकाइया पज्जत्तया अणतगुणा ८, बायरपज्जत्तया विसेसाहिया ९।

[२४४ प्र] भगवन् ! इन बादर पर्याप्तको, बादर पृथ्वीकायिक-पर्याप्तको, बादर अप्कायिक-पर्याप्तको, बादर तेजस्कायिक-पर्याप्तको, बादर वायुकायिक-पर्याप्तको, बादर वनस्पतिकायिक-पर्याप्तको, प्रत्येक-शरीर बादर वनस्पतिकायिक-पर्याप्तको, बादर निगोद-पर्याप्तको एवं बादर त्रसकायिक-पर्याप्तको मे से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[२४४ उ] गौतम ! १ सबसे कम बादर तेजस्कायिक पर्याप्तक हैं, २ (उनसे) बादर त्रसकायिक पर्याप्तक असख्यातगुणे हैं, ३. (उनसे) प्रत्येकशरीर बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्तक असख्यातगुणें हैं, ४ (उनसें) बादर पृथ्वीकायिक पर्याप्तक असख्यातगुणें है, ५. (उनसे) बादर पृथ्वीकायिक पर्याप्तक असख्यातगुणे हैं, ६ (उनसे) बादर अप्कायिक-पर्याप्तक असख्यातगुणे हैं, ७. (उनसे) बादर वायुकायिक पर्याप्तक असख्यातगुणे है, ८ (उनसे) बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्तक अनन्तगुणे हैं और (उनसे भी) ९ बादर पर्याप्तक जीव विशेषाधिक है।

२४५ [१] एतेसि ण भते ! बादराणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा बादरा पज्जत्तगा, बायरा अपज्जत्तगा असखेज्जगुणा ।

[२४५-१ प्र] भगवन् ! इन बादर पर्याप्तको और अपर्याप्तको मे से कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[२४५-१ उ] गौतम ! सबसे अल्प बादर पर्याप्तक जीव हैं, (उनसे) बादर अपर्याप्तक असख्यातगुणे हैं।

[२] एतेसि ण भंते ! बादरपुढविकाइयाण पज्जत्ताऽपज्जत्ताण कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा बादरपुढविकाइया पज्जत्तगा, बादरपुढविकाइया अपज्जत्तगा असखेज्जगुणा ।

[२४५-२ प्र] भगवन्! इन बादर पृथ्वीकायिक-पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२४५-२ उ] गौतम! सबसे थोड़े बादर पृथ्वीकायिक-पर्याप्तक हैं, (उनसे) बादर पृथ्वीकायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं।

[३] एतेसि णं भंते! बादरआउकाइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा! सव्वत्थोवा बादरआउकाइया पज्जत्तगा, बादरआउकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा।

[२४५-३ प्र] भगवन्! इन बादर अप्कायिक-पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२४५-३ उ] गौतम! सबसे कम बादर अप्कायिक-पर्याप्तक हैं, (उनसे) बादर अप्कायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं।

[४] एतेसि णं भंते! बादरतेउकाइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा! सव्वत्थोवा बादरतेउकाइया पज्जत्तया, बादरतेउक्काइया अपज्जत्तया असंखेज्जगुणा।

[२४५-४ प्र] भगवन्! इन बादर तेजस्कायिक-पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों में से कौन, किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२४५-४ उ] गौतम! सबसे अल्प बादर तेजस्कायिक-पर्याप्तक हैं, (उनसे) बादर तेजस्कायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं।

[५] एतेसि णं भंते! बादरवाउकाइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा! सव्वत्थोवा बादरवाउकाइया पज्जत्तगा, बादरवाउकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा।

[२४५-५ प्र] भगवन्! इन बादर वायुकायिक-पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२४५-५ उ] गौतम! सबसे अल्प बादर वायुकायिक-पर्याप्तक हैं और (उनसे) बादर वायुकायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं।

[६] एतेसि णं भंते! बादरवणप्फइकाइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा बादरवणप्फइकाइया पज्जत्तगा, बादरवणप्फइकाइया अपज्जत्तया असंखेज्जगुणा ।

[२४५-६ प्र.] भगवन् ! इन बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य और विशेषाधिक हैं ?

[२४५-६ उ.] गौतम ! सबसे कम बादर वनस्पतिकायिक-पर्याप्तक हैं, (उनसे) बादर वनस्पतिकायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं ।

[७] एतेसि णं भंते ! पत्तेयसरीरबादरवणप्फइकाइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा पत्तेयसरीरबादरवणप्फइकाइया पज्जत्तगा, पत्तेयसरीरबादरवणप्फइकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ।

[२४५-७ प्र.] भगवन् ! प्रत्येकशरीर बादर वनस्पतिकायिक-पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[२४५-७ उ.] गौतम ! सबसे थोड़े प्रत्येकशरीर बादर वनस्पतिकायिक-पर्याप्तक हैं, (उनसे) प्रत्येकशरीर बादर वनस्पतिकायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं ।

[८] एतेसि णं भंते ! बादरनिगोदाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा बादरनिगोदा पज्जत्तगा, बादरनिगोदा अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ।

[२४५-८ प्र.] भगवन् ! इन बादर निगोद-पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं ?

[२४५-८ उ.] गौतम ! सबसे अल्प बादर निगोद-पर्याप्तक हैं, (उनसे) असंख्यातगुणे बादर निगोद-अपर्याप्तक हैं ।

[९] एएसि णं भंते ! बादरतसकाइयाणं पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा बादरतसकाइया पज्जत्तगा, बादरतसकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ।

[२४५-९ प्र.] भगवन् ! इन बादर त्रसकायिक-पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२४५-९ उ.] गौतम ! सबसे कम बादर त्रसकायिक-पर्याप्तक हैं (और उनसे) बादर त्रसकायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं ।

२४६ एएसि णं भंते ! बादराणं बादरपुढविकाइयाणं बादरआउकाइयाणं बादरतेउकाइयाणं बादरवाउकाइयाणं बादरवणस्सइकाइयाणं पत्तेयसरीरबादरवणप्फइकाइयाणं बादरनिगोदाणं बादरतसकाइयाण य पज्जत्ताऽपज्जत्ताण कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा बादरतेउकाइया पज्जत्तया १, बादरतसकाइया पज्जत्तया असंखेज्जगुणा २, बादरतसकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ३, पत्तेयसरीरबादरवणस्सइकाइया पज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ४, बादरनिगोदा पज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ५, बादरपुढविकाइया पज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ६, बादरआउकाइया पज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ७, बादरवाउकाइया पज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ८, बादरतेउकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ९, पत्तेयसरीरबादरवणस्सइकाइया अपज्जत्तया असंखेज्जगुणा १०, बादरनिगोदा अपज्जत्तया असंखेज्जगुणा ११, बादरपुढविकाइया अपज्जत्तया असंखेज्जगुणा १२, बादरआउकाइया अपज्जत्तया असंखेज्जगुणा १३, बादरवाउकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा १४, बादरवणस्सइकाइया पज्जत्तगा अणंतगुणा १५, बादरपज्जत्तगा विसेसाहिया १६, बादरवणस्सइकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा १७, बादरअपज्जत्तगा विसेसाहिया १८, बादरा विसेसाहिया १९ ।

[२४६ प्र.] भगवन् ! इन बादर-जीवों, बादर-पृथ्वीकायिकों, बादर-अप्कायिकों, बादर-तेजस्कायिकों, बादर-वायुकायिकों, बादर-वस्पतिकायिकों, प्रत्येकशरीर बादर-वनस्पतिकायिकों, बादर निगोदों और बादर त्रसकायिकों के पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[२४६ उ.] गौतम ! १ सबसे थोड़े बादर-तेजस्कायिक-पर्याप्तक हैं। २ (उनसे) बादर-त्रसकायिक-पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं। ३ (उनसे) बादर-त्रसकायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं। ४ (उनसे) प्रत्येकशरीर बादर-वनस्पतिकायिक-पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं। ५ (उनसे) बादर-निगोद-पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं। ६ (उनसे) बादर-पृथ्वीकायिक-पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं। ७ (उनसे) बादर-अप्कायिक-पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं। ८ (उनसे) बादर-वायुकायिक-पर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं। ९ (उनसे) बादर-तेजस्कायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं। १० (उनसे) प्रत्येक-शरीर-बादर-वनस्पतिकायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं। ११ (उनसे) बादर-निगोद-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं। १२ (उनसे) बादर-पृथ्वीकायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं। १३ (उनसे) बादर-अप्कायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं। १४ (उनसे) बादर-वायुकायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं। १५ (उनसे) बादर-वनस्पतिकायिक-पर्याप्तक अनन्तगुणे हैं। १६ (उनसे) बादर-पर्याप्तक विशेषाधिक हैं। १७ (उनसे) बादर वनस्पतिकायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं। १८ (उनसे) बादर-अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं और १९ (उनसे भी) बादर जीव विशेषाधिक हैं।

२४७ एतेसि णं भंते ! सुहुमाणं सुहुमपुढविकाइयाणं सुहुमआउकाइयाणं सुहुमतेउकाइयाणं सुहुमवाउकाइयाणं सुहुमवणप्फइकाइयाणं सुहुमनिगोदाणं बादराणं बादरपुढविकाइयाणं बादरआउकाइयाणं बादरतेउकाइयाणं बादरवाउकाइयाणं बादरवणप्फइकाइयाणं पत्तेयसरीरबायरवणप्फइकाइयाणं बादरणिगोदाणं बादरतसकाइयाण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा बादरतसकाइया १, बादरतेउकाइया असंखेज्जगुणा २, पत्तेयसरीरबादरवणप्फइकाइया असंखेज्जगुणा ३, बादरनिगोदा असंखेज्जगुणा ४, बादरपुढविकाइया असंखेज्ज-

गुणा ५, बादरआउकाइया अ ेज्जगुणा ६, बादरवाउकाइया असखेज्जगुणा ७, सुहुमतेउकाइया असंखेज्जगुणा ८, सुहुमपुढविकाइया विसेसाहिया ९, सुहुमआउकाइया विसेसाहिया १०, सुहुमवाउकाइया विसेसाहिया ११, सुहुमणिगोदा असखेज्जगुणा १२, बादरवणस्सइकाइया अणतगुणा १३, बादरा विसेसाहिया १४, सुहुमवणस्सइकाइया असखेज्जगुणा १५, सुहुमा विसेसाहिया १६।

[२४७ प्र] भगवन्! इन सूक्ष्मजीवो, सूक्ष्म-पृथ्वीकायिको, सूक्ष्म-अप्कायिको, सूक्ष्म-तेजस्कायिको, सूक्ष्मवनस्पतिकायिको, सूक्ष्मनिगोदो तथा बादरजीवो, बादर-पृथ्वीकायिको, बादर-अप्कायिको, बादर-तेजस्कायिको, बादर-वायुकायिको, बादर-वनस्पतिकायिको, प्रत्येकशरीर-बादर-वनस्पतिकायिको, बादर-निगोदो और बादर-त्रसकायिको मे से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[२४७ उ] गौतम! १ सबसे थोडे बादर-त्रसकायिक है, २ (उनसे) बादर तेजस्कायिक असख्यातगुणे है, ३ (उनसे) प्रत्येकशरीर बादर-वनस्पतिकायिक असख्यातगुणे है, ४ (उनसे) बादरनिगोद असख्यातगुणे है, ५ (उनसे) बादर-पृथ्वीकायिक असख्यातगुणे है, ६ (उनसे) बादर-अप्कायिक असख्यातगुणे है, ७ (उनसे) बादर-वायुकायिक असख्यातगुणे है, ८ (उनसे) सूक्ष्म-तेजस्कायिक असख्यातगुणे है, ९ (उनसे) सूक्ष्म-पृथ्वीकायिक विशेषाधिक है, १० (उनसे) सूक्ष्म-अप्कायिक विशेषाधिक हैं, ११ (उनसे) सूक्ष्म-वायुकायिक विशेषाधिक है, १२ (उनसे) सूक्ष्म-निगोद असंख्यातगुणे है, १३ (उनसे) बादर-वनस्पतिकायिक अनन्तगुणे हैं, १४ (उनसे) बादर-जीव विशेषाधिक है, १५ (उनसे) सूक्ष्म-वनपतिकायिक असख्यातगुणे है १६ (और उनसे भी) सूक्ष्म-जीव विशेषाधिक है।

२४८. एतेसि ण भते! सुहुमअपज्जत्तयाण सुहुमपुढविकाइयाण अपज्जत्तगाण सुहुमआउकाइयाण अपज्जत्तयाण सुहुमतेउकाइयाण अपज्जत्तयाण सुहुमवाउकाइयाण अपज्जत्तयाण सुहुमवणप्फइकाइयाण अपज्जत्तगाण सुहुमणिगोदापज्जत्तयाण बादरापज्जत्तयाणं बादरपुढविकाइयापज्जत्तयाण बादरआउकाइयापज्जत्तयाण बादरतेउकाइयापज्जत्तयाण बादरवाउकाइयापज्जत्तयाण बादरवणप्फइकाइयापज्जत्तयाणं पत्तेयसरीरबादरवणप्फइकाइयापज्जत्तयाण बादरणिगोदापज्जत्तयाणं बादरतसकाइयापज्जत्तयाण कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा! सव्वत्थोवा बादरतसकाइया अपज्जत्तगा १, बादरतेउकाइया अपज्जत्तगा असखेज्जगुणा २, पत्तेयसरीरबादरवणप्फइकाइया अपज्जत्तगा असखेज्जगुणा ३, बादरणिगोदा अपज्जत्तया असखेज्जगुणा ४, बादरपुढविकाइया अपज्जत्तगा असखेज्जगुणा ५, बादरआउकाइया अपज्जत्तगा असखेज्जगुणा ६, बादरवाउकाइया अपज्जत्तगा असखेज्जगुणा ७, सुहुमतेउकाइया अपज्जत्तगा असखेज्जगुणा ८, सुहुमपुढविकाइया अपज्जत्तगा विसेसाहिया ९, सुहुमआउकाइया अपज्जत्तगा विसेसाहिया १०, सुहुमवाउकाइया अपज्जत्तगा विसेसाहिया ११, सुहुमणिगोदा अपज्जत्तगा असखेज्जगुणा १२, बादरवणप्फइकाइया अपज्जत्तगा अणतगुणा १३, बादर अपज्जत्तगा विसेसाहिया १४, सुहुमवणप्फइकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा १५, सुहुमा अपज्जत्तगा विसेसाहिया १६।

[२४८ प्र] भगवन् ! इन सूक्ष्म-अपर्याप्तकों, सूक्ष्म-पृथ्वीकायिक-अपर्याप्तकों, सूक्ष्म-अप्कायिक अपर्याप्तकों, सूक्ष्म-तेजस्कायिक-अपर्याप्तकों, सूक्ष्म-वायुकायिक-अपर्याप्तकों, सूक्ष्म-वनस्पतिकायिक-अपर्याप्तकों, सूक्ष्म-निगोद-अपर्याप्तकों, बादर-पृथ्वीकायिक-अपर्याप्तकों, बादर-अप्कायिक-अपर्याप्तकों, बादर-तेजस्कायिक-अपर्याप्तकों, बादर वायुकायिक-अपर्याप्तकों, बादर-वनस्पतिकायिक-अपर्याप्तकों, प्रत्येकशरीर बादर-वनस्पतिकायिक-अपर्याप्तकों, बादर-निगोद-अपर्याप्तकों, बादर निगोद-अपर्याप्तकों एवं बादर-त्रसकायिक-अपर्याप्तकों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[२४८ उ] गौतम ! १ सबसे थोड़े बादरत्रसकायिक-अपर्याप्तक हैं, २ (उनसे) बादर-तेजस्कायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ३ (उनसे) प्रत्येकशरीर-बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ४ (उनसे) बादरनिगोद-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ५ (उनसे) बादर-पृथ्वीकायिक अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ६ (उनसे) बादर अप्कायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ७ (उनसे) बादर-वायुकायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ८ (उनसे) सूक्ष्मतेजस्कायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ९ (उनसे) सूक्ष्म-पृथ्वीकायिक-अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, १० (उनसे) सूक्ष्म-अप्कायिक-अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ११ (उनसे) सूक्ष्मवायुकायिक-अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, १२ (उनसे) सूक्ष्म-निगोद-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, १३ (उनसे) बादरवनस्पतिकायिक अपर्याप्तक अनन्तगुणे हैं, १४ (उनसे) बादर-अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, १५ (उनसे) सूक्ष्म-वनस्पतिकायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं (और उनसे भी) १६ सूक्ष्म-अपर्याप्तक जीव विशेषाधिक हैं।

२४९. एतेसि णं भंते ! सुहुमपज्जत्तयाणं सुहुमपुढविकाइयपज्जत्तयाणं सुहुमआउकाइय-पज्जत्तयाणं सुहुमतेउकाइयपज्जत्तयाणं सुहुमवाउकाइयपज्जत्तयाणं सुहुमवणप्फइकाइयपज्जत्तयाणं सुहुमनिगोयपज्जत्तयाणं बादरपज्जत्तयाणं बादरपुढविकाइयपज्जत्तयाणं बादरआउकाइयपज्जत्तयाणं बादरतेउकाइयपज्जत्तयाणं बादरवाउकाइयपज्जत्तयाणं बादरवणप्फइकाइयपज्जत्तयाणं पत्तेयसरीर-बादरवणप्फइकाइयपज्जत्तयाणं बादरनिगोदपज्जत्तयाणं बादरतसकाइयपज्जत्तयाण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा बादरतेउकाइया पज्जत्तगा १, बादरतसकाइया पज्जत्तगा असंखेज्जगुणा २, पत्तेयसरीरबादरवणप्फइकाइया पज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ३, बादरनिगोदा पज्जत्तया असंखेज्जगुणा ४, बादरपुढविकाइया पज्जत्तया असंखेज्जगुणा ५, बादरआउकाइया पज्जत्तया असंखेज्जगुणा ६, बादरवाउकाइया पज्जत्तया असंखेज्जगुणा ७, सुहुमतेउकाइया पज्जत्तया असंखेज्जगुणा ८, सुहुमपुढविकाइया पज्जत्तया विसेसाहिया ९, सुहुमआउकाइया पज्जत्तया विसेसाहिया १०, मवाउकाइया पज्जत्तया विसेसाहिया ११, सुहुमनिगोदा पज्जत्तया असंखेज्जगुणा १२, बादरवणप्फइकाइया पज्जत्तया अणंतगुणा १३, बादरा पज्जत्तया विसेसाहिया १४, सुहुमवणस्सइकाया पज्जत्तया असंखेज्ज-गुणा १५, सुहुमा पज्जत्तया विसेसाहिया १६।

[२४९ प्र] भगवन् ! इन सूक्ष्म-पर्याप्तकों, सूक्ष्म-पृथ्वीकायिक-पर्याप्तकों, सूक्ष्म-अप्कायिक-पर्याप्तकों, सूक्ष्म-तेजस्कायिक-पर्याप्तकों, सूक्ष्म-वायुकायिक-पर्याप्तकों, सूक्ष्म-वनस्पतिकायिक पर्याप्तकों,

सूक्ष्म निगोद-पर्याप्तको, वादर-पर्याप्तको, वादर-पृथ्वीकायिक-पर्याप्तका, वादर-अप्कायिक-पर्याप्तको, बादर-तेजस्कायिक-पर्याप्तको, वादर-वायुकायिक-पर्याप्तको, वादर-वनस्पतिकायिक-पर्याप्तको, प्रत्येक-शरीर बादर-वनस्पतिकायिक-पर्याप्तको, वादर-निगोद-पर्याप्तको और वादरत्रसकायिक-पर्याप्तको मे से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[२४९ उ] गौतम ! १ सबसे अल्प वादर तेजस्कायिक-पर्याप्तक है, २ (उनमे) वादर त्रस-कायिक-पर्याप्तक असख्यातगुणे है, ३ (उनसे) प्रत्येकशरीर-वादरवनस्पतिकायिक पर्याप्तक असख्यातगुणे है, ४ (उनसे) बादर-निगोद-पर्याप्तक असख्यातगुणे है, ५ (उनसे) वादर-पृथ्वी-कायिक-पर्याप्तक असख्यातगुणे है, ६ (उनसे) बादर-अप्कायिक-पर्याप्तक असख्यातगुणे हैं, ७ (उनसे) बादर-वायुकायिक पर्याप्तक असख्यातगुणे है, ८ (उनसे) सूक्ष्म-तेजस्कायिक-पर्याप्तक असख्यातगुणे है, ९ (उनसे) सूक्ष्म पृथ्वीकायिक-पर्याप्तक विशेषाधिक है, १० (उनसे) सूक्ष्म-अप्कायिक-पर्याप्तक विशेषाधिक है, ११ (उनसे) सूक्ष्म वायुकायिक-पर्याप्तक विशेषाधिक है, १२ (उनसे) सूक्ष्म निगोद-पर्याप्तक असख्यातगुणे हैं, १३ (उनसे) बादरवनस्पतिकायिक-पर्याप्तक अनन्तगुणे है, १४ (उनसे) बादर-पर्याप्तक जीव विशेषाधिक है, १५ (उनसे) सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्तक असख्यातगुणे हैं (और उनसे भी) १६ सूक्ष्म-पर्याप्तक जीव विशेषाधिक है।

२५० [१] एएसि णं भंते ! सुहुमाण बादराण य पज्जत्ताऽपज्जत्ताण कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा बादरा पज्जत्तगा १, बादरा अपज्जत्तगा असखेज्जगुणा २, सुहुमा अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ३, सुहुमा पज्जत्तगा संखेज्जगुणा ४।

[२५०-१ प्र] भगवन् ! इन सूक्ष्म और बादर जीवो के पर्याप्तको और अपर्याप्तको मे से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[२५०-१ उ] गौतम ! १ (इनमे) सबसे थोडे बादर पर्याप्तक है, २ (उनसे) बादर अपर्याप्तक असख्यातगुणे हैं, ३ (उनसे) सूक्ष्म अपर्याप्तक असख्यातगुणे है और ४ (उनसे भी) सूक्ष्म पर्याप्तक सख्यातगुणे हैं।

[२] एएसि ण भंते ! सुहुमपुढविकाइयाण बादरपुढविकाइयाण य पज्जत्ताऽपज्जत्ताण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा बादरपुढविकाइया पज्जत्तगा १, बादरपुढविकाइया अपज्जत्तया असखेज्जगुणा २, सुहुमपुढविकाइया अपज्जत्तया असखेज्जगुणा ३, सुहुमपुढविकाइया पज्जत्तया सखेज्जगुणा ४।

[२५०-२ प्र] भगवन् ! इन सूक्ष्म पृथ्वीकायिको और बादर पृथ्वीकायिको के पर्याप्तको और अपर्याप्तको मे से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२५०-२ उ] गौतम ! १ सबसे थोडे बादर पृथ्वीकायिक-पर्याप्तक है, २. (उनसे) बादर पृथ्वीकायिक-अपर्याप्तक असख्यातगुणे हैं, ३ (उनसे) सूक्ष्म पृथ्वीकायिक-अपर्याप्तक असख्यातगुणे है (और उनसे भी) ४ सूक्ष्म पृथ्वीकायिक-पर्याप्तक सख्यातगुणे हैं।

[३] एएसि ण भंते ! सुहुमआउकाइयाणं बादरआउकाइयाण य पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा बादरआउकाइया पज्जत्तया १, बादरआउकाइया अपज्जत्तया असंखेज्जगुणा २, सुहुमआउकाइया अपज्जत्तया असंखेज्जगुणा ३, सुहुमआउकाइया पज्जत्तया संखेज्ज-गुणा ४।

[२५०-३ प्र.] भगवन् ! इन सूक्ष्म अप्कायिकों और बादर अप्कायिकों के पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[२५०-३ उ] गौतम ! १ सबसे अल्प बादर अप्कायिक-पर्याप्तक हैं, २ (उनसे) बादर अप्कायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ३ (उनसे) सूक्ष्म अप्कायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं (और उनसे भी) ४ सूक्ष्म अप्कायिक-पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं।

[४] एएसि ण भंते ! सुहुमतेउकाइयाण बादरतेउकाइयाण य पज्जत्ताऽपज्जत्ताण कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा बादरतेउकाइया पज्जत्तगा १, बादरतेउकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्ज-गुणा २, सुहुमतेउकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ३, सुहुमतेउकाइया पज्जत्तगा संखेज्जगुणा ४।

[२५०-४ प्र] भगवन् ! इन सूक्ष्म तेजस्कायिकों और बादर तेजस्कायिकों के पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[२५०-४ उ] गौतम ! १ सबसे कम बादर तेजस्कायिक-पर्याप्तक हैं, २ (उनसे) बादर तेजस्कायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ३ (उनसे) सूक्ष्म तेजस्कायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ४ (उनसे भी)सूक्ष्म तेजस्कायिक-पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं।

[५] एएसि ण भंते सुहुमवाउकाइयाण, बादरवाउकाइयाण य पज्जत्ताऽपज्जत्ताण कतरे कतरे-हिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा बादरवाउकाइया पज्जत्तया १, बादरवाउकाइया अपज्जत्तया असंखेज्ज-गुणा २, सुहुमवाउकाइया अपज्जत्तया असंखेज्जगुणा ३, सुहुमवाउकाइया पज्जत्तया संखेज्जगुणा ४।

[२५०-५ प्र] भगवन् ! इन सूक्ष्म वायुकायिकों तथा बादर वायुकायिकों के पर्याप्तकों और अपर्याप्तकों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[२५०-५ उ] गौतम ! १ सबसे थोड़े बादर वायुकायिक-पर्याप्तक हैं, २ (उनसे) बादर वायुकायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे अधिक हैं, ३ (उनसे) सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्तक हैं, ४ (और उनसे भी) सूक्ष्म वायुकायिक-पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं।

[६] एएसि ण भंते ! सुहुमवणस्सतिकाइयाण बादरवणस्सतिकाइयाण य पज्जत्ताऽपज्जत्ताण कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा बादरवणस्सइकाइया पज्जत्तया १, बादरवणस्सतिकाइया अपज्जत्तया असखेज्जगुणा २, सुहुमवणस्सइकाइया अपज्जत्तगा असखेज्जगुणा ३, सुहुमवणस्सइकाइया पज्जत्तया सखेज्जगुणा ४।

[२५०-६ प्र] भगवन् ! इन सूक्ष्म वनस्पतिकायिको के पर्याप्तको और अपर्याप्तको मे से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य और विशेषाधिक है ?

[२५०-६ उ] गौतम ! १ सबसे कम बादर वनस्पतिकायिक-पर्याप्तक है, २ (उनसे) बादर वनस्पतिकायिक-अपर्याप्तक जीव असख्यातगुणे है, ३ (उनसे) सूक्ष्म वनस्पतिकायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे है (और उनसे भी) ४ सूक्ष्म वनस्पतिकायिक-पर्याप्तक सख्यातगुणे है ।

[७] एतेसि ण भते ! सुहुमनिगोदाण बादरनिगोदाण य पज्जत्ताऽपज्जत्ताण कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा बादरनिगोदा पज्जत्तगा १, बायरनिगोदा अपज्जत्तगा असखेज्जगुणा २, सुहुमनिगोया अपज्जत्तया असखेज्जगुणा ३, सुहुमनिगोदा पज्जत्तगा सखेज्जगुणा ४।

[२५०-७ प्र] भगवन् ! इन सूक्ष्म निगोदो एव बादर निगोदो के पर्याप्तको तथा अपर्याप्तको मे से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[२५०-७ उ] गौतम ! १ सबसे थोडे बादर निगोद-पर्याप्तक है, २ (उनसे) बादर निगोद-अपर्याप्तक असख्यातगुणे है, ३ (उनसे) सूक्ष्म निगोद-अपर्याप्तक असख्यातगुणे है, (और उनसे भी) ४ सूक्ष्म निगोद-पर्याप्तक सख्यातगुणे हैं ।

२५१ एएसि णं भते ! सुहुमाण सुहुमपुढविकाइयाण सुहुमआउकाइयाण सुहुमतेउकाइयाणं सुहुमवाउकाइयाण सुहुमवणस्सइकाइयाण सुहुमनिगोदाण बादराण बादरपुढविकाइयाण बादरआउकाइयाण बादरतेउकाइयाणं बादरवाउकायाण बादरवणस्सतिकाइयाणं पत्तेयसरीरबादरवणस्सइकाइयाणं बादरनिगोदाण बादरतसकाइयाण य पज्जत्ताऽपज्जत्ताण कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा बादरतेउकाइया पज्जत्तया १, बादरतसकाइया पज्जत्तगा असखेज्जगुणा २, बादरतसकाइया अपज्जत्तया असखेज्जगुणा ३, पत्तेयसरीरबादरवणप्फइकाइया पज्जत्तया असखेज्ज-गुणा ४, बादरनिगोदा पज्जत्तया असखेज्जगुणा ५, बादरपुढविकाइया पज्जत्तगा असखेज्जगुणा ६, बादरआउकाइया पज्जत्तगा असखेज्जगुणा ७, बादरवाउकाइया पज्जत्तया असखेज्जगुणा ८, बादर-तेउक्काइया अपज्जत्तया असखेज्जगुणा ९, पत्तेयसरीरबादरवणप्फइकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा १०, बायरणिगोया अपज्जत्तया असखेज्जगुणा ११, बादरपुढविकाइया अपज्जत्तया असखेज्जगुणा १२, बायरआउकाइया अपज्जत्तया असखेज्जगुणा १३, बादरवाउकाइया अपज्जत्तया असखेज्जगुणा १४, सुहुमतेउकाइया अपज्जत्तया असखेज्जगुणा १५, सुहुमपुढविकाइया अपज्जत्तगा विसेसाहिया १६, सुहुम-आउकाइया अपज्जत्तया विसेसाहिया १७, सुहुमवाउकाइया अपज्जत्तया विसेसाहिया १८, सुहुमतेउ-काइया पज्जत्तया असखेज्जगुणा १९, सुहुमपुढविकाइया पज्जत्तगा विसेसाहिया २०, सुहुमआउकाइया

[३] एएसि णं भंते ! सुहुमआउकाइयाणं बादरआउकाइयाण य पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा बादरआउकाइया पज्जत्तया १, बादरआउकाइया अपज्जत्तया असंखेज्जगुणा २, सुहुमआउकाइया अपज्जत्तया असंखेज्जगुणा ३, सुहुमआउकाइया पज्जत्तया संखेज्जगुणा ४।

[२५०-३ प्र] भगवन् ! इन सूक्ष्म अप्कायिको और बादर अप्कायिको के पर्याप्तको और अपर्याप्तको मे से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[२५०-३ उ] गौतम ! १ सबसे अल्प बादर अप्कायिक-पर्याप्तक हैं, २ (उनसे) बादर अप्कायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ३ (उनसे) सूक्ष्म अप्कायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं (और उनसे भी) ४ सूक्ष्म अप्कायिक-पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं।

[४] एएसि णं भंते ! सुहुमतेउकाइयाणं बादरतेउकाइयाण य पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा बादरतेउकाइया पज्जत्तगा १, बादरतेउकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा २, सुहुमतेउकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ३, सुहुमतेउकाइया पज्जत्तगा संखेज्जगुणा ४।

[२५०-४ प्र] भगवन् ! इन सूक्ष्म तेजस्कायिको और बादर तेजस्कायिको के पर्याप्तको और अपर्याप्तको मे से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[२५०-४ उ] गौतम ! १ सबसे कम बादर तेजस्कायिक-पर्याप्तक है, २ (उनसे) बादर तेजस्कायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ३ (उनसे) सूक्ष्म तेजस्कायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे हैं, ४ (उनसे भी) सूक्ष्म तेजस्कायिक-पर्याप्तक संख्यातगुणे हैं।

[५] एएसि णं भंते सुहुमवाउकाइयाणं बादरवाउकाइयाण य पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा बादरवाउकाइया पज्जत्तया १, बादरवाउकाइया अपज्जत्तया असंखेज्जगुणा २, सुहुमवाउकाइया अपज्जत्तया असंखेज्जगुणा ३, सुहुमवाउकाइया पज्जत्तया संखेज्जगुणा ४।

[२५०-५ प्र] भगवन् ! इन सूक्ष्म वायुकायिको तथा बादर वायुकायिको के पर्याप्तको और अपर्याप्तको मे से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[२५०-५ उ] गौतम ! १ सबसे थोडे बादर वायुकायिक-पर्याप्तक है, २ (उनसे) बादर वायुकायिक-अपर्याप्तक असंख्यातगुणे अधिक हैं, ३ (उनसे) सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्तक हैं, ४ (और उनसे भी) सूक्ष्म वायुकायिक-पर्याप्तक संख्यातगुणे है।

[६] एएसि णं भंते ! सुहुमवणस्सतिकाइयाणं बादरवणस्सतिकाइयाण य पज्जत्ताऽपज्जत्ताणं कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा बादरवणस्सइकाइया पज्जत्तया १, बादरवणस्सतिकाइया अपज्जत्तया असखेज्जगुणा २, सुहुमवणस्सइकाइया अपज्जत्तगा असखेज्जगुणा ३, सुहुमवणस्सइकाइया पज्जत्तया सखेज्जगुणा ४ ।

[२५०-६ प्र] भगवन् ! इन सूक्ष्म वनस्पतिकायिको के पर्याप्तको और अपर्याप्तको मे से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य और विशेषाधिक है ?

[२५०-६ उ] गौतम ! १ सबसे कम बादर वनस्पतिकायिक-पर्याप्तक हैं, २ (उनसे) बादर वनस्पतिकायिक-अपर्याप्तक जीव असख्यातगुणे है, ३ (उनसे) सूक्ष्म वनस्पतिकायिक-अपर्याप्तक असख्यातगुणे है (और उनसे भी) ४ सूक्ष्म वनस्पतिकायिक-पर्याप्तक सख्यातगुणे है ।

[७] एतेसि ण भते ! सुहुमनिगोदाण बादरनिगोदाण य पज्जत्ताऽपज्जत्ताण कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा बादरनिगोदा पज्जत्तगा १, बायरनिगोदा अपज्जत्तगा असखेज्जगुणा २, सुहुमनिगोया अपज्जत्तया असंखेज्जगुणा ३, सुहुमनिगोदा पज्जत्तगा सखेज्जगुणा ४ ।

[२५०-७ प्र] भगवन् ! इन सूक्ष्म निगोदो एव बादर निगोदो के पर्याप्तको तथा अपर्याप्तको मे से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[२५०-७ उ] गौतम ! १ सबसे थोडे बादर निगोद-पर्याप्तक है, २ (उनसे) बादर निगोद-अपर्याप्तक असख्यातगुणे हैं, ३ (उनसे) सूक्ष्म निगोद-अपर्याप्तक असख्यातगुणे है, (और उनसे भी) ४ सूक्ष्म निगोद-पर्याप्तक सख्यातगुणे हैं ।

२५१ एएसि ण भते ! सुहुमाण सुहुमपुढविकाइयाण सुहुमआउकाइयाण सुहुमतेउकाइयाणं सुहुमवाउकाइयाण सुहुमवणस्सइकाइयाणं सुहुमनिगोदाणं बादराण बादरपुढविकाइयाण बादरआउकाइयाण बादरतेउकाइयाण बादरवाउकायाण बादरवणस्सतिकाइयाणं पत्तेयसरीरबादरवणस्सइकाइयाण बादरनिगोदाण बादरतसकाइयाण य पज्जत्ताऽपज्जत्ताण कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा बादरतेउकाइया पज्जत्तया १, बादरतसकाइया पज्जत्तगा असखेज्जगुणा २, बादरतसकाइया अपज्जत्तया असखेज्जगुणा ३, पत्तेयसरीरबादरवणप्फइकाइया पज्जत्तया असखेज्ज-गुणा ४, बादरनिगोदा पज्जत्तया असखेज्जगुणा ५, बादरपुढविकाइया पज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ६, बादरआउकाइया पज्जत्तगा असखेज्जगुणा ७, बादरवाउकाइया पज्जत्तया असखेज्जगुणा ८, बादर-तेउक्काइया अपज्जत्तया असखेज्जगुणा ९, पत्तेयसरीरबादरवणप्फइकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा १०, बायरणिगोया अपज्जत्तया असंखेज्जगुणा ११, बादरपुढविकाइया अपज्जत्तया असखेज्जगुणा १२, बायरआउकाइया अपज्जत्तया असखेज्जगुणा १३, बादरवाउकाइया अपज्जत्तया असखेज्जगुणा १४, सुहुमतेउकाइया अपज्जत्तया असखेज्जगुणा १५, सुहुमपुढविकाइया अपज्जत्तगा विसेसाहिया १६, सुहुम-आउकाइया अपज्जत्तया विसेसाहिया १७, सुहुमवाउकाइया अपज्जत्तया विसेसाहिया १८, सुहुमतेउ-काइया पज्जत्तया असंखेज्जगुणा १९, सुहुमपुढविकाइया पज्जत्तगा विसेसाहिया २०, सुहुमआउकाइया

पज्जत्तया विसेसाहिया २१, सुहुमवाउकाइया पज्जत्तया विसेसाहिया २२, सुहुमनिगोदा अपज्जत्तया असंखेज्जगुणा २३, सुहुमनिगोदा पज्जत्तया संखेज्जगुणा २४, बादरवणप्फइकाइया पज्जत्तया अणंतगुणा २५, बादरपज्जत्तगा विसेसाहिया २६, बादरवणप्फइकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा २७, बादरअपज्जत्तया विसेसाहिया २८, बादरा विसेसाहिया २९, सुहुमवणप्फतिकाइया अपज्जत्तगा असंखेज्जगुणा ३०, सुहुमा अपज्जत्तया विसेसाहिया ३१, सुहुमवणप्फतिकाइया पज्जत्तगा संखेज्जगुणा ३२, सुहुमपज्जत्तया विसेसाहिया ३३, सुहुमा विसेसाहिया ३४। दारं ४॥

[२५१ प्र] भगवन्! इन सूक्ष्म-जीवो, सूक्ष्म-पृथ्वीकायिको, सूक्ष्म-अप्कायिको, सूक्ष्म-तेजस्कायिको, सूक्ष्म-वायुकायिको, सूक्ष्म-वनस्पतिकायिको, सूक्ष्म-निगोदो, बादर-जीवो, बादर-पृथ्वीकायिको, बादर-अप्कायिको, बादर-तेजस्कायिको, बादर-वायुकायिको, बादर-वस्पतिकायिको, प्रत्येकशरीर-बादर-वनस्पतिकायिको, बादर-निगोदो और बादर-त्रसकायिको के पर्याप्तको और अपर्याप्तको मे से कौन किनसें अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[२५१ उ] गौतम! १ सबसे अल्प बादर तेजस्कायिक पर्याप्तक है, २ (उनसे) बादर त्रसकायिक पर्याप्तक असख्यातगुणे है, ३ (उनसे) बादर त्रसकायिक अपर्याप्तक असख्यातगुणे है, ४ (उनसे) प्रत्येकशरीर बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्तक असख्यातगुणे है, ५ (उनसे) बादर निगोद पर्याप्तक असख्यातगुणे है, ६ (उनसे) बादर पृथ्वीकायिक पर्याप्तक असख्यातगुणे है, ७ (उनसे) बादर-अप्कायिक पर्याप्तक असख्यातगुणे है, ८ (उनसे) बादर वायुकायिक पर्याप्त असख्यातगुणे है, ९. (उनसे) बादर तेजस्कायिक अपर्याप्तक असख्यातगुणे है, १० (उनसे) प्रत्येकशरीर बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक असख्यातगुणे है, ११ (उनसे) बादर निगोद अपर्याप्तक असख्यातगुणे है १२ (उनसे) बादर पृथ्वीकायिक अपर्याप्तक असख्यातगुणे है, १३ (उनसे) बादर अप्कायिक अपर्याप्तक असख्यातगुणे हैं, १४ (उनसे) बादर वायुकायिक अपर्याप्तक असख्यातगुणे है, १५ (उनसे) सूक्ष्म तेजस्कायिक अपर्याप्तक असख्यातगुणे है, १६ (उनसे) सूक्ष्म पृथ्वीकायिक अपर्याप्तक विशेषाधिक है, १७ (उनसे) सूक्ष्म अप्कायिक अपर्याप्तक विशेषाधिक है, १८ (उनसे) सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, १९ (उनसे) सूक्ष्म तेजस्कायिक पर्याप्तक असख्यातगुणे है, २० (उनसे) सूक्ष्म पृथ्वीकायिक पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, २१ (उनसे) सूक्ष्म अप्कायिक पर्याप्तक विशेषाधिक है, २२ (उनसे) सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्तक विशेषाधिक है, २३ (उनसे) सूक्ष्म निगोद पर्याप्तक असख्यातगुणे है, २४ (उनसे) सूक्ष्म निगोद पर्याप्तक सख्यातगुणे है, २५ (उनसे) बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्तक अनन्तगुणे है, २६ (उनसे) बादर पर्याप्तक जीव विशेषाधिक है, २७ (उनसे) बादर वनस्पतिकाय अपर्याप्तक असख्यातगुणे है, २८ (उनसे) बादर अपर्याप्तक जीव विशेषाधिक है, २९ (उनसे) बादर जीव विशेषाधिक है, ३० (उनसे) सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक असख्यातगुणे हैं, ३१ (उनसे) सूक्ष्म अपर्याप्तक जीव विशेषाधिक है, ३२ (उनसे) सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्तक सख्यातगुणे है, ३३ (उनसे) सूक्ष्म पर्याप्तक जीव विशेषाधिक है, (और उनसे भी) ३४ सूक्ष्म जीव विशेषाधिक है। चतुर्थ-द्वार ॥४॥

विवेचन—कायद्वार के अन्तर्गत सूक्ष्म-बादर-कायद्वार—प्रस्तुत १५ सूत्रो (सू २३७ से २५१ तक) मे सूक्ष्म और बादर को लेकर कायद्वार के माध्यम से विभिन्न पहलुओ से अल्पबहुत्व का निरूपण किया गया है।

१ समुच्चय मे सूक्ष्म जीवो का अल्पबहुत्व—सूक्ष्म तेजस्कायिक जीव सबमे अल्प है, वे असख्यात लोकाकाश प्रदेश के बराबर है। इनकी अपेक्षा सूक्ष्म पृथ्वीकायिक विशेषाधिक है, क्योकि वे प्रचुर असख्यात लोकाकाश प्रदेशो के बराबर है। इनसे सूक्ष्म अप्कायिक विशेषाधिक है, क्योकि वे प्रचुरतर असख्येय लोकाकाश प्रदेशो के बराबर है। इनसे सूक्ष्म वायुकायिक विशेषाधिक है, क्योकि वे प्रचुरतम असख्यात लोकाकाश प्रदेश-प्रमाण है। उनकी अपेक्षा सूक्ष्म निगोद असख्यातगुणे है। जो अनन्तजीव एक शरीर के आश्रय मे रहते है, वे निगोद जीव कहलाते है। निगोद दो प्रकार के होते है—सूक्ष्म और बादर। सूरणकन्द आदि मे बादर निगोद है, सूक्ष्म निगोद समस्त लोक मे व्याप्त है। वे एक-एक गोलक मे असख्यात-असख्यात होते है। इसलिए वे वायुकायिको से असख्यात-गुणे है। उनसे सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अनन्तगुणे है, क्योकि प्रत्येकनिगोद मे अनन्त-अनन्त जीव होते है। उनकी अपेक्षा सामान्य सूक्ष्मजीव विशेषाधिक है, क्योकि सूक्ष्म पृथ्वीकाय आदि का भी उनमे समावेश हो जाता है।

२. सूक्ष्म-अपर्याप्तक जीवो का अल्पबहुत्व—सूक्ष्म अपर्याप्तक जीवो का अल्पबहुत्व भी पूर्वोक्त क्रम से समझ लेना चाहिए।

३. सूक्ष्म पर्याप्तक जीवो का अल्पबहुत्व—इसके अल्पबहुत्व का क्रम भी पूर्ववत् है।

४ सूक्ष्म से लेकर सूक्ष्मनिगोद तक के पर्याप्तक-अपर्याप्तक जीवो का पृथक्-पृथक् अल्प-बहुत्व—इनके प्रत्येक के अल्पबहुत्व मे सूक्ष्म अपर्याप्तक सबसे कम है और उनसे सूक्ष्म पर्याप्तक सख्यातगुणे है। सूक्ष्म जीवो मे अपर्याप्तको की अपेक्षा पर्याप्तक जीव चिरकालस्थायी रहते है। इसलिए वे सदैव अधिक सख्या मे पाए जाते है।

५ समुदितरूप से सूक्ष्म पर्याप्तक-अपर्याप्तक जीवो का अल्पबहुत्व—सबसे अल्प सूक्ष्म तेजस्-कायिक अपर्याप्त हैं, कारण पहले बता चुके है। उनसे उत्तरोत्तर क्रमश सूक्ष्म पृथ्वीकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म अप्कायिक अपर्याप्त, सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त विशेषाधिक हैं, विशेषाधिक का अर्थ है—थोडा अधिक, न दुगुना, न तिगुना। इनकी विशेषाधिकता का कारण पहले कहा जा चुका है। उनकी (सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त की) अपेक्षा सूक्ष्म तेजस्कायिक पर्याप्तक सख्यातगुणे है, अपर्याप्त से पर्याप्त सख्यातगुणे अधिक होते है, यह पहले कहा जा चुका है। अत उनसे सूक्ष्म पृथ्वीकायिक पर्याप्तक, सूक्ष्म अप्कायिक पर्याप्तक एव सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्तक उत्तरोत्तर क्रमश विशेषाधिक है, उनसे सूक्ष्म निगोद-अपर्याप्तक असख्यातगुणे हैं, क्योकि वे अतिप्रचुर सख्या मे है। उनसे सूक्ष्म निगोद पर्याप्तक सख्यातगुणे हैं, क्योकि सूक्ष्म जीवो मे अपर्याप्तो से पर्याप्त सामान्यत सख्यातगुणे अधिक होते है। उनसे सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक अनन्तगुणे हैं, क्योकि प्रत्येक निगोद मे वे अनन्त-अनन्त होते है। उनसे सामान्यत सूक्ष्म अपर्याप्त जीव विशेषाधिक है, क्योकि सूक्ष्म पृथ्वीकायादि का भी उनमे समावेश हो जाता है। उनसे सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्तक सख्यातगुणे है, इसका कारण पहले कहा जा चुका है। उनकी अपेक्षा सूक्ष्म पर्याप्तक विशेषाधिक है, क्योकि सूक्ष्म पृथ्वीकायादि पर्याप्तको का भी उनमे समावेश है। उनसे सूक्ष्म जीव विशेषाधिक है, क्योकि उनमे सूक्ष्म पर्याप्तको-अपर्याप्तको, सभी का समावेश हो जाता है। इस प्रकार सूक्ष्माश्रित पाच सूत्र हुए। अब बादराश्रित पाच सूत्र इस प्रकार है—

६ समुच्चय मे बादर जीवो का अल्पबहुत्व—सबसे कम बादर त्रसकायिक है, क्योकि द्वीन्द्रियादि ही बादर त्रस है, और वे शेष कायो से अल्प है। उनसे बादर तेजस्कायिक असख्यातगुणे

है, क्योकि वे असख्यात लोकाकाश-प्रदेश-प्रमाण है। उनमे प्रत्येकशरीर बादर वनस्पतिकायिक असख्यातगुणे है, क्योकि बादर तेजस्कायिक तो सिर्फ मनुष्यक्षेत्र मे ही होते है जबकि प्रत्येकशरीर बादर वनस्पतिकायिको का क्षेत्र उनसे असख्यातगुणा अधिक है। प्रज्ञापनासूत्र के द्वितीय स्थानपद मे बताया है कि स्वस्थान मे ७ घनोदधि, ७ घनोदधिवलय, इसी तरह अधोलोक, ऊर्ध्वलोक, तिरछे लोक आदि मे जहाँ-जहाँ जलाशय होते है, वहाँ सर्वत्र बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्तको के स्थान है। जहाँ बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्तको के स्थान है, वही इनके अपर्याप्तको के स्थान होते है। अत क्षेत्र असख्यातगुणा होने से वे भी असख्यातगुणे है। उनसे बादर निगोद असख्यातगुणे है, क्योकि वे अत्यन्त सूक्ष्म अवगाहनावाले होने के कारण जल मे शैवाल आदि के रूप मे सर्वत्र पाए जाते है। इनकी अपेक्षा बादर पृथ्वीकायिक असख्यातगुणे है, क्योकि वे आठो पृथ्वियो मे तथा विमानो, भवनो एव पर्वतो आदि मे विद्यमान हैं। बादर अप्कायिक उनसे भी अनन्तगुणे अधिक है, क्योकि समुद्रो मे जल की प्रचुरता होती है। उनकी अपेक्षा बादर वायुकायिक असख्यातगुणे है, क्योकि सभी पोली जगहो मे वायु विद्यमान रहती है। उनसे बादर वनस्पतिकायिक अनन्तगुणे अधिक है, क्योकि बादर निगोद मे अनन्त जीव होते हैं। बादर जीव उनसे विशेषाधिक होते है, क्योकि बादर द्वीन्द्रिय आदि सभी जीवो का उनमे समावेश होता है।

७-८ बादर अपर्याप्तको तथा पर्याप्तको का अल्पबहुत्व—बादर जीवो के अपर्याप्तको एव पर्याप्तको के अल्पबहुत्व का क्रम भी प्राय पूर्वसूत्र (सू २४२) के समान है। बादर पर्याप्तको के अल्पबहुत्व मे सिर्फ प्रारम्भ मे अन्तर है—वहाँ सबसे अल्प बादर त्रसकायिक अपर्याप्तक के बदले बादर तेजस्कायिक पर्याप्तक है। शेष सब पूर्ववत् ही है। इनके अल्पबहुत्व का स्पष्टीकरण भी पूर्ववत् समझ लेना चाहिए।

९. बादर पर्याप्तक-अपर्याप्तकों का पृथक्-पृथक् अल्पबहुत्व—बादर जीवो मे एक-एक पर्याप्तक के आश्रित असख्येय बादर अपर्याप्तक उत्पन्न होते है। इस नियम से बादर जीवो, बादर पृथ्वीकायिको आदि मे सर्वत्र पर्याप्तको से अपर्याप्तक असख्यातगुणे अधिक होते है।

१० समुदितरूप से बादर, बादर पृथ्वीकायिकादि पर्याप्तक-अपर्याप्तको का अल्पबहुत्व—सबसे कम बादर तेजस्कायिक पर्याप्तक है, बादर त्रसकायिक पर्याप्तक उनसे असख्यातगुणे है, बादर त्रसकायिक अपर्याप्तक, बादर प्रत्येकवनस्पतिकायिक पर्याप्त, बादर निगोद पर्याप्तक, बादर पृथ्वीकायिक पर्याप्तक, बादर अप्कायिक पर्याप्तक एव बादर वायुकायिक पर्याप्तक क्रमश उत्तरोत्तर असख्यगुणे है। इनके अल्पबहुत्व को पूर्वोक्त युक्तियो से समझ लेना चाहिए। उनसे बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्तक अनन्तगुणे है, क्योकि प्रत्येक बादरनिगोद मे वे अनन्त-अनन्त होते है। उनकी अपेक्षा समुच्चय बादर पर्याप्त विशेषाधिक है, क्योकि उनमे बादर तेजस्कायिक आदि सभी का समावेश हो जाता है। बादर पर्याप्तो की अपेक्षा बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक असख्येयगुणे हैं, उनसे बादर अपर्याप्तक एव बादर क्रमश उत्तरोत्तर विशेषाधिक हैं, इसका कारण पूर्ववत् समझ लेना चाहिए।

११ समुच्चय मे सूक्ष्म-बादरो का अल्पबहुत्व—(सू २४७ के अनुसार) सबसे कम बादर त्रसकायिक है, उसके बाद बादर वायुकायिकपर्यन्त बादरगत विकल्पो का अल्पबहुत्व पूर्ववत् समझना चाहिए। तदनन्तर सूक्ष्म निगोदपर्यन्त सूक्ष्मगत विकल्पो का अल्पबहुत्व भी पूर्ववत् जान लेना चाहिए। उसके पश्चात् बादर वनस्पतिकायिक अनन्तगुणे है, क्योकि प्रत्येक बादरनिगोद मे अनन्त-अनन्त जीव होते है। उनसे बादर अपर्याप्तक विशेषाधिक है, क्योकि बादर तेजस्कायिक आदि का भी उनमे

समावेश हो जाता है। उनसे सूक्ष्म वनस्पतिकायिक असख्यातगुणे हैं, क्योकि बादर निगोदो से सूक्ष्म निगोद असख्यातगुणे है। उनसे सामान्यत सूक्ष्म विशेषाधिक है, क्योकि सूक्ष्म तेजस्कायिकादि का भी उनमे समावेश हो जाता है।

१२-१३ सूक्ष्म-बादर के पर्याप्तको एव अपर्याप्तको का अल्पबहुत्व—(सू २४८ मे अनुसार) अपर्याप्तको मे सबसे अल्प बादर त्रसकायिक अपर्याप्त हैं। उसके पश्चात् बादर तेजस्कायिक, प्रत्येक-शरीर बादर वनस्पतिकायिक, बादर निगोद, बादर पृथ्वीकायिक, बादर अप्कायिक, बादर वायुकायिक अपर्याप्त उत्तरोत्तर क्रमश असख्यातगुणे हैं। इसका स्पष्टीकरण द्वितीय अपर्याप्तकसूत्र की तरह समझना चाहिए। बादर वायुकायिक अपर्याप्तको से सूक्ष्म तेजस्कायिक अपर्याप्त असख्यातगुणे है, क्योकि वे अतिप्रचुर असख्यात लोकाकाशप्रदेशो के बराबर है, उनसे सूक्ष्म पृथ्वीकायिक, सूक्ष्म अप्कायिक, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म निगोद अपर्याप्तक उत्तरोत्तर क्रमश असख्यातगुणे है, इसका समाधान सूक्ष्मपचसूत्री मे द्वितीयसूत्रवत् समझ लेना चाहिए। सूक्ष्म निगोद-अपर्याप्तको से बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक जीव अनन्तगुणे है, क्योकि प्रत्येक बादरनिगोद मे अनन्त जीवो का सद्-भाव है। उनसे सामान्यत बादर अपर्याप्तक विशेषाधिक है, क्योकि बादर त्रसकायिक अपर्याप्तको का भी उनमे समावेश है। उनसे सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक असख्यातगुणे है, क्योकि बादर निगोद-अपर्याप्तको से सूक्ष्म निगोद-पर्याप्तक असख्यातगुणे हैं। उनसे सामान्यत सूक्ष्मापर्याप्तक विशेषाधिक है, क्योकि उनमे सूक्ष्म तेजस्कायिक अपर्याप्तको का भी समावेश हो जाताहै। पर्याप्तको मे (सू २४९ के अनुसार) बादर तेजस्कायिक पर्याप्तक सबसे थोडे है। उसके पश्चात् बादर त्रसकायिक, बादर प्रत्येकशरीर वनस्पतिकायिक, बादर निगोद, बादर पृथ्वीकायिक, बादर अप्कायिक एव बादर वायुकायिक-पर्याप्तक उत्तरोत्तर क्रमश असख्यातगुणे है, क्योकि बादर वायुकायिक असख्यातप्रतर-प्रदेश-राशिप्रमाण है। उसके पश्चात् सूक्ष्म पृथ्वीकायिक, सूक्ष्म अप्कायिक, सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्तक उत्तरोत्तर क्रमश विशेषाधिक है। सूक्ष्म वायुकायिक-पर्याप्तको से सूक्ष्मनिगोद-पर्याप्तक असख्यातगुणे हैं, क्योकि वे अतिप्रचुर होने से प्रत्येक गोलक मे विद्यमान है। उनसे बादर वनस्पतिकायिक-पर्याप्तक अनन्तगुणे है, क्योकि प्रत्येक बादरनिगोद मे अनन्त-अनन्त जीव होते है। उनसे सामान्यत सूक्ष्म पर्याप्तक विशेषाधिक है, क्योकि उनमे सूक्ष्म तेजस्कायिकादि पर्याप्तको का भी समावेश होता है।

१४ सूक्ष्म-बादर पर्याप्तक-अपर्याप्तको का पृथक्-पृथक् अल्पबहुत्व—(सूत्र २५० के अनुसार) सबसे कम बादर पर्याप्तक है, क्योकि वे परिमित क्षेत्रवर्ती है, उनसे बादर अपर्याप्तक असख्यातगुणे है, क्योकि एक-एक बादर पर्याप्तक के आश्रित असख्यात बादर अपर्याप्तक उत्पन्न होते है, उनसे सूक्ष्म अपर्याप्तक असख्यातगुणे है, क्योकि सर्वलोक मे व्याप्त होने के कारण उनका क्षेत्र असख्यातगुणा है, उनसे सूक्ष्म पर्याप्तक सख्यातगुणे है, क्योकि चिरकालस्थायी रहने के कारण वे सदैव सख्यातगुणे पाए जाते है। इसी प्रकार आगे सूक्ष्म-बादर पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक एव निगोदो के पर्याप्तको-अपर्याप्तको के पृथक्-पृथक् अल्पबहुत्व की घटना कर लेनी चाहिए।

१५ समुदितरूप मे सूक्ष्म-बादर के पर्याप्तक-अपर्याप्तको का अल्पबहुत्व—(सू २५१ के अनुसार) सबसे अल्प बादर तेजस्कायिक है, क्योकि कुछ समय कम आवलिका-समयो से गुणित आवलिका-समयवर्ग मे जितनी समयराशि होती है, वे उतने प्रमाण हैं। उनसे बादर त्रसकायिक पर्याप्तक असख्यातगुणे है, क्योकि प्रतर मे जितने अगुल के संख्यातभाग-मात्र खण्ड होते है, ये उतने

प्रमाण है। उनसे बादरत्रसकायिक अपर्याप्त असख्यातगुणे है। जो पूर्ववत् युक्ति से समझना चाहिए। उनसे प्रत्येक बादर वनस्पतिकायिक, बादर निगोद, बादर पृथ्वीकायिक, बादर अप्कायिक और बादर वायुकायिक-पर्याप्तक यथोत्तरक्रम से असख्यातगुणे है। इसके समाधान के लिए पूर्ववत् युक्ति सोच लेनी चाहिए। उनसे बादर तेजस्कायिक-अपर्याप्तक असख्यातगुणे है, क्योकि वे असख्यात लोकाकाशप्रदेशप्रमाण है। उसके बाद प्रत्येकशरीर बादर वनस्पतिकायिक, बादर निगोद, बादर-पृथ्वीकायिक, बादर अप्कायिक, बादर वायुकायिक-अपर्याप्तक उत्तरोत्तर क्रम से असख्यातगुणे है। उनसे सूक्ष्म तेजस्कायिक अपर्याप्तक असख्यातगुणे है, उनसे सूक्ष्म पृथ्वीकायिक, सूक्ष्म अप्कायिक, सूक्ष्म वायुकायिक-अपर्याप्तक उत्तरोत्तर क्रमश विशेषाधिक है, उनसे सूक्ष्म तेजस्कायिक पर्याप्त सख्यातगुणे है, क्योकि सूक्ष्मो मे अपर्याप्तो की अपेक्षा पर्याप्त ओघत ही सख्येयगुणे होते है। उनसे सूक्ष्म पृथ्वीकायिक, सूक्ष्म अप्कायिक एव सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्तक उत्तरोत्तर क्रम से विशेषाधिक हैं। उनसे सूक्ष्म निगोद अपर्याप्तक असख्येयगुणे है, क्योकि वे अतिप्रचुररूप मे सर्वलोक मे होते हैं। उनसे पूर्व नियमानुसार सूक्ष्मनिगोद-पर्याप्तक सख्यातगुणे है। उनसे बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्तक अनन्तगुणे है, यह भी पूर्वोक्त युक्ति से समझ लेना चाहिए। उनसे बादर पर्याप्तक विशेषाधिक है, क्योकि उनमे बादर पर्याप्त तेजस्कायिकादि का भी समावेश हो जाता है। उनसे बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक असख्येयगुणे है, क्योकि प्रत्येक-बादर निगोद के आश्रित असख्यात बादर निगोद-अपर्याप्तक उत्पन्न होते है। उनकी अपेक्षा सामान्यतया बादर विशेषाधिक है, क्योकि उनमे पर्याप्तको का समावेश भी होता है। उनसे सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्त असख्येयगुणे है, क्योकि बादरनिगोदो से सूक्ष्म निगोद-अपर्याप्तक असख्यातगुणे होते ही है। उनसे सामान्यतया सूक्ष्म-अपर्याप्तक सख्यातगुणे है, क्योकि सूक्ष्म पृथ्वीकायादि के अपर्याप्तको का भी उनमे समावेश होता है। उनसे सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्त सख्यातगुणे हैं, क्योकि इनके अपर्याप्तो से पर्याप्त सख्यातगुणे होते है। उनसे सामान्यत सूक्ष्म पर्याप्तक विशेषाधिक है, क्योकि उनमे पर्याप्तक सूक्ष्म पृथ्वीकायिकादि का भी समावेश होता है। उनकी अपेक्षा पर्याप्त-अपर्याप्तविशेषणरहित केवल सूक्ष्म (सामान्य) विशेषाधिक हैं, क्योकि इनमे पर्याप्त-अपर्याप्त दोनो का समावेश हो जाता है। इस प्रकार सूक्ष्म-बादर-समुदायगत अल्पबहुत्व समझ लेना चाहिए।[1]

।। चतुर्थ कायद्वार समाप्त ।।

पंचम योगद्वार : योगो की अपेक्षा से जीवो का अल्पबहुत्व—

२५२ एतेसि ण भंते ! जीवाण सजोगीण मणजोगीण वइजोगीणं कायजोगीण अजोगीण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा मणजोगी १, वइजोगी असखेज्जगुणा २, अजोगी अणंतगुणा ३, कायजोगी अणतगुणा ४, सजोगी विसेसाहिया ५। दारं ५ ।।

[२५२ प्र] भगवन् ! इन सयोगी (योगसहित), मनोयोगी, वचनयोगी, काययोगी और अयोगी जीवो मे से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

---

१ (क) पण्णवणासुत्त (मूलपाठ युक्त) भा १, पृ ८८ से ९६ तक
(ख) प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक पृ १२४ से १३४ तक

[२५२ उ] गौतम ! १ सबसे अल्प जीव मनोयोग वाले है, २. (उनसे) वचनयोग वाले जीव असख्यातगुणे है, ३ (उनकी अपेक्षा) अयोगी अनन्तगुणे है, ४ (उनकी अपेक्षा) काययोगी अनन्तगुणे है और (उनसे भी) ५ सयोगी विशेषाधिक है । —पचम द्वार ।।५।।

विवेचन—पचम योगद्वार योगो की अपेक्षा से जीवो का अल्पबहुत्व—प्रस्तुत सूत्र (२५२) मे सयोगी, अयोगी, मनो-वचन-काययोगी की अपेक्षा से अल्पबहुत्व का विचार किया गया है ।

सबसे कम मनोयोगी जीव हैं, क्योकि सज्ञीपर्याप्त जीव ही मनोयोग वाले होते है और वे थोडे ही है। उनसे वचनयोगी असख्यातगुणे हैं, क्योकि द्वीन्द्रिय आदि वचनयोगी सज्ञीजीवो से असख्यातगुणे हैं, उनकी अपेक्षा अयोगी अनन्तगुणे है, क्योकि सिद्धजीव अनन्त है। उनसे काययोग वाले जीव अनन्तगुणे है, क्योकि अकेले वनस्पतिकायिकजीव ही सिद्धो से अनन्त है। यद्यपि अनन्त निगोदजीवो का एक शरीर होता है, तथापि उसी शरीर से सभी आहारादि ग्रहण करते हैं, इसलिए उन सभी के काययोगी होने के कारण उनके अनन्तगुणत्व मे कोई बाधा नही आती । उनकी अपेक्षा सामान्यत सयोगी विशेषाधिक हैं, क्योकि सयोगी मे द्वीन्द्रिय से लेकर पचेन्द्रिय तक के जीव आ जाते है ।[1]

छठा वेदद्वार : वेदों की अपेक्षा से जीवों का अल्पबहुत्व—

२५३ एएसि णं भंते ! जीवाणं सवेदगाण इत्थीवेदगाण पुरिसवेदगाण नपु सकवेदगाण अवेदगाण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा पुरिसवेदगा १, इत्थीवेदगा सखेज्जगुणा २, अवेदगा अणतगुणा ३, नपुंसगवेदगा अणंतगुणा ४, सवेयगा विसेसाहिया ५ । दार ६ ।।

[२५३ प्र] भगवन् ! इन सवेदी (वेदसहित), स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, नपु सकवेदी और अवेदी जीवो मे से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य और विशेषाधिक हैं ?

[२५३ उ] गौतम ! १ सबसे थोडे जीव पुरुषवेदी है, २ (उनसे) स्त्रीवेदी सख्यातगुणे है, ३ (उनसे) अवेदी अनन्तगुणे है, ४ (उनकी अपेक्षा) नपु सकवेदी अनन्तगुणे हैं और (उनसे भी) ५ सवेदी विशेषाधिक है । छठा द्वार ।। ६ ।।

विवेचन—छठा वेदद्वार: वेदो की अपेक्षा से जीवो का अल्पबहुत्व—प्रस्तुत सूत्र (२५३) मे वेदद्वार के माध्यम से जीवो मे अल्पबहुत्व का प्रतिपादन किया गया है ।

सबसे थोडे पुरुषवेदी है, क्योकि सज्ञी तिर्यञ्चो, मनुष्यो और देवो मे ही पुरुषवेद पाया जाता है । उनसे स्त्रीवेदी जीव सख्यातगुणे अधिक है, क्योकि जीवाभिगमसूत्र मे कहा है—"तिर्यचयोनिक पुरुषो की अपेक्षा तिर्यँचयोनिक स्त्रिया तीन गुनी और त्रि-अधिक होती है तथा मनुष्यपुरुषो से मनुष्यस्त्रिया सत्तावीसगुणी एव सत्तावीस अधिक होती है, एव देवो से देविया (देवागनाएँ) बत्तीसगुणी तथा बत्तीस अधिक होती है ।" इनकी अपेक्षा अवेदक (सिद्ध) अनन्तगुणे होते है, क्योकि स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपु सकवेद से रहित, नौवे गुणस्थान के कुछ ऊपरी भाग से आगे के सभी जीव तथा सिद्ध जीव, ये सभी अवेदी कहलाते है, और सिद्ध जीव अनन्त है । अवेदको की अपेक्षा नपु सकवेदी अनन्तगुणे है, क्योकि नारक, एकेन्द्रिय जीव आदि सव नपु सकवेदी होते है और अकेले

१ प्रज्ञापना मलय वृत्ति, पत्राक १३४

वनस्पतिकायिक जीव अनन्त है, जो सब नपु सकवेदी ही है। उनकी अपेक्षा सामान्यत सवेदी जीव विशेषाधिक है, क्योकि स्त्री-पुरुष-नपु सकवेदी सभी जीवो का उनमे समावेश हो जाता है।[1]

सप्तम कषायद्वार : कषायों की अपेक्षा से जीवो का अल्पबहुत्व—

२५४. एतेसि ण भते ! जीवाण सकसाईण कोहकसाईण माणकसाईण मायकसाईण लोभकसाईण अकसाईण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा अकसायी १, माणकसायी अणतगुणा २, कोहकसायी विसेसाहिया ३, मायकसाई विसेसाहिया ४, लोहकसाई विसेसाहिया ५, सकसाई विसेसाहिया ६। दार ७॥

[२५४ प्र] भगवन् ! इन सकषायी, क्रोधकषायी, मानकषायी, मायाकषायी, लोभकषायी और अकषायी जीवो मे से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[२५४ उ] गौतम ! १ सबसे थोडे जीव अकषायी है, २ (उनसे) मानकषायी जीव अनन्तगुणे है, ३ (उनसे) क्रोधकषायी जीव विशेषाधिक है, ४ उनसे मायाकषायी जीव विशेषाधिक है, ५ उनसे लोभकषायी विशेषाधिक है और (उनसे भी) ६ सकषायी जीव विशेषाधिक है।

विवेचन—सप्तम कषायद्वार· कषायो की अपेक्षा जीवो का अल्पबहुत्व—प्रस्तुत सूत्र(२५४) मे कषाय की अपेक्षा से जीवो के अल्पबहुत्व का विचार किया गया है।

कषायो की अपेक्षा जीवो की न्यूनाधिकता—अकषायी—कषायपरिणाम से रहित जीव सबसे कम है, क्योकि कतिपय क्षीणकषाय आदि गुणस्थानवर्ती मनुष्य एव सिद्ध जीव ही कषाय से रहित होते है। उनसे मानकषायी जीव अनन्तगुणे इसलिए है कि छहो जीव-निकायो मे मानकषाय पाया जाता है। उनसे क्रोधकषाय वाले, मायाकषाय वाले एव लोभकषाय वाले क्रमश उत्तरोत्तर विशेषाधिक हैं, क्योकि क्रोधादिकषायो के परिणाम का काल यथोत्तर विशेषाधिक है। पूर्व-पूर्व कषायो का उत्तरोत्तर कषायो मे क्रमश सद्भाव है ही तथा लोभकषायी की अपेक्षा सकषायी जीव विशेषाधिक है, क्योकि सामान्य कषायोदय वाले जीव कुछ अधिक ही है, उनमे मानादि कषायोदय वाले सभी जीवो का समावेश हो जाता है।

सकषायी शब्द का विशेषार्थ—कषाय शब्द से कषायोदय अर्थ ग्रहण करना चाहिए। इस दृष्टि से सकषाय का अर्थ होता है—कषायोदयवान् या जिसमे वर्तमान मे कषाय विद्यमान है वह, अथवा जिसमे विपाकावस्था को प्राप्त कषायकर्म के परमाणु अपने उदय को प्रदर्शित कर रहे हैं, वह जीव।[2]

---

१ (क) प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक १३४-१३५

(ख) तिरिक्खजोणियपुरिसेहिंतो तिरिक्खजोणिय-इत्थीओ तिगुणीओ, तिरूवाहियाओ य। तहा मणुस्सपुरिसेहिंतो मणुस्सइत्थीओ सत्तावीसगुणीओ सत्तावीसरूवुत्तराओ य, तया देवपुरिसेहिंतो देवित्थीओ बत्तीसगुणाओ बत्तीसरूवुत्तराओ॥ —जीवाभिगमसूत्र

२ प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक १३५

अष्टम लेश्याद्वार : लेश्या की अपेक्षा जीवों का अल्पबहुत्व—

२५५. एएसि ण भंते ! जीवाण सलेस्साणं किण्हलेस्साण नीललेस्साण काउलेस्साणं तेउ-लेस्साण पम्हलेस्साण सुक्कलेस्साण अलेस्साण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा सुक्कलेस्सा १, पम्हलेस्सा सखेज्जगुणा २, तेउलेस्सा सखेज्ज-गुणा ३, अलेस्सा अणतगुणा ४, काउलेस्सा अणतगुणा ५, णीललेस्सा विसेसाहिया ६, किण्हलेस्सा विसेसाहिया ७, सलेस्सा विसेसाधिया ८ । दारं ८ ॥

[२५५ प्र] भगवन् ! इन सलेश्यो, कृष्णलेश्या वालो, नीललेश्या वालो, कापोतलेश्या वालो तेजोलेश्या वालो, पद्मलेश्या वालो, शुक्ललेश्या वालो एव लेश्यारहित (अलेश्य) जीवो मे से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[२५५ उ] गौतम ! १ सबसे थोडे शुक्ललेश्या वाले जीव है, २ (उनसे) पद्मलेश्या वाले सख्यातगुणे हैं, ३ (उनसे) तेजोलेश्या वाले जीव सख्यातगुणे है, ४ (उनसे) लेश्यारहित जीव अनन्तगुणे हैं, ५ (उनसे) कापोतलेश्या वाले अनन्तगुणे है, ६ (उनसे) नीललेश्या वाले विशेषाधिक हैं, ७ (उनसे) कृष्णलेश्या वाले विशेषाधिक हैं, ८ (उनसे) सलेश्य जीव विशेषाधिक है ।

अष्टमद्वार ॥ ८ ॥

विवेचन—अष्टम लेश्याद्वार: लेश्या की अपेक्षा जीवो का अल्पबहुत्व—प्रस्तुत सूत्र (२५५) मे सलेश्य, पृथक्-पृथक् षट्लेश्यायुक्त एव अलेश्य जीवो के अल्पबहुत्व की प्ररूपणा की गई है ।

लेश्याओं की अपेक्षा से अल्पबहुत्व—सबसे अल्प शुक्ललेश्या वाले जीव है, क्योकि शुक्ललेश्या लान्तक से ले कर अनुत्तर वैमानिक देवो तक मे, कतिपय गर्भज कर्मभूमि के सख्यातवर्ष की आयु वाले मनुष्यो मे तथा कतिपय सख्यातवर्ष की आयुवाले तिर्यंच-स्त्रीपुरुषो मे ही पाई जाती है । उनकी अपेक्षा पद्मलेश्या वाले जीव संख्यातगुणे है, क्योकि पद्मलेश्या सनत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्मलोक-कल्प वासी देवो मे, बहुसख्यक गर्भज-कर्मभूमिज सख्यात वर्ष की आयु वाले मनुष्य-स्त्रीपुरुषो मे तथा गर्भज-तिर्यञ्च-स्त्रीपुरुषो मे पाई जाती है और ये समुदित सनत्कुमार देव आदि, लान्तकदेव आदि से सख्यातगुणे अधिक है । उनसे तेजोलेश्या वाले सख्यातगुणे हैं, क्योकि समस्त सौधर्म, ईशान-कल्प के वैमानिक देवो मे, सभी ज्योतिष्क देवो मे तथा कतिपय भवनपति, वाणव्यन्तर, गर्भज तिर्यञ्चपचेन्द्रियो और मनुष्यो मे, बादर-पर्याप्त-एकेन्द्रियो मे तेजोलेश्या पाई जाती है । यद्यपि ज्योतिष्कदेव भवनवासी देवो तथा सनत्कुमार आदि देवो से असख्यातगुणे होने से तेजोलेश्या वाले जीव असख्यातगुणे कहने चाहिए, तथापि पद्मलेश्या वालो से तेजोलेश्या वाले जीव सख्यातगुणे ही है । यह कथन केवल देवो की लेश्याओ को लेकर नही किया गया है, अपितु समग्रजीवो को लेकर किया गया है, इसलिए पद्मलेश्या वालो मे देवो के अतिरिक्त बहुत-से तिर्यञ्च भी सम्मिलित हैं । इसी तरह तेजोलेश्या वालो मे भी है, और पद्मलेश्या वाले तिर्यञ्च भी बहुत हैं । अतएव उनसे तेजोलेश्या वाले सख्यातगुणे ही अधिक हो सकते है, असख्यातगुणे नही । तेजोलेश्या वालो से अलेश्य (लेश्यारहित—सिद्ध) अनन्तगुणे है, क्योकि सिद्धजीव अनन्त हैं । उनसे कापोतलेश्या वाले जीव अनन्तगुणे है, क्योकि वनस्पतिकायिक जीवो मे भी कापोतलेश्या सम्भव है और वनस्पतिकायिक

जीव सिद्धो से अनन्तगुणे है। उनसे नीललेश्या वाले विशेषाधिक है, क्योकि नीललेश्या वाले जीव कापोतलेश्या वालो से प्रचुरतर होते है। उनसे कृष्णलेश्या वाले विशेषाधिक है, क्योकि वे प्रभूततम है। उनकी अपेक्षा सामान्यत सलेश्य जीव विशेषाधिक है, क्योकि सलेश्य मे नीललेश्यादि वाले सभी लेश्यावान् जीवो का समावेश हो जाता है।[1]

नौवाँ दृष्टि (सम्यक्त्व) द्वार : तीन दृष्टियो की अपेक्षा जीवो का अल्पबहुत्व—

२५६. एतेसि ण भते ! जीवाण सम्मद्दिट्ठीण मिच्छद्दिट्ठीण सम्मामिच्छादिट्ठीण च कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा सम्मामिच्छद्दिट्ठी १, सम्मद्दिट्ठी अणतगुणा २, मिच्छद्दिट्ठी अणतगुणा ३। दार ९ ॥

[२५६ प्र] भगवन् ! सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि एव सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवो मे कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[२५६ उ] गौतम ! १ सबसे थोडे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव है, २ (उनसे) सम्यग्दृष्टि जीव अनन्तगुणे है और ३ (उनसे भी) मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तगुणे है। नौवाँ दृष्टिद्वार ॥ ९ ॥

विवेचन—नौवाँ दृष्टि द्वार तीन दृष्टियो की अपेक्षा से जीवो का अल्पबहुत्व—प्रस्तुत सूत्र (२५६) मे सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि और मिश्रदृष्टि की अपेक्षा जीवो के अल्पबहुत्व का विचार किया गया है।

सबसे थोडे सम्यग्मिथ्या (मिश्र) दृष्टि जीव है, क्योकि मिश्रदृष्टि के परिणाम का काल अन्तर्मुहूर्त्त प्रमाण ही है, अतएव बहुत ही अल्पकाल होने से प्रश्न के समय वे थोडे से पाए जाते है। उनकी अपेक्षा सम्यग्दृष्टि जीव अनन्तगुणे है, क्योकि सिद्ध अनन्त है और वे सम्यग्दृष्टियो मे ही सम्मिलित है। सम्यग्दृष्टियो की अपेक्षा मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तगुणे है, क्योकि वनस्पतिकायिक आदि जीव सिद्धो से अनन्तगुणे है और वनस्पतिकायिक मिथ्यादृष्टि ही होते है।[2]

दसवाँ ज्ञानद्वार : ज्ञान और अज्ञान की अपेक्षा जीवो का अल्पबहुत्व—

२५७ एतेसि ण भते ! जीवाणं आभिणिबोहियणाणीण सुतणाणीण ओहिणाणीण मणपज्जवणाणीण केवलणाणीण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा मणपज्जवणाणी १, ओहिणाणी असखेज्जगुणा २, आभिणिबोहियणाणी सुयणाणी दो वि तुल्ला विसेसाहिया ३, केवलणाणी अणतगुणा ४।

---

१ (क) प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक १३५-१३६

(ख) ' पम्हलेसा गब्भवक्कतियतिरिक्खजोणिया सखेज्जगुणा, तिरिक्खजोणिणीओ सखेज्जगुणाओ, तेउलेसा गब्भवक्कतियतिरिक्खजोणिया सखेज्जगुणा, तेउलेसाओ तिरिक्खजोणिणीओ सखेज्जगुणाओ।'

प्रज्ञापना महादण्डक (म वृ पृ १३६)

२. प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक १३७

[२५७ प्र] भगवन्! आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी मन पर्यवज्ञानी और केवलज्ञानी जीवो मे से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[२५७ उ] गौतम! १ सबसे अल्प मन पर्यवज्ञानी है, २ (उनसे) अवधिज्ञानी असख्यातगुणे है ३ आभिनिबोधिक (मति) ज्ञानी और और श्रुतज्ञानी, ये दोनो तुल्य है और (अवधिज्ञानियो से) विशेषाधिक है, ४ (उनसे) केवलज्ञानी अनन्तगुणे है।

२५८ एतेसि ण भते! जीवाण मइअण्णाणीण सुतअण्णाणीण विहगणाणीण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा! सव्वत्थोवा जीवा विभगणाणी १, मइअण्णाणी सुतअण्णाणी दो वि तुल्ला अणतगुणा २।

[२५८ प्र] भगवन्! इन मति-अज्ञानी, श्रुत-अज्ञानी और विभगज्ञानी जीवो मे से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक होते है ?

[२५८ उ] गौतम! १ सबसे थोडे विभगज्ञानी है, २ मति-अज्ञानी और श्रुत-अज्ञानी दोनो तुल्य है और (विभगज्ञानियो से) अनन्तगुणे है।

२५९ एतेसि ण भंते! जीवाण आभिणिबोहियणाणीण सुयणाणीण ओहिणाणीण मणपज्जवणाणीण केवलणाणीण मतिअण्णाणीण सुतअण्णाणीण विभंगनाणीण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा! सव्वत्थोवा जीवा मणपज्जवणाणी १, ओहिणाणी असखेज्जगुणा २, आभिणिबोहियणाणी सुतणाणी य दो वि तुल्ला विसेसाहिया ३, विहंगणाणी असखेज्जगुणा ४, केवलणाणी अणंतगुणा ५, मइअण्णाणी सुतअण्णाणी य दो वि तुल्ला अणतगुणा ६। दार १०॥

[२५९ प्र] भगवन्! इन आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मन पर्यवज्ञानी, केवलज्ञानी, मतिअज्ञानी, श्रुतअज्ञानी और विभगज्ञानी जीवो मे से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२५९ उ] गौतम! १ सबसे अल्प मन.पर्यवज्ञानी जीव हैं, २ (उनसे) अवधिज्ञानी असख्यातगुणे हैं, ३ आभिनिबोधिकज्ञानी और श्रुतज्ञानी दोनो तुल्य है और (अवधिज्ञानियो से) विशेषाधिक है, ४ (उनसे) विभगज्ञानी असख्यातगुणे है, ५ (उनसे) केवलज्ञानी अनन्तगुणे है, ६ मति-अज्ञानी और श्रुत-अज्ञानी, दोनो तुल्य है और (केवलज्ञानियो से) अनन्तगुणे हैं।

दशम (ज्ञान) द्वार ॥१०॥

विवेचन—दसवाँ ज्ञानद्वार : ज्ञान-अज्ञान की अपेक्षा से जीवों का अल्पबहुत्व—प्रस्तुत तीन सूत्रो (२५७ से २५९ तक) मे पाच ज्ञान और तीन अज्ञान की दृष्टि से जीवो के अल्पबहुत्व का विचार किया गया है।

ज्ञान की अपेक्षा से अल्पबहुत्व—सबसे थोडे मन पर्यायज्ञानी हैं, क्योकि मन पर्यवज्ञान आमर्ष-औषधि आदि ऋद्धिप्राप्त सयमी पुरुषो को ही होता है। उनकी अपेक्षा अवधिज्ञानी असख्यातगुणे है, क्योकि अवधिज्ञान नारको, तिर्यञ्चपचेन्द्रियो, मनुष्यो और देवो को भी होता है। उनसे आभिनिबोधिक-

ज्ञानी और श्रुतज्ञानी दोनो विशेषाधिक हे, क्योकि जिन सज्ञी-तिर्यञ्चपचेन्द्रियो और मनुष्यो को अवधिज्ञान नही होता है, उन्हे भी आभिनिबोधिकज्ञान और श्रुतज्ञान हो सकते हैं। इन दोनो ज्ञानो को परस्पर तुल्य कहने का कारण यह है कि ये दोनो ज्ञान परस्पर सहचर है।[1] इन दोनो ज्ञानियो से केवलज्ञानी अनन्तगुणे है, क्योकि सिद्ध केवलज्ञानी होते है और वे अनन्त हैं।

अज्ञान की अपेक्षा से अल्पबहुत्व—सबसे थोडे विभगज्ञानी है, क्योकि विभगज्ञान मिथ्यादृष्टि नैरयिको व देवो और किन्ही-किन्ही तिर्यंचपचेन्द्रियो और मनुष्यो को ही होता है। विभगज्ञान की अपेक्षा मति-अज्ञान और श्रुत-अज्ञान दोनो अनन्तगुणे हे, क्योकि वनस्पतिकायिक जीव भी मति-अज्ञानी और श्रुत-अज्ञानी होते है, और वे अनन्त होते है। स्वस्थान मे मति-अज्ञानी और श्रुत-अज्ञानी दोनो तुल्य है, क्योकि ये दोनो अज्ञान परस्पर सहचर है।[2]

ज्ञानी और अज्ञानी दोनो का सामुदायिकरूप से अल्पबहुत्व—सबसे थोडे मन पर्यवज्ञानी हैं, तथा उनसे आगे का अल्पबहुत्व पूर्ववत् ही पूर्वोक्त युक्ति से समझ लेना चाहिए। मति-श्रुतज्ञानियो से विभगज्ञानी जीव असख्यातगुणे है, क्योकि देवगति और मनुष्यगति मे सम्यग्दृष्टियो से मिथ्यादृष्टि जीव असख्यातगुणे है। तथा देवो और नारको मे जो सम्यग्दृष्टि होते है, वे अवधिज्ञानी और मिथ्यादृष्टि विभगज्ञानी होते है, इस दृष्टि से विभगज्ञानी उनसे असख्यातगुणे है। उनसे केवलज्ञानी अनन्तगुणे हैं, क्योकि सिद्ध अनन्त होते है। उनसे मति-अज्ञानी और श्रुत-अज्ञानी अनन्तगुणे है, क्योकि मति-श्रुत-अज्ञानी वनस्पतिकायिकजीव भी होते है, और सिद्धो से भी अनन्तगुणे है। स्वस्थान मे ये दोनो अज्ञान परस्पर तुल्य है।[3]

ग्यारहवाँ दर्शनद्वार : दर्शन की अपेक्षा जीवो का अल्पबहुत्व—

२६० एतेसि ण भते ! जीवाण चक्खुदसणीण अचक्खुदसणीण ओहिदंसणीण केवलदसणीण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा ओहिदसणी १, चक्खुदसणी असखेज्जगुणा २, केवलदसणी अणतगुणा ३, अचक्खुदसणी अणतगुणा ४। दार ११ ॥

[२६० प्र] भगवन् ! इन चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी और केवलदर्शनी जीवो मे से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[२६० उ] गौतम ! १ सबसे थोडे अवधिदर्शनी जीव है, २ (उनसे) चक्षुदर्शनी जीव असख्यातगुणे है, ३ (उनसे) केवलदर्शनी अनन्तगुणे है, (और उनसे भी) ४ अचक्षुदर्शनी जीव अनन्तगुणे हैं। ग्यारहवाँ (दर्शन) द्वार ॥११॥

विवेचन—ग्यारहवाँ दर्शनद्वार दर्शन की अपेक्षा से जीवो का अल्पबहुत्व—प्रस्तुत सूत्र (२६०) मे चार दर्शनो की अपेक्षा से जीवो के अल्पबहुत्व का विचार किया गया है।

---

१ 'जत्थ मइनाण, तत्थ सुयनाण, जत्थ सुयनाण, तत्थ मइनाण'

२ 'जत्थ मइ-अन्नाण, तत्थ सुय-अन्नाण, जत्थ सुय-अन्नाण तत्थ मइ-अन्नाण।'

—प्रज्ञापना मलय वृत्ति, पत्राक १३७

३ प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक १३७

सबसे थोडे अवधिदर्शनी जीव इसलिए है कि अवधिदर्शन देवो, नारको और कतिपय सञ्ज्ञी-तिर्यंच पचेन्द्रिय जीवो और मनुष्यो को ही होता है। उनकी अपेक्षा चक्षुदर्शनी जीव असख्यातगुणे है, क्योकि चक्षुदर्शन सभी देवो, नारको, गर्भज मनुष्यो, सञ्ज्ञी तिर्यंचपचेन्द्रियो, असञ्ज्ञी तिर्यंचपचेन्द्रियो और चतुरिन्द्रिय जीवो को भी होता है। उनकी अपेक्षा केवलदर्शनी अनन्तगुणे है, क्योकि सिद्ध अनन्त है। उनकी अपेक्षा भी अचक्षुदर्शनी अनन्तगुणे है, क्योकि अचक्षुदर्शनियो मे वनस्पतिकायिक भी है, जो अकेले ही सिद्धो से अनन्तगुणे है।[1]

बारहवाँ संयतद्वार : संयत आदि की अपेक्षा जीवो का अल्पबहुत्व—

२६१ एतेसि ण भते ! जीवाण सजयाण असजयाण सजयासजयाणं नोसजयनोअसजयनो-संजतासंजताण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा सजता १, सजयासजता असखेज्जगुणा २, नोसजतनोअसजत-नोसंजतासजता अणतगुणा ३, असजता अणतगुणा ४। दार १२ ॥

[२६१ प्र] भगवन् ! इन सयतो, असयतो, सयतासयतो और नोसयत-नोअसयत-नोसयतासयत जीवो मे से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य और विशेषाधिक है ?

[२६१ उ] गौतम ! १ सबसे अल्प सयत जीव है, २ (उनसे) सयतासयत असख्यातगुणे हैं, ३ (उनसे) नोसयत-नोअसयत-नोसयतासयत जीव अनन्तगुणे है (और उनसे भी) ४ असयत जीव अनन्तगुणे हैं। बारहवाँ (सयत) द्वार ॥१२॥

विवेचन—बारहवाँ संयतद्वार सयत आदि की अपेक्षा से जीवो का अल्पबहुत्व—प्रस्तुत सूत्र (२६१) मे सयत, असयत, सयतासयत एव नोसयत-नोअसयत-नोसयतासयत की दृष्टि से जीवो के अल्पबहुत्व का निरूपण किया गया है।

सबसे थोडे सयत है, क्योकि मनुष्यलोक मे वे उत्कृष्टत (अधिक से अधिक) कोटिसहस्र-पृथक्त्व, अर्थात्—दो हजार करोड से नौ हजार करोड तक ही पाए जाते है।[2] उनकी अपेक्षा सयतासयत (देशविरत) असख्यातगुणे है, क्योकि मनुष्य के अतिरिक्त असख्यात तिर्यंचपचेन्द्रियो मे भी देशविरति पाई जाती है। उनसे नोसयत-नोअसयत (नोसयतासयत) अनन्तगुणे है, क्योकि जो सयत, असयत तथा सयतासयत तीनो नही कहे जा सकते, ऐसे सिद्ध जीव अनन्त है। उनसे असयत अनन्तगुणे हैं, क्योकि वनस्पतिकायिक जीव भी असयत है और वे अकेले ही सिद्धो से अनन्तगुणे है।[3]

तेरहवाँ उपयोगद्वार : उपयोगद्वार की दृष्टि से जीवों का अल्पबहुत्व—

२६२. एतेसि णं भते ! जीवाण सागारोवउत्ताणं अणागारोवउत्ताण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा अणागारोवउत्ता १, सागारोवउत्ता सखेज्जगुणा २। दार १३ ॥

---

१ प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक १३८

२ 'कोडिसहस्सपुहुत्त मणुयलोए सजयाण' —प्रज्ञापना म वृत्ति, पृ १३८

३ प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक १३८

ज्ञानी और श्रुतज्ञानी दोनो विशेषाधिक है, क्योकि जिन सज्ञी-तिर्यञ्चपचेन्द्रियो और मनुष्यो को अवधिज्ञान नही होता है, उन्हे भी आभिनिबोधिकज्ञान और श्रुतज्ञान हो सकते है। इन दोनो ज्ञानो को परस्पर तुल्य कहने का कारण यह है कि ये दोनो ज्ञान परस्पर सहचर है।[1] इन दोनो ज्ञानियो से केवलज्ञानी अनन्तगुणे है, क्योकि सिद्ध केवलज्ञानी होते है और वे अनन्त हैं।

अज्ञान की अपेक्षा से अल्पबहुत्व—सबसे थोडे विभगज्ञानी है, क्योकि विभगज्ञान मिथ्यादृष्टि नैरयिको व देवो और किन्ही-किन्ही तिर्यचपचेन्द्रियो और मनुष्यो को ही होता है। विभगज्ञान की अपेक्षा मति-अज्ञान और श्रुत-अज्ञान दोनो अनन्तगुणे है, क्योकि वनस्पतिकायिक जीव भी मति-अज्ञानी और श्रुत-अज्ञानी होते है, और वे अनन्त होते है। स्वस्थान मे मति-अज्ञानी और श्रुत-अज्ञानी दोनो तुल्य है, क्योकि ये दोनो अज्ञान परस्पर सहचर है।[2]

ज्ञानी और अज्ञानी दोनो का सामुदायिकरूप से अल्पबहुत्व—सबसे थोडे मन पर्यवज्ञानी हैं, तथा उनसे आगे का अल्पबहुत्व पूर्ववत् ही पूर्वोक्त युक्ति से समझ लेना चाहिए। मति-श्रुतज्ञानियो से विभगज्ञानी जीव असख्यातगुणे है, क्योकि देवगति और मनुष्यगति मे सम्यग्दृष्टियो से मिथ्यादृष्टि जीव असख्यातगुणे हैं। तथा देवो और नारको मे जो सम्यग्दृष्टि होते है, वे अवधिज्ञानी और मिथ्यादृष्टि विभगज्ञानी होते है, इस दृष्टि से विभगज्ञानी उनसे असख्यातगुणे है। उनसे केवलज्ञानी अनन्तगुणे हैं, क्योकि सिद्ध अनन्त होते है। उनसे मति-अज्ञानी और श्रुत-अज्ञानी अनन्तगुणे है, क्योकि मति-श्रुत-अज्ञानी वनस्पतिकायिकजीव भी होते है, और सिद्धो से भी अनन्तगुणे है। स्वस्थान मे ये दोनो अज्ञान परस्पर तुल्य हैं।[3]

ग्यारहवाँ दर्शनद्वार : दर्शन की अपेक्षा जीवो का अल्पबहुत्व—

२६० एतेसि ण भते ! जीवाण चक्खुदसणीण अचक्खुदसणीण ओहिदसणीण केवलदसणीण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा ओहिदसणी १, चक्खुदसणी असखेज्जगुणा २, केवलदसणी अणतगुणा ३, अचक्खुदसणी अणतगुणा ४। दार ११ ॥

[२६० प्र] भगवन् ! इन चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी और केवलदर्शनी जीवो मे से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[२६० उ] गौतम ! १ सबसे थोडे अवधिदर्शनी जीव है, २ (उनसे) चक्षुदर्शनी जीव असख्यातगुणे है, ३ (उनसे) केवलदर्शनी अनन्तगुणे है, (और उनसे भी) ४ अचक्षुदर्शनी जीव अनन्तगुणे है। ग्यारहवाँ (दर्शन) द्वार ॥११॥

विवेचन—ग्यारहवाँ दर्शनद्वार दर्शन की अपेक्षा से जीवो का अल्पबहुत्व—प्रस्तुत सूत्र (२६०) मे चार दर्शनो की अपेक्षा से जीवो के अल्पबहुत्व का विचार किया गया है।

---

१ 'जत्थ मइनाण, तत्थ सुयनाण, जत्थ सुयनाण, तत्थ मइनाण'

२ 'जत्थ मइ-अन्नाण, तत्थ सुय-अन्नाणं, जत्थ सुय-अन्नाण तत्थ मइ-अन्नाण ।'

—प्रज्ञापना मलय वृत्ति, पत्राक १३७

३ प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक १३७

सबसे थोड़े अवधिदर्शनी जीव इसलिए है कि अवधिदर्शन देवो, नारको और कतिपय सज्ञी-तिर्यच पचेन्द्रिय जीवो और मनुष्यो को ही होता है। उनकी अपेक्षा चक्षुदर्शनी जीव असख्यातगुणे है, क्योकि चक्षुदर्शन सभी देवो, नारको, गर्भज मनुष्यो, सज्ञी तिर्यंचपचेन्द्रियो, असज्ञी तिर्यंचपचेन्द्रियो और चतुरिन्द्रिय जीवो को भी होता है। उनकी अपेक्षा केवलदर्शनी अनन्तगुणे हे, क्योकि सिद्ध अनन्त है। उनकी अपेक्षा भी अचक्षुर्दर्शनी अनन्तगुणे है, क्योकि अचक्षुर्दर्शनियो मे वनस्पतिकायिक भी है, जो अकेले ही सिद्धो से अनन्तगुणे है।[1]

बारहवाँ संयतद्वार : संयत आदि की अपेक्षा जीवो का अल्पबहुत्व—

२६१ एतेसि णं भंते ! जीवाण सजयाण असजयाण सजयासजयाणं नोसजयनोअसजयनो-संजतासजताण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा सजता १, सजयासजता असखेज्जगुणा २, नोसजतनोअसजत-नोसंजतासजता अणतगुणा ३, असजता अणतगुणा ४। दार १२ ॥

[२६१ प्र] भगवन् ! इन सयतो, असयतो, सयतासयतो और नोसयत-नोअसयत-नोसयता-सयत जीवो मे से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य और विशेषाधिक है ?

[२६१ उ] गौतम ! १ सबसे अल्प सयत जीव है, २ (उनसे) सयतासयत असख्यातगुणे हैं, ३ (उनसे) नोसयत-नोअसयत-नोसयतासयत जीव अनन्तगुणे है (और उनसे भी) ४ असयत जीव अनन्तगुणे है। बारहवाँ (सयत) द्वार ॥१२॥

विवेचन—बारहवाँ संयतद्वार : सयत आदि की अपेक्षा से जीवो का अल्पबहुत्व—प्रस्तुत सूत्र (२६१) मे सयत, असयत, सयतासयत एव नोसयत-नोअसयत-नोसयतासयत की दृष्टि से जीवो के अल्पबहुत्व का निरूपण किया गया है।

सबसे थोडे सयत है, क्योकि मनुष्यलोक मे वे उत्कृष्टत (अधिक से अधिक) कोटिसहस्र-पृथक्त्व, अर्थात्—दो हजार करोड से नौ हजार करोड तक ही पाए जाते है।[2] उनकी अपेक्षा सयतासयत (देशविरत) असख्यातगुणे है, क्योकि मनुष्य के अतिरिक्त असख्यात तिर्यचपचेन्द्रियो मे भी देशविरति पाई जाती है। उनसे नोसयत-नोअसयत (नोसयतासयत) अनन्तगुणे हैं, क्योकि जो सयत, असयत तथा सयतासयत तीनो नही कहे जा सकते, ऐसे सिद्ध जीव अनन्त है। उनसे असयत अनन्तगुणे हैं, क्योकि वनस्पतिकायिक जीव भी असयत है और वे अकेले ही सिद्धो से अनन्तगुणे है।[3]

तेरहवाँ उपयोगद्वार : उपयोगद्वार की दृष्टि से जीवो का अल्पबहुत्व—

२६२. एतेसि णं भते ! जीवाण सागारोवउत्ताणं अणागारोवउत्ताण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा अणागारोवउत्ता १, सागारोवउत्ता सखेज्जगुणा २। दार १३ ॥

---

१ प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक १३८

२ 'कोडिसहस्सपुहुत्त मणुयलोए सजयाण' —प्रज्ञापना म वृत्ति, पृ १३८

३ प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक १३८

[२६२ प्र] भगवन् ! इन साकारोपयोग-युक्त और अनाकारोपयोग-युक्त जीवो मे से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[२६२ उ] गौतम ! १ सबसे अल्प अनाकारोपयोग वाले जीव है, २ (उनसे) साकारोपयोग वाले जीव सख्यातगुणे है । तेरहवाँ (उपयोग) द्वार ।।१३।।

विवेचन—तेरहवाँ उपयोगद्वार : उपयोग की दृष्टि से जीवो का अल्पबहुत्व—प्रस्तुत सूत्र (२६२) मे साकारोपयोगयुक्त और अनाकारोपयोगयुक्त जीवो के अल्पबहुत्व की चर्चा की गई है ।

अनाकारोपयोग का काल थोडा होता है, जबकि साकारोपयोगकाल उससे असख्यातगुणा अधिक होता है । इसीलिए कहा गया है कि पृच्छासमय मे अनाकारोपयोग-(दर्शनोपयोग) काल थोडा होने से वे बहुत थोडे पाए जाते है, उनकी अपेक्षा साकारोपयोग-(ज्ञानोपयोग) उपयुक्त जीव सख्यातगुणे होते है । क्योकि साकारोपयोगकाल लम्बा होने से पृच्छा के समय वे बहुत सख्या मे पाये जाते हैं ।[1]

चौदहवाँ आहारद्वार : आहारक-अनाहारक जीवों का अल्पबहुत्व—

२६३. एतेसि ण भते ! जीवाण आहारगाणं अणाहारगाण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा अणाहारगा १, आहारगा असखेज्जगुणा २ । दारं १४ ।।

[२६३ प्र] भगवन् ! इन आहारको और अनाहारकजीवो मे से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२६३ उ] गौतम ! १ सबसे कम अनाहारक जीव हैं, २ (उनसे) आहारक जीव असख्यातगुणे है । चौदहवाँ (आहार) द्वार ।।१४।।

विवेचन—चौदहवाँ आहारद्वार : आहार की अपेक्षा जीवो का अल्पबहुत्व—प्रस्तुत सूत्र (२६३) मे आहारक-अनाहारक जीवो के अल्पबहुत्व की चर्चा की गई है ।

सबसे थोडे अनाहारक जीव है, क्योकि विग्रहगति करते हुए जीव, समुद्घातप्राप्त केवली, और अयोगी सिद्ध जीव ही अनाहारक होते हैं ।[2] उनकी अपेक्षा आहारक जीव असख्यातगुणे हैं । प्रश्न हो सकता है कि आहारक जीवो मे वनस्पतिकायिक भी है और वे सिद्धो से अनन्त है, तो अनाहारको से वे अनन्तगुणे क्यो नही बताए गए ? असख्यातगुणे ही क्यो बताए गए ? इसका समाधान यह है कि सूक्ष्म निगोद सब मिलकर भी असख्यात है, उसमे भी वे अन्तर्मुहूर्त्तसमय की राशि के तुल्य हैं, तथा सदैव विग्रहगति मे ही रहते है, इसलिए उनमे अनाहारक भी बहुत अधिक होते है और वे समग्रजीवराशि के असख्येयभाग के तुल्य होते हैं । अत उनकी अपेक्षा आहारकजीव असख्यातगुणे ही है, अनन्तगुणे नही ।[3]

---

१ प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक १३८

२ विग्गहगइमावन्ना केवलिणो समुहया अजोगी य ।
सिद्धा य अणाहारा, सेसा आहारगा जीवा ।। —प्रज्ञापना म वृत्ति, पत्राक १३८

३ (क) प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक १३८

पन्द्रहवाँ भाषकद्वार : भाषा की अपेक्षा से जीवो का अल्पबहुत्व—

२६४. एतेसि ण भते ! जीवाण भासगाणं अभासगाण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा भासगा १, अभासगा अणतगुणा २ । दार १५ ॥

[२६४ प्र] भगवन् ! इन भाषक और अभाषक जीवो मे से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक होते है ?

[२६४ उ] गौतम ! १ सबसे अल्प भाषक जीव है, २ (उनसे) अनन्तगुणे अभाषक है ।
पन्द्रहवाँ (भाषक) द्वार ॥१५॥

विवेचन—पन्द्रहवाँ भाषकद्वार . भाषा की अपेक्षा से जीवो का अल्पबहुत्व—प्रस्तुत सूत्र मे भाषक और अभाषक जीवो के अल्पबहुत्व की चर्चा की गई है ।

भाषक और अभाषक की व्याख्या—जो जीव भाषालब्धि-सम्पन्न है, वे भाषक और जो भाषालब्धि-विहीन है, वे अभाषक कहलाते है ।

भाषको की अपेक्षा अभाषक अनन्तगुणे क्यो ?—भाषक जीव द्वीन्द्रिय से लेकर पचेन्द्रिय तक के जीव है, जबकि अभाषको मे एकेन्द्रिय जीव है, जिनमे अकेले वनस्पतिकायिक जीव ही अनन्त है, इसलिए भाषको से अभाषक अनन्तगुणे कहे गए है ।[1]

सोलहवाँ परित्तद्वार : परित्त आदि की दृष्टि से जीवो का अल्पबहुत्व—

२६५ एतेसि ण भते ! जीवाण परित्ताण अपरित्ताण नोपरित्तनोअपरित्ताण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा परित्ता १, नोपरित्तनो अपरित्ता अणंतगुणा २, अपरित्ता अणतगुणा ३ । दार १६ ॥

[२६५ प्र] भगवन् ! इन परीत, अपरीत और नोपरीत-नोअपरीत जीवो मे से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[२६५ उ] गौतम ! १ सबसे थोडे परीत जीव है, २. (उनसे) नोपरीत-नोअपरीत जीव अनन्तगुणे है और ३ (उनसे भी) अपरीत जीव अनन्तगुणे है ।
सोलहवाँ (परीत्त) द्वार ॥ १६ ॥

विवेचन—सोलहवाँ परीतद्वार : परीत आदि की दृष्टि से जीवो का अल्पबहुत्व—प्रस्तुत सूत्र (२६५) मे परीत, अपरीत और नोपरीत-नोअपरीत जीवो की न्यूनाधिकता का प्रतिपादन किया गया है ।

परीत आदि की व्याख्या—परीत का सामान्यतया अर्थ होता है—परिमित या सीमित । इस दृष्टि से 'परीत' दो प्रकार के बताए गए है—भवपरीत और कायपरीत । **भवपरीत** उन्हे कहते है,

---

१ प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक १३९

जिनका ससार (भवभ्रमण) कुछ कम अपार्द्ध-पुद्गलपरावर्तनमात्र रह गया है। 'कायपरीत' कहते है—प्रत्येकशरीरी को। भवपरीत शुक्लपाक्षिक होते है और कायपरीत प्रत्येकशरीरी होते है। अपरीत उन्हे कहते है—जिनका ससार परीत—परिमित न हुआ हो, ऐसे जीव कृष्णपाक्षिक होते है।

परीत आदि की दृष्टि से अल्पबहुत्व—पूर्वोक्त दोनो प्रकार के परीत जीव सबसे थोडे हैं, क्योकि समस्त जीवो की अपेक्षा शुक्लपाक्षिक एव प्रत्येकशरीरी कम है। उनकी अपेक्षा नोपरीत-नोअपरीत अर्थात् इन दोनो से अलग सिद्ध भगवन् है, जो कि अनन्त है, इसलिए अनन्तगुणे है और उनसे अपरीत यानी कृष्णपाक्षिक जीव अनन्तगुणे है, क्योकि अकेले वनस्पतिकायिक जीव ही अनन्त है। वे सिद्धो से अनन्तगुणे है।[1]

सत्रहवाँ पर्याप्तद्वार : पर्याप्ति की अपेक्षा से जीवो का अल्पबहुत्व—

२६६ एएसि णं भंते ! जीवाण पज्जत्ताण अपज्जत्ताण नोपज्जत्तनोअपज्जत्ताण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा नोपज्जत्तगनोअपज्जत्तगा १, अपज्जत्तगा अणतगुणा २, पज्जत्तगा सखेज्जगुणा ३। दार १७ ॥

[२६६ प्र] भगवन् ! इन पर्याप्तक, अपर्याप्तक और नोपर्याप्तक-नोअपर्याप्तक जीवो मे से कौन किनसे अल्प, बहुल, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[२६६ उ] गौतम ! १ सबसे अल्प नोपर्याप्तक-नोअपर्याप्तक जीव है, २ (उनसे) अपर्याप्तक जीव अनन्तगुणे है, (और उनसे भी) ३ पर्याप्तक जीव सख्यातगुणे है।

सत्रहवाँ (पर्याप्त) द्वार ॥ १७ ॥

विवेचन—सत्रहवाँ पर्याप्तद्वार पर्याप्ति की अपेक्षा से जीवो का अल्पबहुत्व—प्रस्तुत (२६६वे) सूत्र मे पर्याप्तक, अपर्याप्तक और नोपर्याप्तक-नोअपर्याप्तक जीवो के अल्पबहुत्व का निरूपण किया गया है।

पर्याप्ति की अपेक्षा से जीवो की न्यूनाधिकता—सबसे कम नोपर्याप्तक-नोअपर्याप्तक जीव हैं, क्योकि पर्याप्ति और अपर्याप्ति से रहित सिद्ध है, जो पर्याप्तको और अपर्याप्तको से कम हैं। उनकी अपेक्षा से अपर्याप्तक अनन्तगुणे है, क्योकि साधारणवनस्पतिकायिक सिद्धो से अनन्तगुणे हैं, जो सर्वकाल मे अपर्याप्तक ही पाए जाते हैं। उनकी अपेक्षा पर्याप्तक जीव सख्यातगुणे है।[2]

अठारहवाँ सूक्ष्मद्वार : सूक्ष्म आदि की दृष्टि से जीवो का अल्पबहुत्व—

२६७ एएसि ण भंते ! जीवाण सुहुमाण बादराण नोसुहुमनोबादराण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा णोसुहुमणोबादरा १, बादरा अणतगुणा २, सुहुमा असखेज्ज-गुणा ३। दार १८ ॥

---

१ प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक १३९

२ प्रज्ञापनासूत्र, मलय वृत्ति, पत्राक १३९

[२६७ प्र] भगवन् ! सूक्ष्म, बादर और नोसूक्ष्म-नोबादर जीवों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[२६७ उ] गौतम ! १ सबसे अल्प नोसूक्ष्म-नोबादर जीव हैं, २ (उनसे) बादर जीव अनन्तगुणे हैं और (उनसे भी) ३ सूक्ष्म जीव असंख्यातगुणे हैं। अठारहवाँ (सूक्ष्म) द्वार ॥१८॥

विवेचन—अठारहवाँ सूक्ष्मद्वार—प्रस्तुत सूत्र (२६७) में सूक्ष्म, बादर एवं नोसूक्ष्म-नोबादर जीवों के अल्पबहुत्व का निरूपण किया गया है।

सूक्ष्मद्वार के माध्यम से अल्पबहुत्व—सबसे अल्प नोसूक्ष्म-नोबादर अर्थात् सिद्धजीव हैं, क्योंकि वे सूक्ष्म जीवराशि और बादर जीवराशि के अनन्तभाग के बराबर हैं। उनसे बादरजीव अनन्तगुणे हैं, क्योंकि बादर निगोदजीव सिद्धों से अनन्तगुणे हैं। उनसे सूक्ष्म जीव असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि बादरनिगोदों की अपेक्षा सूक्ष्मनिगोद असंख्यातगुणे अधिक हैं।[1]

उन्नीसवाँ संज्ञीद्वार : संज्ञी आदि की दृष्टि से जीवों का अल्पबहुत्व—

२६८. एतेसि णं भंते ! जीवाणं सण्णीणं असण्णीणं नोसण्णीनोअसण्णीण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा सण्णी १, णोसण्णीणोअसण्णी अणंतगुणा २, असण्णी अणंतगुणा ३। दारं १९॥

[२६८ प्र] भगवन् ! संज्ञी, असंज्ञी और नोसंज्ञी-नोअसंज्ञी जीवों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[२६८ उ] गौतम ! १ सबसे अल्प संज्ञी जीव हैं, २ (उनसे) नोसंज्ञी-नोअसंज्ञी जीव अनन्तगुणे हैं (और उनसे भी) ३ असंज्ञीजीव अनन्तगुणे हैं। उन्नीसवाँ (संज्ञी) द्वार ॥ १९ ॥

विवेचन—उन्नीसवाँ संज्ञीद्वार संज्ञी आदि की दृष्टि से जीवों का अल्पबहुत्व—प्रस्तुत सूत्र (२६८) में संज्ञी, असंज्ञी और नोसंज्ञी-नोअसंज्ञी जीवों के अल्पबहुत्व का निरूपण किया गया है।

सबसे कम संज्ञी जीव हैं, क्योंकि विशिष्ट मन वाले जीव ही संज्ञी होते हैं और ऐसे जीव सबसे कम हैं। संज्ञियों की अपेक्षा नोसंज्ञी-नोअसंज्ञी (सिद्ध) जीव अनन्तगुणे हैं, उनकी अपेक्षा असंज्ञीजीव अनन्तगुणे हैं, क्योंकि वनस्पतिकाय आदि जीव अनन्त हैं, जो सिद्धों से भी अनन्तगुणे हैं।[2]

बीसवाँ भवसिद्धिकद्वार : भवसिद्धिकद्वार के माध्यम से अल्पबहुत्व—

२६९. एतेसि णं भंते ! जीवाणं भवसिद्धियाणं अभवसिद्धियाणं णोभवसिद्धियणोअभवसिद्धियाण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा अभवसिद्धिया १, णोभवसिद्धियणोअभवसिद्धिया अणंतगुणा २, भवसिद्धिया अणंतगुणा ३। दारं २०॥

---

१ प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक १३९

२ प्रज्ञापनासूत्र मलय. वृत्ति, पत्रांक १३९

[२६९ प्र] भगवन् ! इन भवसिद्धिक, अभवसिद्धिक और नोभवसिद्धिक-नोअभवसिद्धिक जीवो मे से कौन किन से अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[२६९ उ] गौतम ! १ सबसे थोडे अभवसिद्धिक जीव है, २ (उनसे) नोभवसिद्धिक-नोअभवसिद्धिक जीव अनन्तगुणे है और (उनसे भी) ३ भवसिद्धिक जीव अनन्तगुणे है ।

बीसवाँ (भव) द्वार ॥२०॥

विवेचन—बीसवाँ भवसिद्धिकद्वार भवसिद्धिकद्वार के माध्यम से जीवो का अल्पबहुत्व— प्रस्तुत सूत्र (२६९) मे भवसिद्धिक, अभवसिद्धिक और नोभवसिद्धिक-नोअभवसिद्धिक जीवो का अल्पबहुत्व प्रतिपादित किया गया है ।

सबसे कम अभवसिद्धिक—अभव्य—मोक्षगमन के अयोग्य जीव है, क्योकि वे जघन्य युक्तानन्तक प्रमाण वाले हैं । अनुयोगद्वार के अनुसार—'उत्कृष्ट परीतानन्त मे एक रूप (सख्या) मिलाने से **'जघन्य युक्तानन्तक'** होता है, अभवसिद्धिक उतने ही हैं ।[1] उनकी अपेक्षा नोभवसिद्धिक-नोअभवसिद्धिक अनन्तगुणे है, क्योकि जो भव्य भी नही और अभव्य भी नही, ऐसे जीव सिद्ध है और वे अजघन्योत्कृष्ट युक्तानन्तक-परिमाण है, इस कारण वे अनन्त है । उनकी अपेक्षा भवसिद्धिक—भव्य—मोक्षगमनयोग्य जीव अनन्तगुणे है, क्योकि सिद्ध एक भव्यनिगोदराशि के अनन्तभागकल्प होते है और ऐसी भव्य जीवनिगोदराशियाँ लोक मे असख्यात हैं ।[2]

इक्कीसवाँ अस्तिकायद्वार : अस्तिकायद्वार के माध्यम से षड्द्रव्य का अल्पबहुत्व—

२७० एतेसि ण भंते ! धम्मत्थिकाय-अधम्मत्थिकाय-आगासत्थिकाय-जीवत्थिकाय-पोग्गलत्थिकाय-अद्धासमयाण दव्वट्ठयाए कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! धम्मत्थिकाए अधम्मत्थिकाए आगासत्थिकाए य एए तिन्नि वि तुल्ला दव्वट्ठयाए सव्वत्थोवा १, जीवत्थिकाए दव्वट्ठयाए अणतगुणे २, पोग्गलत्थिकाए दव्वट्ठयाए अणतगुणे ३, अद्धासमए दव्वट्ठयाए अणतगुणे ४ ।

[२७० प्र] भगवन् ! धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय और अद्धा-समय (काल) इन द्रव्यो मे से, द्रव्य की अपेक्षा से कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[२७० उ] गौतम ! १ धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय, ये तीनो ही तुल्य हैं तथा द्रव्य की अपेक्षा से सबसे अल्प हैं, २ (इनकी अपेक्षा) जीवास्तिकाय द्रव्य की अपेक्षा से अनन्तगुण है, ३ (इससे) पुद्गलास्तिकाय द्रव्य की अपेक्षा से अनन्तगुण है, ४ (और इससे भी) अद्धा-समय (कालद्रव्य) द्रव्य की अपेक्षा से अनन्तगुण है ।

२७१ एएसि णं भंते ! धम्मत्थिकाय-अधम्मत्थिकाय-आगासत्थिकाय-जीवत्थिकाय-पोग्गलत्थिकाय-अद्धासमयाणं पदेसट्ठयाए कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

---

१ 'उक्कोसए परित्ताणतए रूवे पक्खित्ते जहन्नय जुत्ताणतय होइ, अभवसिद्धिया वि तत्तिया चेव' —अनुयोगद्वार

२ प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक १४०

गोयमा ! धम्मत्थिकाए अधम्मत्थिकाए य एते ण दो वि तुल्ला पदेसट्ठयाए सव्वत्थोवा १, जीवत्थिकाए पदेसट्ठताए अणंतगुणे २, पोग्गलत्थिकाए पदेसट्ठयाए अणतगुणे ३, अद्धासमए पदेसट्ठयाए अणतगुणे ४, आगासत्थिकाए पदेसट्ठताए अणतगुणे ५ ।

[२७१ प्र] हे भगवन् ! धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय, पुद्‌गलास्तिकाय और अद्धासमय, इन (द्रव्यो) मे से प्रदेश की अपेक्षा से कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[२७१ उ] गौतम ! १ धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय, ये दोनो प्रदेशो की अपेक्षा से तुल्य हैं और सबसे थोडे है, २ (इनकी अपेक्षा) जीवास्तिकाय प्रदेशो की अपेक्षा से अनन्तगुण है, ३ (इसकी अपेक्षा) पुद्‌गलास्तिकाय प्रदेशो की अपेक्षा से अनन्तगुण है, ४ (इसकी अपेक्षा) अद्धा-समय (काल) प्रदेशापेक्षया अनन्तगुण है, ५ (इससे) आकाशास्तिकाय प्रदेशो की दृष्टि से अनन्तगुण है ।

२७२ [१] एतस्स णं भंते ! धम्मत्थिकायस्स दव्वट्ठ-पदेसट्ठताए कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवे एगे धम्मत्थिकाए दव्वट्ठताए, से चेव पदेसट्ठताए असखेज्जगुणे ।

[२७२-१ प्र] भगवन् ! इस धर्मास्तिकाय के द्रव्य और प्रदेशो की अपेक्षा से कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[२७२-१ उ] गौतम ! १ सबसे अल्प द्रव्य की अपेक्षा से एक धर्मास्तिकाय (द्रव्य) है और २ वही प्रदेशो की अपेक्षा से असख्यातगुणा है ।

[२] एतस्स णं भते ! अधम्मत्थिकायस्स दव्वट्ठ-पदेसट्ठताए कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवे एगे अधम्मत्थिकाए दव्वट्ठताए, से चेव पदेसट्ठताए असखेज्जगुणे ।

[१७२-१ प्र] भगवन् ! इस अधर्मास्तिकाय के द्रव्य और प्रदेशो की अपेक्षा से कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[२७२-२ उ] गौतम ! १ सबसे अल्प द्रव्य की अपेक्षा से एक अधर्मास्तिकाय (द्रव्य) है, और २ वही प्रदेशो की अपेक्षा से असख्यातगुणा है ।

[३] एतस्स ण भते ! आगासत्थिकायस्स दव्वट्ठ-पदेसट्ठताए कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवे एगे आगासत्थिकाए दव्वट्ठताए, से चेव पदेसट्ठताए अणंतगुणे ।

[२७२-३ प्र] भगवन् ! इस आकाशास्तिकाय के द्रव्य और प्रदेशो की अपेक्षा से कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[२७२-३ उ] गौतम ! १ सबसे अल्प द्रव्य की अपेक्षा से एक आकाशास्तिकाय (द्रव्य) है और २ वही प्रदेशो की अपेक्षा से अनन्तगुण है ।

[४] एतस्स णं भंते ! जीवत्थिकायस्स दव्वट्ठ-पदेसट्ठताए कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवे जीवत्थिकाए दव्वट्ठयाए, से चेव पदेसट्ठताए असंखेज्जगुणे ।

[२७२-४ प्र.] भगवन् ! इस जीवास्तिकाय के द्रव्य और प्रदेशों की अपेक्षा से कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[२७२-४ उ.] गौतम ! १ सबसे अल्प द्रव्य की अपेक्षा से जीवास्तिकाय है और २ वही प्रदेशों की अपेक्षा से असंख्यातगुण है ।

[५] एतस्स णं भंते ! पोग्गलत्थिकायस्स दव्वट्ठ-पदेसट्ठताए कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवे पोग्गलत्थिकाए दव्वट्ठयाए, से चेव पदेसट्ठयाए असंखेज्जगुणे ।

[२७२-५ प्र.] भगवन् ! इस पुद्गलास्तिकाय के द्रव्य और प्रदेशों की दृष्टि से कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[२७२-५ उ.] गौतम ! १ सबसे अल्प पुद्गलास्तिकाय द्रव्य की अपेक्षा से है, २ प्रदेशों की अपेक्षा से वही असंख्यातगुणा है ।

[६] अद्धासमए ण पुच्छिज्जइ पदेसाभावा ।

[२७२-६] काल (अद्धा-समय) के सम्बन्ध में प्रश्न नहीं पूछा जाता, क्योंकि उसमें प्रदेशों का अभाव है ।

२७३. एतेसि णं भंते ! धम्मत्थिकाय-अधम्मत्थिकाय-आगासत्थिकाय-जीवत्थिकाय-पोग्गलत्थिकाय-अद्धासमयाणं दव्वट्ठ-पदेसट्ठताए कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! धम्मत्थिकाए अधम्मत्थिकाए आगासत्थिकाए य एते णं तिण्णि वि तुल्ला दव्वट्ठयाए सव्वत्थोवा १, धम्मत्थिकाए अधम्मत्थिकाए य एते णं दोण्णि वि तुल्ला पदेसट्ठताए असंखेज्जगुणा २, जीवत्थिकाए दव्वट्ठयाए अणंतगुणे ३, से चेव पदेसट्ठताए असंखेज्जगुणे ४, पोग्गलत्थिकाए दव्वट्ठयाए अणंतगुणे ५, से चेव पदेसट्ठयाए असंखेज्जगुणे ६, अद्धासमए दव्वट्ठ-पदेसट्ठयाए अणंतगुणे ७, आगासत्थिकाए पएसट्ठयाए अणंतगुणे ८ । दारं २१ ॥

[२७३ प्र.] भगवन् ! धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय और अद्धा-समय (काल), इनमें से द्रव्य और प्रदेशों की अपेक्षा से कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[२७३ उ.] गौतम ! १ धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय, ये तीन (द्रव्य) तुल्य हैं तथा द्रव्य की अपेक्षा से सबसे अल्प हैं, २ (इनसे) धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय ये दोनों प्रदेशों की [illegible] तुल्य है तथा असंख्यातगुणे हैं, ३ (इनसे) जीवास्तिकाय, द्रव्य

की अपेक्षा अनन्तगुण है ४ वह प्रदेशो की अपेक्षा से असख्यातगुणा है, ५ (इससे) पुद्गलास्तिकाय द्रव्य की अपेक्षा से अनन्तगुणा है, ६ वही (पुद्गलास्तिकाय) प्रदेशो की अपेक्षा से असख्यातगुण है। ७ अद्धा-समय (काल) (उससे) द्रव्य और प्रदेशो की अपेक्षा से अनन्तगुणा है, ७ और (इससे भी) आकाशास्तिकाय प्रदेशो की अपेक्षा अनन्तगुण है। इक्कीसवाँ (अस्तिकाय) द्वार ।।२१।।

विवेचन—इक्कीसवाँ अस्तिकायद्वार अस्तिकायद्वार के माध्यम से षड्द्रव्यो का अल्पबहुत्व— प्रस्तुत चार सूत्रो (सू २७० से २७३ तक) मे द्रव्य, प्रदेशो व द्रव्य और प्रदेशो—दोनो की अपेक्षा से धर्मास्तिकाय आदि षड्द्रव्यो के अल्पबहुत्व का विचार किया गया है।

द्रव्य की अपेक्षा से षड्द्रव्यो का अल्पबहुत्व—(१) धर्मास्तिकायादि तीन द्रव्य, द्रव्य रूप से एक-एक सख्या वाले होने से सबसे अल्प है। जीवास्तिकाय इन तीनो से द्रव्य की अपेक्षा से अनन्तगुणे है, क्योकि जीव अनन्त है और वे प्रत्येक पृथक्-पृथक् द्रव्य है। उससे भी पुद्गलास्तिकाय द्रव्यापेक्षया अनन्तगुणा है, क्योकि परमाणु, द्विप्रदेशीस्कन्ध आदि पृथक्-पृथक् द्रव्य स्वतन्त्र द्रव्य है, और वे सामान्यतया तीन प्रकार के है—प्रयोगपरिणत, मिश्रपरिणत और विस्रसापरिणत। इनमे से सिर्फ प्रयोगपरिणत पुद्गल जीवो की अपेक्षा अनन्तगुणे है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक जीव अनन्त-अनन्त ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय आदि कर्मपरमाणुओ (स्कन्धो) से आवेष्टित-परिवेष्टित (सम्बद्ध) है, जैसा कि व्याख्याप्रज्ञप्ति (भगवती) मे कहा है[1]—'सबसे थोडे प्रयोगपरिणत पुद्गल है, उनसे मिश्रपरिणत पुद्गल अनन्तगुणे है और उनसे भी विस्रसापरिणत अनन्तगुणे है।' अत यह सिद्ध हुआ कि पुद्गलास्तिकाय, द्रव्य की अपेक्षा से जीवास्तिकाय द्रव्य से अनन्तगुणा है। पुद्गलास्तिकाय की अपेक्षा अद्धा-काल द्रव्यरूप से अनन्तगुणा है, क्योकि एक ही परमाणु के भविष्यत् काल मे द्विप्रदेशी, त्रिप्रदेशी यावत् दशप्रदेशी, सख्यातप्रदेशी, असख्यातप्रदेशी और अनन्तप्रदेशी स्कन्धो के साथ परिणत होने के कारण एक ही परमाणु के भावीसयोग अनन्त है और पृथक्-पृथक् कालो मे होने वाले वे अनन्त सयोग केवलज्ञान से ही जाने जा सकते है। जैसे एक परमाणु के अनन्त सयोग होते है, वैसे द्विप्रदेशीस्कन्ध आदि सर्वपरमाणुओ के प्रत्येक के अनन्त-अनन्त सयोग भिन्न-भिन्न कालो मे होते है। ये सब परिणमन मनुष्यलोक (क्षेत्र) के अन्तर्गत होते हैं। इसलिए क्षेत्र की दृष्टि से एक-एक परमाणु के भावी सयोग अनन्त हैं। जैसे—यह परमाणु अमुक काल मे अमुक आकाश-प्रदेश मे अवगाहन करेगा, दूसरे समय मे किसी दूसरे आकाश-प्रदेश मे। जैसे—एक परमाणु के क्षेत्र की दृष्टि से विभिन्नकालवर्ती अनन्त भावीसयोग हैं, वैसे ही अनन्तप्रदेशस्कन्धपर्यन्त द्विप्रदेशी आदि स्कन्धो के प्रत्येक के एक-एक आकाशप्रदेश मे अवगाहन-भेद से भिन्न-भिन्न कालो मे होने वाले भावीसयोग अनन्त है। इसी प्रकार काल की अपेक्षा भी यह परमाणु इस आकाशप्रदेश मे एक समय की स्थिति वाला, दो आदि समयो की स्थिति वाला है, इस प्रकार एक परमाणु के एक आकाशप्रदेश मे असख्यात भावीसयोग होते है, इसी तरह सभी आकाशप्रदेशो मे प्रत्येक परमाणु के असख्यात-असख्यात भावीसयोग होते है, फिर पुन पुन उन आकाशप्रदेशो मे काल का परावर्त्तन होने पर और काल अनन्त होने से, काल की अपेक्षा से भावी सयोग अनन्त होते है। जैसे एक परमाणु के क्षेत्र एव काल की अपेक्षा से अनन्त भावीसयोग होते है तथा सभी द्विप्रदेशी स्कन्धादि परमाणुओ के प्रत्येक के पृथक्-पृथक् अनन्त-अनन्त सयोग होते हैं। इसी प्रकार भाव की अपेक्षा से भी समझ लेना चाहिए। यथा—यह परमाणु अमुक काल मे एक गुण काला होगा। इस प्रकार एक ही परमाणु के

१ 'सव्वथोवा पुग्गला पयोगपरिणया, मीसपरिणया अणतगुणा, वीससापरिणया अणतगुणा।' —व्याख्याप्रज्ञप्तिसूत्र

भाव की अपेक्षा से भिन्न-भिन्नकालीन अनन्त सयोग समझ लेने चाहिए। एक परमाणु की तरह सभी परमाणुओ एव द्विप्रदेशी आदि स्कन्धो के पृथक्-पृथक् अनन्त सयोग भाव की अपेक्षा से भी होते है। इस प्रकार विचार करने पर एक ही परमाणु के द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव-विशेष के सम्बन्ध से अनन्त भावीसमय सिद्ध होते है और जो बात एक परमाणु के विषय मे है, वही सब परमाणुओ एव द्विप्रदेशिक आदि स्कन्धो के सम्बन्ध मे भी समझ लेनी चाहिए। यह सब परिणमनशील काल नामक वस्तु के बिना, और परिणमनशील पुद्गलास्तिकाय आदि वस्तुओ के बिना सगत नही हो सकता।[1]

जिस प्रकार परमाणु, द्विप्रदेशिक आदि स्कन्धो मे से प्रत्येक के द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावविशेष के सम्बन्ध से अनन्त भावी अद्धाकाल प्रतिपादित किये गए है, इसी प्रकार भूत अद्धाकाल भी समझ लेने चाहिए।[2]

(२) **धर्मास्तिकाय आदि का प्रदेशो की अपेक्षा से अल्पबहुत्व**—धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय, ये दोनो प्रदेशो की अपेक्षा से तुल्य हैं, क्योकि दोनो के प्रदेश लोकाकाश के प्रदेशो के जितने ही है। अत अन्य द्रव्यो से इनके प्रदेश सबसे कम हैं। इन दोनो से जीवास्तिकाय प्रदेशो की अपेक्षा से अनन्तगुण है, क्योकि जीव द्रव्य अनन्त है, उनमे से प्रत्येक जीवद्रव्य के प्रदेश लोकाकाश के प्रदेशो के बराबर है। उससे भी पुद्गलास्तिकाय प्रदेशो की अपेक्षा से अनन्तगुण है। क्योकि पुद्गल की अन्य वर्गणाओ को छोड दिया जाए और केवल कर्मवर्गणाओ को ही लिया जाए तो भी जीव का एक-एक प्रदेश अनन्त-अनन्त कर्मपरमाणुओ (कर्मस्कन्ध प्रदेशो) से आवृत है। कर्मवर्गणा के अतिरिक्त औदारिक, वैक्रिय आदि अन्य अनेक वर्गणाएँ भी है। अतएव सहज ही यह सिद्ध हो जाता है कि जीवास्तिकाय के प्रदेशो से पुद्गलास्तिकाय के प्रदेश अनन्तगुणे है। पुद्गलास्तिकाय की अपेक्षा भी अद्धाकाल के प्रदेश अनन्तगुणे है, क्योकि पहले कहे अनुसार एक-एक पुद्गलास्तिकाय के उस-उस (विभिन्न) द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के साथ सम्बन्ध के कारण अतीत और अनागत का काल अनन्त-अनन्त है। अद्धाकाल की अपेक्षा आकाशास्तिकाय प्रदेशो की दृष्टि से अनन्तगुण है, क्योकि अलोकाकाश सभी ओर अनन्त और असीम है।

द्रव्य और प्रदेशो की अपेक्षा से धर्मास्तिकाय आदि का अल्पबहुत्व—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय ये दोनो द्रव्य की दृष्टि से थोडे है, क्योकि ये दोनो एक-एक द्रव्य ही है। किन्तु प्रदेशो की अपेक्षा से वे द्रव्य से असख्यातगुणे है, क्योकि दोनो असख्यातप्रदेशी है। आकाशास्तिकाय द्रव्य की दृष्टि से सबसे कम है, क्योकि वह एक है, मगर प्रदेशो की अपेक्षा से वह अनन्तगुण है क्योकि उसके प्रदेश अनन्तानन्त हैं। जीवास्तिकाय द्रव्य की दृष्टि से अल्प है और प्रदेशो की दृष्टि से असख्यातगुण है, क्योकि एक-एक जीव के लोकाकाश के प्रदेशो के तुल्य असख्यात-असख्यात प्रदेश हैं। द्रव्य की अपेक्षा पुद्गलास्तिकाय कम है, क्योकि प्रदेशो से द्रव्य कम ही होते है, प्रदेशो की दृष्टि से पुद्गलास्तिकाय असख्यातगुणे हैं। यह प्रश्न हो सकता है कि लोक मे अनन्तप्रदेशी पुद्गलस्कन्ध बहुत है, अतएव पुद्गलास्तिकाय द्रव्य की अपेक्षा प्रदेशो से अनन्तगुण होना चाहिए,

---

१ सयोगपुरस्कारश्च नाम भाविनि हि युज्यते काले।
न हि सयोगपुरस्कारो ह्यसता केचिदुपपन्न ॥१॥ —प्रज्ञापना म वृत्ति, पत्राक १४१

२ प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति पत्राक १४१

इसका समाधान यह है कि द्रव्य की दृष्टि से अनन्तप्रदेशी स्कन्ध सबसे स्वल्प है, परमाणु आदि अत्यधिक हैं। आगे प्रज्ञापनासूत्र मे कहा जाएगा[1]—"सबसे कम द्रव्य की दृष्टि से अनन्तप्रदेशी स्कन्ध हैं, द्रव्यदृष्टि से परमाणुपुद्गल अनन्तगुणे है। द्रव्यदृष्टि से सख्यातप्रदेशी स्कन्ध सख्यातगुणे है और असख्यातप्रदेशी स्कन्ध असख्यातगुणे है।" इस पाठ के अनुसार जब समस्त पुद्गलास्तिकाय का प्रदेशदृष्टि से चिन्तन किया जाता है, तब अनन्तप्रदेशी स्कन्ध अत्यन्त कम और परमाणु अत्यधिक तथा पृथक्-पृथक् द्रव्य होने से असख्यप्रदेशी स्कन्ध परमाणुओ की अपेक्षा असख्यातगुणे हैं। अत प्रदेशो की अपेक्षा पुद्गलास्तिकाय असख्यातगुणा ही हो सकता है, अनन्तगुणा नही।

कालद्रव्य के विषय मे द्रव्य और प्रदेशो के अल्पबहुत्व को लेकर प्रश्न ही नही उठाना चाहिए, क्योकि काल के प्रदेश नही होते। काल सिर्फ द्रव्य ही है, उसके प्रदेश नही होते, क्योकि जब परमाणु परस्पर सापेक्ष (एकमेक) होकर परिणत होते है, तभी उनका समूह स्कन्ध कहलाता है और उसके अवयव प्रदेश कहलाते हैं। यदि वे परमाणु परस्पर निरपेक्ष हो तो उनके समूह को स्कन्ध नही कह सकते। अद्धा-समय (काल) परस्पर निरपेक्ष है, स्कन्ध के समान परस्पर (पिंडित) सापेक्ष द्रव्य नही हैं। जब वर्तमान समय होता है तो उसके आगे-पीछे के समय का अभाव होता है। अतएव उनमे स्कन्धरूप परिणाम का अभाव है। अतएव अद्धा-समय (कालद्रव्य) के प्रदेश नही होते।

धर्मास्तिकायादि का एक साथ द्रव्य और प्रदेश की अपेक्षा से अल्पबहुत्व—सबसे कम द्रव्य-दृष्टि से धर्मास्तिकाय आदि तीनो द्रव्य हैं, क्योकि तीनो एक-एक द्रव्य है। इनकी अपेक्षा प्रदेशो की अपेक्षा से धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय दोनो तुल्य व असख्यातगुणे है, क्योकि दोनो के प्रदेश असख्यात-असख्यात है। इन दोनो से जीवास्तिकाय द्रव्यदृष्टि से अनन्तगुणा है, क्योकि जीवद्रव्य अनन्त हैं। उनसे जीवास्तिकाय प्रदेशदृष्टि से असख्यातगुणा है, क्योकि प्रत्येक जीव के असख्यात-असख्यात प्रदेश होते हैं। प्रदेशरूप जीवास्तिकाय से द्रव्यरूप पुद्गलास्तिकाय अनन्तगुणा है, क्योकि जीव के एक-एक प्रदेश के साथ अनन्त-अनन्त कर्मपुद्गलद्रव्य सम्बद्ध है। द्रव्यरूप पुद्गलास्तिकाय से प्रदेशरूप पुद्गलास्तिकाय असख्यातगुणा है। इसका कारण पहले बताया जा चुका है। प्रदेशरूप पुद्गलास्तिकाय की अपेक्षा अद्धा-समय (काल) द्रव्य और प्रदेश की दृष्टि से पूर्वोक्त युक्ति के अनुसार अनन्तगुणा है, इसकी अपेक्षा आकाशास्तिकाय प्रदेशो की दृष्टि से अनन्तगुणा है, क्योकि आकाशास्तिकाय सभी दिशाओ मे अनन्त है, उसकी कही सीमा नही है, जबकि अद्धा-समय (काल) सिर्फ मनुष्यक्षेत्र मे होता है।[2]

बाईसवाँ चरमद्वार : चरम और अचरम जीवो का अल्पबहुत्व—

२७४ एतेसि ण भते ! जीवाण चरिमाण अचरिमाण य कतरे कतरेहितो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा अचरिमा १, चरिमा अणतगुणा २। दार २२ ॥

---

1. 'सव्वत्थोवा अणतपएसिया खधा दव्वट्ठयाए, परमाणुपोग्गला दव्वट्ठयाए अणतगुणा, सखेज्जपएसिया खधा दव्वट्ठयाए सखेज्जगुणा, असखेज्जपएसिया खधा दव्वट्ठयाए असखेज्जगुणा।' —प्रज्ञापना पद, ३ सू ३३०
2. प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक १४२-१४३

भाव की अपेक्षा से भिन्न-भिन्नकालीन अनन्त सयोग समझ लेने चाहिए। एक परमाणु की तरह सभी परमाणुओ एव द्विप्रदेशी आदि स्कन्धो के पृथक्-पृथक् अनन्त सयोग भाव की अपेक्षा से भी होते हैं। इस प्रकार विचार करने पर एक ही परमाणु के द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव-विशेष के सम्बन्ध से अनन्त भावीसमय सिद्ध होते है और जो बात एक परमाणु के विषय मे है, वही सब परमाणुओ एव द्विप्रदेशिक आदि स्कन्धो के सम्बन्ध मे भी समझ लेनी चाहिए। यह सब परिणमनशील काल नामक वस्तु के बिना, और परिणमनशील पुद्गलास्तिकाय आदि वस्तुओ के बिना सगत नही हो सकता।[1]

जिस प्रकार परमाणु, द्विप्रदेशिक आदि स्कन्धो मे से प्रत्येक के द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावविशेष के सम्बन्ध से अनन्त भावी अद्धाकाल प्रतिपादित किये गए है, इसी प्रकार भूत अद्धाकाल भी समझ लेने चाहिए।[2]

(२) **धर्मास्तिकाय आदि का प्रदेशो की अपेक्षा से अल्पबहुत्व**—धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय, ये दोनो प्रदेशो की अपेक्षा से तुल्य हैं, क्योकि दोनो के प्रदेश लोकाकाश के प्रदेशो के जितने ही हैं। अत अन्य द्रव्यो से इनके प्रदेश सबसे कम है। इन दोनो से जीवास्तिकाय प्रदेशो की अपेक्षा से अनन्तगुण है, क्योकि जीव द्रव्य अनन्त है, उनमे से प्रत्येक जीवद्रव्य के प्रदेश लोकाकाश के प्रदेशो के बराबर हैं। उससे भी पुद्गलास्तिकाय प्रदेशो की अपेक्षा से अनन्तगुण है। क्योकि पुद्गल की अन्य वर्गणाओ को छोड दिया जाए और केवल कर्मवर्गणाओ को ही लिया जाए तो भी जीव का एक-एक प्रदेश अनन्त-अनन्त कर्मपरमाणुओ (कर्मस्कन्ध प्रदेशो) से आवृत है। कर्मवर्गणा के अतिरिक्त औदारिक, वैक्रिय आदि अन्य अनेक वर्गणाएँ भी है। अतएव सहज ही यह सिद्ध हो जाता है कि जीवास्तिकाय के प्रदेशो से पुद्गलास्तिकाय के प्रदेश अनन्तगुणे हैं। पुद्गलास्तिकाय की अपेक्षा भी अद्धाकाल के प्रदेश अनन्तगुणे है, क्योकि पहले कहे अनुसार एक-एक पुद्गलास्तिकाय के उस-उस (विभिन्न) द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के साथ सम्बन्ध के कारण अतीत और अनागत का काल अनन्त-अनन्त है। अद्धाकाल की अपेक्षा आकाशास्तिकाय प्रदेशो की दृष्टि से अनन्तगुण है, क्योकि अलोकाकाश सभी और अनन्त और असीम है।

द्रव्य और प्रदेशो की अपेक्षा से धर्मास्तिकाय आदि का अल्पबहुत्व—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय ये दोनो द्रव्य की दृष्टि से थोडे है, क्योकि ये दोनो एक-एक द्रव्य ही है। किन्तु प्रदेशो की अपेक्षा से वे द्रव्य से असख्यातगुणे हैं, क्योकि दोनो असख्यातप्रदेशी है। आकाशास्तिकाय द्रव्य की दृष्टि से सबसे कम है, क्योकि वह एक है, मगर प्रदेशो की अपेक्षा से वह अनन्तगुण है क्योकि उसके प्रदेश अनन्तानन्त हैं। जीवास्तिकाय द्रव्य की दृष्टि से अल्प है और प्रदेशो की दृष्टि से असख्यातगुण है, क्योकि एक-एक जीव के लोकाकाश के प्रदेशो के तुल्य असख्यात-असख्यात प्रदेश हैं। द्रव्य की अपेक्षा पुद्गलास्तिकाय कम है, क्योकि प्रदेशो से द्रव्य कम ही होते हैं, प्रदेशो की दृष्टि से पुद्गलास्तिकाय असख्यातगुणे हैं। यह प्रश्न हो सकता है कि लोक मे अनन्तप्रदेशी पुद्गलस्कन्ध बहुत हैं, अतएव पुद्गलास्तिकाय द्रव्य की अपेक्षा प्रदेशो से अनन्तगुण होना चाहिए,

---

१ सयोगपुरस्कारश्च नाम भाविनि हि युज्यते काले।
न हि सयोगपुरस्कारो ह्यसता केचिदुपपन्न ॥१॥ —प्रज्ञापना म वृत्ति, पत्राक १४१

२ प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति पत्राक १४१

इसका समाधान यह है कि द्रव्य की दृष्टि से अनन्तप्रदेशी स्कन्ध सबसे स्वल्प हे, परमाणु आदि अत्यधिक हैं। आगे प्रज्ञापनासूत्र मे कहा जाएगा[1]—"सबसे कम द्रव्य की दृष्टि से अनन्तप्रदेशी स्कन्ध हैं, द्रव्यदृष्टि से परमाणुपुद्गल अनन्तगुणे है। द्रव्यदृष्टि मे सख्यातप्रदेशी स्कन्ध मख्यातगुणे हैं और असख्यातप्रदेशी स्कन्ध असख्यातगुणे है।" इस पाठ के अनुसार जब समस्त पुद्गलास्तिकाय का प्रदेशदृष्टि से चिन्तन किया जाता है, तब अनन्तप्रदेशी स्कन्ध अत्यन्त कम और परमाणु अत्यधिक तथा पृथक्-पृथक् द्रव्य होने से असख्यप्रदेशी स्कन्ध परमाणुओ की अपेक्षा असख्यातगुणे है। अत प्रदेशो की अपेक्षा पुद्गलास्तिकाय असख्यातगुणा ही हो सकता है, अनन्तगुणा नही।

कालद्रव्य के विषय मे द्रव्य और प्रदेशो के अल्पबहुत्व को लेकर प्रश्न ही नही उठाना चाहिए, क्योकि काल के प्रदेश नही होते। काल सिर्फ द्रव्य ही है, उसके प्रदेश नही होते, क्योकि जब परमाणु परस्पर सापेक्ष (एकमेक) होकर परिणत होते है, तभी उनका समूह स्कन्ध कहलाता है और उसके अवयव प्रदेश कहलाते है। यदि वे परमाणु परस्पर निरपेक्ष हो तो उनके समूह को स्कन्ध नही कह सकते। अद्धा-समय (काल) परस्पर निरपेक्ष है, स्कन्ध के समान परस्पर (पिंडित) सापेक्ष द्रव्य नही हैं। जब वर्तमान समय होता है तो उसके आगे-पीछे के समय का अभाव होता है। अतएव उनमे स्कन्धरूप परिणाम का अभाव है। अतएव अद्धा-समय (कालद्रव्य) के प्रदेश नही होते।

धर्मास्तिकायादि का एक साथ द्रव्य और प्रदेश की अपेक्षा से अल्पबहुत्व—सबसे कम द्रव्य-दृष्टि से धर्मास्तिकाय आदि तीनो द्रव्य है, क्योकि तीनो एक-एक द्रव्य है। इनकी अपेक्षा प्रदेशो की अपेक्षा से धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय दोनो तुल्य व असख्यातगुणे है, क्योकि दोनो के प्रदेश असख्यात-असख्यात है। इन दोनो से जीवास्तिकाय द्रव्यदृष्टि से अनन्तगुणा है, क्योकि जीवद्रव्य अनन्त हैं। उनसे जीवास्तिकाय प्रदेशदृष्टि से असख्यातगुणा है, क्योकि प्रत्येक जीव के असख्यात-असख्यात प्रदेश होते हैं। प्रदेशरूप जीवास्तिकाय से द्रव्यरूप पुद्गलास्तिकाय अनन्तगुणा है, क्योकि जीव के एक-एक प्रदेश के साथ अनन्त-अनन्त कर्मपुद्गलद्रव्य सम्बद्ध है। द्रव्यरूप पुद्गलास्तिकाय से प्रदेशरूप पुद्गलास्तिकाय असख्यातगुणा है। इसका कारण पहले बताया जा चुका है। प्रदेशरूप पुद्गलास्तिकाय की अपेक्षा अद्धा-समय (काल) द्रव्य और प्रदेश की दृष्टि से पूर्वोक्त युक्ति के अनुसार अनन्तगुणा है, इसकी अपेक्षा आकाशास्तिकाय प्रदेशो की दृष्टि से अनन्तगुणा है, क्योकि आकाशा-स्तिकाय सभी दिशाओ मे अनन्त है, उसकी कही सीमा नही है, जबकि अद्धा-समय (काल) सिर्फ मनुष्यक्षेत्र मे होता है।[2]

बाईसवाँ चरमद्वार : चरम और अचरम जीवो का अल्पबहुत्व—

२७४ एतेसि णं भंते ! जीवाण चरिमाण अचरिमाण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा अचरिमा १, चरिमा अणतगुणा २। दार २२॥

---

१ 'सव्वत्थोवा अणतपएसिया खधा दव्वट्ठयाए, परमाणुपोग्गला दव्वट्ठयाए अणतगुणा, सखेज्जपएसिया खधा दव्वट्ठयाए सखेज्जगुणा, असखेज्जपएसिया खधा दव्वट्ठयाए असखेज्जगुणा।' —प्रज्ञापना पद, ३ सू ३३०

२ प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक १४२-१४३

[२७४ प्र] भगवन् ! इन चरम और अचरम जीवो मे से कौन किनसे अल्प, वहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[२७४ उ] गौतम ! अचरम जीव सबसे थोडे है, (उनसे) चरम जीव अनन्तगुणे हैं ।

बावीसवाँ (चरम) द्वार ॥२२॥

विवेचन—बावीसवाँ चरमद्वार—चरम और अचरम जीवो का अल्पबहुत्व-चरम और अचरम की व्याख्या—जिन जीवो का इस ससार मे चरम—अन्तिम भव (जन्म-मरण) सभव है, वे चरम कहलाते है अथवा जो जीव योग्यता से भी चरम भव (निश्चितरूप से मोक्ष) के योग्य हैं, वे भव्य भी चरम कहलाते है । अचरम (चरमभव के अभाव वाले) अभव्य हैं या जिनका अब चरमभव (शेष) नही हैं, वे अचरम-सिद्ध कहलाते हैं ।

चरम और अचरम का अल्पबहुत्व—सबसे कम अचरम जीव है, क्योकि अभव्य और सिद्ध, दोनो प्रकार के अचरम मिलकर भी अजघन्योत्कृष्ट अनन्त होते है, जबकि उभयविध चरम (चरमशरीरी तथा भव्यजीव) उनकी अपेक्षा अनन्तगुणे है, क्योकि वे अजघन्योत्कृष्ट अनन्तानन्त-परिमाण है ।[1]

तेईसवाँ जीवद्वार : जीवादि का अल्पबहुत्व—

२७५ एतेसि ण भते ! जीवाण पोग्गलाण अद्धासमयाण सव्वदव्वाण सव्वपदेसाण सव्वपज्जवाण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा १, पोग्गला अणतगुणा २, अद्धासमया अणंतगुणा ३, सव्वदव्वा विसेसाहिया ४, सव्वपदेसा अणतगुणा ५, सव्वपज्जवा अणतगुणा ६ । दार २३ ॥

[२७५ प्र] भगवन् ! इन जीवो, पुद्गलो, अद्धा-समयो, सर्वद्रव्यो, सर्वप्रदेशो और सर्वपर्यायो मे से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[२७५ उ] गौतम ! १ सबसे अल्प जीव हैं, २ (उनसे) पुद्गल अनन्तगुणे है, ३ (उनसे) अद्धा-समय अनन्तगुणे है, ४ (उनसे) सर्वद्रव्य विशेषाधिक है, ५ (उनसे) सर्वप्रदेश अनन्तगुणे है (और उनसे भी) ६ सर्वपर्याय अनन्तगुणे हैं । तेईसवाँ (जीव) द्वार ॥२३॥

विवेचन—तेईसवाँ जीवद्वार—प्रस्तुत सूत्र (२७५) मे जीव, पुद्गल, काल, सर्वद्रव्य, सर्वप्रदेश और सर्वपर्याय, इनके परस्पर अल्पबहुत्व का निरूपण किया गया है ।

जीवादि के अल्पबहुत्व की युक्तिसगतता—सबसे कम जीव, उनसे अनन्तगुणे पुद्गल तथा उनसे भी अनन्तगुणे काल (अद्धासमय), इस सम्बन्ध मे पूर्वोक्त युक्ति से विचार कर लेना चाहिए । अद्धासमयो से सर्वद्रव्य विशेषाधिक हैं, क्योकि पुद्गलो से जो अद्धासमय अनन्तगुणे कहे गए है, वह प्रत्येक अद्धासमय द्रव्य है, अत द्रव्य के निरूपण मे वे भी ग्रहण किये जाते है । साथ ही अनन्त जीव-द्रव्यो, समस्त पुद्गल द्रव्यो, धर्म, अधर्म एव आकाशास्तिकाय, इन सभी का द्रव्य मे समावेश हो जाता है, ये सभी मिल कर भी अद्धासमयो से अनन्तवें भाग होने से उन्हे मिला देने पर भी सर्वद्रव्य, अद्धासमयो से विशेषाधिक हैं । उनकी अपेक्षा सर्वप्रदेश अनन्तगुणे है, क्योकि आकाश अनन्त है ।

---

१ प्रज्ञापनासूत्र, मलय वृत्ति, पत्राक १४३

प्रदेशो से सर्वपर्याय अनन्तगुणे है, क्योकि एक-एक आकाशप्रदेश मे अनन्त-अनन्त अगुरुलघुपर्याय होते है।[1]

चौबीसवाँ क्षेत्रद्वार : क्षेत्र की अपेक्षा से ऊर्ध्वलोकादिगत विविध जीवो का अल्प-बहुत्व—

२७६ खेत्ताणुवाएण सव्वत्थोवा जीवा उड्ढलोयतिरियलोए १, अहेलोयतिरियलोए विसेसाहिया २, तिरियलोए असखेज्जगुणा ३, तेलोक्के असखेज्जगुणा ४, उड्ढलोए असखेज्जगुणा ५, अहेलोए विसेसाहिया ६।

[२७६] क्षेत्र की अपेक्षा से १ सबसे कम जीव ऊर्ध्वलोक-तिर्यग्लोक मे हैं, २ (उनसे) अधोलोक-तिर्यग्लोक मे विशेषाधिक हैं, ३ (उनसे) तिर्यग्लोक मे असख्यातगुणे है, ४ (उनकी अपेक्षा) त्रैलोक्य मे (तीनो लोको मे अर्थात् तीनो लोको का स्पर्श करने वाले) असख्यातगुणे है, ५ (उनकी अपेक्षा) ऊर्ध्वलोक मे असख्यातगुणे है, ६ (उनसे भी) अधोलोक मे विशेषाधिक है।

२७७. खेत्ताणुवाएण सव्वत्थोवा नेरइया तेलोक्के १, अहेलोकतिरियलोए असखेज्जगुणा २, अहेलोए असखेज्जगुणा ३।

[२७७] क्षेत्र की अपेक्षा से १ सबसे थोडे नैरयिकजीव त्रैलोक्य मे है, २ (उनसे) अधोलोक-तिर्यक्लोक मे असख्यातगुणे है, ३ (और उनसे भी) अधोलोक मे असख्यातगुणे है।

२७८ खेत्ताणुवाएण सव्वत्थोवा तिरिक्खजोणिया उड्ढलोयतिरियलोए १, अहेलोयतिरियलोए विसेसाहिया २, तिरियलोए असखेज्जगुणा ३, तेलोक्के असंखेज्जगुणा ४, उड्ढलोए असंखेज्जगुणा ५, अधेलोए विसेसाहिया ६।

[२७८] क्षेत्र की अपेक्षा से १ सबसे अल्प तिर्यंचयोनिक (पुरुष) ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक मे है, २ (उनसे) विशेषाधिक अधोलोक-तिर्यक्लोक मे है, ३ (उनसे) तिर्यक्लोक मे असख्यातगुणे है, ४ (उनसे) त्रैलोक्य मे असख्यातगुणे है, ५ (उनकी अपेक्षा) ऊर्ध्वलोक मे असख्यातगुणे है, ६ (और उनसे भी) अधोलोक मे विशेषाधिक है।

२७९ खेत्ताणुवाएण सव्वत्थोवाओ तिरिक्खजोणिणीओ उड्ढलोए १, उड्ढलोयतिरियलोए असखेज्जगुणाओ २, तेलोक्के सखेज्जगुणाओ ३, अधेलोयतिरियलोए सखेज्जगुणाओ ४, अधेलोए सखेज्जगुणाओ ५, तिरियलोए सखेज्जगुणाओ ६।

[२७९] क्षेत्र के अनुसार १ सबसे कम तिर्यंचिनी (तिर्यंचस्त्री) ऊर्ध्वलोक मे हैं, २ (उनसे) ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक मे असख्यातगुणी हैं, ३ (उनसे) त्रैलोक्य मे सख्यातगुणी है, ४ (उनसे) अधोलोक-तिर्यक्लोक मे सख्यातगुणी हैं, ५ (उनसे) अधोलोक मे सख्यातगुणी हैं, ६ (और उनसे भी) तिर्यक्लोक मे सख्यातगुणी है।

---

१ प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक १४३

२८० खेत्ताणुवाएण सव्वत्थोवा मणुस्सा तेलोक्के १, उड्ढलोयतिरियलोए असखेज्जगुणा २, अधोलोयतिरियलोए सखेज्जगुणा ३, उड्ढलोए सखेज्जगुणा ४, अधेलोए सखेज्जगुणा ५, तिरियलोए सखेज्जगुणा ६ ।

[२८०] क्षेत्र के अनुसार १ सबसे थोडे मनुष्य त्रैलोक्य मे है, २ (उनसे) ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक मे असख्यातगुणे है, ३ (उनसे) अधोलोक-तिर्यक्लोक मे सख्यातगुणे है, ४ (उनसे) ऊर्ध्वलोक मे सख्यातगुणे हैं, ५ (उनसे) अधोलोक मे सख्यातगुणे है, ६ (और उनसे भी) तिर्यक्लोक मे सख्यातगुणे है ।

२८१ खेत्ताणुवाएण सव्वत्थोवाओ मणुस्सीओ तेलोक्के १, उड्ढलोयतिरियलोए सखेज्जगुणाओ २, अधेलोयतिरियलोए सखेज्जगुणाओ ३, उड्ढलोए सखेज्जगुणाओ ४, अधेलोए सखेज्जगुणाओ ५, तिरियलोए सखेज्जगुणाओ ६ ।

[२८१] क्षेत्र के अनुसार १ सबसे थोडी मनुष्यस्त्रियाँ (नारियाँ) त्रैलोक्य मे है, २ ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक मे सख्यातगुणी है, ३ (उनसे) अधोलोक-तिर्यक्लोक मे सख्यातगुणी है, ४ (उनसे) ऊर्ध्वलोक मे सख्यातगुणी है, ५ (उनसे) अधोलोक मे सख्यातगुणी है, ६ (और उनसे भी) तिर्यक्लोक मे सख्यातगुणी है ।

२८२ खेत्ताणुवाएण सव्वत्थोवा देवा उड्ढलोए १, उड्ढलोयतिरियलोए असखेज्जगुणा २, तेलोक्के सखेज्जगुणा ३, अधेलोयतिरियलोए सखेज्जगुणा ४, अधेलोए संखेज्जगुणा ५, तिरियलोए संखेज्जगुणा ६ ।

[२८२] क्षेत्र के अनुसार १ सबसे थोडे देव ऊर्ध्वलोक मे है, २ (उनसे) असख्यातगुणे ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक मे है, ३ (उनसे) त्रैलोक्य मे सख्यातगुणे है, ४ (उनसे) अधोलोक-तिर्यक्लोक मे सख्यातगुणे है, ५ (उनसे) अधोलोक मे सख्यातगुणे है, ६ (और उनसे भी) तिर्यक्लोक मे सख्यातगुणे है ।

२८३ खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवाओ देवीओ उड्ढलोए १, उड्ढलोयतिरियलोए असखेज्जगुणाओ २, तेलोक्के सखेज्जगुणाओ ३, अधेलोयतिरियलोए सखेज्जगुणाओ ४, अधेलोए संखेज्जगुणाओ ५, तिरियलोए संखेज्जगुणाओ ६ ।

[२८३] क्षेत्र के अनुसार १ सबसे कम देवियाँ ऊर्ध्वलोक मे है, २ (उनसे) असख्यागुणी ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक मे है, ३ (उनसे) त्रैलोक्य मे सख्यातगुणी है, ४ (उनसे) अधोलोक-तिर्यक्लोक मे असख्यातगुणी है, ५ (उनसे) अधोलोक मे सख्यातगुणी हैं, ६ (और उनसे भी) तिर्यक्लोक मे सख्यातगुणी हैं ।

२८४ खेत्ताणुवाएण सव्वत्थोवा भवणवासी देवा उड्ढलोए १, उड्ढलोयतिरियलोए असंखेज्जगुणा २, तेलोक्के सखेज्जगुणा ३, अधेलोयतिरियलोए असखेज्जगुणा ४, तिरियलोए असंखेज्जगुणा ५, अधोलोए असखेज्जगुणा ६ ।

[२८४] क्षेत्रानुसार १. सबसे थोडे भवनवासी देव ऊर्ध्वलोक मे हैं, २ (उनसे) ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक मे असख्यातगुणे है, ३ (उनसे) त्रैलोक्य मे सख्यातगुणे हे, ४ (उनसे) अधोलोक-तिर्यक्लोक मे असख्यातगुणे है, ५ (उनसे) तिर्यक्लोक मे असख्यातगुणे हैं, ६ (और उनसे भी) अधोलोक मे असख्यातगुणे है ।

२८५. खेत्ताणुवाएण सव्वत्थोवाओ भवणवासिणीओ देवीओ उड्ढलोए १, उड्ढलोयतिरियलोए असखेज्जगुणाओ २, तेलोक्के सखेज्जगुणाओ ३, अधोलोयतिरियलोए असखेज्जगुणाओ ४, तिरियलोए असखेज्जगुणाओ ५, अधोलोए असखेज्जगुणाओ ६ ।

[२८५] क्षेत्र के अनुसार १ सबसे थोडी भवनवासिनी देवियाँ ऊर्ध्वलोक मे हैं, २ (उनसे) ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक मे असख्यातगुणी है, ३ (उनसे) त्रैलोक्य मे सख्यातगुणी है, ४ (उनसे) अधोलोक-तिर्यक्लोक मे असख्यातगुणी हैं, ५ (उनसे) तिर्यक्लोक मे असख्यातगुणी है, ६ (और उनसे भी) अधोलोक मे असख्यातगुणी है ।

२८६ खेत्ताणुवाएण सव्वत्थोवा वाणमंतरा देवा उड्ढलोए १, उड्ढलोयतिरियलोए असंखेज्जगुणा २, तेलोक्के संखेज्जगुणा ३, अधोलोयतिरियलोए असखेज्जगुणा ४, अहेलोए संखेज्जगुणा ५, तिरियलोए संखेज्जगुणा ६ ।

[२८६] क्षेत्र के अनुसार १ सबसे अल्प वाणव्यन्तर देव ऊर्ध्वलोक मे हैं, २ (उनसे) ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक मे असख्यातगुणे हैं, ३ (उनसे) त्रैलोक्य मे सख्यातगुणे है, ४ (उनसे) अधोलोक-तिर्यक्लोक मे असख्यातगुणे है, ५ (उनसे) अधोलोक मे सख्यातगुणे है, ६. (और उनसे भी) तिर्यक्लोक मे सख्यातगुणे हैं ।

२८७ खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवाओ वाणमतरीओ देवीओ उड्ढलोए १, उड्ढलोयतिरियलोए असखिज्जगुणाओ २, तेलोक्के सखिज्जगुणाओ ३, अधोलोयतिरियलोए असखिज्जगुणाओ ४, अधोलोए सखिज्जगुणाओ ५, तिरियलोए सखिज्जगुणाओ ६ ।

[२८७] क्षेत्रानुसार १ सबसे थोडी वाणव्यन्तर देवियाँ ऊर्ध्वलोक मे है, २ (उनसे) ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक मे असख्यातगुणी है, ३ (उनसे) त्रैलोक्य मे सख्यातगुणी है, ४ (उनसे) अधोलोक-तिर्यक्लोक मे असख्यातगुणी है, ५ (उनसे) अधोलोक मे सख्यातगुणी हैं, ६ (उनसे भी) तिर्यक्लोक मे सख्यातगुणी है ।

२८८ खेत्ताणुवाएण सव्वत्थोवा जोइसिया देवा उड्ढलोए १, उड्ढलोयतिरियलोए असखेज्जगुणा २, तेलोक्के संखेज्जगुणा ३, अधेलोयतिरियलोए असखेज्जगुणा ४, अधेलोए सखेज्जगुणा ५, तिरियलोए असखेज्जगुणा ६ ।

[२८८] क्षेत्र के अनुसार १ सबसे कम ज्योतिष्क देव ऊर्ध्वलोक मे है, २ (उनसे) ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक मे असख्यातगुणे है, ३ (उनसे) त्रैलोक्य मे सख्यातगुणे है, ४ (उनसे) अधोलोक-तिर्यक्लोक मे असख्यातगुणे है, ५ (उनसे) अधोलोक मे सख्यातगुणे हैं, ६ (और उनसे भी) तिर्यक्लोक मे असख्यातगुणे हैं ।

२८९. खेत्ताणुवाएण सव्वत्थोवाओ जोइसिणीओ देवीओ उड्ढलोए १, उड्ढलोयतिरियलोए असखेज्जगुणाओ २, तेलोक्के संखेज्जगुणाओ ३, अधेलोयतिरियलोए असंखेज्जगुणाओ ४, अधेलोए संखेज्जगुणाओ ५, तिरियलोए असखेज्जगुणाओ ६ ।

[२८९] क्षेत्र के अनुसार १ सबसे अल्प ज्योतिष्क देवियाँ ऊर्ध्वलोक मे है, २ (उनसे) ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक मे असख्यातगुणी है, ३ (उनसे) त्रैलोक्य मे सख्यातगुणी है, ४ (उनसे) अधोलोक-तिर्यक्लोक मे असख्यातगुणी है, ५ (उनसे) अधोलोक मे सख्यातगुणी है, ६ (और उनसे भी) तिर्यक्लोक मे असख्यातगुणी है ।

२९०. खेत्ताणुवाएण सव्वत्थोवा वेमाणिया देवा[1] उड्ढलोयतिरियलोए १, तेलोक्के संखेज्ज-गुणा २, अधोलोयतिरियलोए सखेज्जगुणा ३, अधेलोए सखेज्जगुणा ४, तिरियलोए सखेज्जगुणा ५, उड्ढलोए असखेज्जगुणा ६ ।

[२९०] क्षेत्र के अनुसार १ सबसे कम वैमानिक देव ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक मे हैं, २ (उनसे) त्रैलोक्य मे सख्यातगुणे हैं, ३. (उनसे) अधोलोक-तिर्यक्लोक मे सख्यातगुणे है, ४ (उनसे) अधोलोक मे सख्यातगुणे है, ५ (उनसे) तिर्यक्लोक मे सख्यातगुणे है, ६. (और उनसे भी) ऊर्ध्वलोक मे असख्यातगुणे है ।

२९१ खेत्ताणुवाएण सव्वत्थोवाओ वेमाणिणीओ देवीओ उड्ढलोयतिरियलोए १, तेलोक्के सखेज्जगुणाओ २, अधेलोयतिरियलोए सखेज्जगुणाओ ३, अधेलोए सखिज्जगुणाओ ४, तिरियलोए सखेज्जगुणाओ ५, उड्ढलोए असंखेज्जगुणाओ ६ ।

[२९१] क्षेत्र की अपेक्षा से १ सबसे अल्प वैमानिक देवियाँ ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक मे है, २ (उनसे) त्रैलोक्य मे सख्यातगुणी है, ३ (उनसे) अधोलोक-तिर्यक्लोक मे सख्यातगुणी है, ४ (उनसे) अधोलोक मे सख्यातगुणी है, ५ (उनसे) तिर्यक्लोक मे सख्यातगुणी है, ६ (और उनसे भी) ऊर्ध्वलोक मे असख्यातगुणी है ।

२९२, खेत्ताणुवाएण सव्वत्थोवा एगिंदिया जीवा उड्ढलोयतिरियलोए १, अधेलोयतिरिय-लोए विसेसाहिया २, तिरियलोए असखेज्जगुणा ३, तेलोक्के असखेज्जगुणा ४, उड्ढलोए असखेज्ज-गुणा ५, अधोलोए विसेसाहिया ६ ।

[२९२] क्षेत्र के अनुसार १ सबसे थोडे एकेन्द्रिय जीव ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक मे है, २ (उनसे) अधोलोक-तिर्यक्लोक मे विशेषाधिक हैं, ३ (उनसे) तिर्यक्लोक मे असख्यातगुणे है, ४ (उनसे) त्रैलोक्य मे असख्यातगुणे हैं, ५. (उनसे) ऊर्ध्वलोक मे असख्यातगुणे है और ६ (उनसे भी) अधोलोक मे विशेषाधिक है ।

२९३. खेत्ताणुवाएण सव्वत्थोवा एगिंदिया जीवा अपज्जत्तगा उड्ढलोयतिरियलोए १, अधो-लोयतिरियलोए विसेसाहिया २. तिरियलोए असंखेज्जगुणा ३, तेलोक्के असखेज्जगुणा ४, उड्ढलोए-
ेज्जगुणा ५, अधोलोए विसेसाहिया ६ ।

---
१ ग्रन्थाग्रम् २०००

[२९३] क्षेत्र के अनुसार १ सबसे कम एकेन्द्रिय-अपर्याप्तक जीव ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक मे हैं, २. (उनसे) अधोलोक-तिर्यक्लोक मे विशेषाधिक हैं, ३ (उनसे) तिर्यक्लोक मे असख्यात-गुणे है, ४ (उनसे) त्रैलोक्य मे असख्यातगुणे है, ५ (उनसे) ऊर्ध्वलोक मे असख्यातगुणे है, और ६ (उनसे भी) अधोलोक मे विशेषाधिक है।

२९४ खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा एगिंदिया जीवा पज्जत्तगा उड्ढलोयतिरियलोए १, अधोलोयतिरियलोए विसेसाहिया २, तिरियलोए असखेज्जगुणा ३, तेलोक्के असखेज्जगुणा ४, उड्ढलोए असखेज्जगुणा ५, अहोलोए विसेसाहिया ६।

[२९४] क्षेत्र की अपेक्षा से १ एकेन्द्रिय-पर्याप्तक जीव सबसे थोडे ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक मे है, २. (उनसे) अधोलोक-तिर्यक्लोक मे विशेषाधिक है, ३. (उनसे) तिर्यक्लोक मे असख्यात-गुणे है, ४ (उनसे) त्रैलोक्य मे असख्यातगुणे है, ५. उनसे ऊर्ध्वलोक मे असख्यातगुणे है, ६ और (उनसे भी) अधोलोक मे विशेषाधिक है।

२९५ खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा बेइंदिया उड्ढलोए १, उड्ढलोयतिरियलोए असखेज्जगुणा २, तेलोक्के असखेज्जगुणा ३, अधेलोयतिरियलोए असखेज्जगुणा ४, अधेलोए सखेज्जगुणा ५, तिरियलोए सखेज्जगुणा ६।

[२९५] क्षेत्र की अपेक्षा से १ सबसे कम द्वीन्द्रिय जीव ऊर्ध्वलोक मे है, २ (उनसे) ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक मे असख्यातगुणे हैं, ३ (उनसे) त्रैलोक्य मे असख्यातगुणे है, ४ (उनसे) अधोलोक-तिर्यक्लोक मे असख्यातगुणे है, ५. (उनसे) अधोलोक मे सख्यातगुणे है, ६ (और उनसे भी) तिर्यक्लोक मे सख्यातगुणे हैं।

२९६ खेत्ताणुवाएण सव्वत्थोवा बेइंदिया अपज्जत्तया उड्ढलोए १, उड्ढलोयतिरियलोए असखेज्जगुणा २, तेलोक्के असखिज्जगुणा ३, अधेलोयतिरियलोए असखिज्जगुणा ४, अधोलोए सखेज्ज-गुणा ५, तिरियलोए सखेज्जगुणा ६।

[२९६] क्षेत्र की अपेक्षा से १ सबसे अल्प द्वीन्द्रिय-अपर्याप्तक जीव ऊर्ध्वलोक मे है, २ (उनसे) ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक मे असख्यातगुणे है, ३ (उनसे) त्रैलोक्य मे असख्यातगुणे है, ४ (उनकी अपेक्षा) अधोलोक-तिर्यक्लोक मे असख्यातगुणे है, ५ (उनसे) अधोलोक मे सख्यातगुणे है, ६ और (उनसे भी) तिर्यक्लोक मे सख्यातगुणे हैं।

२९७ खेत्ताणुवाएण सव्वत्थोवा बेंदिया पज्जत्तया उड्ढलोए १, उड्ढलोयतिरियलोए असखेज्जगुणा २, तेलोक्के असखिज्जगुणा ३, अधोलोयतिरियलोए असखेज्जगुणा ४, अधेलोए सखेज्जगुणा ५, तिरियलोए संखेज्जगुणा ६।

[२९७] क्षेत्र की अपेक्षा से १ सबसे थोडे द्वीन्द्रिय-पर्याप्तक जीव ऊर्ध्वलोक मे है, २ (उनसे) ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक मे असख्यातगुणे है, ३ (उनसे) त्रैलोक्य मे असख्यातगुणे है, ४ (उनकी अपेक्षा) अधोलोक-तिर्यक्लोक मे असख्यातगुणे है, ५ (उनसे) अधोलोक मे सख्यातगुणे हैं, ६ और (उनसे भी) तिर्यक्लोक मे सख्यातगुणे है।

२९८. खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा तेइंदिया उड्ढलोए १, उड्ढलोयतिरियलोए असंखेज्जगुणा २, तेलोक्के असंखेज्जगुणा ३, अधेलोयतिरियलोए असंखेज्जगुणा ४, अधेलोए संखेज्जगुणा ५, तिरियलोए संखेज्जगुणा ६।

[२९८] क्षेत्र की अपेक्षा से १ सबसे थोडे त्रीन्द्रिय ऊर्ध्वलोक मे है, २ (उनसे) ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक मे असख्यातगुणे हैं, ३ (उनकी अपेक्षा) त्रैलोक्य मे असख्यातगुणे है, ४ (उनसे) अधोलोक-तिर्यक्लोक मे असख्यातगुणे हैं, ५ (उनसे) अधोलोक मे सख्यातगुणे हैं, और ६ (उनसे भी) तिर्यक्लोक मे सख्यातगुणे है।

२९९ खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा तेइंदिया अपज्जत्तगा उड्ढलोए १, उड्ढलोयतिरियलोए असंखेज्जगुणा २, तेलोक्के असंखेज्जगुणा ३, अधेलोयतिरियलोए असंखेज्जगुणा ४, अधोलोए संखेज्जगुणा ५, तिरियलोए संखेज्जगुणा ६।

[२९९] क्षेत्र की अपेक्षा से १ सबसे कम त्रीन्द्रिय-अपर्याप्तक जीव ऊर्ध्वलोक मे हैं, २ (उनसे) ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक मे असख्यातगुणे है, ३ (उनसे) त्रैलोक्य मे असख्यातगुणे है, ४ (उनसे) अधोलोक-तिर्यक्लोक मे असख्यातगुणे है, ५ (उनसे) अधोलोक मे सख्यातगुणे है, ६ और (उनकी अपेक्षा भी) तिर्यक्लोक मे सख्यातगुणे है।

३०० खेत्ताणुवाएण सव्वत्थोवा तेइंदिया पज्जत्तगा उड्ढलोए १, उड्ढलोयतिरियलोए असंखेज्जगुणा २, तेलोक्के असंखेज्जगुणा ३, अधेलोयतिरियलोए असंखेज्जगुणा ४, अधेलोए संखेज्ज-गुणा ५, तिरियलोए संखेज्जगुणा ६।

[३००] क्षेत्र की अपेक्षा से १ सबसे अल्प त्रीन्द्रिय-पर्याप्तक जीव ऊर्ध्वलोक मे है, २ (उनसे) ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक मे असख्यातगुणे है, ३ (उनसे) त्रैलोक्य मे असख्यातगुणे है, ४. (उनकी अपेक्षा) अधोलोक-तिर्यक्लोक मे असख्यातगुणे है, ५ (उनसे) अधोलोक मे सख्यातगुणे है, ६ और (उनसे भी) तिर्यक्लोक मे सख्यातगुणे है।

३०१ खेत्ताणुवाएण सव्वत्थोवा चउरिंदिया जीवा उड्ढलोए १, उड्ढलोयतिरियलोए असंखेज्जगुणा २, तेलोक्के असंखेज्जगुणा ३, अधोलोयतिरियलोए असंखेज्जगुणा ४, अधोलोए संखेज्जगुणा ५, तिरियलोए संखेज्जगुणा ६।

[३०१] क्षेत्र की दृष्टि से १ सबसे अल्प चतुरिन्द्रिय जीव ऊर्ध्वलोक मे है, २ (उनसे) ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक मे असख्यातगुणे है, ३ (उनसे) त्रैलोक्य मे असख्यातगुणे हैं, ४ (उनसे) अधोलोक-तिर्यक्लोक मे असख्यातगुणे हैं, ५ (उनकी अपेक्षा) अधोलोक मे सख्यातगुणे हैं, ६ और (उनसे भी) तिर्यक्लोक मे सख्यातगुणे हैं।

३०२, खेत्ताणुवाएण सव्वत्थोवा चउरिंदिया जीवा अपज्जत्तगा उड्ढलोए १, उड्ढलोयतिरिय-लोए असंखेज्जगुणा २, तेलोक्के असंखेज्जगुणा ३, अधोलोयतिरियलोए असंखेज्जगुणा ४, अधेलोए संखेज्जगुणा ५, तिरियलोए संखेज्जगुणा ६।

[३०२] क्षेत्र की अपेक्षा से १ सबसे थोडे चतुरिन्द्रिय-अपर्याप्तक जीव ऊर्ध्वलोक मे हैं, २ (उनसे) ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक मे असख्यातगुणे है, ३ (उनसे) त्रैलोक्य मे असख्यातगुणे हैं, ४ (उनसे) अधोलोक-तिर्यक्लोक मे असख्यातगुणे है, ५ (उनकी अपेक्षा) अधोलोक मे सख्यातगुणे हैं, ६ और (उनसे भी) तिर्यक्लोक मे सख्यातगुणे है।

३०३ खेत्ताणुवाएण सव्वत्थोवा चउरिंदिया जीवा पज्जत्तया उड्ढलोए १, उड्ढलोयतिरियलोए असखेज्जगुणा २, तेलोक्के असखेज्जगुणा ३, अहेलोयतिरियलोए असखेज्जगुणा ४, अहोलोए सखेज्जगुणा ५, तिरियलोए सखेज्जगुणा ६।

[३०३] क्षेत्र की अपेक्षा से १ सबसे कम चतुरिन्द्रिय-पर्याप्तक जीव ऊर्ध्वलोक मे है, २ (उनसे) ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक मे असख्यातगुणे है, ३ (उनसे) त्रैलोक्य मे असख्यातगुणे हैं, ४ (उनसे) अधोलोक-तिर्यक्लोक मे असख्यातगुणे हैं, ५ (उनसे) अधोलोक मे सख्यातगुणे हैं, ६ और (उनकी अपेक्षा भी) तिर्यक्लोक मे सख्यातगुणे है।

३०४ खेत्ताणुवातेण सव्वत्थोवा पचिदिया तेलोक्के १, उड्ढलोयतिरियलोए सखेज्जगुणा २, अधोलोयतिरियलोए सखेज्जगुणा ३, उड्ढलोए सखेज्जगुणा ४, अधेलोए सखेज्जगुणा ५, तिरियलोए असखेज्जगुणा ६।

[३०४] क्षेत्र की अपेक्षा से १ सबसे अल्प पचेन्द्रिय त्रैलोक्य मे है, २ (उनसे) ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक मे सख्यातगुणे है, ३ (उनकी अपेक्षा) अधोलोक-तिर्यक्लोक मे सख्यातगुणे हैं, ४ (उनसे) ऊर्ध्वलोक मे सख्यातगुणे है, ५ (उनसे) अधोलोक मे सख्यातगुणे है और ६ (उनकी अपेक्षा भी) तिर्यक्लोक मे असख्यातगुणे है।

३०५ खेत्ताणुवाएण सव्वत्थोवा पचिदिया अपज्जत्तया तेलोक्के १, उड्ढलोयतिरियलोए सखेज्जगुणा २, अधेलोयतिरियलोए सखेज्जगुणा ३, उड्ढलोए सखेज्जगुणा ४, अधेलोए सखेज्जगुणा ५, तिरियलोए असखेज्जगुणा ६।

[३०५] क्षेत्र की अपेक्षा से १ सबसे कम पचेन्द्रिय-अपर्याप्तक त्रैलोक्य मे है, २ (उनकी अपेक्षा) ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक मे सख्यातगुणे हैं, ३ (उनसे) अधोलोक-तिर्यक्लोक मे सख्यातगुणे है, ४ (उनसे) ऊर्ध्वलोक मे सख्यातगुणे है, ५ (उनसे) अधोलोक मे सख्यातगुणे है, और ६ (उनकी अपेक्षा भी) तिर्यक्लोक मे असख्यातगुणे है।

३०६ खेत्ताणुवाएण सव्वत्थोवा पचिदिया पज्जत्तया उड्ढलोए १, उड्ढलोयतिरियलोए असखेज्जगुणा २, तेलोक्के सखेज्जगुणा ३, अधोलोयतिरियलोए सखेज्जगुणा ४, अधेलोए सखेज्जगुणा ५, तिरियलोए असखेज्जगुणा ६।

[३०६] क्षेत्र की अपेक्षा से १ सबसे थोडे पचेन्द्रिय-पर्याप्तक जीव ऊर्ध्वलोक मे है, २ (उनसे) ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक मे असख्यातगुणे है, ३ (उनकी अपेक्षा) त्रैलोक्य मे सख्यातगुणे हैं, ४ (उनसे) अधोलोक-तिर्यक्लोक मे सख्यातगुणे हैं, ५ (उनकी अपेक्षा) अधोलोक मे सख्यातगुणे है ६ और (उनकी अपेक्षा भी) तिर्यक्लोक मे असख्यातगुणे है।

३०७. खेत्ताणुवाएण सव्वत्थोवा पुढविकाइया उड्ढलोयतिरियलोए १, अधो लोयतिरियलोए विसेसाहिया २, तिरियलोए असंखेज्जगुणा ३, तेलोक्के असंखेज्जगुणा ४, उड्ढलोए असंखेज्जगुणा ५, अधेलोए विसेसाहिया ६।

[३०७] क्षेत्र के अनुसार १ सबसे थोडे पृथ्वीकायिक जीव ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक मे है, २ (उनकी अपेक्षा) अधोलोक-तिर्यक्लोक मे विशेषाधिक है, ३ (उनसे) तिर्यक्लोक मे असख्यातगुणे है, ४. (उनकी अपेक्षा) त्रैलोक्य मे असख्यातगुणे है, ५ (उनसे) ऊर्ध्वलोक मे असख्यातगुणे है, और ६ (उनकी अपेक्षा भी) अधोलोक मे विशेषाधिक है।

३०८ खेत्ताणुवाएण सव्वत्थोवा पुढविकाइया अपज्जत्तया उड्ढलोयतिरियलोए १, अधोलोयतिरियलोए विसेसाधिया २, तिरियलोए असंखेज्जगुणा ३, तेलोक्के असंखेज्जगुणा ४, उड्ढलोए असंखेज्जगुणा ५, अहोलोए विसेसाधिया ६।

[३०८] क्षेत्र के अनुसार १ सबसे कम पृथ्वीकायिक अपर्याप्तक जीव ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक मे हैं, २ (उनकी अपेक्षा) अधोलोक-तिर्यक्लोक मे विशेषाधिक है, ३ (उनसे) तिर्यक्लोक मे असख्यातगुणे हैं, ४ (उनसे) त्रैलोक्य मे असख्यातगुणे हैं, ५ (उनसे) ऊर्ध्वलोक मे असख्यातगुणे है और ६ (उनकी अपेक्षा भी) अधोलोक मे विशेषाधिक है।

३०९. खेत्ताणुवाएण सव्वत्थोवा पुढविकाइया पज्जत्तया उड्ढलोयतिरियलोए १, अधेलोयतिरियलोए विसेसाधिया २, तिरियलोए असंखेज्जगुणा ३, तेलोक्के असंखेज्जगुणा ४, उड्ढलोए असंखेज्जगुणा ५, अधेलोए विसेसाधिया ६।

[३०९] क्षेत्र के अनुसार १ पृथ्वीकायिक पर्याप्तक जीव सबसे अल्प ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक मे हैं, २ (उनकी अपेक्षा) अधोलोक-तिर्यक्लोक मे विशेषाधिक है, ३ (उनसे) तिर्यक्लोक मे असख्यातगुणे है, ४ (उनसे) त्रैलोक्य मे असख्यातगुणे हैं, ५ (उनकी अपेक्षा) ऊर्ध्वलोक मे असख्यातगुणे है और ६ (उनकी अपेक्षा भी) अधोलोक मे विशेषाधिक हैं।

३१० खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा आउकाइया उड्लोयतिरियलोए १, अधेलोयतिरियलोए विसेसाहिया २, तिरियलोए असंखेज्जगुणा ३, तेलोक्के असंखेज्जगुणा ४, उड्ढलोए असंखेज्जगुणा ५, अहेलोए विसेसाहिया ६।

[३१०] क्षेत्र के अनुसार १ सबसे थोडे अप्कायिक जीव ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक मे है, २ (उनकी अपेक्षा) अधोलोक-तिर्यक्लोक मे विशेषाधिक हैं, ३ (उनसे) तिर्यक्लोक मे असख्यातगुणे हैं, ४ त्रैलोक्य मे (उनसे) असख्यातगुणे हैं, ५ ऊर्ध्वलोक मे (इनसे) असख्यातगुणे है, ६ (और इनसे भी) विशेषाधिक अधोलोक मे है।

३११ खेत्ताणुवाएण सव्वत्थोवा आउकाइया अपज्जत्तया उड्ढलोयतिरियलोए १, अधेलोयतिरियलोए विसेसाधिया २, तिरियलोए असंखेज्जगुणा ३, तेलोक्के असंखेज्जगुणा ४, उड्ढलोए असंखेज्जगुणा ५, अधेलोए विसेसाहिया ६।

[३११] क्षेत्र के अनुसार १ सबसे कम अप्कायिक-अपर्याप्तक जीव ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक मे है, २ (उनकी अपेक्षा) अधोलोक-तिर्यक्लोक मे विशेपाधिक है, ३ (उनसे) तिर्यक्लोक मे असख्यातगुणे हैं, ४ (उनकी अपेक्षा) त्रैलोक्य मे असख्यातगुणे है, ५ (उनसे) ऊर्ध्वलोक मे असख्यातगुणे हैं और ६ अधोलोक मे (उनकी अपेक्षा भी) विशेपाधिक हैं।

३१२ खेत्ताणुवाएण सव्वत्थोवा आउकाइया पज्जत्तया उड्ढलोयतिरिलोए १, अधेलोयतिरियलोए विसेसाधिया २, तिरियलोए असखेज्जगुणा ३, तेलोक्के असखेज्जगुणा ४, उड्ढलोए असखेज्जगुणा ५, अधेलोए विसेसाहिया ६।

[३१२] क्षेत्र की अपेक्षा से १ अप्कायिक-पर्याप्त जीव ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक मे सबसे कम है, २ (उनकी अपेक्षा) अधोलोक-तिर्यक्लोक मे विशेषाधिक है, ३ (उनसे) तिर्यक्लोक मे असख्यातगुणे हैं, ४ (उनकी अपेक्षा)ऊर्ध्वलोक मे असख्यागुणे है, ५ (उनसे) त्रैलोक्य मे असख्यातगुणे है, ६ और (उनसे भी) अधोलोक मे विशेषाधिक है।

३१३ खेत्ताणुवाएण सव्वत्थोवा तेउकाइया उड्ढलोयतिरियलोए १, अधेलोयतिरियलोए विसेसाहिया २, तिरियलोए असखेज्जगुणा ३, तेलोक्के असखेज्जगुणा ४, उड्ढलोए असखेज्जगुणा ५, अधेलोए विसेसाहिया ६।

[३१३] क्षेत्र की अपेक्षा से १ तेजस्कायिक जीव सबसे कम ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक मे है, २ (उनकी अपेक्षा) अधोलोक-तिर्यक्लोक मे विशेषाधिक है, ३ (उनसे) तिर्यक्लोक मे असख्यातगुणे है, ४ (उनकी अपेक्षा) त्रैलोक्य मे असख्यातगुणे हैं, ५ ऊर्ध्वलोक मे (उनसे) असख्यातगुणे हैं, और ६ अधोलोक मे (उनसे भी) विशेषाधिक है।

३१४ खेत्ताणुवाएण सव्वत्थोवा तेउकाइया अपज्जत्तया उड्ढलोयतिरियलोए १, अधेलोयतिरियलोए विसेसाहिया २, तिरियलोए असखेज्जगुणा ३, तेलोक्के असखेज्जगुणा ४, उड्ढलोए असखेज्जगुणा ५, अधेलोए विसेसाधिया ६।

[३१४] क्षेत्र की अपेक्षा से १ सबसे अल्प तेजस्कायिक-अपर्याप्तक जीव ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक मे हैं, २ अधोलोक-तिर्यक्लोक मे (उनसे) विशेषाधिक है, ३ तिर्यक्लोक मे (उनकी अपेक्षा) असख्यातगुणे है, ४ त्रैलोक्य मे (इनसे) असख्येयगुणे है, ५ ऊर्ध्वलोक मे (इनसे) असख्यातगुणे है, ६ और (इनकी अपेक्षा भी) विशेषाधिक अधोलोक मे हैं।

३१५ खेत्ताणुवाएण सव्वत्थोवा तेउक्काइया पज्जत्तया उड्ढलोयतिरियलोए १, अधेलोयतिरियलोए विसेसाहिया २, तिरियलोए असखेज्जगुणा ३, तेलोक्के असखेज्जगुणा ४, उड्ढलोए असखेज्जगुणा ५, अधेलोए विसेसाहिया ६।

[३१५] क्षेत्र की अपेक्षा से १ सबसे कम तेजस्कायिक-पर्याप्तक जीव ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक मे है, २ (उनकी अपेक्षा) अधोलोक-तिर्यक्लोक मे विशेषाधिक है, ३ तिर्यक्लोक मे (उनसे) असख्यातगुणे हैं, ४ त्रैलोक्य मे (उनकी अपेक्षा) असख्यातगुणे हैं, ५ (उनकी अपेक्षा) ऊर्ध्वलोक मे असख्यातगुणे है और (उनकी अपेक्षा भी) ६ अधोलोक मे विशेषाधिक है, ।

३१६ खेत्ताणुवाएणं सव्वत्थोवा वाउकाइया उड्ढलोयतिरियलोए १, अधेलोयतिरियलोए विसेसाहिया २, तिरियलोए असखेज्जगुणा ३, तेलोक्के असखेज्जगुणा ४, उड्ढलोए असखेज्जगुणा ५, अधेलोए विसेसाहिया ६।

[३१६] क्षेत्र के अनुसार १ सबसे अल्प वायुकायिक जीव ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक है, २ अधोलोक-तिर्यक्लोक मे (इनसे) विशेषाधिक है, ३ तिर्यक्लोक मे (इनसे) असख्यातगुणे है, ४ त्रैलोक्य मे (इनसे) असख्यातगुणे हैं, ५ (इनसे) ऊर्ध्वलोक मे असख्यातगुणे है, ६ और (इनसे भी) विशेषाधिक अधोलोक मे हैं।

३१७ खेत्ताणुवाएण सव्वत्थोवा वाउकाइया अपज्जत्तया उड्ढलोयतिरियलोए १, अधेलोयतिरियलोए विसेसाहिया २, तिरियलोए असखेज्जगुणा ३, तेलोक्के असखेज्जगुणा ४, उड्ढलोए असखेज्जगुणा ५, अधेलोए विसेसाहिया ६।

[३१७] क्षेत्र की अपेक्षा से १ वायुकायिक-अपर्याप्तक जीव सबसे कम ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक मे है, २ अधोलोक-तिर्यक्लोक मे (उनकी अपेक्षा) विशेषाधिक है, ३ (उनसे) तिर्यक्लोक मे असख्यातगुणे है, ४ त्रैलोक्य मे अर्थात् तीनो लोको का स्पर्श करने वाले जीव (उनकी अपेक्षा) असख्यातगुणे हैं, ५ (उनसे) ऊर्ध्वलोक मे असख्यातगुणे है और ६ (उनकी अपेक्षा भी) अधोलोक मे विशेषाधिक है।

३१८ खेत्ताणुवाएण सव्वत्थोवा वाउकाइया पज्जत्तया उड्ढलोयतिरियलोए १, अधेलोयतिरियलोए विसेसाहिया २, तिरियलोए असंखेज्जगुणा ३, तेलोक्के असखेज्जगुणा ४, उड्ढलोए असखेज्जगुणा ५, अधेलोए विसेसाहिया ६।

[३१८] क्षेत्र की अपेक्षा से १ सबसे थोडे वायुकायिक-पर्याप्तक जीव ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक मे है, २ अधोलोक-तिर्यक्लोक मे (इनकी अपेक्षा) विशेषाधिक है, ३ (इनकी अपेक्षा) तिर्यक्लोक मे असख्यातगुणे है, ४ (इनसे) त्रैलोक्य मे असख्यातगुणे है, ५ (इनकी अपेक्षा) असख्यातगुणे ऊर्ध्वलोक मे है और (इनकी अपेक्षा भी) ६ अधोलोक मे विशेषाधिक है।

३१९ खेत्ताणुवाएण सव्वत्थोवा वणस्सइकाइया उड्ढलोयतिरियलोए १, अधेलोयतिरियलोए विसेसाधिया २, तिरियलोए असखेज्जगुणा ३, तेलोक्के असखेज्जगुणा ४, उड्ढलोए असखेज्जगुणा ५, अधेलोए विसेसाधिया ६।

[३१९] क्षेत्र के अनुसार १ सबसे अल्प वनस्पतिकायिक जीव ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक मे है, २ (उनसे) विशेषाधिक अधोलोक-तिर्यक्लोक मे है, ३ (उनसे) तिर्यक्लोक मे असख्यातगुणे हैं, ४ त्रैलोक्य मे (उनसे) असख्यातगुणे हैं, ५ ऊर्ध्वलोक मे (उनकी अपेक्षा) असख्यातगुणे है, ६ और अधोलोक मे (उनसे भी) विशेषाधिक हैं।

३२० खेत्ताणुवाएण सव्वत्थोवा वणस्सइकाइया अपज्जत्तया उड्ढलोयतिरियलोए १, अधोलोयतिरियलोए विसेसाहिया २, तिरियलोए असखेज्जगुणा ३, तेलोक्के असखेज्जगुणा ४, उड्ढलोए सखेज्जगुणा ५, अधेलोए विसेसाहिया ६।

[३२०] क्षेत्र की अपेक्षा से १. सबसे कम वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक जीव ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक मे है, २ (उनकी अपेक्षा) अधोलोक-तिर्यक्लोक मे विशेषाधिक है, ३ (उनमे) तिर्यक्लोक मे असख्यातगुणे है, ४ त्रैलोक्य मे (उनकी अपेक्षा) असख्यातगुणे है, ५ ऊर्ध्वलोक मे (उनमे) असख्यातगुणे है तथा ६ अधोलोक मे (इनकी अपेक्षा भी) विशेषाधिक है।

३२१. खेत्ताणुवाएण सव्वत्थोवा वणस्सइकाइया पज्जत्तया उड्ढलोयतिरियलोए १, अधेलोयतिरियलोए विसेसाहिया २, तिरियलोए असखेज्जगुणा ३, तेलोक्के असखेज्जगुणा ४, उड्ढलोए असखेज्जगुणा ५, अधेलोए विसेसाहिया ६।

[३२१] क्षेत्र की अपेक्षा से १ सबसे अल्प वनस्पतिकायिक-पर्याप्तक जीव ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक मे हैं, २ अधोलोक-तिर्यक्लोक मे (उनसे) विशेषाधिक हैं, ३ (उनसे) तिर्यक्लोक मे असख्यातगुणे है, ४ त्रैलोक्य मे (उनसे) असख्यातगुणे है, ५ (उनसे) असख्यातगुणे ऊर्ध्वलोक मे है, ६ (और उनकी अपेक्षा भी) विशेषाधिक अधोलोक मे है।

३२२. खेत्ताणुवाएण सव्वत्थोवा तसकाइया तेलोक्के १, उड्ढलोयतिरियलोए सखेज्जगुणा २, अहेलोयतिरियलोए सखेज्जगुणा ३, उड्ढलोए सखेज्जगुणा ४, अधेलोए सखेज्जगुणा ५, तिरियलोए असंखेज्जगुणा ६।

[३२२] क्षेत्र की अपेक्षा से १ सबसे थोडे त्रसकायिक जीव त्रैलोक्य मे है, २ ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक मे (इनकी अपेक्षा) सख्यातगुणे है, ३ (इनकी अपेक्षा) सख्यातगुणे अधोलोक-तिर्यक्लोक है, ४ ऊर्ध्वलोक मे (इनसे) सख्यातगुणे है, ५. अधोलोक मे (इनकी अपेक्षा) सख्यातगुणे है, ६ और (इनकी अपेक्षा भी) तिर्यक्लोक मे असख्यातगुणे है।

३२३ खेत्ताणुवाएण सव्वत्थोवा तसकाइया अपज्जत्तया तेलोक्के १, उड्ढलोयतिरियलोए सखेज्जगुणा २, अधेलोयतिरियलोए सखेज्जगुणा ३, उड्ढलोए सखेज्जगुणा ४, अधेलोए सखेज्जगुणा ५, तिरियलोए असखेज्जगुणा ६।

[३२३] क्षेत्र की अपेक्षा से १ सबसे कम त्रसकायिक अपर्याप्तक जीव त्रैलोक्य मे हैं, २ (उनकी अपेक्षा) सख्यातगुणे ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक मे है, ३ अधोलोक-तिर्यक्लोक मे (उनकी अपेक्षा) सख्यातगुणे हैं, ४ ऊर्ध्वलोक मे (उनसे) सख्यातगुणे हैं, ५ (उनकी अपेक्षा) अधोलोक मे सख्यातगुणे है और ६ (उनकी अपेक्षा भी) तिर्यक्लोक मे असख्यातगुणे है।

३२४ खेत्ताणुवाएण सव्वत्थोवा तसकाइया पज्जत्तया तेलोक्के १, उड्ढलोयतिरियलोए असखेज्जगुणा २, अधेलोयतिरियलोए सखेज्जगुणा ३, उड्ढलोए सखेज्जगुणा ४, अधेलोए सखेज्जगुणा ५, तिरियलोए सखेज्जगुणा ६। दार २४॥

[३२४] क्षेत्र की अपेक्षा से १ सबसे अल्प त्रसकायिक-पर्याप्तक जीव त्रैलोक्य मे है, २ ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक मे (उनसे) असख्यातगुणे हैं, ३ अधोलोक-तिर्यक्लोक मे (उनकी अपेक्षा) सख्यातगुणे है, ४ ऊर्ध्वलोक मे (उनसे) सख्यातगुणे है, ५ अधोलोक मे (उनसे) सख्यातगुणे है (और उनसे भी) ६ तिर्यक्लोक मे असख्यातगुणे है।

—चौवीसवाँ (क्षेत्र) द्वार ॥२४॥

विवेचन—चौवीसवाँ क्षेत्रद्वार क्षेत्र की अपेक्षा से ऊर्ध्वलोकादिगत विविध जीवो का अल्पबहुत्व—प्रस्तुत ४९ सूत्रो (सू २७६ से ३२४ तक) मे क्षेत्र के अनुसार ऊर्ध्व, अध, तिर्यक् तथा त्रैलोक्यादि विविध लोको मे चौवीसदण्डकवर्ती जीवो के अल्पबहुत्व की विस्तार से चर्चा की गई है।

'खेत्ताणुवाएण' की व्याख्या—क्षेत्र के अनुपात अर्थात् अनुसार अथवा क्षेत्र की अपेक्षा से विचार करना क्षेत्रानुपात कहलाता है।

ऊर्ध्वलोक-तिर्यग्लोक आदि पदो की व्याख्या—जैनशास्त्रानुसार सम्पूर्ण लोक चतुर्दश रज्जू-परिमित है। उसके तीन विभाग किए जाते है—ऊर्ध्वलोक, तिर्यग्लोक (मध्यलोक) और अधोलोक। रुचको के अनुसार इनके विभाग (सीमा) निश्चित होते है। जैसे—रुचक के नौ सौ योजन नीचे और नौ सौ योजन ऊपर **तिर्यक्लोक** है। तिर्यक्लोक के नीचे **अधोलोक** है और तिर्यक्लोक के ऊपर **ऊर्ध्वलोक** है। ऊर्ध्वलोक कुछ न्यून सात रज्जू-प्रमाण है और अधोलोक कुछ अधिक सात रज्जू-प्रमाण है। इन दोनो के मध्य मे १८०० योजन ऊँचा **तिर्यग्लोक** है। ऊर्ध्वलोक का निचला आकाश-प्रदेशप्रतर और तिर्यक्लोक का सबसे ऊपर का आकाश-प्रदेशप्रतर है, वही **ऊर्ध्वलोक-तिर्यग्लोक** कहलाता है, अर्थात् रुचक के समभूभाग से नौ सौ योजन जाने पर, ज्योतिश्चक्र के ऊपर तिर्यग्लोकसम्बन्धी एक-प्रदेशी आकाशप्रतर है, वह **तिर्यग्लोक का प्रतर** है। इसके ऊपर का एकप्रदेशी आकाशप्रतर **ऊर्ध्वलोक-प्रतर** कहलाता है। इन दोनो प्रतरो को **ऊर्ध्वलोक-तिर्यग्लोक** कहते है। अधोलोक के ऊपर का एकप्रदेशी आकाशप्रतर और तिर्यग्लोक के नीचे का एकप्रदेशी आकाशप्रतर **अधोलोक-तिर्यक्लोक** कहलाता है। त्रैलोक्य का अर्थ है—तीनो लोक, यानी तीनो लोको को स्पर्श करने वाला। इस प्रकार क्षेत्र (समग्रलोक) के ६ विभाग समझने के लिए कर दिये हैं—(१) ऊर्ध्वलोक, (२)-तिर्यग्लोक, (३) अधोलोक, (४) ऊर्ध्वलोक-तिर्यग्लोक, (५) अधोलोक-तिर्यक्लोक और (६) त्रैलोक्य।[1]

क्षेत्रानुसार लोक के उक्त छह विभागो मे जीवो का अल्पबहुत्व—ऊर्ध्वलोक-तिर्यग्लोक मे सबसे कम जीव है, क्योकि यहाँ का प्रदेश (क्षेत्र) बहुत थोडा है। उनकी अपेक्षा अधोलोक-तिर्यग्लोक मे जीव विशेषाधिक है, क्योकि विग्रहगति करते हुए या वही पर स्थित जीव विशेषाधिक ही है। उनकी अपेक्षा तिर्यक्लोक मे जीव असख्यातगुणे है, क्योकि ऊपर जिन दो क्षेत्रो का कथन किया गया है, उनकी अपेक्षा तिर्यक्लोक का विस्तार असख्यातगुणा है। तिर्यग्लोक के जीवो की अपेक्षा तीनो लोको का स्पर्श करने वाले जीव असख्यातगुणे है। जो जीव विग्रहगति करते हुए तीनो लोको को स्पर्श करते है, उनकी अपेक्षा यह कथन समझना चाहिए। उनकी अपेक्षा ऊर्ध्वलोक मे असख्यातगुणे जीव इसलिए हैं कि उपपातक्षेत्र की वहाँ अत्यन्त बहुलता है। उनकी अपेक्षा अधोलोकवर्ती जीव विशेषाधिक हैं, क्योकि अधोलोक का विस्तार सात रज्जू से कुछ अधिक प्रमाण है।[2]

क्षेत्रानुसार चार गतियो के जीवो का अल्पबहुत्व—(१) नरकगतीय अल्पबहुत्व—सबसे कम नरकगति के जीव त्रैलोक्य मे अर्थात्—तीनो लोक को स्पर्श करने वाले है। यह शका हो सकती है,

---

१ प्रज्ञापनासूत्र, मलय वृत्ति, पत्रांक १४४

२ (क) वही, मलय वृत्ति, पत्रांक १४४

(ख) 'सव्वत्थोवा जीवा नोपज्जत्ता-नोअपज्जत्ता, अपज्जत्ता अणतगुणा, पज्जत्ता सखेज्जगुणा'

—प्रज्ञापना मूलपाठ टिप्पण भा १, पद ३

कि नारक जीव तीनो लोको को स्पर्श करने वाले कैसे हो सकते हे, क्योकि वे तो अधोलोक में ही स्थित है, तथा वे सबसे कम कैसे है ? इसका समाधान यह है कि मेरुपर्वत के शिखर पर अथवा अजन या दधिमुखपर्वतादि के शिखर पर जो वापिकाएँ हैं, उनमे रहने वाले जो मत्स्य आदि नरक मे उत्पन्न होने वाले है, वे मरणकाल मे इलिकागति से अपने आत्मप्रदेशो को फैलाते हुए तीनो लोको का स्पर्श करते है, और उस समय वे नारक ही कहलाते है, क्योकि तत्काल ही उनकी उत्पत्ति नरक मे होने वाली होती है, और वे नरकायु का वेदन करते है। ऐमे नारक थोडे ही होते हे, इसलिए उन्हे सबसे कम कहा है। त्रिलोकस्पर्शी नारको की अपेक्षा पूर्वोक्त अधोलोकतिर्यग्लोक मे असख्यातगुणे नारक हैं, क्योकि असख्यात द्वीप-समुद्रो मे रहने वाले बहुत-से पचेन्द्रिय तिर्यञ्च जब नरको मे उत्पन्न होते है, तब इन दो प्रतरो का स्पर्श करते है, इस कारण वे त्रैलोक्यस्पर्शी नारको से असख्यातगुणे है, क्योकि उनका क्षेत्र असख्यातगुणा है। मेरु आदि क्षेत्र की अपेक्षा असख्यात द्वीप-समुद्ररूप क्षेत्र असख्यातगुणा है। **(२) तिर्यंचगतिक अल्पबहुत्व**—सबसे कम तिर्यञ्च ऊर्ध्वलोक-तिर्यग्लोक मे है, क्योकि ये तिर्यग्लोक के उपरिलोकवर्ती और ऊर्ध्वलोक के अधोलोकवर्ती दो प्रतरो मे है, उनकी अपेक्षा अधोलोक-तिर्यग्लोक मे—अधोलोक के ऊपरी और तिर्यग्लोक के निचले दो प्रतरो मे—विशेषाधिक हैं। इनकी अपेक्षा तिर्यग्लोक, त्रैलोक्य एव ऊर्ध्वलोक मे उत्तरोत्तर क्रमश असख्यातगुणे है। त्रैलोक्यसस्पर्शी तिर्यचो की अपेक्षा ऊर्ध्वलोक (ऊर्ध्वलोकसज्ञक प्रतर मे) असख्यातगुणे तिर्यञ्च है। इनकी अपेक्षा अधोलोक मे विशेषाधिक है। **तिर्यचस्त्रियाँ**—क्षेत्र की अपेक्षा से सबसे कम तिर्यचिनी ऊर्ध्वलोक का स्पर्श करने वाली हैं, क्योकि मेरु आदि की वापी आदि मे भी पचेन्द्रिय स्त्रियाँ विद्यमान हैं। उनका क्षेत्र अल्प है। अतएव वे सबसे कम कही गई है, इनकी अपेक्षा ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक मे (ऊर्ध्वलोक और तिर्यग्लोक के दो प्रतरो को स्पर्श करने वाली) तिर्यचस्त्रियाँ असख्यातगुणी है। इसका कारण यह है कि सहस्रार देवलोक तक के देव, गर्भजपचेन्द्रिय-तिर्यञ्च स्त्रियो मे उत्पन्न हो सकते है और शेष काया के जीव भी उनमे उत्पन्न हो सकते हैं। जब सहस्रार देवलोक तक के देव या शेष काया के जीव ऊर्ध्वलोक से तिर्यक्लोक में पचेन्द्रिय तिर्यंचस्त्री के रूप मे उत्पन्न होने वाले होते हैं, तब वे तिर्यंचस्त्री की आयु का वेदन करते है। इसके अतिरिक्त तिर्यक्लोकवर्ती पचेन्द्रिय-तिर्यच-स्त्रियाँ जब ऊर्ध्वलोक मे देवरूप से या अन्य किसी रूप मे उत्पन्न होने वाली होती है, तब वे मारणान्तिक समुद्घात करके अपने उत्पत्तिदेश तक अपने आत्मप्रदेशो को फैलाती है। उस समय वे पूर्वोक्त दोनो प्रतरो को स्पर्श करती हैं। उस समय वे तिर्यंचयोनिक स्त्रियाँ कहलाती है, अतएव असख्यातगुणी कही गई हैं। इनकी अपेक्षा त्रैलोक्य मे—त्रिलोक का स्पर्श करने वाली स्त्रियाँ तिर्यचस्त्रियाँ सख्यातगुणी है। जब अधोलोक से भवनवासी, वाणव्यन्तर, नैरयिक तथा अन्यकायो के जीव ऊर्ध्वलोक मे पचेन्द्रियतिर्यञ्चस्त्री के रूप मे उत्पन्न होते है, अथवा ऊर्ध्वलोक से कोई देवादि अधोलोक मे तिर्यंचस्त्री के रूप मे उत्पन्न होते है और वे समुद्घात करके अपने आत्मप्रदेशो को दण्डरूप मे फैलाते हुए तीनो लोको का स्पर्श करते हैं। ऐसे जीव बहुत है, अतएव त्रैलोक्य मे तिर्यच-स्त्री को सख्यातगुणी कहना सुसगत है। इनकी अपेक्षा अधोलोक-तिर्यक्लोक का स्पर्श करने वाली तिर्यग्योनिकस्त्रियाँ सख्यातगुणी अधिक हैं। बहुत-से नैरयिक आदि समुद्घात किये बिना ही तिर्यक्लोक मे तिर्यञ्चपचेन्द्रियस्त्री के रूप मे उत्पन्न होते है, तथा तिर्यग्लोकवर्ती जीव अधोलौकिक ग्रामो मे तिर्यंचस्त्री के रूप मे उत्पन्न होते है उस समय वे पूर्वोक्त दो प्रतरो का स्पर्श करते है, और तिर्यंचस्त्री के आयुप्य का वेदन करते है, अत उन्हे सख्यातगुणी कहा है। इनकी अपेक्षा भी अधोलोक मे अर्थात् —अधोलोक के प्रतर मे विद्यमान तिर्यञ्चस्त्रियाँ सख्यातगुणी है। अधोलौकिक

विवेचन—चौवीसवाँ क्षेत्रद्वार क्षेत्र की अपेक्षा से ऊर्ध्वलोकादिगत विविध जीवों का अल्पबहुत्व—प्रस्तुत ४९ सूत्रों (सू २७६ से ३२४ तक) मे क्षेत्र के अनुसार ऊर्ध्व, अध, तिर्यक् तथा त्रैलोक्यादि विविध लोको मे चौवीसदण्डकवर्ती जीवो के अल्पबहुत्व की विस्तार से चर्चा की गई है।

'खेत्ताणुवाएण' की व्याख्या—क्षेत्र के अनुपात अर्थात् अनुसार अथवा क्षेत्र की अपेक्षा से विचार करना क्षेत्रानुपात कहलाता है।

ऊर्ध्वलोक-तिर्यग्लोक आदि पदो की व्याख्या—जैनशास्त्रानुसार सम्पूर्ण लोक चतुर्दश रज्जू-परिमित है। उसके तीन विभाग किए जाते है—ऊर्ध्वलोक, तिर्यग्लोक (मध्यलोक) और अधोलोक। रुचको के अनुसार इनके विभाग (सीमा) निश्चित होते है। जैसे—रुचक के नौ सौ योजन नीचे और नौ सौ योजन ऊपर तिर्यक्लोक है। तिर्यक्लोक के नीचे अधोलोक है और तिर्यक्लोक के ऊपर ऊर्ध्वलोक है। ऊर्ध्वलोक कुछ न्यून सात रज्जू-प्रमाण है और अधोलोक कुछ अधिक सात रज्जू-प्रमाण है। इन दोनो के मध्य मे १८०० योजन ऊँचा तिर्यग्लोक है। ऊर्ध्वलोक का निचला आकाश-प्रदेशप्रतर और तिर्यक्लोक का सबसे ऊपर का आकाश-प्रदेशप्रतर है, वही ऊर्ध्वलोक-तिर्यग्लोक कहलाता है, अर्थात् रुचक के समभूभाग से नौ सौ योजन जाने पर, ज्योतिश्चक्र के ऊपर तिर्यग्लोकसम्बन्धी एक-प्रदेशी आकाशप्रतर है, वह तिर्यग्लोक का प्रतर है। इसके ऊपर का एकप्रदेशी आकाशप्रतर ऊर्ध्वलोक-प्रतर कहलाता है। इन दोनो प्रतरो को ऊर्ध्वलोक-तिर्यग्लोक कहते हैं। अधोलोक के ऊपर का एकप्रदेशी आकाशप्रतर और तिर्यग्लोक के नीचे का एकप्रदेशी आकाशप्रतर अधोलोक-तिर्यक्लोक कहलाता है। त्रैलोक्य का अर्थ है—तीनो लोक, यानी तीनो लोको को स्पर्श करने वाला। इस प्रकार क्षेत्र (समग्रलोक) के ६ विभाग समझने के लिए कर दिये है—(१) ऊर्ध्वलोक, (२) तिर्यग्लोक, (३) अधोलोक, (४) ऊर्ध्वलोक-तिर्यग्लोक, (५) अधोलोक-तिर्यक्लोक और (६) त्रैलोक्य।[1]

क्षेत्रानुसार लोक के उक्त छह विभागो मे जीवो का अल्पबहुत्व—ऊर्ध्वलोक-तिर्यग्लोक मे सबसे कम जीव है, क्योकि यहाँ का प्रदेश (क्षेत्र) बहुत थोडा है। उनकी अपेक्षा अधोलोक-तिर्यग्लोक मे जीव विशेषाधिक है, क्योकि विग्रहगति करते हुए या वही पर स्थित जीव विशेषाधिक ही है। उनकी अपेक्षा तिर्यक्लोक मे जीव असख्यातगुणे है, क्योकि ऊपर जिन दो क्षेत्रो का कथन किया गया है, उनकी अपेक्षा तिर्यक्लोक का विस्तार असख्यातगुणा है। तिर्यग्लोक के जीवो की अपेक्षा तीनो लोको का स्पर्श करने वाले जीव असख्यातगुणे है। जो जीव विग्रहगति करते हुए तीनो लोको को स्पर्श करते है, उनकी अपेक्षा यह कथन समझना चाहिए। उनकी अपेक्षा ऊर्ध्वलोक मे असख्यातगुणे जीव इसलिए है कि उपपातक्षेत्र की वहाँ अत्यन्त बहुलता है। उनकी अपेक्षा अधोलोकवर्ती जीव विशेषाधिक है, क्योकि अधोलोक का विस्तार सात रज्जू से कुछ अधिक प्रमाण है।[2]

क्षेत्रानुसार चार गतियो के जीवो का अल्पबहुत्व—(१) नरकगतीय अल्पबहुत्व—सबसे कम नरकगति के जीव त्रैलोक्य मे अर्थात्—तीनो लोक को स्पर्श करने वाले हैं। यह शका हो सकती है,

---

१ प्रज्ञापनासूत्र, मलय वृत्ति, पत्राक १४४

२ (क) वही, मलय वृत्ति, पत्राक १४४

(ख) 'सव्वत्थोवा जीवा नोपज्जत्ता-नोअपज्जत्ता, अपज्जत्ता अणतगुणा, पज्जत्ता सखेज्जगुणा'

—प्रज्ञापना मूलपाठ टिप्पण भा १, पद

कि नारक जीव तीनो लोको को स्पर्श करने वाले कैसे हो सकते है, क्योकि वे तो अधोलोक मे ही स्थित है, तथा वे सबसे कम कैसे है ? इसका समाधान यह है कि मेरुपर्वत के शिखर पर अथवा अजन या दधिमुखपर्वतादि के शिखर पर जो वापिकाएँ है, उनमे रहने वाले जो मत्स्य आदि नरक मे उत्पन्न होने वाले है, वे मरणकाल मे इलिकागति से अपने आत्मप्रदेशो को फैलाते हुए तीनो लोको का स्पर्श करते है, और उस समय वे नारक ही कहलाते है, क्योकि तत्काल ही उनकी उत्पत्ति नरक मे होने वाली होती है, और वे नरकायु का वेदन करते है। ऐसे नारक थोडे ही होते है, इसलिए उन्हे सबसे कम कहा है। त्रिलोकस्पर्शी नारको की अपेक्षा पूर्वोक्त अधोलोकतिर्यग्लोक मे असख्यातगुणे नारक हैं, क्योकि असख्यात द्वीप-समुद्रो मे रहने वाले बहुत-से पचेन्द्रिय तिर्यञ्च जब नरको मे उत्पन्न होते है, तब इन दो प्रतरो का स्पर्श करते है, इस कारण वे त्रैलोक्यस्पर्शी नारको से असख्यातगुणे है, क्योकि उनका क्षेत्र असख्यातगुणा है। मेरु आदि क्षेत्र की अपेक्षा असख्यात द्वीप-समुद्ररूप क्षेत्र असख्यातगुणा है। (२) **तिर्यंचगतिक अल्पबहुत्व**—सबसे कम तिर्यञ्च ऊर्ध्वलोक-तिर्यग्लोक मे है, क्योकि ये तिर्यग्लोक के उपरिलोकवर्ती और ऊर्ध्वलोक के अधोलोकवर्ती दो प्रतरो मे है, उनकी अपेक्षा अधोलोक-तिर्यग्लोक मे—अधोलोक के ऊपरी और तिर्यग्लोक के निचले दो प्रतरो मे—विशेषाधिक है। इनकी अपेक्षा तिर्यग्लोक, त्रैलोक्य एव ऊर्ध्वलोक मे उत्तरोत्तर क्रमश असख्यातगुणे है। त्रैलोक्यसस्पर्शी तिर्यचो की अपेक्षा ऊर्ध्वलोक (ऊर्ध्वलोकसज्ञक प्रतर मे) असख्यातगुणे तिर्यञ्च हैं। इनकी अपेक्षा अधोलोक मे विशेषाधिक है। **तिर्यचस्त्रियाँ**—क्षेत्र की अपेक्षा से सबसे कम तिर्यंचिनी ऊर्ध्वलोक का स्पर्श करने वाली है, क्योकि मेरु आदि की वापी आदि मे भी पचेन्द्रिय स्त्रियाँ विद्यमान हैं। उनका क्षेत्र अल्प है। अतएव वे सबसे कम कही गई है, इनकी अपेक्षा ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक मे (ऊर्ध्वलोक और तिर्यग्लोक के दो प्रतरो को स्पर्श करने वाली) तिर्यचस्त्रियाँ असख्यातगुणी है। इसका कारण यह है कि सहस्रार देवलोक तक के देव, गर्भजपचेन्द्रिय-तिर्यञ्च स्त्रियो मे उत्पन्न हो सकते हैं और शेष काया के जीव भी उनमे उत्पन्न हो सकते हैं। जब सहस्रार देवलोक तक के देव या शेष काया के जीव ऊर्ध्वलोक से तिर्यक्लोक में पचेन्द्रिय तिर्यंचस्त्री के रूप मे उत्पन्न होने वाले होते हैं, तब वे तिर्यंचस्त्री की आयु का वेदन करते है। इसके अतिरिक्त तिर्यक्लोकवर्ती पचेन्द्रिय-तिर्यंच-स्त्रियाँ जब ऊर्ध्वलोक मे देवरूप से या अन्य किसी रूप मे उत्पन्न होने वाली होती है, तब वे मारणान्तिक समुद्घात करके अपने उत्पत्तिदेश तक अपने आत्मप्रदेशो को फैलाती है। उस समय वे पूर्वोक्त दोनो प्रतरो को स्पर्श करती हैं। उस समय वे तिर्यंचयोनिक स्त्रियाँ कहलाती है, अतएव असख्यातगुणी कही गई है। इनकी अपेक्षा त्रैलोक्य मे—त्रिलोक का स्पर्श करने वाली स्त्रियाँ तिर्यंचस्त्रियाँ सख्यातगुणी है। जब अधोलोक से भवनवासी, वाणव्यन्तर, नैरयिक तथा अन्यकायो के जीव ऊर्ध्वलोक मे पचेन्द्रियतिर्यञ्चस्त्री के रूप मे उत्पन्न होते है, अथवा ऊर्ध्वलोक से कोई देवादि अधोलोक मे तिर्यंचस्त्री के रूप मे उत्पन्न होते है और वे समुद्घात करके अपने आत्मप्रदेशो को दण्डरूप मे फैलाते हुए तीनो लोको का स्पर्श करते हैं। ऐसे जीव बहुत है, अतएव त्रैलोक्य मे तिर्यंच-स्त्री को सख्यातगुणी कहना सुसगत है। इनकी अपेक्षा अधोलोक-तिर्यक्लोक का स्पर्श करने वाली तिर्यग्योनिकस्त्रियाँ सख्यातगुणी अधिक है। बहुत-से नैरयिक आदि समुद्घात किये बिना ही तिर्यक्लोक मे तिर्यञ्चपचेन्द्रियस्त्री के रूप मे उत्पन्न होते है, तथा तिर्यग्लोकवर्ती जीव अधोलौकिक ग्रामो मे तिर्यंचस्त्री के रूप मे उत्पन्न होते है उस समय वे पूर्वोक्त दो प्रतरो का स्पर्श करते है, और तिर्यचस्त्री के आयुष्य का वेदन करते है, अत उन्हे सख्यातगुणी कहा है। इनकी अपेक्षा भी अधोलोक मे अर्थात् —अधोलोक के प्रतर मे विद्यमान तिर्यञ्चस्त्रियाँ सख्यातगुणी है। अधोलौकिक

ग्राम और सभी समुद्र एक हजार योजन अवगाह वाले है। अन नौ सौ योजन से नीचे मत्सी आदि तिर्यञ्चयोनिकस्त्रियो के स्वस्थान होने से वे प्रचुर सख्या मे है। इस कारण उन्हे सख्यातगुणी कहा है। उनका क्षेत्र भी सख्यातगुणा अधिक है। अधोलोक की अपेक्षा तिर्यक्लोक मे तिर्यञ्चस्त्रियाँ सख्यातगुणी अधिक हैं। (३) **मनुष्यगतिविषयक अल्पबहुत्व**—क्षेत्रापेक्षया विचार करने पर त्रैलोक्य मे (त्रिलोकस्पर्शी) मनुष्य सबसे कम हैं, क्योकि ऊर्ध्वलोक से अधोलौकिक ग्रामो मे उत्पन्न होने वाले और मारणान्तिक समुद्घात करने वालो मे से कोई-कोई समुद्घातवश बाहर निकाले हुए स्वात्मप्रदेशो से तीनो लोको का स्पर्श करते हैं। कोई-कोई वैक्रिय या आहारक समुद्घात को प्राप्त होकर विशेष प्रयत्न के द्वारा बहुत दूर तक ऊपर और नीचे अपने आत्मप्रदेशो को फैलाते है, केवलीसमुद्घात को प्राप्त थोडे-से मानव तीनो लोको को स्पर्श करते हैं। इस कारण सबसे कम मनुष्य त्रिलोक मे है। उनकी अपेक्षा ऊर्ध्वलोक-तिर्यग्लोक सज्ञक दो प्रतरो को स्पर्श करने वाले मनुष्य असख्यातगुणे हैं। वैमानिक देव अथवा अन्य काय वाले जीव यथासम्भव उर्ध्वलोक से तिर्यक्लोक मे मनुष्यरूप मे उत्पन्न होते है, तब वे पूर्वोक्त दो प्रतरो का स्पर्श करते है। इसके अतिरिक्त विद्याधर आदि भी जब मेरु आदि पर गमन करते है, तब उनके शुक्र, शोणित आदि पुद्गलो मे सम्मूर्च्छिम मनुष्यो की उत्पत्ति होती है, और वे विद्याधर रुधिरादिपुद्गलो के साथ सम्मिश्र होकर जब लौटते हैं, तब पूर्वोक्त दो प्रतरो का स्पर्श करते है, वे सख्या मे अधिक होते है, इस कारण असख्यातगुणे है। इनकी अपेक्षा अधोलोक-तिर्यक्लोक नामक दो प्रतरो को स्पर्श करने वाले मनुष्य सख्यातगुणे हैं, क्योकि अधोलौकिक ग्रामो मे स्वभावत ही बहुत-से मनुष्यो का सद्भाव है। अत जो तिर्यक्लोक से मनुष्यो या अन्य कायो से आकर अधोलौकिक ग्रामो मे गर्भज मनुष्य या सम्मूर्च्छिम मनुष्य के रूप मे उत्पन्न होने वाले है, अथवा अधोलौकिक ग्रामो से या अधोलोकवर्त्ती किसी अन्य स्थान से तिर्यक्लोक मे गर्भज या सम्मूर्च्छिम मनुष्य के रूप मे उत्पन्न होते हुए मनुष्य पूर्वोक्त दो प्रतरो का स्पर्श करते है। अतएव इन्हे सख्यातगुणे कहे हैं। इनकी अपेक्षा ऊर्ध्वलोक मे मनुष्य सख्यातगुणे अधिक है, क्योकि सौमनस आदि वनो मे क्रीडा आदि करने के लिए प्रचुरतर विद्याधरो एव चारणमुनियो का गमनागमन होता है, और उनके यथायोग रुधिरादिपुद्गलो के योग से सम्मूर्च्छिम मनुष्यो की उत्पत्ति होती है। इनकी अपेक्षा भी अधोलोक मे सख्यातगुणे मनुष्य हैं, क्योकि अधोलोक स्वस्थान होने से वहाँ अधिकता होनी स्वाभाविक है। इनकी अपेक्षा भी तिर्यग्लोक मे सख्यातगुणे मनुष्य अधिक है, क्योकि तिर्यग्लोक का क्षेत्र सख्यातगुणा अधिक है, और मनुष्यो का वह स्वस्थान है, इस कारण अधिकता सम्भव है।

मनुष्यस्त्रियो का क्षेत्र की अपेक्षा से अल्पबहुत्व—सबसे कम मनुष्यस्त्रियाँ तीनो लोक को स्पर्श करने वाली हैं, क्योकि ऊर्ध्वलोक से अधोलोक मे उत्पन्न होने वाली मारणान्तिक-समुद्घातवश जब वे अपने आत्मप्रदेशो को बाहर निकालती है, अथवा जब वे वैक्रियसमुद्घात या केवलीसमुद्घात करती हैं, तब तीनो लोको का स्पर्श करती हैं और ऐसी मनुष्यस्त्रियाँ अत्यन्त कम होती है, इस कारण सबसे थोडी मनुष्यस्त्रियाँ त्रैलोक्य मे बताई गई है। इनकी अपेक्षा ऊर्ध्वलोक-तिर्यग्लोकसज्ञक दो प्रतरो का स्पर्श करने वाली स्त्रियाँ सख्यातगुणी होती हैं। वैमानिकदेव अथवा शेष कायवाले कोई जीव जब ऊर्ध्वलोक से तिर्यग्लोक मे मनुष्यस्त्री के रूप मे उत्पन्न होने वाले होते है, तथा तिर्यग्लोकगत मनुष्यस्त्रियाँ जब ऊर्ध्वलोक मे उत्पन्न होते समय मारणान्तिक समुद्घात करती हैं, तब दूर तक ऊपर अपने आत्मप्रदेशो को फैलाती है, फिर भी तब तक जो कालगत नही हुई है, वे पूर्वोक्त दोनो प्रतरो का स्पर्श करती हैं, और वे दोनो प्रकार की स्त्रियाँ बहुत अधि[illegible]

हैं। उनकी अपेक्षा अधोलोक-तिर्यग्लोकसज्ञक पूर्वोक्त प्रतरद्वयका स्पर्श करने वाली मनुष्यस्त्रियाँ सख्यातगुणी होती है, क्योकि तिर्यग्लोक से मनुष्यस्त्रीपर्याय से या अन्य पर्याय से अधोलौकिक ग्रामो मे अथवा अधोलौकिक ग्राम से तिर्यग्लोक मे मनुष्यस्त्री के रूप मे उत्पन्न होने वाली होती है, उनमे से कई अधोलौकिक ग्रामो मे अवस्थान करके भी उक्त दोनो प्रतरो का स्पर्श करती हैं। ऐसी स्त्रियाँ पूर्वोक्तप्रतरद्वय की स्त्रियो से बहुत अधिक होती हे। इनकी अपेक्षा भी ऊर्ध्वलोक मे (ऊर्ध्वलोक नामक प्रतरगत) मनुष्यस्त्रियाँ सख्यातगुणी अधिक है, क्योकि सौमनस आदि वनो मे क्रीडार्थ बहुत-सी विद्याधरियो का गमन सम्भव है। अधोलोक मे उनकी अपेक्षा भी वे सख्यातगुणी अधिक है, क्योकि वहाँ स्वस्थान होने से प्रचुरतर होती है। उनकी अपेक्षा भी तिर्यग्लोक मे वे सख्यातगुणी हैं, क्योकि वहाँ क्षेत्र भी सख्यातगुणा अधिक है, और स्वस्थान भी है। (४) **देवगति के जीवों का अल्पबहुत्व**—क्षेत्र की अपेक्षा से सबसे कम देव ऊर्ध्वलोक मे है, क्योकि वहाँ वैमानिक जाति के देव ही रहते है, और वे थोडे है, और जो भवनपति आदि देव तीर्थंकरो के जन्मोत्सवादि पर मन्दरपर्वतादि पर जाते है, वे भी स्वल्प ही होते है, इस कारण सबसे थोडे देव ऊर्ध्वलोक मे हे। उनकी अपेक्षा ऊर्ध्वलोक-तिर्यग्लोकसज्ञक दो प्रतरो मे असख्यातगुणे देव है, ये दोनो प्रतर ज्योतिष्कदेवो के निकटवर्ती है, अतएव उनके स्वस्थान है। इसके अतिरिक्त भवनपति, वाणव्यन्तर और ज्योतिष्कदेव सुमेरु आदि पर गमन करते है, अथवा सौधर्म आदि कल्पो के देव अपने स्थान मे आते-जाते हैं, या सौधर्म आदि देवलोको मे देवरूप से उत्पन्न होने वाले देव, जो देवायु का वेदन कर रहे होते हैं, वे जब अपने उत्पत्तिदेश मे जाते है, तब पूर्वोक्त दोनो प्रतरो का स्पर्श उन्हे होता है। ऐसे देव पूर्वोक्त देवो से असख्यातगुणे अधिक होते हैं। उनकी अपेक्षा त्रैलोक्य मे (लोकत्रयस्पर्शी) देव सख्यातगुणे हैं, क्योकि भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिकदेव तथारूप विशेष प्रयत्न से जब वैक्रियसमुद्घात करते हैं, तब तीनो लोको का स्पर्श करते है। वे पूर्वोक्त प्रतरद्वय-सस्पर्शी देवो से सख्यातगुणे अधिक होते है। उनकी अपेक्षा अधोलोक-तिर्यग्लोकसज्ञक प्रतरद्वय का स्पर्श करने वाले देव सख्यातगुणे अधिक है, क्योकि ये दोनो प्रतर भवनपति और वाणव्यन्तर देवो के निकटवर्ती होने से स्वस्थान है, तथा बहुत-से स्वभवनस्थित भवनपतिदेव तिर्यग्लोक मे गमनागमन करते हैं, उद्वर्तन करते हैं, तथा वैक्रियसमुद्घात करते है, अथवा तिर्यग्लोकवर्ती पचेन्द्रियतिर्यञ्च या मनुष्य भवनपतिरूप मे उत्पन्न होने वाले होते हैं, और भवनपति की आयु का वेदन करते हैं, तब उनके पूर्वोक्त दोनो प्रतरो का स्पर्श होता है। ऐसे जीव बहुत होने के कारण सख्यातगुणे कहे गए हैं। उनकी अपेक्षा अधोलोक मे देव सख्यातगुणे है, क्योकि अधोलोक भवनपति-देवो का स्वस्थान है। उनकी अपेक्षा तिर्यग्लोक मे रहने वाले देव सख्यातगुणे अधिक है, क्योकि तिर्यग्लोक ज्योतिष्क और वाणव्यन्तयदेवो का स्वस्थान है। **देवियो का अल्पबहुत्व**—देवियो का अल्पबहुत्व भी सामान्यतया देवसूत्र की तरह समझ लेना चाहिए।[1]

भवनपति आदि देव-देवियों का पृथक्-पृथक् अल्पबहुत्व—(१) भवनपतिदेव सबसे कम ऊर्ध्वलोक मे है, क्योकि, कोई-कोई भवनपतिदेव अपने पूर्वभव के सगतिकदेव की निश्रा से सौधर्मादि देवलोको मे जाते है। कई-कई मेरुपर्वत पर तीर्थकरजन्ममहोत्सवादि के निमित्त से, तथा अजन, दधिमुख आदि पर्वतो पर आष्टाह्निक महोत्सव के निमित्त से एव कई मन्दरादि पर क्रीडा के निमित्त जाते है। परन्तु ये सब स्वल्प होते है, इसलिए ऊर्ध्वलोक मे भवनपतिदेव सबसे कम है।

१ प्रज्ञापना मलय वृत्ति, पत्राक १४६ से १४८ तक

उनकी अपेक्षा ऊर्ध्वलोकतिर्यग्लोक नामक दो प्रतरो मे असख्यातगुणे होते है, क्योकि तिर्यग्लोक-स्थभवनपतिदेव वैक्रियसमुद्घात करते है, तब वे ऊर्ध्वलोक-तिर्यग्लोक का स्पर्श करते है, तथा तिर्यग्लोकस्थ जो भवनपति मारणान्तिकसमुद्घात करके ऊर्ध्वलोक मे सौधर्मादि देवलोको मे बादरपर्याप्तपृथ्वीकायिक, बादरपर्याप्त-अप्कायिक एव बादरपर्याप्त-वनस्पतिकायिक रूप से अथवा शुभमणि-प्रकारो मे उत्पन्न होने वाले होते है, तब वे अपने भव की ही आयु का वेदन करते है, पारभविक पृथ्वीकायिकादि की आयु का नही, तब वे भवनपति ही कहलाते है उस समय वे ऊर्ध्वलोक-तिर्यग्लोक का स्पर्श करते है। इस प्रकार के वे भवनपतिदेव ऊर्ध्वलोक मे गमनागमन करने से और दोनो प्रतरो के समीपवर्ती उनका क्रीडास्थान होने से वे पूर्वोक्त दोनो प्रतरो को स्पर्श करते है, इसलिए ये पूर्वोक्त देवो से असख्यातगुणे है। इनकी अपेक्षा त्रिलोकस्पर्शी भवनपति देव सख्यातगुणे होते है। ऊर्ध्वलोक मे रहे हुए जो तिर्यञ्चपचेन्द्रिय भवनपति रूप से उत्पन्न होने वाले होते है, वे तथा स्वस्थान मे तथाविध प्रयत्न विशेष से वैक्रिय समुद्घात या मारणान्तिक समुद्घात करते है, तब वे त्रैलोक्यस्पर्श करते है। वे सख्यातगुणे इसलिए हैं कि अन्य स्थान मे समुद्घात करने वालो की अपेक्षा स्वस्थान मे समुद्घात करने वाले सख्यातगुणे होते है। अधोलोक-तिर्यग्लोक सज्ञक प्रतरद्वय मे इनकी अपेक्षा भी वे असख्यातगुणे होते है। तिर्यग्लोक इनके स्वस्थान से निकटवर्ती होने से गमनागमन होने के कारण तथा स्वस्थान मे स्थित रहते हुए भी क्रोधादि कषायसमुद्घातवश गमन होने से बहुत-से भवनपतिदेव पूर्वोक्त दोनो प्रतरो का स्पर्श करते है। उनकी अपेक्षा तिर्यग्लोक मे वे असख्यातगुणे है, क्योकि तीर्थकर समवसरणादि मे वन्दननिमित्त, रमणीय द्वीपो मे क्रीडा के निमित्त वे तिर्यग्लोक मे आते है, और आते है तो चिरकाल तक भी रहते है उनकी अपेक्षा भी अधोलोक मे असख्यातगुणे है, क्योकि अधोलोक तो भवनवासियो का स्वस्थान है। भवनवासीदेवो की तरह ही भवनवासीदेवियो का अल्पबहुत्व समझ लेना चाहिए। **व्यन्तरदेव-देवियो का पृथक्-पृथक् अल्पबहुत्व**—क्षेत्रानुसार चिन्तन करने पर व्यन्तर देव सबसे कम ऊर्ध्वलोक मे है, पाण्डकवन आदि मे कुछ ही व्यन्तरदेव पाये जाते है। उनकी अपेक्षा ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक रूप दो प्रतरो मे असख्यातगुणे है कुछ व्यन्तरो के स्वस्थान के अन्तर्गत होने से तथा कई व्यन्तरो के स्वस्थान के निकट होने से तथा बहुत-से व्यन्तरो के मेरु आदि पर गमनागमन होने से उनके पूर्वोक्त दोनो प्रतरो का स्पर्श होता है। इन सब की सामूहिक रूप से विचारणा करने पर वे अत्यधिक हो जाते है। उनकी अपेक्षा त्रिलोकवर्ती व्यन्तर सख्यातगुणे है, क्योकि तथाविध प्रयत्नविशेष से वैक्रिय समुद्घात करने पर वे आत्मप्रदेशो से तीनो लोको को स्पर्श करते है, और ऐसे व्यन्तरदेव पूर्वोक्त देवो से अत्यधिक है, इसलिए सख्यातगुणे है। उनकी अपेक्षा अधोलोक तिर्यग्लोक-सज्ञक प्रतरद्वय मे असख्यातगुणे है, क्योकि ये दोनो प्रतर बहुत-से व्यन्तरो के स्वस्थान है, इसलिए इनका स्पर्श करने वाले व्यन्तर बहुत अधिक होने से असख्यातगुणे है। इनकी अपेक्षा अधोलोक मे वे सख्यातगुणे है, क्योकि अधोलौकिक ग्रामो मे उनका स्वस्थान है, तथा अधोलोक मे बहुत से व्यन्तरो का क्रीडानिमित्त गमन भी होता है। इनकी अपेक्षा तिर्यग्लोक मे वे सख्यातगुणे अधिक है, क्योकि तिर्यग्लोक तो उनका स्वस्थान है ही। इसी प्रकार व्यन्तरदेवियो का अल्पबहुत्व समझ लेना चाहिए। **ज्योतिष्कदेव पृथक्-पृथक् देवियो का अल्पबहुत्व**—क्षेत्र की अपेक्षा विचार करने पर सबसे कम ज्योतिष्क देव ऊर्ध्वलोक मे है, क्योकि कुछ ही ज्योतिष्क देवो का तीर्थंकरजन्ममहोत्सव निमित्त, या अजन-दधिमुखादि पर अष्टाह्निका-निमित्त अथवा कतिपय देवो का मन्दराचलादि पर क्रीडानिमित्त गमन होता है। उनकी अपेक्षा ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक प्रतरद्वय मे असख्यातगुणे है, उन दोनो प्रतरो

को कई ज्योतिष्कदेव स्वथान मे स्थित रहे हुए स्पर्श करते है, कोई वैक्रियसमुद्घात करके आत्मप्रदेशो से उनका स्पर्श करते है, कोई ऊर्ध्वलोक मे जाते-आते उनका स्पर्श करते है। इस कारण दोनो प्रतरो का स्पर्श करने वाले ऊर्ध्वलोकगत देवो से असख्यातगुणे हे। उनसे त्रैलोक्यवर्ती ज्योतिष्क देव सख्यातगुणे अधिक है, क्योकि जो ज्योतिष्कदेव तथाविध तीव्र प्रयत्नवश वैक्रिय समुद्घात करते है, वे तीनो लोको को अपने आत्मप्रदेशो से स्पर्श करते है, वे स्वभावत अत्यधिक हे, इस कारण पूर्वोक्त देव सख्यातगुणे है। उनसे अधोलोक-तिर्यग्लोक प्रतरद्वय-सस्पर्शी ज्योतिष्कदेव असख्यातगुणे है, क्योकि बहुत-से देव अधोलौकिक ग्रामो मे समवसरणादिनिमित्त या अधोलोक मे क्रीडानिमित्त जाते-आते है, तथा बहुत-से देव अधोलोक से ज्योतिष्कदेवो मे उत्पन्न होने वाले होते है, तब वे पूर्वोक्त दोनो प्रतरो का स्पर्श करते है। इसलिए पूर्वोक्त देवो से ये देव असख्यातगुणे हो जाते है। उनकी अपेक्षा अधोलोक मे सख्यातगुणे है, क्योकि बहुत-से देव अधोलोक मे क्रीडा के लिए या अधोलौकिक ग्रामो मे समवसरणादि के लिए चिरकाल तक रहते है। उनकी अपेक्षा तिर्यग्लोक मे असख्यातगुणे है, क्योकि तिर्यग्लोक तो उनका स्वस्थान है। इसी प्रकार **ज्योतिष्कदेवियो के अल्पबहुत्व** का भी विचार कर लेना चाहिए। **वैमानिक देव-देवियो का पृथक् पृथक् अल्पबहुत्व**—क्षेत्रानुसार विचार करने पर सबसे अल्प वैमानिक देव ऊर्ध्वलोक-तिर्यग्लोक सज्ञक प्रतरद्वय मे है, क्योकि अधोलोक-तिर्यग्लोकवर्ती जो जीव वैमानिको मे उत्पन्न होते है, तथा जो वैमानिक तिर्यग्लोक मे गमनागमन करते है, एव जो उक्त दोनो प्रतरो मे स्थित क्रीडास्थान मे आश्रय लेकर रहते है, और जो तिर्यग्लोक मे रहे हुए ही वैक्रियसमुद्घात या मारणान्तिक समुद्घात करते है, वे तथाविधप्रयत्नविशेष से अपने आत्मप्रदेशो को ऊर्ध्वदिशा मे निकालते है, तब पूर्वोक्त दोनो प्रतरो का स्पर्श करते है, ऐसे वैमानिक देव बहुत ही अल्प होते है, इसलिए सबसे कम वैमानिक देव पूर्वोक्तप्रतरद्वय मे है। उनकी अपेक्षा त्रैलोक्यवर्ती वैमानिक पूर्वोक्त युक्ति के अनुसार सख्यातगुणे अधिक है। उनकी अपेक्षा अधोलोक तिर्यग्लोक-सज्ञक दो प्रतरो मे सख्यातगुणे है, क्योकि उनका अधोलौकिक ग्रामो मे तीर्थंकर समवसरणादि मे गमनागमन होने से तथा उक्त दो प्रतरो मे होने वाले समवसरणादि मे अवस्थान के कारण बहुत-से देवो के उक्त दोनो प्रतरो का स्पर्श होता है, उनकी अपेक्षा अधोलोक तथा तिर्यग्लोक मे उत्तरोत्तर क्रमश सख्यातगुणे है, पूर्वोक्त युक्ति के अनुसार बहुत से देवो का उभयत्र समवसरणादि तथा क्रीडा-स्थानो मे अवस्थान होता है। उनकी अपेक्षा ऊर्ध्वलोक मे वे असख्यातगुणे अधिक है, क्योकि ऊर्ध्वलोक तो उनका स्वस्थान ही है, वहाँ तो अत्यधिक होना स्वाभाविक है।

वैमानिक देवियो का अल्पबहुत्व भी देवसूत्र की तरह समझ लेना चाहिए।[1]

क्षेत्रानुसार एकेन्द्रियादि जीवो का पृथक्-पृथक् अल्पबहुत्व—(१) एकेन्द्रिय जीवो का अल्पबहुत्व—क्षेत्रानुसार चिन्तन करने पर एकेन्द्रिय, एकेन्द्रिय अपर्याप्तक एव एकेन्द्रिय-पर्याप्तक जीव सबसे कम ऊर्ध्वलोक-तिर्यग्लोकसज्ञक प्रतरद्वय मे हैं। कई एकेन्द्रिय जीव वही स्थित रहते हैं, कई ऊर्ध्वलोक से तिर्यग्लोक मे तथा तिर्यग्लोक से ऊर्ध्वलोक मे उत्पन्न होने वाले जब मारणान्तिकसमुद्घात करते है, तब वे उक्त दोनो प्रतरो का स्पर्श करते हैं, वे बहुत अल्प होते हैं, इसलिए सबसे अल्प उक्त प्रतरद्वय मे बताए गए है। उनकी अपेक्षा अधोलोक-तिर्यग्लोक मे विशेषाधिक है, क्योकि अधोलोक से तिर्यग्लोक मे या तिर्यग्लोक से अधोलोक मे इलिकागति से उत्पन्न होने वाले एकेन्द्रिय उक्त दोनो प्रतरो का स्पर्श करते हैं। वही रहने वाले एकेन्द्रिय भी ऊर्ध्वलोक से अधोलोक मे अधिक होते है, उनसे

१ प्रज्ञापनासूत्र, मलय वृत्ति, पत्राक १४९ से १५१ तक

भी अधिक अधोलोक से तिर्यग्लोक मे उत्पन्न होने वाले जीव पाए जाते है, इस कारण उक्त दोनो प्रतरो मे विशेषाधिक है। उनकी अपेक्षा तिर्यग्लोक मे एकेन्द्रिय असख्यातगुणे है, क्योकि उक्त प्रतरद्वय के क्षेत्र से तिर्यग्लोक का क्षेत्र असख्यातगुणा अधिक है। उनकी अपेक्षा त्रैलोक्यस्पर्शी असख्यातगुणे हैं। क्योकि बहुत-से एकेन्द्रिय ऊर्ध्वलोक से अधोलोक मे और अधोलोक से ऊर्ध्वलोक मे उत्पन्न होते है, और उनमे से बहुत-से मारणान्तिक-समुद्घातवश अपने आत्मप्रदेश-दण्डो को फैला कर तीनो लोको को स्पर्श करते हैं, इस कारण वे असख्यातगुणे हो जाते है। उनकी अपेक्षा ऊर्ध्वलोक मे वे असख्यातगुणे हैं, क्योकि उपपातक्षेत्र अत्यधिक है। उनसे अधोलोक मे विशेषाधिक है, क्योकि ऊर्ध्वलोकगत क्षेत्र से अधोलोकगत क्षेत्र विशेषाधिक है। एकेन्द्रिय अपर्याप्तक तथा पर्याप्तक के विषय मे भी इसी प्रकार समझ लेना चाहिए।

(२) **द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय एव चतुरिन्द्रिय अपर्याप्तक-पर्याप्तक जीवो का अल्पबहुत्व**—क्षेत्रानुसार विचार करने पर सबसे कम द्वीन्द्रिय जीव ऊर्ध्वलोक मे है, क्योकि ऊर्ध्वलोक के एकदेश—मेरुशिखर की वापी आदि मे ही शख आदि द्वीन्द्रिय पाए जाते है, उनकी अपेक्षा ऊर्ध्वलोक-तिर्यग्लोक-सज्ञक प्रतरद्वय मे असख्यातगुणे है, क्योकि जो ऊर्ध्वलोक से तिर्यग्लोक मे या तिर्यग्लोक से ऊर्ध्वलोक मे द्वीन्द्रियरूप से उत्पन्न होने वाले होते है, द्वीन्द्रियायु का अनुभव कर रहे होते है, तथा इलिकागति से उत्पन्न होते है, अथवा जो द्वीन्द्रिय तिर्यग्लोक से ऊर्ध्वलोक मे, या ऊर्ध्वलोक से तिर्यग्लोक मे द्वीन्द्रियरूप से या अन्य किसी रूप से उत्पन्न होने वाले हो, जिन्होने पहले मारणान्तिकसमुद्घात किया हो, अतएव जो द्वीन्द्रियायु का वेदन कर रहे हो, समुद्घातवश अपने आत्मप्रदेशो को जिन्होने दूर तक फैलाया हो, और जो प्रतरद्वय के अधिकृतक्षेत्र मे ही रह रहे है, ऐसे जीव उक्त प्रतरद्वय का स्पर्श करते है, और वे अत्यधिक होते है, इसलिए पूर्वोक्त से असख्यातगुणे अधिक कहे गए है। उनकी अपेक्षा त्रैलोक्यस्पर्शी द्वीन्द्रिय असख्येयगुणे होते हैं, क्योकि द्वीन्द्रियो के उत्पत्तिस्थान अधोलोक मे बहुत हैं, तिर्यग्लोक मे और भी अधिक है। उनमे से अधोलोक से ऊर्ध्वलोक मे द्वीन्द्रियरूप से या अन्यरूप से उत्पन्न होने वाले द्वीन्द्रिय पहले मारणान्तिक समुद्घात किये हुए होते हैं, वे समुद्घातवश अपने उत्पत्तिदेश तक अपने आत्मप्रदेशो को फैला देते हैं, तथा द्वीन्द्रियायु का वेदन करते है तथा जो द्वीन्द्रिय या शेष काय वाले ऊर्ध्वलोक से अधोलोक मे द्वीन्द्रियरूप से उत्पन्न होते हुए द्वीन्द्रियायु का अनुभव करते है, वे त्रैलोक्यस्पर्शी और अत्यधिक होते हैं, इसलिए पूर्वोक्त से असख्यातगुणे है। उनकी अपेक्षा पूर्वोक्तयुक्ति के अनुसार अधोलोक-तिर्यग्लोक-प्रतरद्वय मे असख्यातगुणे है। उनसे उत्तरोत्तर-क्रमश अधोलोक एव तिर्यग्लोक मे सख्यातगुणे हैं। जैसे औधिक द्वीन्द्रिय-अल्पबहुत्वसूत्र कहा गया है, वैसे ही त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय तथा इन सबके अपर्याप्तको एव पर्याप्तको के अल्पबहुत्व का विचार कर लेना चाहिए।

औधिक पचेन्द्रिय जीवो का अल्पबहुत्व—क्षेत्रानुसार चिन्तन करने पर सबसे कम पचेन्द्रिय त्रैलोक्यसस्पर्शी है, क्योकि वे ही पचेन्द्रियजीव तीनो लोको का स्पर्श करते है, जो ऊर्ध्वलोक से अधोलोक मे या अधोलोक से ऊर्ध्वलोक मे उत्पन्न हो रहे हो, पचेन्द्रियायु का वेदन कर रहे हो और इलिकागति से उत्पन्न होते हो, अथवा ऊर्ध्वलोक से अधोलोक मे या अधोलोक से ऊर्ध्वलोक मे पचेन्द्रियरूप से या अन्यरूप से उत्पन्न होते हुए जिन्होने मारणान्तिक समुद्घात किया हो, उस समुद्घात के समय अपने उत्पत्तिदेशपर्यन्त जिन्होने आत्मप्रदेशो को फैलाया हो और जो पचेन्द्रियायु का अनुभव करते हो। वे बहुत अल्प होते है, इसलिए उन्हे सब से थोडे कहा गया है। उनकी अपेक्षा

ऊर्ध्वलोक-तिर्यग्लोक-प्रतरद्वय मे सख्यातगुणे अधिक है, क्योकि उपपात या समुद्घात के द्वारा इन दो प्रतरो का स्पर्श करने वाले अपेक्षाकृत अधिक होते है। उनकी अपेक्षा अधोलोक-तिर्यग्लोक मे सख्यातगुणे है, क्योकि अत्यधिक उपपात या समुद्घात द्वारा इन दोनो प्रतरो का अत्यधिक स्पर्श होता है। उनकी अपेक्षा ऊर्ध्वलोक मे सख्यातगुणे अधिक है, क्योकि वहाँ वैमानिको का अवस्थान है। उनकी अपेक्षा अधोलोक मे सख्यातगुणे अधिक इसलिए है कि वहाँ नैरयिको का अवस्थान है। उनसे तिर्यग्लोक मे असख्यातगुणे अधिक है, क्योकि वहाँ सम्मूर्छिम, जलचर, खेचर आदि का, व्यन्तर व ज्योतिष्क देवो का तथा सम्मूर्छिम मनुष्यो का बाहुल्य है। इसी तरह पचेन्द्रिय-अपर्याप्तक जीवो के अल्पबहुत्व का विचार कर लेना चाहिए। पचेन्द्रिय-पर्याप्तक जीव सबसे कम है—ऊर्ध्वलोक मे, क्योकि वहा प्राय वैमानिक देवो का ही निवास है। उनकी अपेक्षा ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक-रूप प्रतरद्वय मे असख्यातगुणे है, क्योकि उक्त प्रतरद्वय के निकटवर्ती ज्योतिष्कदेवो का तद्गतक्षेत्राश्रित व्यन्तर देवो का तथा तिर्यञ्चपचेन्द्रियो का, एव वैमानिक, व्यन्तर, ज्योतिष्को, तथा विद्याधर—चारणमुनियो तथा तिर्यञ्चपचेन्द्रिय जीवो का ऊर्ध्वलोक और तिर्यग्लोक मे गमनागमन होता है, तब इन दोनो प्रतरो का स्पर्श होता है। उनकी अपेक्षा त्रैलोक्य-स्पर्शी सख्यातगुणे है, क्योकि भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक तथा अधोलोकस्थ विद्याधर जब तथाविध प्रयत्नविशेष से वैक्रियसमुद्घात करते है, और अपने आत्मप्रदेशो को ऊर्ध्वलोक मे फैलाते है, तब वे तीनो लोको का स्पर्श करते है। इस कारण वे सख्यातगुणे कहे गए है। उनसे अधोलोक-तिर्यग्लोक मे सख्यातगुणे है। बहुत-से व्यन्तरदेव, स्वस्थान-निकटवर्ती होने से भवनपति, तिर्यग्लोक या ऊर्ध्वलोक मे व्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देव अधोलौकिक ग्रामो मे समवसरणादि मे, या अधोलोक मे क्रीडार्थ गमनागमन करते है, तथा समुद्रो मे किन्ही-किन्ही पचेन्द्रियतिर्यञ्चो का स्वस्थान निकट होने से तथा कतिपय तिर्यचपचेन्द्रियजीवो के वही रहने के कारण उक्त दोनो प्रतरो का स्पर्श होता है। अतएव ये सख्यातगुणे कहे गए है। उनकी अपेक्षा अधोलोक मे सख्यातगुणे है, क्योकि वहाँ नैरयिको तथा भवनपतियो का अवस्थान है। उनकी अपेक्षा तिर्यग्लोक मे असख्यातगुणे है, क्योकि वहाँ तिर्यञ्चपचेन्द्रियो, मनुष्यो, ज्योतिष्को और व्यन्तरो का निवास है।[1]

पृथ्वीकायिक आदि पाच स्थावरो का पृथक्-पृथक् अल्पबहुत्व—पृथ्वीकायिक आदि के औघिक, अपर्याप्तक और पर्याप्तक मिल कर १५ सूत्र हैं। इन १५ ही सूत्रो मे उल्लिखित अल्पबहुत्व का स्पष्टीकरण पूर्वोक्त एकेन्द्रिय सूत्र के अनुसार समझ लेना चाहिए।

त्रसकायिक जीवो का अल्पबहुत्व—त्रसकायिक औघिक, अपर्याप्तक और पर्याप्तक जीवो के अल्पबहुत्व का स्पष्टीकरण पचेन्द्रियसूत्र की तरह समझ लेना चाहिए।[2]

पच्चीसवाँ बन्धद्वार : आयुष्यकर्म के बन्धक-अबन्धक आदि जीवों का अल्पबहुत्व—

३२५ एतेसि ण भते ! जीवाण आउयस्स कम्मस्स बधगाण अबधगाण पज्जत्ताण अपज्जत्ताण सुत्ताण जागराण समोहयाण असमोहयाणं सातावेदगाण असातावेदगाण इंदियउवउत्ताण नोइंदियउवउत्ताण सागारोवउत्ताण अणागारोवउत्ताण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

---

१ प्रज्ञापनासूत्र, मलय वृत्ति, पत्राक १५१ से १५४ तक
२ वही, मलय वृत्ति, पत्राक १५५

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा आउयस्स कम्मस्स बंधगा १, अपज्जत्तया संखेज्जगुणा २, सुत्ता संखेज्जगुणा ३, समोहता संखेज्जगुणा ४, सातवेदगा संखेज्जगुणा ५, इंदिओवउत्ता संखेज्जगुणा ६, अणागारोवउत्ता संखेज्जगुणा ७, सागारोवउत्ता संखेज्जगुणा ८, नोइंदियउवउत्ता विसेसाहिया ९, असातावेदगा विसेसाहिया १०, असमोहता विसेसाहिया ११, जागरा विसेसाहिया १२, पज्जत्तया विसेसाहिया १३, आउयस्स कम्मस्स अबंधगा विसेसाहिया १४। दारं २५ ॥

[३२५ प्र] भगवन् ! इन आयुष्यकर्म के बन्धको और अबन्धको, पर्याप्तको और अपर्याप्तको, सुप्त और जागृत जीवो, समुद्घात करने वालो और न करने वालो, सातावेदको और असातावेदको, इन्द्रियोपयुक्तो और नो-इन्द्रियोपयुक्तो, साकारोपयोग मे उपयुक्तो और अनाकारोपयोग मे उपयुक्त जीवो मे से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[३२५ उ] गौतम ! १ सबसे थोडे आयुष्यकर्म के बन्धक जीव है, २ (उनकी अपेक्षा) अपर्याप्तक सख्यातगुणे है, ३ (उनकी अपेक्षा) सुप्तजीव सख्यातगुणे है, ४ (उनकी अपेक्षा) समुद्घात वाले सख्यातगुणे है, ५ (उनसे) सातावेदक सख्यातगुणे है, ६ (उनसे) इन्द्रियोपयुक्त सख्यातगुणे हैं, ७ (उनकी अपेक्षा) अनाकारोपयुक्त सख्यातगुणे है, ८ (उनकी अपेक्षा) साकारोपयुक्त सख्यातगुणे है, ९ (उनकी अपेक्षा) नो-इन्द्रियोपयुक्त जीव विशेषाधिक है, १० (उनकी अपेक्षा) असातावेदक विशेषाधिक हैं, ११ (उनकी अपेक्षा) समुद्घात न करते हुए जीव विशेषाधिक है, १२ (उनकी अपेक्षा) जागृत विशेषाधिक है, १३ (उनसे) पर्याप्तक जीव विशेषाधिक हैं, १४ (और उनकी अपेक्षा भी) आयुष्यकर्म के अबन्धक जीव विशेषाधिक है ।

पच्चीसवाँ (बन्ध) द्वार ॥ २५ ॥

विवेचन—पच्चीसवाँ बन्धद्वार—बन्धद्वार के माध्यम से आयुष्यकर्म के बन्धक-अबन्धक आदि जीवो का अल्पबहुत्व—प्रस्तुत सूत्र (३२५) मे आयुष्यकर्म के बन्धक-अबन्धक, पर्याप्तक-अपर्याप्तक, सुप्त-जागृत, समुद्घात-कर्ता-अकर्ता, सातावेदक-असातावेदक, इन्द्रियोपयुक्त-नो-इन्द्रियोपयुक्त एव साकारोपयुक्त-अनाकारोपयुक्त, सामूहिक रूप से इन सात युगलो के अल्पबहुत्व का विचार किया गया है ।

अल्पबहुत्व का स्पष्टीकरण—आयुष्यकर्म के बन्धक जीव सबसे अल्प इसलिए है कि आयुष्यकर्म के बन्ध का काल प्रतिनियत और स्वल्प है । अनुभूयमान भव के आयुष्य का तीसरा भाग अवशेष रहने पर अथवा उस तीसरे भाग मे से भी तीसरा भाग आदि अवशेष रहने पर ही जीव परभव का आयुष्य बाधते है । अत त्रिभागो मे से दो भाग अबन्धकाल और एक भाग बन्धकाल है और वह बन्धकाल भी अन्तर्मुहूर्त्त प्रमाण होता है । आयुष्यकर्म-बन्धको की अपेक्षा अपर्याप्तक सख्यातगुणे कहे गए हैं । अपर्याप्तको से सुप्त जीव सख्यातगुणे अधिक हैं, क्योकि सुप्तजीव पर्याप्तक और अपर्याप्तक, दोनो मे पाए जाते है और अपर्याप्तक की अपेक्षा पर्याप्तक सख्यातगुणे अधिक है । सुप्त जीवो की अपेक्षा समवहत (समुद्घात वाले) जीव सख्यातगुणे अधिक है, क्योकि बहुत- से पर्याप्तक और अपर्याप्तक जीव सदा मारणान्तिक समुद्घात करते हुए पाए जाते हैं । समवहत जीवो से सातावेदक जीव सख्यातगुणे हैं, क्योकि आयुष्यबन्धक, अपर्याप्त और सुप्त जीवो मे भी साता का वेदन करने वाले उपलब्ध होते हैं । सातावेदको की अपेक्षा इन्द्रियोपयुक्त जीव सख्यातगुणे अधिक है, क्योकि इन्द्रियो का उपयोग लगाने वाले सातावेदको के अतिरिक्त असातावेदको मे भी पाए जाते है । उनकी अपेक्षा

अनाकारोपयोगयुक्त जीव संख्यातगुणे है, क्योंकि इन्द्रियोपयोग वालो और नो-इन्द्रियोपयोग वालो, दोनो मे अनाकारोपयोग पाया जाता है। अनाकारोपयुक्तो की अपेक्षा साकारोपयुक्त जीव सख्यातगुणे अधिक है, क्योकि अनाकारोपयोग की अपेक्षा साकारोपयोग का काल अधिक है। साकारोपयुक्त जीवो की अपेक्षा नो-इन्द्रियोपयोग-उपयुक्त जीव विशेषाधिक है, क्योकि इनमे नो-इन्द्रियोपयोग और अनाकारोपयोग वाले दोनो सम्मिलित है। इनकी अपेक्षा असातावेदक विशेषाधिक है, क्योकि इन्द्रियोपयोग-युक्त जीव भी असातावेदक होते है। असातावेदको से असमवहत (समुद्घात न किये हुए) विशेपाधिक होते है, क्योकि सातावेदक भी असमवहत होते है, इस कारण असमवहतो की विशेपाधिकता है। इनकी अपेक्षा जागृत विशेषाधिक है, क्योकि कतिपय समवहत जीव भी जागृत होते है। जागृतो की अपेक्षा पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, क्योकि कतिपय सुप्तजीव भी पर्याप्तक है। बहुत-से जीव ऐसे भी हैं, जो जागृत न होते हुए—अर्थात् सुप्त होते हुए भी पर्याप्तक हैं। जो जागृत है, वे तो पर्याप्त ही होते है, किन्तु सुप्त जीवो के विषय मे ऐसा नियम नही है। पर्याप्तक जीवो की अपेक्षा आयुकर्म के अबन्धक जीव विशेषाधिक है, क्योकि अपर्याप्तक भी आयुकर्म के अबन्धक होते हैं।[1]

प्रत्येक युगल का अल्पबहुत्व—(१) आयुष्यकर्म के बन्धक कम है, अबन्धक उनसे असख्यातगुणे अधिक है, पूर्वोक्त युक्ति के अनुसार बन्धकाल की अपेक्षा अबन्धकाल अधिक है। बन्धकाल सिर्फ तीसरा भाग और वह भी अन्तर्मुहूर्त्त मात्र होता है। इस कारण बन्धको की अपेक्षा अबन्धक सख्यातगुणे अधिक है। (२) **अपर्याप्तक जीव** अल्प है, पर्याप्तक उनसे सख्यातगुणे अधिक है, यह कथन सूक्ष्म जीवो की अपेक्षा से समझना चाहिए, क्योकि सूक्ष्म जीवो मे बाह्य व्याघात न होने मे बहुसख्यक जीवो की निष्पत्ति (उत्पत्ति) और अल्प जीवो की अनिष्पत्ति (अनुत्पत्ति) होती है। (३) **सुप्त** जीव कम है, जागृत जीव उनकी अपेक्षा सख्यातगुणे अधिक है। यह कथन सूक्ष्म एकेन्द्रियो की अपेक्षा से समझना चाहिए, क्योकि अपर्याप्त जीव तो सुप्त ही पाए जाते है, जबकि पर्याप्त जागृत भी होते है। (४) **समवहत** जीव थोडे हैं, उनकी अपेक्षा असमवहत जीव असख्यातगुणे अधिक है। यहाँ मारणान्तिक समुद्घात से **समवहत** ही लिये गए है और मारणान्तिक समुद्घात मरणकाल मे ही होता है, शेष समय मे नही, वह भी सब जीव नही करते। अतएव समवहत थोडे ही कहे गए हैं, असमवहत अधिक, क्योकि उनका जीवनकाल अधिक है। (५) इसी प्रकार सातावेदक जीव कम है, क्योकि साधारणशरीरी जीव बहुत हैं और प्रत्येकशरीरी अल्प है। अधिकाश साधारणशरीरी जीव असातावेदक होते हैं, इस कारण सातावेदक कम हैं। प्रत्येकशरीरी जीवो मे तो सातावेदको की बहुलता है और असातावेदको की अल्पता है। अतएव सातावेदक कम और असातावेदक उनसे सख्यातगुणे अधिक है। (६) इन्द्रियोपयुक्त कम है, नो-इन्द्रियोपयुक्त सख्यातगुणे अधिक है, क्योकि इन्द्रियोपयोग तो वर्तमानविषयक ही होता है, इस कारण उसका काल स्वल्प है। नो-इन्द्रियोपयोग अतीत-अनागतकाल-विषयक भी होता है। अत उसका समय बहुत है, इस कारण नो-इन्द्रियोपयुक्त सख्यातगुणे कहे गए हैं। (७) अनाकार (दर्शन) उपयोग का काल अल्प होने से अनाकारोपयोग वाले अल्प है, उनकी अपेक्षा साकारोपयोग वाले का काल सख्यातगुणा होने से साकारोपयोग वाले सख्यातगुणे अधिक हैं।[2]

---

१ प्रज्ञापनासूत्र, मलय वृत्ति, पत्राक १५६-१५७

२ प्रज्ञापनासूत्र, मलय वृत्ति, पत्राक १५६

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा आउयस्स कम्मस्स बंधगा १, अपज्जत्तया संखेज्जगुणा २, सुत्ता संखेज्जगुणा ३, समोहता संखेज्जगुणा ४, सातवेदगा संखेज्जगुणा ५, इंदिओवउत्ता संखेज्जगुणा ६, अणागारोवउत्ता संखेज्जगुणा ७, सागारोवउत्ता संखेज्जगुणा ८, नोइंदियउवउत्ता विसेसाहिया ९, असातावेदगा विसेसाहिया १०, असमोहता विसेसाहिया ११, जागरा विसेसाहिया १२, पज्जत्तया विसेसाहिया १३, आउयस्स कम्मस्स अबंधगा विसेसाहिया १४ । दारं २५ ॥

[३२५ प्र] भगवन् ! इन आयुष्यकर्म के बन्धको और अबन्धको, पर्याप्तको और अपर्याप्तको, सुप्त और जागृत जीवो, समुद्घात करने वालो और न करने वालो, सातावेदको और असातावेदको, इन्द्रियोपयुक्तो और नो-इन्द्रियोपयुक्तो, साकारोपयोग मे उपयुक्तो और अनाकारोपयोग मे उपयुक्त जीवो मे से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[३२५ उ] गौतम ! १ सबसे थोडे आयुष्यकर्म के बन्धक जीव है, २ (उनकी अपेक्षा) अपर्याप्तक सख्यातगुणे है, ३ (उनकी अपेक्षा) सुप्तजीव सख्यातगुणे है, ४ (उनकी अपेक्षा) समुद्घात वाले सख्यातगुणे है, ५ (उनसे) सातावेदक सख्यातगुणे हैं, ६ (उनसे) इन्द्रियोपयुक्त सख्यातगुणे हैं, ७ (उनकी अपेक्षा) अनाकारोपयुक्त सख्यातगुणे है, ८ (उनकी अपेक्षा) साकारोपयुक्त सख्यातगुणे है, ९ (उनकी अपेक्षा) नो-इन्द्रियोपयुक्त जीव विशेषाधिक है, १० (उनकी अपेक्षा) असातावेदक विशेषाधिक है, ११ (उनकी अपेक्षा) समुद्घात न करते हुए जीव विशेषाधिक है, १२ (उनकी अपेक्षा) जागृत विशेषाधिक है, १३ (उनसे) पर्याप्तक जीव विशेषाधिक है, १४ (और उनकी अपेक्षा भी) आयुष्यकर्म के अबन्धक जीव विशेषाधिक है ।

पच्चीसवाँ (बन्ध) द्वार ॥ २५ ॥

विवेचन—पच्चीसवाँ बन्धद्वार—बन्धद्वार के माध्यम से आयुष्यकर्म के बन्धक-अबन्धक आदि जीवो का अल्पबहुत्व—प्रस्तुत सूत्र (३२५) मे आयुष्यकर्म के बन्धक-अबन्धक, पर्याप्तक-अपर्याप्तक, सुप्त-जागृत, समुद्घात-कर्ता-अकर्ता, सातावेदक-असातावेदक, इन्द्रियोपयुक्त-नो-इन्द्रियोपयुक्त एव साकारोपयुक्त-अनाकारोपयुक्त, सामूहिक रूप से इन सात युगलो के अल्पबहुत्व का विचार किया गया है ।

अल्पबहुत्व का स्पष्टीकरण—आयुष्यकर्म के बन्धक जीव सबसे अल्प इसलिए है कि आयुष्यकर्म के बन्ध का काल प्रतिनियत और स्वल्प है । अनुभूयमान भव के आयुष्य का तीसरा भाग अवशेष रहने पर अथवा उस तीसरे भाग मे से भी तीसरा भाग आदि अवशेष रहने पर ही जीव परभव का आयुष्य बाधते हैं । अत त्रिभागो मे से दो भाग अबन्धकाल और एक भाग बन्धकाल है और वह बन्धकाल भी अन्तर्मुहूर्त्त प्रमाण होता है । आयुष्यकर्म-बन्धको की अपेक्षा अपर्याप्तक सख्यातगुणे कहे गए है । अपर्याप्तको से सुप्त जीव सख्यातगुणे अधिक है, क्योकि सुप्तजीव पर्याप्तक और अपर्याप्तक, दोनो मे पाए जाते हैं और अपर्याप्तक की अपेक्षा पर्याप्तक सख्यातगुणे अधिक है । सुप्त जीवो की अपेक्षा समवहत (समुद्घात वाले) जीव सख्यातगुणे अधिक हैं, क्योकि बहुत-से पर्याप्तक और अपर्याप्तक जीव सदा मारणान्तिक समुद्घात करते हुए पाए जाते हैं । समवहत जीवो से सातावेदक जीव सख्यातगुणे है, क्योकि आयुष्यबन्धक, अपर्याप्त और सुप्त जीवो मे भी साता का वेदन करने वाले उपलब्ध होते हैं । सातावेदको की अपेक्षा इन्द्रियोपयुक्त जीव सख्यातगुणे अधिक है, क्योकि इन्द्रियो का उपयोग लगाने वाले सातावेदको के अतिरिक्त असातावेदको मे भी पाए जाते हैं । उनकी अपेक्षा

अनाकारोपयोगयुक्त जीव सख्यातगुणे है, क्योकि इन्द्रियोपयोग वालो और नो-इन्द्रियोपयोग वालो, दोनो मे अनाकारोपयोग पाया जाता है। अनाकारोपयुक्तो की अपेक्षा साकारोपयुक्त जीव सख्यातगुणे अधिक है, क्योकि अनाकारोपयोग की अपेक्षा साकारोपयोग का काल अधिक है। साकारोपयुक्त जीवो की अपेक्षा नो-इन्द्रियोपयोग-उपयुक्त जीव विशेषाधिक हैं, क्योकि इनमे नो-इन्द्रियोपयोग और अनाकारोपयोग वाले दोनो सम्मिलित है। इनकी अपेक्षा असातावेदक विशेषाधिक है, क्योकि इन्द्रियोपयोग-युक्त जीव भी असातावेदक होते है। असातावेदको से असमवहत (समुद्घात न किये हुए) विशेषाधिक होते है, क्योकि सातावेदक भी असमवहत होते हे, इस कारण असमवहतो की विशेषाधिकता है। इनकी अपेक्षा जागृत विशेषाधिक है, क्योकि कतिपय समवहत जीव भी जागृत होते हैं। जागृतो की अपेक्षा पर्याप्तक विशेषाधिक है, क्योकि कतिपय सुप्तजीव भी पर्याप्तक है। बहुत-से जीव ऐसे भी हैं, जो जागृत न होते हुए—अर्थात् सुप्त होते हुए भी पर्याप्तक हे। जो जागृत हैं, वे तो पर्याप्त ही होते है, किन्तु सुप्त जीवो के विषय मे ऐसा नियम नही है। पर्याप्तक जीवो की अपेक्षा आयुकर्म के अबन्धक जीव विशेषाधिक है, क्योकि अपर्याप्तक भी आयुकर्म के अबन्धक होते हैं।[1]

प्रत्येक युगल का अल्पबहुत्व—(१) आयुष्यकर्म के बन्धक कम है, अबन्धक उनसे असख्यातगुणे अधिक है, पूर्वोक्त युक्ति के अनुसार बन्धकाल की अपेक्षा अबन्धकाल अधिक है। बन्धकाल सिर्फ तीसरा भाग और वह भी अन्तर्मुहूर्त मात्र होता है। इस कारण बन्धको की अपेक्षा अबन्धक सख्यातगुणे अधिक है। (२) अपर्याप्तक जीव अल्प है, पर्याप्तक उनसे सख्यातगुणे अधिक हे, यह कथन सूक्ष्म जीवो की अपेक्षा से समझना चाहिए, क्योकि सूक्ष्म जीवो मे बाह्य व्याघात न होने मे बहुसख्यक जीवो की निष्पत्ति (उत्पत्ति) और अल्प जीवो की अनिष्पत्ति (अनुत्पत्ति) होती है। (३) सुप्त जीव कम हैं, जागृत जीव उनकी अपेक्षा सख्यातगुणे अधिक हैं। यह कथन सूक्ष्म एकेन्द्रियो की अपेक्षा से समझना चाहिए, क्योकि अपर्याप्त जीव तो सुप्त ही पाए जाते हैं, जबकि पर्याप्त जागृत भी होते है। (४) समवहत जीव थोडे है, उनकी अपेक्षा असमवहत जीव असख्यातगुणे अधिक हैं। यहाँ मारणान्तिक समुद्घात से समवहत ही लिये गए है और मारणान्तिक समुद्घात मरणकाल मे ही होता है, शेष समय मे नही, वह भी सब जीव नही करते। अतएव समवहत थोडे ही कहे गए हैं, असमवहत अधिक, क्योकि उनका जीवनकाल अधिक है। (५) इसी प्रकार सातावेदक जीव कम है, क्योकि साधारणशरीरी जीव बहुत है और प्रत्येकशरीरी अल्प है। अधिकाश साधारणशरीरी जीव असातावेदक होते है, इस कारण सातावेदक कम है। प्रत्येकशरीरी जीवो मे तो सातावेदको की बहुलता है और असातावेदको की अल्पता है। अतएव सातावेदक कम और असातावेदक उनसे सख्यातगुणे अधिक हैं। (६) इन्द्रियोपयुक्त कम है, नो-इन्द्रियोपयुक्त सख्यातगुणे है। नो-इन्द्रियोपयोग अतीत-अनागतकाल-विषयक भी होता है। अत उसका समय बहुत है, इस कारण नो-इन्द्रियोपयुक्त सख्यातगुणे कहे गए हैं। (७) अनाकार (दर्शन) उपयोग का काल अल्प होने से अनाकारोपयोग वाले अल्प हैं, उनकी अपेक्षा साकारोपयोग वाले का काल सख्यातगुणा होने से साकारोपयोग वाले सख्यातगुणे अधिक है।[2]

---

१ प्रज्ञापनासूत्र, मलय वृत्ति, पत्रांक १५६-१५७

२ प्रज्ञापनासूत्र, मलय वृत्ति, पत्रांक १५६

छब्वीसवाँ पुद्गलद्वार : पुद्गलो, द्रव्यो आदि का द्रव्यादि विविध अपेक्षाओ से अल्प-बहुत्व—

३२६ खेत्ताणुवाएण सव्वत्थोवा पोग्गला तेलोक्के १, उड्ढलोयतिरिलोए अणतगुणा २, अधेलोयतिरियलोए विसेसाहिया ३, तिरियलोए असखेज्जगुणा ४, उड्ढलोए असखेज्जगुणा ५, अधेलोए विसेसाहिया ६।

[३२६] क्षेत्र के अनुसार १ सबसे कम पुद्गल त्रैलोक्य मे है, २ ऊर्ध्वलोक-तिर्यग्लोक मे (उनसे) अनन्तगुणे है, ३ अधोलोक-तिर्यग्लोक मे विशेषाधिक है, ४ तिर्यग्लोक मे (उनकी अपेक्षा) असख्यातगुणे है, ५ ऊर्ध्वलोक मे (उनकी अपेक्षा) असख्यातगुणे हैं, ६ (और उनकी अपेक्षा भी) अधोलोक मे विशेषाधिक है।

३२७ दिसाणुवाएणं सव्वत्थोवा पोग्गला उड्ढदिसाए १, अधेदिसाए विसेसाहिया २, उत्तर-पुरत्थिमेण दाहिणपच्चत्थिमेण य दो वि तुल्ला असखेज्जगुणा ३, दाहिणपुरत्थिमेण उत्तरपच्चत्थिमेण य दो वि तुल्ला विसेसाधिया ४, पुरत्थिमेणं असखेज्जगुणा ५, पच्चत्थिमेण विसेसाहिया ६, दाहिणेण विसेसाहिया ७, उत्तरेण विसेसाहिया ८।

[३२७] दिशाओ के अनुसार १ सबसे कम पुद्गल ऊर्ध्वदिशा मे है, २ (उनसे) अधोदिशा मे विशेषाधिक है, ३ उत्तर-पूर्व और दक्षिण-पश्चिम दोनो मे तुल्य है, (पूर्वोक्त दिशा से) असख्यात-गुणे है, ४ दक्षिण-पूर्व और उत्तर-पश्चिम दोनो मे तुल्य है और (पूर्वोक्त दिशाओ से) विशेषाधिक है, ५ (उनकी अपेक्षा) पूर्वदिशा मे असख्यातगुणे है, ६ (उनकी अपेक्षा) पश्चिमदिशा मे विशेषाधिक है, ७ (उनकी अपेक्षा) दक्षिण मे विशेषाधिक हैं, (और उनकी अपेक्षा भी) ८ उत्तर मे विशेषाधिक हैं।

३२८ खेत्ताणुवाएण सव्वत्थोवाइ दव्वाइ तेलोक्के १, उड्ढलोयतिरियलोए अणतगुणाइ २, अधेलोयतिरियलोए विसेसाहियाइं ३, उड्ढलोए असखेज्जगुणाइ ४, अधेलोए अणतगुणाइ ५, तिरिय-लोए सखेज्जगुणाइ ६।

[३२८] क्षेत्र के अनुसार १ सबसे कम द्रव्य त्रैलोक्य मे (त्रिलोकस्पर्शी) हैं, २ (उनकी अपेक्षा) ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक मे अनन्तगुणे है, ३ (उनकी अपेक्षा) अधोलोक-तिर्यक्लोक मे विशेषाधिक हैं, ४ (उनसे) ऊर्ध्वलोक मे असख्यातगुणे अधिक है, ५ (उनकी अपेक्षा) अधोलोक मे अनन्तगुणे है, ६ (और उनकी अपेक्षा भी) तिर्यग्लोक मे सख्यातगुणे हैं।

३२९ दिसाणुवाएणं सव्वत्थोवाइ दव्वाइ अधेदिसाए १, उड्ढदिसाए अणतगुणाइ २, उत्तर-पुरत्थिमेण दाहिणपच्चत्थिमेण य दो वि तुल्लाइ असखेज्जगुणाइं ३, दाहिणपुरत्थिमेण उत्तरपच्चत्थि-मेण य दो वि तुल्लाइ विसेसाहियाइ ४, पुरत्थिमेणं असखेज्जगुणाइ ५, पच्चत्थिमेण विसेसाहियाइ ६, दाहिणेणं विसेसाहियाइ ७, उत्तरेण विसेसाहियाइ ८।

[३२९] दिशाओ के अनुसार, १ सबसे थोडे द्रव्य अधोदिशा मे हैं, २ (उनकी अपेक्षा) ऊर्ध्वदिशा मे अनन्तगुणे है, ३ उत्तरपूर्व और दक्षिणपश्चिम दोनो मे तुल्य है, (पूर्वोक्त ऊर्ध्वदिशा

से) असख्यातगुणे है, ४ दक्षिणपूर्व और उत्तरपश्चिम, दोनो मे तुल्य हैं तथा (पूर्वोक्त दो दिशाओं मे) विशेषाधिक है, ५ (उनकी अपेक्षा) पूर्व मे असख्यातगुणे हे, ६ (उनकी अपेक्षा) पश्चिम मे विशेषाधिक है, ७ (उनसे) दक्षिण मे विशेपाधिक हे, ८ (और उनकी अपेक्षा भी) उत्तर मे विशेषाधिक है।

३३० एतेसि णं भते ! परमाणुपोग्गलाण सखेज्जपदेसियाण असखेज्जपदेसियाण अणंतपदेसियाण य खघाण दव्वट्ठयाए पदेसट्ठयाए दव्वट्ठपदेसट्ठताए कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा अणतपदेसिया खधा दव्वट्ठयाए १, परमाणुपोग्गला दव्वट्ठताए अणतगुणा २, सखेज्जपदेसिया खधा दव्वट्ठयाए सखेज्जगुणा ३, असखेज्जपएसिया खघा दव्वट्ठयाए असखेज्जगुणा ४; पदेसट्ठयाए—सव्वत्थोवा अणतपदेसिया खधा पएसट्ठयाए १, परमाणुपोग्गला अपदेसट्ठयाए अणतगुणा २, सखेज्जपदेसिया खधा पदेसट्ठयाए संखेज्जगुणा ३, असंखेज्जपदेसिया खधा पएसट्ठयाए असखेज्जगुणा ४; दव्वट्ठपदेसट्ठयाए—सव्वत्थोवा अणतपदेसिया खधा दव्वट्ठयाए १, ते चेव पदेसट्ठयाए अणतगुणा २, परमाणुपोग्गला दव्वट्ठअपदेसट्ठयाए अणतगुणा ३, सखेज्जपएसिया खधा दव्वट्ठयाए सखेज्जगुणा ४, ते चेव पदेसट्ठयाए सखेज्जगुणा ५, असखेज्जपदेसिया खधा दव्वट्ठयाए असखेज्जगुणा ६, ते चेव पएसट्ठयाए असखेज्जगुणा ७।

[३३० प्र] भगवन् ! इन १ परमाणुपुद्गलो तथा २ सख्यातप्रदेशिक, ३ असख्यातप्रदेशिक और ४ अनन्तप्रदेशिक स्कन्धो मे से द्रव्य की अपेक्षा से, प्रदेशो की अपेक्षा से, और द्रव्य एव प्रदेशो की अपेक्षा से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[३३० उ] गौतम ! १ सबसे थोडे द्रव्य की अपेक्षा से अनन्तप्रदेशिक स्कन्ध है, २ (उनकी अपेक्षा) परमाणुपुद्गल द्रव्य की अपेक्षा से अनन्तगुणे है, ३ (उनकी अपेक्षा) सख्यातप्रदेशिक स्कन्ध द्रव्य की अपेक्षा से सख्यातगुणे है, ४ (उनकी अपेक्षा) असख्यातप्रदेशिक स्कन्ध द्रव्य की अपेक्षा से असख्यातगुणे हैं। प्रदेशो की अपेक्षा से अल्पबहुत्व—१ सबसे कम अनन्तप्रदेशिक स्कन्ध प्रदेशापेक्षया है, २ (उनकी अपेक्षा) परमाणुपुद्गल अप्रदेशो की अपेक्षा से अनन्तगुणे है, ३ (उनकी अपेक्षा) सख्यातप्रदेशी स्कन्ध प्रदेशो की अपेक्षा से सख्यातगुणे हैं, ४ (उनकी अपेक्षा) असख्यातप्रदेशी स्कन्ध प्रदेशो की अपेक्षा से असख्यातगुणे है। द्रव्य एव प्रदेशो की अपेक्षा से अल्पबहुत्व—१ सबसे अल्प, द्रव्य की अपेक्षा से अनन्तप्रदेशिक स्कन्ध है २ (उनकी अपेक्षा) वे (अनन्तप्रदेशी स्कन्ध) ही प्रदेशो की अपेक्षा से अनन्तगुणे है, ३ (उनकी अपेक्षा) परमाणुपुद्गल, द्रव्य एव अप्रदेश की अपेक्षा से अनन्तगुणे हैं, ४ (उनकी अपेक्षा) सख्यातप्रदेशिक स्कन्ध, द्रव्य की अपेक्षा से सख्यातगुणे है, ५ (उनकी अपेक्षा) वे (सख्यातप्रदेशी स्कन्ध) ही प्रदेशो की अपेक्षा से सख्यातगुणे हैं, ६ (उनसे) असख्यातप्रदेशिक स्कन्ध द्रव्य की अपेक्षा से असख्यातगुणे है, ७ वे (असख्यातप्रदेशी स्कन्ध) प्रदेशो की अपेक्षा से असख्यातगुणे है।

३३१ एतेसि ण भते ! एगपदेसोगाढाण सखेज्जपएसोगाढाण असंखेज्जपएसोगाढाण य पोग्गलाण दव्वट्ठयाए पदेसट्ठयाए दव्वट्ठपदेसट्ठताए कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा एगपदेसोगाढा पोग्गला दव्वट्ठयाए १, सखेज्जपदेसोगाढा पोग्गला दव्वट्ठयाए सखेज्जगुणा २, असखेज्जपएसोगाढा पोग्गला दव्वट्ठयाए असखेज्जगुणा ३; पएसट्ठयाए—सव्वत्थोवा एगपएसोगाढा पोग्गला पएसट्ठयाए १, सखेज्जपएसोगाढा पोग्गला पदेसट्ठयाए सखेज्जगुणा २, असखेज्जपएसोगाढा पोग्गला पएसट्ठयाए असखेज्जगुणा ३, दव्वट्ठपएसट्ठयाए—सव्वत्थोवा एगपएसोगाढा पोग्गला दव्वट्ठपएसट्ठयाए १, सखेज्जपएसोगाढा पोग्गला दव्वट्ठयाए सखेज्जगुणा २, ते चेव पएसट्ठयाए सखेज्जगुणा ३, असखेज्जपदेसोगाढा पोग्गला दव्वट्ठयाए असखेज्जगुणा ४, ते चेव पदेसट्ठयाए असखेज्जगुणा ५ ।

[३३१ प्र] भगवन् ! इन एकप्रदेशावगाढ, सख्यातप्रदेशावगाढ और असख्यातप्रदेशावगाढ पुद्‌गलो मे द्रव्य की अपेक्षा से प्रदेशो की अपेक्षा से और द्रव्य एव प्रदेशो की अपेक्षा से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[३३१ उ] गौतम ! १ सबसे कम द्रव्य की अपेक्षा से एक प्रदेश मे अवगाढ पुद्‌गल है, २ (उनकी अपेक्षा) सख्यातप्रदेशो मे अवगाढ पुद्‌गल, द्रव्य की अपेक्षा से सख्यातगुणे है, ३ (उनकी अपेक्षा) द्रव्य की अपेक्षा से असख्यातप्रदेशो मे अवगाढ पुद्‌गल असख्यात है। प्रदेशो की दृष्टि से अल्पबहुत्व—१ सबसे कम, प्रदेशो की अपेक्षा से, एकप्रदेशावगाढ पुद्‌गल है, २ (उनकी अपेक्षा) सख्यातप्रदेशावगाढ पुद्‌गल, प्रदेशो की अपेक्षा से, सख्यातगुणे है, ३ (उनकी अपेक्षा) असख्यातप्रदेशावगाढ पुद्‌गल, प्रदेशो की अपेक्षा से असख्यातगुणे है। द्रव्य एवं प्रदेश की अपेक्षा से अल्पबहुत्व—१ सबसे कम एकप्रदेशावगाढ पुद्‌गल, द्रव्य एव प्रदेश की अपेक्षा से है, २ (उनकी अपेक्षा) सख्यातप्रदेशावगाढ पुद्‌गल, द्रव्य की अपेक्षा से सख्यातगुणे हैं, ३ (उनकी अपेक्षा) वे (सख्यातप्रदेशावगाढ पुद्‌गल) ही प्रदेश की अपेक्षा से सख्यातगुणे है, ४ (उनकी अपेक्षा) असख्यातप्रदेशावगाढ पुद्‌गल, द्रव्य की अपेक्षा से असख्यातगुणे है, ५ (उनकी अपेक्षा) वे (असख्यातप्रदेशावगाढ पुद्‌गल) ही, प्रदेश की अपेक्षा से असख्यातगुणे हैं।

३३२ एतेसि ण भते ! एगसमयठितीयाण संखेज्जसमयठितीयाण असखेज्जसमयठितीयाण य पोग्गलाण दव्वट्ठयाए पदेसट्ठयाए दव्वट्ठपएसट्ठयाए कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा एगससमयठितीया पोग्गला दव्वट्ठयाए १, सखेज्जसमयठितीया पोग्गला दव्वट्ठयाए संखेज्जगुणा २, असखेज्जसमयठितीया पोग्गला दव्वट्ठयाए असखेज्जगुणा ३, पदेसट्ठयाए—सव्वत्थोवा एगसमयठितीया पोग्गला पदेसट्ठयाए १, संखेज्जसमयठितीया पोग्गला पदेसट्ठयाए सखेज्जगुणा २, असखेज्जसमयठितीया पोग्गला पदेसट्ठयाए असखेज्जगुणा ३; दव्वट्ठपदेसट्ठयाए—सव्वत्थोवा एगसमयठितीया पोग्गला दव्वट्ठपदेसट्ठयाए १, सखेज्जसमयठितीया पोग्गला दव्वट्ठयाए संखेज्जगुणा २, ते चेव पदेसट्ठयाए सखेज्जगुणा ३, असखेज्जसमयठितीया पोग्गला दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा ४, ते चेव पदेसट्ठयाए असखेज्जगुणा ५ ।

[३३२ प्र] भगवन् ! इन एक समय की स्थिति वाले, सख्यात समय की स्थिति वाले और असख्यात समय की स्थिति वाले पुद्‌गलो मे से द्रव्य की अपेक्षा से, प्रदेशो की अपेक्षा से एव द्रव्य तथा प्रदेश की अपेक्षा से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ?

[३३२ उ] गौतम ! १ द्रव्य की अपेक्षा से सबसे अल्प एक समय की स्थिति वाले पुद्‌गल है, २ (उनकी अपेक्षा) सख्यात समय को स्थिति वाले पुद्‌गल, द्रव्य की अपेक्षा से सख्यातगुणे हैं, ३ (उनकी अपेक्षा) असख्यात समय की स्थिति वाले पुद्‌गल, द्रव्य को अपेक्षा से असख्यातगुणे है। **प्रदेशो की अपेक्षा से अल्पबहुत्व**—१ सबसे कम, एक समय की स्थिति वाले पुद्‌गल, प्रदेशो की अपेक्षा से है, २ (उनकी अपेक्षा) सख्यात समय की स्थिति वाले पुद्‌गल, प्रदेशो की अपेक्षा से सख्यातगुणे है, ३ (उनकी अपेक्षा) असख्यात समय की स्थिति वाले पुद्‌गल, प्रदेशो की अपेक्षा से असख्यातगुणे है। **द्रव्य एव प्रदेश की अपेक्षा से अल्पबहुत्व**—१ द्रव्य एव प्रदेश की अपेक्षा से सबसे कम पुद्‌गल, एक समय की स्थिति वाले है, २ सख्यात समय की स्थिति वाले पुद्‌गल, द्रव्य की अपेक्षा से सख्यातगुणे हैं, ३ (इनकी अपेक्षा) वे (सख्यात समय की स्थिति वाले पुद्‌गल) ही प्रदेशो की अपेक्षा से सख्यातगुणे है, ४ (इनसे) असख्यात समय की स्थिति वाले पुद्‌गल, द्रव्य की अपेक्षा से असख्यातगुणे है, ५ (और इनसे भी) वे (असख्यात-समयस्थितिक पुद्‌गल) ही प्रदेशो की अपेक्षा असख्यातगुणे है।

३३३. एतेसि णं भते ! एगगुणकालगाण संखेज्जगुणकालगाण असखेज्जगुणकालगाण अणतगुणकालगाण य पोग्गलाणं दव्वट्ठयाए पदेसट्ठयाए दव्वट्ठपदेसट्ठयाए कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! जहा परमाणुपोग्गला (सु. ३३०) तहा भाणितव्वा। एव सखेज्जगुणकालयाण वि। एव सेसा वि वण्ण-गंध-रसा भाणितव्वा। फासाणं कक्खड-मउय-गरुय-लहुयाण जधा एगपदेसोगाढाण (सु ३३१) भणित तहा भाणितव्व। अवसेसा फासा जधा वण्णा भणिता तधा भाणितव्वा। दार २६॥

[३३३ प्र] भगवन् ! इन एकगुण काले, सख्यातगुण काले, असख्यातगुण काले और अनन्तगुण काले पुद्‌गलो मे से, द्रव्य की अपेक्षा से, प्रदेशो की अपेक्षा से और द्रव्य तथा प्रदेश की अपेक्षा से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[३३३ उ] गौतम ! जिस प्रकार परमाणुपुद्‌गलो के विषय मे (सू ३३० मे) कहा गया है, उसी प्रकार यहाँ भी कहना चाहिए। इसी प्रकार सख्यातगुण काले (एवं असख्यातगुण काले तथा अनन्तगुण काले) पुद्‌गलो के विषय मे भी (पूर्ववत् सू ३३० के अनुसार) समझ लेना चाहिए। इसी प्रकार शेष वर्ण (नीले, लाल, पीले आदि) तथा (समस्त) गन्ध एव रस के (एकगुण से अनन्तगुण तक के) पुद्‌गलो के अल्पबहुत्व के सम्बन्ध मे कहना चाहिए तथा कर्कश, मृदु (कोमल), गुरु और लघु स्पर्शो के (अल्पबहुत्व के) विषय मे भी जिस प्रकार (सू ३३१ मे) एकप्रदेशावगाढ आदि का (अल्पबहुत्व) कहा गया है, उसी प्रकार यहाँ भी कहना चाहिए। अवशेष (चार) स्पर्शो के विषय मे जैसे वर्णो का (अल्पबहुत्व) कहा है, वैसे ही कहना चाहिए। छब्बीसवाँ (पुद्‌गल) द्वार ॥२६॥

विवेचन—छब्बीसवाँ पुद्‌गलद्वार—प्रस्तुत आठ सूत्रो (सू. ३२६ से ३३३ तक) मे पुद्‌गलद्वार के माध्यम से क्षेत्र एव दिशा की अपेक्षा से पुद्‌गलो और द्रव्यो के तथा द्रव्य, प्रदेश, एव द्रव्यप्रदेश की दृष्टि से परमाणुपुद्‌गल, सख्यातप्रदेशी आदि के एकप्रदेशावगाढ से असख्यातप्रदेशावगाढ पुद्‌गलों

तक के एकसमयस्थितिक से असख्यातसमयस्थितिक पुद्गलो तक के तथा विविध वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श के पुद्गलो के अल्पबहुत्व का विचार किया गया है ।

क्षेत्रानुसार पुद्गलो का अल्पबहुत्व—त्रैलोक्यस्पर्शी पुद्गल द्रव्य सबसे थोडे इसलिए बताए है कि महास्कन्ध ही त्रैलोक्यव्यापी होते है और वे अल्प ही है । इनकी अपेक्षा ऊर्ध्वलोक-तिर्यग्लोक-सज्ञक प्रतरद्वय मे अनन्तगुणे पुद्गलद्रव्य हैं, क्योकि इन दोनो प्रतरो मे अनन्त सख्यातप्रदेशी, अनन्त असख्यातप्रदेशी और अनन्त अनन्तप्रदेशी स्कन्ध स्पर्श करते है, इसलिए द्रव्यार्थतया वे अनन्तगुणे है । उनकी अपेक्षा अधोलोक-तिर्यग्लोक नामक दो प्रतरो मे वे विशेषाधिक है, क्योकि इनका क्षेत्र आयाम-विष्कम्भ (लम्बाई-चौडाई) मे कुछ विशेषाधिक है । उनसे तिर्यग्लोक मे पुद्गल असख्यातगुणे है, क्योकि इसका क्षेत्र (पूर्वोक्त से) असख्यातगुणा है । उनकी अपेक्षा ऊर्ध्वलोक मे असख्यातगुणा हैं, क्योकि तिर्यग्लोक के [क्षेत्र से ऊर्ध्वलोक का क्षेत्र असख्यातगुणा अधिक है । उनसे अधोलोक मे विशेषाधिक पुद्गलद्रव्य है, क्योकि ऊर्ध्वलोक से अधोलोक का क्षेत्र कुछ अधिक है । ऊर्ध्वलोक कुछ कम ७ रज्जूप्रमाण है, जबकि अधोलोक कुछ अधिक ७ रज्जूप्रमाण है ।

दिशाओ के अनुसार पुद्गलद्रव्यो का अल्पबहुत्व—सबसे कम पुद्गल ऊर्ध्वदिशा मे है, क्योकि रत्नप्रभापृथ्वी के समतल भूभाग वाले मेरुपर्वत के मध्य मे जो अष्टप्रदेशात्मक रुचक से निकली हुई और लोकान्त को स्पर्श करने वाली चतु प्रदेशात्मक (चार प्रदेश वाली) ऊर्ध्वदिशा है । उसमे सबसे कम पुद्गल है । अधोदिशा भी रुचक से निकलती है और वह चतु प्रदेशात्मक और लोकान्त तक भी है, किन्तु ऊर्ध्वदिशा की अपेक्षा वह कुछ विशेषाधिक है, इसलिए वहाँ पुद्गल विशेषाधिक है । उनसे उत्तरपूर्व तथा दक्षिणपश्चिम मे प्रत्येक मे असख्यातगुणे अधिक पुद्गल है, स्वस्थान मे तो दोनो तुल्य हैं, यद्यपि ये दोनो दिशाएँ रुचक से निकली हैं तथा मुक्तावली के आकार की है, तथापि ये तिर्यग्लोक, अधोलोक और ऊर्ध्वलोक के अन्त तक जा कर समाप्त होती है, इसलिए इनका क्षेत्र असख्यातगुणा होने से वहाँ पुद्गल भी असख्यातगुणे है । इनसे दक्षिणपूर्व और उत्तरपश्चिम दोनो मे प्रत्येक मे विशेषाधिक पुद्गल हैं, स्वस्थान मे तो ये परस्पर तुल्य है । इनमे विशेषाधिक पुद्गल होने का कारण यह है कि सौमनस एव गधमादन पर्वतो के सात-सात कूटो (शिखरो) पर तथा विद्युत्प्रभ और माल्यवान् पर्वतो के नौ-नौ कूटो पर कोहरे, ओस आदि के सूक्ष्मपुद्गल बहुत होते है, इसलिए इन दोनो दिशाओ मे पूर्वोक्त दिशाओ से पुद्गल विशेषाधिक है । इनसे पूर्व दिशा मे असख्येयगुणे है, क्योकि पूर्व मे क्षेत्र असख्येयगुणा है । उनसे पश्चिम मे विशेषाधिक है, क्योकि अधोलोकिक ग्रामो मे पोलार होने से वहाँ पुद्गल बहुत होते है । पश्चिम की अपेक्षा दक्षिण मे विशेषाधिक है, क्योकि वहाँ भवन तथा पोल अधिक है । उनसे उत्तर दिशा मे विशेषाधिक है, क्योकि उत्तर मे सख्यातकोटा-कोटी योजन लम्बा-चौडा मानससरोवर है, जहाँ जलचर तथा काई, शैवाल आदि बहुत प्राणी है, उनके तैजस-कार्मणशरीर के पुद्गल अत्यधिक पाए जाते है । इस कारण पश्चिम से उत्तर मे विशेषाधिक पुद्गल कहे गए है ।[1]

क्षेत्रानुसार सामान्यत. द्रव्यविषयक अल्पबहुत्व—क्षेत्र की अपेक्षा से सबसे कम द्रव्य त्रैलोक्य-स्पर्शी है, क्योकि धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय, महास्कन्ध और जीवास्तिकाय मे से मारणान्तिक समुद्घात से अतीव समवहत जीव ही त्रैलोक्यस्पर्शी होते है और वे अल्प है । इसलिए ये सबसे कम है । इनकी अपेक्षा ऊर्ध्वलोक-तिर्यक्लोक नामक दो प्रतरो मे अनन्तगुणे द्रव्य है,

१. प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक १५८-१५९

क्योकि इन दोनो प्रतरो को अनन्त पुद्गलद्रव्य और अनन्त जीवद्रव्य स्पर्श करते हैं। इन दोनो प्रतरो की अपेक्षा अधोलोक-तिर्यग्लोक नामक प्रतरो मे कुछ अधिक द्रव्य है। उनकी अपेक्षा ऊर्ध्वलोक मे असख्यातगुणे द्रव्य अधिक है, क्योकि वह क्षेत्र असख्यातगुणा विस्तृत है। उनकी अपेक्षा अधोलोक मे अनन्तगुणे अधिक द्रव्य है, क्योकि अधोलौकिक ग्रामो मे काल है, जिसका सम्बन्ध विभिन्न परमाणुओ, सख्यातप्रदेशी, असख्यातप्रदेशी, अनन्तप्रदेशी द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के पर्यायो के साथ होने के कारण प्रत्येक परमाणु आदि द्रव्य अनन्त प्रकार का होता है। अधोलोक की अपेक्षा तिर्यग्लोक मे सख्यातगुणे द्रव्य है, क्योकि अधोलौकिक ग्राम-प्रमाण खण्ड कालद्रव्य के आधारभूत मनुष्यलोक मे सख्यात पाए जाते है।

दिशाओ की अपेक्षा से सामान्यत द्रव्यो का अल्पबहुत्व—सामान्यतया सबसे कम द्रव्य अधोदिशा मे है, उनकी अपेक्षा ऊर्ध्वदिशा मे अनन्तगुणे है, क्योकि ऊर्ध्वलोक मे मेरुपर्वत का पाच सौ योजन का स्फटिकमय काण्ड है, जिसमे चन्द्र और सूर्य की प्रभा के होने से तथा द्रव्यो के क्षण आदि काल का प्रतिभाग होने से तथा पूर्वोक्त नीति से प्रत्येक परमाणु आदि द्रव्यो के साथ काल अनन्त होने से द्रव्य का अनन्तगुणा होना सिद्ध है। ऊर्ध्वदिशा की अपेक्षा उत्तरपूर्व—ईशानकोण मे तथा दक्षिणपश्चिम—नैर्ऋत्यकोण मे असख्यातगुणे द्रव्य है, क्योकि वहाँ के क्षेत्र असख्यातगुणा है, किन्तु इन दोनो दिशाओ मे बराबर-बराबर ही द्रव्य है, क्योकि इन दोनो का क्षेत्र बराबर है। इन दोनो की अपेक्षा दक्षिणपूर्व—आग्नेयकोण मे तथा उत्तरपश्चिम—वायव्यकोण मे द्रव्य विशेषाधिक है, क्योकि इन दिशाओ मे विद्युत्प्रभ एव माल्यवान् पर्वतो के कूट के आश्रित कोहरे, ओस आदि श्लक्ष्ण पुद्गलद्रव्य बहुत होते हैं। इनकी अपेक्षा पूर्वदिशा मे असख्यातगुणा क्षेत्र अधिक होने से द्रव्य भी असख्यातगुणे अधिक हैं। पूर्व की अपेक्षा पश्चिम दिशा मे द्रव्य विशेषाधिक है, क्योकि वहाँ अधोलौकिक ग्रामो मे पोल होने के कारण बहुत-से पुद्गलद्रव्यो का सद्भाव है। उसकी अपेक्षा दक्षिण मे विशेषाधिक द्रव्य हैं, क्योकि वहाँ बहुसख्यक भुवनो के रन्ध्र (पोल) हैं। दक्षिण से उत्तरदिशा मे विशेषाधिक द्रव्य है, क्योकि वहाँ मानसरोवर मे रहने वाले जीवो के आश्रित[1] तैजस और कार्मण वर्गणा के पुद्गल-स्कन्ध द्रव्य बहुत हैं।

संख्यात-असख्यात-अनन्तप्रदेशी-परमाणुपुद्गलो का अल्पबहुत्व—प्रस्तुत सूत्रो मे द्रव्य, प्रदेश और द्रव्य-प्रदेश की दृष्टि से अल्पबहुत्व का विचार किया गया है। पाठ सुगम है। यहाँ सर्वत्र अल्प-बहुत्व-भावना मे पुद्गलो का वैसा स्वभाव ही कारण माना गया है।

क्षेत्र की प्रधानता से पुद्गलो का अल्पबहुत्व—एकप्रदेश मे अवगाढ (आकाश के एक प्रदेश मे स्थित) पुद्गल (द्रव्यापेक्षया) सबसे कम है। यहाँ क्षेत्र की प्रधानता से विचार किया गया है। इसलिए आकाश के एक प्रदेश मे जो भी परमाणु, सख्यातप्रदेशी, असख्यातप्रदेशी तथा अनन्तप्रदेशी स्कन्ध अवगाढ है, उन सब को एक ही राशि मे परिगणित करके 'एकप्रदेशावगाढ' कहा गया है। इस दृष्टि से सख्यातप्रदेशावगाढ पुद्गल पूर्वोक्त की अपेक्षा द्रव्यविवक्षा से सख्यातगुणे है। यहाँ यह बात ध्यान मे रखना चाहिए कि आकाश के दो प्रदेशो मे द्व्यणुक भी रहता है, त्र्यणुक भी और असख्यात-प्रदेशी या अनन्तप्रदेशी स्कन्ध भी रहता है, किन्तु क्षेत्र की अपेक्षा से उन सबकी एक ही राशि है। इसी प्रकार तीन प्रदेशो मे त्र्यणुक से लेकर अनन्ताणुक स्कन्ध तक रहते है, उनकी भी एक राशि समझनी चाहिए। इस दृष्टि से एकप्रदेशावगाढ पुद्गलो की अपेक्षा द्विप्रदेशावगाढ, द्विप्रदेशावगाढ की

१ प्रज्ञापनासूत्र, मलय वृत्ति, पत्राक १५९

अपेक्षा त्रिप्रदेशावगाढ पुद्गल द्रव्य इसी प्रकार चारप्रदेशावगाढ, पचप्रदेशावगाढ, यावत् सख्यातप्रदेशावगाढ पुद्गलद्रव्य द्रव्य की विवक्षा से उत्तरोत्तर सख्यातगुणे अधिक हैं। उनकी अपेक्षा असख्यातप्रदेशावगाढ पुद्गल द्रव्यविवक्षा से असख्यातगुणे है, क्योकि असख्यात के असख्यात भेद कहे गए हैं। इसी प्रकार द्रव्यार्थतासूत्र, प्रदेशार्थतासूत्र एव द्रव्यप्रदेशार्थता सूत्र सुगम होने से सर्वत्र घटित कर लेना चाहिए।

काल एव भाव की दृष्टि से पुद्गलो का अल्पबहुत्व—काल की अपेक्षा से—एक समय की स्थिति से लेकर अनन्तसमयो तक की स्थिति वाले पुद्गलो का अल्पबहुत्व भी यथायोग्य समझ लेना चाहिए। **भाव की अपेक्षा से**—काले आदि ५ वर्ण, दो गन्ध, तिक्त, कटु आदि पाच रस और शीत, उष्ण स्निग्ध और रूक्ष इन बोलो का अल्पबहुत्व मूलपाठ मे कथित काले वर्ण के समान समझ लेना चाहिए। एकगुण काले पुद्गलो के अल्पबहुत्व की वक्तव्यता सामान्य पुद्गलो की तरह कहनी चाहिए। यथा—१ सबसे कम अनन्तप्रदेशी स्कन्ध एकगुण काले है, २ द्रव्य की अपेक्षा से परमाणुपुद्गल एकगुण काले अनन्तगुणे है, (उनसे) सख्यातप्रदेशी स्कन्ध एकगुण काले सख्यातगुणे है, उनसे असख्यातप्रदेशी स्कन्ध एकगुण काले असखयातगुणे है। इसी प्रकार प्रदेश की अपेक्षा से समझना चाहिए। कर्कश, मृदु, गुरु और लघु स्पर्श का प्रत्येक का अल्पबहुत्व एकप्रदेश-अवगाढ के समान समझना चाहिए। यथा—एकप्रदेशावगाढ एकगुण कर्कशस्पर्श द्रव्यार्थरूप से सबसे कम है, उनसे सख्यातप्रदेशावगाढ एकगुण कर्कशस्पर्श पुद्गल द्रव्यार्थरूप से सख्यातगुणे हैं, उनसे असख्यातप्रदेशावगाढ एकगुण कर्कशस्पर्श द्रव्यार्थरूप से असख्यातगुणे है, इत्यादि। इसी प्रकार सख्यातगुण कर्कशस्पर्श असख्यातगुण कर्कशस्पर्श एव अनन्तगुण कर्कशस्पर्श के अल्पबहुत्व के विषय मे समझ लेना चाहिए।[1]

सत्ताईसवाँ महादण्डकद्वार : विभिन्न विवक्षाओ से सर्वजीवो के अल्पबहुत्व का निरूपण—

३३४. अह भते! सव्वजोवप्पबहुं महादडय वत्तइस्सामि—सव्वत्थोवा गब्भवक्कतिया मणुस्सा १, मणुस्सीओ सखेज्जगुणाओ २, बादरतेउक्काइया पज्जत्तया असखेज्जगुणा ३, अणुत्तरोववाइया देवा असखेज्जगुणा ४, उवरिमगेवेज्जगा देवा सखेज्जगुणा ५, मज्झिमगेवेज्जगा देवा सखेज्जगुणा ६, हेट्ठिमगेवेज्जगा देवा संखेज्जगुणा ७, अच्चुते कप्पे देवा सखेज्जगुणा ८, आरणे कप्पे देवा सखेज्जगुणा ९, पाणए कप्पे देवा सखेज्जगुणा १०, आणए कप्पे देवा सखेज्जगुणा ११, अधेसत्तमाए पुढवीए नेरइया असखेज्जगुणा १२, छट्ठीए तमाए पुढवीए नेरइया असखेज्जगुणा १३, सहस्सारे कप्पे देवा असखेज्जगुणा १४, महासुक्के कप्पे देवा असखेज्जगुणा १५, पंचमाए धूमप्पभाए पुढवीए नेरइया असखेज्जगुणा १६, लतए कप्पे देवा [illegible]ज्जगुणा १७, चउत्थीए पकप्पभाए पुढवीए नेरइया असखेज्जगुणा १८, बमलोए कप्पे देवा असखेज्जगुणा १९, तच्चाए वालुयप्पभाए पुढवीए नेरइया असखेज्जगुणा २०, माहिंदकप्पे देवा असखेज्जगुणा २१, सणकुमारे कप्पे देवा असंखेज्जगुणा २२, दोच्चाए सक्करप्पभाए पुढवीए नेरइया असंखेज्जगुणा २३, सम्मुच्छिममणुस्सा असखेज्जगुणा २४, ईसाणे कप्पे देवा असखेज्जगुणा २५, ईसाणे कप्पे देवीओ सखेज्जगुणाओ २६, सोहम्मे कप्पे देवा सखेज्जगुणा २७, सोहम्मे कप्पे देवीओ सखेज्जगुणाओ २८, भवणवासी देवा असखेज्जगुणा २९, भवणवासिणीओ देवीओ संखेज्जगुणाओ ३०, इमीसे रतणप्पभाए पुढवीए नेरइगा असंखेज्जगुणा ३१,

१ प्रज्ञापनासूत्र, मलय वृत्ति, पत्राक १६१

खहयरपंचिंदियतिरिक्खजोणिया पुरिसा असखेज्जगुणा ३२, खहयरपचेंदियतिरिक्खजोणिणीओ सखेज्ज-गुणाओ ३३, थलयरपचेंदियतिरिक्खजोणिया पुरिसा सखेज्जगुणा ३४, थलयरपचेंदियतिरिक्ख-जोणिणीओ सखेज्जगुणाओ ३५, जलयरपचेंदियतिरिक्खजोणिया पुरिसा सखेज्जगुणा ३६, जलयर-पचेंदियतिरिक्खजोणिणीओ सखेज्जगुणाओ ३७, वाणमतरा देवा सखेज्जगुणा ३८, वाणमतरीओ देवीओ सखेज्जगुणाओ ३९, जोइसिया देवा सखेज्जगुणा ४०, जोइसिणीओ देवीओ सखेज्जगुणाओ ४१, खहयरपचेंदियतिरिक्खजोणिया णपु सया सखेज्जगुणा ४२, थलयरपचेंदियतिरिक्खजोणिया णपु सया सखेज्जगुणा ४३, जलयरपचेंदियतिरिक्खजोणिया णपुंसया सखेज्जगुणा ४४, चउरिंदिया पज्जत्तया सखेज्जगुणा ४५, पचेंदिया पज्जत्तया विसेसाहिया ४६, बेइंदिया पज्जत्तया विसेसाहिया ४७, तेइंदिया पज्जत्तया विसेसाहिया ४८, पंचिंदिया अपज्जत्तया असखेज्जगुणा ४९, चउरिंदिया अपज्जत्तया विसेसाहिया ५०, तेइंदिया अपज्जत्तया विसेसाहिया ५१, बेइंदिया अपज्जत्तया विसेसाहिया ५२, पत्तेयसरीरबादरवणप्फइकाइया पज्जत्तया असखेज्जगुणा ५३, बादरणिगोदा पज्जत्तगा असखेज्जगुणा ५४, बादरपुढविकाइया पज्जत्तगा असखेज्जगुणा ५५, बादरआउकाइया पज्जत्तया असखेज्जगुणा ५६, बादरवाउकाइया पज्जत्तगा असखेज्जगुणा ५७, बादरतेउकाइया अपज्जत्तगा असखेज्जगुणा ५८, पत्तेयसरीरबादरवणप्फइकाइया अपज्जत्तगा असखेज्जगुणा ५९, बादरणिगोदा अपज्जत्तया असखेज्ज-गुणा ६०, बादरपुढविकाइया अपज्जत्तगा असखेज्जगुणा ६१, बादरआउकाइया अपज्जत्तगा असखेज्ज-गुणा ६२, बादरवाउकाइया अपज्जत्तया असखेज्जगुणा ६३, सुहुमतेउकाइया अपज्जत्तया असखेज्जगुणा ६४, सुहुमपुढविकाइया अपज्जत्तगा विसेसाहिया ६५, सुहुमआउकाइया अपज्जत्तगा विसेसाहिया ६६, सुहुमवाउकाइया अपज्जत्तगा विसेसाहिया ६७, सुहुमतेउकाइया पज्जत्तगा सखेज्जगुणा ६८, सुहुम-पुढविकाइया पज्जत्तया विसेसाहिया ६९, सुहुमआउकाइया पज्जत्तया विसेसाहिया ७०, सुहुमवाउ-काइया पज्जत्तया विसेसाहिया ७१, सुहुमणिगोदा अपज्जत्तया असखेज्जगुणा ७२, सुहुमणिगोदा पज्जत्तया सखेज्जगुणा ७३, अभवसिद्धिया अणंतगुणा ७४, परिवडितसम्मत्ता[1] अणतगुणा ७५, सिद्धा अणतगुणा ७६, बादरवणस्सतिकाइया पज्जत्तगा अणतगुणा ७७, बादरपज्जत्तया विसेसाहिया ७८, बादरवणस्सइकाइया अपज्जत्तया असखेज्जगुणा ७९, बादरअपज्जगा विसेसाहिया ८०, बादरा विसेसाहिया ८१, सुहुमवणस्सतिकाइया अपज्जत्तया असखेज्जगुणा ८२, सुहुमा अपज्जत्तया विसेसा-हिया ८३, सुहुमवणस्सइकाइया पज्जत्तया सखेज्जगुणा ८४, सुहुमपज्जत्तया विसेसाहिया ८५, सुहुमा विसेसाहिया ८६, भवसिद्धिया विसेसाहिया ८७, निगोदजीवा विसेसाहिया ८८, वणप्फतिजीवा विसेसाहिया ८९, एगिंदिया विसेसाहिया ९०, तिरिक्खजोणिया विसेसाहिया ९१, मिच्छद्दिट्ठी विसेसा-हिया ९२, अविरता विसेसाहिया ९३, सकसाई विसेसाहिया ९४, छउमत्था विसेसाहिया ९५, सजोगी विसेसाहिया ९६, ससारत्था विसेसाहिया ९७, सव्वजीवा विसेसाहिया ९८ । दार २७ ॥

॥ पण्णवणाए भगवईए तइय बहुवत्तव्वयपय समत्त ॥

---

१ पाठान्तर—'सम्मत्ता' के स्थान मे 'सम्मद्दिट्ठी' पद मिलता है ।

[३३४] हे भगवन् ! अब मैं समस्त जीवो के अल्पबहुत्व का निरूपण करने वाले महादण्डक का वर्णन करूंगा—१. सबसे कम गर्भव्युत्क्रान्तिक (गर्भज) है, २ (उनसे) मानुषी (मनुष्यस्त्री) सख्यातगुणी अधिक हैं, ३ (उनकी अपेक्षा) बादर तेजस्कायिक-पर्याप्तक असख्यातगुणे है, ४ (उनसे) अनुत्तरौपपातिक देव असख्यातगुणे है, ५ (उनकी अपेक्षा) ऊपरी ग्रैवेयकदेव सख्यातगुणे हैं, ६. (उनकी अपेक्षा) मध्यमग्रैवेयकदेव सख्यातगुणे है, ७ (उनकी अपेक्षा) निचले ग्रैवेयक देव सख्यातगुणे हैं, ८ अच्युतकल्प-देव (उनसे) सख्यातगुणे है, ९. आरणकल्प के देव (उनसे) सख्यातगुणे हैं, १० (उनसे) प्राणतकल्प के देव सख्यातगुणे हैं, ११ (उनसे) आनतकल्प के देव सख्यातगुणे है, १२. (उनकी अपेक्षा) सबसे नीची सप्तम पृथ्वी के नैरयिक असख्यातगुणे है, १३ (उनसे) छठी तम प्रभा पृथ्वी के नैरयिक असख्यातगुणे है, १४ (उसकी अपेक्षा) सहस्रारकल्प के देव असख्यातगुणे है, १५ (उनकी अपेक्षा) महाशुक्रकल्प के देव असख्यातगुणे है, १६ (उनकी अपेक्षा) पाचवी धूमप्रभापृथ्वी के नैरयिक असख्यातगुणे है, १७ (उनसे) लान्तककल्प के देव असख्यातगुणे है, १८ (उनकी अपेक्षा) चौथी पकप्रभापृथ्वी के नैरयिक असख्यातगुणे है, १९ (उनसे) ब्रह्मलोककल्प के देव असख्यातगुणे हैं, २० (उनसे) तीसरी बालुकाप्रभापृथ्वी के नैरयिक असख्यातगुणे है, २१ (उनसे) माहेन्द्रकल्प के देव असख्यातगुणे है, २२ (उनकी अपेक्षा) ।सनत्कुमारकल्प के देव असख्यातगुणे हैं, २३ (उनसे) दूसरी शर्कराप्रभा पृथ्वी के नैरयिक असख्यातगुणे है, २४. (उनकी अपेक्षा) सम्मूर्च्छिम मनुष्य असख्यात गुणे है, २५ (उनसे) ईशानकल्प के देव असख्यातगुणे है, २६ ईशानकल्प की देविया (उनसे) सख्यातगुणी है, २७ (उनकी अपेक्षा) सौधर्मकल्प के देव सख्यातगुणे हैं, २८ (उनकी अपेक्षा) सौधर्म-कल्प की देविया सख्यातगुणी है, २९ (उनकी अपेक्षा) भवनवासी देव असख्यातगुणे हैं, ३० (उनसे) भवनवासी देविया सख्यातगुणी है, ३१ (उनसे) प्रथम रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिक असख्यातगुणे हैं, ३२ (उनकी अपेक्षा) खेचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक-पुरुष असख्यातगुणे है, ३३ (उनसे) खेचर-पचेन्द्रिय-तिर्यंचयोनिक स्त्रिया असख्यातगुणी हैं, ३४ (उनसे) स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक पुरुष सख्यातगुणे हैं, ३५ (उनसे) स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक स्त्रियाँ सख्यातगुणी है, ७६ (उनकी अपेक्षा) जलचर-पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक पुरुष सख्यातगुणे हैं, ३७ उनसे जलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यंचयोनिक स्त्रियाँ सख्यातगुणी हैं, ३८ (उनसे) वाणव्यन्तर देव सख्यातगुणे हैं, ३९ (उनकी-अपेक्षा) वाणव्यन्तर देवियाँ सख्यातगुणी है, ४० (उनकी अपेक्षा) ज्योतिष्क-देव सख्यातगुणे है, ४१ (उनकी अपेक्षा) ज्योतिष्क-देवियाँ सख्यातगुणी हैं, ४२ (उनसे) खेचर पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक नपुसक सख्यातगुणे है, ४३ (उनकी अपेक्षा) स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक नपुसक संख्यातगुणे हैं, ४४ (उनसे) जलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिकनपुसक सख्यातगुणे अधिक है, ४५ (उनकी अपेक्षा) चतुरिन्द्रिय-पर्याप्तक सख्यातगुणे है ४६ (उनकी अपेक्षा) पचेन्द्रिय-पर्याप्तक विशेषाधिक है, ४७ (उनकी अपेक्षा) द्वीन्द्रिय-पर्याप्तक विशेषाधिक है, ४८ (उनकी अपेक्षा) त्रीन्द्रिय-पर्याप्तक विशेषाधिक है, ४९ (उनकी अपेक्षा) पचेन्द्रिय अपर्याप्तक असख्यातगुणे हैं, ५० (उनसे) चतुरिन्द्रिय अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ५१ (उनसे) त्रीन्द्रिय अपर्याप्तक विशेषाधिक है, ५२ (उनसे) द्वीन्द्रिय पर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ५३ (उनकी अपेक्षा) प्रत्येकशरीर बादर वनस्पतिकायिक-पर्याप्तक असख्यातगुणे हैं, ५५ बादर निगोद-पर्याप्तक (उनसे) असख्यातगुणे हैं, ५४ (उनसे) बादर-पृथ्वी-कायिक-पर्याप्तक असख्यातगुणे है, ५६ (उनसे) बादर-अप्कायिक-पर्याप्तक असख्यातगुणे है, ५७. (उनसे) बादर-वायुकायिक-पर्याप्तक असख्यातगुणे हैं, ५८ बादर तेजस्कायिक-अपर्याप्तक (उनसे) असख्यातगुणे है, ५९ प्रत्येकशरीर-बादर-वनस्पतिकायिक-अपर्याप्तक (उनसे) असख्यातगुणे हैं, ६०.

(उनसे) बादरनिगोद-अपर्याप्तक असख्यातगुणे है, ६१ वादर पृथ्वीकायिक-अपर्याप्तक (उनसे) असख्यातगुणे है, ६२ वादर-अप्कायिक-अपर्याप्तक (उनसे) असख्यातगुणे हैं, ६३ (उनकी अपेक्षा) बादर-वायुकायिक-अपर्याप्तक असख्यातगुणे है, ६४ (उनकी अपेक्षा) सूक्ष्म तेजस्कायिक-अपर्याप्तक असख्यातगुणे है, ६५ (उनकी अपेक्षा) सूक्ष्म पृथ्वीकायिक-अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ६६ (उनकी-अपेक्षा) सूक्ष्म अप्कयिक-अपर्याप्तक विशेषाधिक है, ६७ (उनसे) सूक्ष्म वायुकायिक, अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ६८ (उनकी अपेक्षा) सूक्ष्म तेजस्कायिक-पर्याप्तक सख्यातगुणे है, ६९ (उनकी-अपेक्षा) सूक्ष्म पृथ्वीकायिक-पर्याप्तक विशेषाधिक है, ७० (उनसे) सूक्ष्म अप्कायिक-पर्याप्तक विशेषाधिक है, ७१ (उनकी अपेक्षा) सूक्ष्म वायुकायिक-पर्याप्तक विशेषाधिक है, ७२ (उनसे) सूक्ष्म निगोद-अपर्याप्तक असख्यातगुणे हैं, ७३ (उनसे) सूक्ष्म निगोद-पर्याप्तक सख्यातगुणे है, ७४ (उनकी अपेक्षा) अभवसिद्धिक (अभव्य) अनन्तगुणे है, ७५ (उनसे) सम्यक्त्व से भ्रष्ट (प्रतिपतित) अनन्तगुणे है, ७६ (उनकी अपेक्षा) सिद्ध अनन्तगुणे है, ७७ (उनकी अपेक्षा) वादर वनस्पतिकायिक-पर्याप्तक अनन्तगुणे है, ७८ (उनसे) बादरपर्याप्तक विशेषाधिक है, ७९ (उनकी अपेक्षा) वादर वनस्पतिकायिक-अपर्याप्तक असख्यातगुणे हैं, ८० (उनकी अपेक्षा) बादर-अपर्याप्तक विशेषाधिक है, ८१ (उनसे) बादर विशेषाधिक हैं, ८२ (उनसे) सूक्ष्म वनस्पतिकायिक-अपर्याप्तक असख्यातगुणे है, ८३ (उनकी अपेक्षा) सूक्ष्म-अपर्याप्तक विशेषाधिक हैं, ८४ (उनसे) सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्तक सख्यातगुणे हैं, ८५ (उनसे) सूक्ष्म-पर्याप्तक विशेषाधिक है, ८६ (उनकी अपेक्षा) सूक्ष्म विशेषाधिक हैं, ८७ (उनसे) भवसिद्धिक (भव्य) विशेषाधिक है, ८८ (उनकी अपेक्षा) निगोद के जीव विशेषाधिक है, ८९ (उनसे) वनस्पति जीव विशेषाधिक है, ९० (उनसे) एकेन्द्रिय जीव विशेषाधिक है, ९१ (उनसे) तिर्यञ्चयोनिक विशेषाधिक है, ९२ (उनसे) मिथ्यादृष्टि-जीव विशेषाधिक है, ९३ (उनसे) अविरत जीव विशेषाधिक है, ९४ (उनकी अपेक्षा) सकषायी जीव विशेषाधिक है, ९५ (उनसे) छद्मस्थ जीव विशेषाधिक हैं, ९६ (उनकी अपेक्षा) सयोगी जीव विशेषाधिक है, ९७ (उनकी अपेक्षा) ससारस्थ जीव विशेषाधिक है, ९८ (उनकी अपेक्षा) सर्वजीव विशेषाधिक है ।

सत्ताईसवाँ (महादण्डक) द्वार ।। २७ ।।

विवेचन—सत्ताईसवाँ महादण्डकद्वार : सर्व जीवो के अल्पबहुत्व का विविध विवक्षाओ से निरूपण—प्रस्तुत सूत्र (३३४) मे महादण्डकद्वार के निमित्त से विविध विवक्षाओ से समस्त जीवो के अल्पबहुत्व का प्रतिपादन किया गया है ।

महादण्डक के वर्णन की अनुज्ञा—शिष्य को गुरु की अनुज्ञा लेकर ही शास्त्र प्ररूपणा या व्याख्या करनी चाहिए । इस दृष्टि से श्री गौतमस्वामी महादण्डक का वर्णन करने की अनुमति लेकर कहते है कि—भगवन् ! मैं जीवो के अल्पबहुत्व के प्रतिपादक महादण्डक का वर्णन करता हूँ अथवा रचना करता हूँ ।[1]

समस्त जीवो के अल्पबहुत्व का क्रम—(१) गर्भज जीव सबसे कम इसलिए है कि उनकी सख्या सख्यात-कोटाकोटि परिमित है । (२) उनकी अपेक्षा मनुष्यस्त्रियाँ सख्यातगुणी अधिक है, क्योकि मनुष्यपुरुषो की अपेक्षा सत्ताईसगुणी और सत्ताईस अधिक होती हैं ।[2] (३) उनसे बादर

---

१ प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक १६३

२ 'सत्तावीसगुणा पुण मणुयाण तदहिआ चेव' —प्रज्ञापना म वृत्ति, पत्राक १६३ मे उद्धृत

तेजस्कायिक पर्याप्तक असख्येयगुणे है, क्योकि वे कतिपय वर्ग कम आवलिकाघन-समय-प्रमाण है। (४) उनकी अपेक्षा अनुत्तरौपपातिक देव असख्यातगुणे अधिक है, क्योकि वे क्षेत्रपल्योपम के असख्यातवे भागवर्ती आकाशप्रदेशो की राशि के बराबर है। (५) उनकी अपेक्षा उपरितन ग्रैवेयकत्रिक के देव सख्यातगुणे अधिक है, क्योकि वे बृहत्तर क्षेत्रपल्योपम के असख्यातवे भाग मे रहे हुए आकाशप्रदेशो की राशि के बराबर है। इसे जानने का मापदण्ड है उत्तरोत्तर विमानो की अधिकता। अनुत्तर देवो के ५ विमान है, किन्तु ऊपर के तीन ग्रैवेयको मे सौ विमान है और प्रत्येक विमान मे असख्यात देव है। नीचे-नीचे के विमानो मे अधिक-अधिक देव होते है, इसीलिए अनुत्तर-विमानवासी देवो की अपेक्षा ऊपरी तीन ग्रैवेयको के देव सख्यातगुणे है। आगे भी आनतकल्प के देवो (६ से ११) तक उत्तरोत्तर सख्यातगुणे हैं, कारण पहले बताया जा चुका है। यद्यपि आरण और अच्युत कल्प समश्रेणी मे स्थित है और दोनो की विमानसख्या समान है तथापि स्वभावत कृष्णपक्षी जीव प्राय दक्षिणदिशा मे उत्पन्न होते हैं, उत्तरदिशा मे नही और कृष्णपाक्षिक जीव शुक्लपाक्षिको की अपेक्षा अधिक होते है। इसलिए अच्युत से आरण प्राणत, और आनत कल्प के देव उत्तरोत्तर सख्यातगुणे अधिक है। (१२) उनकी अपेक्षा सप्तम नरकपृथ्वी के नैरयिक असख्येयगुणे है, क्योकि वे श्रेणी के असख्यातवे भाग मे स्थित आकाशप्रदेशो की राशि के बराबर है। उनसे उत्तरोत्तर क्रमश (१३) छठी नरक के नारक, (१४) सहस्रारकल्प के देव, (१५) महाशुक्रकल्प के देव, (१६) पचम धूमप्रभा नरक के नारक, (१७) लान्तककल्प के देव, (१८) चतुर्थ पकप्रभानरक के नारक, (१९) ब्रह्मलोककल्प के देव, (२०) तृतीय वालुकाप्रभा नरक के नारक, (२१) माहेन्द्र-कल्प के देव, (२२) सनत्कुमारकल्प के देव, (२३) दूसरी शर्कराप्रभा नरक के नारक असख्यात-असख्यातगुणे हैं। सातवी पृथ्वी से लेकर दूसरी पृथ्वी तक के नारक प्रत्येक अपने स्थान मे प्ररूपित किये जाएँ तो सभी घनीकृत लोकश्रेणी के असख्यातवे भाग मे स्थित आकाशप्रदेशो की राशि के बराबर है, मगर श्रेणी के असख्यातवे भाग के भी असख्यात भेद होते हैं। अत इनमे सर्वत्र उत्तरोत्तर असख्यातगुणा अल्पबहुत्व कहने मे कोई विरोध नही आता। शेष सब युक्तियाँ पूर्ववत् समझनी चाहिए। (२४) उनकी अपेक्षा सम्मूर्च्छिम मनुष्य असख्यातगुणे है, क्योकि अगुलमात्र क्षेत्र के प्रदेशो की राशि के द्वितीय वर्गमूल से गुणित तीसरे वर्गमूल मे जितनी प्रदेशराशि होती है, उतने प्रमाण मे सम्मूर्च्छिम मनुष्य होते है। (२५) उनसे ईशानकल्प देव सख्यातगुणे हैं, यह पूर्वोक्त युक्ति के अनुसार समझ लेना चाहिए। (२६) ईशानकल्प की देवियाँ उनसे सख्यातगुणी अधिक है, क्योकि देवियाँ देवो से बत्तीस गुणी और बत्तीस अधिक होती हैं। (२७) इनसे सौधर्मकल्प के देव सख्यातगुणे अधिक है, क्योकि ईशानकल्प मे अट्ठाईस लाख विमान हैं, जबकि सौधर्मकल्प मे बत्तीस लाख विमान है। (२८) पूर्वोक्त युक्ति के अनुसार सौधर्मकल्प की देवियाँ देवो से बत्तीस गुणी एव बत्तीस अधिक होने से सख्यातगुणी है। (२९) इनकी अपेक्षा भवनवासी देव असख्यातगुणे है। अगुलमात्र क्षेत्र के प्रदेशो की राशि के तीसरे वर्गमूल से गुणित प्रथम वर्गमूल मे जितने प्रदेशो की राशि होती है, उतनी प्रमाण वाली घनीकृत लोक की एक प्रदेश वाली श्रेणियो मे जितने आकाश प्रदेश होते हैं, उतनी ही सख्या भवनपति देवो और देवियो की है। (३०) देवो की अपेक्षा देवियाँ बत्तीस गुणी एव बत्तीस अधिक होती है,[1] इस कारण भवनवासी देवियाँ सख्यातगुणी है। (३१) उनकी अपेक्षा

१ (क) 'बत्तीसगुणा बत्तीसरूवअहिया उ होंति देवीओ।'
(ख) प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक १६४

रत्नप्रभापृथ्वी के नारक असख्यातगुणे है। वे अगुलमात्र परिमित क्षेत्र के प्रदेशो की राशि के द्वितीय वर्गमूल से गुणित प्रथम वर्गमूल की जितनी प्रदेशराशि होती है उतनी श्रेणियो मे रहे हुए आकाशप्रदेशो के बराबर है। (३२) उनकी अपेक्षा खेचर पचेन्द्रिय-तिर्यञ्च पुरुष असख्यातगुणे है, क्योकि वे प्रतर के असख्यातवे भाग मे रही हुई असख्यात श्रेणियो के आकाशप्रदेशो के बराबर है। (३३) उनकी अपेक्षा खेचर पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च स्त्रियाँ सख्यातगुणी है, ' क्योकि तिर्यञ्चो मे पुरुष की अपेक्षा स्त्रिया तीन गुणी और तीन अधिक होती हैं।[1] (३४) इनकी अपेक्षा स्थलचर पचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक पुरुप सख्यातगुणे है, क्योकि वे बृहत्तर प्रतर के असख्यातवे भाग मे रही हुई असख्यात श्रेणियो की आकाश-प्रदेशराशि के बराबर हैं। (३५) इनकी अपेक्षा स्थलचर पचेन्द्रिय तिर्यचस्त्रियाँ पूर्वोक्त युक्ति से सख्यातगुणी हैं। (३६) उनकी अपेक्षा जलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यचपुरुष सख्यातगुणे अधिक है, क्योकि वे बृहत्तम प्रतर के असख्यातवे भाग मे रही हुई असख्यातश्रेणियो की आकाशप्रदेशराशि के तुल्य है। (३७) उनकी अपेक्षा जलचर-तिर्यच पचेन्द्रिय स्त्रियाँ पूर्वोक्त युक्ति से सख्यातगुणी है। (३८-३९) उनकी अपेक्षा वाणव्यन्तर देव एव देवी उत्तरोत्तर क्रमश सख्यातगुण है। क्योकि सख्यात योजन कोटाकोटीप्रमाण सूचीरूप जितने खण्ड एक प्रतर मे होते हैं, उतने ही सामान्य व्यन्तरदेव है। देवियाँ देवो से बत्तीसगुणा और बत्तीस अधिक होती हैं। (४०) उनकी अपेक्षा ज्योतिष्क देव (देवी सहित) सख्यातगुणे अधिक है, क्योकि वे सामान्यत २५६ अगुलप्रमाण सूचीरूप जितने खण्ड एक प्रतर मे होते हैं, उतने है।[2] (४१) पूर्वोक्त युक्ति के अनुसार इनसे ज्योतिष्क देवियाँ सख्यातगुणी है। (४२) इनकी अपेक्षा पर्याप्त चतुरिन्द्रिय सख्यातगुणे है, क्योकि वे अगुल के असख्यातवे भागमात्र सूचीरूप जितने खण्ड एक प्रतर मे होते है, उतने है। (४३-४४-४५) उनकी अपेक्षा स्थलचर-पचेन्द्रियतिर्यच नपु सक, जलचर पचेन्द्रियतिर्यच-नपु सक, चतुरिन्द्रिय पर्याप्तक, क्रमश उत्तरोत्तर सख्यातगुणे है। (४६ से ५२) उनकी अपेक्षा पचेन्द्रिय-पर्याप्तक, द्वीन्द्रिय-पर्याप्तक, त्रीन्द्रिय पर्याप्तक, पचेन्द्रिय-अपर्याप्तक, चतुरिन्द्रिय-अपर्याप्तक, त्रीन्द्रिय-अपर्याप्तक और द्वीन्द्रिय-अपर्याप्तक उत्तरोत्तर क्रमश विशेषाधिक है, क्योकि ये सब अगुल के असख्यातवे भागमात्र सूचीरूप जितने खण्ड एक प्रतर मे होते है, उतने प्रमाण मे होते है, किन्तु अगुल के असख्यातभाग के असख्यात भेद होते है। अत अपर्याप्त-द्वीन्द्रिय पर्यन्त उत्तरोत्तर अगुल का असख्यातवा भागकम अगुल का असख्यातवा भाग लेने पर कोई दोष नही। (५३ से ६८ तक) प्रत्येकशरीर बादर वनस्पतिकायिक-पर्याप्तक, बादर निगोद-पर्याप्तक, बादर पृथ्वीकायिक-पर्याप्तक, बादर अप्कायिक-पर्याप्तक, बादर वायुकायिक-पर्याप्तक, बादर तेजस्कायिक-अपर्याप्तक, प्रत्येकशरीर-बादर वनस्पतिकायिक-अपर्याप्तक, बादर निगोद-अपर्याप्तक, बादर पृथ्वीकायिक-अपर्याप्तक, बादर अप्कायिक-अपर्याप्तक, बादर वायुकायिक-अपर्याप्तक, और सूक्ष्म तेजस्कायिक-अपर्याप्तक उत्तरोत्तर क्रमश असख्यातगुणे है, उनकी अपेक्षा सूक्ष्म वायुकायिक-अपर्याप्तक, सूक्ष्म अप्कायिक-अपर्याप्तक, सूक्ष्म वायुकायिक-अपर्याप्तक उत्तरोत्तर विशेषाधिक हैं, उनसे सूक्ष्म तेजस्कायिक-पर्याप्तक सख्यातगुणे हैं, यह पूर्वोक्त युक्ति के अनुसार समझ लेना चाहिए तथा अपर्याप्तक सूक्ष्म जीवो की अपेक्षा पर्याप्तक सूक्ष्म स्वभावत

---

१ (क) 'तिगुणा तिरूवअहिआ तिरियाण इत्थिओ मुणेयव्वा।'
(ख) प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्र क १६५

२ (क) 'छपन्नदोसयगुल सूइपएसेहिं भाइय पयर। जोइसिएहिं हीरइ।'
(ख) प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति पत्राक १६६

अधिक होते है। प्रज्ञापना की सग्रहणी मे कहा गया है—बादर जीवो मे अपर्याप्त अधिक होते है, तथा सूक्ष्म जीवो मे समुच्चरूप से पर्याप्तक अधिक होते हैं। (६९ से ७३ तक) उनकी अपेक्षा सूक्ष्म पृथ्वीकायिक-पर्याप्तक, सूक्ष्म अप्कायिक-पर्याप्तक, सूक्ष्म वायुकायिक-पर्याप्तक उत्तरोत्तर क्रमश विशेषाधिक है। उनकी अपेक्षा सूक्ष्म निगोद-अपर्याप्तक असख्यातगुणे है तथा उनसे सूक्ष्म निगोद-पर्याप्तक-सख्यातगुणे अधिक है। यद्यपि अपर्याप्त तेजस्कायिक से लेकर पर्याप्त सूक्ष्म निगोद पर्यन्त जीव सामान्यरूप से असख्यात लोकाकाशो की प्रदेशराशि प्रमाण (तुल्य) अन्यत्र कहे गए है, तथापि लोक का असख्येयत्व भी असख्यात भेदो से युक्त होने के कारण यह अल्पबहुत्व सगत ही है। ७४ उनकी अपेक्षा अभव्य अनन्तगुणे है, क्योकि वे जघन्य युक्त-अनन्तक प्रमाण है। (७५) उनसे भ्रष्टसम्यग्दृष्टि अनन्तगुणे है, (७६) उनसे सिद्ध अनन्तगुणे है, (७७) उनसे बादर वनस्पतिकायिक-पर्याप्तक अनन्तगुणे है। (७८) उनकी अपेक्षा सामान्यत बादर पर्याप्तक विशेषाधिक है, क्योकि उनमे बादर पर्याप्तक-पृथ्वीकायिकादि का भी समावेश हो जाता है। (७९) उनसे बादर वनस्पति-कायिक-अपर्याप्तक असख्येयगुणे है, क्योकि एक एक बादर निगोद पर्याप्त के आश्रय से असख्यात-असख्यात बादर निगोद-अपर्याप्त रहते है। (८०) उनकी अपेक्षा बादर अपर्याप्तक विशेषाधिक है, क्योकि इनमे बादर अपर्याप्त पृथ्वीकायिक आदि का भी समावेश हो जाता है। (८१) उनसे सामान्यत. बादर विशेषाधिक है, क्योकि उनमे पर्याप्तक-अपर्याप्तक दोनो का समावेश हो जाता है। (८२) उनकी अपेक्षा सूक्ष्म वनस्पतिकायिक अपर्याप्तक असख्यातगुणे हैं। (८३) उनसे सामान्यत सूक्ष्म अपर्याप्तक विशेषाधिक है, क्योकि उनमे सूक्ष्म अपर्याप्तक पृथ्वीकायादि का भी समावेश हो जाता है। (८४) उनसे सूक्ष्म वनस्पतिकायिक-पर्याप्तक संख्यातगुणे है, क्योकि पर्याप्तक सूक्ष्म, अपर्याप्तक सूक्ष्म से स्वभावत सदैव सख्यातगुणे पाये जाते है। (८५) उनकी अपेक्षा सामान्यरूप से सूक्ष्म पर्याप्तक विशेषाधिक है, क्योकि इनमे सूक्ष्म पृथ्वीकायिक आदि भी सम्मिलित है। (८६) उनसे भी पर्याप्त-अपर्याप्त विशेषणरहित (सामान्य) सूक्ष्म विशेषाधिक है, क्योकि इनमे अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक से लेकर वनस्पतिकायिक तक के जीव सम्मिलित है। (८७) उनकी अपेक्षा भव्य जीव विशेषाधिक है, क्योकि जघन्य युक्त अनन्तक प्रमाण अभव्यो को छोडकर शेष सभी जीव भव्य है। (८८) उनकी अपेक्षा निगोद जीव विशेषाधिक हैं, क्योकि भव्य और अभव्य अतिप्रचुरता से सूक्ष्म और बादर निगोद जीवराशि मे ही पाए जाते है, अन्यत्र नही। अन्य सभी मिलकर असख्यात लोकाकाशप्रदेशो की राशि-प्रमाण ही होते हैं। (८९) उनकी अपेक्षा वनस्पतिजीव विशेषाधिक है, क्योकि सामान्य वनस्पतिकायिको मे प्रत्येकशरीर वनस्पतिकायिक जीव भी सम्मिलित है। (९०) वनस्पति जीवो की अपेक्षा एकेन्द्रिय जीव विशेषाधिक हैं, क्योकि उनमे सूक्ष्म एव बादर पृथ्वीकायिक आदि का भी समावेश है। (९१) एकेन्द्रियो की अपेक्षा तिर्यञ्चजीव विशेषाधिक है, क्योकि तिर्यञ्च सामान्य मे द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पचेन्द्रिय पर्याप्त और अपर्याप्त सभी तिर्यञ्च सम्मिलित हैं। (९२) तिर्यञ्चो की अपेक्षा मिथ्यादृष्टि विशेषाधिक है, क्योकि थोडे-से अविरत सम्यग्दृष्टि आदि सज्ञी तिर्यञ्चो को छोडकर शेष सभी तिर्यञ्च मिथ्यादृष्टि है, इसके अतिरिक्त अन्य गतियो के मिथ्यादृष्टि भी यहाँ सम्मिलित है, जिनमे असख्यात नारक भी है। (९३) मिथ्या-दृष्टि जीवो की अपेक्षा अविरत जीव विशेषाधिक है, क्योकि इनमे अविरत सम्यग्दृष्टि भी समाविष्ट हैं। (९४) अविरत जीवो की अपेक्षा सकषाय जीव विशेषाधिक है, क्योकि सकषाय जीवो मे देशविरत और दशम गुणस्थान तक के सर्वविरत जीव भी सम्मिलित है। (९५) उनकी अपेक्षा छद्मस्थ विशेषाधिक हैं, क्योकि उपशान्तमोह आदि भी छद्मस्थो मे सम्मिलित हैं। (९६) सकषाय जीव

की अपेक्षा सयोगी विशेषाधिक है, क्योकि इनमे सयोगीकेवली गुणस्थान तक के जीवो का समावेश हो जाता है। (९७) सयोगियो की अपेक्षा ससारी जीव विशेपाधिक हैं, क्योकि ससारी जीवो मे अयोगीकेवली भी है और (९८) ससारी जीवो की अपेक्षा सर्वजीव विशेपाधिक है, क्योकि सर्वजीवो मे सिद्धो का भी समावेश हो जाता है।'

॥ प्रज्ञापनासूत्र : तृतीय बहुवक्तव्यतापद समाप्त ॥

---

१ (क) 'तत्तो नपुसग खहयरा सखेज्जा थलयर-जलयर-नपुसगा चउरिन्दिय तओ पणवितिपज्जत्त किंचि अहिआ।' —प्रज्ञापना म वृत्ति, प १६६ मे उद्धृत

(ख) 'जीवाणमपज्जत्ता बहुतरगा वायराण विन्नेया।
सुहमाण य पज्जत्ता ओहेण य केवली विंति ॥' —प्रज्ञापना म वृत्ति, प १६७ मे उद्धृत

(ग) प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक १६६ से १६८ तक।

चउत्थं ठिइपयं

चतुर्थ स्थितिपद

प्राथमिक

* प्रज्ञापनासूत्र के इस चतुर्थपद मे जीवो के जन्म से लेकर मरण-पर्यन्त नारक आदि पर्यायो मे अव्यवच्छिन्न रूप से कितने काल तक अवस्थान (स्थिति या टिकना) होता है ?, इसका विचार किया गया है। अर्थात् इस पद मे जीवो के जो नारक, तिर्यंच, मनुष्य, देव आदि विविध पर्याय है, उनकी आयु का विचार है। यो तो जीवद्रव्य (आत्मा) नित्य है, परन्तु वह जो नानारूप (नाना जन्म) धारण करता है, वे पर्याये अनित्य है। वे कभी-न-कभी तो नष्ट होती ही हैं। इस कारण उनकी स्थिति का विचार करना पडता है। यही तथ्य यहाँ प्रस्तुत किया गया है। 'स्थिति' शब्द का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ भी इस प्रकार का है—आयुकर्म की अनुभूति करता हुआ जीव जिस (पर्याय) मे अवस्थित रहता है, वह स्थिति है। इसलिए स्थिति, आयु कर्मानुभूति और जीवन, ये तीनो पर्यायवाची शब्द है।[1]

* यद्यपि मिथ्यात्वादि से गृहीत तथा ज्ञानावरणीयादि रूप मे परिणत कर्मपुद्गलो का जो अवस्थान है, वह भी 'स्थिति' नाम से प्रसिद्ध है, तथापि यहाँ नारक आदि व्यपदेश की हेतु 'आयुष्यकर्मानुभूति' ही 'स्थिति' शब्द का वाच्य है, क्योकि नरकगति आदि तथा पचेन्द्रियजाति आदि नामकर्म के उदय के आश्रित नारकत्व आदि पर्याय कहलाती है, किन्तु यहाँ नरक आदि क्षेत्र को अप्राप्त जीव नरकायु आदि के प्रथम समय के सवेदनकाल से ही नारकत्व आदि कहलाने लगता है। अत उस-उस गति के आयुष्यकर्म की अनुभूति को ही स्थिति मानी गई है। आयुष्य-कर्म की अनुभूति (आयु) सिर्फ ससारी जीवो को ही होती है, इसलिए इस पद मे ससारी जीवो की ही स्थिति का विचार किया गया है। सिद्ध तो सादि-अपर्यवसित होते है, अत उनकी आयु का विचार अप्राप्त होने से नही किया गया है तथा अजीवद्रव्य के पर्यायो की स्थिति का भी विचार इस पद मे नही किया गया है, क्योकि अजीवो के पर्याय जीवो की तरह आयु की अनुभूति पर आश्रित नही हैं और न उनके पर्याय जीवो की आयु की तरह काल की दृष्टि से अमुक सीमा मे निर्धारित किये जा सकते हैं।

* स्थिति (आयु) का विचार यहाँ सर्वत्र जघन्य और उत्कृष्ट, दो प्रकार से किया गया है।

* प्रस्तुत पद मे स्थिति का निर्देशक्रम इस प्रकार है—सर्वप्रथम जीव की उन-उन सामान्य पर्यायो को लेकर, तत्पश्चात् उनके पर्याप्तक और अपर्याप्तक भेद करके आयु का विचार किया गया है।[2]

१ 'स्थीयते-अवस्थीयते अनया आयु कर्मानुभूत्येति स्थिति ।
स्थितिरायु कर्म्मानुभूतिर्जीवनमिति पर्याया । —प्रज्ञापना, म वृत्ति, पृ १६९

२ (क) प्रज्ञापना मलय वृत्ति, पत्राक १६९ (ख) पण्णवणा भा २ प्रस्तावना, पृ ५८

* इस पद मे सर्वप्रथम सामान्य नारक, तत्पश्चात् रत्नप्रभादि विशिष्ट नारको की, भवनवासी देवो की, पृथ्वीकायादि पाच स्थावरो की, द्वीन्द्रियादि तीन विकलेन्द्रियो की, विभिन्न पचेन्द्रियतिर्यंचो की, फिर विविध मनुष्यो की, समस्त वाणव्यन्तर देवो की, समस्त ज्योतिष्कदेवो की, तत्पश्चात् वैमानिक देवो की एव नौ ग्रैवेयक तथा पच अनुत्तरविमानवासी देवो की स्थिति का निरूपण किया गया है।

* स्थिति विषयक पाठ पर से फलित होता है कि पुरुष की अपेक्षा स्त्री की स्थिति (आयु) कम है। नारको और देवो की स्थिति मनुष्य और तिर्यंच की अपेक्षा अधिक है। एकेन्द्रिय मे तेजस्कायिक की सबसे कम और पृथ्वीकायिक की स्थिति सबसे अधिक है। द्वीन्द्रिय से त्रीन्द्रिय की तथा चतुरिन्द्रिय से भी त्रीन्द्रिय की स्थिति कम मानी गई है, यह रहस्य केवलिगम्य है।[1] □□

---

१ (क) पण्णवणासुत्त (मूलपाठ) भा १, पृ ११२ से (ख) पण्णवणासुत्त भा २, परिशिष्ट पृ ५८

उत्थं ठिइप

चतुर्थ स्थितिपद

नैरयिको की स्थिति की प्ररूपणा

३३५. [१] नेरइयाण भंते ! केवतिय काल ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेण दस वाससहस्साइ, उक्कोसेण तेत्तीस सागरोवमाइ ।

[३३५-१ प्र] भगवन् ! नैरयिको की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३३५-१ उ] गौतम ! उनकी स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की कही गई है ।

[२] अपज्जत्तयनेरइयाणं भंते ! केवतिय काल ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं अतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अतोमुहुत्त ।

[३३५-२ प्र] भगवन् ! अपर्याप्तक नैरयिको की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३३५-२ उ] गौतम ! (उनकी स्थिति) जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्त-मुहूर्त्त की कही गई है ।

[३] पज्जत्तयणेरइयाण भंते ! केवतिय काल ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेण दस वाससहस्साइं अतोमुहुत्तूणाइ, उक्कोसेण तेत्तीस सागरोवमाइ अतोमुहुत्तूणाइ ।

[३३५-३ प्र] भगवन् ! पर्याप्तक नैरयिको की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३३५-३ उ] गौतम ! (उनकी स्थिति) जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम तेतीस सागरोपम की कही गई है ।

३३६ [१] रयणप्पभापुढविनेरइयाण भंते ! केवतिय काल ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेण दस वाससहस्साइ, उक्कोसेणं सागरोवम ।

[३३६-१ प्र] भगवन् ! रत्नप्रभापृथ्वी के नारको की कितने काल की स्थिति कही गई है ?

[३३६-१ उ] गौतम ! जघन्य दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट एक सागरोपम कही गई है ।

[२] अपज्जत्तयरयणप्पभापुढविनेरइयाण भंते ! केवतिय काल ठिई पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेण वि अतोमुहुत्त, उक्कोसेण वि अतोमुहुत्त ।

[३३६-२ प्र] भगवन् ! अपर्याप्तक-रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिको की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३३६-२ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है।

[३] पज्जत्तयरयणप्पभापुढविनेरइयाण भंते ! केवतिय काल ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेण दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेण सागरोवम अंतोमुहुत्तूण।

[३३६-३ प्र] भगवन् ! पर्याप्तक-रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३३६-३ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम एक सागरोपम की कही गई है।

३३७. [१] सक्करप्पभापुढविनेरइयाणं भंते ! केवतिय काल ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेण एग सागरोवम, उक्कोसेणं तिण्णि सागरोवमाइं।

[३३७-१ प्र] भगवन् ! शर्कराप्रभापृथ्वी के नैरयिकों की कितने काल की स्थिति कही गई है ?

[३३७-१ उ] गौतम ! (उनकी स्थिति) जघन्य एक सागरोपम की और उत्कृष्ट तीन सागरोपम की कही गई है।

[२] अपज्जत्तयसक्करप्पभापुढविनेरइयाण भंते ! केवतियं काल ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्त।

[३३७-२ प्र] भगवन् ! अपर्याप्त शर्कराप्रभापृथ्वी के नारकों की कितने काल की स्थिति कही गई है ?

[३३७-२ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पज्जत्तयसक्करप्पभापुढविनेरइयाणं भंते ! केवतिय कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेण सागरोवम अंतोमुहुत्तूण, उक्कोसेण तिण्णि सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[३३७-३ प्र] भगवन् ! पर्याप्तक-शर्कराप्रभापृथ्वी के नैरयिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३३७-३ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम एक सागरोपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम तीन सागरोपम की (कही गई) है।

३३८ [१] वालुयप्पभापुढविनेरइयाण भंते ! केवतिय काल ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेण तिण्णि सागरोवमाइं, उक्कोसेण सत्त सागरोवमाइं।

[३३८-१ प्र] भगवन् ! वालुकाप्रभापृथ्वी के नैरयिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३३८-१ उ] गौतम ! जघन्य तीन सागरोपम की और उत्कृष्ट सात सागरोपम की है।

[२] अपज्जत्तयवालुयप्पभापुढविनेरइयाणं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?
गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३३८-२ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्तक-वालुकाप्रभापृथ्वी के नारकों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३३८-२ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] पज्जत्तयवालुयप्पभापुढविनेरइयाणं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेण तिण्णि सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेण सत्त सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[३३८-३ प्र.] भगवन् ! पर्याप्तक-वालुकाप्रभापृथ्वी के नारकों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३३८-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम तीन सागरोपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम सात सागरोपम की है ।

३३९. [१] पंकप्पभापुढविनेरइयाणं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?
गोयमा ! जहण्णेणं सत्त सागरोवमाइं, उक्कोसेण दस सागरोवमाइं ।

[३३९-१ प्र.] भगवन् ! पंकप्रभापृथ्वी के नैरयिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?
[३३९-१ उ.] गौतम ! जघन्य सात सागरोपम की और उत्कृष्ट दस सागरोपम की है ।

[२] अपज्जत्तयपंकप्पभापुढविनेरइयाणं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?
गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।
[३३९-२ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्तक-पंकप्रभापृथ्वी के नैरयिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?
[३३९-२ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है ।
[३] पज्जत्तयपंकप्पभापुढविनेरइयाणं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?
गोयमा ! जहण्णेण सत्त सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं दस सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[३३९-३ प्र.] भगवन् पर्याप्तक-पंकप्रभापृथ्वी के नारकों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३३९-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम सात सागरोपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम दस सागरोपम की है ।

३४० [१] धूमप्पभापुढविनेरइयाणं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?
गोयमा ! जहण्णेण दस सागरोवमाइं, उक्कोसेण सत्तरस सागरोवमाइं ।

[३४०-१ प्र] भगवन् ! धूमप्रभापृथ्वी के नैरयिको की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३४०-१ उ] गौतम ! जघन्य दस सागरोपम की और उत्कृष्ट सत्रह सागरोपम की है।

[२] अपज्जत्तयधूमप्पभापुढविनेरइयाण भंते ! केवतिय काल ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्त, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्त ।

[३४०-२ प्र] भगवन् ! धूमप्रभापृथ्वी के अपर्याप्त नैरयिको की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३४०-२ उ] गौतम ! (उनकी स्थिति) जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पज्जत्तयधूमप्पभापुढविनेरइयाण भंते ! केवतिय काल ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेण दस सागरोवमाइ अंतोमुहुत्तूणाइ, उक्कोसेणं सत्तरस सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइ ।

[३४०-३ प्र] भगवन् ! धूमप्रभापृथ्वी के पर्याप्तक नैरयिको की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३४०-३ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम दस सागरोपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम सत्तरह सागरोपम की है।

३४१ [१] तमप्पभापुढविनेरइयाण भंते ! केवतिय काल ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेण सत्तरस सागरोवमाइ, उक्कोसेणं बावीस सागरोवमाइ ।

[३४१-१ प्र] भगवन् ! तमःप्रभापृथ्वी के नैरयिको की कितने काल की स्थिति कही गई है ?

[३४१-१ उ] गौतम ! जघन्य सत्तरह सागरोपम की और उत्कृष्ट बाईस सागरोपम की है।

[२] अपज्जत्तयतमप्पभापुढविनेरइयाण भंते ! केवतिय कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्त, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३४१-२ प्र] भगवन् ! तमःप्रभापृथ्वी के अपर्याप्तक नैरयिको की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३४१-२ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पज्जत्तयतमप्पभापुढविनेरइयाण भंते ! केवतिय काल ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेण सत्तरस सागरोवमाइ अंतोमुहुत्तूणाइ, उक्कोसेणं बावीस सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइ ।

[३४१-३ प्र] भगवन् ! तमःप्रभापृथ्वी के पर्याप्तक नैरयिको की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३४१-३ उ] गौतम जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम सत्तरह सागरोपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम बाईस सागरोपम की है।

३४२. [१] **अधेसत्तमपुढविनेरइयाण भंते ! केवतिय काल ठिती पण्णत्ता ?**
गोयमा ! जहण्णेणं बावीस सागरोवमाइ, उक्कोसेण तेत्तीस सागरोवमाइ।

[३४२-१ प्र] भगवन् ! अध सप्तम (तमस्तम प्रभा) पृथ्वी के नैरयिको की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३४२-१ उ] गौतम ! जघन्य बाईस सागरोपम की और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की (कही गई) है।

[२] **अपज्जत्तयअधेसत्तमपुढविनेरइयाण भंते ! केवतिय काल ठिती पण्णत्ता ?**
गोयमा ! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्त, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्त।

[३४२-२ प्र] भगवन् ! अपर्याप्तक-अध सप्तम(तमस्तम प्रभा)पृथ्वी के नैरयिको की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३४२-२ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] **पज्जत्तयअधेसत्तमपुढविनेरइयाण भंते ! केवतिय काल ठिती पण्णत्ता ?**
गोयमा ! जहण्णेणं बावीसं सागरोवमाइ अंतोमुहुत्तूणाइ, उक्कोसेण तेत्तीस सागरोवमाइ अंतोमुहुत्तूणाइ।

[३४२-३ प्र] भगवन् ! पर्याप्तक-अध सप्तमपृथ्वी के नैरयिको की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३४२-३ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम बाईस सागरोपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम तेतीस सागरोपम की है।

विवेचन—नैरयिको की स्थिति का निरूपण—प्रस्तुत आठ सूत्रो (सू ३३५ से ३४२ तक) मे सामान्य नारको, सात नरकभूमियो मे रहने वाले नारको और फिर उनके अपर्याप्तको तथा पर्याप्तको की स्थिति पृथक्-पृथक् प्ररूपित की गई है।

अपर्याप्तदशा और पर्याप्तदशा—अन्य ससारी जीवो की तरह नैरयिको की भी दो दशाएँ हैं—अपर्याप्तदशा और पर्याप्तदशा। अपर्याप्तदशा दो प्रकार से होती है—लब्धि से और करण से। नारक, देव तथा असख्यातवर्षो की आयु वाले तिर्यञ्च एव मनुष्य करण से ही अपर्याप्त होते हैं, लब्धि से नही। ये उपपात काल मे ही कुछ काल तक करण से अपर्याप्त समझने चाहिए। शेष तिर्यञ्च या मनुष्य लब्धि और करण—दोनो प्रकार से उपपातकाल मे अपर्याप्तक हो सकते है। यहाँ इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि अपर्याप्तक अवस्था जघन्यत और उत्कृष्टत अन्तर्मुहूर्त्त तक ही रहती है। उसके बाद पर्याप्तदशा आ जाती है। इसलिए सामान्य स्थिति मे से अपर्याप्तदशा की अन्तर्मुहूर्त्त की स्थिति को कम कर देने पर शेष स्थिति पर्याप्तको की रह जाती है। जैसे—प्रथम नरकपृथ्वी मे सामान्य स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट एक सागरोपम की है। इसमे से अपर्याप्तदशा की

अन्तर्मुहूर्त्त की स्थिति कम कर देने पर पर्याप्त अवस्था की जघन्यस्थिति अन्तर्मुहूर्त्त कम दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त कम एक सागरोपम की होती है। आगे भी सर्वत्र इसी प्रकार समझ लेना चाहिए।[1]

पूर्व-पूर्व की उत्कृष्ट स्थिति, आगे-आगे की जघन्य—पहले-पहले की नरकपृथ्वी की जो उत्कृष्ट स्थिति है, वही अगली-अगली नरकपृथ्वी को जघन्य स्थिति है। जैसे—प्रथम रत्नप्रभापृथ्वी की उत्कृष्ट स्थिति एक सागरोपम की है, वही द्वितीय शर्कराप्रभापृथ्वी की जघन्य स्थिति है।[2]

देवों और देवियो की स्थिति की प्ररूपणा—

३४३ [१] देवाणं भते ! केवतिय काल ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेण दस वाससहस्साइ, उक्कोसेण तेत्तीस सागरोवमाइ ।

[३४३-१ प्र] भगवन् ! देवो की कितने काल की स्थिति कही गई है ?

[३४३-१ उ] गौतम ! (देवो की स्थिति) जघन्य दस हजार वर्ष की है और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की है।

[२] अपज्जत्तयदेवाण भते ! केवतिय काल ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेण अतोमुहुत्त, उक्कोसेण वि अतोमुहुत्त ।

[३४३-२ प्र] भगवन् ! अपर्याप्तक देवो की कितने काल तक स्थिति कही गई है ?

[३४३-२ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है, उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पज्जत्तयदेवाण भते ! केवतिय काल ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेण दस वाससहस्साइं अतोमुहुत्तूणाइ, उक्कोसेण तेत्तीस सागरोवमाइं अतोमुहुत्तूणाइ ।

[३४३-३ प्र] भगवन् ! पर्याप्तक-देवो की कितने काल तक स्थिति कही गई है ?

[३४३-३ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम तेतीस सागरोपम की है।

३४४ [१] देवीणं भते ! केवतिय काल ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं दस वाससहस्साइ, उक्कोसेणं पणपण्ण पलिओवमाइ ।

---

१ (क) प्रज्ञापनासूत्र, मलय वृत्ति, पत्राक १७०
(ख) नारगदेवा तिरिमणुयगब्भजा जे असखवासाऊ ।
एए अप्पज्जत्ता उववाए चेव बोद्धव्वा ॥१॥
सेसा य तिरिमणुया लद्धि पप्पोववायकाले य ।
दुहओ वि य भयइयव्वा पज्जत्तियरे य जिणवयणे ॥२॥
—प्रज्ञापना मलय वृत्ति, प १७० मे उद्धृत

२ प्रज्ञापनासूत्र, प्रमेयबोधिनी टीका भा २, पृ ४५०

[३४४-१ प्र.] भगवन् ! देवियो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३४४-१ उ] गौतम ! (देवियो की स्थिति) जघन्य दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट पचपन पल्योपम की है ।

[२] अपज्जत्तगदेवीण भते ! केवतिय काल ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेण अतोमुहुत्त, उक्कोसेण वि अतोमुहुत्त ।

[३४४-२ प्र] भगवन् ! अपर्याप्तक देवियो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३४३-२ उ] गौतम ! (उनकी स्थिति) जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की है ।

[३] पज्जत्तयदेवीण भते ! केवतिय काल ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेण दस वाससहस्साइ अतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेण पणपण्ण पलिओवमाइं अतोमुहुत्तूणाइ ।

[३४४-३ प्र] भगवन् ! पर्याप्तक देवियो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३४४-३ उ] गौतम ! (पर्याप्तक देवियो की स्थिति) जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम पचपन पल्योपम की है ।

विवेचन—देवो और देवियो की स्थिति का निरूपण—प्रस्तुत दो सूत्रो (सू ३४३-३४४) द्वारा देवो, देवियो और उनके अपर्याप्तको और पर्याप्तको की स्थिति का निरूपण किया गया है ।

निष्कर्ष—देवो की अपेक्षा देवियो की स्थिति (आयु) कम है, यह इस पाठ पर से फलित होता है ।

भवनवासियों की स्थिति की प्ररूपणा—

३४५ [१] भवणवासीण भते ! देवाणं केवतिय काल ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेण दस वाससहस्साइं, उक्कोसेण सातिरेग सागरोवम ।

[३४५-१ प्र] भगवन् ! भवनवासी देवो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३४५-१ उ] गौतम ! जघन्य दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट कुछ अधिक एक सागरोपम की है ।

[२] अपज्जत्तयभवणवासीण भते ! देवाण केवतिय काल ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेण वि अतोमुहुत्त, उक्कोसेण वि अतोमुहुत्त ।

[३४५-२ प्र] भगवन् ! अपर्याप्तक भवनवासी देवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३४५-२ उ] गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की है ।

[३] पज्जत्तयभवणवासीणं भंते ! देवाण केवतिय कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेण दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेण सातिरेगं सागरोवमं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[३४५-३ प्र] भगवन् ! पर्याप्तक भवनवासी देवों की कितने काल तक की स्थिति कही गई है ?

[३४५-३ उ] गौतम ! उनकी स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम कुछ अधिक सागरोपम की है।

३४६ [१] भवणवासिणीणं भंते ! देवीणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेण दस वाससहस्साइं, उक्कोसेणं अद्धपंचमाइं पलिओवमाइं।

[३४६-१ प्र] भगवन् ! भवनवासी देवियों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३४६-१ उ] गौतम ! जघन्य दस हजार वर्ष की है और उत्कृष्ट साढे चार पल्योपम की है ?

[२] अपज्जत्तियाणं भंते ! भवणवासिणीणं देवीणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३४६-२ प्र] भगवन् ! अपर्याप्तक भवनवासी देवियों की स्थिति कितने काल तक की कही है ?

[३४६-२ उ] गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पज्जत्तियाणं भंते ! भवणवासिणीणं देवीणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेण अद्धपंचमाइं पलिओवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[३४६-३ प्र] भगवन् ! पर्याप्तकभवनवासी देवियों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३४६-३ उ] गौतम ! (उनकी स्थिति) जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम दस हजार वर्ष की, और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम साढे चार पल्योपम की है।

३४७ [१] असुरकुमाराणं भंते ! देवाणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं, उक्कोसेणं सातिरेगं सागरोवमं।

[३४७-१ प्र] भगवन् ! असुरकुमार देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३४७-१ उ] गौतम ! जघन्य दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट कुछ अधिक सागरोपम की है।

[२] अपज्जत्तयअसुरकुमाराणं भंते ! देवाणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३४७-२ प्र] भगवन् ! अपर्याप्त असुरकुमार देवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३४७-२ उ] गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त्त की है, और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पज्जत्तयअसुरकुमाराण भंते ! देवाण केवतिय काल ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेण दस वाससहस्साइ अंतोमुहुत्तूणाइ, उक्कोसेण सातिरेग सागरोवमं अंतोमुहुत्तूण ।

[३४७-३ प्र] भगवन् ! पर्याप्तक असुरकुमार देवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३४७-३ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम कुछ अधिक सागरोपम की है।

३४८ [१] असुरकुमारीण भंते ! देवीण केवतिय काल ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेण दस वाससहस्साइ, उक्कोसेणं अद्धपचमाइ पलिओवमाइं ।

[३४८-१ प्र] भगवन् ! असुरकुमार देवियो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३४८-१ उ] गौतम ! जघन्य दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट साढे चार पल्योपम की है।

[२] अपज्जत्तियाण असुरकुमारीण भंते ! देवीण केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्त, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्त ।

[३४८-२ प्र] भगवन् ! अपर्याप्तक असुरकुमार देवियो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३४८-२ उ] गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पज्जत्तियाणं असुरकुमारीण भंते ! देवीण केवतियं काल ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेण दस वाससहस्साइ अंतोमुहुत्तूणाइ, उक्कोसेण अद्धपचमाइ पलिओवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइ ।

[३४८-३ प्र] भगवन् ! पर्याप्तक असुरकुमार देवियो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३४८-३ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम साढे चार पल्योपम की है।

३४९ [१] णागकुमाराण भंते ! देवाण केवतिय कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेण दस वाससहस्साइ, उक्कोसेणं दो पलिओवमाइ देसूणाइ ।

[३४९-१ प्र] भगवन्! नागकुमार देवो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३४९-१ उ] गौतम! जघन्य दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट देशोन (कुछ कम) दो पल्योपमो की है।

[२] अपज्जत्तयाण भंते! णागकुमाराण देवाण केवतिय काल ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्त, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्त।

[३४९-२ प्र] भगवन्! अपर्याप्त नागकुमारो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३४९-२ उ] गौतम! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पज्जत्तयाण भंते! णागकुमाराण देवाण केवतिय काल ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा! जहण्णेण दस वाससहस्साइ अंतोमुहुत्तूणाइ, उक्कोसेणं दो पलिओवमाइ देसूणाइं अंतोमुहुत्तूणाइ।

[३४९-३ प्र] भगवन्! पर्याप्त नागकुमारो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३४९-३ उ] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम देशोन दो पल्योपम की है।

३५०. [१] नागकुमारीण भंते! देवीण केवतिय कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा! जहण्णेण दस वाससहस्साइ, उक्कोसेण देसूण पलिओवमं।

[३५०-१ प्र] भगवन्! नागकुमार देवियो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३५०-१ उ] गौतम! जघन्य दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट देशोन पल्योपम की है।

[२] अपज्जत्तियाण णागकुमारीणं भंते! देवीण केवतिय कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्त।

[३५०-२ प्र] भगवन्! अपर्याप्त नागकुमार देवियो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३५०-२ उ] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पज्जत्तियाण णागकुमारीण भंते! देवीण केवतिय कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा! जहण्णेण दस वाससहस्साइ अंतोमुहुत्तूणाइ, उक्कोसेण देसूणं पलिओवम अंतोमुहुत्तूणाइ।

[३५०-३ प्र] भगवन्! पर्याप्त नागकुमार देवियो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३५०-३ उ] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट देशोन पल्योपम मे अन्तर्मुहूर्त्त कम की है।

३५१ [१] सुवण्णकुमाराण भंते ! देवाण केवतिय काल ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं, उक्कोसेण दो पलिओवमाइ देसूणाइं ।

[३५१-१ प्र] भगवन् ! सुपर्ण (सुवर्ण) कुमार देवो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३५१-१ उ] गौतम ! जघन्य दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट देशोन दो पल्योपम की है ।

[२] अपज्जत्तियाण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३५१-२ प्र] भगवन् ! अपर्याप्तक सुपर्णकुमार देवो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३५१-२ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] पज्जत्तियाण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण दस वाससहस्साइ अंतोमुहुत्तूणाइ, उक्कोसेण दो पलिओवमाइ देसूणाइ अंतोमुहुत्तूणाइ ।

[३५१-३ प्र] भगवन् ! पर्याप्तक सुपर्णकुमार देवो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३५१-३ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम देशोन दो पल्योपम की है ।

३५२. [१] सुवण्णकुमारीण भंते ! देवीण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण दस वाससहस्साइं, उक्कोसेण देसूण पलिओवम ।

[३५२-१ प्र] भगवन् ! सुपर्णकुमार देवियो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३५२-१ उ] गौतम ! जघन्य दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट देशोन पल्योपम की है ।

[२] अपज्जत्तियाण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्त ।

[३५२-२ प्र] भगवन् ! अपर्याप्त सुपर्णकुमार देवियो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३५२-२ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] पज्जत्तियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण दस वाससहस्साइ अंतोमुहुत्तूणाइ, उक्कोसेण देसूण पलिओवम अंतोमुहुत्तूण ।

[३५२-३ प्र] भगवन् ! पर्याप्त सुपर्णकुमार देवियो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३५२-३ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम दस हजार वर्ष की है और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम देशोन पल्योपम की है।

३५३ एव एएण अभिलावेणं ओहिय-अपज्जत्त-पज्जत्तसुत्तत्तय देवाण य देवीण य णेयव्वं जाव थणियकुमाराण जहा णागकुमाराण (सु ३४९)।

[३५३] इस प्रकार इस अभिलाप से (इसी कथन के अनुसार) औघिक, अपर्याप्तक और पर्याप्तक के तीन-तीन सूत्र (आगे के भवनवासी) देवो और देवियो के विषय मे, यावत् स्तनितकुमार तक नागकुमारो (के कथन) की तरह समझ लेना चाहिए।

विवेचन—सामान्य देव-देवियो तथा भवनवासी देव-देवियो की स्थिति का निरूपण—प्रस्तुत ग्यारह सूत्रो (सू ३४३ से ३५३ तक) मे सामान्य देव-देवियो, औघिक भवनवासी देव-देवियो तथा असुरकुमार से स्तनितकुमार देव-देवियो (पर्याप्तक-अपर्याप्तकसहित) तक की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति का निरूपण किया गया है।

एकेन्द्रिय जीवो की स्थिति-प्ररूपणा—

३५४ [१] पुढविकाइयाण भते ! केवतिय काल ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेण अतोमुहुत्त, उक्कोसेण बावीस वाससहस्साइ।

[३५४-१ प्र] भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीवो की कितने काल तक की स्थिति बताई गई है ?

[३५४-१ उ] गौतम ! (उनकी स्थिति) जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट बाईस हजार वर्ष की है।

[२] अपज्जत्तयपुढविकाइयाण भते ! केवतिय काल ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्त।

[३५४-२ प्र] भगवन् ! अपर्याप्त पृथ्वीकायिक जीवो की कितने काल तक की स्थिति बताई गई है ?

[३५४-२ उ] गौतम ! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पज्जत्तयपुढविकाइयाणं भते ! केवतियं काल ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं अतोमुहुत्त, उक्कोसेण बावीसं वाससहस्साइ अतोमुहुत्तूणाइ।

[३५४-३ प्र] भगवन् ! पर्याप्त पृथ्वीकायिक जीवो की कितने काल तक की स्थिति कही गई है ?

[३५४-३ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम बाईस हजार वर्ष की है।

[३५२-३ प्र] भगवन् ! पर्याप्त सुपर्णकुमार देवियो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३५२-३ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम दस हजार वर्ष की है और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम देशोन पल्योपम की है ।

३५३ एवं एएण अभिलावेणं ओहिय-अपज्जत्त-पज्जत्तसुत्तत्तय देवाण य देवीण य णेयव्वं जाव थणियकुमाराण जहा णागकुमाराण (सु ३४९) ।

[३५३] इस प्रकार इस अभिलाप से (इसी कथन के अनुसार) औघिक, अपर्याप्तक और पर्याप्तक के तीन-तीन सूत्र (आगे के भवनवासी) देवो और देवियो के विषय मे, यावत् स्तनितकुमार तक नागकुमारो (के कथन) की तरह समझ लेना चाहिए ।

विवेचन—सामान्य देव-देवियो तथा भवनवासी देव-देवियो की स्थिति का निरूपण—प्रस्तुत ग्यारह सूत्रो (सू ३४३ से ३५३ तक) मे सामान्य देव-देवियो, औघिक भवनवासी देव-देवियो तथा असुरकुमार से स्तनितकुमार देव-देवियो (पर्याप्तक-अपर्याप्तकसहित) तक की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति का निरूपण किया गया है ।

एकेन्द्रिय जीवों की स्थिति-प्ररूपणा—

३५४ [१] पुढविकाइयाण भते ! केवतिय काल ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेण अतोमुहुत्त, उक्कोसेण बावीस वाससहस्साइ ।

[३५४-१ प्र] भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीवो की कितने काल तक की स्थिति बताई गई है ?

[३५४-१ उ] गौतम ! (उनकी स्थिति) जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट बाईस हजार वर्ष की है ।

[२] अपज्जत्तयपुढविकाइयाण भते ! केवतियं काल ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अतोमुहुत्त ।

[३५४-२ प्र] भगवन् ! अपर्याप्त पृथ्वीकायिक जीवो की कितने काल तक की स्थिति बताई गई है ?

[३५४-२ उ] गौतम ! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] पज्जत्तयपुढविकाइयाणं भते ! केवतियं काल ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं अतोमुहुत्त, उक्कोसेण बावीसं वाससहस्साइ अतोमुहुत्तूणाइ ।

[३५४-३ प्र] भगवन् ! पर्याप्त पृथ्वीकायिक जीवो की कितने काल तक की स्थिति कही गई है ?

[३५४-३ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम बाईस हजार वर्ष की है ।

३५५ [१] सुहुमपुढविकाइयाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोण वि अतोमुहुत्त ।

[३५५-१ प्र.] भगवन् ! सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीवो की कितने काल तक की स्थिति कही गई है ?

[३५५-१ उ] गौतम ! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[२] अपज्जत्तयसुहुमपुढविकाइयाण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्त ।

[३५५-२ प्र] भगवन् ! अपर्याप्तक सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३५५-२ उ] गौतम ! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] पज्जत्तयसुहुमपुढविकाइयाण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अतोमुहुत्त ।

[३५५-३ प्र] भगवन् ! पर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३५५-३ उ] गौतम ! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

३५६ [१] बादरपुढविकाइयाण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण अतोमुहुत्त, उक्कोसेण बावीस वाससहस्साइ ।

[६५६-१ प्र] भगवन् ! बादर पृथ्वीकायिक जीवो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३५६-१ उ] गौतम ! (उनकी स्थिति) जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट बाईस हजार वर्ष की है ।

[२] अपज्जत्तयबादरपुढविकाइयाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अतोमुहुत्त ।

[३५६-२ प्र] भगवन् ! बादर पृथ्वीकायिक अपर्याप्तक जीवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३५६-२ उ] गौतम ! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] पज्जत्तयबादरपुढविकाइयाण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण अतोमुहुत्त, उक्कोसेण बावीस वाससहस्साइ अतोमुहुत्तूणाइ ।

[३५६-३ प्र] भगवन् ! पर्याप्तक बादर पृथ्वीकायिक जीवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३५६-३ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम बाईस हजार वर्ष की है।

३५७ [१] आउकाइयाणं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?
गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं सत्त वाससहस्साइं ।

[३५७-१ प्र] भगवन् ! अप्कायिक जीवों की कितने काल तक की स्थिति कही गई है ?
[३५७-१ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट सात हजार वर्ष की है।

[२] अपज्जत्तयआउकाइयाणं पुच्छा ।
गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३५७-२ प्र] भगवन् ! अपर्याप्त अप्कायिक जीवों की कितने काल तक की स्थिति कही गई है ?

[३५७-२ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पज्जत्तयआउकाइयाणं पुच्छा ।
गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं सत्त वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[३५७-३ प्र] भगवन् ! पर्याप्तक अप्कायिक जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३५७-३ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है तथा उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम सात हजार वर्ष की है।

३५८ सुहुमआउकाइयाणं ओहियाणं अपज्जत्तयाणं पज्जत्तयाणं य जहा सुहुमपुढविकाइयाणं (सु ३५५) तहा भाणितव्वं ।

[३५८] सूक्ष्म अप्कायिकों के औघिक (सामान्य), अपर्याप्तकों और पर्याप्तकों की स्थिति जैसी सूक्ष्म पृथ्वीकायिकों की (सू ३५५ में) कही, वैसी कहनी चाहिए।

३५९ [१] बादरआउकाइयाणं पुच्छा ।
गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं सत्त वाससहस्साइं ।

[३५९-१ प्र] भगवन् ! बादर अप्कायिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?
[३५९-१ उ] गौतम ! (उनकी स्थिति) जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की तथा उत्कृष्ट सात हजार वर्ष की है।

[२] अपज्जत्तयबादरआउकाइयाणं पुच्छा ।
गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३५९-२ प्र] भगवन् ! अपर्याप्त बादर अप्कायिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३५९-२ उ] गौतम ! (उनकी स्थिति) जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पज्जत्तयाण पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्त, उक्कोसेण सत्त वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[३५९-३ प्र] भगवन् ! पर्याप्त बादर अप्कायिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३५९-३ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की तथा उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम सात हजार वर्ष की है।

३६० [१] तेउकाइयाण भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्त, उक्कोसेण तिण्णि राइंदियाइं।

[३६०-१ प्र] भगवन् ! तेजस्कायिक जीवों की कितने काल तक की स्थिति कही गई है ?

[३६०-१ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट तीन रात्रि-दिन (अहोरात्र) की है।

[२] अपज्जत्तयाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्त।

[३६०-२ प्र] भगवन् ! तेजस्कायिक अपर्याप्तकों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

[३६०-२ उ] गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पज्जत्तयाण पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्त, उक्कोसेण तिण्णि राइंदियाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[३६०-३ प्र] भगवन् ! पर्याप्त तेजस्कायिक जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३६०-३ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की तथा उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम तीन रात्रि-दिन की है।

३६१ सुहुमतेउकाइयाण ओहियाण अपज्जत्तयाण पज्जत्तयाण य जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्त।

[३६१] सूक्ष्म तेजस्कायिकों के औघिक (सामान्य), अपर्याप्त और पर्याप्तकों की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

३६२ [१] बादरतेउकाइयाण पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्त, उक्कोसेण तिण्णि राइंदियाइं।

[३६२-१ प्र] भगवन् ! बादर तेजस्कायिक जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३६२-१ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट तीन रात्रिदिन की है।

[२] अपज्जत्तयबादरतेउकाइयाण पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३६२-२ प्र] भगवन् अपर्याप्त बादर तेजस्कायिक जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३६२-२ उ] गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त्त की है और और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पज्जत्ताण पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण तिण्णि राइंदियाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[३६२-३ प्र] भगवन् ! पर्याप्त बादर तेजस्कायिक जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३६२-३ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम तीन रात्रि-दिन की है।

३६३ [१] वाउकाइयाण भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण तिण्णि वाससहस्साइं।

[३६३-१ प्र] भगवन् ! वायुकायिक जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३६३-१ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट तीन हजार वर्ष की है।

[२] अपज्जत्तयवाउकाइयाण पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३६३-२ प्र] भगवन् ! अपर्याप्तक वायुकायिक जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३६३-२ उ] गौतम ! (उनकी) जघन्य स्थिति भी अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पज्जत्तयाण पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण तिण्णि वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[३६३-३ प्र] भगवन् ! पर्याप्तक वायुकायिक जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३६६-३ उ] गौतम ! जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम तीन हजार वर्ष की है।

३६४ [१] सुहुमवाउकाइयाण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३६४-१ प्र] भगवन् ! सूक्ष्म वायुकायिक जीवो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३६४-१ उ] गौतम ! (उनकी) जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[२] अपज्जत्तयसुहुमवाउकाइयाण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३६४-२ प्र] भगवन् ! अपर्याप्त सूक्ष्म वायुकायिक जीवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३६४-२ उ] गौतम ! उनकी जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट (स्थिति) भी अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] पज्जत्तयाण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३६४-३ प्र] भगवन् ! पर्याप्तक सूक्ष्म वायुकायिक जीवो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३६४-३ उ] गौतम ! उनकी जघन्य एव उत्कृष्ट स्थिति भी अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

३६५ [१] बादरवाउकाइयाण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण तिण्णि वाससहस्साइं ।

[३६५-१ प्र] भगवन् ! बादर वायुकायिको की कितने काल तक की स्थिति कही गई है ?

[३६५-१ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट तीन हजार वर्ष की है ।

[२] अपज्जत्तबादरवाउकाइयाण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३६५-२ प्र] भगवन् ! अपर्याप्तक बादर वायुकायिक जीवो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३६५-२ उ] गौतम ! जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति एक अन्तर्मुहूर्त्त तक की होती है ।

[३] पज्जत्तयबादरवाउकाइयाण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण तिण्णि वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[३६५-३ प्र] भगवन् ! पर्याप्त बादर वायुकायिक जीवो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३६५-३ उ] गौतम ! उनकी जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त कम तीन हजार वर्ष की है।

३६६ [१] वणप्फइकाइयाण भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं दस वाससहस्साइं।

[३६६-१ प्र] भगवन् ! वनस्पतिकायिक जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३६६-१ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट दस हजार वर्ष की है।

[२] अपज्जत्तवणप्फतिकाइयाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३६६-२ प्र] भगवन् ! अपर्याप्त वनस्पतिकायिक जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३६६-२ उ] गौतम ! उनकी जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट स्थिति भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पज्जत्तयवणप्फइकाइयाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[३६६-३ प्र] भगवन् ! पर्याप्तक वनस्पतिकायिक जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३६६-३ उ] गौतम ! उनकी जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम दस हजार वर्ष की है।

३६७ सुहुमवणप्फइकाइयाणं ओहियाणं अपज्जत्ताणं पज्जत्ताण य जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३६७] सूक्ष्म वनस्पतिकायिकों के औघिक, अपर्याप्तकों और पर्याप्तकों की स्थिति जघन्यतः और उत्कृष्टतः अन्तर्मुहूर्त्त की है।

३६८. [१] बादरवणप्फइकाइयाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं दस वाससहस्साइं।

[३६८-१ प्र] भगवन् ! बादर वनस्पतिकायिक जीवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३६८-१ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट दस हजार वर्ष की है।

[२] अपज्जत्तबादरवणप्फइकाइयाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

३६४ [१] **सुहुमवाउकाइयाणं पुच्छा ।**

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३६४-१ प्र] भगवन् ! सूक्ष्म वायुकायिक जीवो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३६४-१ उ] गौतम ! (उनकी) जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[२] **अपज्जत्तयसुहुमवाउकाइयाण पुच्छा ।**

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३६४-२ प्र] भगवन् ! अपर्याप्त सूक्ष्म वायुकायिक जीवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३६४-२ उ] गौतम ! उनकी जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट (स्थिति) भी अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] **पज्जत्तयाण पुच्छा ।**

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३६४-३ प्र] भगवन् ! पर्याप्तक सूक्ष्म वायुकायिक जीवो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३६४-३ उ] गौतम ! उनकी जघन्य एव उत्कृष्ट स्थिति भी अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

३६५ [१] **बादरवाउकाइयाण पुच्छा ।**

गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण तिन्नि वाससहस्साइं ।

[३६५-१ प्र] भगवन् ! बादर वायुकायिको की कितने काल तक की स्थिति कही गई है ?

[३६५-१ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट तीन हजार वर्ष की है ।

[२] **अपज्जत्तबादरवाउकाइयाण पुच्छा ।**

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३६५-२ प्र] भगवन् ! अपर्याप्तक बादर वायुकायिक जीवो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३६५-२ उ] गौतम ! जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति एक अन्तर्मुहूर्त्त तक की होती है ।

[३] **पज्जत्तयबादरवाउकाइयाण पुच्छा ।**

गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[३६५-३ प्र] भगवन् ! पर्याप्त बादर वायुकायिक जीवो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३६५-३ उ] गौतम ! उनकी जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त कम तीन हजार वर्ष की है।

३६६ [१] वणप्फइकाइयाण भंते ! केवतिय काल ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेण अतोमुहुत्त, उक्कोसेण दस वाससहस्साइ ।

[३६६-१ प्र] भगवन् ! वनस्पतिकायिक जीवो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३६६-१ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट दस हजार वर्ष की है।

[२] अपज्जत्तवणप्फतिकाइयाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अतोमुहुत्त ।

[३६६-२ प्र] भगवन् ! अपर्याप्त वनस्पतिकायिक जीवो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३६६-२ उ] गौतम ! उनकी जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट स्थिति भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पज्जत्तयवणप्फइकाइयाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहन्नेण अतोमुहुत्त, उक्कोसेण दस वाससहस्साइ अतोमुहुत्तूणाइ ।

[३६६-३ प्र] भगवन् ! पर्याप्तक वनस्पतिकायिक जीवो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३६६-३ उ] गौतम ! उनकी जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम दस हजार वर्ष की है।

३६७ सुहुमवणप्फइकाइयाण ओहियाण अपज्जत्ताण पज्जत्ताण य जहण्णेण वि उक्कोसेणं वि अतोमुहुत्त ।

[३६७] सूक्ष्म वनस्पतिकायिको के औधिक, अपर्याप्तको और पर्याप्तको की स्थिति जघन्यतः और उत्कृष्टत अन्तर्मुहूर्त्त की है।

३६८ [१] बादरवणप्फइकाइयाण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण अतोमुहुत्त, उक्कोसेण दस वाससहस्साइ ।

[३६८-१ प्र] भगवन् ! बादर वनस्पतिकायिक जीवो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३६८-१ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त को और उत्कृष्ट दस हजार वर्ष की है।

[२] अपज्जत्तबादरवणप्फइकाइयाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अतोमुहुत्त ।

[३६८-२ प्र] भगवन् ! अपर्याप्त बादर वनस्पतिकायिक जीवो की स्थिति कितने काल तक की कही है ?

[३६८-२ उ] गौतम ! उनकी जघन्य स्थिति भी अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट स्थिति भी अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] पज्जत्तबादरवणप्फइकाइयाण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण अतोमुहुत्त, उक्कोसेण दस वाससहस्साइं अतोमुहुत्तूणाइ ।

[३६८-३ प्र] भगवन् ! पर्याप्त बादर वनस्पतिकायिक जीवो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३६८-३ उ] गौतम ! उनकी जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम दस हजार वर्ष की है ।

विवेचन—एकेन्द्रिय जीवो की स्थिति की प्ररूपणा—प्रस्तुत १५ सूत्रो (सू ३५४ से ३६८ तक) मे पृथ्वीकाय से लेकर वनस्पतिकाय तक औघिक, अपर्याप्तक, पर्याप्तक, सूक्ष्म, बादर आदि भेदो की स्थिति की पृथक्-पृथक् प्ररूपणा की गई है ।

इनमे तेजस्कायिक जीवो की तीन अहोरात्रि की उत्कृष्ट स्थिति बताई गई है, उसका रहस्य यह है कि तेजस्कायिक जीव अग्नि के रूप मे जलते और बुझते प्रत्यक्ष दिखाई देते है । इसी कारण अन्य एकेन्द्रिय जीवो की अपेक्षा आयुष्य अत्यन्त अल्प है ।

द्वीन्द्रिय जीवों की स्थिति-प्ररूपणा—

३६९. [१] बेइंदियाणं भंते ! केवतियं काल ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेण अतोमुहुत्तं, उक्कोसेण बारस सवच्छराइ ।

[३६९-१ प्र] भगवन् ! द्वीन्द्रिय जीवो की कितने काल की स्थिति कही गई है ?

[३६९-१ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट बारह वर्ष की है ।

[२] अपज्जत्तबेइंदियाण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अतोमुहुत्त ।

[३६९-२ प्र] भगवन् ! अपर्याप्त द्वीन्द्रिय जीवो की कितने काल तक की स्थिति कही गई है ?

[३६९-२ उ] गौतम ! (उनकी स्थिति) जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] पज्जत्तबेइंदियाण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण अतोमुहुत्त, उक्कोसेण बारस संवच्छराइ अतोमुहुत्तूणाइ ।

[३६९-३ प्र] भगवन् ! पर्याप्त द्वीन्द्रिय जीवो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३६९-३ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम बारह वर्ष की है ।

त्रीन्द्रिय जीवों की स्थिति-प्ररूपणा—

३७० [१] तेइंदियाण भंते ! केवतिय काल ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण एगूणवण्ण राइंदियाइं।

[३७०-१ प्र] भगवन् ! त्रीन्द्रिय जीवो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३७०-१ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट उनपचास रात्रिदिन की है।

[२] अपज्जत्ततेइंदियाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३७०-२ प्र] भगवन् ! अपर्याप्त त्रीन्द्रिय जीवो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३७०-२ उ] गौतम ! (उनकी) जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पज्जत्ततेइंदियाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं एगूणवण्णं राइंदियाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[३७०-२ प्र] भगवन् ! पर्याप्तक त्रीन्द्रिय जीवो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३७०-२ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम उनपचास रात्रि-दिन की है।

चतुरिन्द्रिय जीवो की स्थिति-प्ररूपणा—

३७१. [१] चउरिंदियाण भंते ! केवतियं काल ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण छम्मासा।

[३७१-१ प्र] भगवन् ! चतुरिन्द्रिय जीवो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३७१-१ उ] गौतम ! इनकी जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट स्थिति छह मास की है।

[२] अपज्जत्तयचउरिंदियाण पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३७१-२ प्र] भगवन् ! अपर्याप्त चतुरिन्द्रिय जीवो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३७१-२ उ] गौतम ! उनकी जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पज्जत्तयचउरिंदियाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण छम्मासा अंतोमुहुत्तूणा।

[३७१-३ प्र] भगवन् ! पर्याप्त चतुरिन्द्रिय जीवो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३७१-३ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम छह मास की है।

विवेचन—विकलेन्द्रियो की स्थिति का निरूपण—प्रस्तुत तीन सूत्रो (सू ३६९ से ३७१ तक) मे द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवो के औधिक, अपर्याप्तक और पर्याप्तको की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति का निरूपण किया गया है।

पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक जीवो की स्थिति-प्ररूपणा—

३७२ [१] पचेंदियतिरिक्खजोणियाण भते ! केवतिय काल ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्त, उक्कोसेण तिण्णि पलिओवमाइ।

[३७२-१ प्र] भगवन् ! पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३७२-१ उ] गौतम ! (उनकी स्थिति) जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट तीन पल्योपम की कही गई है।

[२] अपज्जत्तयपंचिदियतिरिक्खजोणियाण पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्त।

[३७२-२ प्र] भगवन् ! अपर्याप्त पचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक जीवो की स्थिति कितने काल तक की कही है ?

[३७२-२ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पज्जत्तगपचेंदियतिरिक्खजोणियाण पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्त, उक्कोसेण तिण्णि पलिओवमाइ अंतोमुहुत्तूणाइ।

[३७२-३ प्र] भगवन् ! पर्याप्त पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३७२-३ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम तीन पल्योपम की है।

३७३ [१] सम्मुच्छिमपचेंदियतिरिक्खजोणियाण पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्त, उक्कोसेण पुव्वकोडी।

[३७३-१ प्र] भगवन् ! सम्मूर्च्छिम पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३७३-१ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट पूर्वकोटि (करोड पूर्व) की है।

[२] अपज्जत्तयसम्मुच्छिमपचेंदियतिरिक्खजोणियाण पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्त।

[३७३-२ प्र.] भगवन् ! अपर्याप्त सम्मूर्च्छिम पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३७३-२ उ] गौतम ! (उनकी स्थिति) जघन्य और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पज्जत्तयसम्मुच्छिमपचेंदियतिरिक्खजोणियाण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्त, उक्कोसेण पुव्वकोडी अंतोमुहुत्तूणा ।

[३७३-३ प्र] भगवन् ! पर्याप्त सम्मूच्छिम पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३७३-३ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम पूर्वकोटि की है ।

३७४ [१] गब्भवक्कतियपचेंदियतिरिक्खजोणियाण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्त, उक्कोसेण तिण्णि पलिओवमाइ ।

[३७४-१ प्र] भगवन् ! गर्भज पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३७४-१ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की तथा उत्कृष्ट तीन पल्योपम की कही गई है ।

[२] अपज्जत्तयगब्भवक्कतियपचेंदियतिरिक्खजोणियाण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्त ।

[३७४-२ प्र] भगवन् ! अपर्याप्त गर्भज पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३७४-२ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है ।

[३] पज्जत्तयगब्भवक्कतियपचेंदियतिरिक्खजोणियाण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्त, उक्कोसेण तिण्णि पलिओवमाइ अंतोमुहुत्तूणाइ ।

[३७४-३ प्र] भगवन् ! गर्भज पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवो की स्थिति कितने काल की है ?

[३७४-३ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की तथा उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम तीन पल्योपम की कही गई है ।

३७५ [१] जलयरपचेंदियतिरिक्खजोणियाण भंते ! केवतिय काल ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेण अतोमुहुत्त, उक्कोसेण पुव्वकोडी ।

[३७५-१ प्र] भगवन् ! जलचर पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवो की कितने काल की स्थिति कही गई है ?

[३७५-१ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट पूर्वकोटि की है ।

[२] अपज्जत्तयजलयरपचेंदियतिरिक्खजोणियाण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अतोमुहुत्त ।

[३७५-२ प्र] भगवन् ! अपर्याप्त जलचर पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवो की कितनी स्थिति कही गई है ?

[३७५-२ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पज्जत्तयजलयरपचेंदियतिरिक्खजोणियाण पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण पुव्वकोडी अंतोमुहुत्तूणा।

[३७५-३ प्र] भगवन् ! पर्याप्त जलचर पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३७५-३ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम पूर्वकोटि की है।

३७६ [१] सम्मुच्छिमजलयरपचेंदियतिरिक्खजोणियाण पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडी।

[३७६-१ प्र] भगवन् ! सम्मूर्च्छिम जलचर पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३७६-१ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट पूर्वकोटि की है।

[२] अपज्जत्तयसम्मुच्छिमजलयरपचेंदियतिरिक्खजोणियाण पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३७६-२ प्र] भगवन् ! अपर्याप्त सम्मूर्च्छिम जलचर पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३७६-२ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पज्जत्तयसम्मुच्छिमजलयरपचेंदियतिरिक्खजोणियाण पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडी अंतोमुहुत्तूणा।

[३७६-३ प्र] भगवन् ! पर्याप्त सम्मूर्च्छिम जलचर पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३७६-३ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम पूर्वकोटि की है।

३७७ [१] गब्भवक्कंतियजलयरपचेंदियतिरिक्खजोणियाण पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडी।

[३७७-१ प्र] भगवन् ! गर्भज जलचर पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३७७-१ उ] गौतम ! उनकी जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट पूर्वकोटि (करोड पूर्व) की है।

[२] अपज्जत्तयगब्भवक्कतियजलयरपचेंदियतिरिक्खजोणियाण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्त ।

[३७७-२ प्र] भगवन् ! अपर्याप्त गर्भज जलचर पचेन्द्रिय तिर्यग्योनिक जीवो की स्थिति कितने काल की कही है ?

[३७७-२ उ] गौतम ! उनकी जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] पज्जत्तयगब्भवक्कतियजलयरपचेंदियतिरिक्खजोणियाण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्त, उक्कोसेण पुव्वकोडी अंतोमुहुत्तूणा ।

[३७७-३ प्र] भगवन् ! पर्याप्त गर्भज जलचर पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवो की कितने काल की स्थिति कही गई है ?

[३७७-३ उ] गौतम ! उनकी स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की एव उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम पूर्वकोटि की है ।

३७८. [१] चउप्पयथलयरपचेंदियतिरिक्खजोणियाण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण तिण्णि पलिओवमाइ ।

[३७८-१ प्र] भगवन् ! चतुष्पद स्थलचर पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३७८-१ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट तीन पल्योपम की है ।

[२] अपज्जत्तयचउप्पयथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्त ।

[३७८-२ प्र] भगवन् ! अपर्याप्त चतुष्पद स्थलचर पचेन्द्रिय तिर्यग्योनिक जीवो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३७८-२ उ] गौतम ! जघन्य और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] पज्जत्तयचउप्पयथलयरपचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्त, उक्कोसेण तिण्णि पलिओवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[३७८-३ प्र] भगवन् ! पर्याप्त चतुष्पद स्थलचर पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३७८-३ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की तथा उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम तीन पल्योपम की है ।

३७९. [१] सम्मुच्छिमचउप्पयथलयरपचेंदियतिरिक्खजोणियाण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्त, उक्कोसेणं चउरासीइ वाससहस्साइं ।

[३७९-१ प्र] भगवन् ! सम्मूर्च्छिम चतुष्पद स्थलचर पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३७९-१ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की एव उत्कृष्ट चौरासी हजार वर्ष की है।

[२] अपज्जत्तयसम्मुच्छिमचउप्पयथलयरपचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अ तोमुहुत्त।

[३७९-२ प्र] भगवन् ! अपर्याप्त सम्मूर्च्छिम चतुष्पद स्थलचर पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३७९-२ उ] गौतम ! जघन्य स्थिति भी और उत्कृष्ट स्थिति भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पज्जत्तगसम्मुच्छिमचउप्पयथलयरपचेंदियतिरिक्खजोणियाण पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण अ तोमुहुत्त, उक्कोसेण चउरासीइ वाससहस्साइ अ तोमुहुत्तूणाइं।

[३७९-३ प्र] भगवन् ! पर्याप्तक सम्मूर्च्छिम चतुष्पद स्थलचर पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवो की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त कम चौरासी हजार वर्ष की है।

३८० [१] गब्भवक्कतियचउप्पयथलयरपचेंदियतिरिक्खजोणियाण पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण अ तोमुहुत्त, उक्कोसेण तिण्णि पलिओवमाइ।

[३८०-१ प्र] भगवन् ! गर्भज चतुष्पद स्थलचर पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३८०-१ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट तीन पल्योपम की है।

[२] अपज्जत्तयगब्भवक्कतियचउप्पयथलयरपचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्त।

[३८०-२ प्र] भगवन् ! अपर्याप्त गर्भज चतुष्पद स्थलचर पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३८०-२ उ] गौतम ! जघन्य स्थिति भी अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट स्थिति भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पज्जत्तगगब्भवक्कतियचउप्पयथलयरपचेंदियतिरि ोणियाण पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्त, उक्कोसेण तिण्णि पलिओवमाइं अ तोमुहुत्तूणाइ।

[३८०-३ प्र] भगवन् ! पर्याप्तक गर्भज चतुष्पद स्थलचर पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३८०-३ उ] गौतम ! उनकी स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम तीन पल्योपम की है।

३८१ [१] उरपरिसप्पथलयरपचेंदियतिरिक्खजोणियाण भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण पुव्वकोडी ।

[३८१-१ प्र] भगवन् ! उर परिसर्प स्थलचर पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३८१-१ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट पूर्वकोटि की है ।

[२] अपज्जत्तयउरपरिसप्पथलयरपचेंदियतिरिक्खजोणियाण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३८१-२ प्र] भगवन् ! अपर्याप्तक उर परिसर्प स्थलचर पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३८१-२ उ] गौतम ! उनकी जघन्य स्थिति भी अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट स्थिति भी अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] पज्जत्तगउरपरिसप्पथलयरपचेंदियतिरिक्खजोणियाण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण पुव्वकोडी अंतोमुहुत्तूणा ।

[४८१-३ प्र] भगवन् ! पर्याप्तक उर परिसर्प स्थलचर पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३८१-३ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की, और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम पूर्वकोटि की है ।

३८२ [१] सम्मुच्छिमसामण्णपुच्छा कायव्वा ।

गोयमा ! जहन्नेण अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण तेवण्णं वाससहस्साइं ।

[३८२-१ प्र] भगवन् ! सामान्य सम्मूर्च्छिम उर-परिसर्प स्थलचर पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिको की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३८२-१ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट तिरेपन हजार वर्ष की है ।

[२] सम्मुच्छिमअपज्जत्तगउरपरिसप्पथलयरपचेंदियतिरिक्खजोणियाण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३८२-२ प्र] भगवन् ! सम्मूर्च्छिम अपर्याप्तक उर परिसर्प स्थलचर पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३८२-२ उ] गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] पज्जत्तगसम्मुच्छिमउरपरिसप्पथलयरपचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण तेवण्णं वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[३८२-३ प्र] भगवन् ! पर्याप्तक सम्मूर्च्छिम उर परिसर्प स्थलचर पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिको की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३८२-३ उ] गौतम ! उनकी स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम तिरेपन हजार वर्ष की है।

३८३. [१] गब्भवक्कतियउरपरिसप्पथलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणियाण पुच्छा ।
गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण पुव्वकोडी ।

[३८३-१ प्र] भगवन् ! गर्भज उर परिसर्प स्थलचर पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३८३-१ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट पूर्वकोटि (करोडपूर्व) की है।

[२] अपज्जत्तगगब्भवक्कतियउरपरिसप्पथलयरपचेंदियतिरिक्खजोणियाण पुच्छा ।
गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३८३-२ प्र] भगवन् ! अपर्याप्त गर्भज उर परिसर्प स्थलचर पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३८३-२ उ] गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पज्जत्तगगब्भवक्कतियउरपरिसप्पथलयरपचेंदियतिरिक्खजोणियाण पुच्छा ।
गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण पुव्वकोडी अंतोमुहुत्तूणा ।

[३८३-३ प्र] भगवन् ! पर्याप्त गर्भज उर परिसर्प स्थलचर पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवो की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम पूर्वकोटि की है।

३८४ [१] भुयपरिसप्पथलयरपचेंदियतिरिक्खजोणियाण भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण पुव्वकोडी ।

[३८४-१ प्र] भगवन् ! भुजपरिसर्प स्थलचर पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३८४-१ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट पूर्वकोटी की है।

[२] अपज्जत्तयभुयपरिसप्पथलयरपचेंदियतिरिक्खजोणियाण पुच्छा ।
गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३८४-२ प्र] भगवन् ! अपर्याप्त भुजपरिसर्प स्थलचर पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३८४-२ उ] गौतम ! (उनकी) जघन्य स्थिति भी अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पज्जत्तयभुयपरिसप्पथलयरपचेंदियतिरिक्खजोणियाण पुच्छा ।
गोयमा ! जहण्णेण अ तोमुहुत्त, उक्कोसेण पुव्वकोडी अ तोमुहुत्तूणा ।

[३८४-३ प्र] भगवन् ! पर्याप्त भुजपरिसर्प स्थलचर पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३८४-३ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम पूर्वकोटि की है।

३८५ [१] सम्मुच्छिमभुयपरिसप्पथलयरपचेंदियतिरिक्खजोणियाण पुच्छा ।
गोयमा ! जहण्णेण अ तोमुहुत्त, उक्कोसेण बायालीस वाससहस्साइ ।

[३८५-१ प्र] भगवन् ! सम्मूर्च्छिम भुजपरिसर्प स्थलचर पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३८५-१ उ] गौतम ! (उनकी) जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की है तथा उत्कृष्ट स्थिति बयालीस हजार वर्ष की है ।

[२] अपज्जत्तयसम्मुच्छिमभुयपरिसप्पथलयरपचेंदियतिरिक्खजोणियाण पुच्छा ।
गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अ तोमुहुत्त ।

[३८५-२ प्र] भगवन् ! अपर्याप्तक सम्मूर्च्छिम भुजपरिसर्प स्थलचर पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३८५-२ उ] गौतम ! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] पज्जत्तयसम्मुच्छिमभुयपरिसप्पथलयरपचेंदियतिरिक्खजोणियाण पुच्छा ।
गोयमा ! जहण्णेण अ तोमुहुत्त, उक्कोसेण बायालीसं वाससहस्साइ अ तोमुहुत्तूणाइं ।

[३८५-३ प्र] भगवन् ! पर्याप्तक सम्मूर्च्छिम भुजपरिसर्प स्थलचर पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३८५-३ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है तथा उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम बयालीस हजार वर्ष की है ।

३८६ [१] गब्भवक्कंतियभुयपरिसप्पथलयरपचेंदियतिरिक्खजोणियाण पुच्छा ।
गोयमा ! जहण्णेण अ तोमुहुत्तं, उक्कोसेण पुव्वकोडी ।

[३८६-१ प्र] भगवन् ! गर्भज भुजपरिसर्प स्थलचर पचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक जीवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३८६-१ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त है और उत्कृष्ट पूर्वकोटि की है ।

[२] अपज्जयगब्भवक्कतियभुयपरिसप्पथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणियाण पुच्छा ।
गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अ तोमुहुत्तं ।

[३८६-२ प्र] भगवन् ! अपर्याप्तक गर्भज भुजपरिसर्प स्थलचर पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३८६-२ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पज्जत्तयगब्भवक्कतियभुयपरिसप्पथलयरपचेंदियतिरिक्खजोणियाण पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण अ तोमुहुत्त, उक्कोसेण पुव्वकोडी अ तोमुहुत्तूणा।

[३८६-३ प्र] भगवन् ! पर्याप्त गर्भज भुजपरिसर्प स्थलचर पचेन्द्रिय तिर्यग्योनिक जीवो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३८६-३ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम पूर्वकोटि की है।

३८७ [१] खहयरपचेंदियतिरिक्खजोणियाण भते ! केवतिय काल ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेण अ तोमुहुत्त, उक्कोसेण पलिओवमस्स असखेज्जइभागो।

[३८७-१ प्र] भगवन् ! खेचर पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवो की स्थिति कितने काल तक की कही है ?

[३८७-१ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है, उत्कृष्ट पल्योपम के असख्येयभाग की है।

[२] अपज्जत्तयखहयरपचेंदियतिरिक्खजोणियाण पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अ तोमुहुत्त।

[३८७-२ प्र] भगवन् ! अपर्याप्त खेचर पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवो की स्थिति कितने काल की कही है ?

[३८७-२ उ] गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पज्जत्तयखहयरपचेंदियतिरिक्खजोणियाण पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण अ तोमुहुत्त, उक्कोसेण पलिओवमस्स असखेज्जइभागो अ तोमुहुत्तूणो।

[३८७-३ प्र] भगवन् ! पर्याप्त खेचर पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३८७-३ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम पल्योपम के असख्यातवे भाग की है।

३८८ [१] सम्मुच्छिमखहयरपचेंदियतिरिक्खजोणियाण पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण अ तोमुहुत्त, उक्कोसेण बावत्तरि वाससहस्साइ।

[३८८-१ प्र] भगवन् ! सम्मूर्च्छिम खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३८८-१ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट बहत्तर हजार वर्ष की है।

[२] अपज्जत्तयसम्मुच्छिमखहयरपचेंदियतिरिक्खजोणियाण पुच्छा ।
गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अ तोमुहुत्त ।

[३८८-२ प्र] भगवन् ! अपर्याप्त सम्मूर्च्छिम खेचर पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३८८-२ उ] गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त्त की है, और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] पज्जत्तयसम्मुच्छिमखहयरपचेंदियतिरिक्खजोणियाण पुच्छा ।
गोयमा ! जहण्णेण अ तोमुहुत्त, उक्कोसेण बावत्तरिं वाससहस्साइ अ तोमुहुत्तूणाइ ।

[३८८-३ प्र] भगवन् ! पर्याप्त सम्मूर्च्छिम खेचर पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक जीवो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३८८-३ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम बहत्तर हजार वर्ष की है ।

३८९ [१] गब्भवक्कतियखहयरपचेंदियतिरिक्खजोणियाण पुच्छा ।
गोयमा ! जहण्णेण अ तोमुहुत्त, उक्कोसेण पलिओवमस्स असखेज्जतिभागो ।

[३८९-१ प्र] भगवन् ! गर्भज-खेचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिक जीवो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[५८९-१ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट पल्योपम के असख्यातवे भाग की है ।

[२] अपज्जत्तयगब्भवक्कतियखहयरपचेंदियतिरिक्खजोणियाण पुच्छा ।
गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अ तोमुहुत्त ।

[३८९-२ प्र] भगवन् ! अपर्याप्त गर्भज खेचर पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३८९-२ उ] गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] पज्जत्तयगब्भवक्कंतियखहयरपचेंदियतिरिक्खजोणियाण पुच्छा ।
गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण पलिओवमस्स असखेज्जइभागो अ तोमुहुत्तूणो ।

[३८९-३ प्र] भगवन् ! पर्याप्त गर्भज खेचर पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३८९-३ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम पल्योपम के असख्यातवे भाग की है ।

विवेचन—तिर्यंच पचेन्द्रिय जीवो की स्थिति का निरूपण—प्रस्तुत १८ सूत्रो (सू ३७२ से ३८९) मे तिर्यञ्च पचेन्द्रिय जीवो के विभिन्न प्रकारो की स्थिति का निरूपण किया गया है ।

मनुष्यों की स्थिति की प्ररूपणा —

३९० [१] मणुस्साणं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं ।

[३९०-१ प्र] भगवन् ! मनुष्यों की कितने काल तक की स्थिति कही गई है ?

[३९०-१ उ] गौतम ! (मनुष्यों की स्थिति) जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट तीन पल्योपम की है।

[२] अपज्जत्तगमणुस्साणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३९०-२ प्र] भगवन् ! अपर्याप्तक मनुष्यों की स्थिति कितने काल की है ?

[३९०-२ उ] गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] पज्जत्तयमणुस्साणं पुच्छा ।

गोयमा जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[३९०-३ प्र] भगवन् ! पर्याप्तक मनुष्यों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३९०-३ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम तीन पल्योपम की है।

३९१ सम्मुच्छिममणुस्साणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३९१ प्र] भगवन् ! सम्मूर्च्छिम मनुष्यों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३९१ उ] गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

३९२. [१] गब्भवक्कंतियमणुस्साणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं ।

[३९२-१ प्र] भगवन् ! गर्भज मनुष्यों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३९२-१ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट तीन पल्योपम की है ।

[२] अपज्जत्तयगब्भवक्कंतियमणुस्साणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहन्नेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३९२-२ प्र] भगवन् ! अपर्याप्तक गर्भज मनुष्यों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३९२-२ उ] गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] पज्जत्तयगब्भवक्कंतियमणुस्साणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[३९२-३ प्र] भगवन् ! पर्याप्तक गर्भज मनुष्यों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३९२-३ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम तीन पल्योपम की है।

विवेचन—मनुष्यों की स्थिति का निरूपण—प्रस्तुत तीन सूत्रों (सू ३९० से ३९२ तक) में सामान्य, अपर्याप्तक, पर्याप्तक, सम्मूर्च्छिम तथा गर्भज (औघिक, अपर्याप्तक और पर्याप्तक) मनुष्यों की स्थिति का निरूपण किया गया है।

वाणव्यंतर देवों की स्थिति-प्ररूपणा—

३९३. [१] वाणमंतराणं भंते ! देवाणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहन्नेणं दस वाससहस्साइं, उक्कोसेणं पलिओवमं।

[३९३-१ प्र] भगवन् ! वाणव्यन्तर देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३९३-१ उ] गौतम ! (वाणव्यन्तर देवों की स्थिति) जघन्य दस हजार वर्ष की है, उत्कृष्ट एक पल्योपम की है।

[२] अपज्जत्तयवाणमंतराणं देवाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३९३-२ प्र] भगवन् ! अपर्याप्त वाणव्यन्तर देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३९३-२ उ] गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पज्जत्तयाणं वाणमंतराणं देवाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं पलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं।

[३९३-३ प्र] भगवन् ! पर्याप्तक वाणव्यन्तर देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३९३-३ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम दस हजार वर्ष की है और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम एक पल्योपम की है।

३९४ [१] वाणमंतरीणं भंते ! देवीणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं, उक्कोसेणं अद्धपलिओवमं।

[३९४-१ प्र] भगवन् ! वाणव्यन्तर देवियों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३९४-१ उ] गौतम ! जघन्य दस हजार वर्ष की है और उत्कृष्ट अर्द्ध पल्योपम की है।

[२] अपज्जत्तियाणं भंते ! वाणमंतरीणं देवीणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[३९४-२ प्र] भगवन् ! अपर्याप्त वाणव्यन्तर देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३९४-२ उ] गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पज्जत्तियाण भंते ! वाणमंतरीणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं अद्धपलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं ।

[३९४-३ प्र] भगवन् ! पर्याप्तक वाणव्यन्तर देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३९४-३ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम दस हजार वर्ष की है और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम अर्द्ध पल्योपम की है ।

विवेचन—वाणव्यन्तर देव-देवियों की स्थिति का निरूपण—प्रस्तुत दो सूत्रों (सू. ३९३-३९४) में वाणव्यन्तर देवों तथा देवियों (औघिक, अपर्याप्तक और पर्याप्तक) की स्थिति का निरूपण किया गया है ।

ज्योतिष्क देवों की स्थिति-प्ररूपणा—

३९५. [१] जोइसियाणं भंते ! देवाणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं पलिओवमट्ठभागो, उक्कोसेणं पलिओवमं वाससतसहस्समब्भहियं ।

[३९५-१ प्र] भगवन् ! ज्योतिष्क देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३९५-१ उ] गौतम ! (उनकी) जघन्य स्थिति पल्योपम का आठवाँ भाग है और उत्कृष्ट स्थिति एक लाख वर्ष अधिक पल्योपम की है ।

[२] अपज्जत्तयजोइसियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[३९५-२ प्र] भगवन् ! अपर्याप्त ज्योतिष्क देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३९५-२ उ] गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] पज्जत्तयजोइसियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं पलिओवमट्ठभागो अंतोमुहुत्तूणो, उक्कोसेणं पलिओवमं वाससतसहस्समब्भहियं अंतोमुहुत्तूणं ।

[३९५-३ प्र] भगवन् ! पर्याप्त ज्योतिष्क देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ।

[३९५-३ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम पल्योपम के आठवें भाग की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम एक लाख वर्ष अधिक एक पल्योपम की है ।

३९६. [१] जोइसिणीणं भंते ! देवीणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं पलिओवमट्ठभागो, उक्कोसेणं अद्धपलिओवमं पण्णासवाससहस्समब्भहियं ।

[३९६-१ प्र] भगवन्! ज्योतिष्क देवियो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[३९६-१ उ] गौतम ! (उनकी स्थिति) जघन्य पल्योपम के आठवे भाग की और उत्कृष्ट पचास हजार वर्ष अधिक अर्द्धपल्योपम की है ।

[२] अपज्जत्तियाण जोइसियाण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अतोमुहुत्त ।

[३९६-२ प्र] भगवन् ! अपर्याप्त ज्योतिष्क देवियो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३९६-२ उ] गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] पज्जत्तियाण जोइसियाण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण पलिग्रोवमट्ठभागो अतोमुहुत्तूणो, उक्कोसेण अद्धपलिग्रोवम पण्णासाए वाससहस्सेहि अब्महियं अंतोमुहुत्तूणं ।

[३९६-३ प्र] भगवन् ! पर्याप्त ज्योतिष्क देवियो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३९६-३ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम पल्योपम के आठवे भाग की है और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम पचास हजार वर्ष अधिक अर्द्धपल्योपम की है ।

३९७ [१] चदविमाणे ण भते ! देवाण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं चउभागपलिग्रोवमं, उक्कोसेण पलिग्रोवम वाससतसहस्समब्महिय ।

[३९७-१ प्र] भगवन् ! चन्द्रविमान मे देवो की स्थिति कितने काल की है ?

[३९७-१ उ] गौतम ! जघन्य पल्योपम का चौथाई भाग है, उत्कृष्ट एक लाख वर्ष अधिक एक पल्योपम की है ।

[२] चदविमाणे णं भते ! अपज्जत्तयदेवाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अतोमुहुत्त ।

[३९७-२ प्र] भगवन् ! चन्द्रविमान मे अपर्याप्त देवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३९७-२ उ] गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] चदविमाणे ण पज्जत्तयाण देवाण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण चउभागपलिग्रोवम अतोमुहुत्तूण, उक्कोसेण पलिग्रोवम वाससतसहस्स-मब्महिय अतोमुहुत्तूण ।

[३९७-३ प्र] भगवन् ! चन्द्रविमान मे पर्याप्त देवो की स्थिति कितनी कही गई है ?

[३९७-३ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम पल्योपम का चतुर्थ भाग और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम एक लाख वर्ष अधिक एक पल्योपम की है ।[1]

३९८ [१] चदविमाणे ण भते ! देवीण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण चउभागपलिओवम, उक्कोसेण अद्धपलिओवम पण्णासाए वाससहस्सेहिमब्भहिय ।

[३९८-१ प्र] भगवन् ! चन्द्रविमान मे देवियो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३९८-१ उ] गौतम ! जघन्य पल्योपम का चतुर्थ भाग है और उत्कृष्ट पचास हजार वर्ष अधिक अर्द्धपल्योपम की है ।

[२] चदविमाणे ण भते ! अपज्जत्तियाण देवीण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अतोमुहुत्त ।

[३९८-२ प्र.] भगवन् ! चन्द्रविमान मे अपर्याप्त देवियो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३९८-२ उ] गौतम ! (उनकी) जघन्य स्थिति भी अन्तर्मुहूर्त्त की है, उत्कृष्ट स्थिति भी अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] चदविमाणे ण पज्जत्तियाण देवीण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण चउभागपलिओवम अंतोमुहुत्तूण, उक्कोसेण अद्धपलिओवम पण्णासाए वाससहस्सेहि अब्भहिय अतोमुहुत्तूण ।

[३९८-३ प्र] भगवन् ! चन्द्रविमान मे पर्याप्त देवियो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३९८-३ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम पल्योपम के चतुर्थ भाग की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम पचास हजार वर्ष अधिक अर्द्धपल्योपम की है ।

३९९. [१] सूरविमाणे ण भते ! देवाण केवतिय काल ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेण चउभागपलिओवम, उक्कोसेण पलिओवम वाससहस्समब्भहिय ।

[३९९-१ प्र] भगवन् ! सूर्यविमान मे देवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

---

१ चन्द्रविमान मे चन्द्रमा उत्पन्न होता है, इसलिए वह चन्द्रविमान कहलाता है । चन्द्रविमान मे चन्द्र के अतिरिक्त सभी उसके परिवारभूत देव होते है । उन परिवारभूत देवो की जघन्य स्थिति पल्योपम का चतुर्थभाग और उत्कृष्ट किन्ही इन्द्र, सामानिक आदि की लाख वर्ष अधिक एक पल्योपम की है । चन्द्रदेव की उत्कृष्ट स्थिति तो मूलपाठ मे उक्त है ही । इसी प्रकार सूर्यादि के विमानो के विषय मे समझ लेना चाहिए ।

—प्रज्ञापना म वृत्ति, पत्राक १७५

[३९९-१ उ] गौतम ! जघन्य पल्योपम के चौथाई भाग की और उत्कृष्ट एक हजार वर्ष अधिक एक पल्योपम की है।

[२] सूरविमाणे अपज्जत्तदेवाण पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्त।

[३९९-२ प्र] भगवन् ! सूर्यविमान मे अपर्याप्त देवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३९९-२ उ] गौतम ! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] सूरविमाणे पज्जत्तदेवाण पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण चउभागपलिओवम अंतोमुहुत्तूण, उक्कोसेण पलिओवम वाससहस्स-मब्भहिय अंतोमुहुत्तूणं।

[३९९-३ प्र] भगवन् ! सूर्यविमान मे पर्याप्त देवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[३९९-३ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम पल्योपम के चतुर्थभाग की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम एक हजार वर्ष अधिक एक पल्योपम की है।

४०० [१] सूरविमाणे देवीण पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण चउभागपलिओवम, उक्कोसेण अद्धपलिओवम पचहिं वाससतेहिं-मब्भहिय।

[४००-१ प्र.] भगवन् ! सूर्यविमान मे देवियो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४००-१ उ] गौतम ! (उनकी स्थिति) पल्योपम के चतुर्थभाग की है और उत्कृष्ट पाच सौ वर्ष अधिक अर्द्धपल्योपम की है।

[२] सूरविमाणे अपज्जत्तियाण देवीण पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्त।

[४००-२ प्र] भगवन् ! सूर्यविमान मे अपर्याप्त देवियो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४००-२ उ] गौतम ! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] सूरविमाणे पज्जत्तियाण देवीण पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण चउभागपलिओवम अंतोमुहुत्तूण, उक्कोसेणं अद्धपलिओवमं पचहिं वाससतेहिं अब्भहिय अंतोमुहुत्तूणं।

[४००-३ प्र] भगवन् ! सूर्यविमान मे पर्याप्तक देवियो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४००-३ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम पल्योपम के चौथाई भाग की है और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम पाच सौ वर्ष अधिक अर्द्ध पल्योपम की है ।

४०१ [१] गहविमाणे देवाण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण चउभागपलिओवम, उक्कोसेण पलिओवम ।

[४०१-१ प्र] भगवन् ! ग्रहविमान मे देवो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४०१-१ उ] गौतम ! जघन्य पल्योपम के चौथाई भाग की है और उत्कृष्ट एक पल्योपम की है ।

[२] गहविमाणे अपज्जत्तदेवाण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अतोमुहुत्त ।

[४०१-२ प्र] भगवन् ! ग्रहविमान मे अपर्याप्तक देवो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४०१-२ उ] गौतम ! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] गहविमाणे पज्जत्तदेवाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण चउभागपलिओवम अतोमुहुत्तूण, उक्कोसेण पलिओवम अतोमुहुत्तूण ।

[४०१-३ प्र] भगवन् ! ग्रहविमान मे पर्याप्तक देवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४०१-३ उ.] गौतम ! (उनकी) जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त कम पल्योपम के चतुर्थ भाग की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम एक पल्योपम की है ।

४०२ [१] गहविमाणे देवीण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण चउभागपलिओवम, उक्कोसेण अद्धपलिओवम ।

[४०२-१ प्र] भगवन् ! ग्रहविमान मे देवियो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४०२-१ उ] गौतम ! जघन्य पल्योपम के चतुर्थभाग की और उत्कृष्ट अर्द्धपल्योपम की है ।

[२] गहविमाणे अपज्जत्तियाण देवीण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अतोमुहुत्तं ।

[४०२-२ प्र] भगवन् ! ग्रहविमान मे कितने काल की स्थिति अपर्याप्त देवियो की कही है ?

[४०२-२ उ] गौतम ! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] पज्जत्तियाण गहविमाणे देवीण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं चउभागपलिओवम अतोमुहुत्तूण, उक्कोसेण अद्धपलिओवम अतोमुहुत्तूण ।

[४०२-३ प्र] भगवन् ! ग्रहविमान मे पर्याप्तक देवियो की कितने काल तक की स्थिति कही है ?

[४०२-३ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम पल्योपम के चतुर्थ भाग की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम अर्द्धपल्योपम की है।

४०३ [१] णक्खत्तविमाणे देवाण पुच्छा।
गोयमा ! जहण्ण चउभागपलिओवम उक्कोसेण अद्धपलिओवम।

[४०३-१ प्र] भगवन् ! नक्षत्रविमान मे देवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?
[४०३-१ उ] गौतम ! जघन्य पल्योपम के चतुर्थभाग की और उत्कृष्ट अर्द्धपल्योपम की है।

[२] णक्खत्तविमाणे अपज्जत्तदेवाण पुच्छा।
गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अतोमुहुत्तं।

[४०३-२ प्र] भगवन् ! नक्षत्रविमान मे अपर्याप्त देवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४०३-२ उ] गौतम ! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] णक्खत्तविमाणे पज्जत्तदेवाण पुच्छा।
गोयमा ! जहण्णेण चउभागपलिओवम अंतोमुहुत्तूण, उक्कोसेण अद्धपलिओवम अतोमुहुत्तूण।

[४०३-३ प्र] भगवन् ! नक्षत्रविमान मे पर्याप्त देवो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४०३-३ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम चौथाई पल्योपम की है और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम अर्द्ध-पल्योपम की है।

४०४ [१] नक्खत्तविमाणे देवीण पुच्छा।
गोयमा ! जहण्णेण चउभागपलिओवम, उक्कोसेण सातिरेग चउभागपलिओवम।

[४०४-१ प्र] भगवन् ! नक्षत्रविमान मे देवियो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४०४-१ उ] गौतम ! जघन्य पल्योपम का चतुर्थभाग है और उत्कृष्ट कुछ अधिक चौथाई पल्योपम की है।

[२] णक्खत्तविमाणे अपज्जत्तियाण देवीण पुच्छा।
गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अतोमुहुत्तं।

[४०४-२ प्र] भगवन् ! नक्षत्रविमान मे अपर्याप्तक देवियो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४०४-२ उ] गौतम ! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] नक्खत्तविमाणे पज्जत्तियाणं देवीणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण चउभागपलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं, उक्कोसेण सातिरेगं चउभागपलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं।

[४०४-३ प्र] भगवन् ! नक्षत्रविमान मे पर्याप्त देवियो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४०४-३ उ] गौतम ! जघन्यत अन्तर्मुहूर्त्त कम चौथाई पल्योपम की है और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम पल्योपम के चौथाई भाग से कुछ अधिक की है।

४०५ [१] ताराविमाणे देवाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण अट्ठभागपलिओवमं, उक्कोसेण चउभागपलिओवमं।

[४०५-१ प्र] भगवन् ! ताराविमान मे देवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४०५-१ उ] गौतम ! जघन्य पल्योपम के आठवे भाग की और उत्कृष्ट चौथाई पल्योपम की है।

[२] ताराविमाणे अपज्जत्तदेवाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[४०५-२ प्र] भगवन् ! ताराविमान मे अपर्याप्त देवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४०५-२ उ] गौतम ! (उनकी स्थिति) जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] ताराविमाणे पज्जत्तदेवाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण अट्ठभागपलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं, उक्कोसेण चउभागपलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं।

[४०५-३ प्र] भगवन् ! ताराविमान मे पर्याप्त देवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४०५-३ उ] गौतम ! जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त कम पल्योपम का आठवाँ भाग है और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम चौथाई पल्योपम की है।

४०६ [१] ताराविमाणे देवीणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण अट्ठभागपलिओवमं, उक्कोसेण सातिरेगं अट्ठभागपलिओवमं।

[४०६-१ प्र] भगवन् ! ताराविमान मे देवियो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४०६-१ उ] गौतम ! जघन्य पल्योपम का आठवाँ भाग और उत्कृष्ट पल्योपम के आठवे भाग से कुछ अधिक की है।

[२] ताराविमाणे अपज्जत्तियाण देवीण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्त ।

[४०६-२ प्र] भगवन् ! ताराविमान मे अपर्याप्त देवियो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४०६-२ उ] गौतम ! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] ताराविमाणे पज्जत्तियाण देवीण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण अट्ठभागपलिओवम अंतोमुहुत्तूण, उक्कोसेण सातिरेग अट्ठभागपलिओवम अंतोमुहुत्तूण ।

[४०६-३ प्र] भगवन् ! ताराविमान मे पर्याप्त देवियो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४०६-३ उ] गौतम ! जघन्यत अन्तर्मुहूर्त्त कम पल्योपम के आठवे भाग की है और उत्कृष्टत अन्तर्मुहूर्त्त कम पल्योपम के आठवे भाग से कुछ अधिक है ।

विवेचन—ज्योतिष्क देव-देवियो की स्थिति का निरूपण—प्रस्तुत बारह सूत्रो (सू ३९५ से ४०६ तक) मे ज्योतिष्क देवो और देवियो के (औघिक, अपर्याप्तको एव पर्याप्तको) की तथा चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और तारा के विमानो के देव-देवियो (औघिक, अपर्याप्तको के और पर्याप्तको) की स्थिति का निरूपण किया गया है ।

वैमानिक देवो की स्थिति की प्ररूपणा—

४०७ [१] वेमाणियाण भंते ! देवाणं केवतिय काल ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेण पलिओवम, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइ ।

[४०७-१ प्र] भगवन् ! वैमानिक देवो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४०७-१ उ] गौतम ! (वैमानिक देवो की स्थिति) जघन्य एक पल्योपम की है और उत्कृष्ट ततीस सागरोपम की है ।

[२] अपज्जत्तयवेमाणियाण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्त ।

[४०७-२ प्र] भगवन् ! अपर्याप्तक वैमानिक देवो की कितने काल की स्थिति कही गई है ?

[४०७-२ उ] गौतम ! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] पज्जत्तयवेमाणियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण पलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं, उक्कोसेण तेत्तीसं सागरोवमाइ अंतोमुहुत्तूणाइ ।

[४०७-३ प्र] भगवन् ! पर्याप्त वैमानिक देवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४०७-३ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम एक पल्योपम की है और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम तेतीस सागरोपम की है ।

४०८ [१] वेमाणिणीण भंते ! देवीण केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?
गोयमा ! जहण्णेण पलिओवमं, उक्कोसेण पणपण्णं पलिओवमाइं।

[४०८-१ प्र] भगवन् ! वैमानिक देवियों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?
[४०८-१ उ] गौतम ! जघन्य एक पल्योपम की है और उत्कृष्ट पचपन पल्योपमों की है।

[२] अपज्जत्तियाण वेमाणिणीण देवीण पुच्छा।
गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[४०८-२ प्र] भगवन् ! वैमानिक अपर्याप्त देवियों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?
[४०८-२ उ] गौतम ! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पज्जत्तियाणं वेमाणिणीण देवीण पुच्छा।
गोयमा ! जहण्णेण पलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं, उक्कोसेण पणपण्णं पलिओवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[४०८-३ प्र] भगवन् ! पर्याप्त वैमानिक देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?
[४०८-३ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम एक पल्योपम की है और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम पचपन पल्योपमों की है।

४०९ [१] सोहम्मे णं भंते ! कप्पे देवाणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?
गोयमा ! जहण्णेणं पलिओवमं, उक्कोसेण दो सागरोवमाइं।

[४०९-१ प्र] भगवन् ! सौधर्मकल्प (देवलोक) में, देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?
[४०९-१ उ] गौतम ! जघन्य एक पल्योपम की है और उत्कृष्ट दो सागरोपम की है।

[२] सोहम्मे कप्पे अपज्जत्तदेवाणं पुच्छा।
गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[४०९-२ प्र] भगवन् ! सौधर्मकल्प में अपर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?
[४०९-२ उ] गौतम ! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] सोहम्मे कप्पे पज्जत्तयाणं देवाणं पुच्छा।
गोयमा ! जहण्णेण पलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं, उक्कोसेण दो सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[४०९-३ प्र] भगवन् ! सौधर्मकल्प में पर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४०९-३ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम एक पल्योपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम दो सागरोपम की है ।

४१० [१] सोहम्मे कप्पे देवीण पुच्छा ।
गोयमा ! जहण्णेणं पलिओवम, उक्कोसेण पण्णास पलिओवमाइ ।

[४१०-१ प्र] भगवन् ! सौधर्मकल्प मे देवियो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४१०-१ उ] गौतम ! जघन्य एक पल्योपम की है और उत्कृष्ट पचास पल्योपमो की है ।

[२] सोहम्मे कप्पे अपज्जत्तियाण देवीण पुच्छा ।
गोयमा जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अतोमुहुत्त ।[1]

[४१०-२ प्र] भगवन् ! सौधर्मकल्प मे अपर्याप्तक देवियो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४१०-२ उ] गौतम ! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] सोहम्मे कप्पे पज्जत्तियाण देवीण पुच्छा ।
गोयमा ! जहण्णेण पलिओवम अतोमुहुत्तूण उक्कोसेण पण्णास पलिओवमाइ अतोमुहुत्तूणाइं ।

[४१०-३ प्र] भगवन् ! सौधर्मकल्प की पर्याप्तक देवियो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४१०-३ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम एक पल्योपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम पचास पल्योपमो की है ।

४११ [१] सोहम्मे कप्पे परिग्गहियाण देवीणं पुच्छा ।
गोयमा ! जहण्णेणं पलिओवमं, उक्कोसेणं सत्त पलिओवमाइ ।

[४११-१ प्र] भगवन् ! सौधर्मकल्प मे परिगृहीता देवियो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४११-१ उ] गौतम ! जघन्य एक पल्योपम की और उत्कृष्ट सात पल्योपम की है ।

[२] सोहम्मे कप्पे परिग्गहियाण अपज्जत्तियाण देवीण पुच्छा ।
गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[४११-२ प्र] भगवन् ! सौधर्मकल्प मे परिगृहीता अपर्याप्तक देवियो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४११-२ उ] गौतम ! जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] सोहम्मे कप्पे परिग्गहियाणं पज्जत्तियाणं देवीणं पुच्छा ।
गोयमा ! जहण्णेण पलिओवम अंतोमुहुत्तूण, उक्कोसेण सत्त पलिओवमाइ अतोमुहुत्तूणाइं ।

---
१ ग्रन्थाग्रम् २५००

[४११-३ प्र] भगवन् ! सौधर्मकल्प मे परिगृहीता पर्याप्तक देवियो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४११-३ उ] गौतम ! जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त कम एक पल्योपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम सात पल्योपम की है ।

४१२. [१] सोहम्मे कप्पे अपरिग्गहियाण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण पलिओवम, उक्कोसेण पण्णास पलिओवमाइ ।

[४१२-१ प्र] भगवन् ! सौधर्मकल्प मे अपरिगृहीता देवियो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४१२-१ उ] गौतम ! जघन्य एक पल्योपम की और उत्कृष्ट पचास पल्योपमो की है ।

[२] सोहम्मे कप्पे अपरिग्गहियाण अपज्जत्तियाण देवीण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अतोमुहुत्त ।

[४१२-२ प्र] भगवन् ! सौधर्मकल्प मे अपरिगृहीता अपर्याप्तक देवियो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४१२-२ उ] गौतम ! उनकी जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] सोहम्मे कप्पे अपरिग्गहियाणं पज्जत्तियाण देवीणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण पलिओवमं अतोमुहुत्तूण, उक्कोसेण पण्णास पलिओवमाइ अतोमुहुत्तूणाइ ।

[४१२-३ प्र] भगवन् ! सौधर्मकल्प मे अपरिगृहीता पर्याप्तक देवियो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४१२-३ उ] गौतम ! (उनकी स्थिति) जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम एक पल्योपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम पचास पल्योपमो की है ।

४१३ [१] ईसाणे कप्पे देवाण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण सातिरेग पलिओवम, उक्कोसेण सातिरेगाइ दो सागरोवमाइ ।

[४१३-१ प्र] भगवन् ! ईशानकल्प मे देवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४१३-१ उ] गौतम ! जघन्य एक पल्योपम से कुछ अधिक की और उत्कृष्ट कुछ अधिक दो सागरोपम की है ।

[२] ईसाणे कप्पे अपज्जत्ताण देवाण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अतोमुहुत्तं ।

[४१३-२ प्र] भगवन् ! ईशानकल्प मे अपर्याप्तक देवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४१३-२ उ] गौतम ! उनकी जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] ईसाणे कप्पे पज्जत्ताण देवाण पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं सातिरेग पलिओवम अंतोमुहुत्तूण, उक्कोसेण सातिरेगाइ दो सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइ।

[४१३-३ प्र] भगवन् ! ईशानकल्प के पर्याप्तक देवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४१३-३ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम कुछ अधिक एक पल्योपम की है और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम दो सागरोपम से कुछ अधिक की है।

४१४ [१] ईसाणे कप्पे देवीण पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण सातिरेग पलिओवम, उक्कोसेण पणपण्णं पलिओवमाइ।

[४१४-१ प्र] भगवन् ! ईशानकल्प मे देवियो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४१४-१ उ] गौतम ! जघन्य एक पल्योपम से कुछ अधिक को और उत्कृष्ट पचपन पल्योपम की है।

[२] ईसाणे कप्पे देवीणं अपज्जत्तियाण पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[४१४-२ प्र] भगवन् ! ईशानकल्प मे अपर्याप्त देवियो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४१४-२ उ] गौतम जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] ईसाणे कप्पे पज्जत्तियाण देवीणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण सातिरेगं पलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं, उक्कोसेण पणपण्णं पलिओवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइ।

[४१४-३ प्र] भगवन् ! ईशानकल्प मे पर्याप्त देवियो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४१४-३ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम पल्योपम से कुछ अधिक को और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम पचपन पल्योपम की है।

४१५. [१] ईसाणे कप्पे परिग्गहियाण देवीण पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं सातिरेगं पलिओवम, उक्कोसेणं णव पलिओवमाइं।

[४१५-१ प्र] भगवन् ! ईशानकल्प मे परिगृहीता देवियो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४१५-२ उ] गौतम ! जघन्य पल्योपम से कुछ अधिक की और उत्कृष्ट नौ पल्योपम की है।

[२] ईसाणे कप्पे परिग्गहियाण अपज्जत्तियाण देवीण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अतोमुहुत्त ।

[४१५-२ प्र] भगवन् ! ईशानकल्प मे परिगृहीता अपर्याप्त देवियो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४१५-२ उ] गौतम ! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] ईसाणे कप्पे परिग्गहियाण पज्जत्तियाण देवीण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण सातिरेग पलिओवमं अतोमुहुत्तूण, उक्कोसेणं नव पलिओवमाइं अतोमुहुत्तूणाइ ।

[४१५-३ प्र] भगवन् ! ईशानकल्प मे परिगृहीता पर्याप्तक देवियो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४१५-३ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम पल्योपम से कुछ अधिक की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम नौ पल्योपम की है ।

४१६ [१] ईसाणे कप्पे अपरिग्गहियाणं देवीण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण सातिरेग पलिओवम, उक्कोसेण पणपण्ण पलिओवमाइ ।

[४१६-१ प्र] भगवन् ! ईशानकल्प मे अपरिगृहीता देवियो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४१६-१ उ] गौतम ! जघन्य पल्योपम से कुछ अधिक की और उत्कृष्ट पचपन पल्योपम की है ।

[२] ईसाणे कप्पे अपरिग्गहियाण अपज्जत्तियाण देवीण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अतोमुहुत्त ।

[४१६-२ प्र] भगवन् ! ईशानकल्प मे अपरिगृहीता अपर्याप्तक देवियो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४१६-२ उ] गौतम ! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] ईसाणे कप्पे अपरिग्गहियाण देवीण पज्जत्तियाण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण सातिरेग पलिओवम अतोमुहुत्तूण, उक्कोसेण पणपण्ण पलिओवमाइ अतोमुहुत्तूणाइ ।

[४१६-३ प्र] भगवन् ! ईशानकल्प मे अपरिगृहीता पर्याप्तक देवियो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४१६-३ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम सातिरेक पल्योपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम पचपन पल्योपम की है ।

४१७. [१] सणकुमारे कप्पे देवाण पुच्छा ।
गोयमा ! जहण्णेण दो सागरोवमाइ, उक्कोसेण सत्त सागरोवमाइ ।

[४१७-१ प्र] भगवन् ! सनत्कुमारकल्प मे देवो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४१७-१ उ] गौतम ! जघन्य दो सागरोपम की और उत्कृष्ट सात सागरोपम की है ।

[२] सणकुमारे कप्पे अपज्जत्ताण देवाण पुच्छा ।
गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अतोमुहुत्त ।

[४१७-२ प्र] भगवन् ! सनत्कुमारकल्प मे अपर्याप्तक देवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४१७-२ उ] गौतम ! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] सणकुमारे कप्पे पज्जत्ताण देवाणं पुच्छा ।
गोयमा ! जहण्णेण दो सागरोवमाइ अतोमुहुत्तूणाइ, उक्कोसेण सत्त सागरोवमाइं अतोमुहुत्तूणाइं ।

[४१७-३ प्र] भगवन् ! सनत्कुमारकल्प मे पर्याप्तक देवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४१७-३ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम दो सागरोपम और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम सात सागरोपम की है ।

४१८ [१] माहिंदे कप्पे देवाण पुच्छा ।
गोयमा ! जहण्णेण सातिरेगाइ दो सागरोवमाइ, उक्कोसेण सत्त साहियाइ सागरोवमाइ ।

[४१८-१ प्र] भगवन् ! माहेन्द्रकल्प के देवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४१८-१ उ] गौतम ! जघन्य दो सागरोपम से कुछ अधिक की और उत्कृष्ट सात सागरोपम से कुछ अधिक की है ।

[२] माहिंदे अपज्जत्ताण देवाण पुच्छा ।
गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अतोमुहुत्त ।

[४१८-२ प्र] भगवन् ! माहेन्द्रकल्प मे अपर्याप्तक देवो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४१८-२ उ] गौतम ! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] माहिंदे पज्जत्ताण देवाण पुच्छा ।
गोयमा ! जहण्णेण सातिरेगाइ दो सागरोवमाइ अतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेण सातिरेगाइं सत्त सागरोवमाइ अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[४१८-३ प्र] भगवन् ! माहेन्द्रकल्प मे पर्याप्तक देवो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४१८-३ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम दो सागरोपम से कुछ अधिक की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम सात सागरोपम से कुछ अधिक की है ।

४१९. [१] बंभलोए कप्पे देवाण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण सत्त सागरोवमाइ, उक्कोसेण दस सागरोवमाइ ।

[४१९-१ प्र] भगवन् ! ब्रह्मलोककल्प मे देवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४१९-१ उ] गौतम ! जघन्य सात सागरोपम की और उत्कृष्ट दस सागरोपम की है ।

[२] बंभलोए अपज्जत्ताण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्त ।

[४१९-२ प्र] भगवन् ! ब्रह्मलोककल्प मे अपर्याप्तक देवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४१९-२ उ] गौतम ! (उनकी) जघन्य (स्थिति) भी अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट (स्थिति) भी अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] बंभलोए पज्जत्ताण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण सत्त सागरोवमाइ अंतोमुहुत्तूणाइ, उक्कोसेण दस सागरोवमाइ अंतोमुहुत्तूणाइ ।

[४१९-३ प्र] भगवन् ! ब्रह्मलोककल्प मे पर्याप्त देवो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४१९-३ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम सात सागरोपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम दस सागरोपम की है ।

४२० [१] लंतए कप्पे देवाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण दस सागरोवमाइ, उक्कोसेण चउदस सागरोवमाइ ।

[४२०-१ प्र] भगवन् ! लान्तककल्प मे देवो की स्थिति कितने काल तक की कही है ?

[४२०-१ उ] गौतम ! जघन्य दस सागरोपम की और उत्कृष्ट चौदह सागरोपम की है ।

[२] लंतए अपज्जत्ताण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्त ।

[४२०-२ प्र] भगवन् ! लान्तककल्प मे अपर्याप्त देवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४२०-२ उ] गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] लंतए पज्जत्ताणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण दस सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेण चोद्दस सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[४२०-३ प्र] भगवन् ! लान्तककल्प मे पर्याप्त देवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४२०-३ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम दस सागरोपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम चौदह सागरोपम की है।

४२१ [१] महासुक्के देवाण पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण चोद्दस सागरोवमाइं, उक्कोसेण सत्तरस सागरोवमाइं।

[४२१-१ प्र] भगवन् ! महाशुक्रकल्प मे देवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४२१-१ उ] गौतम ! जघन्य चौदह सागरोपम की तथा उत्कृष्ट सत्तरह सागरोपम की है।

[२] महासुक्के अपज्जत्ताण पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[४२१-२ प्र] भगवन् ! महाशुक्रकल्प मे अपर्याप्त देवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४२१-२ उ] गौतम ! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहुर्त्त की है।

[३] महासुक्के पज्जत्ताण पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण चोद्दस सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेण सत्तरस सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[४२१-३ प्र] भगवन् ! महाशुक्रकल्प मे पर्याप्त देवो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४२१-३ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम चौदह सागरोपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम सत्रह सागरोपम की है।

४२२ [१] सहस्सारे देवाण पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण सत्तरस सागरोवमाइं, उक्कोसेण अट्ठारस सागरोवमाइं।

[४२२-१ प्र] भगवन् ! सहस्रारकल्प मे देवो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४२२-१ उ] गौतम ! जघन्य सत्तरह सागरोपम की और उत्कृष्ट अठारह सागरोपम की है।

[२] सहस्सारे पज्जत्ताणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[४२२-२ प्र] भगवन् ! सहस्रारकल्प मे अपर्याप्तक देवो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४२२-२ उ] गौतम ! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] सहस्सारे पज्जत्ताण पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण सत्तरस सागरोवमाइ अतोमुहुत्तूणाइ उक्कोसेणं अट्ठारस सागरोवमाइं अतोमुहुत्तूणाइं।

[४२२-३ प्र] भगवन् ! सहस्रारकल्प मे पर्याप्तक देवो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४२२-३ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम सत्तरह सागरोपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम अठारह सागरोपम की है।

४२३. [१] आणए देवाण पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण अट्ठारस सागरोवमाइ, उक्कोसेणं एकूणवीस सागरोवमाइं।

[४२३-१ प्र] भगवन् ! आनतकल्प के देवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४२३-१ उ] गौतम ! जघन्य अठारह सागरोपम की और उत्कृष्ट उन्नीस सागरोपम की है।

[२] आणए अपज्जत्ताण देवाण पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अतोमुहुत्तं।

[४२३-२ प्र] भगवन् ! आनतकल्प मे अपर्याप्त देवो की स्थिति कितने काल तक की कही है ?

[४२३-२ उ] गौतम ! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] आणए पज्जत्ताण देवाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण अट्ठारस सागरोवमाइ अतोमुहुत्तूणाइ, उक्कोसेण एगूणवीस सागरोवमाइं अतोमुहुत्तूणाइ।

[४२३-३ प्र] भगवन् ! आनतकल्प मे पर्याप्त देवो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४२३-३ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम अठारह सागरोपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम उन्नीस सागरोपम की है।

४२४ [१] पाणए कप्पे देवाण पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण एगूणवीसं सागरोवमाइ, उक्कोसेण वीस सागरोवमाइ।

[४२४-१ प्र] भगवन् ! प्राणतकल्प मे देवो की स्थिति कितने काल तक की कही है ?

[४२४-१ उ] गौतम ! जघन्य उन्नीस सागरोपम की है और उत्कृष्ट वीस सागरोपम की है।

[२] पाणए अपज्जत्ताण देवाण पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[४२४-२ प्र] भगवन् ! प्राणतकल्प मे अपर्याप्त देवो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४२४-२ उ] गौतम ! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] पाणए पज्जत्ताणं देवाण पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं एगूणवीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं वीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[४२४-३ प्र] भगवन् ! प्राणतकल्प मे पर्याप्त देवो की स्थिति कितने काल तक की कही है ?

[४२४-३ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम उन्नीस सागरोपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम बीस सागरोपम की है।

४२५. [१] आरणे देवाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेणं वीसं सागरोवमाइं, उक्कोसेण एक्कवीसं सागरोवमाइं।

[४२५-१ प्र] भगवन् ! आरणकल्प मे देवो की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४२५-१ उ] गौतम ! जघन्य बीस सागरोपम की और उत्कृष्ट इक्कीस सागरोपम की है।

[२] आरणे अपज्जत्ताण देवाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[४२५-२ प्र] भगवन् ! आरणकल्प मे अपर्याप्तक देवो की स्थिति कितने काल तक की कही है ?

[४२५-२ उ] गौतम ! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] आरणे पज्जत्ताण देवाणं पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण वीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेण एक्कवीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[४२५-३ प्र] भगवन् ! आरणकल्प मे पर्याप्तक देवो की स्थिति कितने काल तक की कही है ?

[४२५-३ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम बीस सागरोपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम इक्कीस सागरोपम की है।

४२६ [१] अच्चुए कप्पे देवाण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण एक्कवीस सागरोवमाइं, उक्कोसेण बावीसं सागरोवमाइं ।

[४२६-१ प्र.] भगवन् ! अच्युतकल्प मे देवो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४२६-१ उ.] गौतम ! जघन्य इक्कीस सागरोपम की और उत्कृष्ट बाईस सागरोपम की है ।

[२] अच्चुए अपज्जत्ताण देवाण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[४२६-२ प्र.] भगवन् ! अच्युतकल्प मे अपर्याप्तक देवो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४२६-२ उ.] गौतम ! जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] अच्चुते पज्जत्ताण देवाण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण एक्कवीस सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेण बावीस सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[४२६-३ प्र.] भगवन् ! अच्युतकल्प मे पर्याप्तकदेवो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४२६-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम इक्कीस सागरोपम की तथा उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम बाईस सागरोपम की है ।

४२७ [१] हेट्ठिमहेट्ठिमगेवेज्जदेवाण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण बावीसं सागरोवमाइं, उक्कोसेण तेवीसं सागरोवमाइं ।

[४२७-१ प्र.] भगवन् ! अधस्तन-अधस्तन (सबसे निचले ग्रैवेयकत्रिक मे नीचे वाले) ग्रैवेयक देवो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४२७-१ उ.] गौतम ! (सबसे निचली ग्रैवेयकत्रिक के नीचे के देवो की स्थिति) जघन्य बाईस सागरोपम की और उत्कृष्ट तेईस सागरोपम की है ।

[२] हेट्ठिमहेट्ठिमअपज्जत्तदेवाण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[४२७-२ प्र.] भगवन् ! अधस्तन-अधस्तन ग्रैवेयक के अपर्याप्त देवो की स्थिति कितने काल की है ?

[४२७-२ उ.] गौतम ! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] हेट्ठिमहेट्ठिमपज्जत्तदेवाण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण बावीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेण तेवीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[४२७-३ प्र] भगवन्! अधस्तन-अधस्तन ग्रैवेयक के पर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

[४२७-३ उ] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम बाईस सागरोपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम तेईस सागरोपम की है।

४२८ [१] हेट्ठिममज्झिमगेवेज्जदेवाण पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेण तेवीस सागरोवमाइ, उक्कोसेण चउवीस सागरोवमाइ।

[४२८-१ प्र] भगवन्! अधस्तन-मध्यम ग्रैवेयक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

[४२८-१ उ] गौतम! जघन्य तेईस सागरोपम की और उत्कृष्ट चौवीस सागरोपम की है।

[२] हेट्ठिममज्झिमअपज्जत्तयदेवाण पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अतोमुहुत्त।

[४२८-२ प्र] भगवन्! अधस्तन-मध्यम ग्रैवेयक अपर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है?

[४२८-२ उ] गौतम! जघन्य भी उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] हेट्ठिममज्जिमगेवेज्जदेवाण पज्जत्ताण पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेण तेवीस सागरोवमाइ अतोमुहुत्तूणाइ, उक्कोसेण चउवीस सागरोवमाइ अतोमुहुत्तूणाइ।

[४२८-३ प्र] भगवन्! अधस्तन-मध्यम ग्रैवेयक पर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है?

[४२८-३ उ] गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम तेईस सागरोपम की तथा उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम चौवीस सागरोपम की है।

४२९ [१] हेट्ठिमउवरिमगेवेज्जगदेवाण पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेण चउवीस सागरोवमाइं, उक्कोसेण पणुवीस सागरोवमाइ।

[४२९-१ प्र] भगवन्! अधस्तन-उपरितन (सबसे नीचे के त्रिक मे ऊपर वाले) ग्रैवेयक देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है?

[४२९-१ उ] गौतम! जघन्य चौवीस सागरोपम की तथा उत्कृष्ट पच्चीस सागरोपम की है।

[२] हेट्ठिमउवरिमगेवेज्जगदेवाण अपज्जत्ताण पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अतोमुहुत्त।

[४२९-२ प्र] भगवन्! अधस्तन-उपरितन ग्रैवेयक अपर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है?

[४२९ २ उ] गौतम ! जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] हेट्ठिमउवरिमगेवेज्जगदेवाण पज्जत्ताण पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण चउवीस सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेण पणुवीस सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[४२९-३ प्र] भगवन् ! अधस्तन-उपरितन ग्रैवेयक पर्याप्त देवो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४२९-३ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम चौवीस सागरोपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम पच्चीस सागरोपम की है।

४३०. [१] मज्झिमहेट्ठिमगेवेज्जगदेवाण पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण पणुवीस सागरोवमाइं, उक्कोसेण छव्वीस सागरोवमाइं।

[४३०-१ प्र] भगवन् ! मध्यम-अधस्तन (बीच के त्रिक मे सबसे निचले) ग्रैवेयक देवो की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४३०-१ उ] गौतम ! जघन्य पच्चीस सागरोपम की और उत्कृष्ट छब्बीस सागरोपम की है।

[२] मज्झिमहेट्ठिमगेवेज्जगदेवाण अपज्जत्ताण पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[४३०-२ प्र] भगवन् ! मध्यम-अधस्तन ग्रैवेयक अपर्याप्त देवो की स्थिति कितने काल तक कही गई है ?

[४३०-२ उ] गौतम ! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] मज्झिमहेट्ठिमगेवेज्जगदेवाण पज्जत्ताण पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण पणुवीस सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेण छव्वीस सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[४३०-३ प्र] भगवन् ! मध्यम-अधस्तन ग्रैवेयक पर्याप्त देवो की स्थिति कितने काल तक की कही है ?

[४३०-३ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम पच्चीस सागरोपम की तथा उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम छब्बीस सागरोपम की है।

४३१ [१] मज्झिममज्झिमगेवेज्जगदेवाण पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण छव्वीस सागरोवमाइं, उक्कोसेण सत्तावीस सागरोवमाइं।

[४३१-१ प्र.] भगवन् ! मध्यम-मध्यम (बीच के त्रिक के बिचले) ग्रैवेयक देवो की स्थिति कितने काल तक कही गई है ?

[४३०-१ उ] गौतम ! जघन्य छब्बीस सागरोपम की और उत्कृष्ट सत्ताईस सागरोपम की है।

[२] मज्झिममज्झिमगेवेज्जगदेवाण अपज्जत्ताण पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[४३१-२ प्र] भगवन् ! मध्यम-मध्यम ग्रैवेयक अपर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४३१-२ उ] गौतम ! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] मज्झिममज्झिमगेवेज्जगदेवाण पज्जत्ताण पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण छब्वीस सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेण सत्तावीस सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[४३१-३ प्र] भगवन् ! मध्यम-मध्यम ग्रैवेयक पर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल तक की कही है ?

[४३१-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम छब्बीस सागरोपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम सत्ताईस सागरोपम की है।

४३२ [१] मज्झिमउवरिमगेवेज्जाण देवाण पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण सत्तावीस सागरोवमाइं, उक्कोसेण अट्ठावीस सागरोवमाइं।

[४३२-१ प्र] भगवन् ! मध्यम-उपरितन (बीच के त्रिक मे सबसे ऊपर वाले) ग्रैवेयक देवों की कितने काल की स्थिति कही गई है ?

[४३२-१ उ.] गौतम ! जघन्य सत्ताईस सागरोपम की तथा उत्कृष्ट अट्ठाईस सागरोपम की है।

[२] मज्झिमउवरिमगेवेज्जगदेवाण अपज्जत्ताण पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[४३२-२ प्र] भगवन् ! मध्यम-उपरितन ग्रैवेयक अपर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४३२-२ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] मज्झिमउवरिमगेवेज्जगदेवाण पज्जत्ताण पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण सत्तावीस सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेण अट्ठावीस सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[४३२-३ प्र] भगवन् ! मध्यम-उपरितन ग्रैवेयक पर्याप्तक देवों की कितने काल की स्थिति कही है ?

[४३२-३ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम सत्ताईस सागरोपम की तथा उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम अट्ठाईस सागरोपम की है ।

४३३. [१] उवरिमहेट्ठिमगेवेज्जगदेवाण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण अट्ठावीस सागरोवमाइं, उक्कोसेण एगूणतीस सागरोवमाइं ।

[४३३-१ प्र] भगवन् ! उपरितन-अधस्तन (ऊपर के त्रिक के निचले) ग्रैवेयक देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ।

[४३३-१ उ] गौतम ! जघन्य अट्ठाईस सागरोपम की तथा उत्कृष्ट उनतीस सागरोपम की है ।

[२] उवरिमहेट्ठिमगेवेज्जगदेवाण अपज्जत्ताण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्त ।

[४३३-२ प्र] भगवन् परितन-अधस्तन ग्रैवेयक अपर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४३३-२ उ] गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] उवरिमहेट्ठिमगेवेज्जगदेवाण पज्जत्ताणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण अट्ठावीस सागरोवमाइं, अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेण एगूणतीस सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[४३३-३ प्र] भगवन् ! उपरितन-अधस्तन ग्रैवेयक पर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४३३-३ उ] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम अट्ठाईस सागरोपम की तथा उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम उनतीस सागरोपम की है ।

४३४ [१] उवरिममज्झिमगेवेज्जगदेवाण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण एगूणतीस सागरोवमाइं, उक्कोसेण तीस सागरोवमाइं ।

[४३४-१ प्र] भगवन् ! उपरितन-मध्यम (ऊपर के त्रिक में बीच वाले) ग्रैवेयक देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४३४-१ उ] गौतम ! जघन्य उनतीस सागरोपम की तथा उत्कृष्ट तीस सागरोपम की है ।

[२] उवरिममज्झिमगेवेज्जगदेवाण अपज्जत्ताण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्त ।

[४३४-२ प्र] भगवन् ! उपरितन-मध्यम ग्रैवेयक अपर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४३४-२ उ] गौतम ! जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] उवरिममज्झिमगेवेज्जगदेवाण पज्जत्ताण पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण एगूणतीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेण तीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[४३४-३ प्र.] भगवन् ! उपरितन-मध्यम ग्रैवेयक पर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४३४-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम उनतीस सागरोपम की तथा उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम तीस सागरोपम की है।

४३५. [१] उवरिमउवरिमगेवेज्जगदेवाण पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण तीसं सागरोवमाइं, उक्कोसेण एक्कतीसं सागरोवमाइं।

[४३५-१ प्र.] भगवन् ! उपरितन-उपरितन (ऊपर के त्रिक के सबसे ऊपर वाले) ग्रैवेयक-देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४३५-१ उ.] गौतम ! जघन्य तीस सागरोपम की तथा उत्कृष्ट इकतीस सागरोपम की है।

[२] उवरिमउवरिमगेवेज्जगदेवाण अपज्जत्ताण पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

[४३५-२ प्र.] भगवन् ! उपरितन-उपरितन ग्रैवेयक अपर्याप्त देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४३५-२ उ.] गौतम ! जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त की है।

[३] उवरिमउवरिमगेवेज्जगदेवाण पज्जत्ताण पुच्छा।

गोयमा ! जहण्णेण तीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेण एक्कतीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

[४३५-३ प्र.] भगवन् ! उपरितन-उपरितन ग्रैवेयक पर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४३५-३ उ.] गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम तीस सागरोपम की तथा उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम इकतीस सागरोपम की है।

४३६. [१] विजय-वेजयंत-जयंत-अपराजिएसु णं भंते ! देवाणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं एक्कतीसं सागरोवमाइं, उक्कोसेण तेत्तीसं सागरोवमाइं।

[४३६-१ प्र.] भगवन् ! विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित विमानों में देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४३६-१ उ.] गौतम ! (इन सब देवों की स्थिति) जघन्य इकतीस सागरोपम की तथा उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की है।

[२] विजय-वेजयंत-जयंत-अपराजियदेवाणं अपज्जत्ताणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[४३६-२ प्र] भगवन् ! विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित विमानों में (स्थित) अपर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

[४३६-२ उ] गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] विजय-वेजयंत-जयंत-अपराजियदेवाणं पज्जत्ताणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं एक्कतीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं ।

[४३६-३ प्र] भगवन् ! विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित विमानों में स्थित पर्याप्तक देवों की स्थिति *कितने काल तक की कही है ?*

[४३६-३ उ] गौतम ! (इनकी स्थिति) जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम इकतीस सागरोपम की है और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम तेतीस सागरोपम की है ।

४३७ [१] सव्वट्ठसिद्धगदेवाणं भंते ! केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! अजहण्णमणुक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिती पण्णत्ता ?

[४३७-१ प्र] भगवन् ! सर्वार्थसिद्ध विमानवासी देवों की कितने काल तक की स्थिति कही गई है ?

[४३७-१ उ] गौतम ! अजघन्य-अनुत्कृष्ट (जघन्य और उत्कृष्ट के भेद से रहित) तेतीस सागरोपम की स्थिति कही गई है ।

[२] सव्वट्ठसिद्धगदेवाणं अपज्जत्ताणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं ।

[४३७-२ प्र] भगवन् ! सर्वार्थसिद्ध विमानवासी अपर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४३७-२ उ] गौतम ! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[३] सव्वट्ठसिद्धगदेवाणं पज्जत्ताणं [भंते !] केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

गोयमा ! अजहण्णमणुक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं ठिती पण्णत्ता ।

।। पण्णवणाए भगवईए चउत्थं ठिइपयं समत्तं ।।

[४३७-३ प्र] भगवन् ! सर्वार्थसिद्ध-विमानवासी पर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल तक की कही गई है ?

[४३७-३ उ] गौतम ! इनकी स्थिति अजघन्य-अनुत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम तेतीस सागरोपम की कही गई है ।

पंचमं विसेसपयं (पज   पयं)

पंचम विशेषपद (पर्यायपद)

प्राथमिक

* प्रज्ञापनासूत्र का यह पचम 'विशेषपद' अथवा 'पर्यायपद' है ।

* 'विशेष' शब्द के दो अर्थ फलित होते हैं—(१) जीवादि द्रव्यो के विशेष अर्थात्—प्रकार और (२) जीवादि द्रव्यो के विशेष अर्थात्—पर्याय ।

* प्रथम पद मे जीव और अजीव, इन दो द्रव्यो के प्रकार, भेद-प्रभेद सहित बताये गए हैं । उसकी यहाँ भी सक्षेप मे (सू ४३९ एव ५००-५०१ मे) पुनरावृत्ति की गई है । वह इसलिए कि प्रस्तुत पद मे यह बात स्पष्ट करनी है कि जीव और अजीव के जो प्रकार हैं, उनमे से प्रत्येक के अनन्त पर्याय हैं । यदि प्रत्येक के अनन्त पर्याय हो तो समग्र जीवो या समग्र अजीवो के अनन्त पर्याय हो, इसमे कहना ही क्या ?

* इस पद का नाम 'विशेषपद' रखा जाने पर भी इस पद के सूत्रो मे कही भी विशेष शब्द का प्रयोग नही किया गया, समग्र पद मे 'पर्याय' शब्द उनके लिए प्रयुक्त हुआ है । जैनशास्त्रो मे भी यत्र-तत्र 'पर्याय' शब्द को अधिक महत्त्व दिया गया है । इससे ग्रन्थकार ने एक बात सूचित कर दी है—वह यह है कि पर्याय या विशेष मे कोई अन्तर नही है । जो नाना प्रकार के जीव या अजीव दिखाई देते हैं, वे सब द्रव्य के ही पर्याय हैं । फिर भले ही वे सामान्य के विशेषरूप—प्रकाररूप हो या द्रव्यविशेष के पर्याय रूप हो । जीव के जो नारकादि भेद बताए है, वे सभी प्रकार उस-उस जीव द्रव्य के पर्याय हैं, क्योकि अनादिकाल से जीव अनेक बार उस-उस रूप मे उत्पन्न होता है । जैसे किसी एक जीव के वे पर्याय हैं, वैसे समस्त जीवो की योग्यता समान होने से उन सब ने नरक, तिर्यञ्च आदि रूप मे जन्म लिया हो है । इस प्रकार जिसे प्रकार या भेद अथवा विशेष कहा जाता है, वह प्रत्येक जीवद्रव्य की अपेक्षा से पर्याय ही है, वह जीव की एक विशेष अवस्था पर्याय या परिणाम ही है ।

प्रस्तुत मे 'पर्याय' शब्द दो अर्थो मे प्रयुक्त हुआ है—(१) प्रकार या भेद अर्थ मे तथा (२) अवस्था या परिणाम अर्थ मे । जीव सामान्य के नारक आदि अनेक भेद-विशेष है, अत उन्हे जीव के पर्याय कहे है और जीवसामान्य के अनेक परिणाम—पर्याय भी है, इस कारण उन्हे भी जीव के पर्याय कहे है । इसी प्रकार अजीव के विषय मे भी समझ लेना चाहिए । इस प्रकार शास्त्रकार ने 'पर्याय' शब्द का दो अर्थो मे प्रयोग किया है तथा पर्याय और विशेष दोनो एकार्थक माने हैं । जैनागमो मे पर्याय शब्द ही प्रचलित था, किन्तु वैशेषिकदर्शन मे 'विशेष' शब्द का प्रयोग[१] होने लगा था, अत उस शब्द का प्रयोग पर्याय अर्थ मे एव वस्तु

---

१ देखें, तर्कसग्रह तथा वैशेषिकदर्शन

के भेद अर्थ मे भी हो सकता है, यह सूचित करने हेतु आचार्य ने इस पद का नाम 'विशेषपद' रखा हो, यह भी सभव है।

* शास्त्रकारो ने पर्याय शब्द का प्रयोग करके सूचित किया है कि कोई भी द्रव्य पर्यायशून्य कदापि नही होता। प्रत्येक द्रव्य किसी न किसी पर्यायावस्था मे ही होता है। जिसे द्रव्य कहा जाता है, उस का भी प्रस्तुत पद मे पर्याय के नाम से ही परिचय कराया गया है। साराश यह है कि द्रव्य और पर्याय मे अभेद है, इसे ध्वनित करने के लिए शास्त्रकार ने द्रव्य के प्रकार के लिए भी पर्याय शब्द का प्रयोग (सू ४३९, ५०१ मे) किया है।

* यो द्रव्य और पर्याय का कथञ्चित् अभेद होते हुए भी शास्त्रकार को यह स्पष्ट करना था कि द्रव्य और पर्याय मे भेद भी है। ये सब पर्याय या परिणाम किसी एक ही द्रव्य के नही हैं, इस की सूचना पृथक्-पृथक् द्रव्यो की सख्या और पर्यायो की सख्या मे अन्तर बताकर की है। जैसे कि शास्त्रकार ने नारक असख्यात (सू ४३९) कहे, परन्तु नारक के पर्याय अनन्त कहे है। जीवो के जो अनेक प्रकार है, उनमे वनस्पति और सिद्ध, ये दो प्रकार ही ऐसे है, जिनके द्रव्यो की सख्या अनन्त है। इस कारण समग्रभाव से जीवद्रव्य अनन्त कहा जा सकता है, परन्तु उन-उन प्रकारो मे उक्त दो के सिवाय सभी द्रव्य असख्यात है, अनन्त नही। फिर भी उन सभी प्रकारो के पर्यायो की सख्या अनन्त है, यह इस पद मे स्पष्ट प्रतिपादित है।[1]

* वेदान्तदर्शन की तरह जैनदर्शन के अनुसार जीव द्रव्य एक नही, किन्तु अनन्त है। इसका अर्थ यह हुआ कि इस दृष्टि से जीवसामान्य जैसी कोई स्वतत्र एक वस्तु (इकाई) नही है, परन्तु अनेक जीवो मे जो चैतन्यधर्म दिखाई देते हैं, वे ही हैं, तथा वे नाना है और उस-उस जीव मे ही व्याप्त हैं और वे धर्म अजीव से जीव को भिन्न करने वाले हैं। इसलिए अनेक होते हुए भी समानरूप से अजीव से जीव को भिन्न सिद्ध करने का कार्य करने वाले होने से सामान्य कहलाते है। यह सामान्य तिर्यक्-सामान्य है जो एक समय मे अनेक व्यक्तिनिष्ठ होता है। जैनदर्शनानुसार एक द्रव्य अनेकरूप मे परिणत हो जाता है, जैसे—कोई एक जीव (द्रव्य) नारक आदि अनेक परिणामो (पर्यायो) को धारण करता है। ये परिणाम कालक्रम से बदलते रहते है, किन्तु जीव-द्रव्य ध्रुव है, उसका कभी नाश नही होता, नारकादि-पर्यायो के रूप मे उसका नाश होता है। नारकादि अनेक पर्यायो को धारण करते हुए भी वह कभी अचेतन नही होता। इस जीवद्रव्य को सामान्य-ऊर्ध्वतासामान्य कहा है, जो अनेक कालो मे एक व्यक्ति मे निष्ठ होता है और उस सामान्य के नाना पर्याय-परिणाम या विशेष अथवा भेद हैं। इस अपेक्षा से व्यक्तिभेदो का सामान्य तिर्यक्सामान्य है, जबकि कालिकभेदो का सामान्य ऊर्ध्वतासामान्य है, जो द्रव्य के नाम से जाना जाता है और एक है तथा अभेदज्ञान मे निमित्त बनता है, जबकि तिर्यक्सामान्य अनेक है, और समानता मे निमित्त बनता है। निष्कर्ष यह है कि जीवसामान्य अनेक जीवो की अपेक्षा से तिर्यक्सामान्य है, जबकि एक ही जीव के नानापर्यायो की अपेक्षा से वह ऊर्ध्वता-सामान्य है।[2]

---

१ (क) पण्णवणासुत्त मूल, सू ४३८ से ४५४,
(ख) प्रज्ञापना म वृत्ति, पत्राक १७९ २०२

२ न्यायावतार वार्तिक वृत्ति-प्रस्तावना पृ २५-३१, आगम युग का जैनदर्शन, पृ ७६-८६,

इसी प्रकार अजीवद्रव्य कोई पृथक् एक ही द्रव्य नही है, परन्तु अनेक अजीव (अचेतन) द्रव्य हैं, वे सब जीव से भिन्न है, अत उस अर्थ मे उनकी समानता (एकता नही, अमुक अपेक्षा से एकता)[1] अजीवद्रव्य कहने से व्यक्त होती है। इस कारण वह सामान्य अजीवद्रव्यतिर्यक्-सामान्य है। तथा इस तिर्यक्सामान्य के पर्याय, विशेष या भेद वे ही प्रस्तुत मे जीव और अजीव के पर्याय, विशेष या भेद हैं, यह समझना चाहिए।[2]

* ससारी जीवो मे कर्मकृत जो अवस्थाएँ, जिनके आधार से जीव पुद्गलो से सम्बद्ध होता है, उस सम्बन्ध को लेकर जीव की विविध अवस्थाएँ—पर्याय बनती है। वे पौद्गलिक पर्याये भी व्यवहारनय से जीव की पर्याय मानी गई हैं। ससारी अवस्था मे जीव और पुद्गल अभिन्न-से प्रतीत होते है, यह मानकर जीव के पर्यायो का वर्णन है। जैसे स्वतत्र रूप से वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श की विविधता के कारण पुद्गल के अनन्त पर्याय (सू ५१९ मे) बताए है, वैसे ही जब वे ही पुद्गल जीव से सम्बद्ध होते है, तब वे सब जीव के पर्याय (सू ४४० मे) माने गए है, क्योकि जब वे जीव के साथ सम्बद्ध होते है, तब पुद्गल मे होने वाले परिणमन मे जीव भी कारण है, इस कारण वे पर्याय पुद्गल के होते हुए भी जीव के माने गए है। ससारी अवस्था मे अनादिकाल से प्रचलित जीव और पुद्गल का कथचित् अभेद भी है। कर्मोदय के कारण ही जीवो मे आकार, रूप आदि की विविधता है, और नाना पर्यायो का सर्जन होता है। अत जीव ज्ञानादिस्वरूप होते हुए भी वह अनन्तपर्याययुक्त है।

* प्रस्तुत पद मे जीव और अजीव द्रव्यो के भेदो और पर्यायो का निरूपण है। जीव-अजीव के भेदो के विषय मे तो प्रथमपद मे निरूपण था ही, किन्तु उन प्रत्येक भेदो मे जो अनन्तपर्याय हैं, उनका प्रतिपादन करना इस पचम पद की विशेषता है। प्रथम पद मे भेद बताए गए, तीसरे पद मे उनकी सख्या बताई गई, किन्तु तृतीयपद मे सख्यागत तारतम्य का निरूपण मुख्य होने से किस विशेष की कितनी सख्या है, यह बताना बाकी था, अत प्रस्तुत पद मे उन-उन भेदो की तथा बाद मे उन-उन भेदो के पर्यायो की सख्या भी बता दी गई है। सभी द्रव्यभेदो की पर्यायसख्या तो अनन्त है, किन्तु भेदो की सख्या मे कितने ही सख्यात है, असख्यात है, तो कई अनन्त (वनस्पतिकायिक और सिद्धजीव) भी है।[3]

* जीवद्रव्य के नारक आदि भेदो के पर्यायो का विचार अनेक प्रकार से, अनेक दृष्टियो से किया गया है, और उनमे जैनदर्शनसम्मत अनेकान्त दृष्टि का उपयोग स्पष्ट है। जैसे—जीव के नारकादि जिन भेदो के पर्यायो का निरूपण है, उसमे निम्नोक्त दस दृष्टियो का सापेक्ष वर्णन किया गया है, अर्थात्—नारकादि जीवो के अनन्तपर्यायो की सगति बताने के लिए इन दसो दृष्टियो से पर्यायो की सख्या बताई गई है। उसमे कितनी ही दृष्टियो से सख्यात, तो कई दृष्टियो से असख्यात और कई दृष्टियो से अनन्त सख्या होती है। अनन्तदर्शक दृष्टि को ध्यान मे रखते हुए शास्त्रकार ने नारकादि प्रत्येक के पर्यायो को अनन्त कहा है, क्योकि उस दृष्टि से सबसे अधिक पर्याय घटित होते है। तथा उन-उन सख्याओ का सीधा प्रतिपादन नही किया

१ 'एगे आया' इत्यादि स्थानागसूत्र वाक्य कल्पित एकता के है।

२ पण्णवणासुत्त मूल सू ४३९, ५९१

३ पण्णवणा मूल, सू ४४०

गया, किन्तु एक नारक की दूसरे नारक के साथ तुलना करके वह सख्या फलित की गई है। जैसे कि दस दृष्टियो के क्रम से वर्णन इस प्रकार है—(१) **द्रव्यार्थता**—द्रव्य दृष्टि से कोई नारक, अन्य नारको से तुल्य है। अर्थात्—द्रव्यापेक्षया कोई नारक एक द्रव्य है, वैसे ही अन्य नारक भी एक द्रव्य है। निष्कर्ष यह कि किसी भी नारक को द्रव्य दृष्टि से एक ही कहा जाता है, उसकी सख्या एक से अधिक नही होती, अत वह सख्यात है। (२) **प्रदेशार्थता**—प्रदेश की अपेक्षा से भी नारक जीव परस्पर तुल्य हैं। अर्थात्—जैसे एक नारक जीव के प्रदेश असख्यात है, वैसे अन्य नारक के प्रदेश भी असख्यात है, न्यूनाधिक नही। (३) **अवगाहनार्थता**—अवगाहना (जीव के शरीर की ऊँचाई) की दृष्टि से विचार किया जाए तो एक नारक अन्य नारक से हीन, तुल्य या अधिक भी होता है, और वह असख्यात-सख्यात भाग हीनाधिक या सख्यात-असख्यातगुण हीनाधिक होता है। निष्कर्ष यह है कि अवगाहना की दृष्टि से नारक के असख्यात प्रकार के पर्याय बनते है। (४) **स्थिति की अपेक्षा से** विचारणा भी अवगाहना की तरह ही है। अर्थात्—वह पूर्वोक्त प्रकार से चतु स्थान हीनाधिक या तुल्य होती है। निष्कर्ष यह है कि स्थिति की दृष्टि से भी नारक के असख्यात प्रकार के पर्याय बनते है। (५ से ८) **कृष्णादि वर्ण, तथा गन्ध, रस, एव स्पर्श की अपेक्षा से**—वर्णादि की अपेक्षा से भी नारक के अनन्तपर्याय बनते है, क्योकि एकगुण कृष्ण आदि वर्ण तथैव गन्ध, रस और स्पर्श से लेकर अनन्तगुण कृष्णादि वर्ण, तथा गन्ध, रस, और स्पर्श होना सम्भव है। इस प्रकार वर्णादि चारो के प्रत्येक प्रकार की दृष्टि से नारक के अनन्त पर्याय घटित हो सकने से उसके अनन्त पर्याय कहे हैं। (९ १०) **ज्ञान और दर्शन की अपेक्षा से**—ज्ञान (अज्ञान) और दर्शन की दृष्टि से भी नारक के अनन्त पर्याय है, ऐसा शास्त्रकार कहते है। आचार्य मलयगिरि कहते है—इन दसो दृष्टियो का समावेश चार दृष्टियो मे किया जा सकता है। जैसे—द्रव्यार्थता और प्रदेशार्थता का द्रव्य मे, अवगाहना का क्षेत्र मे, स्थिति का काल मे तथा वर्णादि एव ज्ञानादि का भाव मे समावेश हो सकता है।[1]

* इसी प्रकार आगे जघन्य, उत्कृष्ट और मध्यम अवगाहना, स्थिति, वर्णादि और ज्ञानादि को लेकर चौवीस दण्डक के जीवो के पर्यायो की विचारणा की गई है।[2]

* इसके पश्चात्—अजीव के दो भेद—अरूपी अजीव और रूपी अजीव करके रूपी अजीव के परमाणु, स्कन्ध, स्कन्धदेश और स्कन्धप्रदेश, यो चार प्रकार होते हुए भी यहाँ मुख्यतया परमाणुपुद्गल (निरशी अश) और स्कन्ध (अनेक परमाणुओ का एकत्रित पिण्ड) दो के ही पर्यायो का निरूपण किया गया है।

* प्रथमपद मे पुद्गल (रूपी अजीव), जो नाना प्रकारो मे परिणत होता है, उसका निरूपण है, जबकि इस पद मे, बताए गए रूपी अजीव-भेदो के पर्यायो की सख्या का निरूपण है। सर्वप्रथम समग्रभाव से रूपी अजीव के पर्यायो की संख्या अनन्त बता कर फिर परमाणु द्विप्रदेशी स्कन्ध, त्रिप्रदेशी स्कन्ध, यावत् दशप्रदेशी स्कन्ध, सख्यातप्रदेशी, असख्यातप्रदेशी और अनन्तप्रदेशी स्कन्धो के प्रत्येक के अनन्त पर्याय कहे है। इन सबके पर्यायो का विचार जीव की तरह द्रव्य,

---

१ पण्णवणासुत्त मू पा सू ४५५ से ४९९ तक तथा पण्णवणासुत्त भा २ पचमपद-प्रस्तावना पृ ६३-६४

२ पण्णवणासुत्त मूल पा सू ५१९, ५४० तथा पण्णवणासुत्त भा २ पचमपद की प्रस्तावना पृ ६२

क्षेत्र, काल, और भाव अथवा पूर्वोक्त दस दृष्टियो से किया गया है। परमाणु से लेकर अनन्त प्रदेशी पुद्गलस्कन्ध तक के पर्यायो का निरूपण करते हुए शास्त्रकार कहते है कि लोकाकाश असख्यातप्रदेशी है, तथापि अनन्तप्रदेशी स्कन्ध भी एक से लेकर असख्यातप्रदेश मे समा सकता है। इसे प्रदीप के दृष्टान्त द्वारा समझाया गया है। इसी प्रकार परमाणु की तरह स्कन्धो की स्थिति एक समय से लेकर असख्यात काल से अधिक नही है। वर्णादि पर्याय भी अनन्त है। तदनन्तर स्थिति, अवगाहना और वर्णादिकृत भेदो मे भी जघन्य, उत्कृष्ट और मध्यम, इन तीन प्रकारो की अपेक्षा से भी पर्याय का विचार किया है।[1]

अन्य दर्शनीय मान्यता से अन्तर—यह है कि द्रव्य के यदि पर्याय (परिणाम) होते है तो वह द्रव्य कूटस्थनित्य नही, किन्तु परिणामिनित्य मानना चाहिए। परमाणुवादी नैयायिक वैशेषिक परमाणु को कूटस्थनित्य मानते है जबकि जैनदर्शन परिणामिनित्य मानता है। तथा स्कन्ध और परमाणु मे अवयव-अवयवी का आत्यन्तिक भेद भी जैनदर्शन नही मानता, न ही परमाणु मे पार्थिवपरमाणु आदि के रूप मे जाति-भेद मानता है, तथा परमाणु मे रूप रसादि चारो का होना अनिवार्य मानता है।[2]

---

१ पण्णवणासुत्त मू पा सू ५०० से ५५८ तक तथा प्रज्ञापना म वृत्ति पत्राक २४२,

२ पण्णवणासुत्त भा २, पचमपद प्रस्तावना, पृ ६७

पंचमं विसे पयं (पज्जवपयं)

पांचवाँ विशेषपद (पर्यायपद)

पर्यायो के प्रकार और अनन्तजीवपर्याय का सयुक्तिक निरूपण—

४३८ कतिविहा ण भते ! पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! दुविहा पज्जवा पण्णत्ता । त जहा—जीवपज्जवा य अजीवपज्जवा य ।

[४३८ प्र] भगवन् ! पर्यव या पर्याय कितने प्रकार के कहे है ?

[४३८ उ] गौतम ! पर्यव (पर्याय) दो प्रकार के कहे गये है । वे इस प्रकार—(१) जीव-पर्याय और (२) अजीवपर्याय ।

जीव-पर्याय

४३९ जीवपज्जवा ण भते ! किं सखेज्जा असखेज्जा, अणता ?

गोयमा ! णो सखेज्जा, नो असखेज्जा, अणता ।

से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चति जीवपज्जवा नो सखेज्जा नो असखेज्जा अणता ?

गोयमा ! असखेज्जा नेरइया, असखेज्जा असुरा, असखेज्जा णागा, असखेज्जा सुवण्णा, असखेज्जा विज्जुकुमारा, असखेज्जा अग्गिकुमारा, असखेज्जा दीवकुमारा, असखेज्जा उदहिकुमारा, असखेज्जा दिसाकुमारा, असखेज्जा वाउकुमारा, असखेज्जा थणियकुमारा, असंखेज्जा पुढविकाइया, असखेज्जा आउकाइया, असखेज्जा तेउकाइया, असखेज्जा वाउकाइया, अणता वणफइकाइया, असखेज्जा बेइंदिया, असखेज्जा तेइंदिया, असखेज्जा चउरिंदिया, असखेज्जा पंचिंदियतिरिक्खजोणिया, असखेज्जा मणुस्सा, असखेज्जा वाणमतरा, असखेज्जा जोइसिया, असखेज्जा वेमाणिया, अणंता सिद्धा, से एएणट्ठेण गोयमा ! एव वुच्चति ते ण णो सखेज्जा णो असखेज्जा, अणंता ।

[४३९ प्र] भगवन् ! जीवपर्याय क्या सख्यात है, असख्यात है या अनन्त हैं ?

[४३९ उ] गौतम ! (वे) न (तो) सख्यात है, और न असख्यात है, (किन्तु) अनन्त है ।

[प्र] भगवन् ! यह किस कारण से कहा जाता है कि जीवपर्याय, न सख्यात है, न असख्यात (किन्तु) अनन्त हैं ?

[उ] गौतम ! असख्यात नैरयिक हैं, असख्यात असुर (असुरकुमार) है, असख्यात नाग (नागकुमार) है, असख्यात सुवर्ण (सुपर्ण) कुमार है, असख्यात विद्युत्कुमार है, असख्यात अग्निकुमार है, असख्यात द्वीपकुमार है, असख्यात उदधिकुमार हैं, असख्यात दिशाकुमार है, असख्यात वायुकुमार है, असख्यात स्तनितकुमार हैं, असख्यात पृथ्वीकायिक हैं, असख्यात अप्कायिक हैं, असख्यात तेजस्-कायिक है, असख्यात वायुकायिक है, अनन्त वनस्पतिकायिक हैं, असख्यात द्वीन्द्रिय है, असख्यात

त्रीन्द्रिय है, असख्यात चतुरिन्द्रिय है, असख्यात पचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक है, असख्यात मनुष्य है, असख्यात वाणव्यन्तर देव है, असख्यात ज्योतिष्क देव है, असख्यात वैमानिक देव है और अनन्त-सिद्ध हैं।

हे गौतम ! इस हेतु से ऐसा कहा जाता है कि वे (जीवपर्याय) सख्यात नही, असख्यात नही, (किन्तु) अनन्त है।

विवेचन—पर्याय के प्रकार और अनन्त जीवपर्याय का सयुक्तिक निरूपण—प्रस्तुत दो सूत्रो (सू ४३८-४३९) मे पर्याय के दो प्रकारो तथा जीवपर्याय की अनन्तता का युक्तिपूर्वक निरूपण किया गया है।

पर्याय स्वरूप और समानार्थक शब्द—यद्यपि पिछले पद मे नैरयिक, तिर्यञ्च, मनुष्य, देव आदि के रूप मे जीवो की स्थितिरूप पर्याय का प्रतिपादन किया गया है, तथापि औदयिक, क्षायोपशमिक तथा क्षायिक भावरूप जीवपर्यायो का तथा पुद्गल आदि अजीव-पर्यायो का निश्चय करने के लिए इस पद का प्रतिपादन किया गया है। जीव और अजीव दोनो द्रव्य है। द्रव्य का लक्षण 'गुण-पर्यायवत्त्व' कहा गया है। इसीलिए इस पद मे जीव और अजीव दोनो के पर्यायो का निरूपण किया गया है। पर्याय, पर्यव, गुण, विशेष और धर्म, ये प्राय समानार्थक शब्द हैं।

पर्यायो का परिमाण जानने की दृष्टि से गौतम स्वामी इस प्रकार का प्रश्न करते है कि जीव के पर्याय सख्यात है, असख्यात हैं या अनन्त हैं ? भगवान् ने जीव के पर्याय अनन्त इसलिए बताए कि जब पर्याय वाले (वनस्पतिकायिक, सिद्ध जीव आदि) अनन्त है तो पर्याय भी अनन्त है। यद्यपि वनस्पतिकायिको और सिद्धो को छोड कर नैरयिक आदि सभी असख्यात-असख्यात है, किन्तु उक्त दोनो अनन्त है, इस अपेक्षा से जीव के पर्याय समुच्चय रूप से अनन्त ही कहे जाएगे। सख्यात या असख्यात नही।[1]

नैरयिको के अनन्तपर्याय : क्यो और कैसे ?

४४०. नेरइयाण भते ! केवतिया पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! अणता पज्जवा पण्णत्ता।

से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चति नेरइयाण अणता पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! नेरइए नेरइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठताए तुल्ले; ओगाहणट्ठताए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिए—जति हीणे असखेज्जतिभागहीणे वा सखेज्जतिभागहीणे वा सखेज्जगुणहीणे वा असखेज्जगुणहीने वा, अह अब्भहिए असखेज्जभागब्भहिए वा सखेज्जभागब्भहिए वा सखेज्जगुणमब्भहिए वा असखेज्जगुणमब्भहिए वा; ठिईए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिए—जइ हीणे असखेज्जतिभागहीणे वा सखेज्जतिभागहीणे वा सखेज्जगुणहीणे वा असखेज्जगुणहीणे वा, अह अब्भहिए असखेज्जइभागमब्भहिए वा सखेज्जइभागमब्भहिए वा सखेज्जइगुणब्भहिए वा असखेज्जइगुणब्भहिए वा, कालवण्णपज्जवेहिं सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिए—जदि हीणे अणतभागहीणे वा असखेज्जइभागहीणे वा सखेज्जइभागहीणे वा सखिज्जइगुणहीणे वा असखिज्जइगुणहीणे वा अणतगुणहीणे वा, अह अब्भहिए अणतभाग-

---

1 प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक १७९

मब्भहिए वा असखेज्जतिभागमब्भहिए वा सखेज्जतिभागमब्भहिए वा सखेज्जगुणमब्भहिए वा असखेज्जगुणमब्भहिए वा अणतगुणमब्भहिए वा, णीलवण्णपज्जवेहिं लोहियवण्णपज्जवेहिं हालिद्दवण्णपज्जवेहिं सुक्किलवण्णपज्जवेहि य छट्ठाणवडिए, सुब्भिगधपज्जवेहिं दुब्भिगधपज्जवेहि य छट्ठाणवडिए; तित्तरसपज्जवेहिं कडुयरसपज्जवेहिं कसायरसपज्जवेहिं अबिलरसपज्जवेहिं महुररसपज्जवेहि य छट्ठाणवडिए, कक्खडफासपज्जवेहिं मउयफासपज्जवेहिं गरुयफासपज्जवेहिं लहुयफासपज्जवेहिं सीयफासपज्जवेहिं उसिणफासपज्जवेहिं निद्धफासपज्जवेहिं लुक्खफासपज्जवेहि य छट्ठाणवडिए; आभिणिबोहियणाणपज्जवेहिं सुयणाणपज्जवेहिं ओहिणाणपज्जवेहिं मतिअण्णाणपज्जवेहिं सुयअण्णाणपज्जवेहिं विभगणाणपज्जवेहिं चक्खुदसणपज्जवेहिं अचक्खुदसणपज्जवेहिं ओहिदसणपज्जवेहि य छट्ठाणवडिते, एएणट्ठेणं गोयमा ! एव वुच्चति नेरइयाण नो सखेज्जा, नो असखेज्जा, अणता पज्जवा पण्णत्ता ।

[४४० प्र] भगवन् ! नैरयिको के कितने पर्याय (पर्यव) कहे गए है ?

[४४० उ] गौतम ! उनके अनन्त पर्याय कहे गए है ।

[प्र] भगवन् ! आप किस हेतु से ऐसा कहते हैं कि नैरयिको के पर्याय अनन्त है ?

[उ] गौतम ! एक नारक दूसरे नारक से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है । प्रदेशो की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से—कथचित् (स्यात्) हीन, कथचित् तुल्य और कथचित् अधिक (अभ्यधिक) है । यदि हीन है तो असख्यातभाग हीन है अथवा सख्यातभाग हीन है, या सख्यातगुणा हीन है, अथवा असख्यातगुणा हीन है । यदि अधिक है तो असख्यातभाग अधिक है या सख्यातभाग अधिक है, अथवा सख्यातगुणा अधिक या असख्यातगुणा अधिक है ।

स्थिति की अपेक्षा से—(एक नारक दूसरे नारक से) कदाचित् हीन, कदाचित् तुल्य और कदाचित् अधिक है । यदि हीन है तो असख्यातभाग हीन या सख्यातभाग हीन है, अथवा सख्यातगुण हीन या असख्यातगुण हीन है । अगर अधिक है तो असख्यातभाग अधिक या सख्यातभाग अधिक है, अथवा सख्यातगुण अधिक या असख्यातगुण अधिक है ।

कृष्णवर्ण-पर्यायो की अपेक्षा से—(एक नारक दूसरे नारक से) कदाचित् हीन, कदाचित् तुल्य और कदाचित् अधिक है । यदि हीन है, तो अनन्तभाग हीन, असख्यातभाग हीन या सख्यातभाग हीन होता है, अथवा सख्यातगुण हीन, असंख्यातगुण हीन या अनन्तगुण हीन होता है । यदि अधिक है तो अनन्तभाग अधिक, असख्यातभाग अधिक या सख्यातभाग अधिक होता है, अथवा सख्यातगुण अधिक, असख्यातगुण अधिक या अनन्तगुण अधिक होता है ।

नीलवर्णपर्यायो, रक्तवर्णपर्यायो, पीतवर्णपर्यायो, हारिद्रवर्णपर्यायो और शुक्लवर्णपर्यायो की अपेक्षा से—(विचार किया जाए तो एक नारक, दूसरे नारक से) षट्स्थानपतित हीनाधिक होता है। सुगन्धपर्यायो और दुर्गन्धपर्यायो की अपेक्षा से—(एक नारक दूसरे नारक से) षट्स्थानपतित हीनाधिक है । तिक्तरसपर्यायो, कटुरसपर्यायो, काषायरसपर्यायो, आम्लरसपर्यायो तथा मधुररसपर्यायो की अपेक्षा से—(एक नारक दूसरे नारक से) षट्स्थानपतित हीनाधिक होता है । कर्कशस्पर्श-पर्यायो, मृदु-स्पर्शपर्यायो, गुरुस्पर्शपर्यायो, लघुस्पर्शपर्यायो, शीतस्पर्शपर्यायो, उष्णस्पर्शपर्यायो, स्निग्धस्पर्श-

त्रीन्द्रिय है, असख्यात चतुरिन्द्रिय है, असख्यात पचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक है, असख्यात मनुष्य है, असख्यात वाणव्यन्तर देव है, असख्यात ज्योतिष्क देव है, असख्यात वैमानिक देव है और अनन्त-सिद्ध हैं।

हे गौतम ! इस हेतु से ऐसा कहा जाता है कि वे (जीवपर्याय) सख्यात नही, असख्यात नही, (किन्तु) अनन्त है।

विवेचन—पर्याय के प्रकार और अनन्त जीवपर्याय का सयुक्तिक निरूपण—प्रस्तुत दो सूत्रो (सू ४३८-४३९) मे पर्याय के दो प्रकारो तथा जीवपर्याय की अनन्तता का युक्तिपूर्वक निरूपण किया गया है।

पर्याय स्वरूप और समानार्थक शब्द—यद्यपि पिछले पद मे नैरयिक, तिर्यञ्च, मनुष्य, देव आदि के रूप मे जीवो की स्थितिरूप पर्याय का प्रतिपादन किया गया है, तथापि औदयिक, क्षायोपशमिक तथा क्षायिक भावरूप जीवपर्यायो का तथा पुद्गल आदि अजीव-पर्यायो का निश्चय करने के लिए इस पद का प्रतिपादन किया गया है। जीव और अजीव दोनो द्रव्य है। द्रव्य का लक्षण 'गुण-पर्यायवत्त्व' कहा गया है। इसीलिए इस पद मे जीव और अजीव दोनो के पर्यायो का निरूपण किया गया है। पर्याय, पर्यव, गुण, विशेष और धर्म, ये प्राय समानार्थक शब्द है।

पर्यायो का परिमाण जानने की दृष्टि से गौतम स्वामी इस प्रकार का प्रश्न करते है कि जीव के पर्याय सख्यात है, असख्यात है या अनन्त हैं? भगवान् ने जीव के पर्याय अनन्त इसलिए बताए कि जब पर्याय वाले (वनस्पतिकायिक, सिद्ध जीव आदि) अनन्त हैं तो पर्याय भी अनन्त है। यद्यपि वनस्पतिकायिको और सिद्धो को छोड कर नैरयिक आदि सभी असख्यात-असख्यात है, किन्तु उक्त दोनो अनन्त हैं, इस अपेक्षा से जीव के पर्याय समुच्चय रूप से अनन्त ही कहे जाएगे। सख्यात या असख्यात नही।[1]

नैरयिकों के अनन्तपर्याय : क्यों और कैसे ?

४४० नेरइयाण भते ! केवतिया पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! अणता पज्जवा पण्णत्ता।

से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चति नेरइयाण अणता पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! नेरइए नेरइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठताए तुल्ले; ओगाहणट्ठताए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिए—जति हीणे असखेज्जतिभागहीणे वा सखेज्जतिभागहीणे वा सखेज्जगुणहीणे वा असखेज्जगुणहीने वा, अह अब्भहिए असखेज्जभागब्भहिए वा सखेज्जभागब्भहिए वा सखेज्जगुणमब्भहिए वा असखेज्जगुणमब्भहिए वा; ठिईए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिए—जइ हीणे असखेज्जतिभागहीणे वा सखेज्जतिभागहीणे वा सखेज्जगुणहीणे वा असखेज्जगुणहीणे वा, अह अब्भहिए असखेज्जइभागमब्भहिए वा सखेज्जइभागमब्भहिए वा सखेज्जइगुणब्भहिए वा असखेज्जइगुणब्भहिए वा, कालवण्णपज्जवेहिं सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिए—जदि हीणे अणतभागहीणे वा असखेज्जइभागहीणे वा सखेज्जइभागहीणे वा सखिज्जइगुणहीणे वा असखिज्जइगुणहीणे वा अणतगुणहीणे वा, अह अब्भहिए अणतभाग-

---

1 प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक १७९

मब्भहिए वा असखेज्जतिभागमब्भहिए वा सखेज्जतिभागमब्भहिए वा सखेज्जगुणमब्भहिए वा असखेज्जगुणमब्भहिए वा अणतगुणमब्भहिए वा, णीलवण्णपज्जवेहिं लोहियवण्णपज्जवेहिं हालिद्दवण्ण-पज्जवेहिं सुक्किलवण्णपज्जवेहि य छट्ठाणवडिए; सुब्भिगधपज्जवेहिं दुब्भिगधपज्जवेहि य छट्ठाणवडिए, तित्तरसपज्जवेहिं कडुयरसपज्जवेहिं कसायरसपज्जवेहिं अ बिलरसपज्जवेहिं महुररसपज्जवेहि य छट्ठाण-वडिए, कक्खडफासपज्जवेहिं मउयफासपज्जवेहिं गरुयफासपज्जवेहिं लहुयफासपज्जवेहिं सीयफास-पज्जवेहिं उसिणफासपज्जवेहिं निद्धफासपज्जवेहिं लुक्खफासपज्जवेहि य छट्ठाणवडिए; आभिणिबोहिय-णाणपज्जवेहिं सुयणाणपज्जवेहिं ओहिणाणपज्जवेहिं मतिअण्णाणपज्जवेहिं सुयअण्णाणपज्जवेहिं विभग-णाणपज्जवेहिं चक्खुदसणपज्जवेहिं अचक्खुदसणपज्जवेहिं ओहिदसणपज्जवेहि य छट्ठाणवडिते, एएणट्ठेण गोयमा ! एव वुच्चति नेरइयाण नो सखेज्जा, नो असखेज्जा, अणता पज्जवा पण्णत्ता ।

[४४० प्र] भगवन् ! नैरयिको के कितने पर्याय (पर्यव) कहे गए हैं ?

[४४० उ] गौतम ! उनके अनन्त पर्याय कहे गए है ।

[प्र] भगवन् ! आप किस हेतु से ऐसा कहते है कि नैरयिको के पर्याय अनन्त हैं ?

[उ] गौतम ! एक नारक दूसरे नारक से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है । प्रदेशो की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से—कथचित् (स्यात्) हीन, कथचित् तुल्य और कथचित् अधिक (अभ्यधिक) है । यदि हीन है तो असख्यातभाग हीन है अथवा सख्यातभाग हीन है, या सख्यातगुणा हीन है, अथवा असख्यातगुणा हीन है । यदि अधिक है तो असख्यातभाग अधिक है या सख्यातभाग अधिक है, अथवा सख्यातगुणा अधिक या असख्यातगुणा अधिक है ।

स्थिति की अपेक्षा से—(एक नारक दूसरे नारक से) कदाचित् हीन, कदाचित् तुल्य और कदाचित् अधिक है । यदि हीन है तो असख्यातभाग हीन या सख्यातभाग हीन है, अथवा सख्यातगुण हीन या असख्यातगुण हीन है । अगर अधिक है तो असख्यातभाग अधिक या सख्यातभाग अधिक है, अथवा सख्यातगुण अधिक या असख्यातगुण अधिक है ।

कृष्णवर्ण-पर्यायो की अपेक्षा से—(एक नारक दूसरे नारक से) कदाचित् हीन, कदाचित् तुल्य और कदाचित् अधिक है । यदि हीन है, तो अनन्तभाग हीन, असख्यातभाग हीन या सख्यातभाग हीन होता है, अथवा सख्यातगुण हीन, असख्यातगुण हीन या अनन्तगुण हीन होता है । यदि अधिक है तो अनन्तभाग अधिक, असख्यातभाग अधिक या सख्यातभाग अधिक होता है, अथवा सख्यातगुण अधिक, असख्यातगुण अधिक या अनन्तगुण अधिक होता है ।

नीलवर्णपर्यायो, रक्तवर्णपर्यायो, पीतवर्णपर्यायो, हारिद्रवर्णपर्यायो और शुक्लवर्णपर्यायो की अपेक्षा से—(विचार किया जाए तो एक नारक, दूसरे नारक से) षट्स्थानपतित हीनाधिक होता है। सुगन्धपर्यायो और दुर्गन्धपर्यायो की अपेक्षा से—(एक नारक दूसरे नारक से) षट्स्थानपतित हीनाधिक है । तिक्तरसपर्यायो, कटुरसपर्यायो काषायरसपर्यायो, आम्लरसपर्यायो तथा मधुररसपर्यायो की अपेक्षा से—(एक नारक दूसरे नारक से) षट्स्थानपतित हीनाधिक होता है । कर्कशस्पर्श-पर्यायो, मृदु-स्पर्शपर्यायो, गुरुस्पर्शपर्यायो, लघुस्पर्शपर्यायो, शीतस्पर्शपर्यायो, उष्णस्पर्शपर्यायो, स्निग्धस्पर्श-

पर्यायो तथा रूक्ष-स्पर्शपर्यायो की अपेक्षा से—(एक नारक दूसरे नारक से) षट्स्थानपतित हीनाधिक होता है ।

(इसी प्रकार) आभिनिबोधिकज्ञानपर्यायो, श्रुतज्ञानपर्यायो, अवधिज्ञानपर्यायो, मति-अज्ञान-पर्यायो, श्रुत-अज्ञानपर्यायो, विभगज्ञानपर्यायो, चक्षुदर्शनपर्यायो, अचक्षुदर्शनपर्यायो तथा अवधिदर्शन-पर्यायो की अपेक्षा से— (एक नारक दूसरे नारक से) षट्स्थानपतित हीनाधिक होता है ।

हे गौतम ! इस हेतु से ऐसा कहा जाता है, कि 'नारको के पर्याय सख्यात नही, असख्यात नही, किन्तु अनन्त कहे है ।'

विवेचन—नैरयिको के अनन्त पर्याय क्यो और कैसे ?—प्रस्तुत सूत्र मे अवगाहना, स्थिति, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श एव क्षायोपशमिकभावरूप ज्ञानादि के पर्यायो की अपेक्षा से हीनाधिकता का प्रतिपादन करके नैरयिको के अनन्तपर्यायो को सिद्ध किया गया है ।

प्रश्न का उद्भव और समाधान—सामान्यत जहाँ पर्यायवान् अनन्त होते हैं, वहाँ पर्याय भी अनन्त होते है, किन्तु जहाँ पर्यायवान्(नारक) अनन्त न हो (असख्यात हो), वहाँ पर्याय अनन्त कैसे होते है ? इस आशय से यह प्रश्न श्रीगौतमस्वामी द्वारा उठाया गया है । भगवान् के द्वारा उसका समाधान द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के पर्यायो की अपेक्षा से किया गया है ।

द्रव्य की अपेक्षा से नारको मे तुल्यता—प्रत्येक नारक दूसरे नारक से द्रव्य की दृष्टि से तुल्य है, अर्थात्—प्रत्येक नारक एक-एक जीव-द्रव्य है । द्रव्य की दृष्टि से उनमे कोई भेद नही है । इस कथन के द्वारा यह भी सूचित किया है कि प्रत्येक नारक अपने आप मे परिपूर्ण एव स्वतत्र जीव द्रव्य है । यद्यपि कोई भी द्रव्य, पर्यायो से सर्वथा रहित कदापि नही हो सकता, तथापि पर्यायो की विवक्षा न करके केवल शुद्ध द्रव्य की विवक्षा की जाए तो एक नारक से दूसरे नारक मे कोई विशेषता नही है ।

प्रदेशो की अपेक्षा से भी नारको मे तुल्यता—प्रदेशो की अपेक्षा से भी सभी नारक परस्पर तुल्य हैं, क्योकि प्रत्येक नारक जीव लोकाकाश के बराबर असख्यातप्रदेशी होता है । किसी भी नारक के जीवप्रदेशो मे किञ्चित् भी न्यूनाधिकता नही है । सप्रदेशी और अप्रदेशी का भेद केवल पुद्गलो मे है, परमाणु अप्रदेशी होता है, तथा द्विप्रदेशी, त्रिप्रदेशी आदि स्कन्ध सप्रदेशी होते हैं ।

क्षेत्र (अवगाहना) की अपेक्षा से नारको मे हीनाधिकता—अवगाहना का अर्थ सामान्यतया आकाशप्रदेशो को अवगाहन करना—उनमे समाना होता है । यहाँ उसका अर्थ है—शरीर की ऊँचाई । अवगाहना (शरीर की ऊँचाई) की अपेक्षा से सब नारक तुल्य नही हैं । जैसे रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिको के वैक्रियशरीर की जघन्य अवगाहना अगुल के असख्यातवे भाग की और उत्कृष्ट सात धनुष, तीन हाथ और छह अगुल की है । आगे-आगे की नरकपृथ्वियो मे उत्तरोत्तर दुगुनी-दुगुनी अवगाहना होती है । सातवी नरकपृथ्वी मे अवगाहना जघन्य अगुल के असख्यातवे भाग की और उत्कृष्ट पाच सौ धनुष की है । इस दृष्टि से किसी नारक से किसी नारक की अवगाहना हीन है, किसी की अधिक है, जबकि किसी की तुल्य भी है । यदि कोई नारक अवगाहना से हीन (न्यून) होगा तो वह असख्यातभाग या सख्यातभाग हीन होगा, अथवा सख्यातगुण हीन या असख्यातगुण हीन होगा, किन्तु यदि कोई नारक अवगाहना मे अधिक होगा तो असख्यातभाग या सख्यातभाग अधिक

होगा, अथवा सख्यातगुण अधिक या असख्यातगुण अधिक होगा। यह हीनाधिकता चतु स्थानपतित कहलाती है। नारक असख्यातभाग हीन या सख्यातभाग हीन अथवा सख्यातभाग अधिक या असख्यातभाग अधिक इस प्रकार से होते है, जैसे—एक नारक की अवगाहना ५०० धनुप की है और दूसरे की अवगाहना है—अगुल के असख्यातवे भाग कम पाच सौ धनुष की। अगुल का असख्यातवाँ भाग पाच सौ धनुष का असख्यातवाँ भाग है। अत जो नारक अगुल के असख्यातवे भाग कम पाच सौ धनुष को अवगाहना वाला है, वह पाच सौ धनुष की अवगाहना वाले नारक की अपेक्षा असख्यातभाग हीन है, और पाच सौ धनुष की अवगाहना वाला दूसरे नारक से असख्यातभाग अधिक है। इसी प्रकार एक नारक ५०० धनुष की अवगाहना वाला है, जबकि दूसरा उससे दो धनुष कम है, अर्थात् ४९८ धनुष की अवगाहना वाला है। दो धनुष पाच सौ धनुष का सख्यातवाँ भाग है। इस दृष्टि से दूसरा नारक पहले नारक से सख्यातभाग हीन हुआ, जबकि पहला (पाच सौ धनुष वाला) नारक दूसरे नारक (४९८ धनुष वाले) से सख्यातभाग अधिक हुआ। इसी प्रकार कोई नारक एक सौ पच्चीस धनुष की अवगाहना वाला है और दूसरा पूरे पाच-सौ धनुष की अवगाहना वाला है। एक सौ पच्चीस धनुष के चौगुने पाच सौ धनुष होते है। इस दृष्टि से १२५ धनुष की अवगाहना वाला, ५०० धनुष की अवगाहना वाले नारक से सख्यातगुण हीन हुआ और पाच सौ धनुष की अवगाहना वाला, एक सौ पच्चीस धनुष की अवगाहना वाले नारक से सख्यातगुण अधिक हुआ। इसी प्रकार कोई नारक अपर्याप्त अवस्था मे अगुल के असख्यातवे भाग की अवगाहना वाला है और दूसरा नारक पाच सौ धनुष की अवगाहना वाला है। अगुल का असख्यातवाँ भाग असख्यात से गुणित होकर पाच सौ धनुष बनता है। अत अगुल के असख्यातवे भाग की अवगाहना वाला नारक परिपूर्ण पाच सौ धनुष की अवगाहना वाले नारक से असख्यातगुण हीन हुआ और पाच सौ धनुष की अवगाहना वाला नारक, अगुल के असख्यातवें भाग की अवगाहना वाले नारक से असख्यातगुण अधिक हुआ।

काल (स्थिति) की अपेक्षा से नारको की न्यूनाधिकता—स्थिति (आयुष्य की अनुभूति) की अपेक्षा से कोई नारक किसी दूसरे नारक से कदाचित् हीन, कदाचित् तुल्य और कदाचित् अधिक होता है। अवगाहना की तरह स्थिति की अपेक्षा से भी एक नारक दूसरे नारक से असख्यातभाग या सख्यातभाग हीन अथवा सख्यातगुणा या असख्यातगुणा हीन होता है, अथवा असख्यातभाग या सख्यातभाग अधिक अथवा सख्यातगुणा या असख्यातगुणा अधिक स्थिति वाला चतु स्थानपतित होता है। उदाहरणार्थ—एक नारक पूर्ण तेतीस सागरोपम की स्थिति वाला है, जबकि दूसरा नारक एक-दो समय कम तेतीस सागरोपम की स्थिति वाला है। अत एक-दो समय कम तेतीस सागरोपम की स्थिति वाला नारक, पूर्ण तेतीस सागरोपम की स्थिति वाले नारक से असख्यातभाग हीन हुआ, जबकि परिपूर्ण तेतीस सागरोपम की स्थिति वाला नारक, एक दो समय कम तेतीस सागरोपम की स्थिति वाले नारक से असख्यातभाग अधिक हुआ, क्योकि एक-दो समय, सागरोपम के असख्यातवे भाग मात्र है। इसी प्रकार एक नारक तेतीस सागरोपम की स्थिति वाला है, और दूसरा है—पल्योपम कम तेतीस सागरोपम की स्थिति वाला। दस कोटाकोटी पल्योपम का एक सागरोपम होता है। इस दृष्टि से पल्योपमो से हीन स्थिति वाला नारक, पूर्ण तेतीस सागरोपम स्थिति वाले नारक से सख्यातभाग हीन स्थिति वाला हुआ, जबकि दूसरा, पहले से सख्यातभाग अधिक स्थिति वाला हुआ। इसी प्रकार एक नारक तेतीस सागरोपम की स्थिति वाला है, जबकि दूसरा है—एक सागरोपम की स्थिति वाला। इनमे एक सागरोपम-स्थिति वाला, तेतीस सागरोपम-स्थिति वाले नारक से सख्यातगुण-हीन हुआ,

क्योकि एक सागर को तेतीस सागर से गुणा करने पर तेतीस सागर होते हैं। इसके विपरीत तेतीस सागरोपम-स्थिति वाला नारक एक सागरोपम स्थिति वाले नारक से सख्यातगुण अधिक हुआ। इसी प्रकार एक नारक दस हजार वर्ष की स्थिति वाला है, जबकि दूसरा नारक है—तेतीस सागरोपम की स्थिति वाला। दस हजार को असख्यात वार गुणित करने पर तेतीस सागरोपम होते हैं। अतएव दस हजार वर्ष की स्थिति वाला नारक, तेतीस सागरोपम की स्थिति वाले नारक की अपेक्षा **असख्यातगुण हीन** स्थिति वाला हुआ, जबकि उसकी अपेक्षा तेतीस सागरोपम की स्थिति वाला **असख्यातगुण अधिक** स्थिति वाला हुआ।

भाव की अपेक्षा से नारको की षट्स्थानपतित हीनाधिकता—(१) कृष्णादि वर्ण के पर्यायो की अपेक्षा से—पुद्गल-विपाकी नामकर्म के उदय से होने वाले औदयिक भाव का आश्रय लेकर वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श की हीनाधिकता की प्ररूपणा की गई है। यथा—(१) कृष्णवर्ण के पर्यायो की अपेक्षा से एक नारक दूसरे नारक से अनन्तभागहीन, असख्यातभागहीन सख्यातभागहीन होता है, अथवा सख्यातगुणहीन, असख्यातगुणहीन या अनन्तगुणहीन होता है। यदि अधिक होता है तो अनन्तभाग, असख्यातभाग या सख्यात भाग अधिक होता है अथवा सख्यातगुण, असख्यातगुण या अनन्तगुण अधिक होता है। यह षट्स्थानपतित हीनाधिकता है। इस षट्स्थानपतित हीनाधिकता मे जो जिससे अनन्तभाग-हीन होता है, वह सर्वजीवानन्तक से भाग करने पर जो लब्ध हो, उसे अनन्तवे भाग से हीन समझना चाहिए। जो जिससे असख्यातभाग हीन है, असख्यात लोकोकाश-प्रदेश प्रमाणराशि से भाग करने पर जो लब्ध हो, उतने भाग कम समझना चाहिए। जो जिससे सख्यातभाग हीन हो, उसे उत्कृष्टसख्यक से भाग करने पर जो लब्ध हो, उससे हीन समझना चाहिए। गुणनसख्या मे जो जिससे सख्येयगुणा होता है, उसे उत्कृष्टसख्यक के साथ गुणित करने पर जो (गुणनफल) राशिलब्ध हो, उतना समझना चाहिए। जो जिससे असख्यातगुणा है, उसे असख्यात-लोकाकाश प्रदेशो के प्रमाण जितनी राशि से गुणित करना चाहिए और गुणाकार करने पर जो राशि लब्ध हो, उतना समझना चाहिए। जो जिससे अनन्तगुणा है, उसे सर्वजीवानन्तक से गुणित करने पर जो सख्या लब्ध हो, उतना समझना चाहिए। इसी तरह नीलादि वर्णो के पर्यायो की अपेक्षा से एक नारक से दूसरे नारक की षट्स्थानपतित हीनाधिकता घटित कर लेनी चाहिए।

इसी प्रकार सुगन्ध और दुर्गन्ध के पर्यायो की अपेक्षा से भी एक नारक दूसरे नारक की अपेक्षा षट्स्थानपतित हीनाधिक होता है। वह भी पूर्ववत् समझना लेना चाहिए। तिक्तादिरस के पर्यायो की अपेक्षा से भी एक नारक दूसरे नारक से षट्स्थानपतित हीनाधिक होता है, इसी तरह कर्कश आदि स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा भी हीनाधिकता होती है, यह समझ लेना चाहिए।

क्षायोपशमिक भावरूप पर्यायो की अपेक्षा से हीनाधिकता—मति आदि तीन ज्ञान, मति अज्ञानादि तीन अज्ञान और चक्षुदर्शनादि तीन दर्शन के पर्यायो की अपेक्षा से भी कोई नारक किसी अन्य नारक से हीन, अधिक या तुल्य होता है। इनकी हीनाधिकता भी वर्णादि के पर्यायो की अपेक्षा से उक्त हीनाधिकता की तरह षट्स्थानपतित के अनुसार समझ लेनी चाहिए। आशय यह है कि जिस प्रकार पुद्गलविपाकी नामकर्म के उदय से उत्पन्न होने वाले औदयिकभाव को लेकर नारको को षट्स्थानपतित कहा है, उसी प्रकार जीवविपाकी ज्ञानावरणीय आदि कर्मों के क्षयोपशम से उत्पन्न

---

१ प्रज्ञापनासूत्र, मलय वृत्ति, पत्राक १८१-१८२

होने वाले क्षायोपशमिक भाव को लेकर आभिनिबोधिक ज्ञान आदि पर्यायो की अपेक्षा भी षट्स्थानपतित हानि-वृद्धि समझ लेनी चाहिए ।[1]

षट्स्थानपतितत्व का स्वरूप—यद्यपि कृष्णवर्ण के पर्यायो का परिमाण अनन्त है, तथापि असत्कल्पना से उसे दस हजार मान लिया जाए और सर्वजीवानन्तक को सौ मान लिया जाए तो दस हजार मे सौ का भाग देने पर सौ की सख्या लब्ध होती है । इस दृष्टि से एक नारक के कृष्ण-वर्णपर्यायो का परिमाण मान लो दस सहस्र है और दूसरे के सौ कम दस सहस्र है । सर्वजीवानन्तक मे भाग देने पर सौ की सख्या लब्ध होने से वह अनन्तवाँ भाग है, अत जिस नारक के कृष्णवर्ण के पर्याय सौ कम दस सहस्र है वह पूरे दस सहस्र कृष्णवर्णपर्यायो वाले नारक की अपेक्षा **अनन्तभागहीन** कहलाता है । उसकी अपेक्षा से दूसरा पूर्ण दस सहस्र कृष्णवर्णपर्यायो वालो नारक **अनन्तभाग-अधिक** है । इसी प्रकार दस सहस्र परिमित कृष्णवर्ण के पर्यायो मे लोकाकाश के प्रदेशो के रूप मे कल्पित पचास से भाग दिया जाए तो दो सौ सख्या आती है, यह असख्यातवाँ भाग कहलाता है । इस दृष्टि से किसी नारक के कृष्णवर्ण-पर्याय दो सौ कम दस हजार हैं और किसी के पूरे दस हजार हैं । इनमे से दो सौ कम दस हजार कृष्णवर्ण-पर्याय वाला नारक पूर्ण दस हजार कृष्णवर्णपर्याय वाले नारक से **असख्यातभागहीन** कहलाता है और परिपूर्ण कृष्ण वाला नारक, दो सौ कम दस सहस्र वाले की अपेक्षा **असख्यातभागअधिक** कहलाता है । इसी प्रकार पूर्वोक्त दस सहस्रसख्यक कृष्णवर्ण-पर्यायो मे सख्यातपरिमाण के रूप मे कल्पित दस सख्या का भाग दिया जाए तो एक सहस्र सख्या लब्ध होती है । यह सख्या दस हजार का सख्यातवाँ भाग है । मान लो, किसी नारक के कृष्णवर्णपर्याय मे सख्यात परिमाण के रूप मे कल्पित दस सख्या का भाग दिया जाए तो एक सहस्र सख्या लब्ध होती हैं । यह सख्या दस हजार का सख्यातवाँ भाग है । मान लो, किसी नारक के कृष्णवर्णपर्याय ९ हजार हैं और दूसरे नारक के दस हजार हैं, तो नौ हजार कृष्णवर्णपर्याय वाला नारक, पूर्ण दस हजार कृष्णवर्णपर्यायवाले नारक से **सख्यातभागहीन** हुआ, तथा उसकी अपेक्षा परिपूर्ण दस हजार कृष्णवर्णपर्यायवाला नारक **सख्यातभाग-अधिक** हुआ । इसी प्रकार एक नारक के कृष्णवर्णपर्याय एक सहस्र हैं, दूसरे नारक के दस सहस्र है । यहाँ उत्कृष्ट सख्या के रूप मे कल्पित दस सख्या को हजार से गुणाकार करने पर दससहस्रसख्या आती है । इस दृष्टि से एक सहस्र कृष्णवर्णपर्याय वाला नारक, दससहस्रसख्यक कृष्णवर्णपर्याय वाले नारक से **सख्यातगुणहीन** है और उसकी अपेक्षा दस सहस्र कृष्णवर्णपर्याय वाला नारक **सख्यातगुण-अधिक** है । इसी प्रकार एक नारक के कृष्णवर्णपर्यायो का परिमाण दो सौ है, और दूसरे के कृष्णवर्णपर्यायो का परिमाण दस हजार है । दो सौ का यदि असख्यात रूप मे कल्पित पचास के साथ गुणा किया जाए तो दस हजार होता है । अत दो सौ कृष्णवर्णपर्याय वाला नारक दस हजार कृष्णवर्ण-पर्याय वाले नारक की अपेक्षा **असख्यातगुण हीन** है और उसकी अपेक्षा दस हजार कृष्णवर्णपर्याय वाला नारक **असख्यातगुणा अधिक** है । इसी प्रकार मान लो, एक नारक के कृष्णवर्णपर्याय सौ है, और दूसरे के दस हजार है । सर्वजीवान्तक परिमाण के रूप मे परिकल्पित सौ को सौ से गुणाकार किया जाए तो दस हजार सख्या होती है । अतएव सौ कृष्णवर्णपर्याय वाला नारक दस हजार कृष्ण वर्णवाले नारक से **अनन्तगुणा हीन** हुआ और उसकी अपेक्षा दूसरा **अनन्तगुणा अधिक** हुआ ।[2]

---

१ प्रज्ञापनासूत्र, मलय वृत्ति, पत्रांक १८२

२ वही, मलय वृत्ति, पत्रांक १८३

निष्कर्ष—यहाँ कृष्णवर्ण आदि पर्यायो को लेकर जो षट्स्थानपतित हीनाधिक्य बताया गया है, उससे स्पष्ट ध्वनित हो जाता है कि जब एक कृष्णवर्ण को लेकर ही अनन्तपर्याय होते है तो सभी वर्णो के पर्यायो का तो कहना ही क्या ? इसके द्वारा यह भी सूचित कर दिया है कि जीव स्वनिमित्तक एव परनिमित्तक विविध परिणामो से युक्त होता है। कर्मोदय से प्राप्त शरीर के अनुसार उसके (जीव के) आत्मप्रदेशो मे सकोच-विस्तार तो होता है, किन्तु हीनाधिकता नही होती ।[1]

असुरकुमार आदि भवनवासी देवो के अनन्त पर्याय—

४४१ असुरकुमाराण भते ! केवतिया पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! अणता पज्जवा पण्णत्ता ।

से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चइ असुरकुमाराण अणता पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! असुरकुमारे असुरकुमारस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए, ठितीए चउट्ठाणवडिए, कालवण्णपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए, एव णीलवण्णपज्जवेहिं लोहियवण्णपज्जवेहिं हालिद्दवण्णपज्जवेहिं सुक्किलवण्णपज्जवेहिं, सुब्भिगधपज्जवेहिं दुब्भिगधपज्जवेहिं तित्तरसपज्जवेहिं कडुयरसपज्जवेहिं कसायरसपज्जवेहिं अबिलरसपज्जवेहिं महुररसपज्जवेहिं, कक्खडफासपज्जवेहिं मउयफासपज्जवेहिं गरुयफासपज्जवेहिं लहुयफासपज्जवेहिं सीतफासपज्जवेहिं उसिणफासपज्जवेहिं निद्धफासपज्जवेहिं लुक्खफासपज्जवेहिं, आभिणिबोहियणाणपज्जवेहिं सुतणाणपज्जवेहिं ओहिणाणपज्जवेहिं, मतिअण्णाणपज्जवेहिं सुयअण्णाणपज्जवेहिं विभगणाणपज्जवेहिं, चक्खुदसणपज्जवेहिं अचक्खुदसणपज्जवेहिं ओहिदसणपज्जवेहि य छट्ठाणवडिते, से तेणट्ठेण गोयमा ! एव वुच्चति असुरकुमाराण अणता पज्जवा पण्णत्ता ।

[४४१ प्र] भगवन् ! असुरकुमारो के कितने पर्याय कहे है ?

[४४१ उ] गौतम ! उनके अनन्तपर्याय कहे है ।

[प्र] भगवन् ! किस हेतु से ऐसा कहा जाता है कि 'असुरकुमारो के पर्याय अनन्त है ?'

[उ] गौतम ! एक असुरकुमार दूसरे असुरकुमार से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशो की अपेक्षा से तुल्य है, (किन्तु) अवगाहना की अपेक्षा से चतु स्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से चतु स्थानपतित है, कृष्णवर्णपर्यायो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, इसी प्रकार नीलवर्ण-पर्यायो, रक्त(लोहित)वर्ण-पर्यायो, हारिद्रवर्ण-पर्यायो, शुक्लवर्ण-पर्यायो की अपेक्षा से, तथा सुगन्ध और दुर्गन्ध के पर्यायो की अपेक्षा से, तिक्तरस-पर्यायो, कटुरस पर्यायो, काषायरस-पर्यायो, आम्लरस-पर्यायो एव मधुरस-पर्यायो की अपेक्षा से, तथा कर्कशस्पर्श-पर्यायो, मृदुस्पर्श-पर्यायो, गुरुस्पर्श-पर्यायो, लघुस्पर्श-पर्यायो, शीतस्पर्श-पर्यायो, उष्णस्पर्श-पर्यायो, स्निग्धस्पर्श-पर्यायो, और रूक्षस्पर्श-पर्यायो की अपेक्षा से तथा आभिनिबोधिकज्ञान-पर्यायो, श्रुतज्ञान-पर्यायो, अवधिज्ञान-पर्यायो, मति-अज्ञान-पर्यायो, श्रुत-अज्ञान-पर्यायो, विभगज्ञान-पर्यायो, चक्षुदर्शनपर्यायो, अचक्षुदर्शन-पर्यायो और अवधि-

१ प्रज्ञापनासूत्र, मलय वृत्ति, पत्राक १८४

दर्शन-पर्यायो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित (हीनाधिक) हैं। हे गौतम ! इसी कारण से ऐसा कहा जाता है कि असुरकुमारो के पर्याय अनन्त कहे है।

४४२ एव जहा नेरइया जहा असुरकुमारा तहा नागकुमारा वि जाव थणियकुमारा।

[४४२] इसी प्रकार जैसे नैरयिको के (अनन्तपर्याय कहे गए है,) और असुरकुमारो के कहे हैं, उसी प्रकार नागकुमारो से लेकर यावत् स्तनितकुमारो के (अनन्तपर्याय कहने चाहिए।)

विवेचन—असुरकुमार आदि भवनपतिदेवो के अनन्तपर्याय—प्रस्तुत दो सूत्रो (४४१-४४२) मे असुरकुमार से लेकर स्तनितकुमार तक के भवनपतियो के अनन्तपर्यायो का, नैरयिको के अतिदेश-पूर्वक सयुक्तिक निरूपण किया गया है।

असुरकुमारो के पर्यायो की अनन्तता—एक असुरकुमार दूसरे असुरकुमार से पूर्वोक्त सूत्रानुसार द्रव्य और प्रदेशो की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना और स्थिति के पर्यायो की दृष्टि से पूर्ववत् चतु स्थानपतित हीनाधिक है तथा कृष्णादिवर्ण, सुगन्ध-दुर्गन्ध, तिक्त आदि रस, कर्कश आदि स्पर्श एव ज्ञान, अज्ञान एव दर्शन के पर्यायो की अपेक्षा से पूर्ववत् षट्स्थानपतित है। आशय यह है कि कृष्णवर्ण को लेकर अनन्तपर्याय होते है, तो सभी वर्णो के पर्यायो का तो कहना ही क्या ? इस हेतु से असुरकुमारो के[1] अनन्तपर्याय सिद्ध हो जाते हैं।

पांच स्थावरो (एकेन्द्रियो) के अनन्तपर्यायो की प्ररूपणा—

४४३ पुढविकाइयाण भते ! केवतिया पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! अणता पज्जवा पण्णत्ता।

से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चति पुढविकाइयाण अणता पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! पुढविकाइए पुढविकाइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए तुल्ले; ओगाहणट्ठयाए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भइए—जदि हीणे असखेज्जतिभागहीणे वा संखेज्जतिभागहीणे वा सखेज्जगुणहीणे वा असखेज्जगुणहीणे वा, अह अब्भहिए असखेज्जतिभागअब्भतिए वा सखेज्जतिभाग-अब्महिए वा सखेज्जगुणअब्महिए वा असखेज्जगुणअब्महिए वा; ठितीए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिए—जति हीणे असखेज्जभागहीणे वा सखेज्जभागहीणे वा सखेज्जगुणहीणे वा, अह अब्भतिए असखेज्जभागअब्भतिए वा सखेज्जभागअब्भतिए वा सखेज्जगुणअब्भतिए वा, वण्णेहिं गधेहिं रसेहिं फासेहिं, मतिअण्णाणपज्जवेहिं सुयअण्णाणपज्जवेहिं अचक्खुदसणपज्जवेहिं छट्ठाणवडिते।

[४४३ प्र] भगवन् ! पृथ्वीकायिको के कितने पर्याय कहे गए है ?

[४४३ उ] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय कहे हैं।

[प्र] भगवन् ! किस हेतु से ऐसा कहा जाता है कि पृथ्वीकायिक जीवो के अनन्त पर्याय हैं ?

[उ] गौतम ! एक पृथ्वीकायिक दूसरे पृथ्वीकायिक से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, (आत्म) प्रदेशो की अपेक्षा से (भी) तुल्य है, (किन्तु) अवगाहना की अपेक्षा से कदाचित् हीन है, कदाचित् तुल्य है और कदाचित् अधिक है। यदि हीन है तो असख्यातभाग हीन है अथवा सख्यातभाग हीन है,

---

१ प्रज्ञापनासूत्र, प्रमेयबोधिनी टीका, भा-२, पृ ५७६ से ५७९ तक

अथवा सख्यातगुण हीन है, या असख्यातगुण हीन है। यदि अधिक है तो असख्यातभाग अधिक है या सख्यातभाग अधिक है, अथवा सख्यातगुण अधिक है अथवा असख्यातगुण अधिक है। स्थिति की अपेक्षा से कदाचित् हीन है कदाचित् तुल्य है, कदाचित् अधिक है। यदि हीन है तो असख्यातभाग हीन है, या सख्यातभाग हीन है, अथवा सख्यातगुण हीन है। यदि अधिक है तो असख्यातभाग अधिक है, या सख्यात भाग अधिक है, अथवा सख्यातगुण अधिक है। वर्णो (के पर्यायो) गन्धो, रसो और स्पर्शो (के पर्यायो) की अपेक्षा से, मति-अज्ञान-पर्यायो, श्रुत-अज्ञानपर्यायो एव अचक्षुदर्शनपर्यायो की अपेक्षा से (एक पृथ्वीकायिक दूसरे पृथ्वीकायिक से) षट्स्थानपतित है।

४४४ आउकाइयाण भते ! केवतिया पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! अणता पज्जवा पण्णत्ता।

से केणट्ठेण भते ! एवं वुच्चति आउकाइयाण अणता पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! आउकाइए आउकाइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठताए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए तिट्ठाणवडिते, वण्ण-गध-रस-फास-मतिअण्णाण-सुतअण्णाण-अचक्खुदसणपज्जवेहि य छट्ठाणवडिते।

[४४४ प्र] भगवन् ! अप्कायिक जीवो के कितने पर्याय कहे है ?

[४४४ उ] गौतम (उनके) अनन्तपर्याय कहे गए हैं।

[प्र] भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहा जाता है कि अप्कायिक जीवो के अनन्तपर्याय है ?

[उ] गौतम ! एक अप्कायिक दूसरे अप्कायिक से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशो की अपेक्षा से (भी) तुल्य है, (किन्तु) अवगाहना की अपेक्षा से चतु स्थानपतित (हीनाधिक) है, स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थान-पतित (हीनाधिक) है। वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श मति-अज्ञान, श्रुत-अज्ञान और अचक्षुदर्शन के पर्यायो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित (हीनाधिक) है।

४४५ तेउक्काइयाण पुच्छा।

गोयमा ! अणता पज्जवा पण्णत्ता।

से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चति तेउक्काइयाण अणता पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! तेउक्काइए तेउक्काइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए तिट्ठाणवडिते, वण्ण-गध-रस-फास-मतिअण्णाण-सुयअण्णाण-अचक्खुदसणपज्जवेहि य छट्ठाणवडिते।

[४४५ प्र] भगवन् ! तेजस्कायिक जीवो के कितने पर्याय कहे गए है ?

[४४५ उ] गौतम ! (उनके) अनन्तपर्याय कहे गए है।

[प्र] भगवन् ! ऐसा किस हेतु से कहा जाता है कि तेजस्कायिक जीवो के अनन्तपर्याय है ?

[उ] गौतम ! एक तेजस्कायिक, दूसरे तेजस्कायिक से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशो की अपेक्षा से (भी) तुल्य है, किन्तु) अवगाहना की अपेक्षा से चतु स्थानपतित (हीनाधिक) है।

स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित (हीनाधिक) है, तथा वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, मति-अज्ञान, श्रुत-अज्ञान और अचक्षुदर्शन के पर्यायो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित (हीनाधिक) है।

४४६ वाउक्काइयाण पुच्छा।

गोयमा ! वाउकाइयाण अणता पज्जवा पण्णत्ता। से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चति वाउकाइयाण अणता पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! वाउकाइए वाउकाइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए तिट्ठाणवडिते, वण्ण-गध-रस-फास-मतिअण्णाण-सुयअण्णाण-अचक्खुदसणपज्जवेहि य छट्ठाणवडिते।

[४४६ प्र] भगवन् ! वायुकायिक जीवो के कितने पर्याय कहे गए है ?

[४४६ उ] गौतम ! (वायुकायिक जीवो के) अनन्त पर्याय कहे गए है।

[प्र] भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहा जाता है कि 'वायुकायिक जीवो के अनन्त पर्याय कहे गए है ?'

[उ] गौतम ! एक वायुकायिक, दूसरे वायुकायिक से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशो की अपेक्षा से तुल्य है (किन्तु) अवगाहना की अपेक्षा से चतु स्थानपतित (हीनाधिक) है। स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित (हीनाधिक) है। वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श तथा मति-अज्ञान, श्रुत-अज्ञान और अचक्षुदर्शन के पर्यायो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित (हीनाधिक) है।

४४७ वणप्फइकाइयाण भते ! केवतिया पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! अणता पज्जवा पण्णत्ता। से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चति वणप्फइकाइयाणं अणता पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! वणप्फइकाइए वणप्फइकाइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए तिट्ठाणवडिए, वण्ण-गध-रस-फास-मतिअण्णाण-सुयअण्णाण-अचक्खुदसणपज्जवेहि य छट्ठाणवडिते, से तेणट्ठेण गोयमा ! एव वुच्चति वणस्सतिकाइयाण अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

[४४७ प्र] भगवन् ! वनस्पतिकायिक जीवो के कितने पर्याय कहे गए है ?

[४४७ उ] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

[प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि वनस्पतिकायिक जीवो के अनन्त पर्याय है ?

[उ] गौतम ! एक वनस्पतिकायिक दूसरे वनस्पतिकायिक से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशो की अपेक्षा से (भी) तुल्य है, (किन्तु) अवगाहना की अपेक्षा से चतु स्थानपतित है तथा स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित है किन्तु वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के तथा मति-अज्ञान, श्रुत-अज्ञान

और अचक्षुदर्शन के पर्यायो की अपेक्षा से षट्स्थान-पतित(हीनाधिक) है। इस कारण से हे गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि वनस्पतिकायिक जीवो के अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

विवेचन—पाच स्थावरो के अनन्तपर्यायो की प्ररूपणा—प्रस्तुत पाच सूत्रो (सू ४४३ से ४४७ तक) मे पृथ्वीकायिक से लेकर वनस्पतिकायिक तक पाचो एकेन्द्रिय स्थावरो के प्रत्येक के पृथक्-पृथक् अनन्त-अनन्त पर्यायो का निरूपण किया गया है।

पृथ्वीकायिक आदि एकेन्द्रिय जीवो के पर्यायो की अनन्तता विभिन्न अपेक्षाओ से—मूलपाठ मे पूर्ववत् अवगाहना की अपेक्षा से चतु स्थानपतित, स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित तथा समस्त वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श की अपेक्षा से एव मति-अज्ञान, श्रुत-अज्ञान और अचक्षुदर्शन के पर्यायो की अपेक्षा से पूर्ववत् षट्स्थानपतित हीनाधिकता बता कर इन सब एकेन्द्रिय जीवो के प्रत्येक के पृथक्-पृथक् अनन्तपर्याय सिद्ध किये गए है। जहाँ (अवगाहना मे) चतु स्थानपतित हीनाधिकता है, वहाँ एक पृथ्वीकायिक आदि दूसरे पृथ्वीकायिक आदि से असख्यातभाग, सख्यातभाग अथवा संख्यातगुण या असख्यातगुण हीन होता है, अथवा असख्यातभाग, सख्यातभाग, या सख्यातगुण अथवा असख्यातगुण अधिक होता है। यद्यपि पृथ्वीकायिक जीवो की अवगाहना अगुल के असख्यातवे भाग-प्रमाण होती है, किन्तु अगुल के असख्यातवे भाग के भी असख्यात भेद होते हैं, इस कारण पृथ्वीकायिक जीवो की पूर्वोक्त चतु स्थानपतित हीनाधिकता मे कोई विरोध नही है।

जहाँ (स्थिति मे) त्रिस्थानपतित हीनाधिकता होती है, वहाँ पृथ्वीकायिकादि मे हीनाधिकता इस प्रकार समझनी चाहिए—एक एकेन्द्रिय दूसरे एकेन्द्रिय से असख्यातभाग या सख्यातभाग हीन अथवा सख्यातगुणा हीन होता है अथवा असख्यातभाग अधिक, सख्यातभाग अधिक या सख्यातगुण अधिक होता है। इनकी(स्थिति मे चतु स्थानपतित हीनाधिकता नही होती, क्योकि इनमे असख्यातगुणहानि और असख्यातगुणवृद्धि सम्भव नही है। इसका कारण यह है कि पृथ्वीकायिक आदि की सर्वजघन्य आयु क्षुल्लकभवग्रहणपरिमित है। क्षुल्लकभव का परिमाण दो सौ छप्पन आवलिकामात्र है। दो घडी का एक मुहूर्त्त होता है। और इस एक मुहूर्त्त मे ६५५३६ भव होते है। इसके अतिरिक्त पृथ्वीकाय आदि की उत्कृष्ट स्थिति भी सख्यात वर्ष की ही होती है। अत इनमे असख्यातगुणा हानि-वृद्धि (न्यूनाधिकता) नही हो सकती। अब रही बात असख्यातभाग, सख्यातभाग और सख्यातगुणा हानिवृद्धि की, वह इस प्रकार है। जैसे—एक पृथ्वीकायिक की स्थिति परिपूर्ण २२ हजार वर्ष की है, और दूसरे की एक समय कम २२००० वर्ष की है, इनमे से परिपूर्ण २२००० वर्ष की स्थिति वाले पृथ्वीकायिक की अपेक्षा, एक समय कम २२००० वर्ष की स्थिति वाला पृथ्वीकायिक असख्यातभाग हीन कहलाएगा, जबकि दूसरा असख्यातभाग अधिक कहलाएगा। इसी प्रकार एक की परिपूर्ण २२००० वर्ष की स्थिति है, जबकि दूसरे की अन्तर्मुहूर्त्त आदि कम २२००० वर्ष की है। अन्तर्मुहूर्त्त आदि बाईस हजार वर्ष का सख्यातवाँ भाग है। अत पूर्ण २२ हजार वर्ष की स्थिति वाले की अपेक्षा अन्तर्मुहूर्त्त कम २२ हजार वर्ष की स्थिति वाला सख्यात-भाग हीन है और उसकी अपेक्षा अन्तर्मुहूर्त्त कम २२००० वर्ष की स्थिति वाला सख्यातभाग अधिक है। इसी प्रकार एक पृथ्वीकायिक की पूरी २२००० वर्ष की स्थिति है, और दूसरे की अन्तर्मुहूर्त की, एक मास की, एक वर्ष की या एक हजार वर्ष की है। अन्तर्मुहूर्त्त आदि किसी नियत सख्या से गुणाकार करने पर २२००० वर्ष की सख्या होती है। अत अन्तर्मुहूर्त्त आदि की आयुवाला पृथ्वीकायिक, पूर्ण बाईस हजार वर्ष की स्थिति वाले की अपेक्षा सख्यातगुण-हीन है और इसकी अपेक्षा २२००० वर्ष की

स्थिति वाला पृथ्वीकायिक सख्यातगुण अधिक है। इसी प्रकार अप्कायिक से वनस्पतिकायिक तक के एकेन्द्रिय जीवो की अपनी-अपनी स्थिति के अनुसार त्रिस्थानपतित न्यूनाधिकता समझ लेनी चाहिए।

भावो (वर्णादि या मति-अज्ञानादि के पर्यायो) की अपेक्षा से षट्स्थानपतित न्यूनाधिकता होती है, वहाँ उसे इस प्रकार समझना चाहिए—एक पृथ्वीकायिक आदि, दूसरे पृथ्वीकायिक आदि से अनन्तभागहीन, असख्यातभागहीन और सख्यातभागहीन अथवा सख्यातगुणहीन, असख्यातगुण-हीन और अनन्तगुणहीन तथा अनन्तभाग-अधिक, असख्यातभाग-अधिक और सख्यातभाग-अधिक तथा सख्यातगुणा, असख्यातगुणा और अनन्तगुणा अधिक है।

इसी प्रकार पृथ्वीकायिक जीव के वर्णादि या मतिअज्ञानादि विभिन्न भावपर्यायो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित हीनाधिकता की तरह अप्कायिक आदि एकेन्द्रियजीवो की षट्स्थानपतित हीनाधिकता समझ लेनी चाहिए।

इन सब दृष्टियो से पृथ्वीकायिकादि प्रत्येक एकेन्द्रिय जीव के पर्यायो की अनन्तता सिद्ध होती है।[1]

विकलेन्द्रिय एवं तिर्यंच पंचेन्द्रिय जीवो के अनन्त पर्यायो का निरूपण—

४४८ बेइंदियाणं पुच्छा।

गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चति बेइंदियाण अणता पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! बेइंदिए बेइंदियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिए—जति हीणे असखेज्जतिभागहीणे वा सखेज्जतिभागहीणे वा सखेज्जगुणहीणे वा असखेज्जगुणहीणे वा, अह अब्भहिए असंखेज्जभागमब्भहिए वा संखेज्जभागमब्भहिए वा सखेज्ज-गुणमब्भइए वा असखेज्जगुणमब्भइए वा, ठितीए तिट्ठाणवडिते; वण्ण-गंध-रस-फास-आभिणिबोहि-यणाण-सुतणाण-मतिअण्णाण-सुतअण्णाण-अचक्खुदसणपज्जवेहि य छट्ठाणवडिते।

[४४८ प्र] भगवन् ! द्वीन्द्रिय जीवो के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[४४८ उ] गौतम ! अनन्त पर्याय कहे गए है।

[प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि द्वीन्द्रिय जीवो के अनन्त पर्याय हैं ?

[उ.] गौतम ! एक द्वीन्द्रिय जीव दूसरे द्वीन्द्रिय से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशो की अपेक्षा से तुल्य है, (किन्तु) अवगाहना की दृष्टि से कदाचित् हीन है, कदाचित् तुल्य है, और कदाचित् अधिक है। यदि हीन होता है, (तो) या तो असख्यातभाग हीन होता है, या सख्यातभाग-हीन होता है, अथवा सख्यातगुण हीन या असख्यातगुण हीन होता है। अगर अधिक होता है तो असख्यातभाग अधिक, या सख्यातभाग अधिक, अथवा सख्यातगुणा या असख्यातगुणा अधिक होता है। स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थान-पतित हीनाधिक होता है, तथा वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श के तथा आभिनि-

---

१ प्रज्ञापनासूत्र, मलय वृत्ति, पत्राक १८६

बोधिक ज्ञान, श्रुतज्ञान, मति-अज्ञान, श्रुत-अज्ञान और अचक्षुदर्शन के पर्यायो की अपेक्षा से षट्स्थान-पतित (हीनाधिक) है।

४४९ एव तेइदिया वि।

[४४९] इसी प्रकार त्रीन्द्रिय जीवो के (पर्यायो की अनन्तता के) विषय मे समझना चाहिए।

४५० एव चउरिदिया वि। णवर दो दसणा-चक्खुदसण अचक्खुदसण च।

[४५०[इसी तरह चतुरिन्द्रिय जीवो (के पर्यायो) की अनन्तता होती है। विशेष यह है कि इनमे चक्षुदर्शन भी होता है। (अतएव इनके पर्यायो की अपेक्षा से भी चतुरिन्द्रिय की अनन्तता समझ लेनी चाहिए।)

४५१ पचेंदियतिरिक्खजोणियाण पज्जवा जहा नेरइयाण तहा भाणितव्वा।

[४५१] पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवो के पर्यायो का कथन नैरयिको के समान (४४० सूत्रानुसार) कहना चाहिए।

विवेचन—विकलेन्द्रिय एव तिर्यंचपचेन्द्रिय जीवो के अनन्तपर्यायो का निरूपण—प्रस्तुत चार सूत्रो (सू ४४८ से ४५१ तक) मे द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय एव तिर्यञ्च पचेन्द्रिय जीवो के अनन्त पर्यायो का सयुक्तिक निरूपण किया गया है।

विकलेन्द्रिय एव तिर्यञ्चपचेन्द्रिय जीवो के अनन्तपर्यायो के हेतु—इन सब मे द्रव्य और प्रदेश की अपेक्षा परस्पर समानता होने पर भी अवगाहना की दृष्टि से पूर्ववत् चतुःस्थानपतित, स्थिति की दृष्टि से त्रिस्थानपतित एव वर्णादि के तथा मतिज्ञानादि के पर्यायो की दृष्टि से षट्स्थान-पतित न्यूनाधिकता होती है, इस कारण इनके पर्यायो की अनन्तता स्पष्ट है।[1]

मनुष्यो के अनन्तपर्यायो की सयुक्तिक प्ररूपणा—

४५२. मणुस्साणं भते! केवतिया पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! अणता पज्जवा पण्णत्ता?

से केणट्ठेण भते! एव वुच्चति मणुस्साण अणता पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! मणुस्से मणुस्सस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाण-वडिते, ठितीए चउट्ठाणवडिते, वण्ण-गध-रस-फास-आभिणिबोहियणाण-सुतणाण-ओहिणाण-मणपज्ज-वणाणपज्जवेहि य छट्ठाणवडिते, केवलणाणपज्जवेहि तुल्ले, तिहि अण्णाणेहि तिहि दसणेहि छट्ठाण-वडिते, केवलदसणपज्जवेहि तुल्ले।

[४५२ प्र] भगवन्! मनुष्यो के कितने पर्याय कहे गए है?

[४५२ उ] गौतम! (उनके) अनन्तपर्याय कहे है।

[प्र] भगवन्! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि 'मनुष्यो के अनन्तपर्याय है?'

---

१ प्रज्ञापनासूत्र म वृत्ति, पत्राक १८६

[उ.] गौतम ! द्रव्य की अपेक्षा से एक मनुष्य, दूसरे मनुष्य मे तुल्य है, प्रदेशो की अपेक्षा से भी तुल्य है, (किन्तु) अवगाहना की दृष्टि से चतु स्थानपतित (हीनाधिक) है, स्थिति की दृष्टि से भी चतु स्थानपतित (हीनाधिक) है, तथा वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, आभिनिवोधिक ज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान एव मन पर्यवज्ञान के पर्यायो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित (हीनाधिक) है, तथा केवलज्ञान के पर्यायो की दृष्टि से तुल्य है, तीन अज्ञान तथा तीन दर्शन (के पर्यायो) की दृष्टि से षट्स्थानपतित है, और केवलदर्शन के पर्यायो की अपेक्षा से तुल्य है।

विवेचन—मनुष्यो के अनन्तपर्यायो की सयुक्तिक प्ररूपणा—प्रस्तुत सूत्र (४५२) मे अवगाहना और स्थिति की दृष्टि से चतु स्थानपतित तथा वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, आभिनिवोधिक आदि चार ज्ञानो, तीन अज्ञानो और तीन दर्शनो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित हीनाधिकता वता कर तथा द्रव्य, प्रदेश तथा केवलज्ञान-केवलदर्शन के पर्यायो की अपेक्षा से परस्पर तुल्यता वता कर मनुष्यो के अनन्त पर्याय सिद्ध किये गए है।[1]

चार ज्ञान, तीन अज्ञान, और तीन दर्शनो की हीनाधिकता—पाच ज्ञानो मे से चार ज्ञान, तीन अज्ञान और तीन दर्शन क्षायोपशमिक है। वे ज्ञानावरण और दर्शनावरण के क्षयोपशम से उत्पन्न होते है, किन्तु सब मनुष्यो का क्षयोपशम समान नही होता। क्षयोपशम मे तरतमता को लेकर अनन्तभेद होते है। अतएव इनके पर्याय षट्स्थानपतित हीनाधिक कहे गये है, किन्तु केवलज्ञान और केवलदर्शन क्षायिक है। वे ज्ञानावरण और दर्शनावरण के सर्वथा क्षीण होने पर ही उत्पन्न होते है, अतएव उनमे किसी प्रकार की न्यूनाधिकता नही होती। जैसा एक मनुष्य का केवलज्ञान या केवलदर्शन होता है, वैसा ही सभी का होता है, इसीलिए केवलज्ञान और केवलदर्शन के पर्याय तुल्य कहे हैं।[2]

स्थिति की अपेक्षा से चतु स्थानपतित कैसे—पचेन्द्रियतिर्यंचो और मनुष्यो की स्थिति अधिक से अधिक तीन पल्योपम की होती है। पल्योपम असख्यात हजार वर्षो का होता है। अत उसमे असख्यातगुणी वृद्धि और हानि सम्भव होने से उसे चतु स्थानपतित कहा गया है।

वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवो के अनन्त पर्यायो की प्ररूपणा—

४५३ वाणमतरा ओगाहणट्ठयाए ठितीए य चउट्ठाणवडिया, वण्णादीहिं छट्ठाणवडिता।

[४५३] वाणव्यन्तर देव अवगाहना और स्थिति की अपेक्षा से चतु स्थानपतित (हीनाधिक) कहे गए हैं तथा वर्ण आदि (के पर्यायो) की अपेक्षा से षट्स्थानपतित (हीनाधिक) है।

४५४ जोइसिय-वेमाणिया वि एव चेव। णवर ठितीए तिट्ठाणवडिता।

[४५४[ज्योतिष्क और वैमानिक देवो (के पर्यायो) की हीनाधिकता भी इसी प्रकार (पूर्वसूत्रानुसार समझनी चाहिए।) विशेषता यह है कि इन्हे स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित (हीनाधिक) समझना चाहिए।

---

१ पण्णवणासुत्त (मूलपाठ-टिप्पण युक्त), पृ १३९-१४०

२ (क) प्रज्ञापनासूत्र, मलयवृत्ति, पत्राक १८६, (ख) प्रज्ञापना प्रमेयवोधिनी टीका भा-२, पृ ६१२-६१३

विवेचन—वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवो के अनन्त पर्यायो की प्ररूपणा—प्रस्तुत दो सूत्रो (४५३, ४५४) मे वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिको के अनन्त पर्याय बताने हेतु उनकी यथायोग्य चतु स्थानपतित षट्स्थानपतित तथा त्रिस्थानपतित न्यूनाधिकता का प्रतिपादन किया गया है।[1]

वाणव्यन्तरो की चतु स्थानपतित तथा ज्योतिष्क-वैमानिको की त्रिस्थानपतित हीनाधिकता—वाणव्यन्तरो की स्थिति जघन्य १० हजार वर्ष की, उत्कृष्ट एक पल्योपम की होती है, अत वह भी चतु स्थानपतित हो सकती है, किन्तु ज्योतिष्को और वैमानिको की स्थिति मे त्रिस्थान पतित हीनाधिकता ही होती है, क्योकि ज्योतिष्को की स्थिति जघन्य पल्योपम के आठवे भाग की और उत्कृष्ट एक लाख वर्ष अधिक पल्योपम की है। अतएव उनमे असख्यातगुणी हानि-वृद्धि सभव नही है। वैमानिको की स्थिति जघन्य पल्योपम की और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की है। एक सागरोपम दस कोडाकोडी पल्योपम का होता है। अतएव वैमानिको मे भी असख्यातगुणी हानिवृद्धि सभव नही है। इसी कारण ज्योतिष्क और वैमानिकदेव स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित हीनाधिक ही होते है।[2]

विभिन्न अपेक्षाओ से जघन्यादियुक्त अवगाहनादि वाले नारको के पर्याय—

४५५ [१] जहण्णोगाहणगाणं भते ! नेरइयाण केवतिया पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! अणता पज्जवा पण्णत्ता।

से केणट्ठेणं भते ! एव वुच्चति जहण्णोगाहणगाण नेरइयाण अणंता पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णोगाहणए नेरइए जहण्णोगाहणगस्स नेरइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए तुल्ले, ठितीए चउट्ठाणवडिते, वण्ण-गंध-रस-फासपज्जवेहिं तिहिं णाणेहिं तिहिं ।णेहिं तिहिं दसणेहि य छट्ठाणवडिते।

[४५५-१ प्र] भगवन् ! जघन्य अवगाहना वाले नैरयिको के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[४५५-१ उ] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय कहे है।

[प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि 'जघन्य अवगाहना वाले नारको के अनन्त पर्याय हैं ?'

[उ] गौतम ! एक जघन्य अवगाहना वाला नैरयिक, दूसरे जघन्य अवगाहना वाले नैरयिक से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशो की अपेक्षा से (भी) तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से (भी) तुल्य है, (किन्तु) स्थिति की अपेक्षा से चतु स्थान पतित (हीनाधिक) है, और वर्ण गन्ध, रस और स्पर्श के पर्यायो, तीन ज्ञानो, तीन अज्ञानो और तीन दर्शनो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

[२] उक्कोसोगाहणयाण भते ! नेरइयाण केवतिया पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! अणता पज्जवा पण्णत्ता।

से केणट्ठेणं भते ! एव वुच्चति उक्कोसोगाहणयाण नेरइयाण अणता पज्जवा पण्णत्ता ?

---

१ पण्णवणासुत्त (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त), पृ १४०

२ प्रज्ञापनासूत्र म वृत्ति, पत्राक १८६

गोयमा ! उक्कोसोगाहणए णेरइए उक्कोसोगाहणगस्स नेरइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए तुल्ले; ठितीए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिए—जति हीणे असखेज्जभागहीणे वा सखेज्जभागहीणे वा, अह अब्भहिए असखेज्जइभागअब्भइए वा सखेज्जइभागअब्भइए वा, वण्ण-गध-रस-फासपज्जवेहिं तिहिं णाणेहिं तिहिं अण्णाणेहिं तिहिं दसणेहिं छट्ठाणवडिते ।

[४५५-२ प्र.] भगवन् ! उत्कृष्ट अवगाहना वाले नैरयिको के कितने पर्याय कहे गए है ?

[४५५-२ उ] गौतम ! अनन्त पर्याय कहे गए है ।

[प्र] भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहा जाता है कि उत्कृष्ट अवगाहना वाले नैरयिको के अनन्त पर्याय है ?

[उ] गौतम ! एक उत्कृष्ट अवगाहना वाला नारक, दूसरे उत्कृष्ट अवगाहना वाले नारक से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशो की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से (भी) तुल्य है, किन्तु स्थिति की अपेक्षा से कदाचित् हीन है, कदाचित् तुल्य है, और कदाचित् अधिक है । यदि हीन है तो असख्यातभाग हीन है या सख्यातभाग हीन है । यदि अधिक है तो असख्यात भाग अधिक है, अथवा सँख्यातभाग अधिक है । वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के पर्यायो की अपेक्षा से तथा तीन ज्ञानो, तीन अज्ञानो और तीन दर्शनो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित (हीनाधिक) है ।

[३] अजहण्णुक्कोसोगाहणगाण भते ! नेरइयाण केवतिया पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! अणता पज्जवा पण्णत्ता ।

से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चति अजहण्णुक्कोसोगाहणगाण नेरइयाण अणता पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! अजहण्णुक्कोसोगाहणए णेरइए अजहण्णुक्कोसोगाहणगस्स णेरइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिए—जति हीणे असखेज्जभागहीणे वा सखेज्जभागहीणे वा सखेज्जगुणहीणे वा असखेज्जगुणहीणे वा, अह अब्भतिए असखेज्जतिभागअब्भतिए वा सखेज्जतिभागअब्भतिए वा सखेज्जगुणअब्भतिए वा असखेज्जगुणअब्भतिए वा; ठितीए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भतिए—जति हीणे असखेज्जतिभागहीणे वा सखेज्जतिभागहीणे वा सखेज्जगुणहीणे वा असखेज्जगुणहीणे वा, अह अब्भइए असखेज्जतिभागअब्भइए वा सखेज्जतिभागअब्भहिए वा संखेज्जगुणअब्भइए वा असखेज्जगुणअब्भहिए वा; वण्ण-गध-रस-फासपज्जवेहिं तिहिं णाणेहिं तिहिं अण्णाणेहिं तिहिं दसणेहिं छट्ठाणवडिते, से तेणट्ठेण गोयमा ! एव वुच्चति अजहण्णुक्को सोगाहणगाण नेरइयाण अणता पज्जवा पण्णत्ता ।

[४५५-३ प्र] भगवन् ! अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) अवगाहना वाले नैरयिको के कितने पर्याय कहे गए है ?

[४५५-३ उ] गौतम ! अनन्त पर्याय कहे है ।

[प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि 'मध्यम अवगाहना वाले नैरयिको के अनन्त पर्याय है ?'

विवेचन—वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवो के अनन्त पर्यायो की प्ररूपणा—प्रस्तुत दो सूत्रो (४५३, ४५४) मे वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिको के अनन्त पर्याय बताने हेतु उनकी यथायोग्य चतु स्थानपतित षट्स्थानपतित तथा त्रिस्थानपतित न्यूनाधिकता का प्रतिपादन किया गया है ।[1]

वाणव्यन्तरो की चतु स्थानपतित तथा ज्योतिष्क-वैमानिको की त्रिस्थानपतित हीनाधिकता—वाणव्यन्तरो की स्थिति जघन्य १० हजार वर्ष को, उत्कृष्ट एक पल्योपम की होती है, अत वह भी चतु स्थानपतित हो सकती है, किन्तु ज्योतिष्को और वैमानिको की स्थिति मे त्रिस्थान पतित हीनाधिकता ही होती है, क्योकि ज्योतिष्को की स्थिति जघन्य पल्योपम के आठवे भाग की और उत्कृष्ट एक लाख वर्ष अधिक पल्योपम की है । अतएव उनमे असख्यातगुणी हानि-वृद्धि सभव नही है । वैमानिको की स्थिति जघन्य पल्योपम की और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की है । एक सागरोपम दस कोडाकोडी पल्योपम का होता है । अतएव वैमानिको मे भी असख्यातगुणी हानिवृद्धि सभव नही है । इसी कारण ज्योतिष्क और वैमानिकदेव स्थिति को अपेक्षा से त्रिस्थानपतित हीनाधिक ही होते है ।[2]

विभिन्न अपेक्षाओ से जघन्यादियुक्त अवगाहनादि वाले नारको के पर्याय—

४५५ [१] जहण्णोगाहणगाण भते ! नेरइयाण केवतिया पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! अणता पज्जवा पण्णत्ता ।

से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चति जहण्णोगाहणगाण नेरइयाण अणंता पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णोगाहणए नेरइए जहण्णोगाहणगस्स नेरइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए तुल्ले, ठितीए चउट्ठाणवडिते, वण्ण-गंध-रस-फासपज्जवेहिं तिहिं णाणेहिं तिहिं अण्णाणेहिं तिहिं दसणेहि य छट्ठाणवडिते ।

[४५५-१ प्र] भगवन् ! जघन्य अवगाहना वाले नैरयिको के कितने पर्याय कहे गए है ?

[४५५-१ उ] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय कहे है ।

[प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि 'जघन्य अवगाहना वाले नारको के अनन्त पर्याय हैं ?'

[उ] गौतम ! एक जघन्य अवगाहना वाला नैरयिक, दूसरे जघन्य अवगाहना वाले नैरयिक से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशो की अपेक्षा से (भी) तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से (भी) तुल्य है, (किन्तु) स्थिति की अपेक्षा से चतु स्थान पतित (हीनाधिक) है, और वर्ण गन्ध, रस और स्पर्श के पर्यायो, तीन ज्ञानो, तीन अज्ञानो और तीन दर्शनो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है ।

[२] उक्कोसोगाहणयाण भते ! नेरइयाणं केवतिया पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! अणता पज्जवा पण्णत्ता ।

से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चति उक्कोसोगाहणयाण नेरइयाण अणता पज्जवा पण्णत्ता ?

---

१ पण्णवणासुत्त (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त), पृ १४०

२ प्रज्ञापनासूत्र म वृत्ति, पत्राक १८६

गोयमा ! उक्कोसोगाहणए णेरइए उक्कोसोगाहणगस्स नेरइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए तुल्ले; ठितीए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिए—जति हीणे असंखेज्जभागहीणे वा संखेज्जभागहीणे वा, अह अब्भहिए असंखेज्जइभागअब्भइए वा संखेज्जइभागअब्भइए वा, वण्ण-गंध-रस-फासपज्जवेहिं तिहिं णाणेहिं तिहिं अण्णाणेहिं तिहिं दंसणेहिं छट्ठाणवडिते।

[४५५-२ प्र.] भगवन् ! उत्कृष्ट अवगाहना वाले नैरयिकों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[४५५-२ उ] गौतम ! अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

[प्र] भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहा जाता है कि उत्कृष्ट अवगाहना वाले नैरयिकों के अनन्त पर्याय हैं ?

[उ] गौतम ! एक उत्कृष्ट अवगाहना वाला नारक, दूसरे उत्कृष्ट अवगाहना वाले नारक से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से (भी) तुल्य है, किन्तु स्थिति की अपेक्षा से कदाचित् हीन है, कदाचित् तुल्य है, और कदाचित् अधिक है। यदि हीन है तो असंख्यातभाग हीन है या संख्यातभाग हीन है। यदि अधिक है तो असंख्यात भाग अधिक है, अथवा संख्यातभाग अधिक है। वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा से तथा तीन ज्ञानों, तीन अज्ञानों और तीन दर्शनों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित (हीनाधिक) है।

[३] अजहण्णुक्कोसोगाहणगाणं भंते ! नेरइयाणं केवतिया पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति अजहण्णुक्कोसोगाहणगाणं नेरइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! अजहण्णुक्कोसोगाहणए णेरइए अजहण्णुक्कोसोगाहणगस्स णेरइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिए—जति हीणे असंखेज्जभागहीणे वा संखेज्जभागहीणे वा संखेज्जगुणहीणे वा असंखेज्जगुणहीणे वा, अह अब्भतिए असंखेज्जतिभागअब्भतिए वा संखेज्जतिभागअब्भतिए वा संखेज्जगुणअब्भतिए वा असंखेज्जगुणअब्भतिए वा; ठितीए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भतिए—जति हीणे असंखेज्जतिभागहीणे वा संखेज्जतिभागहीणे वा संखेज्जगुणहीणे वा असंखेज्जगुणहीणे वा, अह अब्भइए असंखेज्जतिभागअब्भइए वा संखेज्जतिभागअब्भहिए वा संखेज्जगुणअब्भइए वा असंखेज्जगुणअब्भहिए वा; वण्ण-गंध-रस-फासपज्जवेहिं तिहिं णाणेहिं तिहिं अण्णाणेहिं तिहिं दंसणेहिं छट्ठाणवडिते, से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चति अजहण्णुक्कोसोगाहणगाणं नेरइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

[४५५-३ प्र] भगवन् ! अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) अवगाहना वाले नैरयिकों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[४५५-३ उ] गौतम ! अनन्त पर्याय कहे हैं।

[प्र.] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि 'मध्यम अवगाहना वाले नैरयिकों के अनन्त पर्याय हैं ?'

[उ] गौतम ! मध्यम अवगाहना वाला एक नारक, अन्य मध्यम अवगाहना वाले नैरयिक से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशो की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से कदाचित् हीन, कदाचित् तुल्य और कदाचित् अधिक है। यदि हीन है तो, असख्यातभाग हीन है अथवा सख्यात-भाग हीन है, या सख्यातगुण हीन है, अथवा असख्यातगुण हीन है। यदि अधिक है तो असख्यात भाग अधिक है अथवा सख्यातभाग अधिक है, अथवा सख्यातगुण अधिक है, या असख्यातगुण अधिक है। स्थिति की अपेक्षा से कदाचित् हीन है, कदाचित् तुल्य है और कदाचित् अधिक है। यदि हीन है तो असख्यातभाग हीन है, अथवा सख्यातभाग हीन है, अथवा सख्यातगुण हीन है, या असख्यातगुण हीन है। यदि अधिक है तो असख्यातभाग अधिक है अथवा सख्यातभाग अधिक है, या सख्यातगुण अधिक है, अथवा असख्यातगुण अधिक है। वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के पर्यायो की अपेक्षा से, तीन ज्ञानो, तीन अज्ञानो और तीन दर्शनो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित (हीनाधिक) है।

हे गौतम ! इसी कारण से ऐसा कहा जाता है कि 'मध्यम अवगाहना वाले नैरयिको के अनन्त पर्याय कहे है।'

४५६ [१] जहण्णठितीयाण भते ! नेरइयाण केवतिया पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! अणता पज्जवा पण्णत्ता।

से केणट्ठेणं भते ! एव वुच्चइ जहण्णट्ठितीयाण नेरइयाण अणता पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णट्ठितीए नेरइए जहण्णट्ठितीयस्स नेरइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए तुल्ले, वण्ण-गध-रस-फासपज्जवेहिं तिहिं णाणेहिं तिहिं अण्णाणेहिं तिहिं दसणेहि य छट्ठाणवडिते।

[४५६-१ प्र] भगवन् ! जघन्य स्थिति वाले नारको के कितने पर्याय कहे गए है ?

[४५६-१ उ] गौतम ! (उनके) अनन्तपर्याय कहे गए हैं।

[प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जघन्य स्थिति वाले नैरयिको के अनन्त पर्याय हैं ?

[उ] गौतम ! एक जघन्य स्थिति वाला नारक, दूसरे जघन्य स्थिति वाले नारक से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशो की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से चतु स्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से तुल्य है, वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के पर्यायो की अपेक्षा से, तथा तीन ज्ञान, तीन अज्ञान एव तीन दर्शनो की अपेक्षा षट्स्थानपतित (हीनाधिक) है।

[२] एव उक्कोसट्ठितीए वि।

[४५६-२] इसी प्रकार उत्कृष्ट स्थिति वाले नारक (के विषय मे भी यथायोग्य तुल्य, चतु - स्थानपतित, षट्स्थानपतित आदि कहना चाहिए।

[३] अजहण्णुक्कोसट्ठितीए वि एवं चेव। णवर सट्ठाणे चउट्ठाणवडिते।

[४५६-३] अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) स्थिति वाले नारक के विषय मे भी इसी प्रकार कहना चाहिए। विशेष यह है कि स्वस्थान मे चतु स्थानपतित है।

४५७. [१] जहण्णगुणकालयाण भते ! नेरइयाण केवतिया पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! अणता पज्जवा पण्णत्ता ।

से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चति जहण्णगुणकालयाणं नेरइयाण अणता पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णगुणकालए नेरइए जहण्णगुणकालगस्स नेरइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए चउट्ठाणवडिते, कालवण्णपज्जवेहिं तुल्ले, अवसेसेहिं वण्ण-गध-रस-फासपज्जवेहिं तिहिं णाणेहिं तिहिं अण्णाणेहिं तिहिं दसणेहि य छट्ठाणवडिते, से तेणट्ठेणं गोयमा ! एव वुच्चति जहण्णगुणकालयाण नेरइयाण अणता पज्जवा पण्णत्ता ।

[४५७-१ प्र] भगवन् ! जघन्यगुण काले नैरयिको के कितने पर्याय कहे गए है ?

[४५७-१ उ] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय कहे है ।

[प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जघन्यगुण काले नैरियको के अनन्त पर्याय है ?

[उ] गौतम ! एक जघन्यगुण काला नैरयिक, दूसरे जघन्यगुण काले नैरयिक से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशो की अपेक्षा से तुल्य है, (किन्तु) अवगाहना की अपेक्षा से चतु स्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से चतु स्थानपतित है, काले वर्ण के पर्यायो की अपेक्षा से तुल्य है किन्तु अवशिष्ट वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के पर्यायो की अपेक्षा से, तीन ज्ञान, तीन अज्ञान और तीन दर्शनो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है । इस कारण से हे गौतम ! ऐसा कहा गया कि 'जघन्यगुण काले नारको के अनन्त पर्याय कहे हैं ।'

[२] एव उक्कोसगुणकालए वि ।

[४५७-२] इसी प्रकार उत्कृष्टगुण काले (नारको के पर्यायो के विषय मे भी) समझ लेना चाहिए ।

[३] अजहण्णमणुक्कोसगुणकालए वि एव चेव । णवर कालवण्णपज्जवेहिं छट्ठाणवडिते ।

[४५७-३] इसी प्रकार अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) गुण काले नैरयिक के पर्यायो के विषय मे जान लेना चाहिए । विशेष इतना ही है कि काले वर्ण के पर्यायो की अपेक्षा से भी षट्स्थानपतित (हीनाधिक) होता है ।

४५८ एव अवसेसा चत्तारि वण्णा दो गधा पच रसा अट्ठ फासा भाणितव्वा ।

[४५८] यो काले वर्ण के पर्यायो की तरह शेष चारो वर्ण, दो गध, पाच रस और आठ स्पर्श की अपेक्षा से भी (समझ लेना चाहिए ।)

४५९ [१] जहण्णाभिणिबोहियणाणीण भते ! नेरइयाण केवतिया पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णाभिणिबोहियणाणीण णेरइयाण अणता पज्जवा पण्णत्ता ।

से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चति जहण्णाभिणिबोहियणाणीण नेरइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णाभिणिबोहियणाणी णेरइए जहण्णाभिणिबोहियणाणिस्स नेरइ दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठताए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए चउट्ठाणवडिते, वण्ण-गंध-रस-फास-पज्जवेहिं छट्ठाणवडिते, आभिणिबोहियणाणपज्जवेहिं तुल्ले, सुतणाणओहिणाणपज्जवेहिं छट्ठाणवडिते, तिहिं दसणेहिं छट्ठाणवडिते ।

[४५९-१ प्र] भगवन् ! जघन्य आभिनिबोधिक ज्ञानी नैरयिको के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[४५९-१ उ] गौतम ! जघन्य आभिनिबोधिक ज्ञानी नैरयिको के अनन्त पर्याय कहे गए है ।

[प्र] भगवन् ! किस हेतु से ऐसा कहा जाता है कि 'जघन्य आभिनिबोधिक ज्ञानी नैरयिको के अनन्त पर्याय कहे गए है ?'

[उ] गौतम ! एक जघन्य आभिनिबोधिक ज्ञानी, दूसरे जघन्य आभिनिबोधिक ज्ञानी नैरयिक से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशो की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना की दृष्टि से चतु -स्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से (भी) चतु स्थानपतित है, वर्ण, गन्ध, रस, और स्पर्श के पर्यायो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, आभिनिबोधिक ज्ञान के पर्यायो की अपेक्षा तुल्य है, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान के पर्यायो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है तथा तीन दर्शनो की अपेक्षा (भी) षट्स्थानपतित है ।

[२] एव उक्कोसाभिणिबोहियणाणी वि ।

[४५९-२] इसी प्रकार उत्कृष्ट आभिनिबोधिक ज्ञानी नैरयिको के (पर्यायो के विषय मे समझ लेना चाहिए ।)

[३] अजहण्णमणुक्कोसाभिणिबोहियणाणी वि एव चेव । नवर आभिणिबोहियणाणपज्जवेहिं सट्ठाणे छट्ठाणवडिते ।

[४५९-३] अजघन्य-अनुत्कृष्ट आभिनिबोधिक ज्ञानी के पर्यायो के विषय मे भी इसी प्रकार समझना चाहिए । विशेष यह है कि वह आभिनिबोधिक ज्ञान के पर्यायो की अपेक्षा से भी स्वस्थान मे षट्स्थानपतित है ।

४६० एव सुतणाणी ओहिणाणी वि । णवर जस्स णाणा तस्स अण्णाणा णत्थि ।

[४६०] श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी नैरयिको के पर्यायो के विषय मे भी इसी प्रकार (आभिनिबोधिकज्ञानीपर्यायवत्) जानना चाहिए । विशेष यह है कि जिसके ज्ञान होता है, उसके अज्ञान नही होता ।

४६१ जहा नाणा तहा अण्णाणा वि भाणितव्वा । नवर जस्स अण्णाणा तस्स नाणा न भवति ।

[४६१] जिस प्रकार त्रिज्ञानी नैरयिको के पर्यायो के विषय मे कहा, उसी प्रकार त्रिअज्ञानी नैरयिको के पर्यायो के विषय मे कहना चाहिए । विशेष यह है कि जिसके अज्ञान होते हैं, उसके ज्ञान नही होते ।

४६२ [१] जहण्णचक्खुदसणीण भते ! नेरइयाण केवतिया पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! अणता पज्जवा पण्णत्ता ।

से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चति जहण्णचक्खुदसणीण नेरइयाण अणता पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णचक्खुदसणी ण नेरइए जहण्णचक्खुदसणिस्स नेरइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए चउट्ठाणवडिते, वण्ण-गध-रस-फासपज्जवेहि तिहिं णाणेहिं तिहिं अण्णाणेहिं छट्ठाणवडिते, चक्खुदंसणपज्जवेहि तुल्ले, अचक्खुदसणपज्जवेहि ओहिदंसणपज्जवेहि य छट्ठाणवडिते ।

[४६२-१ प्र] भगवन् ! जघन्य चक्षुदर्शनी नैरयिको के कितने पर्याय कहे गए है ?

[४६२-२ उ] गौतम ! (उनके) अनन्तपर्याय कहे है ।

[प्र] भगवन् ! किस हेतु से ऐसा कहा जाता है कि 'जघन्य चक्षुदर्शनी नैरयिक के अनन्तपर्याय कहे है ?'

[उ] गौतम ! एक जघन्य चक्षुदर्शनी नैरयिक, दूसरे जघन्य चक्षुदर्शनी नैरयिक से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशो की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से चतु स्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से चतु स्थानपतित है, वर्ण, गन्ध, रस, और स्पर्श के पर्यायो की अपेक्षा से, तथा तीन ज्ञान और तीन अज्ञान की अपेक्षा से, षट्स्थानपतित है । चक्षुदर्शन के पर्यायो की अपेक्षा से तुल्य है, तथा अचक्षुदर्शन और अवधिदर्शन के पर्यायो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है ।

[२] एवं उक्कोसचक्खुदसणी वि ।

[४६२-२] इसी प्रकार उत्कृष्टचक्षुदर्शनी नैरयिको (के पर्यायो के विषय मे भी समझना चाहिए ।)

[३] अजहण्णमणुक्कोसचक्खुदसणी वि एव चेव । नवर सट्ठाणे छट्ठाणवडिते ।

[४६२-२] अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) चक्षुदर्शनी नैरयिको के (पर्यायो के विषय मे भी इसी प्रकार जानना चाहिए ।) विशेष इतना ही है कि स्वस्थान मे भी वह षट्स्थानपतित होता है ।

४६३. एव चक्खुदसणी वि ओहिदसणी वि ।

[४६३] चक्षुदर्शनी नैरयिको के पर्यायो की तरह ही अचक्षुदर्शनी नैरयिको एव अवधिदर्शनी नैरयिको के पर्यायो के विषय मे जानना चाहिए ।

विवेचन—जघन्यादियुक्त अवगाहनादि वाले नारको के विभिन्न अपेक्षाओ से पर्याय—प्रस्तुत ९ सूत्रो (सू ४५५ से ४६३ तक) मे जघन्य, उत्कृष्ट और मध्यम अवगाहना आदि से युक्त नारको के पर्यायो का कथन किया गया है ।

जघन्य एव उत्कृष्ट अवगाहना वाले नारक द्रव्य, प्रदेश और अवगाहना की दृष्टि से तुल्य—जघन्य एव उत्कृष्ट अवगाहना वाला एक नारक, दूसरे नारक से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, क्योकि 'प्रत्येक द्रव्य अनन्तपर्याय वाला होता है,' इस न्याय से नारकजीवद्रव्य एक होते हुए भी अनन्तपर्याय

वाला हो सकता है। अनन्तपर्याय वाला होते हुए भी वह द्रव्य से एक है, जैसे कि अन्य नारक एक-एक है। इसी प्रकार प्रत्येक नारक जीव लोकाकाशप्रमाण असख्यात प्रदेशो वाला होता है, इसलिए प्रदेशो की अपेक्षा से भी वह तुल्य है, तथा अवगाहना की दृष्टि से भी तुल्य है, क्योकि जघन्य और उत्कृष्ट अवगाहना का एक ही स्थान है, उसमे तरतमता-हीनाधिकता सभव नही है।

स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित—जघन्य अवगाहना वाले नारको की स्थिति मे समानता का नियम नही है। क्योकि एक जघन्य अवगाहना वाला नारक १० हजार वर्ष की स्थितिवाला रत्नप्रभापृथ्वी मे होता है और एक उत्कृष्ट स्थितिवाला नारक सातवी पृथ्वी मे होता है। इसलिए जघन्य या उत्कृष्ट अवगाहना वाला नारक स्थिति की अपेक्षा असख्यातभाग या सख्यात-भाग हीन अथवा सख्यातगुण या असख्यातगुण हीन भी हो सकता है। अथवा असख्यातभाग या सख्यातभाग अधिक अथवा सख्यातगुण या असख्यातगुण अधिक भी हो सकता है। इसलिए स्थिति की अपेक्षा से नारक चतु स्थानपतित होते हैं।

जघन्य अवगाहना वाले नारक को तीन ज्ञान या तीन अज्ञान कैसे?—कोई गर्भज-सज्ञी-पचेन्द्रिय जीव नारको मे उत्पन्न होता है, तब वह नरकायु के वेदन के प्रथम समय मे ही पूर्वप्राप्त औदारिकशरीर का परिशाटन करता है, उसी समय सम्यग्दृष्टि को तीन ज्ञान और मिथ्यादृष्टि को तीन अज्ञान उत्पन्न होते है। तत्पश्चात् अविग्रह से या विग्रह से गमन करके वह वैक्रियशरीर धारण करता है, किन्तु जो सम्मूर्च्छिम असज्ञीपचेन्द्रिय जीव नरक मे उत्पन्न होता है, उसे उस समय विभगज्ञान नही होता। इस कारण जघन्य अवगाहना वाले नारक को भजना से दो या तीन अज्ञान होते है, ऐसा समझ लेना चाहिए।

उत्कृष्ट अवगाहना वाले नारक स्थिति की अपेक्षा से द्विस्थानपतित—उत्कृष्ट अवगाहना वाले सभी नारको की स्थिति समान ही हो, या असमान ही हो, ऐसा नियम नही है। असमान होते हुए यदि हीन हो तो वह या तो असख्यातभागहीन होता है या सख्यातभागहीन और अगर अधिक हो तो असख्यातभाग अधिक या सख्यातभाग अधिक होता है। इस प्रकार स्थिति की अपेक्षा से द्विस्थानपतित हीनाधिकता समझनी चहिए। यहाँ सख्यातगुण और असख्यातगुण हीनाधिकता नही होती, इसलिए चतु स्थानपतित सम्भव नही है, क्योकि उत्कृष्ट अवगाहना वाले नारक ५०० धनुष्य की ऊँचाई वाले सप्तम नरक मे ही पाए जाते हैं, और वहाँ जघन्य बाईस और उत्कृष्ट ३३ सागरोपम की स्थिति है। अतएव इस स्थिति मे सख्यात-असख्यातभाग हानिवृद्धि हो सकती है, किन्तु सख्यात-असख्यातगुण हानि-वृद्धि की सभावना नही है।[1]

उत्कृष्ट अवगाहना वाले नारको मे तीन ज्ञान या तीन अज्ञान नियम से—उत्कृष्ट अवगाहना वाले नारको मे तीन ज्ञान या तीन अज्ञान नियमत होते हैं, भजना से नही क्योकि उत्कृष्ट अवगाहना वाले नारको मे सम्मूर्च्छिम असज्ञीपचेन्द्रिय की उत्पत्ति नही होती। अत उत्कृष्ट अवगाहना वाला नारक यदि सम्यग्दृष्टि हो तो तीन ज्ञान और मिथ्यादृष्टि हो तो तीन अज्ञान नियमत होते हैं।

मध्यम (अजघन्य-अनुत्कृष्ट) अवगाहना का अर्थ—जघन्य और उत्कृष्ट अवगाहना के बीच की अवगाहना अजघन्य-अनुत्कृष्ट या मध्यम अवगाहना कहलाती है। इस अवगाहना का जघन्य और उत्कृष्ट अवगाहना के समान नियत एक स्थान नही है। सर्वजघन्य अवगाहना अगुल के

---

१ (क) प्रज्ञापना म वृत्ति, पत्राक १८८, (ख) प्रज्ञापना प्रमेयबोधिनी टीका भा २, पृ ६३२ से ६३८

असख्यातवे भाग की और उत्कृष्ट अवगाहना ५०० धनुष्य की होती है। इन दोनो के बीच की जितनी भी अवगाहनाए होती हैं, वे सब मध्यम अवगाहना की कोटि मे आती हे। तात्पर्य यह है कि मध्यम अवगाहना सर्वजघन्य अगुल के असख्यातवे भाग अधिक से लेकर अगुल के असख्यातवे भाग कम पाच सौ धनुष की समझनी चाहिए। यह अवगाहना सामान्य नारक की अवगाहना के समान चतु स्थानपतित हो सकती है।[1]

जघन्यस्थिति वाले नारक स्थिति की अपेक्षा से तुल्य—जघन्य स्थिति वाले एक नारक से, जघन्यस्थिति वाला दूसरा नारक स्थिति की दृष्टि से समान होता है, क्योकि जघन्य स्थिति का एक ही स्थान होता है, उसमे किसी प्रकार की हीनाधिकता सभव नही है।

जघन्य स्थिति वाले नारक अवगाहना की अपेक्षा से चतु स्थानपतित—एक जघन्य स्थिति वाला नारक, दूसरे जघन्य स्थिति वाले नारक से अवगाहना मे पूर्वोक्त व्याख्यानुसार चतु स्थानपतित हीनाधिक होता है, क्योकि उनमे अवगाहना जघन्य अगुल के असख्यातवे भाग से लेकर उत्कृष्ट ७ धनुष तक पाई जाती है।

मध्यम स्थिति वाले नारको की स्थिति की अपेक्षा से चतु स्थानपतित हीनाधिकता—जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति वाले नारको की स्थिति तो परस्पर तुल्य कही गई है, मगर मध्यम स्थिति वाले नारको की स्थिति मे परस्पर चतु स्थानपतित हीनाधिक्य है, क्योकि मध्यम स्थिति तारतम्य से अनेक प्रकार की है। मध्यमस्थिति मे एक समय अधिक दस हजार वर्ष से लेकर एक समय कम तेतीस सागरोपम की स्थिति परिगणित है। इसलिए इसका चतु स्थानपतित हीनाधिक होना स्वाभाविक है।[2]

कृष्णवर्णपर्याय की अपेक्षा से नारको की तुल्यता—जिस नारक मे कृष्णवर्ण का सर्वजघन्य अश पाया जाता है, वह दूसरे सर्वजघन्य अश कृष्णवर्ण वाले के तुल्य ही होता है, क्योकि जघन्य का एक ही रूप है, उसमे विविधता या हीनाधिकता नही होती।

ज्ञान और अज्ञान दोनो एक साथ नहीं रहते—जिस नारक मे ज्ञान होता है, उसमे अज्ञान नही होता और जिसमे अज्ञान होता है उसमे ज्ञान नही होता, क्योकि ये दोनो परस्पर विरुद्ध है। सम्यग्दृष्टि को ज्ञान और मिथ्यादृष्टि को अज्ञान होता है। जो सम्यग्दृष्टि होता है, वह मिथ्यादृष्टि नही होता और जो मिथ्यादृष्टि होता है, वह सम्यक् दृष्टि नही होता।[3]

जघन्यादियुक्त अवगाहना वाले असुरकुमारादि भवनपति देवो के पर्याय—

४६४. [१] जहण्णोगाहणगाण भते ! असुरकुमाराण केवतिया पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! अणता पज्जवा पण्णत्ता।

से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चति जहण्णोगाहणगाण असुरकुमाराण अणता पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णोगाहणए असुरकुमारे जहण्णोगाहणगस्स असुरकुमारस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले,

---

१ (क) प्रज्ञापना म वृत्ति, पत्राक १८८, (ख) प्रज्ञापना प्रमेयबोधिनी टीका भा-२, पृ ६३८ से ६३९

२ (क) प्रज्ञापना म वृत्ति, पत्राक १८९, (ख) प्रज्ञापना प्रमेयबोधिनी टीका भा-२, पृ ६४४ से ६४७

३ (क) प्रज्ञापना म वृत्ति, पत्राक १८९, (ख) प्रज्ञापना प्रमेयबोधिनी टीका भा-२, पृ ६४९, ६५४

पदेसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए तुल्ले, ठितीए चउट्ठाणवडिते, वन्नादीहिं छट्ठाणवडिते, आभिणिबोहियणाण-सुतणाण-ओहिणाणपज्जवेहिं तिहिं अण्णाणेहिं तिहिं दसणेहि य छट्ठाणवडिते ।

[४६४-१ प्र] भगवन् ! जघन्य अवगाहना वाले असुरकुमारो के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[४६४-१ उ.] गौतम ! उनके अनन्त पर्याय कहे गए है।

[प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जघन्य अवगाहना वाले असुरकुमारो के अनन्त पर्याय कहे हैं ?

[उ] गौतम ! एक जघन्य अवगाहना वाला असुरकुमार, दूसरे जघन्य अवगाहना वाले असुरकुमार से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशो की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से भी तुल्य है, (किन्तु) स्थिति की अपेक्षा से चतु स्थानपतित (हीनाधिक) है, वर्ण आदि की दृष्टि से षट्स्थानपतित है, आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान एव अवधिज्ञान के पर्यायो, तीन अज्ञानो तथा तीन दर्शनो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है ।

[२] एव उक्कोसोगाहणए वि । एव अजहन्नमणुक्कोसोगाहणए वि । नवरं उक्कोसोगाहणए वि असुरकुमारे ठितीए चउट्ठाणवडिते ।

[४६४-२] इसी प्रकार उत्कृष्ट अवगाहना वाले असुरकुमारो के (पर्यायो के) विषय मे (समझ लेना चाहिए ।) तथा इसी प्रकार मध्यम (अजघन्य-अनुत्कृष्ट) अवगाहना वाले असुरकुमारो के (पर्यायो के सम्बन्ध मे जान लेना चाहिए ।) विशेष यह है कि उत्कृष्ट अवगाहना वाले असुरकुमार भी स्थिति की अपेक्षा से चतु स्थानपतित (हीनाधिक) है ।

४६५ एव जाव थणियकुमारा ।

[४६५] असुरकुमारो (के पर्यायो की वक्तव्यता) की तरह ही यावत् स्तनितकुमारो तक (के पर्यायो की वक्तव्यता समझ लेनी चाहिए ।)

विवेचना—जघन्यादियुक्त अवगाहना वाले असुरकुमारादि भवनवासियो के पर्याय—प्रस्तुत दो सूत्रो (सू ४६४-४६५) मे असुरकुमार से लेकर स्तनितकुमार तक जघन्य, उत्कृष्ट और मध्यम अवगाहना वाले दशाविध भवनपतियो के अनन्त पर्यायो का सयुक्तिक निरूपण किया गया है ।

जघन्यादियुक्त अवगाहनादि विशिष्ट एकेन्द्रियो के पर्याय—

४६६ [१] जहण्णोगाहणगाण भंते ! पुढविकाइयाण केवतिया पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! अणता पज्जवा पण्णत्ता ।

से केणट्ठेण भंते ! एव वुच्चति जहण्णोगाहणगाण पुढविकाइयाण अणता पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णोगाहणए पुढविकाइए जहण्णोगाहणगस्स पुढविकाइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए तुल्ले, ठितीए तिट्ठाणवडिते, वण्ण-गध-रस-फासपज्जवेहिं दोहिं अण्णाणेहिं अचक्खुदंसणपज्जवेहि य छट्ठाणवडिते ।

[४६६-१ प्र] भगवन् ! जघन्य अवगाहना वाले पृथ्वीकायिक जीवो के कितने पर्याय प्ररूपित किये गए है ?

[४६६-१ उ] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय प्ररूपित किये गए है।

[प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जघन्य अवगाहना वाले पृथ्वीकायिक जीवो के अनन्तपर्याय है ?

[उ] गौतम ! जघन्य अवगाहना वाला एक पृथ्वीकायिक, दूसरे जघन्य अवगाहना वाले पृथ्वीकायिक से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशो की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से तुल्य है, किन्तु स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित (हीनाधिक) है, तथा वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के पर्यायो की अपेक्षा से, दो अज्ञानो की अपेक्षा से एव अचक्षुदर्शन के पर्यायो की दृष्टि से षट्-स्थानपतित है।

[२] एव उक्कोसोगाहणए वि।

[४६६-२] इसी प्रकार उत्कृष्ट अवगाहना वाले पृथ्वीकायिक जीवो के पर्यायो का कथन भी करना चाहिए।

[३] अजहण्णमणुक्कोसोगाहणए वि एव चेव। नवर सट्ठाणे चउट्ठाणवडिते।

[४६६-३] अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) अवगाहना वाले पृथ्वीकायिक जीवो के पर्यायो के विषय मे भी ऐसा ही समझना चाहिए। विशेष यह है कि मध्यम अवगाहना वाले पृथ्वीकायिक जीव स्वस्थान मे अर्थात् अवगाहना की अपेक्षा से भी चतु स्थानपतित (हीनाधिक) है।

४६७ [१] जहण्णट्ठितीयाण भते ! पुढविकाइयाण पुच्छा।

गोयमा ! अणता पज्जवा पण्णत्ता।

से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चति जहण्णट्ठितीयाण पुढविकाइयाण अणता पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णठितीए पुढविकाइए जहण्णठितीयस्स पुढविकाइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठताए चउट्ठाणवडिते, ठितीए तुल्ले, वण्ण-गध-रस-फासपज्जवेहिं मति-अण्णाण-सुतअण्णाण-अचक्खुदसणपज्जवेहि य छट्ठाणवडिते।

[४६७-१ प्र] भगवन् ! जघन्य स्थिति वाले पृथ्वीकायिक जीवो के पर्याय कितने कहे गए है ?

[४६७-१ उ] गौतम ! (उनके) अनन्तपर्याय कहे गए हैं।

[प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि 'जघन्य स्थिति वाले पृथ्वीकायिक जीवो के अनन्त पर्याय कहे हैं ?'

[उ] गौतम ! एक जघन्य स्थिति वाला पृथ्वीकायिक, दूसरे जघन्य स्थिति वाले पृथ्वीकायिक से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशो की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना की दृष्टि से चतु स्थानपतित (हीनाधिक) है, स्थिति की अपेक्षा से तुल्य है, तथा वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के पर्यायो, मति-अज्ञान, श्रुत-अज्ञान और अचक्षु-दर्शन के पर्यायो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

[२] एव उक्कोसठितीए वि ।

[४६७-२] इसी प्रकार उत्कृष्ट स्थिति वाले (पृथ्वीकायिक जीवो के पर्यायो के विषय मे भी समझ लेना चाहिए ।)

[३] अजहण्णमणुक्कोसठितीए वि एव चेव । णवर सट्ठाणे तिट्ठाणवडिते ।

[४६७-३] अजघन्य-अनुत्कृष्ट स्थिति वाले पृथ्वीकायिक जीवो के पर्यायो के विषय मे इसी प्रकार कहना चाहिए । विशेष यह है कि वे स्वस्थान मे त्रिस्थानपतित है।

४६८. [१] जहण्णगुणकालयाण भते ! पुढविकाइयाण पुच्छा ।

गोयमा ! अणता पज्जवा पण्णत्ता ।

से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चति जहण्णगुणकालयाण पुढविकाइयाण अणता पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णगुणकालए पुढविकाइए जहण्णगुणकालगस्स पुढविकाइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए तिट्ठाणवडिते, कालवण्णपज्जवेहिं तुल्ले, अवसेसेहिं वण्ण-गध-रस-फासपज्जवेहिं छट्ठाणवडिते, दोहिं अण्णाणेहिं अचक्खुदसणपज्जवेहि य छट्ठाण-वडिते ।

[४६८-१ प्र] भगवन् ! जघन्यगुण काले पृथ्वीकायिक जीवो (के पर्यायो के परिमाण) की पृच्छा है !

[४६८-१ उ] गौतम ! उनके अनन्त पर्याय कहे गए है ।

[प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि 'जघन्य गुण काले पृथ्वीकायिक जीवो के अनन्त पर्याय कहे है ?'

[उ] गौतम ! जघन्य गुण काला एक पृथ्वीकायिक, दूसरे जघन्य गुण काले पृथ्वीकायिक से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशो की अपेक्षा से तुल्य है, (किन्तु) अवगाहना की दृष्टि से चतु स्थान-पतित हैं, स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित है, काले वर्ण के पर्यायो की अपेक्षा से तुल्य है, तथा अवशिष्ट वर्ण, गन्ध, रस, और स्पर्श के पर्यायो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, एव दो अज्ञानो और अचक्षुदर्शन के पर्यायो से भी षट्स्थानपतित (हीनाधिक) हैं ।

[२] एव उक्कोसगुणकालए वि ।

[४६८-२] इसी प्रकार उत्कृष्टगुण काले पृथ्वीकायिक जीवो के (पर्यायो के विषय मे कथन करना चाहिए ।)

[३] अजहण्णमणुक्कोसगुणकालए वि एव चेव । णवर सट्ठाणे छट्ठाणवडिते ।

[४६८-३] मध्यम (अजघन्य-अनुत्कृष्ट) गुण काले पृथ्वीकायिक जीवो के पर्यायो के विषय मे भी इसी प्रकार कहना चाहिए । विशेष यह है कि वह स्वस्थान मे षट्स्थानपतित है ।

४६९ एव पच वण्णा दो गधा पच रसा अट्ठ फासा भाणितव्वा ।

[४६९] इसी प्रकार (पृथक्-पृथक् जघन्य-मध्यम-उत्कृष्टगुण वाले) पाच वर्णो, दो गन्धो,

पाच रसो और आठ स्पर्शों (से युक्त पृथ्वीकायिको के पर्यायों) के विषय मे (पूर्वोक्तसूत्रानुसार) कहना चाहिए।

४७० [१] जहण्णमतिअण्णाणीण भंते ! पुढविकाइयाण पुच्छा।

गोयमा ! अणता पज्जवा पण्णत्ता।

से केणट्ठेण भंते ! एव वुच्चति जहण्णमतिअण्णाणीणं पुढविकाइयाण अणता पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णमतिअण्णाणी पुढविकाइए जहण्णमतिअण्णाणिस्स पुढविकाइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए तिट्ठाणवडिते, वण्ण-गंध-रस-फासपज्जवेहिं छट्ठाणवडिते, मतिअण्णाणपज्जवेहिं तुल्ले, सुयअण्णाणपज्जवेहिं अचक्खुदसणपज्जवेहि य छट्ठाणवडिते।

[४७०-१ प्र] भगवन् ! जघन्य मति-अज्ञानी पृथ्वीकायिको के कितने पर्याय कहे गए है ?

[४७०-१ उ] गौतम ! उनके अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

[प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जघन्य मति-अज्ञानी पृथ्वीकायिक जीवो के अनन्त पर्याय कहे हैं ?

[उ] गौतम ! एक जघन्य मति-अज्ञानी पृथ्वीकायिक, दूसरे जघन्य मति-अज्ञानी पृथ्वीकायिक से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशो की अपेक्षा से तुल्य है, (किन्तु) अवगाहना की दृष्टि से चतुःस्थानपतित है, स्थिति की दृष्टि से त्रिस्थानपतित है, तथा वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के पर्यायो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, मति-अज्ञान के पर्यायो की अपेक्षा से तुल्य है, (किन्तु) श्रुत-अज्ञान के पर्यायो तथा अचक्षु-दर्शन के पर्यायो की दृष्टि से षट्स्थानपतित (हीनाधिक) है।

[२] एवं उक्कोसमतिअण्णाणी वि।

[४७०-२] इसी प्रकार उत्कृष्ट-मति-अज्ञानी (पृथ्वीकायिक जीवो के पर्यायो के विषय मे कथन करना चाहिए।)

[३] अजहण्णमणुक्कोसमइअण्णाणी वि एव चेव। नवरं सट्ठाणे छट्ठाणवडिते।

[४७०-३] अजघन्य-अनुत्कृष्ट-मति-अज्ञानी (पृथ्वीकायिक जीवो के पर्यायो) के विषय मे भी इसी प्रकार (कहना चाहिए।) विशेष यह है कि यह स्वस्थान अर्थात् मति-अज्ञान के पर्यायो मे भी षट्स्थानपतित (हीनाधिक) है।

४७१. एव सुयअण्णाणी वि। अचक्खुदसणी वि एव चेव।

[४७१] (जिस प्रकार जघन्यादियुक्त मति-अज्ञानी पृथ्वीकायिक जीवो के पर्यायो के विषय मे कहा गया हैं) उसी प्रकार श्रुत-अज्ञानी तथा अचक्षुदर्शनी पृथ्वीकायिक जीवो का पर्यायविषयक कथन करना चाहिए।

४७२ एव जाव वणप्फइकाइयाण ।

[४७२] (जिस प्रकार जघन्य-उत्कृष्ट-मध्यम मति-श्रुताज्ञानी एव अचक्षुदर्शनी पृथ्वीकायिक-पर्यायो के विषय मे कहा गया है,) उसी प्रकार (अप्कायिक से लेकर) यावत् वनस्पतिकायिक जीवो तक का (पर्यायविषयक कथन करना चाहिए ।)

विवेचन—जघन्य-उत्कृष्ट-मध्यम अवगाहनादियुक्त पृथ्वीकायिक आदि पच स्थावरो की पर्यायविषयक प्ररूपणा—प्रस्तुत सात सूत्रो (सू-४६६ से ४७२ तक) मे जघन्य मध्यम एव उत्कृष्ट अवगाहना से लेकर अचक्षुदर्शन तक से युक्त पृथ्वीकायिक आदि पाच एकेन्द्रिय जीवो का पर्याय-विषयक कथन किया गया है ।

जघन्यादियुक्त अवगाहना वाले पृथ्वीकायिक आदि का अवगाहना की दृष्टि से पर्याय-परिमाण—जघन्य और उत्कृष्ट अवगाहनावाले दो पृथ्वीकायिकादि एकेन्द्रिय अवगाहना की अपेक्षा से परस्पर तुल्य होते है । किन्तु मध्यम अवगाहना वाले दो पृथ्वीकायिकादि अवगाहना की अपेक्षा से स्वस्थान मे परस्पर चतु स्थानपतित होते है । अर्थात्-एक मध्यम अवगाहना वाला पृथ्वीकायिकादि एकेन्द्रिय, दूसरे मध्यम अवगाहनावाले पृथ्वीकायिकादि एकेन्द्रिय से अवगाहना की अपेक्षा से चतु स्थान-पतित होता है, क्योकि सामान्यरूप से मध्यम अवगाहना होने पर भी वह विविध प्रकार की होती है । जघन्य और उत्कृष्ट अवगाहना की भाँति उसका एक ही स्थान नही होता । कारण यह है कि पृथ्वीकायिक आदि के भव मे पहले उत्पत्ति हुई हो, उसे स्वस्थान कहते है । इस प्रकार के स्वस्थान मे असख्यात वर्षो का आयुष्य सभव होने से असख्यातभागहीन, सख्यातभागहीन अथवा सख्यातगुणहीन या असख्यातगुणहीन होता है, अथवा असख्यातभाग अधिक, सख्यात भाग अधिक या सख्यातगुण अधिक अथवा असख्यातगुण अधिक होता है, इस प्रकार चतु स्थानपतित होता है । इसी प्रकार स्थिति, वर्णादि, मति-श्रुताज्ञान एव अचक्षुदर्शन से युक्त पृथ्वीकायिकादि की हीनाधिकता अवगाहना की अपेक्षा से चतु स्थानपतित होती है ।[1]

जघन्यादि स्थिति आदि वाले पृथ्वीकायिकादि का विविध अपेक्षाओ से पर्याय-परिमाण—स्थिति की अपेक्षा से एक पृथ्वीकायिक आदि दूसरे पृथ्वीकायिक आदि से तुल्य होता है, किन्तु अवगाहना, वर्णादि, तथा मति-श्रुताज्ञान के एव अचक्षुदर्शन के पर्यायो की अपेक्षा से तुल्य नही होता है, क्योकि पृथ्वीकायिक आदि की स्थिति सख्यातवर्ष की होती है, यह बात पहले समुच्चय पृथ्वीकायिको की वक्तव्यता के प्रसग मे कही जा चुकी है । इसलिए जघन्यादियुक्त अवगाहनादि वाले पृथ्वीकायिक आदि परस्पर यदि हीन हो तो असख्यातभागहीन, सख्यातभागहीन अथवा सख्यातगुणहीन होता है, यदि अधिक हो तो असख्यातभाग-अधिक, सख्यातभाग-अधिक अथवा सख्यातगुण-अधिक होता है । वह पूर्वोक्त युक्ति के अनुसार असख्यातगुण हीन या अधिक नही होता ।[2]

पूर्वोक्त पृथ्वीकायिक आदि मे दो अज्ञान और अचक्षुदर्शन की ही प्ररूपणा क्यो ?—पृथ्वी-कायिक आदि मे सभी मिथ्यादृष्टि होते है, इनमे सम्यक्त्व नही होता, और न सम्यग्दृष्टि जीव पृथ्वीकायिकादि मे उत्पन्न होता है । अतएव उनमे दो अज्ञान ही पाए जाते हैं । इसी कारण यहाँ

१ (क) प्रज्ञापना म वृत्ति, पत्राक १९३, (ख) प्रज्ञापना प्रमेयबोधिनी टीका, भा २, पृ ६७५ से ६७८

२ (क) प्रज्ञापना म वृत्ति, पत्राक १९३, (ख) प्रज्ञापना प्रमेयबोधिनी टीका, भा २, पृ ६७९-६८०

दो अज्ञानो की ही प्ररूपणा की गई है। इसी प्रकार पृथ्वीकायिकादि मे चक्षुरिन्द्रिय का अभाव होने से चक्षुदर्शन भी नही होता। इसलिए यहा केवल अचक्षुदर्शन की ही प्ररूपणा की गई हे।[1]

मध्यम वर्णादि से युक्त गुण वाले पृथ्वीकायिकादि का पर्यायपरिमाण—जैसे जघन्य और उत्कृष्ट कृष्ण वर्ण आदि का स्थान एक ही होता है, उनमे न्यूनाधिकता का सम्भव नही, उस प्रकार से मध्यम कृष्णवर्ण का स्थान एक नही है। एक अश काला कृष्णवर्ण आदि जघन्य होता हे और सर्वाधिक अशो वाला कृष्ण वर्ण आदि उत्कृष्ट कहलाता है। इन दोनो के मध्य मे कृष्णवर्ण आदि के अनन्त विकल्प होते हैं। जैसे—दो गुण काला, तीन गुण काला, चार गुण काला, दस गुण काला, सख्यातगुण काला, असख्यातगुण काला, अनन्तगुण काला। इसी प्रकार अन्य वर्णो तथा गन्ध, रस और स्पर्शों के बारे मे समझ लेना चाहिए। अतएव जघन्य गुण काले से ऊपर और उत्कृष्ट गुण काले से नीचे कृष्ण वर्ण के मध्यम पर्याय अनन्त है। तात्पर्य यह है कि जघन्य और उत्कृष्टगुण वाले कृष्णादि वर्ण रस इत्यादि का पर्याय एक है, किन्तु मध्यमगुण कृष्णवर्ण आदि के पर्याय अनन्त है। यही कारण है कि दो पृथ्वीकायिक जीव यदि मध्यमगुण कृष्णवर्ण हो, तो भी उनमे अनन्तगुणहोनता और अधिकता हो सकती है। इसी अभिप्राय से यहाँ स्वस्थान मे भी सर्वत्र षट्स्थानपतित न्यूनाधिकता बताई है। इसी प्रकार आगे भी सर्वत्र षट्स्थानपतित समझ लेना चाहिए।[2]

पृथ्वीकायिको की तरह अन्य एकेन्द्रियो का पर्याय-विषयक निरूपण—सूत्र ४७२ मे बताये अनुसार पृथ्वीकायिक सूत्र की तरह अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक एव वनस्पतिकायिक जीवो के जघन्य, उत्कृष्ट एव मध्यम, द्रव्य, प्रदेश, अवगाहना, स्थिति, वर्णादि तथा ज्ञान-अज्ञानादि की दृष्टि से पर्यायो की यथायोग्य हीनाधिकता समझ लेनी चाही।[3]

जघन्यादियुक्त अवगाहनादि विशिष्ट विकलेन्द्रियो के पर्याय—

४७३ [१] जहण्णोगाहणगाण भते ! बेइदियाण पुच्छा।

गोयमा ! अणता पज्जवा पण्णत्ता।

से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चति जहण्णोगाहणगाण बेइदियाण अणता पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णोगाहणए बेइदिए जहण्णोगाहणगस्स बेइदियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए तुल्ले, ठितीए तिट्ठाणवडिते, वण्ण-गध-रस-फासपज्जवेहि दोहि णाणेहि दोहि अण्णाणेहि अचक्खुदसणपज्जवेहि य छट्ठाणवडिते।

[४७३-१ प्र] भगवन् ! जघन्य अवगाहना वाले द्वीन्द्रिय जीवो के कितने पर्याय कहे गए है ?

[४७३-१ उ] गौतम ! अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

[प्र] भगवन् ! किस हेतु से ऐसा कहा जाता है कि द्वीन्द्रिय जीवो के अनन्त पर्याय कहे है ?

[उ] गौतम ! एक जघन्य अवगाहना वाला द्वीन्द्रिय, दूसरे जघन्य अवगाहना वाले द्वीन्द्रिय

---

१ (क) प्रज्ञापना म वृत्ति, पत्राक १९३, (ख) प्रज्ञापना प्रमेयबोधिनी टीका, भा २, पृ ६८२

२ (क) प्रज्ञापना म वृत्ति, पत्राक १९३, (ख) प्रज्ञापना प्रमेयबोधिनी टीका, भा २, पृ ६८२ से ६८४ तक

३ (क) प्रज्ञापना प्रमेयबोधिनी टीका, भा २, पृ ६८८

४७२ एव जाव वणप्फइकाइयाण।

[४७२] (जिस प्रकार जघन्य-उत्कृष्ट-मध्यम मति-श्रुताज्ञानी एव अचक्षुदर्शनी पृथ्वीकायिक-पर्यायो के विषय मे कहा गया है,) उसी प्रकार (अप्कायिक से लेकर) यावत् वनस्पतिकायिक जीवो तक का (पर्यायविषयक कथन करना चाहिए।)

विवेचन—जघन्य-उत्कृष्ट-मध्यम अवगाहनादियुक्त पृथ्वीकायिक आदि पंच स्थावरो की पर्यायविषयक प्ररूपणा—प्रस्तुत सात सूत्रो (सू-४६६ से ४७२ तक) मे जघन्य मध्यम एव उत्कृष्ट अवगाहना से लेकर अचक्षुदर्शन तक से युक्त पृथ्वीकायिक आदि पाच एकेन्द्रिय जीवो का पर्याय-विषयक कथन किया गया है।

जघन्यादियुक्त अवगाहना वाले पृथ्वीकायिक आदि का अवगाहना की दृष्टि से पर्याय-परिमाण—जघन्य और उत्कृष्ट अवगाहनावाले दो पृथ्वीकायिकादि एकेन्द्रिय अवगाहना की अपेक्षा से परस्पर तुल्य होते है। किन्तु मध्यम अवगाहना वाले दो पृथ्वीकायिकादि अवगाहना की अपेक्षा से स्वस्थान मे परस्पर चतु स्थानपतित होते है। अर्थात्-एक मध्यम अवगाहना वाला पृथ्वीकायिकादि एकेन्द्रिय, दूसरे मध्यम अवगाहनावाले पृथ्वीकायिकादि एकेन्द्रिय से अवगाहना की अपेक्षा से चतु स्थान-पतित होता है, क्योकि सामान्यरूप से मध्यम अवगाहना होने पर भी वह विविध प्रकार की होती है। जघन्य और उत्कृष्ट अवगाहना की भाँति उसका एक ही स्थान नही होता। कारण यह है कि पृथ्वीकायिक आदि के भव मे पहले उत्पत्ति हुई हो, उसे स्वस्थान कहते है। इस प्रकार के स्वस्थान मे असख्यात वर्षो का आयुष्य सभव होने से असख्यातभागहीन, सख्यातभागहीन अथवा सख्यातगुणहीन या असख्यातगुणहीन होता है, अथवा असख्यातभाग अधिक, सख्यात भाग अधिक या सख्यातगुण अधिक अथवा असख्यातगुण अधिक होता है, इस प्रकार चतु स्थानपतित होता है। इसी प्रकार स्थिति, वर्णादि, मति-श्रुताज्ञान एव अचक्षुदर्शन से युक्त पृथ्वीकायिकादि की हीनाधिकता अवगाहना की अपेक्षा से चतु स्थानपतित होती है।[1]

जघन्यादि स्थिति आदि वाले पृथ्वीकायिकादि का विविध अपेक्षाओ से पर्याय-परिमाण—स्थिति की अपेक्षा से एक पृथ्वीकायिक आदि दूसरे पृथ्वीकायिक आदि से तुल्य होता है, किन्तु अवगाहना, वर्णादि, तथा मति-श्रुताज्ञान के एव अचक्षुदर्शन के पर्यायो की अपेक्षा से तुल्य नही होता है, क्योकि पृथ्वीकायिक आदि की स्थिति सख्यातवर्ष की होती है, यह बात पहले समुच्चय पृथ्वीकायिको की वक्तव्यता के प्रसग मे कही जा चुकी है। इसलिए जघन्यादियुक्त अवगाहनादि वाले पृथ्वीकायिक आदि परस्पर यदि हीन हो तो असख्यातभागहीन, सख्यातभागहीन अथवा सख्यातगुणहीन होता है, यदि अधिक हो तो असख्यातभाग-अधिक, सख्यातभाग-अधिक अथवा सख्यातगुण-अधिक होता है। वह पूर्वोक्त युक्ति के अनुसार असख्यातगुण हीन या अधिक नही होता।[2]

पूर्वोक्त पृथ्वीकायिक आदि मे दो अज्ञान और अचक्षुदर्शन की ही प्ररूपणा क्यो?—पृथ्वी-कायिक आदि मे सभी मिथ्यादृष्टि होते हैं, इनमे सम्यक्त्व नही होता, और न सम्यग्दृष्टि जीव पृथ्वीकायिकादि मे उत्पन्न होता है। अतएव उनमे दो अज्ञान ही पाए जाते है। इसी कारण यहाँ

१ (क) प्रज्ञापना म वृत्ति, पत्राक १९३, (ख) प्रज्ञापना प्रमेयबोधिनी टीका, भा २, पृ ६७५ से ६७८

२ (क) प्रज्ञापना म वृत्ति, पत्राक १९३, (ख) प्रज्ञापना प्रमेयबोधिनी टीका, भा २, पृ ६७९-६८०

दो अज्ञानो की ही प्ररूपणा की गई है। इसी प्रकार पृथ्वीकायिकादि मे चक्षुरिन्द्रिय का अभाव होने से चक्षुदर्शन भी नही होता। इसलिए यहा केवल अचक्षुदर्शन की ही प्ररूपणा की गई है।[1]

मध्यम वर्णादि से युक्त गुण वाले पृथ्वीकायिकादि का पर्यायपरिमाण—जैसे जघन्य और उत्कृष्ट कृष्ण वर्ण आदि का स्थान एक ही होता है, उनमे न्यूनाधिकता का सम्भव नही, उस प्रकार से मध्यम कृष्णवर्ण का स्थान एक नही है। एक अश काला कृष्णवर्ण आदि जघन्य होता है और सर्वाधिक अशो वाला कृष्ण वर्ण आदि उत्कृष्ट कहलाता है। इन दोनो के मध्य मे कृष्णवर्ण आदि के अनन्त विकल्प होते हैं। जैसे—दो गुण काला, तीन गुण काला, चार गुण काला, दस गुण काला, सख्यातगुण काला, असख्यातगुण काला, अनन्तगुण काला। इसी प्रकार अन्य वर्णो तथा गन्ध, रस और स्पर्शो के बारे मे समझ लेना चाहिए। अतएव जघन्य गुण काले से ऊपर और उत्कृष्ट गुण काले से नीचे कृष्ण वर्ण के मध्यम पर्याय अनन्त है। तात्पर्य यह है कि जघन्य और उत्कृष्टगुण वाले कृष्णादि वर्ण रस इत्यादि का पर्याय एक है, किन्तु मध्यमगुण कृष्णवर्ण आदि के पर्याय अनन्त है। यही कारण है कि दो पृथ्वीकायिक जीव यदि मध्यमगुण कृष्णवर्ण हो, तो भी उनमे अनन्तगुणहीनता और अधिकता हो सकती है। इसी अभिप्राय से यहाँ स्वस्थान मे भी सर्वत्र षट्स्थानपतित न्यूनाधिकता बताई है। इसी प्रकार आगे भी सर्वत्र षट्स्थानपतित समझ लेना चाहिए।[2]

पृथ्वीकायिको की तरह अन्य एकेन्द्रियो का पर्याय-विषयक निरूपण—सूत्र ४७२ मे बताये अनुसार पृथ्वीकायिक सूत्र की तरह अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक एव वनस्पतिकायिक जीवो के जघन्य, उत्कृष्ट एव मध्यम, द्रव्य, प्रदेश, अवगाहना, स्थिति, वर्णादि तथा ज्ञान-अज्ञानादि की दृष्टि से पर्यायो की यथायोग्य हीनाधिकता समझ लेनी चाहिए।[3]

जघन्यादियुक्त अवगाहनादि विशिष्ट विकलेन्द्रियो के पर्याय—

४७३ [१] जहण्णोगाहणगाण भते ! बेइंदियाण पुच्छा।

गोयमा ! अणता पज्जवा पण्णत्ता।

से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चति जहण्णोगाहणगाण बेइंदियाण अणता पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णोगाहणए बेइंदिए जहण्णोगाहणगस्स बेइंदियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए तुल्ले, ठितीए तिट्ठाणवडिते, वण्ण-गध-रस-फासपज्जवेहिं दोहिं णाणेहिं दोहिं अण्णाणेहिं अचक्खुदसणपज्जवेहि य छट्ठाणवडिते।

[४७३-१ प्र] भगवन् ! जघन्य अवगाहना वाले द्वीन्द्रिय जीवो के कितने पर्याय कहे गए है ?

[४७३-१ उ] गौतम ! अनन्त पर्याय कहे गए है।

[प्र] भगवन् ! किस हेतु से ऐसा कहा जाता है कि द्वीन्द्रिय जीवो के अनन्त पर्याय कहे है ?

[उ] गौतम ! एक जघन्य अवगाहना वाला द्वीन्द्रिय, दूसरे जघन्य अवगाहना वाले द्वीन्द्रिय

---

१ (क) प्रज्ञापना म वृत्ति, पत्राक १९३, (ख) प्रज्ञापना प्रमेयबोधिनी टीका, भा २, पृ ६८२

२ (क) प्रज्ञापना म वृत्ति, पत्राक १९३, (ख) प्रज्ञापना प्रमेयबोधिनी टीका, भा २, पृ ६८२ से ६८४ तक

३ (क) प्रज्ञापना प्रमेयबोधिनी टीका, भा २, पृ ६८८

जीव से, द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेश की अपेक्षा से तुल्य है, तथा अवगाहना की अपेक्षा से (भी) तुल्य है, (किन्तु) स्थिति की अपेक्षा त्रिस्थानपतित हैं, वर्ण, गध रस एव स्पर्श के पर्यायो, दो ज्ञानो, दो अज्ञानो तथा अचक्षु-दर्शन के पर्यायो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित (हीनाधिक) है।

[२] एव उक्कोसोगाहणए वि। णवर णाणा णत्थि।

[४७३-२] इसी प्रकार उत्कृष्ट अवगाहना वाले द्वीन्द्रिय जीवो का पर्यायविषयक कथन करना चाहिए। किन्तु उत्कृष्ट अवगाहना वाले मे ज्ञान नही होता, इतना अन्तर है।

[३] अजहण्णमणुक्कोसोगाहणए जहा जहण्णोगाहणए। णवर सट्ठाणे ओगाहणाए चउट्ठाणवडिते।

[४७३-३] अजघन्य-अनुत्कृष्ट अवगाहना वाले द्वीन्द्रिय जीवो के पर्यायो के विषय मे जघन्य अवगाहना वाले द्वीन्द्रिय जीवो के पर्यायो की तरह कहना चाहिए। विशेषता यह है कि स्वस्थान मे अवगाहना की अपेक्षा से चतु स्थानपतित है।

४७४ [१] जहण्णठितीयाण भते! बेइदियाण पुच्छा।

गोयमा! अणता पज्जवा पण्णत्ता।

से केणट्ठेण भते! एव वुच्चति जहण्णठितीयाण बेइदियाण अणता पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णठितीए बेइदिए जहण्णठितीयस्स बेइदियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए तुल्ले, वण्ण-गध-रस-फासपज्जवेहि दोहि अण्णाणेहि अचक्खुदसणपज्जवेहि य छट्ठाणवडिते।

[४७४-१ प्र] भगवन्! जघन्य स्थिति वाले द्वीन्द्रिय जीवो के कितने पर्याय है?

[४७४-१ उ] गौतम! (उनके) अनन्त पर्याय कहे है।

[प्र] भगवन्! किस दृष्टि से आप ऐसा कहते हैं कि जघन्य स्थिति वाले द्वीन्द्रिय के अनन्त पर्याय कहे है?

[उ] गौतम! एक जघन्य स्थिति वाला द्वीन्द्रिय, दूसरे जघन्य स्थिति वाले द्वीन्द्रिय से द्रव्यापेक्षया तुल्य है, प्रदेशो की अपेक्षा से (भी) तुल्य है, (किन्तु) अवगाहना की दृष्टि से चतु स्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से तुल्य है, तथा वर्ण, गध, रस और स्पर्श के पर्यायो, दो अज्ञानो एव अचक्षुदर्शन के पर्यायो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

[२] एव उक्कोसठितीए वि। णवर दो णाणा अब्भइया।

[४७४-२] इसी प्रकार उत्कृष्ट स्थिति वाले द्वीन्द्रियजीवो का भी (पर्यायविषयक कथन करना चाहिए।) विशेष यह है कि इनमे दो ज्ञान अधिक कहना चाहिए

[३] अजहण्णमणुक्कोसठितीए जहा उक्कोसठितीए। णवर ठितीए तिट्ठाणवडिते।

[४७४-३] जिस प्रकार उत्कृष्ट स्थिति वाले द्वीन्द्रिय जीवो के पर्याय के विषय मे कहा गया

है, उसी प्रकार मध्यम स्थिति वाले द्वीन्द्रियो के पर्याय के विषय मे कहना चाहिए। अन्तर इतना ही है कि स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित है।

४७५ [१] जहण्णगुणकालयाण बेइंदियाण पुच्छा।

गोयमा ! अणता पज्जवा पण्णत्ता।

से केणट्ठेणं भते ! एव वुच्चति जहण्णगुणकालयाण बेइंदियाण अणता पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णगुणकालए बेइंदिए जहण्णगुणकालयस्स बेइंदियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए तिट्ठाणवडिते, कालवण्णपज्जवेहिं तुल्ले, अवसेसेहिं वण्ण-गध-रस-फासपज्जवेहिं दोहिं णाणेहिं दोहिं अण्णाणेहिं अचक्खुदसणपज्जवेहिं य छट्ठाण-वडिते।

[४७५-१ प्र] जघन्यगुण कृष्णवर्ण वाले द्वीन्द्रिय जीवो के कितने पर्याय कहे गए है ?

[४७५-१ उ] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय कहे है।

[प्र] भगवन् ! किस हेतु से ऐसा कहा जाता है कि 'जघन्यगुण काले द्वीन्द्रियो के अनन्त पर्याय कहे है ?'

[उ] गौतम ! एक जघन्यगुण काला द्वीन्द्रिय जीव, दूसरे जघन्यगुण काले द्वीन्द्रिय जीव से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशो की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना की दृष्टि से चतु स्थानपतित (न्यूनाधिक) है, स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित है, कृष्णवर्णपर्याय की अपेक्षा से तुल्य है, शेष वर्णो तथा गध, रस और स्पर्श के पर्यायो की अपेक्षा से, दो ज्ञान, दो अज्ञान एव अचक्षुदर्शन पर्यायो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित (हीनाधिक) है।

[२] एव उक्कोसगुणकालए वि।

[४७५-२] इसी प्रकार उत्कृष्टगुण काले द्वीन्द्रियो के पर्यायो के विषय मे कहना चाहिए।

[३] अजहण्णमणुक्कोसगुणकालए वि एव चेव। णवर सट्ठाणे छट्ठाणवडिते।

[४७५-२] अजघन्य-अनुत्कृष्ट गुण काले द्वीन्द्रिय जीवो का (पर्यायविषयक कथन भी) इसी प्रकार (करना चाहिए।) विशेष यह है कि स्वस्थान मे षट्स्थानपतित (हीनाधिक) होता है।

४७६ एव पच वण्णा दो गधा पच रसा अट्ठ फासा भाणितव्वा।

[४७६] इसी तरह पाच वर्ण, दो गध, पाच रस और आठ स्पर्शो का (पर्याय विषयक) कथन करना चाहिए।

४७७ [१] जहण्णाभिणिबोहियणाणीण भते ! बेंदियाण केवतिया पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! अणता पज्जवा पण्णत्ता।

से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चति ?

गोयमा ! जहण्णाभिणिबोहियणाणी बेइंदिए जहण्णाभिणिबोहियणाणिस्स बेइंदियस्स दव्वट्ठ

याए तुल्ल, पएसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए तिट्ठाणवडिते, वण्ण-गध-रस-फासपज्जवेहिं छट्ठाणवडिते, आभिणिबोहियणाणपज्जवेहिं तुल्ले, सुयणाणपज्जवेहिं छट्ठाणवडिते, अचक्खुदसणपज्जवेहिं छट्ठाणवडिते ।

[४७७-१ प्र] भगवन् ! जघन्य-आभिनिवोधिक ज्ञानी द्वीन्द्रिय जीवो के कितने पर्याय कहे गए है ?

[४७७-१ उ] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय कहे है ।

[प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जघन्य आभिनिवोधिकज्ञानी द्वीन्द्रिय जीवो के अनन्त पर्याय कहे है ?

[उ] गौतम ! एक जघन्य आभिनिबोधिकज्ञानी द्वीन्द्रिय, दूसरे जघन्य आभिनिबोधिकज्ञानी द्वीन्द्रिय से द्रव्यापेक्षया तुल्य है, प्रदेशो की अपेक्षया तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से चतु स्थानपतित है, वर्ण, गध, रस और स्पर्श के पर्यायो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है । आभिनिवोधिक ज्ञान के पर्यायो की अपेक्षा से तुल्य है, श्रुतज्ञान के पर्यायो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, तथा अचक्षुदर्शन-पर्यायो की अपेक्षा से भी षट्स्थानपतित है ।

[२] एव उक्कोसाभिणिबोहियणाणी वि ।

[४७७-२] इसी प्रकार उत्कृष्ट आभिनिबोधिकज्ञानी द्वीन्द्रिय जीवो के (पर्यायो के विषय मे कहना चाहिए ।)

[३] अजहण्णमणुक्कोसाभिणिबोहियणाणी वि एव चेव । णवर सट्ठाणे छट्ठाणवडिते ।

[४७७-३] मध्यम-आभिनिबोधिक ज्ञानी द्वीन्द्रिय का पर्यायविषयक कथन भी इसी प्रकार से करना चाहिए किन्तु वह स्वस्थान मे षट्स्थानपतित है ।

४७८ एव सुतणाणी वि, सुतअण्णाणी वि, मतिअण्णाणी वि, अचक्खुदसणी वि । णवर जत्थ णाणा तत्थ अण्णाणा णत्थि, जत्थ अण्णाणा तत्थ णाणा णत्थि । जत्थ दसण तत्थ णाणा वि अण्णाणा वि ।

[४७८] इसी प्रकार श्रुतज्ञानी, श्रुत-अज्ञानी, मति-अज्ञानी और अचक्षुदर्शनी द्वीन्द्रिय जीवो के पर्यायो के विषय मे कहना चाहिए । विशेषता यह है कि जहाँ ज्ञान होता है, वहाँ अज्ञान नही होते, जहाँ अज्ञान होता है, वहाँ ज्ञान नही होते । जहाँ दर्शन होता है, वहाँ ज्ञान भी हो सकते है और अज्ञान भी ।

४७९ एव तेइदियाण वि ।

[४७९] द्वीन्द्रिय के पर्यायो के विषय मे कई अपेक्षाओ से कहा गया है, उसी प्रकार त्रीन्द्रिय के पर्याय-विषय मे भी कहना चाहिए ।

४८० चउरिंदियाण वि एव चेव । णवर चक्खुदसण अब्भहिय ।

[४८०] चतुरिन्द्रिय जीवो के पर्यायो के विषय मे भी इसी प्रकार कहना चाहिए । अन्तर केवल इतना है कि इनके चक्षुदर्शन अधिक है । (शेष सब बाते द्वीन्द्रिय की तरह है ।)

विवेचन—जघन्यादिविशिष्ट विकलेन्द्रियो का विविध अपेक्षाओ से पर्याय-परिमाण—प्रस्तुत आठ सूत्रो (सू ४७३ से ४८० तक) मे जघन्य, उत्कृष्ट और मध्यम द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय के अनन्तपर्यायो की सयुक्तिक प्ररूपणा की गई है।

मध्यम अवगाहना वाले द्वीन्द्रिय चतु स्थानपतित क्यो ? मध्यम अवगाहना वाला एक द्वीन्द्रिय, दूसरे मध्यम अवगाहना वाले दूसरे द्वीन्द्रिय से अवगाहना की अपेक्षा से तुल्य नही होता, अपितु चतु स्थानपतित होता है, क्योकि मध्यम अवगाहना सब एक-सी नही होती, एक मध्यम अवगाहना दूसरी मध्यम अवगाहना से सख्यातभाग हीन, असख्यातभाग हीन, सख्यातगुण हीन या असख्यातगुण हीन तथा इसी प्रकार चारो प्रकार से अधिक भी हो सकती है। मध्यम अवगाहना अपर्याप्त अवस्था के प्रथम समय के अनन्तर ही प्रारम्भ हो जाती है। अतएव अपर्याप्तदशा मे भी उसका सद्भाव होता है। इस कारण सास्वादनसम्यक्त्व भी मध्यम अवगाहना के समय सभव है। इसी से यहाँ दो ज्ञानो का भी सद्भाव हो सकता है। जिन द्वीन्द्रियो मे सास्वादन सम्यक्त्व नही होता, उनमे दो अज्ञान होते है।

जघन्य स्थिति वाले द्वीन्द्रियो मे दो अज्ञान की ही प्ररूपणा—जघन्य स्थिति वाले द्वीन्द्रिय जीवो मे दो अज्ञान ही पाए जाते है, दो ज्ञान नही, क्योकि जघन्य स्थिति वाला द्वीन्द्रिय जीव लब्धि-अपर्याप्तक होता है, लब्धि-अपर्याप्तको के सास्वादनसम्यक्त्व उत्पन्न नही होता, इसका कारण यह है कि लब्धिअपर्याप्तक जीव अत्यन्त सक्लिष्ट होता है और सास्वादन सम्यक्त्व किंचित् शुभ-परिणामरूप है। अतएव सास्वादन सम्यग्दृष्टि का जघन्य स्थिति वाले द्वीन्द्रिय रूप मे उत्पाद नही होता। -

उत्कृष्ट स्थिति वाले द्वीन्द्रिय जीवो मे दो ज्ञानो को प्ररूपणा—उत्कृष्टस्थितिक द्वीन्द्रिय जीवो मे सास्वादन सम्यक्त्व वाले जीव भी उत्पन्न हो सकते है। अतएव जो वक्तव्यता जघन्यस्थितिक द्वीन्द्रियो के पर्यायविषय मे कही है, वही उत्कृष्ट स्थिति वाले द्वीन्द्रियो की भी समझनी चाहिए, किन्तु उनमे दो ज्ञानो के पर्यायो की भी प्ररूपणा करना चाहिए।

मध्यमस्थिति वाले द्वीन्द्रियो की वक्तव्यता—इनसे सम्बन्धित पर्यायपरिमाण की वक्तव्यता उत्कृष्ट स्थिति वाले द्वीन्द्रियो के समान समझनी चाहिए, किन्तु इसमे स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थान-पतित कहना चाहिए, क्योकि सभी मध्यमस्थिति वालो की स्थिति तुल्य नही होती।

जघन्यगुणकृष्ण द्वीन्द्रिय स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित—एक जघन्यगुण कृष्ण, दूसरे जघन्यगुण कृष्ण से स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित होता है, क्योकि द्वीन्द्रिय की स्थिति सख्यात-वर्षो की होती है, इसलिए वह चतु स्थानपतित नही हो सकता।

मध्यम आभिनिबोधिकज्ञानी द्वीन्द्रिय की पर्याय-प्ररूपणा—इसकी और सब प्ररूपणा तो जघन्य आभिनिबोधिक ज्ञानी के समान ही है, किन्तु विशेषता इतनी ही है कि वह स्वस्थान मे भी षट्स्थान-पतित हीनाधिक होता है। जैसे उत्कृष्ट और जघन्य आभिनिबोधिक ज्ञानी द्वीन्द्रिय का एक-एक ही पर्याय है, वैसे मध्यम आभिनिबोधिक ज्ञानी द्वीन्द्रिय का नही, क्योकि उसके तो अनन्त हीनाधिकरूप

पर्याय होते है।[1] त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवो की प्ररूपणा यथायोग्य द्वीन्द्रियो की तरह समझ लेना चाहिए।

जघन्य अवगाहनादि वाले पंचेन्द्रियतिर्यंचो की विविध अपेक्षाओं से पर्याय प्ररूपणा—

४८१ [१] जहण्णोगाहणगाण भंते ! पंचिदियतिरिक्खजोणियाण केवइया पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! अणता पज्जवा पण्णत्ता।

से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चति जहण्णोगाहणगाण पचेंदियतिरिक्खजोणियाण अणता पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णोगाहणए पचेंदियतिरिक्खजोणिए जहण्णोगाहणयस्स पचेंदियतिरिक्खजोणियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए तुल्ले, ठितीए तिट्ठाणवडिते, वण्ण-गध-रस-फासपज्जवेहिं दोहिं णाणेहिं दोहिं अण्णाणेहिं दोहिं दसणेहिं छट्ठाणवडिते।

[४८१-१ प्र] भगवन् ! जघन्य अवगाहना वाले पचेन्द्रियतिर्यचो के कितने पर्याय कहे गए है ?

[४८१-१ उ] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय कहे है।

[प्र] भगवन् ! ऐसा किस अपेक्षा से कहा जाता कि 'जघन्य अवगाहना वाले पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चो के अनन्त पर्याय है ?'

[उ] गौतम ! एक जघन्य अवगाहना वाला पचेन्द्रिय तिर्यच, दूसरे जघन्य अवगाहना वाले पचेन्द्रिय तिर्यच से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशो की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से तुल्य है, स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित है, तथा वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के पर्यायो, दो ज्ञानो, अज्ञानो और दो दर्शनो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

[२] उक्कोसोगाहणए वि एव चेव। णवर तिहिं णाणेहिं तिहिं अण्णाणेहिं] तिहिं दसणेहिं छट्ठाणवडिते।

[४८१-२] उत्कृष्ट अवगाहना वाले पचेन्द्रियतिर्यञ्चो का (पर्याय-विषयक कथन) भी इसी प्रकार कहना चाहिए, विशेषता इतनी ही है कि तीन ज्ञानो, तीन अज्ञानो और तीन दर्शनो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित (हीनाधिक) है।

[३] जहा उक्कोसोगाहणए तहा अजहण्णमणुक्कोसोगाहणए वि। णवर ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए, ठिईए चउट्ठाणवडिए।

[४८१-३] जिस प्रकार उत्कृष्ट अवगाहना वाले पचेन्द्रियतिर्यचो का (पर्यायविषयक) कथन (किया गया) है, उसी प्रकार अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) अवगाहना वाले पचेन्द्रिय-

---

१ (क) प्रज्ञापनासूत्र म वृत्ति, पत्राक १९३
(ख) प्रज्ञापना प्रमेयबोधिनी भा २, पृ ७०१ से ७०७ तक

तिर्यञ्चो (से सम्बन्धित पर्यायविषयक कथन करना चाहिए।) विशेष यह है कि ये अवगाहना की अपेक्षा से चतु स्थानपतित है, तथा स्थिति की दृष्टि से चतु स्थानपतित हे।

४८२ [१] जहण्णठितीयाण भंते ! पचेंदियतिरिक्खजोणियाण केवतिया पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! अणता पज्जवा पण्णत्ता।

से केणट्ठेण भंते ! एव वुच्चति ?

गोयमा ! जहण्णठितीए पचेंदियतिरिक्खजोणिए जहन्नठितीयस्स पंचिदियतिरिक्खजोणियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए तुल्ले, वण्ण-गध-रस-फास-पज्जवेहिं दोहिं अण्णाणेहिं दोहिं दसणेहिं छट्ठाणवडिते।

[४८२-१ प्र] भगवन् ! जघन्य स्थिति वाले पचेन्द्रिय तिर्यञ्चो के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[४८२-१ उ] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय कहे गए है।

[प्र] भगवन् ! किस कारण से आप ऐसा कहते है कि 'जघन्य स्थिति वाले पचेन्द्रिय तिर्यञ्चो के अनन्त पर्याय कहे है ?'

[उ] गौतम ! एक जघन्यस्थिति वाला पचेन्द्रियतिर्यञ्च दूसरे जघन्यस्थिति वाले पचेन्द्रिय तिर्यञ्च से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेशो की अपेक्षा से (भी) तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से चतु स्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से तुल्य है, तथा वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के पर्यायो, दो अज्ञान एव दो दर्शनो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

[२] उक्कोसठितीए वि एव चेव। नवर दो णाणा दो अण्णाणा दो दसणा।

[४८२-२] उत्कृष्टस्थिति वाले पचेन्द्रिय तिर्यंचो का पर्याय-विषयक कथन भी इसी प्रकार करना चाहिए। विशेष यह है कि इसमे दो ज्ञान, दो अज्ञान और दो दर्शनो (की प्ररूपणा करनी चाहिए।)

[३] अजहण्णमणुक्कोसठितीए वि एव चेव। नवर ठितीए चउट्ठाणवडिते, तिण्णि णाणा, तिण्णि अण्णाणा, तिण्णि दसणा।

[४८२-३] अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) स्थिति वाले पचेन्द्रिय तिर्यञ्चो का (पर्याय विषयक कथन भी) इसी प्रकार (पूर्ववत् करना चाहिए।) विशेष यह है कि स्थिति की अपेक्षा से (यह) चतु स्थानपतित है, तथा (इनमे) तीन ज्ञान, तीन अज्ञान और तीन दर्शनो (की प्ररूपणा करन चाहिए।)

४८३ [१] जहण्णगुणकालगाण भंते ! पचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा।

गोयमा ! अणता पज्जवा पण्णत्ता।

से केणट्ठेण भंते ! एव वुच्चति ?

गोयमा ! जहण्णगुणकालए पचेंदियतिरिक्खजोणिए जहण्णगुणकालगस्स पचदियतिरिक्ख-

जोणियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए चउट्ठाणवडिते, कालवण्णपज्जवेहिं तुल्ले, अवसेसेहिं वण्ण गंध-रस-फासपज्जवेहिं तिहिं णाणेहिं तिहिं अण्णाणेहिं तिहिं दंसणेहिं छट्ठाणवडिते ।

[४८३-१ प्र] भगवन् ! जघन्यगुणकृष्ण पचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिको के कितने पर्याय है ?

[४८३-१ उ] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय हैं ।

[प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहते है कि 'जघन्यगुणकृष्ण पचेन्द्रियतिर्यंचो के अनन्त पर्याय है ?'

[उ] गौतम ! एक जघन्य गुण काला पचेन्द्रियतिर्यञ्च, दूसरे जघन्यगुण काले पचेन्द्रिय-तिर्यञ्च से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशो की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से चतु स्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से चतु स्थानपतित है, कृष्णवर्ण के पर्यायो की अपेक्षा तुल्य है, शेष वर्ण, गध, रस, स्पर्श के तथा तीन ज्ञान, तीन अज्ञान एव तीन दर्शनो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है ।

[२] एव उक्कोसगुणकालए वि ।

[४८३-२] इसी प्रकार उत्कृष्टगुण काले (पचेन्द्रियतिर्यञ्चो के पर्यायो के विषय मे भी समझना चाहिए ।)

[३] अजहण्णमणुक्कोसगुणकालए वि एव चेव । णवर सट्ठाणे छट्ठाणवडिते ।

[४८३-३] अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) गुण काले पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चो के (पर्यायो के विषय मे भी इसी प्रकार कहना चाहिए ।) विशेष यह है कि वे स्वस्थान (कृष्णगुणपर्याय) मे भी षट्-स्थानपतित है ।

४८४ एव पच वण्णा दो गधा पच रसा अट्ठ फासा ।

[४५४] इस प्रकार पाचो वर्णो, दो गन्धो, पाच रसो और आठ स्पर्शो से (युक्त तिर्यञ्च-पचेन्द्रियो के पर्यायो के विषय मे कहना चाहिए ।)

४८५. [१] जहण्णाभिणिबोहियणाणीण भंते ! पचेंदियतिरिक्खजोणियाण केवतिया पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! अणता पज्जवा पण्णत्ता ।

से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चति ?

गोयमा ! जहण्णाभिणिबोहियणाणी पचेंदियतिरिक्खजोणिए जहण्णाभिणिबोहियणाणिस्स पचेंदियतिरिक्खजोणियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पवेसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए चउट्ठाणवडिते, वण्ण-गध-रस-फासपज्जवेहिं छट्ठाणवडिते, आभिणिबोहियणाणपज्जवेहिं तुल्ले, सुयणाणपज्जवेहिं छट्ठाणवडिते, चक्खुदंसणपज्जवेहिं अचक्खुदंसणपज्जवेहि य छट्ठाणवडिते ।

[४८५-१ प्र] भगवन् ! जघन्य आभिनिवोधिकज्ञानी पचेन्द्रियतिर्यंचयोनिक जीवो के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[४८५-१ उ] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय कहे है ।

[प्र] भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहते है कि 'जघन्य आभिनिबोधिक ज्ञानी पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चो के अनन्त पर्याय कहे है ?'

[उ] गौतम ! एक जघन्य आभिनिबोधिक ज्ञानी पचेन्द्रियतिर्यञ्च, दूसरे जघन्य आभिनि-बोधिक ज्ञानी पचेन्द्रियतिर्यञ्च से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशो की अपेक्षा तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से चतु स्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से चतु स्थानपतित है, तथा वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के पर्यायो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, आभिनिबोधिक ज्ञान के पर्यायो की अपेक्षा से तुल्य है, श्रुतज्ञान के पर्यायो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, तथा चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शन के पर्यायो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है ।

[२] एव उक्कोसाभिणिबोहियणाणी वि । णवर ठितीए तिटठाणवडिते, तिण्णि णाणा, तिण्णि दसणा, सट्ठाणे तुल्ले, सेसेसु छट्ठाणवडिते ।

[४८५-२] इसी प्रकार उत्कृष्ट आभिनिबोधिक ज्ञानी पचेन्द्रिय-तिर्यचो का पर्यायविषयक कथन करना चाहिए । विशेष यह है कि स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित है, तीन ज्ञान, तीन दर्शन तथा स्वस्थान मे तुल्य है, शेष सब मे षट्स्थानपतित (हीनाधिक) है ।

[३] अजहण्णुक्कोसाभिणिबोहियणाणी जहा उक्कोसाभिणिबोहियणाणी । णवर ठितीए चउट्ठासवडिते, सट्ठाणे छट्ठाणवडिते ।

[४८५-३] मध्यम आभिनिबोधिक ज्ञानी तिर्यञ्चपचेन्द्रियो का पर्यायविषयक कथन, उत्कृष्ट आभिनिबोधिकज्ञानी पचेन्द्रिय तिर्यञ्चो की तरह समझना चाहिए । विशेष यह है कि स्थिति की अपेक्षा से चतु स्थानपतित है, तथा स्वस्थान मे षट्स्थानपतित है ।

४८६ एव सुतणाणी वि ।

[४८६] जिस प्रकार (जघन्यादिविशिष्ट) आभिनिबोधिक ज्ञानी तिर्यञ्चपचेन्दिय के पर्यायो के विषय मे कहा है,) उसी प्रकार (जघन्यादियुक्त) श्रुतज्ञानी तिर्यञ्चपचेन्द्रिय के पर्यायो के विषय मे कहना चाहिए ।

४८७ जहण्णोहिणाणीण भते ! पचेंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! अणता पज्जवा पण्णत्ता ।

से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चति ?

गोयमा ! जहण्णोहिणाणी पचेंदियतिरिक्खजोणिए जहण्णोहिणाणिस्स पचेंदियतिरिक्खजोणि-यस्स दव्वट्ठयाते तुल्ले, पदेसट्ठयाते तुल्ले, ओगाहणट्ठयाते चउट्ठाणवडिते, ठितीए तिट्ठाणवडिते, वण्ण-गध-रस-फासपज्जवेहिं आभिणिबोहियणाण-सुतणाणपज्जवेहि य छट्ठाणवडिते, ओहिणाणपज्जवेहिं तुल्ले, अण्णाणा णत्थि, चक्खुदसणपज्जवेहिं अचक्खुदसणपज्जवेहि य छट्ठाणवडिते ।

[४८७-१ प्र] भगवन् ! जघन्य अवधिज्ञानी पचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक जीवो के कितने पर्याय कहे गए है ?

[४८७-१ उ] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय कहे गए है ।

[प्र] भगवन् ! ऐसा आप किस कारण से कहते है कि 'जघन्य अवधिज्ञानी पचेन्द्रियतिर्यञ्चो के अनन्त पर्याय कहे है ?'

[उ] गौतम ! एक जघन्य अवधिज्ञानी पचेन्द्रिय तिर्यचयोनिक, दूसरे जघन्य अवधिज्ञानी पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशो की अपेक्षा से (भी) तुल्य है, (किन्तु) अवगाहना की अपेक्षा से चतु स्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित है तथा वर्ण, गध, रस और स्पर्श के पर्यायो और आभिनिबोधिकज्ञान तथा श्रुतज्ञान के पर्यायो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है। अवधिज्ञान के पर्यायो की अपेक्षा से तुल्य है। (इसमे) अज्ञान नही कहना चाहिए। चक्षुदर्शन-पर्यायो और अचक्षुदर्शन-पर्यायो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है ।

[२] एव उक्कोसोहिणाणी वि ।

[४८७-२] इसी प्रकार उत्कृष्ट अवधिज्ञानी पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक जीवो का (पर्याय-विषयक कथन करना चाहिए ।)

[३] अजहण्णुक्कोसोहिणाणी वि एव चेव । नवर सट्ठाणे छट्ठाणवडिते ।

[४८७-३] मध्यम अवधिज्ञानी (पचेन्द्रियतिर्यञ्चो) की (भी पर्यायप्ररूपणा) इसी प्रकार करनी चाहिए। विशेष यह है कि स्वस्थान मे षट्स्थानपतित (हीनाधिक) है ।

४८८ जहा आभिणिबोहियणाणी तहा मइअण्णाणी सुयअण्णाणी य । जहा ओहिणाणी तहा विभगणाणी वि चक्खुदसणी अचक्खुदसणी य जहा आभिणिबोहिणाणी । ओहिदसणी जहा ओहिणाणी । जत्थ णाणा तत्थ अण्णाणा णत्थि, जत्थ अण्णाणा तत्थ णाणा णत्थि, जत्थ दसणा तत्थ णाणा वि अण्णाणा वि अत्थि त्ति भाणितव्व ।

[४८८] जिस प्रकार आभिनिबोधिकज्ञानी तिर्यचपचेन्द्रिय की पर्याय-सम्बन्धी वक्तव्यता है, उसी प्रकार मति-अज्ञानी और श्रुत-अज्ञानी की है, जैसी अवधिज्ञानी पचेन्द्रियतिर्यञ्चपर्याय-प्ररूपणा है, वैसी ही विभगज्ञानी की है। चक्षुदर्शनी और अचक्षुदर्शनी की (पर्यायसम्बन्धी वक्तव्यता) आभिनिबोधिकज्ञानी की तरह है। अवधिदर्शनी की (पर्याय-वक्तव्यता) अवधिज्ञानी की तरह है। (विशेष बात यह है कि) जहा ज्ञान है, वहा अज्ञान नही है, जहा अज्ञान है, वहाँ ज्ञान नही है, जहाँ दर्शन है, वहाँ ज्ञान भी हो सकते है, अज्ञान भी हो सकते है, ऐसे कहना चाहिए ।

विवेचन—जघन्य-अवगाहनादि विशिष्ट पचेन्द्रियतिर्यंचो की विविध अपेक्षाओ से पर्याय-प्ररूपणा—प्रस्तुत आठ सूत्रो (सू ५८१ से ५८८ तक) मे जघन्य, उत्कृष्ट और मध्यम अवगाहना आदि वाले पचेन्द्रियतिर्यञ्चो की, द्रव्य, प्रदेश, अवगाहना, स्थिति, वर्णादि, ज्ञानाज्ञानदर्शनयुक्त आदि विभिन्न अपेक्षाओ से पर्यायो की प्ररूपणा की गई है ।

जघन्य अवगाहना वाले तिर्यंचपचेन्द्रिय स्थिति की अपेक्षा त्रिस्थानपतित—जघन्य अवगाहना वाला तिर्यञ्च पचेन्द्रिय आयु सम्बन्धी कालमर्यादा (स्थिति) की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित होता है, चतु स्थानपतित नही, क्योकि जघन्य अवगाहना वाला पचेन्द्रिय-तिर्यञ्च सख्यात वर्षों की आयु वाला

ही होता है, असख्यातवर्षो की आयु वाले के जघन्य अवगाहना नही होती। इसी कारण यहा जघन्य अवगाहनावान् तिर्यंचपचेन्द्रिय स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित कहा गया है, जिसका स्वरूप पहले बताया जा चुका है।

जघन्य अवगाहना वाले तिर्यंचपचेन्द्रिय मे अवधि या विभगज्ञान नही—जघन्य अवगाहना वाला पचेन्द्रियतिर्यच अपर्याप्त होता है, और अपर्याप्त होकर अल्पकाय वाले जीवो मे उत्पन्न होता है, इसलिए उसमे अवधिज्ञान या विभगज्ञान सभव नही। इस कारण से यहाँ दो ज्ञानो और दो अज्ञानो का ही उल्लेख है। यद्यपि आगे कहा जाएगा कि कोई जीव विभगज्ञान के साथ नरक से निकल कर सख्यात वर्षों की आयु वाले पचेन्द्रियतिर्यचो मे उत्पन्न होता है, किंतु वह महाकायवालो मे ही उत्पन्न हो सकता है, अल्पकाय वालो मे नही। इसलिए कोई विरोध नही समझना चाहिए। अवगाहना मे षट्स्थानपतित होता नही है।

मध्यम अवगाहना वाला पचेन्द्रिय तिर्यंच अवगाहना एव स्थिति की दृष्टि से चतु स्थानपतित—चू कि मध्यम अवगाहना अनेक प्रकार की होती है, अत उसमे सख्यात-असख्यातगुणहीनाधिकता हो सकती है तथा मध्यम अवगाहना वाला असख्यातवर्ष की आयुवाला भी हो सकता है, इसलिए स्थिति की अपेक्षा से भी वह चतु स्थानपतित है।

उत्कृष्ट स्थिति वाले तिर्यञ्च पचेन्द्रिय की पर्यायवक्तव्यता—उत्कृष्ट स्थिति वाले पचेन्द्रियतिर्यच तीन पल्योपम की स्थिति वाले होते है। अत उनमे दो ज्ञान दो अज्ञान होते हैं। जो ज्ञान वाले होते है, वे वैमानिक की आयु बाध लेते है, तब दो ज्ञान होते है। इस आशय से उनमे दो ज्ञान अथवा दो अज्ञान कहे है।[1]

मध्यम स्थिति वाला तिर्यंचपचेन्द्रिय स्थिति की अपेक्षा चतु स्थानपतित—मध्यम स्थिति वाला तिर्यंचपचेन्द्रिय सख्यात अथवा असख्यात वर्ष की आयु वाला भी हो सकता है, क्योकि एक समय कम तीन पल्योपम की आयुवाला भी मध्यमस्थितिक कहलाता है। अत वह चतु स्थानपतित है।

आभिनिबोधिक ज्ञानी तिर्यंचपचेन्द्रिय स्थिति की अपेक्षा चतु स्थानपतित—असख्यात वर्ष की आयु वाले पचेन्द्रिय तिर्यञ्च मे भी अपनी भूमिका के अनुसार जघन्य आभिनिबोधिक ज्ञान और श्रुतज्ञान पाए जाते हैं। इसी प्रकार सख्यातवर्ष की आयु वालो मे जघन्य मतिश्रुतज्ञान सभव होने से यहाँ स्थिति की अपेक्षा से इसे चतु स्थानपतित कहा है।

मध्यम आभिनिबोधिकज्ञानी तिर्यंच पचेन्द्रिय की अपेक्षा से षट्स्थानपतित—क्योकि आभिनिबोधिक ज्ञान के तरतमरूप पर्याय अनन्त होते है। अतएव उनमे अनन्तगुणहीनता-अधिकता भी हो सकती है।

मध्यम अवधिज्ञानी तिर्यंचपचेन्द्रिय स्वस्थान मे षट्स्थानपतित—इसका मतलब है—वह स्वस्थान अर्थात् मध्यम अवधिज्ञान मे षट्स्थानपतित होता है। एक मध्यम अवधिज्ञानी दूसरे मध्यम-अवधिज्ञानी तिर्यंचपचेन्द्रिय से षट्स्थानपतितहीना अधिक हो सकता है।

विभगज्ञानी तिर्यञ्चपचेन्द्रिय स्थिति की दृष्टि से त्रिस्थानपतित—चू कि अवधिज्ञान और विभगज्ञान असख्यातवर्ष की आयु वाले को नही होता, अत अवधिज्ञान और विभगज्ञान मे नियम से[2] त्रिस्थानपतित (हीनाधिक) होता है।

---

१ (क) प्रज्ञापना म वृत्ति, पत्राक १९३-१९४, (ख) प्रज्ञापना प्रमेयबोधिनी भा २, पृ ७२१ से ७२७ तक
२ (क) प्रज्ञापना म वृत्ति, पत्राक १९४, (ख) प्रज्ञापना प्रमेयबोधिनी भा २, पृ ७२८ से ७३७ तक

जघन्य-उत्कृष्ट-मध्यम अवगाहनादि वाले मनुष्यों की पर्यायप्ररूपणा—

४८९. [१] जहण्णोगाहणगाण भंते ! मणुस्साण केवतिया पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता ।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ जहण्णोगाहणगाणं मणुस्साणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णोगाहणए मणूसे जहण्णोगाहणगस्स मणूसस्स दव्वट्ठयाते तुल्ले, पदेसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए तुल्ले, ठितीए तिट्ठाणवडिते, वण्ण-गंध-रस-फासपज्जवेहिं तिहिं णाणेहिं दोहिं अण्णाणेहिं तिहिं दंसणेहिं छट्ठाणवडिते ।

[४८९-१ प्र] भगवन् ! जघन्य अवगाहना वाले मनुष्यों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[४८९-१ उ] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय कहे गए हैं ।

[प्र] भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहा जाता है कि 'जघन्य अवगाहना वाले मनुष्यों के अनन्त पर्याय कहे हैं ?'

[उ] गौतम ! एक जघन्य अवगाहना वाला मनुष्य, दूसरे जघन्य अवगाहना वाले मनुष्य से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य है, तथा अवगाहना की दृष्टि से तुल्य है, (किन्तु) स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित है, तथा वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा से, एवं तीन ज्ञान, दो अज्ञान और तीन दर्शनों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है ।

[२] उक्कोसोगाहणए वि एवं चेव । नवरं ठितीए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिते—जति हीणे असंखेज्जतिभागहीणे, अह अब्भहिए असंखेज्जतिभागमब्भहिते; दो णाणा दो अण्णाणा दो दंसणा ।

[४८९-२] उत्कृष्ट अवगाहना वाले मनुष्यों के पर्यायों के विषय में भी इसी प्रकार कहना चाहिए । विशेष यह है कि स्थिति की अपेक्षा से कदाचित् हीन, कदाचित् तुल्य और कदाचित् अधिक होता है । यदि हीन हो तो असंख्यातभाग हीन होता है, यदि अधिक हो तो असंख्यात भाग अधिक होता है । उनमें दो ज्ञान, दो अज्ञान और दो दर्शन होते हैं ।

[३] अजहण्णमणुक्कोसोगाहणाए वि एवं चेव । णवरं ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए चउट्ठाणवडिते, आइल्लेहिं चउहिं नाणेहिं छट्ठाणवडिते, केवलणाणपज्जवेहिं तुल्ले, तिहिं अण्णाणेहिं तिहिं दंसणेहिं छट्ठाणवडिते, केवलदंसणपज्जवेहिं तुल्ले ।

[४८९-३] अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) अवगाहना वाले मनुष्यों का (पर्याय-विषयक कथन) भी इसी प्रकार करना चाहिए । विशेष यह है कि अवगाहना की दृष्टि से चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, तथा आदि के चार ज्ञानों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, केवलज्ञान के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है, तथा तीन अज्ञान और तीन दर्शनों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, केवलदर्शन के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है ।

४९० [१] जहण्णठितीयाण भंते ! मणुस्साण केवतिया पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! अणता पज्जवा पण्णत्ता ।

से केणट्ठेण भंते ! एव वुच्चति ?

गोयमा ! जहण्णठितीए मणुस्से जहण्णठितीयस्स मणूसस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए तुल्ले, वण्ण-गध-रस-फासपज्जवेहि दोहि अण्णाणेहि दोहि दसणेहि छट्ठाणवडिते ।

[४९०-१ प्र] भगवन् ! जघन्य स्थिति वाले मनुष्यो के कितने पर्याय कहे गए है ?

[४९०-१ उ] गौतम ! उनके अनन्त पर्याय कहे है ।

[प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जघन्य स्थिति वाले मनुष्यो के अनन्त पर्याय हैं ?

[उ] गौतम ! एक जघन्य स्थिति वाला मनुष्य, दूसरे जघन्य स्थिति वाले मनुष्य से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशो की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से चतु स्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से तुल्य है, तथा वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के पर्यायो की अपेक्षा से, दो अज्ञानो और दो दर्शनो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है ।

[२] एवं उक्कोसठितीए वि । नवर दो णाणा, दो अण्णाणा, दो दसणा ।

[४९०-२] उत्कृष्ट स्थिति वाले मनुष्यो के (पर्यायो के विषय मे) भी इसी प्रकार कहना चाहिए । विशेष यह है कि (उनमे) दो ज्ञान, दो अज्ञान और दो दर्शन (पाए जाते) है ।

[३] अजहण्णमणुक्कोसठितीए वि एव चेव । नवर ठितीए चउट्ठाणवडिते ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए, आदिल्लेहि चउनाणेहि छट्ठाणवडिते, केवलनाणपज्जवेहि तुल्ले, तिहि अण्णाणेहि तिहि दसणेहि छट्ठाणवडिते, केवलदसणपज्जवेहि तुल्ले ।

[४९०-३] मध्यमस्थिति वाले मनुष्यो का पर्यायविषयक कथन भी इसी प्रकार करना चाहिए । विशेष यह है कि स्थिति की अपेक्षा से चतु स्थानपतित है, अवगाहना की दृष्टि से चतु स्थानपतित है, तथा आदि के चार ज्ञानो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, केवलज्ञान के पर्यायो की अपेक्षा से तुल्य है, एव तीन अज्ञानो और तीन दर्शनो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है तथा केवलदर्शन के पर्यायो की अपेक्षा से तुल्य है ।

४९१. [१] जहण्णगुणकालयाण भंते ! मणुस्साण केवतिया पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! अणता पज्जवा पण्णत्ता ।

से केणट्ठेण भंते ! एव वुच्चति ?

गोयमा ! जहण्णगुणकालए मणूसे जहण्णगुणकालगस्स मणूसस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए चउट्ठाणवडिते, कालवण्णपज्जवेहि तुल्ले, अवसेसेहि वण्ण-गध-रस-फासपज्जवेहि छट्ठाणवडिते, चउहि णाणेहि छट्ठाणवडिते, केवलणाणपज्जवेहि तुल्ले, तिहि अण्णाणेहि तिहि दसणेहि छट्ठाणवडिते, केवलदसणपज्जवेहि तुल्ले ।

[४९१-१ प्र] भगवन् ! जघन्यगुण काले मनुष्यो के कितने पर्याय कहे गए है ?

[४९१-१ उ] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय कहे है।

[प्र] भगवन् ! ऐसा आप किस कारण से कहते हैं कि जघन्यगुण काले मनुष्यो के अनन्त-पर्याय है ?

[उ] गौतम ! एक जघन्यगुण काला मनुष्य दूसरे जघन्यगुण काले मनुष्य से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशो की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से चतु स्थानपतित हैं, स्थिति की अपेक्षा से चतु स्थानपतित है, कृष्णवर्ण के पर्यायो की अपेक्षा से तुल्य है, तथा अवशिष्ट वर्णो, गन्धो, रसो और स्पर्शो के पर्यायो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, चार ज्ञानो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, केवलज्ञान के पर्यायो की अपेक्षा से तुल्य है, तथा तीन अज्ञानो और तीन दर्शनो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है और केवलदर्शन के पर्यायो की अपेक्षा से तुल्य है।

[२] एव उक्कोसगुणकालए वि।

[४९१-२] इसी प्रकार उत्कृष्टगुण काले मनुष्यो के (पर्यायो के) विषय मे भी (समझना चाहिए।)

[३] अजहण्णमणुक्कोसगुणकालए वि एव चेव। नवर सट्ठाणे छट्ठाणवडिते।

[४९१-३] अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) गुण काले मनुष्यो का पर्याय-विषयक कथन भी इसी प्रकार करना चाहिए। विशेष यह है कि स्वस्थान मे षट्स्थानपतित है।

४९२. एवं पंच वण्णा दो गधा पच रसा अट्ठ फासा भाणितव्वा।

[४९२] इसी प्रकार पाँच वर्ण, दो गन्ध, पाँच रस एव आठ स्पर्श वाले मनुष्यो का (पर्याय-विषयक) कथन करना चाहिए।

४९३ [१] जहण्णाभिणिबोहियणाणीण भते ! मणुस्साण केवतिया पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! अणता पज्जवा पण्णत्ता।

से केणट्ठेणं भते ! एव वुच्चति ?

गोयमा ! जहण्णाभिणिबोहियणाणी मणूसे जहण्णाभिणिबोहियणाणिस्स मणूसस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए चउट्ठाणवडिते, वण्ण-गध-रस-फासपज्जवेहि छट्ठाणवडिते, आभिणिबोहियणाणपज्जवेहि तुल्ले, सुतणाणपज्जवेहि दोहि दसणेहि छट्ठाणवडिते।

[४९३-१ प्र] भगवन् ! जघन्य आभिनिबोधिकज्ञानी मनुष्यो के कितने पर्याय कहे गए है ?

[४९३-१ उ] गौतम ! (उनके) अनन्तपर्याय कहे हैं।

[प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है ?

[उ] गौतम ! एक जघन्य आभिनिबोधिक ज्ञानी मनुष्य दूसरे जघन्य आभिनिबोधिक-ज्ञानी

मनुष्य से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशो की अपेक्षा से भी तुल्य है, अवगाहना की दृष्टि से चतु स्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से चतु स्थानपतित है, तथा वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के पर्यायो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, तथा आभिनिबोधिक ज्ञान के पर्यायो की अपेक्षा से तुल्य है, किन्तु श्रुतज्ञान के पर्यायो की अपेक्षा से और दो दर्शनो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है ।

[२] एवं उक्कोसाभिणिबोहियणाणी वि । नवर आभिणिबोहियणाणपज्जवेहिं तुल्ले, ठितीए तिट्ठाणवडिते, तिहिं णाणेहिं तिहिं दंसणेहिं छट्ठाणवडिते ।

[४९३-२] इसी प्रकार उत्कृष्ट आभिनिबोधिकज्ञानी (मनुष्यो की पर्यायो के विषय मे जानना चाहिए ।) विशेष यह है कि वह आभिनिबोधिकज्ञान के पर्यायो की अपेक्षा से तुल्य है, स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित है, तथा तीन ज्ञानो और तीन दर्शनो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है ।

[३] अजहण्णमणुक्कोसाभिणिबोहियणाणी जहा उक्कोसाभिणिबोहियणाणी । णवर ठितीए चउट्ठाणवडिते, सट्ठाणे छट्ठाणवडिते ।

[४९३-३] अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) आभिनिबोधिकज्ञानी मनुष्यो के पर्यायो के विषय मे उत्कृष्ट आभिनिबोधिकज्ञानी मनुष्यो की तरह ही कहना चाहिए । विशेष यह है कि स्थिति की अपेक्षा से चतु स्थानपतित है, तथा स्वस्थान मे षट्स्थानपतित है ।

४९४ एव सुतणाणी वि ।

[४९४] इसी प्रकार (जघन्य-उत्कृष्ट-मध्यम) श्रुतज्ञानी (मनुष्यो) के (पर्यायो के) विषय मे (सारा पाठ कहना चाहिए ।)

४९५ [१] जहण्णोहिणाणीण भते ! मणुस्साण केवतिया पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! अणता पज्जवा पण्णत्ता ।

से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चति ?

गोयमा ! जहण्णोहिणाणी मणुस्से जहण्णोहिणाणिस्स मणूसस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठिईए तिट्ठाणवडिते, वण्ण-गध-रस-फासपज्जवेहिं दोहिं नाणेहिं छट्ठाणवडिए, ओहिणाणपज्जवेहिं तुल्ले, मणपज्जवणाणपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए, तिहिं दसणेहिं छट्ठाणवडिए ।

[४९५-१ प्र] भगवन् ! जघन्य अवधिज्ञानी मनुष्यो के कितने पर्याय कहे गए है ?

[४९५-१ उ] गौतम ! उनके अनन्त पर्याय कहे हैं ।

[प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहते है (कि जघन्य अवधिज्ञानी मनुष्यो के अनन्त-पर्याय हैं) ?

[उ] गौतम ! एक जघन्य अवधिज्ञानी मनुष्य, दूसरे जघन्य अवधिज्ञानी मनुष्य से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशो की अपेक्षा से (भी) तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से चतु स्थानपतित (पाठान्तर की दृष्टि से 'त्रिस्थानपतित') है, स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित है, तथा वर्ण, गन्ध,

रस और स्पर्श के पर्यायो एव दो ज्ञानो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, अवधिज्ञान के पर्यायो की अपेक्षा से तुल्य है मन पर्यवज्ञान के पर्यायो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, और तीन दर्शनो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

[२] एव उक्कोसोहिणाणी वि।

[४९५-२] इसी प्रकार का (कथन) उत्कृष्ट अवधिज्ञानी (मनुष्यो के पर्यायो) के विषय मे (करना चाहिए।)

[३] अजहण्णमणुक्कोसोहिणाणी वि एव चेव। णवर सट्ठाणे छट्ठाणवडिए।

[४९५-३] इसी प्रकार मध्यम अवधिज्ञानी मनुष्यो के पर्यायो के विषय मे भी कहना चाहिए। विशेष यह है कि पाठान्तर की अपेक्षा से—'अवगाहना की दृष्टि से चतु स्थानपतित है, स्वस्थान मे वह षट्स्थानपतित (हीनाधिक) है।

४९६. जहा ओहिणाणी तहा मणपज्जवणाणी वि भाणितव्वे। नवर ओगाहणट्ठयाए तिट्ठाणवडिए। जहा आभिणिबोहियणाणी तहा मतिअण्णाणी सुतअण्णाणी य भाणितव्वे। जहा ओहिणाणी तहा विभगणाणी वि भाणियव्वे। चक्खुदसणी अचक्खुदसणी य जहा आभिणिबोहियणाणी। ओहिदसणी जहा ओहिणाणी। जत्थ णाणा तत्थ अण्णाणा णत्थि, जत्थ अण्णाणा तत्थ णाणा णत्थि, जत्थ दसणा तत्थ णाणा वि अण्णाणा वि।

[४९६] जैसा (जघन्य-उत्कृष्ट-मध्यम) अवधिज्ञानी (मनुष्यो के पर्यायो) के विषय मे कहा, वैसा ही (जघन्यादियुक्त) मन पर्यायज्ञानी (मनुष्यो) के (पर्यायो के) विषय मे कहना चाहिए। विशेषता यह है कि अवगाहना की अपेक्षा से (वह) त्रिस्थानपतित है। जैसा (जघन्यादियुक्त) आभिनिबोधिक ज्ञानियो के पर्यायो के विषय मे कहा है, वैसा ही मति-अज्ञानी और श्रुत-अज्ञानी (मनुष्यो के पर्यायो) के विषय मे (कहना चाहिए।) जिस प्रकार (जघन्यादिविशिष्ट) अवधिज्ञानी (मनुष्यो) का (पर्याय-विषयक) कथन किया है, उसी प्रकार विभगज्ञानी (मनुष्यो) का (पर्याय-विषयक) कथन करना चाहिए।

चक्षुदर्शनी और अचक्षुदर्शनी (मनुष्यो) का (पर्यायविषयक) कथन आभिनिबोधिकज्ञानी (मनुष्यो के पर्यायो) के समान है। अवधिदर्शनी का (पर्यायविषयक) कथन अवधिज्ञानी (मनुष्यो के पर्यायविषयक कथन) के समान है। जहाँ ज्ञान होते हैं, वहाँ अज्ञान नही होते जहाँ अज्ञान होते है, वहा ज्ञान नही होते और जहाँ दर्शन है, वहा ज्ञान एव अज्ञान दोनो मे से कोई भी सभव है।

४९७ केवलणाणीण भते! मणुस्साण केवतिया पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! अणता पज्जवा पण्णत्ता।

से केणट्ठेण भते! एव वुच्चइ केवलणाणीण मणुस्साण अणता पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! केवलनाणी मणूसे केवलणाणिस्स मणूसस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए तिट्ठाणवडिते, वण्ण-गध-रस-फासपज्जवेहिं छट्ठाणवडिते, केवलणाणपज्जवेहिं केवलदसणपज्जवेहि य तुल्ले।

[४९७ प्र] भगवन् ! केवलज्ञानी मनुष्यो के कितने पर्याय कहे गए है ?

[४९७ उ] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय कहे है ।

[प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहते है कि 'केवलज्ञानी मनुष्यो के अनन्त पर्याय कहे है ?'

[उ] गौतम ! एक केवलज्ञानी मनुष्य, दूसरे केवलज्ञानी मनुष्य से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशो की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना की दृष्टि से चतु स्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित है, तथा वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के पर्यायो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, एव केवलज्ञान के पर्यायो और केवलदर्शन के पर्यायो की अपेक्षा से तुल्य है ।

४९८ एवं केवलदसणी वि मणूसे भाणियव्वे ।

[४९८] (जैसे केवलज्ञानी मनुष्यो के पर्यायो के विषय मे कहा गया,) वैसे ही केवलदर्शनी मनुष्यो के (पर्यायो के) विषय मे कहना चाहिए ।

विवेचन—मनुष्यो के पर्यायो की विभिन्न अपेक्षाओ से प्ररूपणा—प्रस्तुत दस सूत्रो (सू ४८९ से ४९८ तक) मे जघन्य-उत्कृष्ट-मध्यम अवगाहना, स्थिति, वर्णादि तथा ज्ञान आदि वाले मनुष्य के पर्यायो की विविध अपेक्षाओ से प्ररूपणा की गई है ।

जघन्य-अवगाहनायुक्त मनुष्य स्थिति की दृष्टि से त्रिस्थानपतित—जघन्य अवगाहना वाला मनुष्य नियम से सख्यातवर्ष की आयु वाला ही होता है, इस दृष्टि से वह त्रिस्थानपतित हीनाधिक ही होता है, अर्थात् वह असख्यात-सख्यातभाग एव सख्यातगुण हीनाधिक ही होता है ।

जघन्य-अवगाहनायुक्त मनुष्यो मे तीन ज्ञानो और दो अज्ञानो की प्ररूपणा—किसी तीर्थंकर का अथवा अनुत्तरौपपातिक देव का अप्रतिपाती अवधिज्ञान के साथ जघन्य अवगाहना मे उत्पाद होता है, तब जघन्य अवगाहना मे भी अवधिज्ञान पाया जाता है । अतएव यहाँ तीन ज्ञानो का कथन किया गया है, किन्तु नरक से निकले हुए जीव का जघन्य अवगाहना मे उत्पाद नही होता, क्योकि उसका स्वभाव ही ऐसा है । इसलिए जघन्य अवगाहना मे विभगज्ञान नही पाया जाता, इस कारण यहाँ (मूलपाठ मे) दो अज्ञानो की ही प्ररूपणा की गई है ।

उत्कृष्ट अवगाहनावाले मनुष्य की स्थिति की दृष्टि से हीनाधिकतुल्यता—उत्कृष्ट अवगाहना वाले मनुष्यो की अवगाहना तीन गव्यूति (कोस) की होती है और उनकी स्थिति होती है—जघन्य पल्योपम के असख्यातवें भाग कम तीन पल्योपम की और उत्कृष्ट पूरे तीन पल्योपम की । तीन पल्योपम का असख्यातवाँ भाग, तीन पल्योपमो का असख्यातवाँ ही भाग है । अतएव पल्योपम का असख्यातवाँ भाग कम तीन पल्योपम वाला मनुष्य, तीन पल्योपम की स्थिति वाले मनुष्य से असख्यात भागहीन होता है और पूर्ण तीन पल्योपम वाला मनुष्य उससे असख्यातभाग अधिक स्थिति वाला होता है । इनमे अन्य किसी प्रकार की हीनता या अधिकता सम्भव नही है । इस प्रकार के किन्ही दो मनुष्यो मे कदाचित् स्थिति की तुल्यता भी होती है ।

उत्कृष्ट अवगाहना वाले मनुष्यो मे दो ज्ञान और दो अज्ञान की प्ररूपणा—उत्कृष्ट अवगाहना वाले मनुष्यो मे मति और श्रुत, ये दो ही ज्ञान अथवा मत्यज्ञान और श्रुताज्ञान, ये दो ही अज्ञान और दो ही दर्शन पाए जाते हैं । इसका कारण यह है कि उत्कृष्ट अवगाहना वाले मनुष्य

असख्यातवर्ष की आयु वाले ही होते है, और असख्यातवर्ष की आयुवाले मनुष्य मे न तो अवधिज्ञान ही हो सकता है और न ही विभगज्ञान, क्योकि उनका स्वभाव ही ऐसा है।

मध्यम अवगाहना वाले मनुष्य अवगाहनापेक्षया चतुःस्थानपतित—मध्यम अवगाहना सख्यातवर्ष की आयु वाले की भी हो सकती है और असख्यतावर्ष की आयु वाले की भी हो सकती है। असख्यातवर्ष की आयु वाला मनुष्य भी एक या दो गव्यूत (गाऊ) की अवगाहना वाला होता है। अत अवगाहना की अपेक्षा से इसे चतु स्थानपतित कहा गया है।

चारो ज्ञानो की अपेक्षा से मध्यम-अवगाहनायुक्त मनुष्य षट्स्थानपतित—मति, श्रुत, अवधि और मन पर्यव, ये चारो ज्ञान द्रव्य आदि की अपेक्षा रखते हैं तथा क्षयोपशमजन्य है। क्षयोपशम मे विचित्रता होती है, अतएव उनमे तरतमता होना स्वाभाविक है। इसी कारण चारो ज्ञानो की अपेक्षा से मध्यम अवगाहनायुक्त मनुष्यो मे षट्स्थानपतित हीनाधिकता बताई गई है।[1]

केवलज्ञान के पर्यायो की अपेक्षा से वे तुल्य है—समस्त आवरणो के पूर्णतया क्षय से उत्पन्न होने वाले केवलज्ञान मे किसी प्रकार की तरतमता नही होती, इसलिए केवलज्ञान के पर्यायो की अपेक्षा से मध्यम अवगाहनायुक्त मनुष्य तुल्य है।

जघन्य स्थिति वाले मनुष्यो मे दो अज्ञान ही क्यो?—सिद्धान्तानुसार सम्मूर्च्छिम मनुष्य ही जघन्य स्थिति के होते हैं और वे नियमत मिथ्यादृष्टि होते है। इस कारण जघन्यस्थिति वाले मनुष्यो मे दो अज्ञान ही हो सकते है, ज्ञान नही। अत यहाँ ज्ञानो का उल्लेख नही किया गया है।

उत्कृष्ट स्थिति वाले मनुष्यो मे दो ज्ञान, दो अज्ञान और दो दर्शन क्यों?—उत्कृष्ट स्थिति वाले मनुष्यो की आयु तीन पल्योपम की होती है। अतएव उनमे दो ज्ञान, दो अज्ञान और दो दर्शन ही पाए जाते है। जो ज्ञान वाले होते है वे वैमानिक की आयु का बन्ध करते हैं, तब उनमे दो ज्ञान होते है। असख्यात वर्ष की आयु वाले मनुष्यो मे अवधिज्ञान, अवधिदर्शन या विभगज्ञान का अभाव होता है। इस कारण इनमे दो ज्ञानो, दो अज्ञानो और दर्शनो का उल्लेख किया गया है, तीन ज्ञानो, तीन अज्ञानो और तीन दर्शनो का नही।

मध्यमगुण कृष्ण मनुष्य स्वस्थान मे षट्स्थानपतित—मध्यमगुण कृष्णवर्ण के अनन्त तरतमरूप होते है, इस कारण वह स्वस्थान मे भी षट्स्थानपतित होता है।

जघन्य और उत्कृष्ट आभिनिबोधिकज्ञानी मनुष्यो मे ज्ञानादि का अन्तर—जघन्य आभिनिबोधिकज्ञानी मनुष्य के प्रबल ज्ञानावरणीय कर्म का उदय होने से उसमे अवधिज्ञान और मन.पर्यायज्ञान नही होते जबकि उत्कृष्ट आभिनिबोधिकज्ञानी मनुष्य मे तीन ज्ञान और तीन दर्शन होते है।

उत्कृष्ट आभिनिबोधिक मनुष्य त्रिस्थानपतित—चू कि उत्कृष्ट आभिनिबोधिकज्ञानी मनुष्य नियमत सख्यातवर्ष की आयु वाला ही होता है। सख्यातवर्ष की आयुवाला मनुष्य स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित ही होता है, किन्तु जो असख्यातवर्ष की आयुवाला होता है, उसे भवस्वभाव के कारण उत्कृष्ट आभिनिबोधिक ज्ञान नही होता।

मध्यम आभिनिबोधिकज्ञानी मनुष्य स्वस्थान मे षट्स्थानपतित—जैसे एक उत्कृष्ट आभिनिबोधिकज्ञानी मनुष्य, दूसरे उत्कृष्ट आभिनिबोधिक ज्ञानी से तुल्य होता है, वैसे मध्यम आभिनिबो-

१ (क) प्रज्ञापना म, वृत्ति, पत्राक १९४, (ख) प्रज्ञापनाधिनी प्रमेयबो टीका भा २, पृ ७५३ से ७५९ तक

धिकज्ञानी, मध्यम आभिनिबोधिक ज्ञानी के तुल्य ही हो, ऐसा नियम नही है। इसलिए उनमे स्वस्थान मे षट्स्थानपतित हीनाधिकता सम्भव है।

जघन्य और उत्कृष्ट अवधिज्ञानी मनुष्य अवगाहना की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित क्यो ?— मनुष्यो मे सर्वजघन्य अवधिज्ञान पारभविक (पूर्वभव से साथ आया हुआ) नही होता, किन्तु वह तद्भव (उसी भव) सम्बन्धी होता है और वह भी पर्याप्त-अवस्था मे, अपर्याप्त अवस्था मे उसके योग्य विशुद्धि नही होती तथा उत्कृष्ट अवधिज्ञान भाव से चारित्रवान् मनुष्य को होता है। इस कारण जघन्यावधिज्ञानी और उत्कृष्टावधिज्ञानी मनुष्य अवगाहना की अपेक्षा त्रिस्थानपतित ही होते है, किन्तु मध्यम अवधिज्ञानी चतु स्थानपतित होता है, क्योकि मध्यम अवधिज्ञान पारभविक भी हो सकता है, अतएव अपर्याप्त अवस्था मे भी सम्भव है।

स्थिति की अपेक्षा से जघन्यादियुक्त अवधिज्ञानी मनुष्य त्रिस्थानपतित क्यो ?—अवधिज्ञान असख्यातवर्ष की आयुवाले मनुष्यो मे सम्भव नही, वह सख्यातवर्ष की आयु वालो को ही होता है। अत जघन्य, उत्कृष्ट और मध्यम अवधिज्ञानी मनुष्यो मे सख्यातवर्ष की आयु की दृष्टि से त्रिस्थान-पतित हीनाधिकता ही हो सकती है, चतु स्थानपतित नही।

जघन्यादियुक्त मन पर्यवज्ञानी स्थिति की दृष्टि से त्रिस्थानपतित—मन पर्यायज्ञान चारित्रवान् मनुष्यो को ही होता है, और चारित्रवान् मनुष्य सख्यातवर्ष की आयुवाले ही होते हैं। अत जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट मन पर्यायज्ञानी मानव स्थिति की दृष्टि से त्रिस्थानपतित ही होते है।[1]

केवलज्ञानी मनुष्य अवगाहना की दृष्टि से चतु.स्थानपतित क्यो और कैसे ?—यह कथन केवलीसमुद्घात की अपेक्षा से है, क्योकि केवलीसमुद्घात करता हुआ केवलज्ञानी मनुष्य, अन्य केवली मनुष्यो की अपेक्षा असख्यातगुणी अधिक अवगाहना वाला होता है और उसकी अपेक्षा अन्य केवली असख्यातगुणहीन अवगाहना वाले होते है। अत अवगाहना की दृष्टि से केवलज्ञानी मनुष्य चतु - स्थानपतित होते है।

स्थिति की अपेक्षा केवलीमनुष्य त्रिस्थानपतित—सभी केवली सख्यातवर्ष की आयुवाले ही होते है, अतएव उनमे चतु स्थानपतित हीनाधिकता सभव नही है। इस कारण वे त्रिस्थानपतित हीनाधिक है।[2]

वाणव्यन्तर ज्योतिष्क और वैमानिक देवो की पर्याय-प्ररूपणा—

४९९. [१] वाणमतरा जहा असुरकुमारा।

[४९९-१] वाणव्यन्तर देवो मे (पर्यायो की प्ररूपणा) असुरकुमारो के समान (समझ लेनी चाहिए।)

[२] एव जोइसिया वेमाणिया। नवर सट्ठाणे ठितीए तिट्ठाणवडिते भाणितव्वे। से त्तं जीवपज्जवा।

---

१ (क) प्रज्ञापना म वृत्ति, पत्राक १९४-१९५-१९६, (ख) प्रज्ञापना प्र वो टीका, भा-२, पृ ७६०-७७०

२ (क) प्रज्ञापना म वृत्ति, पत्राक १९६, (ख) प्रज्ञापना प्र बोध टीका भा-२, पृ ७७२

[४९९-२] ज्योतिष्को और वैमानिक देवो मे (पर्यायो की प्ररूपणा भी इसी प्रकार की समझनी चाहिए)। विशेष बात यह है कि वे स्वस्थान मे स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित (हीनाधिक) हैं।

यह जीव के पर्यायो की प्ररूपणा समाप्त हुई।

विवेचन—वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवों के पर्यायो की प्ररूपणा—प्रस्तुत सूत्र (४९९) मे पूर्वोक्तसूत्रानुसार तीनो प्रकार के देवो के पर्यायो के कथन अतिदेशपूर्वक किया गया है।

अजीव-पर्याय

अजीवपर्याय के भेद-प्रभेद और पर्यायसंख्या—

५००. अजीवपज्जवा ण भते कतिविहा पण्णत्ता ?

गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता। त जहा—रूविअजीवपज्जवा य अरूविअजीवपज्जवा य।

[५०० प्र] भगवन् ! अजीवपर्याय कितने प्रकार के कहे हैं ?

[५०० उ] गौतम ! (अजीवपर्याय) दो प्रकार के कहे हैं, वे इस प्रकार—(१) रूपी अजीव के पर्याय और अरूपी अजीव के पर्याय।

५०१ अरूविअजीवपज्जवा ण भते ! कतिविहा पण्णत्ता ?

गोयमा ! दसविहा पण्णत्ता। त जहा—धम्मत्थिकाए १, धम्मत्थिकायस्स देसे २, धम्मत्थिकायस्स पदेसा ३, अधम्मत्थिकाए ४, अधम्मत्थिकायस्स देसे ५, अधम्मत्थिकायस्स पदेसा ६, आगासत्थिकाए ७, आगासत्थिकायस्स देसे ८, आगासत्थिकायस्स पदेसा ९, अद्धासमए १०।

[५०१ प्र] भगवन् ! अरूपी अजीव के पर्याय कितने प्रकार के कहे गए है ?

[५०१ उ] गौतम ! वे दस प्रकार के कहे है। यथा—(१) धर्मास्तिकाय, (२) धर्मास्तिकाय का देश, (३) धर्मास्तिकाय के प्रदेश, (४) अधर्मास्तिकाय, (५) अधर्मास्तिकाय का देश, (६) अधर्मास्तिकाय के प्रदेश, (७) आकाशास्तिकाय, (८) आकाशास्तिकाय का देश, (९) आकाशास्तिकाय के प्रदेश और (१०) अद्धासमय (काल) के पर्याय।

५०२ रूविअजीवपज्जवा ण भते ! कतिविहा पण्णत्ता ?

गोयमा ! चउविहा पण्णत्ता। त जहा—खधा १, खधदेसा २, खधपदेसा ३, परमाणुपोग्गले ४।

[५०२ प्र] भगवन् ! रूपी अजीव के पर्याय कितने प्रकार के कहे है ?

[५०२ उ] गौतम ! वे चार प्रकार के कहे हैं। यथा—(१) स्कन्ध, (२) स्कन्धदेश, (३) स्कन्ध-प्रदेश और (४) परमाणुपुद्गल (के पर्याय)।

५०३. ते ण भते ! किं सखेज्जा असखेज्जा अणता ?

गोयमा ! नो सखेज्जा, नो असखेज्जा, अणता।

से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चति नो सखेज्जा, नो असखेज्जा, अणता ?

गोयमा ! अणता परमाणुपोग्गला, अणता दुपदेसिया खधा जाव अणता दसपदेसिया खधा, अणंता सखेज्जपदेसिया खधा, अणता असखेज्जपदेसिया खधा, अणता अणतपदेसिया खधा, से तेणट्ठेण गोयमा ! एव वुच्चति—ते ण नो संखेज्जा, नो असखेज्जा, अणता ।

[५०३ प्र] भगवन् ! क्या वे (पूर्वोक्त रूपीअजीवपर्याय-चतुष्टय) सख्यात हैं, असख्यात है, अथवा अनन्त हैं ?

[५०३ उ] गौतम ! वे सख्यात नही असख्यात नही, (किन्तु) अनन्त है ।

[प्र] भगवन् ! किस हेतु से आप ऐसा कहते है कि वे (पूर्वोक्त चतुर्विध रूपी अजीवपर्याय सख्यात नही, असख्यात नही, (किन्तु) अनन्त है ?

[उ] गौतम ! परमाणु-पुद्गल अनन्त है, द्विप्रदेशिक स्कन्ध अनन्त है, यावत् दशप्रदेशिक-स्कन्ध अनन्त है, सख्यातप्रदेशिक स्कन्ध अनन्त है, असख्यातप्रदेशिक स्कन्ध अनन्त है, और अनन्त-प्रदेशिक स्कन्ध अनन्त है । हे गौतम ! इस कारण से ऐसा कहा जाता है कि वे न सख्यात है, न ही असख्यात हैं, किन्तु अनन्त है ।

विवेचन—अजीवपर्याय के भेद-प्रभेद और पर्यायसंख्या—प्रस्तुत चार सूत्रो (सू ५०० से ५०३ तक) मे अजीवपर्याय, उसके मुख्य दो प्रकार, तथा अरूपी और रूपी अजीव-पर्याय के भेद एव रूपी अजीवपर्यायो की सख्या का निरूपण किया गया है ।

रूपी और अरूपी अजीवपर्याय की परिभाषा—**रूपी**—जिसमे रूप हो, उसे रूपी कहते है । यहाँ 'रूप' शब्द से 'रूप' के अतिरिक्त 'गन्ध', रस और स्पर्श का भी उपलक्षण से ग्रहण किया जाता है । आशय यह है कि जिसमे रूप, रस, गन्ध और स्पर्श हो, वह रूपी कहलाता है । रूपयुक्त अजीव को रूपी अजीव कहते हैं । रूपी अजीव पुद्गल ही होता है, इसलिए रूपी अजीव के पर्याय का अर्थ हुआ—पुद्गल के पर्याय । अरूपी का अर्थ है—जिसमे रूप (रस, गन्ध और स्पर्श) का अभाव हो, जो अमूर्त हो । अत अरूपी अजीव-पर्याय का अर्थ हुआ—अमूर्त्त अजीव के पर्याय ।

धर्मास्तिकायादि की व्याख्या—**धर्मास्तिकाय**—धर्मास्तिकाय का असख्यातप्रदेशो का सम्पूर्ण (अखण्डित) पिण्ड (अवयवी द्रव्य) । **धर्मास्तिकायदेश**—धर्मास्तिकाय का अर्द्ध आदि भाग । **धर्मास्तिकायप्रदेश**—धर्मास्तिकाय के निरश (सूक्ष्मतम) अश । इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय आदि के त्रिको को समझ लेना चाहिए । **अद्धासमय** अप्रदेशी कालद्रव्य ।[1]

द्रव्यो का कथन या पर्याय का ?—पर्यायो की प्ररूपणा के प्रसग मे यहाँ पर्यायो का कथन करना उचित था, उसके बदले द्रव्यो का कथन इसलिए किया गया है कि पर्याय और पर्यायी (द्रव्य) कथचित् अभिन्न है, इस बात की प्रतीति हो । वस्तुत धर्मास्तिकाय धर्मास्तिकायदेश आदि पदो के उल्लेख से उन-उन धर्मास्तिकायादि त्रिको तथा अद्धासमय के पर्याय ही विवक्षित है, द्रव्य नही ।[2]

परमाणुपुद्गल आदि की पर्याय-सम्बन्धी वक्तव्यता—

५०४. परमाणुपोग्गलाण भते ! केवतिया पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! परमाणुपोग्गलाण अणता पज्जवा पण्णत्ता ।

---

१ प्रज्ञापना मलय वृत्ति, पत्राक २०२

२ वही, मलय वृत्ति, पत्राक २०२

से केणट्ठेणं भंते ! एव वुच्चति परमाणुपोग्गलाण अणता पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! परमाणुपोग्गले परमाणुपोग्गलस्स दव्वट्ठयाते तुल्ले, पदेसट्ठयाते तुल्ले, ओगाहण-ट्ठयाते तुल्ले; ठितीए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिते—जति हीणे असखेज्जतिभागहीणे वा सखेज्जतिभागहीणे वा सखेज्जतिगुणहीणे वा असखेज्जतिगुणहीणे वा, अह अब्भतिए असखेज्जतिभाग-अब्भहिए वा सखेज्जतिभागमब्भहिए वा सखेज्जगुणअब्भहिए वा असखेगुणअब्भहिते वा, कालवण्ण-पज्जवेहिं सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिए—जति हीणे अणतभागहीणे वा असखेज्जतिभागहीणे वा सखेज्जभागहीणे वा सखेज्जगुणहीणे वा असखेज्जगुणहीणे वा अणतगुणहीणे वा, अह अब्भहिए अणत-भागमब्भहिते वा असखेज्जतिभागमब्भहिए वा सखेज्जभागमब्भहिते वा सखेज्जगुणमब्भहिए वा असखेज्जगुणमब्भहिए वा अणतगुणमब्भहिए वा, एव अवसेसवण्ण-गध-रस-फासपज्जवेहिं छट्ठाणवडिते, फासा ण सीय-उसिण-निद्ध-लुक्खेहिं छट्ठाणवडिते, से तेणट्ठेण गोयमा ! एवं वुच्चति परमाणु-पोग्गलाण अणता पज्जवा पण्णत्ता ।

[५०४ प्र] भगवन् ! परमाणुपुद्गलो के कितने पर्याय कहे गए है ?

[५०४ उ] गौतम ! परमाणुपुद्गलो के अनन्त पर्याय कहे हैं ।

[प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि परमाणुपुद्गलो के अनन्त पर्याय है ?

[उ] गौतम ! एक परमाणुपुद्गल, दूसरे परमाणुपुद्गल से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशो की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना की दृष्टि से (भी) तुल्य है, (किन्तु) स्थिति की अपेक्षा से कदाचित् हीन है, कदाचित् तुल्य है, कदाचित् अभ्यधिक है । यदि हीन है, तो असख्यातभाग हीन है, सख्यातभाग हीन है अथवा सख्यातगुण हीन है, अथवा असख्यातगुण हीन है, यदि अधिक है, तो असख्यातभाग अधिक है, अथवा सख्यातभाग अधिक है, या सख्यातगुण अधिक है, अथवा असख्यात-गुण अधिक है । कृष्णवर्ण के पर्यायो की अपेक्षा से कदाचित् हीन है, कदाचित् तुल्य है, और कदाचित् अधिक है । यदि हीन है तो अनन्तभाग हीन है, या असख्यातभाग-हीन है अथवा सख्यातभाग हीन है, अथवा सख्यातगुण हीन है, असख्यातगुण हीन है या अनन्तगुण-हीन है । यदि अधिक है तो अनन्तभाग अधिक है, असख्यातभाग अधिक है, अथवा सख्यातभाग अधिक है । अथवा सख्यातगुण अधिक है, असख्यातगुण अधिक है, या अनन्तगुण अधिक है । इसी प्रकार अवशिष्ट (काले वर्ण के सिवाय बाकी के) वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के पर्यायो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है । स्पर्शो मे शीत, उष्ण, स्निग्ध और रूक्ष स्पर्शो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है । हे गौतम ! इस हेतु से ऐसा कहा गया है कि परमाणु-पुद्गलो के अनन्त पर्याय प्ररूपित है ।

५०५ दुपदेसियाण पुच्छा ।

गोयमा ! अणता पज्जवा पण्णत्ता ।

से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चति ?

गोयमा ! दुपदेसिए दुपदेसियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिते—जति हीणे पदेसहीणे, अह अब्भहिते पदेसमब्भहिते, ठितीए चउट्ठाणवडिते, वण्णादीहिं उवरिल्लेहिं चउहिं फासेहि य छट्ठाणवडिते ।

[५०५ प्र] भगवन् ! द्विप्रदेशिक स्कन्धो के कितने पर्याय कहे गए हे ?

[५०५ उ] गौतम ! उनके अनन्त पर्याय कहे है ।

[प्र] भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहा गया है कि द्विप्रदेशी स्कन्धो के अनन्त पर्याय हैं ?

[उ] गौतम ! एक द्विप्रदेशिक स्कन्ध, दूसरे द्विप्रदेशिक स्कन्ध से, द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशो की अपेक्षा से तुल्य हैं, अवगाहना की अपेक्षा कदाचित् हीन है, कदाचित् तुल्य है और कदाचित् अधिक है । यदि हीन हो तो एक प्रदेश हीन होता है । यदि अधिक हो तो एक प्रदेश अधिक होता है । स्थिति की अपेक्षा से चतु स्थानपतित होता है, वर्ण आदि की अपेक्षा से और उपर्युक्त चार (शीत, उष्ण, स्निग्ध और रूक्ष) स्पर्शों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित होता है ।

५०६ एव तिपएसिए वि । नवर ओगाहणट्ठयाए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिते—जति हीणे पएसहीणे वा दुपएसहीणे वा, अह अब्भहिते पएसमब्भहिते वा दुपएसमब्भहिते वा ।

[५०६] इसी प्रकार त्रिप्रदेशिक स्कन्धो के (पर्यायो के विषय मे कहना चाहिए ।) विशेषता यह है कि अवगाहना की दृष्टि से कदाचित् हीन, कदाचित् तुल्य और कदाचित् अधिक होता है । यदि हीन हो तो एकप्रदेशहीन या द्विप्रदेशो से हीन होता है । यदि अधिक हो तो एकप्रदेश अधिक अथवा दो प्रदेश अधिक होता है ।

५०७ एव जाव दसपएसिए । नवर ओगाहणाए पएसपरिवुड्ढी कायव्वा जाव दसपएसिए णवपएसहीणे त्ति ।

[५०७] इसी प्रकार यावत् दशप्रदेशिक स्कन्धो तक का पर्यायविषयक कथन करना चाहिए । विशेष यह है कि अवगाहना की दृष्टि से प्रदेशो की (क्रमश) वृद्धि करना चाहिए, यावत् दशप्रदेशी स्कन्ध नौ प्रदेश-हीन तक होता है ।

५०८ सखेज्जपदेसियाण पुच्छा ।

गोयमा ! अणता ।

से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चति ?

गोयमा ! सखेज्जपएसिए खधे सखेज्जपएसियस्स खधस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले; पदेसट्ठयाए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिते—जति हीणे सखेज्जभागहीणे वा सखेज्जगुणहीणे वा, अह अब्भइए एव चेव, ओगाहणट्ठयाए वि दुट्ठाणवडिते, ठितीए चउट्ठाणवडिते, वण्णादि उवरिल्लचउफासपज्जवेहि य छट्ठाणवडिते ।

[५०८ प्र] भगवन् ! सख्यातप्रदेशी स्कन्धो के कितने पर्याय कहे गए है ?

[५०८ उ] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय कहे है ।

[प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि सख्यातप्रदेशी स्कन्धो के अनन्त पर्याय है ?

[उ] गौतम ! एक सख्यातप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे सख्यातप्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से

तुल्य है, प्रदेशो की अपेक्षा से कदाचित् हीन, कदाचित् तुल्य और कदाचित् अधिक होता है। यदि हीन हो तो, सख्यातभाग हीन या सख्यातगुण हीन होता है। यदि अधिक हो तो सख्यातभाग अधिक यासख्यात गुण अधिक होता है। अवगाहना की अपेक्षा से द्विस्थानपतित होता है। स्थिति की अपेक्षा से चतु स्थानपतित होता है। वर्णादि तथा उपर्युक्त चार स्पर्शों के पर्यायो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित होता है।

५०९ असखेज्जपएसियाण पुच्छा।

गोयमा! अणता।

से केणट्ठेण भते! एव वुच्चति?

गोयमा! असखेज्जपएसिए खधे असखेज्जपएसियस्स खधस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए चउट्ठाणवडिते, वण्णादि-उवरिल्लचउ-फासेहि य छट्ठाणवडिते।

[५०९ प्र] भगवन्! असख्यातप्रदेशिक स्कन्धो के कितने पर्याय कहे गए है?

[५०९ उ] गौतम! अनन्त पर्याय कहे है।

[प्र] भगवन्! किस कारण से ऐसा कहते है कि असख्यातप्रदेशिक स्कन्धो के अनन्त पर्याय है?

[उ] गौतम! एक असख्यातप्रदेशिक स्कन्ध, दूसरे असख्यातप्रदेशिक स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशो की अपेक्षा से चतु स्थानपतित है, अवगाहना की दृष्टि से चतु स्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से चतु स्थानपतित है, वर्णादि तथा उपर्युक्त चार स्पर्शो की अपेक्षा से षट्स्थान-पतित है।

५१० अणतपएसियाण पुच्छा।

गोयमा! अणता पज्जवा पण्णत्ता।

से केणट्ठेण भते! एव वुच्चति?

गोयमा! अणतपएसिए खंधे अणतपएसियस्स खधस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए छट्ठाण-वडिते, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए चउट्ठाणवडिते, वण्ण-गध-रस-फासपज्जवेहि छट्ठाण-वडिते।

[५१० प्र] भगवन्! अनन्तप्रदेशी स्कन्धो के कितने पर्याय कहे गए हैं?

[५१० उ] गौतम! उनके अनन्त पर्याय कहे है।

[प्र] भगवन्! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि अनन्तप्रदेशी स्कन्धो के अनन्त पर्याय है?

[उ] गौतम! एक अनन्तप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे अनन्तप्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित (हीनाधिक) है, अवगाहना की अपेक्षा से चतु स्थान-पतित है, तथा वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के पर्यायो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

५११ एगपएसोगाढाण पोग्गलाण पुच्छा ।

गोयमा ! अणता पज्जवा पण्णत्ता ।

से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चति ?

गोयमा ! एगपएसोगाढ-पोग्गले एगपएसोगाढस्स पोग्गलस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए छट्ठाणवडिते, ओगाहणट्ठयाते तुल्ले, ठितीए चउट्ठाणवडिते, वण्णादि-उवरिल्लचउफासेहि य छट्ठाणवडिते ।

[५११ प्र] भगवन् ! एक प्रदेश मे अवगाढ पुद्गलो के कितने पर्याय कहे गए है ?

[५११ उ] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय कहे है ।

[प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि एक प्रदेश मे अवगाढ पुद्गलो के अनन्त पर्याय है ?

[उ] गौतम ! एक प्रदेश मे अवगाढ एक पुद्गल, दूसरे एक प्रदेश मे अवगाढ पुद्गल से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, अवगाहना की अपेक्षा से तुल्य है, स्थिति की अपेक्षा मे चतु स्थानपतित है, वर्णादि तथा उपर्युक्त चार स्पर्शो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है ।

५१२ एव दुपएसोगाढे वि जाव दसपएसोगाढे ।

[५१२] इसी प्रकार द्विप्रदेशावगाढ से दशप्रदेशावगाढ स्कन्धो तक के पर्यायो की वक्तव्यता समझ लेना चाहिए ।

५१३. संखेज्जपएसोगाढाण पुच्छा ।

गोयमा ! अणता ।

से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चति ?

गोयमा ! सखेज्जपएसोगाढे पोग्गले सखेज्जपएसोगाढस्स पोग्गलस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए छट्ठाणवडिते, ओगाहणट्ठयाए दुट्ठाणवडिते, ठितीए चउट्ठाणवडिते, वण्णाइ-उवरिल्ल-चउफासेहि य छट्ठाणवडिते ।

[५१३ प्र] भगवन् ! सख्यातप्रदेशावगाढ स्कन्धो के कितने पर्याय कहे गए है ?

[५१३ उ] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय कहे हैं ।

[प्र] भगवन् ! किस हेतु से ऐसा कहा जाता है कि संख्यातप्रदेशावगाढ स्कन्धो (पुद्गलो) के अनन्त पर्याय है ?

[उ] गौतम ! एक सख्यातप्रदेशावगाढ पुद्गल, दूसरे सख्यातप्रदेशावगाढ पुद्गल से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेशो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, अवगाहना की अपेक्षा से द्विस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से चतु स्थानपतित है, वर्णादि तथा उपर्युक्त चार स्पर्शों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है ।

५१४. असंखेज्जपएसोगाढाण पुच्छा ।

गोयमा ! अणंता पज्जवा ।

से केणट्ठेण भंते ! एवं वुच्चति ?

गोयमा ! असंखेज्जपएसोगाढे पोग्गले असंखेज्जपएसोगाढस्स पोग्गलस्स दव्वट्ठाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए छट्ठाणवडिते, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए चउट्ठाणवडिते, वण्णादि-अट्ठफासेहिं छट्ठाणवडिते ।

[५१४ प्र] भगवन् ! असंख्यातप्रदेशावगाढ पुद्गलों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[५१४ उ] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय कहे हैं ।

[प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि असंख्यातप्रदेशावगाढ पुद्गल के अनन्त पर्याय हैं ?

[उ] गौतम ! एक असंख्यातप्रदेशावगाढ पुद्गल, दूसरे असंख्यातप्रदेशावगाढ पुद्गल से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, वर्णादि तथा अष्ट स्पर्शों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है ।

५१५. एगसमयठितीयाण पुच्छा ।

गोयमा ! अणंता पज्जवा पण्णत्ता ।

से केणट्ठेण भंते ! एवं वुच्चति ?

गोयमा ! एगसमयठितीए पोग्गले एगसमयठितीयस्स पोग्गलस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए छट्ठाणवडिते, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए तुल्ले, वण्णादि-अट्ठफासेहि छट्ठाणवडिते ।

[५१५ प्र] भगवन् ! एक समय की स्थिति वाले पुद्गलों के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[५१५ उ] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय कहे हैं ।

[प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि एक समय की स्थिति वाले पुद्गलों के अनन्त पर्याय हैं ?

[उ] गौतम ! एक समय की स्थिति वाला एक पुद्गल, दूसरे एक समय की स्थिति वाले पुद्गल से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से तुल्य है, वर्णादि तथा अष्ट स्पर्शों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है ।

५१६. एवं जाव दससमयठिईए ।

[५१६] इस प्रकार यावत् दस समय की स्थिति वाले पुद्गलों की पर्यायसम्बन्धी वक्तव्यता समझनी चाहिए ।

५१७ सखेज्जसमयठितीयाण एव चेव । नवर ठितीए दुट्ठाणवडिते ।

[५१७] सख्यात समय की स्थिति वाले पुद्गलो का पर्यायविपयक कथन भी इसी प्रकार समझना चाहिए । विशेष यह है कि वह स्यिति की अपेक्षा से द्विस्थानपतित है ।

५१८ असखेज्जसमयठितीयाण एव चेव । नवर ठिईए चउट्ठाणवडिते ।

[५१८] असख्यात समय की स्थिति वाले पुद्गलो का पर्यायविपयक कथन भी इसी प्रकार है । विशेषता यह है कि वह स्थिति की अपेक्षा से चतु स्थानपतित है ।

५१९ एगगुणकालगाण पुच्छा ।

गोयमा ! अणता पज्जवा ।

से केणट्ठेणं भते ! एव वुच्चति ?

गोयमा ! एगगुणकालए पोग्गले[1] एगगुणकालगस्स पोग्गलस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए छट्ठाणवडिते, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए चउट्ठाणवडिते, कालवण्णपज्जवेहिं तुल्ले, अवसेसेहिं वण्ण-गंध-रस-फासपज्जवेहिं छट्ठाणवडिते, अट्ठहिं फासेहिं छट्ठाणवडिते ।

[५१९ प्र] भगवन् ! एकगुण काले पुद्गलो के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[५१९ उ] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय कहे है ।

[प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि एक गुण काले पुद्गलो के अनन्त पर्याय हैं ?

[उ] गौतम ! एक गुण काला एक पुद्गल, दूसरे एक गुण काले पुद्गल से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, अवगाहना की दृष्टि से चतु स्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से चतु स्थानपतित है, कृष्णवर्ण के पर्यायो की अपेक्षा से तुल्य है तथा अवशिष्ट (कृष्णवर्ण के अतिरिक्त अन्य) वर्णो, गन्धो, रसो और स्पर्शों के पर्यायो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है एव अष्ट स्पर्शों की अपेक्षा से (भी) षट्स्थानपतित है ।

५२० एव जाव दसगुणकालए ।

[५२०] इसी प्रकार यावत् दश गुण काले (पुद्गलो) की (पर्याय सम्बन्धी वक्तव्यता समझनी चाहिए ।)

५२१ सखेज्जगुणकालए वि एव चेव । नवर सट्ठाणे दुट्ठाणवडिते ।

[५२१] सख्यातगुण काले (पुद्गलो) का (पर्याय विषयक कथन) भी इसी प्रकार (जानना चाहिए ।) विशेषता यह है कि (वे) स्वस्थान मे द्विस्थानपतित हैं ।

---

१ ग्रन्याग्रम् ३०००

५२२ एव असखेज्जगुणकालए वि । णवर सट्ठाणे चउट्ठाणवडिते ।

[५२२] इसी प्रकार असख्यातगुण काले (पुद्गलो) की पर्यायसम्बन्धी वक्तव्यता समझनी चाहिए । विशेष यह है कि (वे) स्वस्थान मे चतु स्थानपतित हैं ।

५२३. एव अणतगुणकालए वि । नवर सट्ठाणे छट्ठाणवडिते ।

[५२३] इसी तरह अनन्तगुण काले (पुद्गलो) की पर्यायसम्बन्धी वक्तव्यता जाननी चाहिए । विशेष यह है कि (वे) स्वस्थान मे षट्स्थानपतित हे ।

५२४ एव जहा कालवण्णस्स वत्तव्वया भणिया तहा सेसाण वि वण्ण-गध-रस-फासाण वत्तव्वया भाणितव्वा जाव अणतगुणलुक्खे ।

[५२४] इसी प्रकार जैसे कृष्णवर्ण वाले (पुद्गलो) की (पर्यायसम्बन्धी वक्तव्यता कही है,) वैसे ही शेष सब वर्णो, गन्धो, रसो और स्पर्शो (वाले पुद्गलो) की (पर्यायसम्बन्धी) वक्तव्यता यावत् अनन्तगुण रूक्ष (पुद्गलो) की (पर्यायो सम्बन्धी) वक्तव्यता तक कहनी चाहिए ।

विवेचन—परमाणुपुद्गल आदि की पर्यायसम्बन्धी प्ररूपणा—प्रस्तुत इक्कीस सूत्रो (सू ५०४ से ५२४ तक) मे विविध प्रकार के पुद्गलो की विभिन्न अपेक्षाओ से पर्यायसम्बन्धी प्ररूपणा की गई है ।

रूपी-अजीव-पर्यायप्ररूपणा का क्रम— (१) परमाणुपुद्गल तथा द्वि-त्रि-दश-सख्यात-असख्यात-अनन्तप्रदेशिक पुद्गलो के विषय मे, (२) आकाशीय एकप्रदेशावगाढ से लेकर असख्यात-प्रदेशावगाढ पुद्गलो के विषय मे, (३) एकसमयस्थितिक से असख्यातसमयस्थितिक पुद्गलो के विषय मे, (४) एकगुण कृष्ण से अनन्तगुण कृष्ण पुद्गलो के विषय मे तथा शेष वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श पुद्गलो के विषय मे पर्याय-प्ररूपणा क्रमश की गई है ।[1]

परमाणुपुद्गलो मे अनन्तपर्यायो की सिद्धि—प्रस्तुत मे यह प्रतिपादन किया गया है कि परमाणु द्रव्य और प्रत्येक द्रव्य अनन्त पर्यायो से युक्त होता है । एक परमाणु दूसरे परमाणु से द्रव्य, प्रदेश और अवगाहना की दृष्टि से तुल्य होता हैं, क्योकि प्रत्येक परमाणु एक-एक स्वतत्र द्रव्य है । वह निरश ही होता है तथा नियमत आकाश के एक ही प्रदेश मे अवगाहन करके रहता है । इसलिए इन तीनो की अपेक्षा से वह तुल्य है । किन्तु स्थिति की अपेक्षा से एक परमाणु दूसरे परमाणु से चतु.स्थानपतित हीनाधिक होता है, क्योकि परमाणु की जघन्य स्थिति एक समय की और उत्कृष्ट असख्यात काल की है, अर्थात्—कोई पुद्गल परमाणुरूप पर्याय मे कम से कम एक समय तक रहता है और अधिक से अधिक असख्यात काल तक रह सकता है । इसलिए सिद्ध है कि एक परमाणु दूसरे परमाणु से चतु स्थानपतित हीन या अधिक होता है तथा वर्ण, गन्ध, रस एव स्पर्श, विशेषत चतु स्पर्शो की अपेक्षा परमाणु-पुद्गल मे षट्स्थानपतित हीनाधिकता होती है । अर्थात्— वह असख्यात-सख्यात-अनन्तभागहीन, या सख्यात-असख्यात-अनन्तगुण हीन अथवा असख्यात-सख्यात-अनन्तभाग अधिक अथवा सख्यात-असख्यात-अनन्तगुण अधिक है ।

---

१ पण्णवणासुत्त (मूलपाठटिप्पणयुक्त) भाग १, पृ १५१ से १५४ तक

प्रदेशहीन परमाणु मे अनन्त पर्याय कैसे ?—परमाणु को जो 'अप्रदेशी' कहा गया है, वह सिर्फ द्रव्य की अपेक्षा से है, काल और भाव की अपेक्षा से वह अप्रदेशी या निरश नही है ।

परमाणु चतु स्पर्शी और षट्स्थानपतित—एक परमाणु मे आठ स्पर्शो मे से सिर्फ चार स्पर्श ही होते है । वे ये है—शीत, उष्ण, स्निग्ध और रूक्ष । बल्कि असख्यातप्रदेशी स्कन्ध तक मे ये चार ही स्पर्श होते है । कोई-कोई अनन्तप्रदेशी स्कन्ध भी चार स्पर्श वाले होते हैं । इसी प्रकार एक-प्रदेशावगाढ से लेकर सख्यातप्रदेशावगाढ पुद्गल (स्कन्ध) भी चार स्पर्शो वाले होते हे । अत इन अपेक्षाओ से परमाणु को षट्स्थानपतित समझना चाहिए ।[1]

द्विप्रदेशी स्कन्ध अवगाहना की दृष्टि से हीन, अधिक और तुल्य . क्यो और कैसे ?—जब दो द्विप्रदेशी स्कन्ध आकाश के दो-दो प्रदेशो या दोनो—एक-एक प्रदेश मे अवगाढ हो, तब उनकी अवगाहना तुल्य होती है । किन्तु जब एक द्विप्रदेशी स्कन्ध एक प्रदेश मे अवगाढ हो और दूसरा दो प्रदेशो मे, तब उनमे अवगाहना की दृष्टि से हीनाधिकता होती है । जो एक प्रदेश मे अवगाढ है, वह दो प्रदेशो मे अवगाढ स्कन्ध की अपेक्षा एकप्रदेश हीन अवगाहना वाला कहलाता है, जबकि दो प्रदेशो मे अवगाढ स्कन्ध एकप्रदेशावगाढ की अपेक्षा एकप्रदेश-अधिक अवगाहना वाला कहलाता है । द्विप्रदेशी स्कन्धो की अवगाहना मे इससे अधिक हीनाधिकता सभव नही है ।

त्रिप्रदेशी स्कन्धो मे हीनाधिकता · अवगाहना की दृष्टि से—तीन प्रदेशो का पिण्ड त्रिप्रदेशी स्कन्ध कहलाता है । वह आकाश के एक प्रदेश मे भी रह सकता है, दो प्रदेशो मे भी और तीन आकाश प्रदेशो मे भी रह सकता है । तीन आकाशप्रदेशो से अधिक मे उसकी अवगाहना सभव नही । ऐसी स्थिति मे यदि त्रिप्रदेशी स्कन्धो की अवगाहना मे हीनना और अधिकता हो तो एक या दो आकाशप्रदेशो की ही हो सकती है, अधिक की नही ।

दशप्रदेशी स्कन्ध तक की हीनाधिकता · अवगाहना की दृष्टि से—जब दो त्रिप्रदेशी स्कन्ध तीन-तीन प्रदेशो मे, दो-दो प्रदेशो मे या एक-एक प्रदेश मे अवगाढ होते हैं, तब वे अवगाहना की दृष्टि से परस्पर तुल्य होते है, किन्तु जब एक त्रिप्रदेशीस्कन्ध त्रिप्रदेशावगाढ और दूसरा द्विप्रदेशाव-गाढ होता है, तब वह एकप्रदेशहीन होता है । यदि दूसरा एकप्रदेशावगाढ होता है तो वह द्विप्रदेशहीन होता है और वह त्रिप्रदेशावगाढ द्विप्रदेशावगाढ से एकप्रदेशाधिक और एकप्रदेशावगाढ से द्विप्रदेशाधिक होता है । इस प्रकार एक-एक प्रदेश बढा कर चारप्रदेशी से दशप्रदेशी तक के स्कन्धो मे अवगाहना की अपेक्षा से हानिवृद्धि का कथन कर लेना चाहिए । इस दृष्टि से दशप्रदेशी स्कन्ध मे हीनाधिकता इस प्रकार कही जाएगी—दशप्रदेशी स्कन्ध जब हीन होता है तो एकप्रदेशहीन, द्विप्रदेशहीन यावत् नौप्रदेशहीन होता है और अधिक तो एकप्रदेशाधिक यावत् नवप्रदेशाधिक होता है ।[2]

सख्यातप्रदेशी स्कन्ध की अनन्तपर्यायता—सख्यातप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे सख्यातप्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य-दृष्टि से तुल्य होता है । वह द्रव्य है, इस कारण अनन्तपर्याय वाला भी है, क्योकि प्रत्येक द्रव्य अनन्तपर्याययुक्त होता है । प्रदेशो की दृष्टि से वह हीन, तुल्य या अधिक भी हो सकता है । यदि हीन या अधिक हो तो सख्यातभाग हीन या सख्यातगुण हीन अथवा सख्यातभाग अधिक या सख्यातगुण

---

१ (क) प्रज्ञापनासूत्र म वृत्ति, पत्राक २०१, (ख) प्रज्ञापना प्रमेयबोधिनी पृ ७९८-८०१

२ (क) प्रज्ञापना म वृत्ति, पत्राक २०१, (ख) प्रज्ञापना प्र बो टीका पृ ८०६-८०७

अधिक होता है। इसीलिए इसे द्विस्थानपतित कहा है। अवगाहना की दृष्टि से भी वह द्विस्थानपतित है। स्थिति की अपेक्षा से चतु स्थानपतित है। वर्णादि मे तथा पूर्वोक्त चतु स्पर्शों मे षट्स्थानपतित समझना चाहिए।

अनन्तप्रदेशी स्कन्ध अवगाहना की दृष्टि से चतु:स्थानपतित ही क्यो ? अनन्तप्रदेशी स्कन्ध भी अवगाहना की अपेक्षा से चतु स्थानपतित ही होता है, षट्स्थानपतित नही क्योकि लोकाकाश के असख्यातप्रदेश ही है और अनन्तप्रदेशी स्कन्ध भी अधिक से अधिक असख्यात प्रदेशो मे ही अवगाहन करता है। अतएव उसमे अनन्तभाग एव अनन्तगुण हानि-वृद्धि की सम्भावना नही है। इस कारण वह षट्स्थानपतित नही हो सकता। हाँ, वर्णादि के पर्यायो की अपेक्षा से एक अनन्तप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे अनन्तप्रदेशी स्कन्ध से वर्णादि की दृष्टि से अनन्त-असख्यात-सख्यातभाग हीन, अथवा सख्यातगुण या असख्यातगुण हीन, अनन्तगुण हीन और इसी प्रकार अधिक भी हो सकता है। इसलिए इसमे षट्स्थानपतित हो सकता है।[1]

एकप्रदेशावगाढ परमाणु प्रदेशो की दृष्टि से षट्स्थानपतित हानिवृद्धिशील—द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य होने पर भी प्रदेशो की अपेक्षा से इसमे षट्स्थानपतित हीनाधिकता है, क्योकि एकप्रदेशी परमाणु भी एक प्रदेश मे रहता है और अनन्तप्रदेशी स्कन्ध भी एक ही प्रदेश मे रह सकता है। किन्तु अवगाहना की दृष्टि से तुल्य है। स्थिति की अपेक्षा से चतु स्थानपतित है तथा वर्णादि एव चतु स्पर्शों की दृष्टि से षट्स्थानपतित होता है।

असख्यातप्रदेशावगाढ पुद्गल अवगाहना की दृष्टि से चतु स्थानपतित—चू कि लोकाकाश के असख्यात ही प्रदेश है, जिनमे पुद्गलो का अवगाहन है। अत अनन्तप्रदेशो मे किसी भी पुद्गल की अवगाहना सभव नही है।[2]

सख्यातगुण काला पुद्गल स्वस्थान मे द्विस्थानपतित—सख्यातगुण काला पुद्गल या तो सख्यातभाग हीन कृष्ण होता है अथवा सख्यातगुण हीन कृष्ण होता है। अगर अधिक हो तो सख्यात-भाग अधिक या सख्यातगुण अधिक होता है।

अनन्तगुण काला पुद्गल स्वस्थान मे षट्स्थानपतित—अनन्तगुण काले एक पुद्गल मे दूसरा अनन्तगुण काला पुद्गल अनन्तभाग हीन, असख्यातभाग हीन, सख्यातभाग हीन अथवा सख्यातगुण हीन, असख्यातगुण हीन अनन्तगुण हीन होता है। यानी वह षट्स्थानपतित होता है।[3]

जघन्यादि विशिष्ट अवगाहना एवं स्थिति वाले द्विप्रदेशी से अनन्तप्रदेशी स्कन्ध तक की पर्यायप्ररूपणा—

५२५. [१] जहण्णोगाहणगाणं भते ! दुपएसियाण पुच्छा।
गोयमा ! अणता।
से केणट्ठेण भते ! एवं वुच्चति ?

---

१ (क) प्रज्ञापना म वृत्ति, पत्राक २०२, (ख) प्रज्ञापना प्र बो टीका, पृ ८११ से ८१३
२ (क) प्रज्ञापना म वृत्ति, पत्राक २०३, (ख) प्रज्ञापना प्र बो टीका, पृ ८१४ से ८१९ तक
३ (क) प्रज्ञापना म वृत्ति, पत्राक २०३-२०४, (ख) प्रज्ञापना प्र बो टीका, पृ ८२१-८२२

गोयमा ! जहण्णोगाहणए दुपएसिए खधे जहण्णोगाहणगस्स दुपएसियस्स खधस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए तुल्ले, ठितीए चउट्ठाणवडिते, कालवण्णपज्जवेहिं छट्ठाणवडिते, सेसवण्ण-गध-रसपज्जवेहिं छट्ठाणवडिते, सीय-उसिण-णिद्ध-लुक्खफासपज्जवेहिं छट्ठाणवडिते, से तेणट्ठेण गोतमा ! एवं वुच्चति जहण्णोगाहणगाण दुपएसियाण पोग्गलाण अणता पज्जवा पण्णत्ता ।

[५२५-१ प्र] भगवन् ! जघन्य अवगाहना वाले द्विप्रदेशी पुद्गलो के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[५२५-१ उ] गौतम ! उनके अनन्त पर्याय कहे है ।

[प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जघन्य अवगाहना वाले द्विप्रदेशी पुद्गलो के अनन्त पर्याय हैं ?

[उ] गौतम ! एक जघन्य अवगाहना वाला द्विप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे जघन्य अवगाहना वाले द्विप्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशो की अपेक्षा से भी तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से तुल्य है, (किन्तु) स्थिति की अपेक्षा से चतु स्थानपतित है, कृष्ण वर्ण के पर्यायो की दृष्टि से षट्स्थानपतित है, शेष वर्ण, गन्ध और रस के पर्यायो की दृष्टि से षट्स्थानपतित है तथा शीत, उष्ण, स्निग्ध और रूक्ष स्पर्श के पर्यायो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है । हे गौतम ! इस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जघन्य अवगाहना वाले द्विप्रदेशिक पुद्गलो के अनन्त पर्याय कहे है ।

[२] उक्कोसोगाहणए वि एवं चेव ।

[५२५-२] उत्कृष्ट अवगाहना वाले [द्विप्रदेशी पुद्गल-(स्कन्धो) के पर्यायो] के विषय मे भी इसी प्रकार (कहना चाहिए ।)

[३] अजहण्णमणुक्कोसोगाहणओ नत्थि ।

[५२५-३] अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) अवगाहना वाले द्विप्रदेशी स्कन्ध नही होते ।

५२६ [१] जहण्णोगाहणयाण भते ! तिपएसियाण पुच्छा ।

गोयमा ! अणता पज्जवा ।

से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चति ?

गोयमा ! जहा दुपएसिते जहण्णोगाहणते ।

[५२६-१ प्र] भगवन् ! जघन्य अवगाहना वाले त्रिप्रदेशी पुद्गलो के कितने पर्याय कहे गए है ?

[५२६-१ उ] गौतम ! उनके अनन्त पर्याय कहे गए हैं ।

[प्र] भगवन् ! किस हेतु से ऐसा कहा जाता है कि जघन्य अवगाहना वाले त्रिप्रदेशी पुद्गलो के अनन्त पर्याय है ?

[उ] गौतम ! जैसे जघन्य अवगाहना वाले द्विप्रदेशी (पुद्गलो की पर्यायविषयक वक्तव्यता कही है,) वैसी ही (वक्तव्यता) जघन्य अवगाहना वाले त्रिप्रदेशी पुद्गलो के विषय मे कहनी चाहिए ।

[२] उक्कोसोगाहणए वि एव चेव ।

[५२६-२] इसी प्रकार उत्कृष्ट अवगाहना वाले त्रिप्रदेशी पुद्गलो के पर्यायो के विषय मे कहना चाहिए ।

[३] एव अजहण्णमणुक्कोसोगाहणए वि ।

[५२६-३] इसी तरह मध्यम अवगाहना वाले त्रिप्रदेशी पुद्गलो के (पर्यायो के) विषय मे (कहना चाहिए ।)

५२७. [१] जहण्णोगाहणयाण भते ! चउपएसियाण पुच्छा ।

गोयमा ! जहा जहण्णोगाहणए दुपएसिते तहा जहण्णोगाहणए चउपएसिते ।

[५२७-१ प्र] भगवन् ! जघन्य अवगाहना वाले चतु प्रदेशी पुद्गलो के पर्याय कितने कहे है ?

[५२७-१ उ] गौतम ! जघन्य अवगाहना वाले चतु प्रदेशी पुद्गल-पर्याय जघन्य अवगाहना वाले द्विप्रदेशी पुद्गलो के पर्याय की तरह (समझना चाहिए ।)

[२] एव जहा उक्कोसोगाहणए दुपएसिए तहा उक्कोसोगाहणए चउप्पएसिए वि ।

[५२७-२] जिस प्रकार उत्कृष्ट अवगाहना वाले द्विप्रदेशी पुद्गलो के पर्यायो का कथन किया गया है, उसी प्रकार उत्कृष्ट अवगाहना वाले चतु प्रदेशी पुद्गल-पर्यायो का कथन करना चाहिये ।

[३] एव अजहण्णमणुक्कोसोगाहणए वि चउप्पएसिते । णवरं ओगाहणट्ठयाते सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भइए—जति हीणे पएसहीणे, अहऽब्भइते पएसब्भतिए ।

[५२७-३] इसी प्रकार मध्यम अवगाहना वाले चतु प्रदेशी स्कन्ध का पर्यायविषयक कथन करना चाहिए । विशेष यह है कि अवगाहना की अपेक्षा से कदाचित् हीन, कदाचित् तुल्य, कदाचित् अधिक होता है । यदि हीन हो तो एक प्रदेशहीन होता है, यदि अधिक हो तो एकप्रदेश अधिक होता है ।

५२८ एव जाव दसपएसिए णेयव्व । णवरमजहण्णुक्कोसोगाहणए पदेसपरिवुड्ढी कातव्वा, जाव दसपएसियस्स सत्त पएसा परिवड्ढिज्जति ।

[५२८] इसी प्रकार यावत् दशप्रदेशी स्कन्ध तक का (पर्यायविषयक कथन करना चाहिए ।) विशेष यह है कि मध्यम अवगाहना वाले मे एक-एक प्रदेश की परिवृद्धि करनी चाहिए । इस प्रकार यावत् दशप्रदेशी तक सात प्रदेश बढते है ।

५२९ [१] जहण्णोगाहणगाण भते ! सखेज्जपएसियाण पुच्छा ।

गोयमा ! अणता ।

से केणट्ठेण भते ! एवं वुच्चति ?

गोयमा ! जहण्णोगाहणगे सखेज्जपएसिए जहण्णोगाहणगस्स सखेज्जपएसियस्स दव्वट्ठयाते तुल्ले, पएसट्ठयाते दुट्ठाणवडिते, ओगाहणट्ठयाते तुल्ले, ठितीए चउट्ठाणवडिए, वण्णादि-चउफासपज्जवेहि य छट्ठाणवडिते ।

[५२९-१ प्र] भगवन् ! जघन्य अवगाहना वाले सख्यातप्रदेशी पुद्गलो के कितने पर्याय कहे गए है ?

[५२९-१ उ] गौतम ! अनन्त पर्याय कहे हैं ।

[प्र] भगवन् ! किस कारण से आप ऐसा कहते है कि 'जघन्य अवगाहना वाले सख्यात-प्रदेशी पुद्गलो (स्कन्धो) के अनन्त पर्याय है ?'

[उ] गौतम ! एक जघन्य अवगाहना वाला सख्यातप्रदेशी स्कन्ध दूसरे जघन्य अवगाहना वाले सख्यातप्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशो की अपेक्षा से द्विस्थानपतित है, अवगाहना की दृष्टि से तुल्य है, स्थिति की अपेक्षा से चतु स्थानपतित है और वर्णादि चार स्पर्शो के पर्यायो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित (हीनाधिक) है ।

[२] एव उक्कोसोगाहणए वि ।

[५२९-२] इसी प्रकार उत्कृष्ट अवगाहना वाले (सख्यातप्रदेशी स्कन्धो के पर्यायो के विषय मे भी कहना चाहिए ।)

[३] अजहण्णमणुक्कोसोगाहणए वि एव चेव । णवर सट्ठाणे दुट्ठाणवडिते ।

[५२९-३] अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) अवगाहना वाले सख्यातप्रदेशी स्कन्धो का पर्याय-विषयक कथन भी ऐसा ही समझना चाहिए । विशेष यह है कि वह स्वस्थान मे (अवगाहना की अपेक्षा से) द्विस्थानपतित है ।

५३०. **[१] जहण्णोगाहणगाण भते ! असंखेज्जपएसियाण पुच्छा ।**

गोयमा ! अणता !

से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चति ?

गोयमा ! जहण्णोगाहणए असखेज्जपएसिए खधे जहण्णोगाहणगस्स असखेज्जपएसियस्स खधस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाते चउट्ठाणवडिते, ओगाहणट्ठयाते तुल्ले, ठितीए चउट्ठाण-वडिते, वण्णादि-उवरिल्लफासेहि य छट्ठाणवडिते ।

[५३०-१ प्र] भगवन् ! जघन्य अवगाहना वाले असख्यात प्रदेशी स्कन्धो के कितने पर्याय कहे गए है ?

[५३०-१ उ] गौतम ! अनन्त पर्याय कहे है ।

[प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जघन्य अवगाहना वाले असख्यात-प्रदेशी स्कन्धो के अनन्त पर्याय हैं ?

[उ] गौतम ! एक जघन्य अवगाहना वाला असख्यातप्रदेशी स्कन्ध दूसरे जघन्य अवगाहना वाले असख्यातप्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशो की अपेक्षा से चतु स्थानपतित है और वर्णादि तथा उपर्युक्त चार स्पर्शो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है ।

[२] एव उक्कोसोगाहणए वि ।

[५३०-२] उत्कृष्ट अवगाहना वाले (असख्यातप्रदेशी स्कन्धो के पर्याय) के विषय मे भी इसी प्रकार समझना चाहिए ।

[३] अजहण्णमणुक्कोसोगाहणए वि एव चेव। नवरं सट्ठाणे चउट्ठाणवडिते।

[५३०-३] मध्यम अवगाहना वाले (असख्यातप्रदेशी स्कन्धो) का (पर्याय-विषयक कथन भी) इसी प्रकार समझना चाहिए। विशेष यह है कि (वह) स्वस्थान मे चतु स्थानपतित है।

५३१ [१] जहण्णोगाहणगाण भते ! अणतपएसियाण पुच्छा।

गोयमा ! अणंता।

से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चइ ?

गोयमा ! जहण्णोगाहणए अणतपएसिए खधे जहण्णोगाहणगस्स अणतपएसियस्स खधस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए छट्ठाणवडिते, ओगाहणट्ठयाए तुल्ले, ठितीए चउट्ठाणवडिते, वण्णादि-उवरिल्लचउफासेहिं छट्ठाणवडिए।

[५३१-१ प्र] भगवन् ! जघन्य अवगाहना वाले अनन्तप्रदेशी स्कन्धो के कितने पर्याय कहे गए है ?

[५३१-१ उ] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय (कहे है।)

[प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जघन्य अवगाहना वाले अनन्त-प्रदेशी स्कन्धो के अनन्त पर्याय है ?

[उ] गौतम ! एक जघन्य अवगाहना वाला अनन्तप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे जघन्य अवगाहना वाले अनन्तप्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, अवगाहना की दृष्टि से तुल्य है, स्थिति की अपेक्षा से चतु स्थानपतित है, वर्णादि तथा उपर्युक्त चार स्पर्शो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

[२] उक्कोसोगाहणए वि एव चेव। नवर ठितीए वि तुल्ले।

[५३१-२] उत्कृष्ट अवगाहना वाले अनन्तप्रदेशी स्कन्धो का (पर्यायविषयक कथन) भी इसी प्रकार (समझना चाहिए।) विशेष यह है कि स्थिति की अपेक्षा भी तुल्य है।

[३] अजहण्णमणुक्कोसोगाहणगाण भंते ! अणतपएसियाण पुच्छा।

गोयमा ! अणता।

से केणट्ठेण ?

गोयमा ! अजहण्णमणुक्कोसोगाहणए अणतपएसिए खधे अजहण्णमणुक्कोसोगाहणगस्स अणंतपदेसियस्स खंधस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए छट्ठाणवडिते, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए, ठितीए चउट्ठाणवडिते, वण्णादि-अट्ठफासेहिं छट्ठाणवडिते।

[५३१-३ प्र] भगवन् ! मध्यम अवगाहना वाले अनन्तप्रदेशी स्कन्धो के कितने पर्याय कहे गए है ?

[५३५-३ उ] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय कहे है।

[प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि मध्यम अवगाहना वाले अनन्तप्रदेशी स्कन्ध के अनन्त पर्याय हैं ?

[उ] गौतम ! मध्यम अवगाहना वाला अनन्तप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे मध्यम अवगाहना वाले अनन्तप्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, अवगाहना की दृष्टि से चतु स्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है और वर्णादि तथा अष्ट स्पर्शो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

५३२ [१] जहण्णठितीयाणं भते ! परमाणुपोग्गलाण पुच्छा।

गोयमा ! अणता।

से केणट्ठेण ?

गोयमा ! जहण्णठितीए परमाणुपोग्गले जहण्णठितीयस्स परमाणुपोग्गलस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए तुल्ले, ठितीए तुल्ले, वण्णादि-दुफासेहि य छट्ठाणवडिते।

[५३२-१ प्र] भगवन् ! जघन्य स्थिति वाले परमाणुपुद्गल के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[५३२-१ उ] गौतम ! (उसके) अनन्त पर्याय (कहे है।)

[प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है (कि जघन्य स्थिति वाले परमाणु-पुद्गलो के अनन्त पर्याय है ?)

[उ] गौतम ! एक जघन्य स्थिति वाला परमाणुपुद्गल, दूसरे जघन्य स्थिति वाले परमाणु-पुद्गल से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशो की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से तुल्य है तथा स्थिति की अपेक्षा से (भी) तुल्य है एव वर्णादि तथा दो स्पर्शो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

[२] एव उक्कोसठितीए वि।

[५३२-२] इसी प्रकार उत्कृष्ट स्थिति वाले (परमाणुपुद्गलो के पर्यायो) के विषय मे (समझना चाहिए।)

[३] अजहण्णमणुक्कोसठितीए वि एव चेव। नवरं ठितीए चउट्ठाणवडिते।

[५३२-३] मध्यम स्थिति वाले (परमाणुपुद्गलो के पर्यायो) के विषय मे भी इसी प्रकार (कहना चाहिए।) विशेष यह है कि स्थिति की अपेक्षा से चतु स्थानपतित है।

५३३ [१] जहण्णठितीयाणं दुपएसियाणं पुच्छा।

गोयमा ! अणता।

से केणट्ठेण भते ! ?

गोयमा ! जहण्णठितीए दुपएसिते जहण्णठितीयस्स दुपएसियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए तुल्ले; ओगाहणट्ठयाए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिए। जति हीणे पदेसहीणे, अह अब्भतिए पदेसब्भतिते, ठितीए तुल्ले, वण्णादि-चउप्फासेहि य छट्ठाणवडिते।

[५३३-१ प्र] भगवन् ! जघन्य स्थिति वाले द्विप्रदेशी स्कन्धो के कितने पर्याय कहे गए है ?

[५३३-१ उ] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय कहे हैं।

[प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जघन्य स्थिति वाले द्विप्रदेशी स्कन्धो के अनन्त पर्याय कहे हैं ?

[उ] गौतम ! एक जघन्य स्थिति वाला द्विप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे जघन्य स्थिति वाले द्विप्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशो की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना की दृष्टि से कदाचित् हीन, कदाचित् तुल्य और कदाचित् अधिक होता है। यदि हीन हो तो एकप्रदेश हीन और यदि अधिक हो तो एकप्रदेश अधिक है। स्थिति की अपेक्षा से तुल्य है और वर्णादि तथा चार स्पर्शो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

[२] एव उक्कोसठितीए वि।

[५३३-२] इसी प्रकार उत्कृष्ट स्थिति वाले द्विप्रदेशी स्कन्धो के पर्यायो के विषय मे कहना चाहिए।

[३] अजहण्णमणुक्कोसठितीए वि एव चेव। नवर ठितीए चउट्ठाणवडिते।

[५३३-३] मध्यम स्थिति वाले द्विप्रदेशी स्कन्धो का पर्यायविषयक कथन भी इसी प्रकार करना चाहिए। विशेषता यह है कि स्थिति की अपेक्षा से वह चतु स्थानपतित (हीनाधिक) है।

५३४ एव जाव दसपदेसिते। नवर पदेसपरिवुड्ढी कातव्वा। ओगाहणट्ठयाए तिसु वि गमएसु जाव दसपएसिए णव पएसा वड्ढिज्जति।

[५३४] इसी प्रकार यावत् दशप्रदेशी स्कन्ध तक के पर्यायो के विषय मे समझ लेना चाहिए। विशेष यह है कि इसमे एक-एक प्रदेश की क्रमश परिवृद्धि करनी चाहिए। अवगाहना के तीनो गमो (आलापको) मे यावत् दशप्रदेशी स्कन्ध तक ऐसे ही कहना चाहिए। (क्रमश) नौ प्रदेशो की वृद्धि हो जाती है।

५३५ [१] जहण्णट्ठितीयाण भते ! सखेज्जपदेसियाण पुच्छा।
गोयमा ! अणता।
से केणट्ठेण ?
गोयमा ! जहण्णट्ठितीए सखेज्जपदेसिए खधे जहण्णठितीयस्स सखेज्जपएसियस्स खधस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए दुट्ठाणवडिते, ओगाहणट्ठयाए दुट्ठाणवडिते, ठितीए तुल्ले, वण्णादि-चउफासेहि य छट्ठाणवडिते।

[५३५-१ प्र] जघन्य स्थिति वाले सख्यातप्रदेशी स्कन्धो के कितने पर्याय कहे गए हैं ?
[५३५-१ उ] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय (कहे गए हैं।)
[प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जघन्य स्थिति वाले सख्यातप्रदेशी स्कन्धो के अनन्त पर्याय हैं ?

[उ] गौतम ! एक जघन्य स्थिति वाला सख्यातप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे जघन्य स्थिति वाले सख्यातप्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेश की अपेक्षा से द्विस्थानपतित है, अवगाहना की अपेक्षा से द्विस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से तुल्य है, वर्णादि तथा चतु स्पर्शो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

[२] एव उक्कोसठितीए वि ।

[५३५-२] इसी प्रकार उत्कष्ट स्थिति वाले सख्यातप्रदेशी स्कन्धो के पर्यायो के विषय मे कहना चाहिए ।

[३] अजहण्णमणुक्कोसट्ठितीए वि एवं चेव । नवर ठितीए चउट्ठाणवडिते ।

[५३५-३] मध्यम स्थिति वाले सख्यातप्रदेशी स्कन्धो का पर्यायविषयक कथन भी इसी प्रकार समझना चाहिए । विशेष यह है कि स्थिति की अपेक्षा से चतु स्थानपतित है ।

५३६ [१] जहण्णठितीयाण असखेज्जपएसियाण पुच्छा ।

गोयमा ! अणंता ।

से केणट्ठेण ?

गोयमा ! जहण्णठितीए असखेज्जपएसिए जहण्णठितीयस्स असखेज्जपदेसियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाते चउट्ठाणवडिते, ओगाहणट्ठयाते चउट्ठाणवडिते, ठितीए तुल्ले, वण्णादि-उवरिल्ल-चउप्फासेहि य छट्ठाणवडिते ।

[५३६-१ प्र] भगवन् ! जघन्य स्थिति वाले असख्यातप्रदेशी स्कन्धो के कितने पर्याय कहे गए है ?

[५३६-१ उ] गौतम ! उनके अनन्त पर्याय कहे है ।

[प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जघन्य स्थिति वाले असख्यातप्रदेशी स्कन्धो के अनन्त पर्याय हैं ?

[उ] गौतम ! एक जघन्य स्थिति वाला असख्यातप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे जघन्य स्थिति वाले असख्यातप्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशो की अपेक्षा से चतु स्थानपतित है, अवगाहना की दृष्टि से चतु स्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से तुल्य है, वर्णादि तथा उपर्युक्त चार स्पर्शो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है ।

[२] एव उक्कोसठिईए वि ।

[५३६-२] इसी प्रकार उत्कृष्ट स्थिति वाले असख्यातप्रदेशी स्कन्धो के पर्यायो के विषय मे कहना चाहिए ।

[३] अजहण्णमणुक्कोसठितीए वि एव चेव । नवर ठितीए चउट्ठाणवडिते ।

[५३६-३] मध्यम स्थिति वाले असख्यात प्रदेशी स्कन्धो के पर्यायो के विषय मे इसी प्रकार कहना चाहिए । विशेष यह है कि स्थिति की अपेक्षा चतु स्थानपतित है ।

५३७ [१] जहण्णठितीयाण अणंतपदेसियाण पुच्छा ।

गोयमा ! अणता ।

से केणट्ठेण ?

गोयमा ! जहण्णठितीए अणतपएसिए जहण्णठितीयस्स अणतपएसियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए छट्ठाणवडिते, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए तुल्ले, वण्णादि-अट्ठफासेहि य छट्ठाणवडिते ।

[५३७-१ प्र] भगवन् ! जघन्य स्थिति वाले अनन्तप्रदेशी स्कन्धो के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[५३७-१ उ] गौतम ! उनके अनन्त पर्याय कहे है।

[प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जघन्य स्थिति वाले अनन्तप्रदेशी स्कन्धो के अनन्त पर्याय हैं ?

[उ] गौतम ! एक जघन्य स्थिति वाला अनन्तप्रदेशी स्कन्ध दूसरे जघन्य स्थिति वाले अनन्तप्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, अवगाहना की अपेक्षा से चतु स्थानपतित है, स्थिति की दृष्टि से तुल्य है और वर्णादि तथा अष्ट स्पर्शों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

[२] एव उक्कोसठितीए वि।

[५३७-२] इसी प्रकार उत्कृष्ट स्थिति वाले अनन्तप्रदेशी स्कन्ध के पर्यायो के विषय मे समझना चाहिए।

[३] अजहण्णमणुक्कोसठितीए वि एव चेव। नवर ठितीए चउट्ठाणवडिते।

[५३७-३] अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) स्थिति वाले अनन्तप्रदेशी स्कन्धो का पर्यायविषयक कथन भी इसी प्रकार करना चाहिए। विशेषता यह है कि स्थिति की अपेक्षा से चतु स्थानपतित होता है।

विवेचन—जघन्यादिविशिष्ट अवगाहना एव स्थिति वाले द्विप्रदेशी से अनन्तप्रदेशी स्कन्ध तक के पर्यायों की प्ररूपणा—प्रस्तुत तेरह सूत्रो (सू ५२५ से ५३७ तक) मे जघन्य, उत्कृष्ट और मध्यम अवगाहना एव स्थिति वाले परमाणु पुद्गलो तथा द्विप्रदेशिक, त्रिप्रदेशिक, यावत् सख्यातप्रदेशी, असख्यातप्रदेशी और अनन्तप्रदेशी स्कन्धो के पर्यायो की प्ररूपणा की गई है।

जघन्य अवगाहना वाले द्विप्रदेशी स्कन्ध चार स्पर्शो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित—जघन्य अवगाहना वाले द्विप्रदेशी स्कन्धो मे शीत, उष्ण, रूक्ष और स्निग्ध, ये चार स्पर्श ही पाए जाते हैं, इनमे शेष कर्कश, कठोर, हलका (लघु) और भारी (गुरु), ये चार स्पर्श नही पाए जाते। इनमे षट्स्थानपतित हीनाधिकता पाई जाती है।

द्विप्रदेशीस्कन्ध मे मध्यम अवगाहना नही होती—दो परमाणुओ का पिण्ड द्विप्रदेशी स्कन्ध कहलाता है। उसकी अवगाहना या तो आकाश के एक प्रदेश मे होगी अथवा अधिक से अधिक दो आकाशप्रदेशो मे होगी। एक प्रदेश मे जो अवगाहना होती है, वह जघन्य अवगाहना है और दो प्रदेशो मे जो अवगाहना है, वह उत्कृष्ट है। इन दोनो के बीच की कोई अवगाहना नही होती। अतएव मध्यम अवगाहना का अभाव है।

मध्यम अवगाहना वाले चतु प्रदेशी स्कन्धो की हीनाधिकता—चतु प्रदेशी स्कन्ध की जघन्य अवगाहना एक प्रदेश मे और उत्कृष्ट अवगाहना चार प्रदेशो मे होती है। मध्यम अवगाहना दो प्रकार की है—दो प्रदेशो मे और तीन प्रदेशो मे। अतएव मध्यम अवगाहना वाले एक चतु प्रदेशी स्कन्ध से दूसरा चतु प्रदेशी स्कन्ध यदि अवगाहना से हीन होगा तो एकप्रदेशहीन ही होगा और अधिक होगा तो एकप्रदेशाधिक ही होगा। इससे अधिक हीनाधिकता उनमे नही हो सकती।

मध्यमावगाहनाशील चतु प्रदेशी से लेकर दशप्रदेशी स्कन्ध तक उत्तरोत्तर एक-एक-प्रदेशवृद्धि-हानि—मध्यम अवगाहना वाले चतु प्रदेशी स्कन्ध से लेकर दशप्रदेशी स्कन्ध तक उत्तरोत्तर एक-एक प्रदेश की वृद्धि-हानि होती है। तदनुसार चतु प्रदेशी स्कन्ध मे एक, पचप्रदेशी स्कन्ध मे दो, षट्प्रदेशी स्कन्ध मे तीन, सप्तप्रदेशी स्कन्ध मे चार, अष्टप्रदेशी स्कन्ध मे पाच, नवप्रदेशी स्कन्ध मे छह और दशप्रदेशी स्कन्ध मे सात प्रदेशो की वृद्धि-हानि होती है।

जघन्य अवगाहना वाला सख्यातप्रदेशी स्कन्ध प्रदेशो से द्विस्थानपतित—जघन्य अवगाहना वाला सख्यातप्रदेशी एक स्कन्ध, दूसरे जघन्य अवगाहना वाले सख्यातप्रदेशी स्कन्ध से सख्यातभाग प्रदेशहीन या सख्यातगुण प्रदेशहीन होता है, यदि अधिक हो तो सख्यातभागप्रदेशाधिक अथवा सख्यातगुणप्रदेशाधिक होता है। इसीलिए इसे प्रदेशो की दृष्टि से द्विस्थानपतित कहा गया है।

मध्यम अवगाहना वाला सख्यातप्रदेशी स्कन्ध स्वस्थान मे द्विस्थानपतित—एक मध्यम अवगाहना वाला सख्यातप्रदेशी स्कन्ध दूसरे मध्यम अवगाहना वाले सख्यातप्रदेशी स्कन्ध से अवगाहना की दृष्टि से सख्यातभाग हीन या सख्यातगुण हीन होता है, अथवा सख्यातभाग अधिक या सख्यातगुण अधिक होता है।

मध्यम अवगाहना वाले असख्यातप्रदेशी स्कन्ध की पर्याय-प्ररूपणा—इसकी पर्याय-प्ररूपणा जघन्य अवगाहना वाले असख्यातप्रदेशी स्कन्ध की पर्याय-प्ररूपणा के समान ही है। मध्यम अवगाहना वाले अर्थात्—आकाश के दो से लेकर असख्यात प्रदेशो मे स्थित पुद्गलस्कन्ध की पर्यायप्ररूपणा इसी प्रकार है, किन्तु विशेष बात यह है कि स्वस्थान मे चतु स्थानपतित है।

मध्यम अवगाहना वाले अनन्तप्रदेशी स्कन्ध का अर्थ—आकाश के दो आदि प्रदेशो से लेकर असख्यातप्रदेशो मे रहे हुए मध्यम अवगाहना वाले अनन्तप्रदेशी स्कन्ध कहलाते है।[1]

जघन्यस्थितिक सख्यातप्रदेशी स्कन्ध प्रदेशो की दृष्टि से द्विस्थानपतित—यदि हीन हो तो सख्यातभाग हीन या सख्यातगुण हीन होता है, यदि अधिक हो तो सख्यातभाग अधिक या सख्यातगुण अधिक होता है। इसलिए यह द्विस्थानपतित है।[2]

जघन्यादियुक्त वर्णादियुक्त पुद्गलो की पर्याय-प्ररूपणा—

५३८ [१] जहण्णगुणकालयाण परमाणुपोग्गलाण पुच्छा।

गोयमा ! अणता।

से केणट्ठेण ?

गोयमा ! जहण्णगुणकालए परमाणुपोग्गले जहण्णगुणकालगस्स परमाणुपोग्गलस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए तुल्ले, ठितीए चउट्ठाणवडिते, कालवण्णपज्जवेहि तुल्ले, अवसेसा वण्णा णत्थि, गध-रस-फासपज्जवेहि य छट्ठाणवडिते।

[५३८ १ प्र] भगवन् ! जघन्यगुण काले परमाणुपुद्गलो के कितने पर्याय कहे गए है ?
[५३८-१ उ] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय (कहे है।)

---

१ (क) प्रज्ञापनासूत्र म वृत्ति, पत्राक २०३, (ख) प्रज्ञापना प्र बो टीका, पृ ८४१ से ८५८ तक
२ (क) प्रज्ञापना म वृत्ति, पत्राक २०४, (ख) प्रज्ञापना प्र बो टीका, पृ ८५९-८६०

[प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जघन्यगुण काले परमाणुपुद्गलो के अनन्त पर्याय हैं ?

[उ] गौतम ! एक जघन्यगुण काला परमाणुपुद्गल, दूसरे जघन्यगुण काले परमाणुपुद्गल से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, अवगाहना की दृष्टि से तुल्य है, स्थिति की अपेक्षा से चतु स्थानपतित है, कृष्णवर्ण के पर्यायो की अपेक्षा से तुल्य है, शेष वर्ण नही होते तथा गन्ध, रस और दो स्पर्शो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है ।

[२] एवं उक्कोसगुणकालए वि ।

[५३८-२] इसी प्रकार उत्कृष्टगुण काले (परमाणुपुद्गलो की पर्याय-प्ररूपणा समझनी चाहिए ।)

[३] एवमजहण्णमणुक्कोसगुणकालए वि । णवर सट्ठाणे छट्ठाणवडिते ।

[५३८-३] इसी प्रकार मध्यमगुण काले परमाणुपुद्गलो की भी पर्याय-प्ररूपणा समझ लेनी चाहिए । विशेप यह है कि स्वस्थान मे षट्स्थानपतित है ।

५३९. [१] जहण्णगुणकालयाण भते ! दुपएसियाण पुच्छा ।

गोयमा ! अणंता ।

से केणट्ठेण ?

गोयमा ! जहण्णगुणकालए दुपएसिए जहण्णगुणकालगस्स दुपएसियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भतिते—जति हीणे पदेसहीणे, अह अब्भतिए पएसमब्भतिए, ठितीए चउट्ठाणवडिते, कालवण्णपज्जवेहिं तुल्ले, अवसेसवण्णादि-उवरिल्ल-चउफासेहि य छट्ठाणवडिते ।

[५३९-१ प्र] भगवन् ! जघन्यगुण काले द्विप्रदेशिक स्कन्धो के पर्याय कितने कहे गए है ?

[५३९-१ उ] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय है ।

[प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जघन्यगुण काले (द्विप्रदेशी स्कन्धो के अनन्त पर्याय हैं ?)

[उ] गौतम ! एक जघन्यगुण काला द्विप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे जघन्यगुण काले द्विप्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशो की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से कदाचित् हीन, कदाचित् तुल्य और कदाचित् अधिक है । यदि हीन हो तो एकप्रदेश हीन होता है, यदि अधिक हो तो एकप्रदेश अधिक होता है । स्थिति की अपेक्षा से चतु स्थानपतित होता है, कृष्णवर्ण के पर्यायो की अपेक्षा से तुल्य है और शेष वर्णादि तथा उपर्युक्त चार स्पर्शो के पर्यायो की अपेक्षा से षट्स्थान-पतित है ।

[२] एव उक्कोसगुणकालए वि ।

[५३९-२] इसी प्रकार उत्कृष्टगुण काले (परमाणुपुद्गलो की पर्याय-प्ररूपणा समझनी चाहिए ।)

[३] अजहण्णमणुक्कोसगुणकालए वि एव चेव । नवर सट्ठाणे छट्ठाणवडिते ।

[५३९-३] अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) गुण काले द्विप्रदेशी स्कन्धो का पर्यायविपयक कथन भी इसी प्रकार समझना चाहिए । विशेष यह है कि स्वस्थान मे षट्स्थानपतित कहना चाहिए ।

५४० एव जाव दसपएसिते । णवर पएसपरिवुड्ढी, ओगाहणा तहेव ।

[५४०] इसी प्रकार यावत् दशप्रदेशी स्कन्धो के पर्यायो के विषय मे समझ लेना चाहिए । विशेषता यह है कि प्रदेश की उत्तरोत्तर वृद्धि करनी चाहिए । अवगाहना से उसी प्रकार है ।

५४१. [१] जहण्णगुणकालयाण भते ! सखेज्जपएसियाण पुच्छा ।

गोयमा ! अणता ।

से केणट्ठेण ?

गोयमा ! जहण्णगुणकालए सखेज्जपएसिए जहण्णगुणकालगस्स सखेज्जपएसियस्स दव्वट्ठयाते तुल्ले, पएसट्ठयाते दुट्ठाणवडिते, ओगाहणट्ठयाए दुट्ठाणवडिते, ठितीए चउट्ठाणवडिते, कालवण्ण-पज्जवेहि तुल्ले, अवसेसेहि वण्णादि-उवरिल्लचउफासेहि य छट्ठाणवडिते ।

[५४१-१ प्र] भगवन् ! जघन्यगुण काले सख्यातप्रदेशी पुद्गलो के कितने पर्याय कहे है ?

[५४१-१ उ] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय (कहे हैं ।)

[प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि (जघन्यगुण काले सख्यातप्रदेशी स्कन्धो के अनन्त पर्याय हैं ?)

[उ] गौतम ! एक जघन्यगुण काला सख्यातप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे जघन्यगुण काले सख्यात-प्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशो की अपेक्षा से द्विस्थानपतित है, अवगाहना की अपेक्षा से द्विस्थानपतित है तथा स्थिति की अपेक्षा से चतु स्थानपतित है, कृष्णवर्ण के पर्यायो की अपेक्षा से तुल्य है और अवशिष्ट वर्ण आदि तथा ऊपर के चार स्पर्शो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है ।

[२] एव उक्कोसगुणकालए वि ।

[५४१-२] इसी प्रकार उत्कृष्टगुण काले सख्यातप्रदेशी स्कन्धो के पर्यायो के विषय मे कहना चाहिए ।

[३] अजहण्णमणुक्कोसगुणकालए वि एव चेव । नवर सट्ठाणे छट्ठाणवडिते ।

[५४१-३] अजघन्य-अनुत्कृष्ट(मध्यम) गुण काले सख्यातप्रदेशी स्कन्धो के पर्यायो के विषय मे भी इसी प्रकार कहना चाहिए ।) विशेषता यह है कि स्वस्थान मे षट्स्थानपतित है ।

५४२ [१] जहण्णगुणकालयाण भते ! असखेज्जपएसियाण पुच्छा ।

गोयमा ! अणता ।

से केणट्ठेणं ?

गोयमा ! जहण्णगुणकालए असखेज्जपएसिए जहण्णगुणकालगस्स असखेज्जपएसियस्स दव्वट्ठ-

याए तुल्ले, पएसट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए चउट्ठाणवडिते, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए, कालवण्णपज्जवेहिं तुल्ले, अवसेसेहिं वण्णादि-उवरिल्लचउफासेहि य छट्ठाणवडिते ।

[५४२-१ प्र] भगवन् ! जघन्यगुण काले असख्यातप्रदेशी स्कन्धो के कितने पर्याय कहे गए है ?

[५४२-१ उ] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय है ।

[प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहते है कि (जघन्यगुण काले असख्यातप्रदेशी स्कन्धो के अनन्त पर्याय है ?)

[उ] गौतम ! एक जघन्यगुण काला असख्यातप्रदेशी पुद्गलस्कन्ध, दूसरे जघन्यगुण काले असख्यातप्रदेशी पुद्गलस्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशो की अपेक्षा से चतु स्थानपतित है, स्थिति की दृष्टि से चतु स्थानपतित है, अवगाहना की अपेक्षा से चतु स्थानपतित है तथा कृष्णवर्ण के पर्यायो की अपेक्षा से तुल्य है और शेष वर्ण आदि तथा ऊपर के चार स्पर्शो की अपेक्षा से षट्स्थान-पतित है ।

[२] एव उक्कोसगुणकालए वि ।

[५४२-२] इसी प्रकार उत्कृष्टगुण काले (असख्यातप्रदेशी स्कन्धो का पर्याय-विषयक कथन करना चाहिए ।)

[३] अजहण्णमणुक्कोसगुणकालए वि एवं चेव । णवरं सट्ठाणे छट्ठाणवडिते ।

[५४२-३] इसी प्रकार मध्यमगुण काले (असख्यातप्रदेशी स्कन्धो के पर्यायो के विषय मे भी कहना चाहिए ।) विशेष इतना है कि वह स्वस्थान मे षट्स्थानपतित है ।

५४३. [१] जहण्णगुणकालयाण भते ! अणतपएसियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! अणता ।

से केणट्ठेण भते ! एव वुच्चति ?

गोयमा ! जहण्णगुणकालए अणतपएसिए जहण्णगुणकालयस्स अणतपएसियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए छट्ठाणवडिते, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए चउट्ठाणवडिते, काल-वण्णपज्जवेहिं तुल्ले, अवसेसेहिं वण्णादि-अट्ठफासेहि य छट्ठाणवडिते ।

[५४३-१ प्र] भगवन् ! जघन्यगुणकाले अनन्तप्रदेशी स्कन्धो के कितने पर्याय कहे गए है ?

[५४३-१ उ] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय (कहे है ।)

[प्र] भगवन् ! किस हेतु से आप ऐसा कहते है कि जघन्यगुण काले अनन्तप्रदेशी स्कन्धो के अनन्त पर्याय हैं ?

[उ] गौतम ! एक जघन्यगुण काला अनन्तप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे जघन्यगुण काले अनन्तप्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, अवगाहना की अपेक्षा से चतु स्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से चतु स्थानपतित है, कृष्णवर्ण के पर्यायो की अपेक्षा से तुल्य है तथा अवशिष्ट वर्ण आदि एव अष्टस्पर्शो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है ।

[२] एव उक्कोसगुणकालए वि ।

[५४३-२] इसी प्रकार उत्कृष्टगुण काले (अनन्तप्रदेशी स्कन्धो के पर्यायो के विषय मे जानना चाहिए ।)

[३] अजहण्णमणुक्कोसगुणकालए वि एव चेव । नवर सट्ठाणे छट्ठाणवडिते ।

[५४३-३] इसी प्रकार (का पर्याय-विषयक कथन) मध्यमगुण काले (अनन्तप्रदेशी स्कन्धो का करना चाहिए ।)

५४४. एव नील-लोहित-हालिद्द-सुक्किल्ल-सुब्भिगध दुब्भिगध-तित्त-कडुय-कसाय-अबिल-महुर-रसपज्जवेहि य वत्तव्वया भाणियव्वा । नवर परमाणुपोग्गलस्स सुब्भिगधस्स दुब्भिगधो न भण्णति, दुब्भिगधस्स सुब्भिगधो न भण्णति, तित्तस्स अवसेसा ण भण्णति । एव कडुयादीण वि । सेस त चेव ।

[५४४] इसी प्रकार नील, रक्त, हारिद्र (पीत), शुक्ल (श्वेत). सुगन्ध, दुर्गन्ध, तिक्त (तीखा), कटु, काषाय, आम्ल (खट्टा), मधुर रस के पर्यायो से भी अनन्तप्रदेशी स्कन्धो की पर्याय सम्बन्धी वक्तव्यता कहनी चाहिए । विशेष यह है कि सुगन्ध वाले परमाणुपुद्गल मे दुर्गन्ध नही कहा जाता और दुर्गन्ध वाले परमाणुपुद्गल मे सुगन्ध नही कहा जाता । तिक्त (तीखे) रस वाले मे शेष रस का कथन नही करना चाहिए, कटु आदि रसो के विषय मे भी ऐसा ही समझना चाहिए । शेष सब बाते उसी तरह (पूर्ववत्) ही हैं ।

५४५ [१] जहण्णगुणकक्खडाणं अणतपएसियाण पुच्छा ।

गोयमा ! अणता ।

से केणट्ठेण ?

गोयमा ! जहण्णगुणकक्खडे अणतपएसिए जहण्णगुणकक्खडस्स अणतपदेसियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए छट्ठाणवडिते, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए चउट्ठाणवडिते, वण्ण-गध-रसेहिं छट्ठाणवडिते, कक्खडफासपज्जवेहिं तुल्ले, अवसेसेहिं सत्तफासपज्जवेहिं छट्ठाणवडिते ।

[५४५-१ प्र] भगवन् ! जघन्यगुणकर्कश अनन्तप्रदेशी स्कन्धो के कितने पर्याय कहे हैं ?

[५४५-१ उ] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय (कहे है ।)

[प्र] भगवन् ! किस आशय से आप ऐसा कहते है कि जघन्यगुणकर्कश अनन्तप्रदेशी स्कन्धो के अनन्त पर्याय है ?

[उ] गौतम ! एक जघन्यगुणकर्कश अनन्तप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे जघन्यगुणकर्कश अनन्तप्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है अवगाहना की अपेक्षा से चतु स्थानपतित है, स्थिति की दृष्टि से चतु स्थानपतित है एव वर्ण, गन्ध एव रस की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, कर्कशस्पर्श के पर्यायो की अपेक्षा से तुल्य है और अवशिष्ट सात स्पर्शो के पर्यायो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है ।

[२] एवं उक्कोसगुणकक्खडे वि ।

[५४५-२] इसी प्रकार उत्कृष्टगुणकर्कश (अनन्तप्रदेशी स्कन्धो के पर्यायो के विषय मे समझना चाहिए।)

[३] अजहण्णमणुक्कोसगुणकक्खडे वि एव चेव। नवर सट्ठाणे छट्ठाणवडिते।

[५४५-३] मध्यमगुणकर्कश (अनन्तप्रदेशी स्कन्धो का पर्यायविषयक कथन भी) इसी प्रकार (करना चाहिए।) विशेष यह है कि स्वस्थान मे षट्स्थानपतित है।

५४६ एव मउय-गरुय-लहुए वि भाणितव्वे।

[५४६] मृदु, गुरु (भारी) और लघु (हलके) स्पर्श वाले अनन्तप्रदेशी स्कन्ध के पर्याय-विषय मे भी इसी प्रकार कथन करना चाहिए।

५४७. [१] जहण्णगुणसीयाण भते ! परमाणुपोग्गलाण पुच्छा।

गोयमा ! अणता।

से केणट्ठेण ?

गोयमा ! जहण्णगुणसीते परमाणुपोग्गले जहण्णगुणसीतस्स परमाणुपोग्गलस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए तुल्ले, ठितीए चउट्ठाणवडिते, वण्ण-गध-रसेहिं छट्ठाण-वडिते, सीतफासपज्जवेहि य तुल्ले, उसिणफासो न भण्णति, णिद्ध-लुक्खफासपज्जवेहिं छट्ठाणवडिते।

[५४७-१ प्र] भगवन् ! जघन्यगुणशीत परमाणुपुद्गलो के कितने पर्याय कहे गए है ?

[५४८-१ उ] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय (कहे है।)

[प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जघन्यगुणशीत परमाणुपुद्गलो के अनन्त पर्याय है ?

[उ] गौतम ! एक जघन्यगुणशीत परमाणुपुद्गल, दूसरे जघन्यगुणशीत परमाणुपुद्गल से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशो की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना की दृष्टि से तुल्य है, स्थिति की अपेक्षा से चतु स्थानपतित है तथा वर्ण, गन्ध और रसो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, शीतस्पर्श के पर्यायो से तुल्य है। इसमे उष्णस्पर्श का कथन नही करना चाहिए। स्निग्ध और रूक्षस्पर्शो के पर्यायो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

[२] एव उक्कोगुणसीते वि।

[५४७-२] इसी प्रकार उत्कृष्टगुणशीत (परमाणुपुद्गलो) के पर्यायो के विषय मे कहना चाहिए।

[३] अजहण्णमणुक्कोसगुणसीते वि एव चेव। नवर सट्ठाणे छट्ठाणवडिते।

[५४७-३] मध्यमगुण शीत (परमाणुपुद्गलो) के (पर्यायो के सम्बन्ध मे भी) इसी प्रकार (कहना चाहिए।) विशेष यह है कि स्वस्थान मे षट्स्थानपतित (हीनाधिक) है।

५४८ [१] जहण्णगुणसीयाण दुपएसियाण पुच्छा।

गोयमा ! अणता।

से केणट्ठेण ?

गोयमा ! जहन्नगुणसीते दुपएसिए जहण्णगुणसीअस्स दुपएसियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिते—जइ हीणे पएसहीणे, अह अब्भहिए पएसमब्भतिए, ठिईए चउट्ठाणवडिए, वण्ण-गध-रसपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए, सीतफासपज्जवेहिं तुल्ले, उसिण-निद्ध-लुक्खफासपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए।

[५४८-१ प्र] भगवन् ! जघन्यगुणशीत द्विप्रदेशिक स्कन्धो के कितने पर्याय कहे गए है ?

[५४८-१उ] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय (कहे हैं।)

[प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जघन्यगुणशीत द्विप्रदेशी स्कन्धो के अनन्त पर्याय हैं ?

[उ] गौतम ! एक जघन्यगुण शीत द्विप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे जघन्यगुणशीत द्विप्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशो की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से कदाचित् हीन, कदाचित् तुल्य और कदाचित् अधिक होता है। यदि हीन हो तो एकप्रदेश हीन होता है, यदि अधिक हो तो एकप्रदेश अधिक होता है, स्थिति की अपेक्षा से चतु स्थानपतित है तथा वर्ण, गन्ध और रस के पर्यायो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है एव शीतस्पर्श के पर्यायो की अपेक्षा तुल्य है और उष्ण, स्निग्ध तथा रूक्ष स्पर्श के पर्यायो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

[२] एव उक्कोसगुणसीए वि।

[५४८-२] इसी प्रकार उत्कृष्टगुणशीत (द्विप्रदेशी स्कन्धो की पर्यायसम्बन्धी वक्तव्यता समझनी चाहिए।)

[३] अजहण्णमणुक्कोसगुणसीते वि एव चेव। नवर सट्ठाणे छट्ठाणवडिए।

[५४८-३] मध्यमगुणशीत (द्विप्रदेशी स्कन्धो) का पर्यायसम्बन्धी कथन भी इसी प्रकार समझना चाहिए।

५४९ एवं जाव दसपएसिए। नवर ओगाहणट्ठयाए पदेसपरिवड्ढी कायव्वा जाव दसपएसियस्स णव पएसा वड्ढिज्जंति।

[५४९] इसी प्रकार यावन् दशप्रदेशी स्कन्धो तक का (पर्याय-सम्बन्धी वक्तव्य समझ लेना चाहिए।) विशेषता यह है कि अवगाहना की अपेक्षा से पर्यायो की वृद्धि करनी चाहिए। (इस दृष्टि से) यावत् दशप्रदेशी स्कन्ध तक नौ प्रदेश बढते है।

५५० [१] जहण्णगुणसीयाण सखेज्जपएसियाण भते ! पुच्छा।

गोयमा ! अणता।

से केणट्ठेणं ?

गोयमा ! जहण्णगुणसीते सखेज्जपएसिए जहण्णगुणसीयस्स सखेज्जपएसियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए दुट्ठाणवडिए, ओगाहणट्ठयाए दुट्ठाणवडिते, ठितीए चउट्ठाणवडिते, वण्णाईहिं छट्ठाणवडिए, सीतफासपज्जवेहिं तुल्ले, उसिण-निद्ध-लुक्खेहिं छट्ठाणवडिए।

[५५०-१ प्र] भगवन् ! जघन्यगुणशीत सख्यातप्रदेशी स्कन्धो के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[५५०-१ उ] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय (कहे है ।)

[प्र] भगवन् ! किस कारण से आप ऐसा कहते है कि जघन्यगुणशीत सख्यातप्रदेशी स्कन्धो के अनन्त पर्याय हैं ?

[उ] गौतम ! जघन्यगुणशीत सख्यातप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे जघन्यगुणशीत सख्यातप्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशो की अपेक्षा से द्विस्थानपतित है, अवगाहना की अपेक्षा से द्विस्थानपतित है, स्थिति की दृष्टि से चतु स्थानपतित है, वर्णादि की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है तथा शीतस्पर्श के पर्यायो की अपेक्षा से तुल्य है और उष्ण, स्निग्ध एव रुक्ष स्पर्श की दृष्टि से षट्स्थानपतित है ।

[२] एव उक्कोसगुणसीए वि ।

[५५०-२] इसी प्रकार उत्कृष्टगुण शीत(सख्यातप्रदेशी स्कन्धो की भी पर्यायसम्बन्धी प्ररूपणा समझनी चाहिए ।)

[३] अजहण्णमणुक्कोसगुणसीए वि एव चेव । नवर सट्ठाणे छट्ठाणवडिए ।

[५५०-३] अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) गुण शीत सख्यातप्रदेशी स्कन्धो का पर्याय सम्बन्धी कथन भी ऐसा ही समझना चाहिए । विशेष यह कि वह स्वस्थान मे षट्स्थानपतित है ।

५५१ [१] जहण्णगुणसीताण असखेज्जपएसियाण पुच्छा ।

गोयमा ! अणता ।

से केणट्ठेण ?

गोयमा ! जहण्णगुणसीते असंखेज्जपएसिए जहण्णगुणसीयस्स असंखेज्जपएसियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए चउट्ठाणवडिते, वण्णादिपज्जवेहिं छट्ठाणवडिते, सीतफासपज्जवेहिं तुल्ले, उसिण-निद्ध-लुक्खफासपज्जवेहिं छट्ठाणवडिते ।

[५५१-१ प्र] भगवन् ! जघन्यगुणशीत असख्यातप्रदेशी स्कन्धो के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[५५१-१ उ] गौतम ! उनके अनन्त पर्याय (कहे हैं ।)

[प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जघन्यगुणशीत असख्यातप्रदेशी स्कन्धो के अनन्त पर्याय है ?

[उ] गौतम ! एक जघन्यगुणशीत असख्यातप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे जघन्यगुणशीत असख्यात-प्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशो की अपेक्षा से चतु स्थानपतित है, अवगाहना की दृष्टि से चतु स्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से चतु स्थानपतित है, वर्णादि के पर्यायो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, शीतस्पर्श के पर्यायो की अपेक्षा से तुल्य है और उष्ण, स्निग्ध एव रूक्ष स्पर्श के पर्यायो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है ।

[२] एव उक्कोसगुणसीते वि ।

[५५१-२] इसी प्रकार उत्कृष्टगुणशीत असख्यातप्रदेशी स्कन्धो की पर्याय-सम्बन्धी प्ररूपणा करनी चाहिए ।

[३] अजहण्णमणुक्कोसगुणसीते वि एव चेव । नवर सट्ठाणे छट्ठाणवडिते ।

[५५१-३] मध्यमगुणशीत असख्यातप्रदेशी स्कन्धो का पर्यायविपयक कथन भी इसी प्रकार समझना चाहिए । विशेष यह है कि वह स्वस्थान मे षट्स्थानपतित होता है ।

५५२. [१] जहण्णगुणसीताणं अणतपदेसियाण पुच्छा ।

गोयमा ! अणता ।

से केणट्ठेणं ?

गोयमा ! जहण्णगुणसीते अणतपदेसिए जहण्णगुणसीतस्स अणतपएसियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए छट्ठाणवडिते, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए चउट्ठाणवडिते वण्णादिपज्जवेहिं छट्ठाणवडिते, सीतफासपज्जवेहिं तुल्ले, अवसेसेहिं सत्तफासपज्जवेहिं छट्ठाणवडिते ।

[५५२-१ प्र] भगवन् ! जघन्यगुणशीत अनन्तप्रदेशी स्कन्धो के कितने पर्याय कहे गए है ?

[५५२-१ उ] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय (कहे है ।)

[प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जघन्यगुणशीत अनन्तप्रदेशी स्कन्धो के अनन्त पर्याय हैं ?

[उ] गौतम ! एक जघन्यगुणशीत अनन्तप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे जघन्यगुणशीत अनन्तप्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, अवगाहना की अपेक्षा से चतु स्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से चतु स्थानपतित है, वर्णादि के पर्यायो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, शीतस्पर्श के पर्यायो की अपेक्षा से तुल्य है और शेष सात स्पर्शो के पर्यायो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है ।

[२] एव उक्कोसगुणसीते वि ।

[५५२-२] इसी प्रकार उत्कृष्टगुणशीत अनन्तप्रदेशी स्कन्धो के पर्यायो के विषय मे कहना चाहिए ।

[३] अजहण्णमणुक्कोसगुणसीते वि एव चेव । नवर सट्ठाणे छट्ठाणवडिते ।

[५५२-३] मध्यमगुणशीत अनन्तप्रदेशी स्कन्धो की पर्याय-सम्बन्धी प्ररूपणा भी इसी प्रकार करनी चाहिए । विशेष यह है कि स्वस्थान मे षट्स्थानपतित है ।

५५३ एव उसिणे निद्धे लुक्खे जहा सीते । परमाणुपोग्गलस्स तहेव पडिवक्खो, सव्वेसिं न भण्णइ त्ति भाणितव्व ।

[५५३] जिस प्रकार [जघन्यादियुक्त] शीतस्पर्श-स्कन्धो के पर्यायो के विषय मे कहा गया

है, उसी प्रकार उष्ण, स्निग्ध और रूक्ष स्पर्शो [वाले उन-उन स्कन्धो के पर्यायो के विषय मे कहना चाहिए।) इसी प्रकार परमाणुद्गल मे इन सभी का प्रतिपक्ष नही कहा जाता, यह कहना चाहिए।

विवेचना—जघन्यादियुक्त वर्णादि-पुद्गलो की पर्याय-प्ररूपणा—प्रस्तुत सोलह सूत्रो (सू ५३८ से ५५३ तक) मे कृष्णादि वर्ण, गन्ध, रस, और स्पर्शों के परमाणुपुद्गलो, द्विप्रदेशी से सख्यात-असख्यात-अनन्त प्रदेशी स्कन्धो तक के पर्यायो की प्ररूपणा की गई है।

कृष्णादि वर्णों तथा गन्ध-रस-स्पर्शों के पर्याय—कृष्ण, नील आदि पाँच वर्णो, दो प्रकार के गन्धो, पाच प्रकार के रसो और आठ प्रकार के स्पर्शो के प्रत्येक के तरतमभाव की अपेक्षा से अनन्त-अनन्त विकल्प होते है। तदनुसार कृष्ण आदि अनन्त-अनन्त प्रकार के है।

जघन्यगुण उत्कृष्टगुण एव मध्यमगुण कृष्णादि वर्ण की व्याख्या—कृष्णवर्ण की सबसे कम मात्रा जिसमे पाई जाती है, वह पुद्गल **जघन्यगुण काला** कहलाता है। यहाँ गुणशब्द अश या मात्रा के अर्थ मे प्रयुक्त है। जघन्यगुण का अर्थ है—सबसे कम अश। दूसरे शब्दो मे यो कह सकते हैं कि जिस पुद्गल मे केवल एक डिग्री का कालापन हो—जिससे कम कालापन का सम्भव ही न हो, वह **जघन्यगुण काला** समझना चाहिए। जिसमे कालेपन के सबसे अधिक अश पाए जाएँ, वह उत्कृष्टगुण काला है। एक अश कालेपन से अधिक और सबसे अधिक (अन्तिम) कालेपन से एक अश कम तक का काला मध्यमगुणकाला कहलाता है। कृष्णवर्ण की तरह ही जघन्य-उत्कृष्ट-मध्यमगुणयुक्त नीलादि वर्णों, तथा गन्धो, रसो एव स्पर्शो के विषय मे समझना चाहिए।[1]

अवगाहना की अपेक्षा से द्विप्रदेशी स्कन्ध की हीनाधिकता—एक द्विप्रदेशी स्कन्ध दूसरे द्विप्रदेशी स्कन्ध से अवगाहना की अपेक्षा से यदि हीन हो तो एक-एक प्रदेश कम अवगाहना वाला हो सकता है और यदि अधिक हो तो एक प्रदेश अधिक अवगाहना वाला हो सकता है। तात्पर्य यह है कि द्विप्रदेशी स्कन्ध की अवगाहना मे एक प्रदेश से अधिक न्यूनाधिक अवगाहना का सम्भव नही है।

द्विप्रदेशी स्कन्ध से दशप्रदेशी स्कन्ध तक उत्तरोत्तर प्रदेशवृद्धि—इनकी पर्याय-वक्तव्यता द्विप्रदेशी स्कन्ध के समान है, किन्तु उनमे उत्तरोत्तर प्रदेशो की वृद्धि करनी चाहिए। अर्थात्—दशप्रदेशी स्कन्ध तक कमश नौ प्रदेशो की वृद्धि कहनी चाहिए।

जघन्यगुण कृष्ण सख्यातप्रदेशी स्कन्ध प्रदेश एव अवगाहना की दृष्टि से द्विस्थानपतित—प्रदेशो की अपेक्षा से वह द्विस्थानपतित होता है, अर्थात्—वह सख्यातभागहीन अथवा सख्यातगुणहीन या सख्यातभाग-अधिक अथवा सख्यातगुण-अधिक होता है। इसी प्रकार अवगाहना की दृष्टि से द्विस्थानपतित है।[2]

परस्पर विरोधी गन्ध, रस और स्पर्श का परमाणुपुद्गल मे अभाव—जिस परमाणुपुद्गल मे सुरभिगन्ध होती है, उनमे दुरभिगन्ध नही होती, और जिसमे दुरभिगन्ध होती है, उसमे सुरभिगन्ध नही होती, क्योकि परमाणु एक गन्ध वाला ही होता है। इसलिए जिस गन्ध का कथन किया जाए, वहाँ दूसरी गन्ध का अभाव कहना चाहिए। इसी प्रकार जहाँ एक रस का कथन हो, वहाँ दूसरे रसो का अभाव समझना चाहिए। अर्थात्—जहाँ तिक्त रस हो, वहाँ शेष कटु आदि रस नही होते, क्योकि

---

१ प्रज्ञापनासूत्र प्रमेयबोधिनी टीका भा २, पृ ८८५-८८६

२ प्रज्ञापनासूत्र; प्र बो टीका भा २, पृ ८८७ से ८९० तक

उनमे परस्पर विरोध है। इसी प्रकार जहाँ पुद्गल परमाणु मे शीतस्पर्श का कथन हो, वहाँ उष्णस्पर्श का कथन नही करना चाहिए, क्योकि ये दोनो स्पर्श परस्पर विरोधी है। इसी प्रकार अन्यान्य स्पर्शों के बारे मे समझ लेना चाहिए। जैसे—स्निग्ध और रूक्ष, मृदु और कर्कश, लघु और गुरु परस्पर विरोधी स्पर्श हैं। एक ही परमाणु मे ये परस्पर विरोधी स्पर्श भी नही रहते। अतएव परमाणु मे इनका उल्लेख नही करना चाहिए।[1]

जघन्यादि सामान्य पुद्गल स्कन्धो की विविध अपेक्षाओ से पर्यायप्ररूपणा—

५५४ [१] जहण्णपदेसियाण भते ! खधाण पुच्छा।

गोयमा ! अणता।

से केणट्ठेणं ?

गोयमा ! जहण्णपदेसिते खधे जहण्णपएसियस्स खधस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय मब्भहिते—जति हीणे पदेसहीणे, अह अब्भतिए पदेसमब्भतिए, ठितीए चउट्ठाणवडिते, वण्ण-गध-रस- उवरिल्लचउफासपज्जवेहिं छट्ठाणवडिते।

[५५४-१ प्र] भगवन् ! जघन्यप्रदेशी स्कन्धो के कितने पर्याय कहे गए है ?

[५५४-१ उ] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय (कहे हैं)।

[प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है (कि जघन्यप्रदेशी स्कन्धो के अनन्त पर्याय है) ?

[उ] गौतम ! एक जघन्यप्रदेशी स्कन्ध दूसरे जघन्यप्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशो की अपेक्षा से भी तुल्य है, अवगाहना की दृष्टि से कदाचित् हीन है, कदाचित् तुल्य हैं और कदाचित् अधिक है। यदि हीन हो तो एक प्रदेशहीन होता है, और यदि अधिक हो तो भी एक प्रदेश अधिक होता है। स्थिति की अपेक्षा से चतु स्थानपतित है और वर्ण, गन्ध, रस तथा ऊपर के चार स्पर्शो के पर्यायो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

[२] उक्कोसपएसियाण भते खधाण पुच्छा।

गोयमा ! अणता।

से केणट्ठेणं ?

गोयमा ! उक्कोसपएसिए खंधे उक्कोसपएसियस्स खधस्स दव्वट्ठयाए तुल्ल, पएसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए चउट्ठाणवडिते, वण्णादि-अट्ठफासपज्जवेहि य छट्ठाणवडिते।

[५५४-२ प्र] भगवन् उत्कृष्टप्रदेशी स्कन्धो के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[५५४-२ उ] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय (कहे है)।

[प्र] भगवन् ! किस अपेक्षा से आप ऐसा कहते हैं (कि उत्कृष्टप्रदेशी स्कन्धो के अनन्त पर्याय है) ?

[उ] गौतम ! एक उत्कृष्टप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे उत्कृष्टप्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से

१ प्रज्ञापनासूत्र प्र वो टीका भा २, पृ ८९५

तुल्य है, प्रदेशो की अपेक्षा से भी तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से चतु स्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से भी चतु स्थानपतित है, किन्तु वर्णादि तथा अष्टस्पर्शों के पर्यायो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

[३] अजहण्णमणुक्कोसपदेसियाण भते ! खधाण केवतिया पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा ! अणता।

से केणट्ठेण ?

गोयमा ! अजहण्णमणुक्कोसपदेसिए खधे अजहण्णमणुक्कोसपदेसियस्स खधस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए छट्ठाणवडिते, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए चउट्ठाणवडिते, वण्णादि-अट्ठफासपज्जवेहि य छट्ठाणवडिते।

[५५४-३ प्र] भगवन् ! अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) प्रदेशी स्कन्धो के कितने पर्याय कहे गए है ?

[५५४-३ उ] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय (कहे है)।

[प्र] भगवन् ! किस हेतु से ऐसा कहा जाता है (कि मध्यमप्रदेशी स्कन्धो के अनन्तपर्याय हैं) ?

[उ] गौतम ! एक मध्यमप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे मध्यमप्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, अवगाहना की दृष्टि से चतु स्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से चतु स्थानपतित और वर्णादि तथा अष्ट स्पर्शों के पर्यायो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

५५५. [१] जहण्णोगाहणगाण भते ! पोग्गलाण पुच्छा।

गोयमा ! अणता।

से केणट्ठेण ?

गोयमा ! जहण्णोगाहणए पोग्गले जहण्णोगाहणगस्स पोग्गलस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए छट्ठाणवडिते, ओगाहणट्ठयाए तुल्ले, ठितीए चउट्ठाणवडिते, वण्णादि-उवरिल्लफासेहि य छट्ठाणवडिते।

[५५५-१ प्र] भगवन् ! जघन्य अवगाहना वाले पुद्गलो के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[५५५-१ उ] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय (कहे है)।

[प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है (कि जघन्य अवगाहनावाले पुद्गलो के अनन्त पर्याय है) ?

[उ] 'गौतम ! एक जघन्य अवगाहना वाला पुद्गल दूसरे जघन्य अवगाहना वाले पुद्गल से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, अवगाहना की अपेक्षा से तुल्य है, स्थिति की अपेक्षा से चतु स्थानपतित है, तथा वर्णादि और ऊपर के स्पर्शों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

[२] उक्कोसोगाहणए वि एव चेव। नवर ठितीए तुल्ले।

[५५५-२] उत्कृष्ट अवगाहना वाले पुद्गल-पर्यायो के विषय मे इसी प्रकार कहना चाहिए। विशेष यह है कि स्थिति की अपेक्षा से तुल्य है।

[३] अजहण्णमणुक्कोसोगाहणगाण भंते ! पोग्गलाण पुच्छा।

गोयमा ! अणंता।

से केणट्ठेण ?

गोयमा ! अजहण्णमणुक्कोसोगाहणए पोग्गले अजहण्णमणुक्कोसोगाहणगस्स पोग्गलस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए छट्ठाणवडिते, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए चउट्ठाणवडिते, वण्णादि-अट्ठफासपज्जवेहिं छट्ठाणवडिते।

[५५५-३ प्र] भगवन् ! मध्यम अवगाहना वाले पुद्गलो के कितने पर्याय कहे गए है ?

[५५५-३ उ] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय (कहे हैं)।

[प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है (कि मध्यम अवगाहना वाले पुद्गलो के अनन्त पर्याय हैं) ?

[उ] गौतम ! एक मध्यम अवगाहना वाला पुद्गल, दूसरे मध्यम अवगाहना वाले पुद्गल से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, अवगाहना की अपेक्षा से चतु स्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से चतु स्थानपतित है और वर्णादि तथा अष्ट स्पर्शो के पर्यायो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

५५६ [१] जहण्णट्ठितीयाण भंते ! पोग्गलाण पुच्छा।

गोयमा ! अणंता।

से केणट्ठेण ?

गोयमा ! जहण्णठितीए पोग्गले जहण्णठितीयस्स पोग्गलस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए छट्ठाणवडिते, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए तुल्ले, वण्णादि-अट्ठफासपज्जवेहि य छट्ठाणवडिते।

[५५६-१ प्र] भगवन् ! जघन्य स्थिति वाले पुद्गलो के कितने पर्याय कहे है ?

[५५६-१ उ] गौतम ! (उनके) अनन्त पर्याय कहे है।

[प्र] भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जघन्य स्थिति वाले पुद्गलो के अनन्त पर्याय है ?

[उ] गौतम ! एक जघन्य स्थिति वाला पुद्गल, दूसरे जघन्य स्थिति वाले पुद्गल से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, अवगाहना की अपेक्षा से चतु-स्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से तुल्य है, और वर्णादि तथा अष्ट स्पर्शो के पर्यायो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

[२] एव उक्कोसठितीए वि।

[५५६-२] इसी प्रकार उत्कृष्ट स्थिति वाले (पुद्गलो के पर्यायो के विषय मे भी कहना चाहिए।)

[३] अजहण्णमणुक्कोसठितीए एव चेव । नवर ठितीए वि चतुट्ठाणवडिते ।

[५५६-३] अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) स्थिति वाले पुद्गलो की पर्यायसम्बन्धी वक्तव्यता भी इसी प्रकार कहनी चाहिए । विशेष यह है कि स्थिति की अपेक्षा से भी वह चतु स्थानपतित है ।

५५७. [१] जहण्णगुणकालयाण भते ! पोग्गलाण केवतिया पज्जवा पण्णत्ता ।

गोयमा ! अणता ।

से केणट्ठेण ?

गोयमा ! जहण्णगुणकालए पोग्गले जहण्णगुणकालयस्स पोग्गलस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पदेसट्ठयाए छट्ठाणवडिते, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिते, ठितीए चउट्ठाणवडिते, कालवण्ण-पज्जवेहि तुल्ले, अवसेसेहि वण्ण-गध-रस-फासपज्जवेहि य छट्ठाणवडिते, से एएणट्ठेण गोयमा ! एवं वुच्चति जहण्णगुणकालयाण पोग्गलाण अणता पज्जवा पण्णत्ता ।

[५५७-१ प्र] भगवन् ! जघन्यगुण काले पुद्गलो के कितने पर्याय कहे गए हैं ?

[५५७-१ उ] गौतम ! (उनके) अनन्तपर्याय (कहे है) ।

[प्र] भगवन् किस कारण से ऐसा कहा जाता है (कि जघन्यगुण काले पुद्गलो के अनन्त पर्याय है ?)

[उ] गौतम ! एक जघन्यगुण काला पुद्गल, दूसरे जघन्यगुण काले पुद्गल से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, अवगाहना की दृष्टि से चतु स्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से चतु स्थानपतित है, कृष्णवर्ण के पर्यायो की दृष्टि से तुल्य है, शेष वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्शो के पर्यायो की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है । हे गौतम ! इसी कारण से ऐसा कहा जाता है कि जघन्यगुण काले पुद्गलो के अनन्त पर्याय कहे है ।

[२] एव उक्कोसगुणकालए वि ।

[५५७-२] इसी प्रकार उत्कृष्टगुण काले पुद्गलो की पर्याय-सम्बन्धी वक्तव्यता समझनी चाहिए ।

[३] अजहण्णमणुक्कोसगुणकालए वि एव चेव । नवर सट्ठाणे छट्ठाणवडिते ।

[५५७-३] मध्यमगुण काले पुद्गलो के पर्यायो के विषय मे भी इसी प्रकार कहना चाहिए । वशेष यह है कि स्वस्थान मे षट्स्थानपतित है ।

५५८ एव जहा कालवण्णपज्जवाण वत्तव्वया भणिता तहा सेसाण वि वण्ण-गध-रस-फासपज्जवाण वत्तव्वया भाणितव्वा, जाव अजहण्णमणुक्कोसलुक्खे सट्ठाणे छट्ठाणवडिते । से त्त रूविअजीवपज्जवा । से त्त अजीवपज्जवा ।

॥ पण्णवणाए भगवईए पचम विसेसपय (पज्जवपय) समत्त ॥

[५५८] जिस प्रकार कृष्णवर्ण के पर्यायो के विषय मे वक्तव्यता कही है उसी प्रकार शेष वर्णो, गन्धो, रसो और स्पर्शो की पर्यायसम्बन्धी वक्तव्यता कहनी चाहिए, यावत् अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) गुण रूक्षस्पर्श स्वस्थान मे षट्स्थानपतित है, यहाँ तक कहना चाहिए ।

यह हुई रूपी-अजीव-पर्यायो की प्ररूपणा। और इस प्रकार अजीवपर्याय-सम्बन्धी निरूपण भी पूर्ण हुआ।

विवेचन—जघन्यादियुक्त सामान्य पुद्गल-स्कन्धो की विभिन्न अपेक्षाओ से पर्याय-प्ररूपणा— प्रस्तुत पाच सूत्रो (सू ५५४ से ५५८ तक) मे जघन्य-मध्यम-उत्कृष्ट प्रदेशी स्कन्धो, तथा जघन्यादि गुण विशिष्ट अवगाहना, स्थिति, तथा कृष्णादि वर्णो, गन्ध-रस-स्पर्शो के पर्यायो की विभिन्न अपेक्षाओ से प्ररूपणा की गई है।

मध्यमगुण काले पुद्गल स्वस्थान मे षट्स्थानपतित हीनाधिक—एक मध्यमगुण काले पुद्गल से दूसरे मध्यमगुण काले पुद्गल मे कृष्णवर्ण की अनन्तभागहीनता या अनन्तगुणहीनता, तथैव अनन्तभाग-अधिकता अथवा अनन्तगुण-अधिकता भी हो सकती है, क्योकि मध्यमगुण के अनन्त विकल्प है।

इसी तरह मध्यमगुण वाले सभी वर्णादि स्पर्शपर्यन्त स्वस्थान मे षट्स्थानपतित होते है।[1]

उत्कृष्ट अवगाहना वाले अनन्तप्रदेशी स्कध की स्थिति तुल्य क्यो?—उत्कृष्ट अवगाहना वाला, अनन्तप्रदेशी स्कध सर्वलोकव्यापी होता है वह या तो अचित्त महास्कध होता है अथवा केवली-समुद्घात की अवस्था मे कर्मस्कध हो सकता है। इन दोनो का काल दण्ड, कपाट, प्रतर और अन्तर-पूरण रूप चार समय का ही होता है। अतएव इसकी स्थिति समान कही गई है।

।। प्रज्ञापनासूत्र पचम विशेषपद (पर्यायपद) समाप्त ।।

---

१ प्रज्ञापनासूत्र प्रमेयबोधिनी टीका भा २, पृ ९२७

छट्ठं वक्कंतिपयं

छठा व्युत्क्रान्तिपद

प्राथमिक

* प्रज्ञापनासूत्र का यह छठा व्युत्क्रान्तिपद है ।

* प्रस्तुत पद का विषय नाना प्रकार के जीवो की 'व्युत्क्रान्ति'—अर्थात्—उस-उस गति मे उत्पत्ति और उस-उस गति मे से अन्यत्र उत्पत्ति से सम्बन्धित प्रश्नो की चर्चा करना है । सक्षेप मे, जीवो की गति और आगति से सम्बन्धित विचारणा इस पद मे की गई है ।

* यह विचारणा निम्नोक्त आठ द्वारो के माध्यम से प्रस्तुत पद मे की गई है—(१) **द्वादश द्वार** (उपपात और उद्वर्तना का विरहकाल), (२) **चतुर्विशतिद्वार**—(जीव के प्रभेदो के उपपात और उद्वर्तन का विरहकाल), (३) **सान्तरद्वार** (जीवप्रभेदो का सान्तर एव निरन्तर उपपात और उद्वर्तन-सम्बन्धी विचार), (४) **एकसमयद्वार** (एक समय मे कौन से कितने जीवो का उपपात और उद्वर्तन होता है, यह विचार), (५) **कुत द्वार**—(जीव उन-उन पर्यायो मेक हाँ-कहाँ से मरकर उत्पन्न होता है, इसकी प्ररूपणा), (६) **उद्वर्तनाद्वार**—(जीव वर्तमान भव से मर कर किस-किस भव मे जाता है, इसकी विचारणा), (७) **पारभविकायुष्यद्वार**—आगामी नये भव का आयुष्य जीव वर्तमान भव मे कब बाधता है ?, इसका चिन्तन, और (८) **आकर्ष द्वार**—(आयुष्यबन्ध के ६ प्रकार, कितने आकर्षो मे जीव जाति आदि नाम विशिष्ट आयुकर्म बाधता है ? तथा न्यूनाधिक आकर्षो वाले जीवो के अल्पबहुत्व का विचार) ।[1]

* **प्रथम द्वार** का नाम 'बारस' (द्वादश) इसलिए रखा गया है कि इसमे नारक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव, इन चारो गतियो के जीवो का उपपातविरह (नरकादि जीव उस-उस रूप मे उत्पन्न होते रहते है, उनमे बीच मे उत्पत्तिशून्य) काल तथा उद्वर्तनाविरह (नरकादि जीव मरते रहते हैं, उनमे बीच मे मरणशून्य) काल जघन्य एक समय और उत्कृष्ट १२ मुहूर्त्त का है ।

* **द्वितीय द्वार** का नाम 'चउवीसा' (चतुर्विंशति) इसलिए रखा गया है कि नरकादि गतियो के प्रभेदो की दृष्टि से प्रथम नरक मे उपपातविरहकाल और उद्वर्तनाविरहकाल जघन्य एक

---

१ (क) पण्णवणासुत्त (मूलपाठ-टिप्पणयुक्त) भा १, पृ १६३
(ख) प्रज्ञापनासूत्र म वृत्ति, पत्राक २०५
(ग) पण्णवणासुत्त भा २, छठे पद की प्रस्तावना, पृ ६७

समय और उत्कृष्ट २४ मुहूर्त्त है। यद्यपि चतुर्गतिक जीवो के प्रभेदो मे सबका उपपातविरह काल और उद्वर्त्तनाविरहकाल २४ मुहूर्त्त का नही है, किन्तु प्रथम रत्नप्रभा नरक के उपपात एव उद्वर्तन के विरह का काल चोवीस ही मुहूर्त्त है, इस दृष्टि से प्रारम्भ का पद पकड कर इस द्वार का नाम 'चौबीस' रखा गया है।

* **तृतीय सान्तर द्वार**—उन-उन जीवो के प्रभेदो मे जीवो का उपपात और उद्वर्तन निरन्तर होता रहता है या उसमे बीच मे व्यवधान (अन्तर) भी आ जाता है? इसका स्पष्टीकरण अनेकान्त दृष्टि से इस द्वार मे किया गया है कि पृथ्वीकायादि एकेन्द्रियो को छोडकर शेष सभी जीवो का निरन्तर भी उत्पाद एव उद्वर्तन होता रहता है और सान्तर भी। यद्यपि षट्खण्डागम के अन्तरानुगम-प्रकरण मे इसका विचार किया गया है, परन्तु वहाँ इस दृष्टि से 'अन्तर' का विचार किया गया है कि एक जीव उस-उस गति आदि मे भ्रमण करके उसी गति मे पुन कब आता है? तथा अनेक जीवो की अपेक्षा से अन्तर है या नही? तथा नाना जीवो की अपेक्षा से नरक आदि मे नारक जीव आदि कितने काल तक रह सकते है? इस प्रकार का विचार किया गया है।[1]

* **चौथे द्वार** मे यह बताया गया है कि एक समय मे उस-उस गति के जीवो के प्रभेदो मे कितने जीवो का उपपात और उद्वर्तन होता है? इस सम्बन्ध मे वनस्पतिकाय तथा पृथ्वीकायादि एकेन्द्रियो को छोडकर शेष समस्त जीवो मे एक समय मे जघन्य एक, दो या तीन तथा उत्कृष्ट सख्यात अथवा असख्यात जीवो की उत्पत्ति तथा उद्वर्तना का निरूपण है। वनस्पतिकायिको मे स्वस्थान मे निरन्तर अनन्त तथा परस्थान मे निरन्तर असख्यात का तथा पृथ्वीकायिकादि मे निरन्तर असख्यात का विधान है।[2]

* **पाँचवें द्वार** मे जीवो की आगति का वर्णन है। चारो गतियो के जीवो के प्रभेदो मे किन-किन जीवो मे से मर कर आते है? अर्थात्—किस जीव मे मर कर कहाँ-कहाँ उत्पन्न होने की योग्यता है? इसका निर्णय प्रस्तुत द्वार मे किया गया है।

* **छठे द्वार** मे उद्वर्तना अर्थात्—जीवो के निकलने का वर्णन है। अर्थात्—कौन-से जीव मर कर कहाँ-कहाँ (किस-किस गति एव योनि मे) जाते है? मर कर कहाँ उत्पन्न होते है? इसका निर्णय इस द्वार मे प्रस्तुत किया गया है। यद्यपि पाँचवे द्वार को उलटा करके पढे तो छठे द्वार का विषय स्पष्ट हो जाता है, क्योकि पाँचवे मे बताया गया है—जीव कहाँ से आते है? उस पर से ही स्पष्ट हो जाता है कि जीव मर कर कहाँ जाते हैं? तथापि स्पष्ट रूप से समझाने के लिए इस छठे द्वार का उपक्रम किया गया है।

* **सप्तम द्वार** मे बताया गया है कि जीव पर भव का अर्थात्—आगामी भव का आयुष्य कब बाधता है? अर्थात्—किस जीव की वर्तमान आयु का कितना भाग शेष रहने या कितना भाग बीतने पर वह आगामी भव का आयुष्य बाधता है? नारक और देव तथा असख्यातवर्षायुष्क (मनुष्य-तिर्यञ्च) आगामी आयुष्यबन्ध ६ मास पूर्व ही कर लेते हैं, जबकि शेष समस्त जीव

---

१ षट्खण्डागम पुस्तक ७, पृ १८७, ४६२, पुस्तक ५, अन्तरानुगमप्रकरण पृ १

२ षट्खण्डागम पु ६, पृ ४१८ से गति-आगति की चर्चा

(मनुष्यो मे चरमशरीरी एव उत्तमपुरुष को छोडकर) सोपक्रम एव निरुपक्रम, दोनो ही प्रकार का आयुर्बन्ध करते है। निरुपक्रमी जीव आयु का तृतीय भाग शेष रहते और सोपक्रमी वर्त्तमान आयु का त्रिभाग, अथवा त्रिभाग का त्रिभाग या त्रिभाग के त्रिभाग का त्रिभाग शेष रहते आगामी भव का आयुष्य बाधते है। इस प्रकार परभविक आयुष्यवन्ध की प्ररूपणा की गई है।

※ **अष्टमद्वार** मे जातिनामनिधत्तायु गतिनामनिधत्तायु, स्थितिनामनिधत्तायु, अवगाहनानाम-निधत्तायु, प्रदेशनामनिधत्तायु और अनुभाव-नामनिधत्तायु, यो आयुवन्ध के ६ प्रकार वताकर यह स्पष्ट किया गया है कि जातिनामादि विशिष्ट आयुवन्ध कौन जीव कितने-कितने आकर्ष से करता है ? जातिनामनिधत्तायु आदि से युक्त आयुवन्ध सामान्य जीव तथा नैरयिकादि वैमानिकपर्यन्त जीव जघन्य एक, दो, तीन अथवा उत्कृष्ट आठ आकर्षो से करते है, यह प्ररूपणा की गई है। अन्त मे, एक से आठ आकर्षो से आयुवन्ध करने वालो के अल्पवहुत्व की चर्चा की गई है।[1]

---

१ (क) पण्णवणासुत्त भा २, छठे पद की प्रस्तावना—पृ ६७ से ७४ तक

(ख) प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक २०५

(ग) प्रज्ञापना प्रमेयवोधिनी टीका भा २, पृ ९२९ से ९३१ तक

छट्ठं वक्कंतिपयं

छठा व्युत्क्रान्तिपद

व्युत्क्रान्तिपद के आठ द्वार

५५९ बारस १, चउवीसाइ २, सअतरं ३, एगसमय ४, कत्तो य ५ ।
उव्वट्टण ६, परभवियाउय ७, च अट्ठेव आगरिसा ८ ॥१८२॥

[५५९ गाथार्थ—] १ द्वादश (बारह), २ चतुर्विंशति (चौबीस), ३ सान्तर (अन्तर-सहित), ४ एक समय, ५ कहाँ से ? ६ उद्वर्त्तना, ७ परभव-सम्बन्धी आयुष्य और ८ आकर्ष, ये आठ द्वार (इस व्युत्क्रान्तिपद मे) है ।

विवेचन—व्युत्क्रान्तिपद के आठ द्वार—प्रस्तुत सूत्र मे एक सग्रहणीगाथा के द्वारा व्युत्क्रान्ति-पद के ८ द्वारो का उल्लेख किया गया है ।[1]

प्रथम द्वादशद्वार : नरकादि गतियो मे उपपात और उद्वर्तना का विरहकाल-निरूपण—

५६०. निरयगती ण भते ! केवतिय काल विरहिया उववाएण पण्णत्ता ?
गोयमा ! जहण्णेणं एग समय, उक्कोसेण बारस मुहुत्ता ।

[५६० प्र] भगवन् ! नरकगति कितने काल तक उपपात से विरहित कही गई है ?

[५६० उ] गौतम ! (वह) जघन्य (कम से कम) एक समय तक और उत्कृष्ट (अधिक से अधिक) बारह मुहूर्त्त तक (उपपात से विरहित रहती है ।)

५६१. तिरियगती ण भते ! केवतिय काल विरहिया उववाएण पण्णत्ता ?
गोयमा ! जहण्णेण एग समय, उक्कोसेण बारस मुहुत्ता ।

[५६१ प्र] भगवन् ! तिर्यञ्चगति कितने काल तक उपपात से विरहित कही गई है ?

[५६१ उ] गौतम ! जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट बारह मुहूर्त्त तक (उपपात से विरहित रहती है ।)

५६२ मणुयगती ण भते ! केवइय काल विरहिया उववाएण पण्णत्ता ?
गोयमा ! जहण्णेण एग समय, उक्कोसेण बारस मुहुत्ता ।

[५६२ प्र] भगवन् ! मनुष्यगति कितने काल तक उपपात से विरहित कही गई है ?

[५६२ उ] गौतम ! जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट बारह मुहूर्त्त तक (उपपात से विरहित रहती है ।)

---

१ प्रज्ञापनासूत्र म वृत्ति, पत्राक २०५

५६३ देवगती ण भंते ! केवतियं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं बारस मुहुत्ता ।

[५६३ प्र] भगवन् ! देवगति कितने काल तक उपपात से विरहित कही गई है ?

[५६३ उ] गौतम ! (देवगति का उपपातविरहकाल) जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट बारह मुहूर्त्त तक का है ।

५६४ सिद्धगती णं भंते ! केवतियं कालं विरहिता सिज्झणयाए पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं छम्मासा ।

[५६४ प्र] भगवन् ! सिद्धगति कितने काल तक सिद्धि से रहित कही गई है ?

[५६४ उ] गौतम ! (सिद्धगति का सिद्धिविरहित काल) जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट छह महीनों तक का है ।

५६५ निरयगती णं भंते ! केवतियं कालं विरहिता उव्वट्टणयाए पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं बारस मुहुत्ता ।

[५६५ प्र] भगवन् ! नरकगति कितने काल तक उद्वर्त्तना से विरहित कही गई है ?

[५६५ उ] गौतम ! जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट बारह मुहूर्त्त तक (उद्वर्त्तना से विरहित रहती है ।)

५६६. तिरियगती णं भंते ! केवतियं कालं विरहिता उव्वट्टणयाए पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं बारस मुहुत्ता ।

[५६६ प्र] भगवन् ! तिर्यञ्चगति कितने काल तक उद्वर्त्तना से विरहित कही गई है ?

[५६६ उ] गौतम ! जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट बारह मुहूर्त्त तक (उद्ववर्त्तना-विरहित रहती है ।)

५६७ मणुयगती णं भंते ! केवतियं कालं विरहिया उव्वट्टणाए पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं बारस मुहुत्ता ।

[५६७ प्र] भगवन् ! मनुष्यगति कितने काल तक उद्वर्त्तना से विरहित कही गई है ?

[५६७ उ] गौतम ! जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट बारह मुहूर्त्त तक (उद्वर्त्तना से विरहित कही गई है ।)

५६८. देवगती णं भंते ! केवतियं कालं विरहिता उव्वट्टणाए पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं बारस मुहुत्ता । दारं १ ॥

[५६८ प्र] भगवन् ! देवगति कितने काल तक उद्वर्त्तना से विरहित कही गई है ?

[५६८ उ] गौतम ! जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट बारह मुहूर्त्त तक (उद्वर्त्तना से विरहित रहती है ।) प्रथम द्वार ॥ १ ॥

विवेचन—प्रथम द्वादश (बारस=बारह) द्वार : चार गतियो के उपपात और उद्वर्त्तना का विरहकाल-निरूपण—प्रस्तुत नौ सूत्रो (सू ५६० से ५६८ तक) मे नरकादि चार गतियो और पाचवी सिद्धगति के जघन्य-उत्कृष्ट उपपातविरहकाल का तथा उन के उद्वर्त्तनाविरहकाल का निरूपण किया गया है।

निरयगति आदि चारो गतियो के लिए एकवचनप्रयोग क्यो ? निरयगति अर्थात्—नरकगति नामकर्म के उदय से उत्पन्न होने वाले जीव का औदयिक भाव। इसी प्रकार तिर्यञ्चादि-गति के विषय मे समझना चाहिए। वह औदयिकभाव सामान्य की अपेक्षा से सभी गतियो मे अपना-अपना एक है। नरकगति का औदयिकभाव सातो पृथ्वियो मे व्यापक है, इसलिए नरकगति आदि चारो गतियो मे प्रत्येक मे एकवचन का प्रयोग किया गया है।

उपपात और उसका विरहकाल—किसी अन्य गति से मर कर नारक, तिर्यञ्च, मनुष्य, देव या सिद्ध के रूप मे उत्पन्न होना उपपात कहलाता है। नरकगति मे उपपात के विरहकाल का अर्थ है—जितने समय तक किसी भी नये नारक का जन्म नही होता, दूसरे शब्दो मे—नरकगति नये नारक के जन्म से रहित जितने काल तक होती है, वह नरकगति मे उपपात-विरहकाल है। इसी प्रकार अन्य गतियो मे उपपातविरहकाल का अर्थ समझ लेना चाहिए। नरकादि गतियाँ कम से कम एक समय और अधिक से अधिक १२ मुहूर्त्त तक उपपात से रहित होती है। बारह मुहूर्त्त के बाद कोई न कोई जीव नरकादि गतियो मे उत्पन्न होता ही है। सिद्धगति का उपपातविरहकाल उत्कृष्टत छह मास का बताया है, उसका कारण यह है कि एक जीव के सिद्ध होने के पश्चात् सभव है कोई जीव अधिक से अधिक छह मास तक सिद्ध न हो। छह मास के अनन्तर अवश्य ही कोई न कोई सिद्ध (मुक्त) होता है।

चौबीस मुहूर्त्त-प्रमाण उपपातविरह क्यो नहीं ?—आगे कहा जाएगा कि उपपातविरह-काल चौबीस मुहूर्त्त का है, किन्तु यहाँ जो बारह मुहूर्त्त का उपपातविरहकाल बताया है, वह सामान्य-रूप से नरकगति का उपपातविरहकाल है, किन्तु जब रत्नप्रभा आदि एक-एक नरकपृथ्वी के उपपात-विरहकाल की विवक्षा की जाती है, तब वह चौबीस मुहूर्त्त का ही होता है। इसी प्रकार अन्य गतियो के विषय मे समझ लेना चाहिए।[1]

उद्वर्त्तना और उसका विरहकाल—नरकादि किसी गति से निकलना उद्वर्त्तना है, प्रश्न का आशय यह है कि ऐसा कितना समय है, जबकि कोई भी जीव नरकादि गति से न निकले ? यह उद्वर्त्तनाविरहित काल कहलाता है। उद्वर्त्तना-विरहकाल चारो गतियो का उत्कृष्टत १२ मुहूर्त्त का है। सिद्धगति मे उद्वर्त्तना नही होती, क्योकि सिद्धगति मे गया हुआ जीव फिर कभी वहाँ से निकलता नही है। इसलिए सिद्धगति मे उद्वर्त्तना नही होती। अतएव वहाँ उद्वर्त्तना का विरहकाल भी नही है। वहाँ तो सदैव उद्वर्त्तनाविरह है, क्योकि सिद्धपर्याय सादि होने पर भी अनन्त (अन्तरहित) है, सिद्ध जीव सदाकाल सिद्ध ही रहते है।[2]

---

१ (क) प्रज्ञापनासूत्र म वृत्ति, पत्राक २०५, (ख) प्रज्ञापना प्र बो टीका भा २, पृ ९३५ से ९३७

२ (क) प्रज्ञापना म वृत्ति पत्राक २०५, (ख) प्रज्ञापना प्र बो टीका भा २, पृ ८३७

५६३ देवगती णं भंते ! केवतियं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता ?
गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं बारस मुहुत्ता ।

[५६३ प्र] भगवन् ! देवगति कितने काल तक उपपात से विरहित कही गई है ?

[५६३ उ] गौतम ! (देवगति का उपपातविरहकाल) जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट बारह मुहूर्त्त तक का है ।

५६४ सिद्धगती णं भंते ! केवतियं कालं विरहिता सिज्झणयाए पण्णत्ता ?
गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं छम्मासा ।

[५६४ प्र] भगवन् ! सिद्धगति कितने काल तक सिद्धि से रहित कही गई है ?

[५६४ उ] गौतम ! (सिद्धगति का सिद्धिविरहित काल) जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट छह महीनों तक का है ।

५६५ निरयगती णं भंते ! केवतियं कालं विरहिता उव्वट्टणयाए पण्णत्ता ?
गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं बारस मुहुत्ता ।

[५६५ प्र] भगवन् ! नरकगति कितने काल तक उद्वर्त्तना से विरहित कही गई है ?

[५६५ उ] गौतम ! जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट बारह मुहूर्त्त तक (उद्वर्त्तना से विरहित रहती है ।)

५६६. तिरियगती णं भंते ! केवतियं कालं विरहिता उव्वट्टणयाए पण्णत्ता ?
गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं बारस मुहुत्ता ।

[५६६ प्र] भगवन् ! तिर्यञ्चगति कितने काल तक उद्वर्त्तना से विरहित कही गई है ?

[५६६ उ] गौतम ! जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट बारह मुहूर्त्त तक (उद्वर्त्तना-विरहित रहती है ।)

५६७ मणुयगती णं भंते ! केवतियं कालं विरहिया उव्वट्टणाए पण्णत्ता ?
गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं बारस मुहुत्ता ।

[५६७ प्र] भगवन् ! मनुष्यगति कितने काल तक उद्वर्त्तना से विरहित कही गई है ?

[५६७ उ] गौतम ! जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट बारह मुहूर्त्त तक (उद्वर्त्तना से विरहित कही गई है ।)

५६८. देवगती णं भंते ! केवतियं कालं विरहिता उव्वट्टणाए पण्णत्ता ?
गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं बारस मुहुत्ता । दारं १ ।।

[५६८ प्र] भगवन् ! देवगति कितने काल तक उद्वर्त्तना से विरहित कही गई है ?

[५६८ उ] गौतम ! जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट बारह मुहूर्त्त तक (उद्वर्त्तना से विरहित रहती है ।) प्रथम द्वार ।। १ ।।

विवेचन—प्रथम द्वादश (बारस=बारह) द्वार . चार गतियो के उपपात और उद्वर्त्तना का विरहकाल-निरूपण—प्रस्तुत नौ सूत्रो (सू ५६० से ५६८ तक) मे नरकादि चार गतियो और पाचवी सिद्धगति के जघन्य-उत्कृष्ट उपपातविरहकाल का तथा उन के उद्वर्त्तनाविरहकाल का निरूपण किया गया है।

निरयगति आदि चारो गतियो के लिए एकवचनप्रयोग क्यो? निरयगति अर्थात्—नरकगति नामकर्म के उदय से उत्पन्न होने वाले जीव का औदयिक भाव। इसी प्रकार तिर्यञ्चादि-गति के विषय मे समझना चाहिए। वह औदयिकभाव सामान्य की अपेक्षा से सभी गतियो मे अपना-अपना एक है। नरकगति का औदयिकभाव सातो पृथ्वियो मे व्यापक है, इसलिए नरकगति आदि चारो गतियो मे प्रत्येक मे एकवचन का प्रयोग किया गया है।

उपपात और उसका विरहकाल—किसी अन्य गति से मर कर नारक, तिर्यञ्च, मनुष्य, देव या सिद्ध के रूप मे उत्पन्न होना उपपात कहलाता है। नरकगति मे उपपात के विरहकाल का अर्थ है—जितने समय तक किसी भी नये नारक का जन्म नही होता, दूसरे शब्दो मे—नरकगति नये नारक के जन्म से रहित जितने काल तक होती है, वह नरकगति मे उपपात-विरहकाल है। इसी प्रकार अन्य गतियो मे उपपातविरहकाल का अर्थ समझ लेना चाहिए। नरकादि गतियाँ कम से कम एक समय और अधिक से अधिक १२ मुहूर्त्त तक उपपात से रहित होती है। बारह मुहूर्त्त के बाद कोई न कोई जीव नरकादि गतियो मे उत्पन्न होता ही है। सिद्धगति का उपपातविरहकाल उत्कृष्टत छह मास का बताया है, उसका कारण यह है कि एक जीव के सिद्ध होने के पश्चात् सभव है कोई जीव अधिक से अधिक छह मास तक सिद्ध न हो। छह मास के अनन्तर अवश्य ही कोई न कोई सिद्ध (मुक्त) होता है।

चौबीस मुहूर्त्त-प्रमाण उपपातविरह क्यो नहीं?—आगे कहा जाएगा कि उपपातविरह-काल चौबीस मुहूर्त्त का है, किन्तु यहाँ जो बारह मुहूर्त्त का उपपातविरहकाल बताया है, वह सामान्य-रूप से नरकगति का उपपातविरहकाल है, किन्तु जब रत्नप्रभा आदि एक-एक नरकपृथ्वी के उपपात-विरहकाल की विवक्षा की जाती है, तब वह चौबीस मुहूर्त्त का ही होता है। इसी प्रकार अन्य गतियो के विषय मे समझ लेना चाहिए।[1]

उद्वर्त्तना और उसका विरहकाल—नरकादि किसी गति से निकलना उद्वर्त्तना है, प्रश्न का आशय यह है कि ऐसा कितना समय है, जबकि कोई भी जीव नरकादि गति से न निकले? यह उद्वर्त्तनाविरहित काल कहलाता है। उद्वर्त्तना-विरहकाल चारो गतियो का उत्कृष्टत १२ मुहूर्त्त का है। सिद्धगति मे उद्वर्त्तना नही होती, क्योकि सिद्धगति मे गया हुआ जीव फिर कभी वहाँ से निकलता नही है। इसलिए सिद्धगति मे उद्वर्त्तना नही होती। अतएव वहाँ उद्वर्त्तना का विरहकाल भी नही है। वहाँ तो सदैव उद्वर्त्तनाविरह है, क्योकि सिद्धपर्याय सादि होने पर भी अनन्त (अन्तरहित) है, सिद्ध जीव सदाकाल सिद्ध ही रहते है।[2]

---

१ (क) प्रज्ञापनासूत्र म वृत्ति, पत्राक २०५, (ख) प्रज्ञापना प्र बो टीका भा २, पृ ९३५ से ९३७

२ (क) प्रज्ञापना म वृत्ति पत्राक २०५, (ख) प्रज्ञापना प्र बो टीका भा २, पृ ८३७

५६३ देवगती णं भंते ! केवतियं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं बारस मुहुत्ता ।

[५६३ प्र.] भगवन् ! देवगति कितने काल तक उपपात से विरहित कही गई है ?

[५६३ उ.] गौतम ! (देवगति का उपपातविरहकाल) जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट बारह मुहूर्त्त तक का है ।

५६४ सिद्धगती णं भंते ! केवतियं कालं विरहिता सिज्झणयाए पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं छम्मासा ।

[५६४ प्र.] भगवन् ! सिद्धगति कितने काल तक सिद्धि से रहित कही गई है ?

[५६४ उ.] गौतम ! (सिद्धगति का सिद्धिविरहित काल) जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट छह महीनों तक का है ।

५६५ निरयगती णं भंते ! केवतियं कालं विरहिता उव्वट्टणयाए पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं बारस मुहुत्ता ।

[५६५ प्र.] भगवन् ! नरकगति कितने काल तक उद्वर्त्तना से विरहित कही गई है ?

[५६५ उ.] गौतम ! जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट बारह मुहूर्त्त तक (उद्वर्त्तना से विरहित रहती है ।)

५६६ तिरियगती णं भंते ! केवतियं कालं विरहिता उव्वट्टणयाए पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं बारस मुहुत्ता ।

[५६६ प्र.] भगवन् ! तिर्यञ्चगति कितने काल तक उद्वर्त्तना से विरहित कही गई है ?

[५६६ उ.] गौतम ! जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट बारह मुहूर्त्त तक (उद्ववर्त्तना-विरहित रहती है ।)

५६७ मणुयगती णं भंते ! केवतियं कालं विरहिया उव्वट्टणाए पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं बारस मुहुत्ता ।

[५६७ प्र.] भगवन् ! मनुष्यगति कितने काल तक उद्वर्त्तना से विरहित कही गई है ?

[५६७ उ.] गौतम ! जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट बारह मुहूर्त्त तक (उद्वर्त्तना से विरहित कही गई है ।)

५६८ देवगती णं भंते ! केवतियं कालं विरहिता उव्वट्टणाए पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं बारस मुहुत्ता । दारं १ ॥

[५६८ प्र.] भगवन् ! देवगति कितने काल तक उद्वर्त्तना से विरहित कही गई है ?

[५६८ उ.] गौतम ! जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट बारह मुहूर्त्त तक (उद्वर्त्तना से विरहित रहती है ।) प्रथम द्वार ॥ १ ॥

[५७३ उ] गौतम ! जघन्यत एक समय तक और उत्कृष्टत दो मास तक (उपपात से विरहित होते है ।)

५७४ तमापुढविनेरइया ण भते ! केवतिय काल विरहिया उववाएण पण्णत्ता ?
गोयमा ! जहण्णेण एग समय, उक्कोसेण चत्तारि मासा ।

[५७४ प्र] भगवन् ! तम प्रभापृथ्वी के नारक कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?

[५७४ उ] गौतम ! (वे) जघन्यत एक समय तक और उत्कृष्टत चार मास तक (उपपात-विरहित रहते है ।)

५७५ अधेसत्तमापुढविनेरइया ण भते ! केवतिय काल विरहिया उववाएण पण्णत्ता ?
गोयमा ! जहण्णेण एग समय, उक्कोसेण छम्मासा ।

[५७५ प्र] भगवन् ! सबसे नीची तमस्तमा नामक सप्तम पृथ्वी के नैरयिक कितने काल तक उपपात से रहित कहे गए है ?

[५७५ उ] गौतम ! वे एक समय तक और उत्कृष्ट छह मास तक (उपपात से विरहित रहते है ।)

५७६ असुरकुमारा ण भते ! केवतिय काल विरहिया उववाएण पण्णत्ता ?
गोयमा ! जहण्णेणं एग समय, उक्कोसेण चउव्वीस मुहुत्ता ।

[८७६ प्र] भगवन् ! असुरकुमार कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए है ?
[५७६ उ] गौतम ! (वे) जघन्यत एक समय तक और उत्कृष्टत चौबीस मुहूर्त्त तक (उपपातविरहित रहते है ।)

५७७ णागकुमारा ण भते ! केवतिय काल विरहिया उववाएण पण्णत्ता ?
गोयमा ! जहण्णेण एग समय, उक्कोसेण चउव्वीस मुहुत्ता ।

[५७७ प्र] भगवन् ! नागकुमार कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?
[५७७ उ] गौतम ! (उनका उपपातविरहकाल) जघन्य एक समय का और उत्कृष्ट चौबीस मुहूर्त्त का है ।

५७८ एव सुवण्णकुमाराण विज्जुकुमाराण अग्गिकुमाराणं दीवकुमाराण उदहिकुमाराण दिसाकुमाराण वाउकुमाराण थणियकुमाराण य पत्तेय पत्तेय जहण्णेणं एग समय, उक्कोसेण चउव्वीस मुहुत्ता ।

[५७८] इसी प्रकार सुपर्ण (सुवर्ण) कुमार, विद्युत्कुमार, अग्निकुमार, द्वीपकुमार, उदधिकुमार, दिशाकुमार, वायुकुमार और स्तनितकुमार देवो का प्रत्येक का उपपातविरहकाल एक समय का तथा उत्कृष्ट चौवीस मुहूर्त्त का है ।

द्वितीय चतुर्विंशतिद्वार : नैरयिको से अनुत्तरौपपातिको तक के उपपात और उद्वर्तना के विरहकाल की प्ररूपणा—

५६९ रयणप्पभापुढविनेरइया ण भंते ! केवतिय काल विरहिया उववाएण पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेण एग समय, उक्कोसेण चउव्वीस मुहुत्ता ।

[५६९ प्र] भगवन् ! रत्नप्रभा-पृथ्वी के नैरयिक कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए है ?

[५६९ उ] गौतम ! (उनका उपपातविरहकाल) जघन्य एक समय का, उत्कृष्ट चौबीस मुहूर्त्त तक का (कहा गया है ।)

५७० सक्करप्पभापुढविनेरइया ण भंते ! केवतिय काल विरहिया उववाएण पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेण एग समय, उक्कोसेण सत्त रातिंदियाणि ।

[५७० प्र] भगवन् ! शर्कराप्रभापृथ्वी के नारक कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?

[५७० उ] गौतम ! (वे) जघन्य एक समय तक और उत्कृष्टत सात रात्रि-दिन तक (उपपात से विरहित रहते है ।)

५७१ वालुयप्पभापुढविनेरइया ण भंते ! केवतिय काल विरहिया उववाएण पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेण एग समय, उक्कोसेणं अद्धमास ।

[५७१ प्र] भगवन् ! वालुकाप्रभापृथ्वी के नारक कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?

[५७१ उ] गौतम ! (वे) जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट अर्द्धमास तक (उपपात से विरहित रहते हैं ।)

५७२. पकप्पभापुढविनेरइया ण भंते ! केवतिय काल विरहिया उववाएण पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेण एग समय, उक्कोसेण मास ।

[५७२ प्र] भगवन् ! पकप्रभापृथ्वी के नैरयिक कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?

[५७२ उ] गौतम ! (वे) जघन्यत एक समय तक और उत्कृष्टत एक मास तक (उपपात-विरहित रहते हैं ।

५७३ धूमप्पभापुढविनेरइया ण भंते ! केवतिय काल विरहिता उववाएण पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेण एग समय, उक्कोसेणं दो मासा ।

[५७३ प्र] भगवन् ! धूमप्रभापृथ्वी के नारक कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए है ?

[५७३ उ] गौतम ! जघन्यत एक समय तक और उत्कृष्टत दो मास तक (उपपात से विरहित होते है।)

५७४ तमापुढविनेरइया ण भते ! केवतिय काल विरहिया उववाएण पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेण एग समय, उक्कोसेण चत्तारि मासा।

[५७४ प्र] भगवन् ! तम प्रभापृथ्वी के नारक कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए है ?

[५७४ उ] गौतम ! (वे) जघन्यत एक समय तक और उत्कृष्टत चार मास तक (उपपात-विरहित रहते है।)

५७५ अधेसत्तमापुढविनेरइया ण भते ! केवतिय काल विरहिया उववाएण पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेण एग समय, उक्कोसेण छम्मासा।

[५७५ प्र] भगवन् ! सबसे नीची तमस्तमा नामक सप्तम पृथ्वी के नैरयिक कितने काल तक उपपात से रहित कहे गए हैं ?

[५७५ उ] गौतम ! वे एक समय तक और उत्कृष्ट छह मास तक (उपपात से विरहित रहते हैं।)

५७६ असुरकुमारा ण भते ! केवतिय काल विरहिया उववाएणं पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेण एग समय, उक्कोसेण चउव्वीस मुहुत्ता।

[८७६ प्र] भगवन् ! असुरकुमार कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?

[५७६ उ] गौतम ! (वे) जघन्यत एक समय तक और उत्कृष्टत चौबीस मुहूर्त्त तक (उपपातविरहित रहते है।)

५७७ णागकुमारा ण भते ! केवतिय काल विरहिया उववाएण पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेण एग समय, उक्कोसेण चउव्वीस मुहुत्ता।

[५७७ प्र] भगवन् ! नागकुमार कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए है ?

[५७७ उ] गौतम ! (उनका उपपातविरहकाल) जघन्य एक समय का और उत्कृष्ट चौबीस मुहूर्त्त का है।

५७८ एव सुवण्णकुमाराण विज्जुकुमाराण अग्गिकुमाराण दीवकुमाराण उदहिकुमाराण दिसाकुमाराण वाउकुमाराण थणियकुमाराण य पत्तेय पत्तेय जहण्णेण एग समय, उक्कोसेण चउव्वीस मुहुत्ता।

[५७८] इसी प्रकार सुपर्ण (सुवर्ण) कुमार, विद्युत्कुमार, अग्निकुमार, द्वीपकुमार, उदधिकुमार, दिशाकुमार, वायुकुमार और स्तनितकुमार देवो का प्रत्येक का उपपातविरहकाल एक समय का तथा उत्कृष्ट चौवीस मुहूर्त्त का है।

५७९. पुढविकाइया ण भते ! केवतिय काल विरहिया उववाएण पण्णत्ता ?

गोयमा ! अणुसमयमविरहिय उववाएण पण्णत्ता ।

[५७९ प्र] भगवन् ! पृथ्वीकायिकजीव कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए है ?

[५७९ उ] गौतम ! (वे) प्रतिसमय उपपात से अविरहित कहे गए है। अर्थात् उनका उपपात निरन्तर होता ही रहता है ।

५८० एव आउकाइयाण वि तेउकाइयाण वि वाउकाइयाण वि वणप्फइकाइयाण वि अणुसमय अविरहिया उववाएणं पण्णत्ता ।

[५८० प्र] इसी प्रकार अप्कायिक भी तेजस्कायिक भी, वायुकायिक भी, एव वनस्पतिकायिक जीव भी प्रतिसमय उपपात से अविरहित कहे गए है ।

५८१ बेइदिया ण भते ! केवतिय काल विरहिया उववाएण पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेण एग समय उक्कोसेण अतोमुहुत्तं ।

[५८१ प्र] भगवन् ! द्वीन्द्रिय जीवो का उपपातविरह कितने काल तक का कहा गया है ?

[५८१ उ] गौतम ! जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त तक (उनका उपपात-विरहकाल रहता है ।)

५८२ एव तेइदिय-चउरिंदिया ।

[५८२] इसी प्रकार त्रीन्द्रिय एव चतुरिन्द्रिय के उपपातविरहकाल के विषय मे समझ लेना चाहिए ।)

५८३ सम्मुच्छिमपंचेंदियतिरिक्खजोणिया ण भते ! केवतिय काल विरहिया उववाएण पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं एग समय, उक्कोसेण अतोमुहुत्त ।

[५८३ प्र] भगवन् ! सम्मूर्च्छिम पचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक जीव कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?

[५८३ उ] गौतम ! (उनका उपपातविरह) जघन्य एक समय तक का और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त तक का है ।

५८४ गब्भवक्कतियपचेंदियतिरिक्खजोणिया णं भते ! केवतिय काल विरहिता उववाएण पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेण एग समय, उक्कोसेण बारस मुहुत्ता ।

[५८४ प्र] भगवन् ! गर्भजपचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए है ?

[५८४ उ] गौतम ! (वे) जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट बारह मुहूर्त्त तक (उपपात से विरहित रहते है ।)

५८५ सम्मुच्छिमणुस्सा ण भंते ! केवतियं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं चउव्वीसं मुहुत्ता ।

[५८५ प्र] भगवन् ! सम्मूर्च्छिम मनुष्य कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?

[५८५ उ] गौतम ! जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट चौवीस मुहूर्त्त तक (उपपात से विरहित कहे है ।)

५८६ गब्भवक्कंतियमणुस्साणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं बारस मुहुत्ता ।

[५८६ प्र] भगवन् ! गर्भज मनुष्य कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए है ?

[५८६ उ] गौतम ! (वे) जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट बारह मुहूर्त्त तक (उपपात से विरहित कहे हैं ।)

५८७ वाणमंतराणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं चउव्वीसं मुहुत्ता ।

[५८७ प्र] भगवन् ! वाणव्यन्तर देव कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हे ?

[५८७ उ] गौतम ! (वे) जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट चौवीस मुहूर्त्त तक (उपपात से विरहित कहे गए है ।)

५८८ जोइसियाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं चउव्वीसं मुहुत्ता ।

[५८८ प्र] भगवन् ! ज्योतिष्क देव कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए है ?

[५८८ उ] गौतम ! (वे) जघन्य एक समय तक तथा उत्कृष्ट चौवीस मुहूर्त्त तक (उपपात-विरहित कहे हैं ।)

५८९ सोहम्मे कप्पे देवा णं भंते ! केवतियं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं चउव्वीसं मुहुत्ता ।

[५८९ प्र] भगवन् ! सौधर्मकल्प मे देव कितने काल तक उपपात से विरहित कहे हैं ?

[५८९ उ] गौतम ! जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट चौवीस मुहूर्त्त तक (उपपात से विरहित कहे हैं ।)

५९० ईसाणे कप्पे देवाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं चउव्वीसं मुहुत्ता ।

[५९० प्र] गौतम ! ईशानकल्प मे देव कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?

[५९० उ] गौतम ! (वे) जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट चौवीस मुहूर्त्त तक (उपपात से विरहित कहे गए हैं ।)

५७९. पुढविकाइया ण भते ! केवतियं काल विरहिया उववाएण पण्णत्ता ?

गोयमा ! अणुसमयमविरहिय उववाएणं पण्णत्ता ।

[५७९ प्र] भगवन् ! पृथ्वीकायिकजीव कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हे ?

[५७९ उ] गौतम ! (वे) प्रतिसमय उपपात से अविरहित कहे गए है । अर्थात् उनका उपपात निरन्तर होता ही रहता है ।

५८० एव आउकाइयाण वि तेउकाइयाण वि वाउकाइयाण वि वणप्फइकाइयाण वि अणुसमयं अविरहिया उववाएणं पण्णत्ता ।

[५८० प्र] इसी प्रकार अप्कायिक भी तेजस्कायिक भी, वायुकायिक भी, एव वनस्पतिकायिक जीव भी प्रतिसमय उपपात से अविरहित कहे गए है ।

५८१ बेइदिया ण भते ! केवतिय कालं विरहिया उववाएण पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेण एग समय उक्कोसेण अतोमुहुत्त ।

[५८१ प्र] भगवन् ! द्वीन्द्रिय जीवो का उपपातविरह कितने काल तक का कहा गया है ?

[५८१ उ] गौतम ! जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त तक (उनका उपपात-विरहकाल रहता है ।)

५८२ एव तेइदिय-चउरिंदिया ।

[५८२] इसी प्रकार त्रीन्द्रिय एव चतुरिन्द्रिय के उपपातविरहकाल के विषय मे समझ लेना चाहिए ।)

५८३ सम्मुच्छिमपंचेंदियतिरिक्खजोणिया ण भते ! केवतिय काल विरहिया उववाएण पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेण एगं समय, उक्कोसेण अतोमुहुत्तं ।

[५८३ प्र] भगवन् ! सम्मूर्च्छिम पचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक जीव कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए है ?

[५८३ उ] गौतम ! (उनका उपपातविरह) जघन्य एक समय तक का और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त तक का है ।

५८४ गब्भवक्कतियपचेंदियतिरिक्खजोणिया ण भते ! केवतिय काल विरहिता उववाएण पण्णत्ता ?

गोयमा ! जहण्णेण एग समय, उक्कोसेण बारस मुहुत्ता ।

[५८४ प्र] भगवन् ! गर्भजपचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए है ?

[५८४ उ] गौतम ! (वे) जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट बारह मुहूर्त्त तक (उपपात से विरहित रहते है ।)

५८५ सम्मुच्छिममणुस्सा णं भंते ! केवतियं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता ?
गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं चउव्वीसं मुहुत्ता ।

[५८५ प्र] भगवन् ! सम्मूर्च्छिम मनुष्य कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?
[५८५ उ] गौतम ! जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट चौबीस मुहूर्त्त तक (उपपात से विरहित कहे हैं ।)

५८६ गब्भवक्कंतियमणुस्साणं पुच्छा ।
गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं बारस मुहुत्ता ।

[५८६ प्र] भगवन् ! गर्भज मनुष्य कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए है ?
[५८६ उ] गौतम ! (वे) जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट बारह मुहूर्त्त तक (उपपात से विरहित कहे है ।)

५८७ वाणमंतराणं पुच्छा ।
गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं चउव्वीसं मुहुत्ता ।

[५८७ प्र] भगवन् ! वाणव्यन्तर देव कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?
[५८७ उ] गौतम ! (वे) जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट चौबीस मुहूर्त्त तक (उपपात से विरहित कहे गए है ।)

५८८ जोइसियाणं पुच्छा ।
गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं चउव्वीसं मुहुत्ता ।

[५८८ प्र] भगवन् ! ज्योतिष्क देव कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए है ?
[५८८ उ] गौतम ! (वे) जघन्य एक समय तक तथा उत्कृष्ट चौबीस मुहूर्त्त तक (उपपात-विरहित कहे है ।)

५८९ सोहम्मे कप्पे देवा णं भंते ! केवतियं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता ?
गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं चउव्वीसं मुहुत्ता ।

[५८९ प्र] भगवन् ! सौधर्मकल्प मे देव कितने काल तक उपपात से विरहित कहे हैं ?
[५८९ उ] गौतम ! जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट चौबीस मुहूर्त्त तक (उपपात से विरहित कहे हैं ।)

५९० ईसाणे कप्पे देवाणं पुच्छा ।
गोयमा ! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं चउव्वीसं मुहुत्ता ।

[५९० प्र] गौतम ! ईशानकल्प मे देव कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?
[५९० उ] गौतम ! (वे) जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट चौबीस मुहूर्त्त तक (उपपात से विरहित कहे गए है ।)

५९१ सणकुमारदेवाण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण एग समय, उक्कोसेण नव रातिदियाइ वीसा य मुहुत्ता ।

[५९१ प्र] भगवन् ! सनत्कुमार देवो का उपपातविरहकाल कितना कहा गया है ?

[५९१ उ] गौतम ! (वे) जघन्य एक समय तक तथा उत्कृष्ट नौ रात्रि दिन और वीस मुहूर्त्त तक (उपपातविरहित कहे है ।)

५९२ माहिंददेवाण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण एग समय, उक्कोसेण बारस राइदियाइ दस मुहुत्ता ।

[५९२ प्र] भगवन् ! माहेन्द्र देवो का उपपातविरहितकाल कितना कहा गया है ?

[५९२ उ] गौतम ! (उनका उपपातविरहकाल) जघन्य एक समय का तथा उत्कृष्ट वारह रात्रिदिन और दस मुहूर्त्त का है ।

५९३. बभलोए देवाण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण एग समय, उक्कोसेण श्रद्धतेवीस रातिदियाइ ।

[५९३ प्र] भगवन् ! ब्रह्मलोक मे देव कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए है ?

[५९३ उ] गौतम ! (वे) जघन्य एक समय तक तथा उत्कृष्ट साढे बाईस रात्रिदिन तक (उपपातविरहित रहते है ।)

५९४ लतगदेवाण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण एग समय, उक्कोसेण पणतालीस रातिदियाइ ।

[५९४ प्र] भगवन् ! लान्तक देवो का उपपातविरह कितने काल तक का कहा गया है ?

[५९४ उ] गौतम ! (वे) जघन्य एक समय तक तथा उत्कृष्ट पैतालीस रात्रिदिन तक (उपपात से रहित कहे हैं ।)

५९५. महासुक्कदेवाण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण एग समय, उक्कोसेणं श्रसीति रातिदियाइ ।

[५९५ प्र] भगवन् ! महाशुक्र देवो का उपपातविरह कितने काल का कहा गया है ?

[५९५ उ] गौतम ! (उनका उपपातविरहकाल) जघन्य एक समय का तथा उत्कृष्ट अस्सी रात्रिदिन तक का है ।

५९६ सहस्सारदेवाण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण एग समय, उक्कोसेण रातिदियसत ।

[५९६ प्र] भगवन् ! सहस्रार देवो का (उपपातविरहकाल) (कितना कहा गया है) ?

[५९६ उ] गौतम ! जघन्य एक समय तक का तथा उत्कृष्ट सौ रात्रिदिन का (उनका उपपातविरह काल कहा गया है ।

५९७ आणयदेवाण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं एग समय, उक्कोसेण सखेज्जा मासा ।

[५९७ प्र] भगवन् ! आनतदेव कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए है ?

[५९७ उ] गौतम ! उनका उपपातविरह काल जघन्य एक समय का तथा उत्कृष्ट सख्यात मास तक का है।

५९८ पाणयदेवाण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण एग समय, उक्कोसेण सखेज्जा मासा ।

[५९८ प्र] भगवन् ! प्राणतदेव कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए ह ?

[५९८ उ] गौतम ! (वे) जघन्य एक समय तक तथा उत्कृष्ट सख्यात माम तक उपपात से विरहित कहे है ।

५९९ आरणदेवाण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण एग समय, उक्कोसेण सखेज्जा वासा ।

[५९९ प्र] भगवन् ! आरणदेवो का उपपातविरह कितने काल का कहा गया है ?

[५९९ उ] गौतम ! (वे) जघन्य एक समय तक तथा उत्कृष्ट सख्यात वर्ष तक (उपपात-विरहित रहते है ।)

६०० अच्चुयदेवाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण एग समय, उक्कोसेण सखेज्जा वासा ।

[६०० प्र] भगवन् ! अच्युतदेव कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए है ?

[६०० उ] गौतम ! (उनका उपपातविरह) जघन्य एक समय तक तथा उत्कृष्ट सख्यात वर्ष तक रहता है,।

६०१ हेट्ठिमगेवेज्जाण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेणं एग समय, उक्कोसेण संखेज्जाइं वाससताइ ।

[६०१ प्र] भगवन् ! अधस्तन ग्रैवेयक देव कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?

[६०१ उ] गौतम ! (वे) जघन्य एक समय तक तथा उत्कृष्ट सख्यात सौ वर्ष तक (उपपात से विरहित कहे है ।)

६०२ मज्झिमगेवेज्जाण पुच्छा ।

गोयमा ! जहण्णेण एग समय, उक्कोसेण सखेज्जाइ वाससहस्साइ ।

[६०२ प्र] भगवन् ! मध्यम ग्रैवेयकदेव कितने काल तक उपपात से विरहित कहे गए हैं ?

[६०२ उ] गौतम! (वे) जघन्य एक समय तक तथा उत्कृष्ट सख्यात हजार वर्ष तक (उपपातविरहित कहे है।

६०३ उवरिमगेवेज्जगदेवाण पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेण एग समय, उक्कोसेण सखिज्जाइ वाससतसहस्साइ।

[६०३ प्र] भगवन्! ऊपरी ग्रैवेयक देवो का उपपातविरह कितने काल तक का कहा गया है?

[६०३ उ] गौतम! (उनका उपपात-विरहकाल) जघन्यत एक समय का तथा उत्कृष्टत सख्यातलाख वर्ष का है।

६०४. विजय-वेजयत-जयताऽपराजियदेवाण पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेण एग समय, उक्कोसेण असखेज्ज काल।

[६०४ प्र] भगवन्! विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित देवो का उपपातविरह कितने काल तक का कहा है?

[६०४ उ] गौतम! (इनका उपपात-विरहकाल) जघन्य एक समय का तथा उत्कृष्ट असख्यातकाल का है।

६०५ सव्वट्ठसिद्धगदेवा ण भते! केवतिय काल विरहिता उववाएणं पन्नत्ता?

गोयमा! जहण्णेण एग समय, उक्कोसेण पलिओवमस्स सखेज्जइभाग।

[६०५ प्र] भगवन्! सर्वार्थसिद्ध देवो का उपपातविरह कितने काल तक का कहा गया है?

[६०५ उ] गौतम! जघन्य एक समय का, उत्कृष्ट पल्योपम का सख्यातवा भाग है।

६०६ सिद्धा ण भते! केवतिय काल विरहिया सिज्झणयाए पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेण एग समय, उक्कोसेण छम्मासा।

[६०६ प्र] भगवन्! सिद्ध जीवो का उपपात-विरह कितने काल तक का कहा गया है?

[६०६ उ] गौतम! उनका उपपात-विरहकाल जघन्य एक समय का तथा उत्कृष्ट छह मास का है।

६०७. रयणप्पभापुढविनेरइया ण भते! केवतिय काल विरहिया उव्वट्टणाए पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेण एगं समय, उक्कोसेणं चउव्वीस मुहुत्ता?

[६०७ प्र] भगवन्! रत्नप्रभा के नैरयिक कितने काल तक उद्वर्त्तना से विरहित कहे गए हैं?

[६०७ उ] गौतम! (वे) जघन्य एक समय तक तथा उत्कृष्ट चौबीस मुहूर्त्त तक उद्वर्त्तना से विरहित कहे है।

६०८ एव सिद्धवज्जा उव्वट्टणा वि भाणितव्वा जाव अणुत्तरोववाइय त्ति । नवर जोइसिय-वेमाणिएसु चयण ति अहिलावो कायव्वो । दार २ ॥

[६०८] जिस प्रकार उपपात-विरह का कथन किया है, उसी प्रकार सिद्धो को छोड कर अनुत्तरौपपातिक देवो तक (पूर्ववत्) उद्वर्त्तनाविरह भी कह लेना चाहिए । विशेषता यह है कि ज्योतिष्क और वैमानिक देवो के निरूपण मे (उद्वर्त्तना के स्थान पर) 'च्यवन' शब्द का अभिलाप (प्रयोग) करना चाहिए ।

विवेचन—द्वितीय चतुर्विशतिद्वार नैरयिको से लेकर अनुत्तरौपपातिक जीवो तक के उपपात और उद्वर्तना के विरहकाल की प्ररूपणा—प्रस्तुत ४० सूत्रो (सू ५६६ से ६०८ तक) मे विभिन्न विशेषण युक्त विशेष नारक, तिर्यच, मनुष्य और देवो के उपपातरहितकाल एव उद्वर्तनाविरहकाल की प्ररूपणा की गई है ।

पृथ्वीकायिकादि प्रतिसमय उपपादविरहरहित—पृथ्वीकायिक आदि जीव प्रति समय उत्पन्न होते रहते है । कोई एक भी समय ऐसा नही, जब पृथ्वीकायिको का उपपात न होता हो ।[1] इसलिए उन्हे उपपातविरह से रहित कहा गया है ।

ज्योतिष्क और वैमानिक देवो मे उद्वर्तना नही—ज्योतिष्क और वैमानिक इन दोनो जातियो के देवो के लिए 'च्यवन' शब्द का प्रयोग करना चाहिए । च्यवन का अर्थ है नीचे आना । ज्योतिष्क और वैमानिक इस पृथ्वी से ऊपर है, अतएव देव मर कर ऊपर से नीचे आते है, नीचे से ऊपर नही जाते ।[2]

तीसरा सान्तरद्वार : नैरयिको से सिद्धो तक की उत्पत्ति और उद्वर्तना का सान्तर-निरन्तर-निरूपण—

६०९ नेरइया ण भते ! कि सतर उववज्जति ? निरतर उववज्जति ?
गोयमा ! सतर पि उववज्जति, निरतर पि उववज्जति ।

[६०९ प्र] भगवन् ! नैरयिक सान्तर उत्पन्न होते हैं या निरन्तर उत्पन्न होते है ?
[६०९ उ] गौतम (वे) सान्तर भी उत्पन्न होते है और निरन्तर भी उत्पन्न होते है ।

६१० तिरिक्खजोणिया ण भते ! कि सतर उववज्जति ? निरतरं उववज्जति ?
गोयमा ! सतर पि उववज्जति, निरतर पि उववज्जति ।

[६१० प्र] भगवन् ! तिर्यञ्चयोनिक जीव सान्तर उत्पन्न होते हैं या निरन्तर उत्पन्न होते हैं ?

---

१ (क) प्रज्ञापना मलय वृत्ति, पत्राक २०७,
(ख) देखिये, सग्रहणीगाथा, मलय वृत्ति, पत्राक २०७
(ग) प्रज्ञापना प्र बो टीका भा २, पृ ९५८

२ (क) प्रज्ञापना मलय वृत्ति, पत्राक २०७
(ख) प्रज्ञापना प्रमेयबोधिनी टीका भा २, पृ ९७०

[६१० उ] गौतम ! (वे) सान्तर भी उत्पन्न होते है और निरन्तर भी उत्पन्न होते हैं ।

६११. मणुस्सा ण भते ! किं संतर उववज्जति ? निरतर उववज्जति ?

गोयमा ! सतर पि उववज्जति, निरतर पि उववज्जति ।

[६११ प्र] भगवन् ! मनुष्य सान्तर उत्पन्न होते है अथवा निरन्तर उत्पन्न होते है ?

[६११ उ] गौतम ! (वे) सान्तर की उत्पन्न होते है और निरन्तर भी उत्पन्न होते है ।

६१२. देवा ण भते ! किं सतर उववज्जति ? निरतर उववज्जति ?

गोयमा ! सतर पि उववज्जति, निरतर पि उववज्जति ।

[६१२ प्र] भगवन् ! देव सान्तर उत्पन्न होने है अथवा निरन्तर उत्पन्न होते है ?

[६१२ उ] गौतम ! (वे) सान्तर भी उत्पन्न होते है और निरन्तर भी उत्पन्न होते हैं ।

६१३. रयणप्पभापुढविनेरइया ण भते ! किं सतर उववज्जति ? निरतर उववज्जति ?

गोयमा ! सतर पि उववज्जति, निरतर पि उववज्जति ।

[६१३ प्र] भगवन् ! क्या रत्नप्रभापृथ्वी के नारक सान्तर उत्पन्न होते है अथवा निरन्तर उत्पन्न होते है ?

[६१३ उ] गौतम ! (वे) सान्तर भी उत्पन्न होते है और निरन्तर भी उत्पन्न होते हैं ।

६१४ एव जाव अहेसत्तमाए सतर पि उववज्जति, निरतर पि उववज्जति ।

[६१४] इसी प्रकार सातवी नरकपृथ्वी तक (के नैरयिक) सान्तर भी उत्पन्न होते हैं और निरन्तर भी उत्पन्न होते हैं ।

६१५ असुरकुमारा ण भते ! देवा किं संतर उववज्जति ? निरतर उववज्जति ?

[६१५ प्र] भगवन् ! असुरकुमार देव क्या सान्तर उत्पन्न होते हैं अथवा निरन्तर उत्पन्न होते है ।

[६१५ उ] गौतम ! वे सान्तर भो होते है और निरन्तर भी उत्पन्न होते हैं ।

६१६ एव जाव थणियकुमारा सतर पि उववज्जति, निरतर पि उववज्जति ।

[६१६] इसी प्रकार स्तनितकुमार देवो तक सान्तर भी उत्पन्न होते हैं और निरन्तर भी उत्पन्न होते हैं ।

६१७. पुढविकाइया णं भते ! किं सतर उववज्जति ? निरतर उववज्जति ?

गोयमा ! नो सतर उववज्जति, निरतर उववज्जति ।

[६१७ प्र] भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीव क्या सान्तर उत्पन्न होते हैं अथवा निरन्तर उत्पन्न होते है ?

[६१७ उ] गौतम ! (वे) सान्तर उत्पन्न नही होते, किन्तु निरन्तर उत्पन्न होते हैं ।

६१८. एव जाव वणस्सइकाइया नो सतर उववज्जति, निरतर उववज्जति ।

[६१८] इसी प्रकार वनस्पतिकायिक जीवो तक सान्तर उत्पन्न नही होते, किन्तु निरन्तर उत्पन्न होते है (ऐसा कहना चाहिए) ।

६१९ बेइदिया ण भते ! कि सतर उववज्जति ? निरतर उववज्जति ?

गोयमा ! सतर पि उववज्जति, निरतर पि उववज्जति ।

[६१९ प्र] भगवन् ! द्वीन्द्रिय जीव क्या सान्तर उत्पन्न होते है अथवा निरन्तर उत्पन्न होते है ?

[६१९ उ] गौतम ! (वे) सान्तर भी उत्पन्न होते है और निरन्तर भी उत्पन्न होते हैं ।

६२०. एव जाव पचेंदियतिरिक्खजोणिया ।

[६२०] इसी प्रकार पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिको तक कहना चाहिए ।

६२१ मणुस्सा ण भते ! कि सतर उववज्जति ? निरतर उववज्जति ?

गोयमा ! सतर पि उववज्जति, निरतर पि उववज्जति ।

[६२१ प्र] भगवन् ! मनुष्य सान्तर उत्पन्न होते है अथवा निरन्तर उत्पन्न होते है ?

[६२१ उ] गौतम ! (वे) सान्तर भी उत्पन्न होते हैं और निरन्तर भी उत्पन्न होते है ।

६२२ एव वाणमतरा जोइसिया सोहम्म-ईसाण-सणकुमार-माहिंद बभलोय-लतग-महासुक्क-सहस्सार-आणय-पाणय-आरण-ऽच्चुय-हेट्ठिमगेवेज्जग-मज्झिमगेवेज्जग-उवरिमगेवेज्जग-विजय-वेजयंत-जयत-अपराजित-सव्वट्ठसिद्धदेवा य सतर पि उववज्जति, निरतर पि उववज्जति ।

[६२२] इसी प्रकार वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क तथा सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्मलोक, लान्तक, महाशुक्र, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण, अच्युत, अधस्तन ग्रैवेयक, मध्यम ग्रैवेयक, उपरितन ग्रैवेयक, विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित और सर्वार्थसिद्ध देव सान्तर भी उत्पन्न होते हैं और निरन्तर भी उत्पन्न होते है ।

६२३. सिद्धा ण भते ! कि सतर सिज्झति ? निरतर सिज्झति ?

गोयमा ! सतर पि सिज्झति, निरतर पि सिज्झति ।

[६२३ प्र] भगवन् ! सिद्ध क्या सान्तर सिद्ध होते हैं अथवा निरन्तर सिद्ध होते है ?

[६२३ उ] गौतम ! (वे) सान्तर भी सिद्ध होते है, निरन्तर भी सिद्ध होते है ।

६२४ नेरइया ण भते ! कि सतर उव्वट्ट ति ? निरतर उव्वट्ट ति ?

गोयमा ! सतर पि उव्वट्ट ति, निरतर पि उव्वट्ट ति ।

[६२४ प्र] भगवन् ! नैरयिक सान्तर उद्वर्त्तन करते है अथवा निरन्तर उद्वर्त्तन करते है ?

[६२४ उ] गौतम ! वे सान्तर भी उद्वर्त्तन करते हैं और निरन्तर भी उद्वर्त्तन करते है ।

[६१० उ] गौतम ! (वे) सान्तर भी उत्पन्न होते है और निरन्तर भी उत्पन्न होते हैं।

६११. मणुस्सा ण भते ! किं सतर उववज्जति ? निरतर उववज्जति ?
गोयमा ! सतर पि उववज्जति, निरतर पि उववज्जति ।

[६११ प्र] भगवन् ! मनुष्य सान्तर उत्पन्न होते हैं अथवा निरन्तर उत्पन्न होते है ?

[६११ उ] गौतम ! (वे) सान्तर की उत्पन्न होते है और निरन्तर भी उत्पन्न होते हैं।

६१२. देवा ण भते ! किं सतर उववज्जति ? निरतर उववज्जति ?
गोयमा ! सतर पि उववज्जति, निरतर पि उववज्जति ।

[६१२ प्र] भगवन् ! देव सान्तर उत्पन्न होते है अथवा निरन्तर उत्पन्न होते है ?

[६१२ उ] गौतम ! (वे) सान्तर भी उत्पन्न होते है और निरन्तर भी उत्पन्न होते है।

६१३. रयणप्पभापुढविनेरइया ण भते ! किं सतर उववज्जति ? निरतर उववज्जति ?
गोयमा ! सतर पि उववज्जति, निरतर पि उववज्जति ।

[६१३ प्र] भगवन् ! क्या रत्नप्रभापृथ्वी के नारक सान्तर उत्पन्न होते है अथवा निरन्तर उत्पन्न होते हैं ?

[६१३ उ] गौतम ! (वे) सान्तर भी उत्पन्न होते है और निरन्तर भी उत्पन्न होते है।

६१४ एव जाव अहेसत्तमाए सतर पि उववज्जति, निरतर पि उववज्जति ।

[६१४] इसी प्रकार सातवी नरकपृथ्वी तक (के नैरयिक) सान्तर भी उत्पन्न होते हैं और निरन्तर भी उत्पन्न होते है।

६१५ असुरकुमारा ण भते ! देवा किं सतर उववज्जति ? निरतर उववज्जति ?

[६१५ प्र] भगवन् ! असुरकुमार देव क्या सान्तर उत्पन्न होते हैं अथवा निरन्तर उत्पन्न होते है।

[६१५ उ] गौतम ! वे सान्तर भो होते है और निरन्तर भी उत्पन्न होते है।

६१६ एव जाव थणियकुमारा सतर पि उववज्जति, निरतर पि उववज्जति ।

[६१६] इसी प्रकार स्तनितकुमार देवो तक सान्तर भी उत्पन्न होते है और निरन्तर भी उत्पन्न होते है।

६१७ पुढविकाइया ण भते ! किं सतर उववज्जति ? निरतर उववज्जति ?
गोयमा ! नो सतर उववज्जति, निरतर उववज्जति ।

[६१७ प्र] भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीव क्या सान्तर उत्पन्न होते हैं अथवा निरन्तर उत्पन्न होते है ?

[६१७ उ] गौतम ! (वे) सान्तर उत्पन्न नही होते, किन्तु निरन्तर उत्पन्न होते है।

६१८ एव जाव वणस्सइकाइया नो सतर उववज्जति, निरतर उववज्जति।

[६१८] इसी प्रकार वनस्पतिकायिक जीवो तक सान्तर उत्पन्न नही होते, किन्तु निरन्तर उत्पन्न होते है (ऐसा कहना चाहिए)।

६१९ बेइदिया ण भते ! कि सतर उववज्जति ? निरतर उववज्जति ?
गोयमा ! सतर पि उववज्जति, निरतर पि उववज्जति।

[६१९ प्र] भगवन् ! द्वीन्द्रिय जीव क्या सान्तर उत्पन्न होते है अथवा निरन्तर उत्पन्न होते है ?

[६१९ उ] गौतम ! (वे) सान्तर भी उत्पन्न होते है और निरन्तर भी उत्पन्न होते है।

६२० एव जाव पचेंदियतिरिक्खजोणिया।

[६२०] इसी प्रकार पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिको तक कहना चाहिए।

६२१ मणुस्सा ण भते ! कि सतर उववज्जति ? निरतर उववज्जति ?
गोयमा ! सतर पि उववज्जति, निरतर पि उववज्जति।

[६२१ प्र] भगवन् ! मनुष्य सान्तर उत्पन्न होते है अथवा निरन्तर उत्पन्न होते हैं ?
[६२१ उ] गौतम ! (वे) सान्तर भी उत्पन्न होते हैं और निरन्तर भी उत्पन्न होते है।

६२२ एव वाणमंतरा जोइसिया सोहम्म-ईसाण-सणकुमार-माहिंद-बभलोय-लतग-महासुक्क-सहस्सार-आणय-पाणय-आरण-ऽच्चुय-हेट्ठिमगेवेज्जग-मज्झिमगेवेज्जग-उवरिमगेवेज्जग-विजय-वेजयंत-जयत-अपराजित-सव्वट्ठसिद्धदेवा य सतर पि उववज्जति, निरतरं पि उववज्जति।

[६२२] इसी प्रकार वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क तथा सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्मलोक, लान्तक, महाशुक्र, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण, अच्युत, अधस्तन ग्रैवेयक, मध्यम ग्रैवेयक, उपरितन ग्रैवेयक, विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित और सर्वार्थसिद्ध देव सान्तर भी उत्पन्न होते है और निरन्तर भी उत्पन्न होते हैं।

६२३ सिद्धा ण भते ! कि सतर सिज्झति ? निरतर सिज्झति ?
गोयमा ! सतर पि सिज्झति, निरतर पि सिज्झति।

[६२३ प्र] भगवन् ! सिद्ध क्या सान्तर सिद्ध होते है अथवा निरन्तर सिद्ध होते हैं ?
[६२३ उ] गौतम ! (वे) सान्तर भी सिद्ध होते है, निरन्तर भी सिद्ध होते है।

६२४ नेरइया ण भते ! कि संतर उव्वट्टंति ? निरतर उव्वट्टंति ?
गोयमा ! सतर पि उव्वट्टंति, निरतर पि उव्वट्टंति।

[६२४ प्र] भगवन् ! नैरयिक सान्तर उद्वर्त्तन करते हैं अथवा निरन्तर उद्वर्त्तन करते है ?
[६२४ उ] गौतम ! वे सान्तर भी उद्वर्त्तन करते है और निरन्तर भी उद्वर्त्तन करते है।

६२५ एव जहा उववाओ भणितो तहा उव्वट्टणा वि सिद्धवज्जा भाणितव्वा जाव वेमाणिता । नवर जोइसिय-वेमाणिएसु चवण ति अभिलावो कातव्वो । दार ३ ।।

[६२५] इस प्रकार जैसे उपपात (के विषय मे) कहा गया है, वैसे ही सिद्धो को छोडकर उद्वर्त्तना (के विषय मे) भी यावत् वैमानिको तक कहना चाहिए। विशेष यह है कि ज्योतिष्को और वैमानिको के लिए 'च्यवन' शब्द का प्रयोग (अभिलाप) करना चाहिए ।

तृतीय सान्तर द्वार ।। ३ ।।

विवेचन—तीसरा सान्तरद्वार—नैरयिको से लेकर सिद्धो तक की उत्पत्ति और उद्वर्तना का सान्तर-निरन्तरनिरूपण—प्रस्तुत १७ सूत्रो (सू ६०९ से ६२५ तक) मे नैरयिक से लेकर वैमानिक देव पर्यन्त चौबीस दण्डको और सिद्धो की सान्तर और निरन्तर उत्पत्ति एव उद्वर्त्तना की प्ररूपणा की गई है ।

निष्कर्ष—पृथ्वीकायिक से लेकर वनस्पतिकायिक तक पाच प्रकार के एकेन्द्रियो को छोड कर समस्त ससारी एव सिद्ध जीवो की सान्तर और निरन्तर दोनो प्रकार से उत्पत्ति और उद्वर्त्तना होती है। किन्तु सिद्धो की उत्पत्ति भी सान्तर-निरन्तर होती है, किन्तु उद्वर्त्तना कभी नही होती।[1]

सान्तर और निरन्तर उत्पत्ति की व्याख्या—बीच-बीच मे कुछ समय छोडकर व्यवधान से उत्पन्न होना *सान्तर* उत्पन्न होना है, और प्रतिसमय लगातर—बिना व्यवधान के उत्पन्न होना, बीच मे कोई भी समय खाली न जाना निरन्तर उत्पन्न होना है ।[2]

चतुर्थ एकसमयद्वार : चौबीसदण्डकवर्ती जीवों और सिद्धो की एक समय मे उत्पत्ति और उद्वर्तना की संख्या की प्ररूपणा—

६२६ नेरइया ण भते ! एगसमएण केवतिया उववज्जति ?

गोयमा ! जहण्णेणं एगो वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेण सखेज्जा वा असखेज्जा वा उववज्जति ।

[६२६ प्र] भगवन् ! एक समय मे कितने नैरयिक उत्पन्न होते है ?

[६२६ उ] गौतम ! जघन्य (कम से कम) एक, दो या तीन और उत्कृष्ट (अधिक से अधिक) सख्यात अथवा असख्यात उत्पन्न होते हैं ।

६२७ एव जाव अहेसत्तमाए ।

[६२७] इसी प्रकार सातवी नरकपृथ्वी तक समझ लेना चाहिए ।

६२८. असुरकुमारा ण भते ! एगसमएण केवतिया उववज्जति ?

गोयमा ! जहण्णेण एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेणं सखेज्जा वा असखेज्जा वा ।

[६२८ प्र] भगवन् ! असुरकुमार एक समय मे कितने उत्पन्न होते हैं ?

---

१ पण्णवणासुत्त (मूलपाठ) भा १, पृ १६६ से १६८ तक

२ (क) प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक २०८, (ख) प्रज्ञापना प्र बो टीका भा २, पृ ९७६-९७७

[६२८ उ] गौतम ! (वे) जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट सख्यात अथवा असख्यात (उत्पन्न होते है ।)

६२९ एवं णागकुमारा जाव थणियकुमारा वि भाणियव्वा ।

[६२९] इसी प्रकार नागकुमार से लेकर स्तनितकुमार तक कहना चाहिए ।

६३०. पुढविकाइया णं भंते ! एगसमएण केवतिया उववज्जंति ?

गोयमा ! अणुसमयं अविरहियं असखेज्जा उववज्जति ।

[६३० प्र] भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीव एक समय मे कितने उत्पन्न होते है ?

[६३० उ] गौतम ! (वे) प्रतिसमय विना विरह (अन्तर) के असख्यात उत्पन्न होते है ।

६३१ एव जाव वाउकाइया ।

[६३१] इसी प्रकार वायुकायिक जीवो तक कहना चाहिए ।

६३२ वणप्फतिकाइया णं भंते ! एगसमएण केवतिया उववज्जंति ?

गोयमा ! सट्ठाणुववाय पडुच्च अणुसमयं अविरहिया अणता उववज्जति, परट्ठाणुववायं पडुच्च अणुसमय अविरहिया असखेज्जा उववज्जति ।

[६३२ प्र] भगवन् ! वनस्पतिकायिक जीव एक समय मे कितने उत्पन्न होते है ?

[६३२ उ] गौतम ! स्वस्थान (वनस्पतिकाय) मे उपपात (उत्पत्ति) की अपेक्षा से प्रतिसमय बिना विरह के अनन्त (वनस्पतिजीव) उत्पन्न होते रहते है तथा परस्थान मे उपपात की अपेक्षा से प्रतिसमय बिना विरह के असख्यात (वनस्पतिजीव) उत्पन्न होते है ।

६३३ बेइंदिया ण भंते ! केवतिया एगसमएण उववज्जति ?

गोयमा ! जहण्णेणं एगो वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेण सखेज्जा वा असखेज्जा वा ।

[६३३ प्र] भगवन् ! द्वीन्द्रिय जीव एक समय मे कितने उत्पन्न होते है ?

[६३३ उ.] गौतम ! (वे) जघन्य एक, दो अथवा तीन तथा उत्कृष्ट सख्यात या असख्यात (उत्पन्न होते हैं ।)

६३४ एव तेइंदिया चउरिंदिया सम्मुच्छिमपचेंदियतिरिक्खजोणिया गब्भवक्कतियपचेंदियतिरिक्खजोणिया सम्मुच्छिममणूसा वाणमंतर-जोइसिय-सोहम्मीसाण-सणकुमार-माहिंद-बभलोय-लतग-सुक्क सहस्सारकप्पदेवा, एते जहा नेरइया ।

[६३४] इसी प्रकार त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, सम्मूर्च्छिम पचेन्द्रिय तिर्यंग्योनिक, गर्भज पचेन्द्रिय तिर्यंग्योनिक, सम्मूर्च्छिम मनुष्य, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क, सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्मलोक, लान्तक, शुक्र एव सहस्रार कल्प के देव, इस सब की प्ररूपणा नैरयिको के समान समझनी चाहिए ।

६३५, गब्भवक्कतियमणूस-आणय-पाणय-आरण-अच्चुय-गेवेज्जग-अणुत्तरोववाइया य एते जहण्णेणं एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेण सखेज्जा उववज्जति ।

[६३५] गर्भज मनुष्य, आनत, प्राणत, आरण, अच्युत, (नौ) ग्रैवेयक, (पाच) अनुत्तरौपपातिक देव, ये सब जघन्यत एक, दो अथवा तीन तथा उत्कृष्टत सख्यात उत्पन्न होते है ।

६३६ सिद्धा ण भते ! एगसमएण केवतिया सिज्झति ?

गोयमा ! जहण्णेण एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेण अट्ठसत ।

[६३६ प्र] भगवन् ! सिद्ध भगवन् एक समय मे कितने सिद्ध होते है ?

[६३६ उ] गौतम ! (वे) जघन्यत एक, दो, अथवा तीन और उत्कृष्टत एक सौ आठ सिद्ध होते हैं ।

६३७. नेरइया ण भते ! एगसमएण केवतिया उव्वट्टति ?

गोयमा ! जहण्णेणं एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेण सखेज्जा वा असखेज्जा वा उव्वट्टति ।

[६३७ प्र] भगवन् ! नैरयिक एक समय मे कितने उद्वर्त्तित होते (मर कर निकलते) हैं ?

[६३७ उ] गौतम ! (वे) जघन्य एक दो या तीन और उत्कृष्ट सख्यात अथवा असख्यात उद्वर्त्तित होते (मरते) है ।

६३८ एव जहा उववाओ भणितो तहा उव्वट्टणा वि सिद्धवज्जा भाणितव्वा जाव अणुत्तरोववाइया । णवर जोइसिय-वेमाणियाण चयणेण अभिलावो कातव्वो । दार ४ ॥

[६३८] इसी प्रकार जैसे उपपात के विषय मे कहा, उसी प्रकार सिद्धो को छोड कर अनुत्तरौपपातिक देवो तक की उद्वर्त्तना के विषय मे भी कहना चाहिए । विशेष यह है कि ज्योतिष्क और वैमानिक देवो के लिए (उद्वर्त्तना के बदले) 'च्यवन' शब्द का प्रयोग (अभिलाप) करना चाहिए ।

—चतुर्थ एकसमयद्वार ॥४॥

विवेचन—चतुर्थ एकसमय-द्वार चौबीस दण्डकवर्ती जीवो और सिद्धो की एक समय मे उत्पत्ति तथा उद्वर्त्तना की सख्या की प्ररूपणा—प्रस्तुत तेरह सूत्रो (सू ६२६ से ६३८ तक) मे एक समय मे समस्त ससारी जीवो की उत्पत्ति एव उद्वर्त्तना तथा सिद्धो की सिद्धिप्राप्ति की सख्या के सम्बन्ध मे प्ररूपणा की गई है ।

वनस्पतिकायिको के स्वस्थान-उपपात एव परस्थान-उपपात की व्याख्या—यहाँ स्वस्थान का अर्थ 'वनस्पतिभव' समझना चाहिए । जो वनस्पतिकायिक जीव मर कर पुन वनस्पतिकाय मे ही उत्पन्न होते है, उनका उत्पाद स्वस्थान मे उत्पाद कहलाता है और जब पृथ्वीकाय आदि किसी अन्य काय का जीव वनस्पतिकाय मे उत्पन्न होता है, तब उसका उत्पाद परस्थान-उत्पाद कहलाता है । स्वस्थान मे उत्पत्ति की अपेक्षा प्रत्येक समय मे निरन्तर अनन्त वनस्पतिकायिक जीव उत्पन्न होते रहते है, क्योकि प्रत्येक निगोद मे असख्यातभाग का निरन्तर उत्पाद और उद्वर्त्तन होता रहता है, और वे वनस्पतिकायिक अनन्त होते हैं । परस्थान-उत्पाद की अपेक्षा से प्रतिसमय निरन्तर असख्यात जीवो का उपपात होता रहता है, क्योकि पृथ्वीकाय आदि के जीव असख्यात हैं । तात्पर्य यह है कि

एक समय मे वनस्पतिकाय से मर कर वनस्पतिकाय मे ही उत्पन्न होने वाले जीव अनन्त होते है एव अन्य कायो से मर कर वनस्पतिकाय मे उत्पन्न होने वाले असख्यात है ।[1]

गर्भज मनुष्य तथा आनतादि का एक समय मे सख्यात ही उत्पाद क्यो ? आनतादि देवलोको मे मनुष्य उत्पन्न होते है, जो कि सख्यात ही है । तिर्यंच उनमे नही उत्पन्न होते ।

पंचम कुतोद्वार : चातुर्गतिक जीवो की पूर्वभवो से उत्पत्ति (आगति) की प्ररूपणा—

६३९ [१] नेरइया ण भते ! कतोहिंतो उववज्जति ? किं नेरइएहिंतो उववज्जति ? तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जति ? मणुस्सेहिंतो उववज्जति ? देवेहिंतो उववज्जति ?

गोयमा ! नेरइया नो नेरइएहिंतो उववज्जति, तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जति, मणुस्सेहिंतो उववज्जति, नो देवेहिंतो उववज्जति ।

[६३९-१ प्र] भगवन् ! नैरयिक कहाँ से उत्पन्न होते है ? क्या (वे) नैरयिको मे से उत्पन्न होते है ? तिर्यग्योनिको मे से उत्पन्न होते है ? मनुष्यो मे से उत्पन्न होते हैं ? (अथवा) देवो मे से उत्पन्न होते हैं ?

[६३९-१ उ] गौतम ! नैरयिक, नैरयिको मे से उत्पन्न नही होते, (वे) तिर्यञ्चयोनिको से उत्पन्न होते है, (तथा) मनुष्यो से उत्पन्न होते है, (किन्तु) देवो मे से उत्पन्न नही होते ।

[२] जदि तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जति किं एगिंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जति ? बेइदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जति ? तेइदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जति ? चउरिंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जति ? पंचिदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जति ?

गोयमा ! नो एगिंदिय० नो बेंदिय० नो तेइदिय० नो चउरिंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जति, पंचिदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जति ।

[६३९-२ प्र] भगवन् ! यदि (नैरयिक) तिर्यञ्चयोनिको से उत्पन्न होते है तो क्या (वे) एकेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिको से उत्पन्न होते है, द्वीन्द्रियतिर्यञ्चयोनिको से उत्पन्न होते है, त्रीन्द्रियतिर्यञ्चयोनिको से उत्पन्न होते है, चतुरिन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिको से उत्पन्न होते है, अथवा पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिको से उत्पन्न होते हैं ?

[६३९-२ उ] गौतम ! (वे) न तो एकेन्द्रिय तिर्यग्योनिको से, न द्वीन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिको से, न ही त्रीन्द्रियतिर्यञ्चयोतिको से और न चतुरिन्द्रिय तिर्यग्योनिको से उत्पन्न होते है, किन्तु पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिको से उत्पन्न होते है ।

[३] जति पंचिदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जति किं जलयरपंचिदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जति ? थलयरपचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जति ? खहयरपचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जति ?

---

१ (क) प्रज्ञापनासूत्र म वृत्ति, पत्राक २०८, २०९, (ख) प्रज्ञापना प्र बो टीका भा २, पृ ९९२

गोयमा ! जलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो वि उववज्जति, थलयरपचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो वि उववज्जति, खहयरपचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो वि उववज्जति ।

[६३९-३ प्र] भगवन् ! यदि (नैरयिक) पचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिको से उत्पन्न होते हैं तो क्या वे जलचर पचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिको से उत्पन्न होते है ? स्थलचरपचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिको से उत्पन्न होते है ?, (अथवा) खेचर पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिको से उत्पन्न होते है ?

[६३९-३ उ] गौतम ! (वे नैरयिक) जलचरपचेन्द्रियतिर्यग्योनिको से भी उत्पन्न होते हैं, स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिको से भी उत्पन्न होते है और खेचर पचेन्द्रिय तिर्यग्योनिको से भी उत्पन्न होते है ।

[४] जइ जलयरपचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जति किं सम्मुच्छिमजलयरपचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जति ? गब्भवक्कतियजलयरपचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जति ?

गोयमा ! सम्मुच्छिमजलयरपचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो वि उववज्जति, गब्भवक्कतियजलयरपचेंदिएहिंतो वि उववज्जति ।

[६३९-४ प्र] (भगवन् !) यदि (वे नारक) जलचरपचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिको से उत्पन्न होते है, तो क्या सम्मूर्च्छिम जलचर पचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिको से उत्पन्न होते हैं ? या गर्भज जलचर-पचेन्द्रियतिर्यग्योनिको से उत्पन्न होते हैं ?

[६३९-४ उ] गौतम ! (वे) सम्मूर्च्छिम जलचर पचेन्द्रिय तिर्यंग्योनिको से भी उत्पन्न होते है और गर्भज जलचर पचेन्द्रिय तिर्यग्योनिको से भी उत्पन्न होते है ।

[५] जति सम्मुच्छिमजलयरपचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जति किं पज्जत्तयसम्मुच्छिमजलयरपचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ? अपज्जत्तयसम्मुच्छिमजलयरपचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जति ?

गोयमा ! पज्जत्तयसम्मुच्छिमजलयरपचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जति, नो अपज्जत्तयसम्मुच्छिमजलयरपचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जति ।

[६३९-५ प्र] (भगवन् !) यदि (वे नारक) सम्मूर्च्छिमजलचरपचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिको से उत्पन्न होते है तो क्या पर्याप्तक सम्मूर्च्छिमजलचरपचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिको से उत्पन्न होते हैं अथवा अपर्याप्तक सम्मूर्च्छिमजलचरपचेन्द्रियतिर्यग्योनिको से उत्पन्न होते है ?

[६३९-५ उ] गौतम ! पर्याप्तक सम्मूर्च्छिमजलचरपचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिको से उत्पन्न होते है, (किन्तु) अपर्याप्तक सम्मूर्च्छिमजलचरपचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिको से उत्पन्न नही होते ।

[६] जति गब्भवक्कतियजलयरपचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जति किं पज्जत्तगगब्भवक्कतियजलयरपचेंदिएहिंतो उववज्जति ? अपज्जत्तयगब्भवक्कतियजलयरपंचेंदियेहिंतो उववज्जति ?

गोयमा ! पज्जत्तयगब्भवक्कतियजलयरपचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जति, नो अपज्जत्तगगब्भवक्कतियजलयरपचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जति ।

[६३९-६ प्र] भगवन् ! यदि गर्भज जलचर पचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिको से (नारक) उत्पन्न होते हैं, तो क्या पर्याप्तक-गर्भज-जलचर-पचेन्द्रियतिर्यग्योनिको से उत्पन्न होते हैं, (अथवा) अपर्याप्तक-गर्भजजलचरपचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिको से उत्पन्न होते है ?

[३३९-६ उ] गौतम ! (वे) पर्याप्तक-गर्भज-जलचर-पचेन्द्रियतिर्यग्योनिको से उत्पन्न होते हैं, (किन्तु) अपर्याप्तकगर्भ-जजलचरपचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिको से नही उत्पन्न होते ।

[७] जइ थलयरपचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जति किं चउप्पयथलयरपचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जति ? परिसप्पथलयरपचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जति ?

गोयमा ! चउप्पयथलयरपचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो वि उववज्जति, परिसप्पथलयरपचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो वि उववज्जति ।

[६३९-७ प्र] (भगवन् !) यदि (वे) स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिको से उत्पन्न होते है, तो क्या चतुष्पद-स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिको से उत्पन्न होते है ?, (अथवा) परिसर्प्पस्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिको से उत्पन्न होते है ?

[६३९-७ उ] गौतम ! (वे) चतुष्पद-स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिको से भी उत्पन्न होते हैं और परिसर्प्प-स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिको से भी उत्पन्न होते है ।

[८] जदि चउप्पयथलयरपचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जति किं सम्मुच्छिमेहिंतो उववज्जति ? गब्भवक्कतिएहिंतो उववज्जति ?

गोयमा ! सम्मुच्छिमचउप्पयथलयरपचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो वि उववज्जति, गब्भवक्कतियचउप्पएहिंतो वि उववज्जति ।

[६३९-८ प्र] भगवन् ! यदि चतुष्पद-स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिको से (वे) उत्पन्न होते है, तो क्या सम्मूच्छिम-चतुष्पद-स्थलचर-पचेन्द्रियतिर्यञ्चो से उत्पन्न होते हैं ? अथवा गर्भज-स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चो से उत्पन्न होते है ?

[६३९-८ उ] गौतम ! (वे) सम्मूच्छिम-चतुष्पद-स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिको से भी उत्पन्न होते है, और गर्भज-चतुष्पद-स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिको से भी उत्पन्न होते है ।

[९] जइ सम्मुच्छिमचउप्पएहिंतो उववज्जति किं पज्जत्तगसम्मुच्छिमचउप्पयथलयरपचेंदिएहिंतो उववज्जति ? अपज्जत्तगसम्मुच्छिमचउप्पयथलयरपचेंदिएहिंतो उववज्जति ?

गोयमा ! पज्जत्तएहिंतो उववज्जति, नो अपज्जत्तगसम्मुच्छिमचउप्पयथलयरपचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जति ।

[६३९-९ प्र] (भगवन् !) यदि सम्मूच्छिम-चतुष्पद-स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिको से (वे) उत्पन्न होते है, तो क्या पर्याप्तक-सम्मूच्छिम-चतुष्पद-स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिको से उत्पन्न होते है, अथवा अपर्याप्तक-सम्मूच्छिम-चतुष्पद-स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिको से उत्पन्न होते हैं ?

[६३९-९ उ] गौतम ! (वे) पर्याप्तक-सम्मूर्च्छिम-चतुष्पद-स्थलचर-तिर्यञ्चपचेन्द्रियो से उत्पन्न होते हैं, किन्तु अपर्याप्तक-सम्मूर्च्छिम-चतुष्पद-स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिको से नही उत्पन्न होते।

[१०] जति गब्भवक्कतियचउप्पयथलयरपचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जति किं सखेज्जवासाउगगब्भवक्कतियचउप्पयथलयरपचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जति ? असखेज्जवासाउयगब्भवक्कतियचउप्पयथलयरपचेंदियतिरिक्खजोणिर्नहिंतो उववज्जति ?

गोयमा ! सखेज्जवासाउएहिंतो उववज्जति, नो असखेज्जवासाउएहिंतो उववज्जति ।

[६३९-१० प्र] (भगवन्)! यदि गर्भज-चतुष्पद-स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिको से (नारक) उत्पन्न होते हैं, तो क्या (वे) सख्यात वर्ष की आयु वाले गर्भज-चतुष्पद स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिको से उत्पन्न होते है, अथवा असख्यात वर्ष की आयु वाले गर्भज-चतुष्पद-स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिको से उत्पन्न होते है ?

[६३९-१० उ] गौतम ! (वे) सख्यात वर्ष की आयु वाले गर्भज-चतुष्पद-स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिको से उत्पन्न होते है, (किन्तु) असख्यात वर्ष की आयु वाले गर्भज-चतुष्पद-स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिको से नही उत्पन्न होते ।

[११] जति सखेज्जवासाउयगब्भवक्कतियचउप्पयथलयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जति किं पज्जत्तगसखेज्जवासाउयगब्भवक्कतियचउप्पयथलयरपचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जति ? अपज्जत्तगसखेज्जवासाउयगब्भवक्कतियचउप्पयथलयरपचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जति ?

गोयमा ! पज्जत्तएहिंतो उववज्जति, नो अपज्जत्तयसखेज्जवासाउएहिंतो उववज्जति ।

[६३९-११ प्र] (भगवन् !) यदि (वे नारक) सख्यात वर्ष की आयु वाले गर्भज-चतुष्पद-स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिको से उत्पन्न होते हैं, तो क्या पर्याप्तक-सख्यातवर्षायुष्क गर्भज चतुष्पद-स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिको से उत्पन्न होते है, (अथवा) अपर्याप्तक-सख्यात-वर्षायुष्क गर्भज-चतुष्पद-स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिको से उत्पन्न होते है ?

[६३९-११ उ] गौतम ! (वे) पर्याप्तक-सख्यातवर्षायुष्क-गर्भज-चतुष्पद-स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिको से उत्पन्न होते है, (किन्तु) अपर्याप्तक-सख्यातवर्षायुष्क-गर्भज-चतुष्पद-स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिको से नही उत्पन्न होते ।

[१२] जति परिसप्पथलयरपचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जति किं उरपरिसप्पथलयरपचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जति ? भुयपरिसप्पथलयरपचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जति ?

गोयमा ! दोहिंतो वि उववज्जति ।

[६३९-१२ प्र] भगवन् ! यदि (वे) परिसर्प-स्थलचर पचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिको से उत्पन्न

होते है, तो क्या उर परिसर्प-स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिको से उत्पन्न होते हैं, (अथवा) भुजपरिसर्प स्थलचरपचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिको से उत्पन्न होते है ?

[६३९-१२ उ] गौतम ! वे दोनो से ही—अर्थात्—उर परिसर्प-स्थलचर-पचेन्द्रियतिर्यञ्चो से भी उत्पन्न होते है, और भुजपरिसर्प-स्थलचर-पचेन्द्रिय तिर्यञ्चो से भी उत्पन्न होते हे।

[१३] जदि उरपरिसप्पथलयरपचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उवज्जति किं सम्मुच्छिमउरपरिसप्पथलयरपचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जति ? गब्भवक्कतियउरपरिसप्पथलयरपचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जति ?

गोयमा ! सम्मुच्छिमेहिंतो वि उववज्जंति, गब्भवक्कतिएहिंतो वि उववज्जति ।

[६३९-१३ प्र] भगवन् ! यदि उर परिसर्पस्थलचरपचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिको से (वे) उत्पन्न होते हैं, तो क्या सम्मूर्च्छिम-उर परिसर्प-स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चो से उत्पन्न होते है, अथवा गर्भज-उर परिसर्प-स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिको से उत्पन्न होते है ?

[६३९-१३ उ] गौतम ! (वे) सम्मूर्च्छिम-उर परिसर्प-स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिको से भी उत्पन्न होते हैं और गर्भज-उर परिसर्प-स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिको से भी उत्पन्न होते है ।

[१४] जति सम्मुच्छिमउरपरिसप्पथलयरपचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जति किं पज्जत्तगेहिंतो उववज्जति ? अपज्जत्तगेहिंतो उववज्जति ?

गोयमा ! पज्जत्तगसम्मुच्छिमेहिंतो उववज्जति, नो अपज्जत्तगसम्मुच्छिमउरपरिसप्पथलयरपचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जति ।

[६३९-१४ प्र] भगवन् ! यदि (वे) सम्मूर्च्छिम-उर परिसर्प-स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिको से उत्पन्न होते हैं, तो क्या पर्याप्तक-सम्मूर्च्छिम-उर परिसर्प-स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिको से उत्पन्न होते है, अथवा अपर्याप्तक-सम्मूर्च्छिम-उर परिसर्प-स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिको से उत्पन्न होते हैं ?

[६३९-१४ उ] गौतम ! (वे) पर्याप्तक-सम्मूर्च्छिम-उर परिसर्प-स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिको से उत्पन्न होते है, (किन्तु) अपर्याप्तक-सम्मूर्च्छिम-उर परिसर्प-स्थलचर-पचेन्द्रिय तिर्यगयोनिको से उत्पन्न नही होते ।

[१५] जति गब्भवक्कतियउरपरिसप्पथलयरपचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जति किं पज्जत्तएहिंतो ? अपज्जत्तएहिंतो ?

गोयमा ! पज्जत्तगगब्भवक्कतिएहिंतो उववज्जति, नो अपज्जत्तगगब्भवक्कतिउरपरिसप्पथलयरपचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जति ।

[६३९-१५ प्र] (भगवन् !) यदि (वे) गर्भज-उर परिसर्प-स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिको से उत्पन्न होते है तो क्या (वे) पर्याप्तक-गर्भज-उर परिसर्प-स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिको से उत्पन्न होते हैं, या अपर्याप्तक गर्भज-उर परिसर्प-स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिको से उत्पन्न होते है ?

[६३९-१५ उ] गौतम ! पर्याप्तक-गर्भज-उर परिसर्प-स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिको से (वे) उत्पन्न होते है, (किन्तु) अपर्याप्तक-गर्भज-उर परिसर्प-स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिको से उत्पन्न नही होते ।

[१६] जति भुयपरिसप्पथलयरपचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जति किं सम्मुच्छिमभुयपरिसप्पथलयरपचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जति ? गब्भवक्कतियभुयपरिसप्पथलयरपचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जति ?

गोयमा ! दोहिंतो वि उववज्जति ।

[६३९-१६ प्र] (भगवन् !) यदि (वे) भुजपरिसर्प-स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिको से उत्पन्न होते है, तो क्या (वे) सम्मूर्च्छिम-भुजपरिसर्प-स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिको से उत्पन्न होते है अथवा गर्भज-भुजपरिसर्प-स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिको से उत्पन्न होते है ?

[६३९-१६ उ] गौतम ! (वे) दोनो से (सम्मूर्च्छिम-भुजपरिसर्प-स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिको से भी, तथा गर्भज-भुजपरिसर्प-स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिको से) भी उत्पन्न होते है ।

[१७] जति सम्मुच्छिमभुयपरिसप्पथलयरपचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जति किं पज्जत्तयसम्मुच्छिमभुयपरिसप्पथलयरपचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जति ? अपज्जत्तयसम्मुच्छिमभुयपरिसप्पथलयरपचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जति ?

गोयमा ! पज्जत्तएहिंतो उववज्जति, नो अपज्जत्तएहिंतो उववज्जति ।

[६३९-१७ प्र] (भगवन् !) यदि सम्मूर्च्छिम-भुजपरिसर्प-स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यंचयोनिको से उत्पन्न होते हैं तो क्या (वे) पर्याप्तक-सम्मूर्च्छिम-स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिको से उत्पन्न होते है, अथवा अपर्याप्तक-सम्मूर्च्छिम-भुजपरिसर्प-पचेन्द्रिय-तिर्यंग्योनिको से उत्पन्न होते हैं ?

[६३९-१७ उ] गौतम ! (वे) पर्याप्तक-सम्मूर्च्छिम-भुजपरिसर्प-स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यग्-योनिको से उत्पन्न होते हैं, (किन्तु) अपर्याप्तक-सम्मूर्च्छिम-भुजपरिसर्प-स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यग्-योनिको से उत्पन्न नही होते ।

[१८] जति गब्भवक्कतियभुयपरिसप्पथलयरपचेंदियतिरिक्खजोणिएहितो उववज्जति किं पज्जत्तएहिंतो उववज्जति ? अपज्जत्तएहितो उववज्जति ?

गोयमा ! पज्जत्तएहितो उववज्जति, नो अपज्जत्तएहिंतो उववज्जंति ।

[६३९-१८ प्र] (भगवन् !) यदि गर्भज-भुजपरिसर्प-स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिको से उत्पन्न होते हैं तो क्या (वे नारक) पर्याप्तक-गर्भज-भुजपरिसर्प-स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिको से उप्पन्न होते है, या अपर्याप्त-गर्भज-भुजपरिसर्प-स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिको से उत्पन्न होते है ?

[६३९-१८ उ] गौतम ! पर्याप्तक-गर्भज-भुजपरिसर्प-स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिको से उत्पन्न होते है, (किन्तु) अपर्याप्तक-गर्भज-भुजपरिसर्प-स्थलचर-पचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिको से उत्पन्न नही होते ।

[१९] जति खहयरपचेंदियतिरिक्खजोणिएहितो उववज्जति कि सम्मुच्छिमखहयरपचेंदियतिरिक्खजोणिएहितो उववज्जति ? गब्भवक्कतियखहयरपचेंदियतिरिक्खजोणिएहितो उववज्जति ?

गोयमा ! दोहितो वि उववज्जति ।

[६३९-१९ प्र] (भगवन् !) यदि खेचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिको से (वे) उत्पन्न होते है, तो क्या सम्मूर्च्छिम खेचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिको से (वे) उत्पन्न होते है, या गर्भज खेचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिको से उत्पन्न होते हैं ?

[६३९-१९ उ] गौतम ! दोनो से (सम्मूर्च्छिम खेचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिको से तथा गर्भज खेचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिको से) उत्पन्न होते हैं ।

[२०] जति सम्मुच्छिमखहयरपचेंदियतिरिक्खजोणिएहितो उववज्जति कि पज्जत्तएहितो उववज्जति ? अपज्जत्तएहितो उववज्जति ?

गोयमा ! पज्जत्तएहितो उववज्जति, नो अपज्जत्तएहितो उववज्जति ।

[६३९-२० प्र] (भगवन् !) यदि सम्मूर्च्छिम खेचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिको से (वे) उत्पन्न होते हैं, तो क्या (वे) पर्याप्तक सम्मूर्च्छिम खेचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिको से उत्पन्न होते है, अथवा अपर्याप्तक सम्मूर्च्छिम खेचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिको से उत्पन्न होते है ?

[६३९-२० उ] गौतम ! (वे) पर्याप्तक सम्मूर्च्छिम खेचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिको से उत्पन्न होते है, (किन्तु) अपर्याप्तक सम्मूर्च्छिम खेचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिको से उत्पन्न नही होते ।

[२१] जति गब्भवक्कतियखहयरपंचेंदियतिरिक्खजोणिएहितो उववज्जति कि सखिज्जवासाउएहितो उववज्जति ? असखेज्जवासाउएहितों उववज्जति ?

गोयमा ! सखिज्जवासाउएहितो उववज्जति, नो असखेज्जवासाउएहितों उववज्जति ।

[६३९-२१ प्र] (भगवन् !) यदि (वे) गर्भज खेचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिको से उत्पन्न होते है तो क्या सख्यातवर्षायुष्क गर्भज खेचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिको से उत्पन्न होते है, अथवा असख्यातवर्षायुष्क गर्भज खेचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिको से उत्पन्न होते हैं ?

[६३९-२१ उ] गौतम ! (वे) सख्यातवर्ष की आयु वाले गर्भज खेचर-पचेन्द्रिय-तिर्यग्-योनिको से उत्पन्न होते हैं, (किन्तु) असख्यातवर्षायुष्क गर्भज खेचर-पचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिको से उत्पन्न नही होते ।

[२२] जति सखेज्जवासाउयगब्भवक्कतियखहयरपचेंदियतिरिक्खजोणिएहितो उववज्जति कि पज्जत्तएहितो उववज्जति ? अपज्जत्तएहितो उववज्जति ?

गोयमा ! पज्जत्तएहितो उववज्जति, नो अपज्जत्तएहितो उववज्जति ।

[६३९-२२ प्र] (भगवन् !) यदि (वे) सख्यातवर्षायुष्क गर्भज खेचर-पचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिको से उत्पन्न होते है, तो क्या पर्याप्तक सख्यातवर्षायुष्क गर्भज खेचर-पचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिको से उत्पन्न

होते है, अथवा अपर्याप्तक असख्यातवर्षायुष्क गर्भज खेचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चयोनिको से उत्पन्न होते हैं ?

[६३९-२२ उ] गौतम ! (वे) पर्याप्तक सख्यातवर्षायुष्क गर्भज खेचर-पचेन्द्रिय-तिर्यञ्च-योनिको से उत्पन्न होते हैं (किन्तु) अपर्याप्तक सख्यातवर्षायुष्क गर्भज खेचर-पचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिको से उत्पन्न नही होते ।

[२३] जति मणुस्सेहिंतो उववज्जति कि सम्मुच्छिममणुस्सेहितो उववज्जति ? गब्भवक्कति-यमणुस्सेहितो उववज्जति ?

गोयमा ! नो सम्मुच्छिममणुस्सेहिंतो उववज्जति, गब्भवक्कतियमणुस्सेहितो उववज्जति ।

[६३९-२३ प्र] (भगवन् !) यदि (वे) मनुष्यो से उत्पन्न होते है तो क्या सम्मूर्च्छिम मनुष्यो से उत्पन्न होते है अथवा गर्भज मनुष्यो से उत्पन्न होते है ?

[६३९-२३ उ] गौतम ! (वे) सम्मूर्च्छिम मनुष्यो से उत्पन्न नही होते, गर्भज मनुष्यो से उत्पन्न होते है ।

[२४] जइ गब्भवक्कतियमणुस्सेहितो उववज्जति कि कम्मभूमगगब्भवक्कतियमणुस्सेहितो उववज्जति ? अकम्मभूमगगब्भवक्कतियमणुस्सेहितो उववज्जति ? अतरदीवगगब्भवक्कतियमणुस्से-हितो उववज्जति ?

गोयमा ! कम्मभूमगगब्भवक्कतियमणुस्सेहितो उववज्जति, नो अकम्मभूमगगब्भवक्कतिय-मणुस्सेहितो उववज्जति, नो अंतरदीवगगब्भवक्कतियमणुस्सेहितो उववज्जति ।

[६३९-२४ प्र] (भगवन् !) यदि (वे) गर्भज मनुष्यो से उत्पन्न होते है तो क्या कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यो से उत्पन्न होते है या अकर्मभूमिज गर्भज मनुष्यो से उत्पन्न होते है अथवा अन्तर्द्वीपज गर्भज मनुष्यो से उत्पन्न होते है ?

[६३९-२४ उ] गौतम ! (वे) कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यो से उत्पन्न होते है, (किन्तु) न तो अकर्मभूमिज गर्भज मनुष्यो से उत्पन्न होते है और न अन्तर्द्वीपज गर्भज मनुष्यो से उत्पन्न होते हैं ।

[२५] जति कम्मभूमगगब्भवक्कतियमणुस्सेहितो उववज्जति कि सखेज्जवासाउएहितो उववज्जति ? असखेज्जवासाउएहिंतो उववज्जति ?

गोयमा ! सखेज्जवासाउयकम्मभूमगगब्भवक्कतियमणूसेहितो उववज्जति, नो असखेज्जवासा-उयकम्मभूमगगब्भवक्कतियमणूसेहितो उववज्जति ।

[६३९-२५ प्र] (भगवन् !) यदि कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यो से उत्पन्न होते है तो क्या सख्यात वर्ष की आयु वाले कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यो से उत्पन्न होते हैं, अथवा असख्यात वर्ष की आयु वाले कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यो से उत्पन्न होते हैं ?

[६३९-२५ उ] गौतम ! (वे) सख्यात वर्ष की आयु वाले कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यो से उत्पन्न होते है, किन्तु असख्यात वर्ष की आयु वाले कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यो से उत्पन्न नही होते ।

[२६] जति सखेज्जवासाउयकम्मभूमगगब्भवक्कतियमणूसेहितो उववज्जति किं पज्जत्तगेहितो उववज्जंति ? अपज्जत्तगेहिंतो उववज्जति ?

गोयमा ! पज्जत्तएहितो उववज्जति, नो अपज्जत्तएहितो उववज्जति ।

[६३९-२६ प्र] (भगवन् !) यदि (वे) सख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यो मे उत्पन्न होते है तो क्या पर्याप्तक सख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यो से उत्पन्न होते है या अपर्याप्तक सख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यो से उत्पन्न होते है ?

[६३९-२६ उ] गौतम ! पर्याप्तक सख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यो से उत्पन्न होते है, किन्तु अपर्याप्तक सख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यो से उत्पन्न नही होते ।

६४० एव जहा ओहिया उववाइया तहा रयणप्पभापुढविनेरइया वि उववाएयव्वा ।

[६४०] इसी प्रकार जैसे औघिक (सामान्य) नारको के उपपात (उत्पत्ति) के विषय मे कहा गया है, वैसे ही रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिको के उपपात के विषय मे कहना चाहिए ।

६४१ सक्करप्पभापुढविनेरइयाण पुच्छा ।

गोयमा ! एते वि जहा ओहिया तहेवोववाएयव्वा । नवर सम्मुच्छिमेहिंतो पडिसेहो कातव्वो ।

[६४१ प्र] शर्कराप्रभापृथ्वी के नैरयिको की उत्पत्ति के विषय मे पृच्छा ?

[६४१ उ] गौतम ! शर्कराप्रभापृथ्वी के नारको का उपपात भी औघिक (सामान्य) नैरयिको के उपपात की तरह ही समझना चाहिए । विशेष यह है कि सम्मूर्च्छिमो से (इनकी उत्पत्ति का) निषेध करना चाहिए ।

६४२ वालुयप्पभापुढविनेरइया ण भते ! कतोहिंतो उववज्जति ?

गोयमा ! जहा सक्करप्पभापुढविनेरइया । नवर भुयपरिसप्पेहिंतो वि पडिसेहो कातव्वो ।

[६४२ प्र] भगवन् ! वालुकाप्रभापृथ्वी के नैरयिक कहाँ से उत्पन्न होते है ?

[६४२ उ] गौतम ! जैसे शर्कराप्रभापृथ्वी के नैरयिको की उत्पत्ति के विषय मे कहा, वैसे ही इनकी उत्पत्ति के विषय मे कहना चाहिए । विशेष यह है कि भुजपरिसर्प (पचेन्द्रिय तिर्यञ्च) से (इनकी उत्पत्ति का) निषेध करना चाहिए ।

६४३ पकप्पभापुढविनेरइयाण पुच्छा ।

गोयमा ! जहा वालुयप्पभापुढविनेरइया । नवर खहयरेहिंतो वि पडिसेहो कातव्वो ।

[६४३ प्र] भगवन् ! पकप्रभापृथ्वी के नैरयिक कहाँ से उत्पन्न होते है ?

[६४३ उ] गौतम ! जैसे वालुकाप्रभापृथ्वी के नैरयिको की उत्पत्ति के विषय मे कहा, वैसे ही इनकी उत्पत्ति के विपय मे कहना चाहिए । विशेष यह है कि खेचर (पचेन्द्रिय तिर्यञ्चो) से (इनकी उत्पत्ति का) निषेध करना चाहिए ।

६४४. धूमप्पभापुढविनेरइयाणं पुच्छा ।

गोयमा ! जहा पंकप्पभापुढविनेरइया । नवरं चउप्पएहिंतो वि पडिसेहो कातव्वो ।

[६४४ प्र] भगवन् ! धूमप्रभापृथ्वी के नैरयिक कहाँ से उत्पन्न होते है ?

[६४४ उ] गौतम ! जैसे पंकप्रभापृथ्वी के नैरयिको के उत्पाद के विषय मे कहा, उसी प्रकार इनके उत्पाद के विषय मे कहना चाहिए। विशेष यह है कि चतुष्पद (स्थलचर पचेन्द्रिय तिर्यञ्चो) से (इनकी उत्पत्ति का) निषेध करना चाहिए ।

६४५ [१] तमापुढविनेरइया ण भंते ! कतोहिंतो उववज्जति ?

गोयमा ! जहा धूमप्पभापुढविनेरइया । नवरं थलयरेहिंतो वि पडिसेहो कातव्वो ।

[६४५-१ प्र] भगवन् ! तम प्रभापृथ्वी के नैरयिक कहाँ से उत्पन्न होते है ?

[६४५-१ उ] गौतम ! जैसे धूमप्रभापृथ्वी के नैरयिको की उत्पत्ति के विषय मे कहा, वैसे ही इस पृथ्वी के नैरयिको की उत्पत्ति के विषय मे समझना चाहिए । विशेष यह है कि स्थलचर पचेन्द्रिय तिर्यचो से इनकी उत्पत्ति का निषेध करना चाहिए ।

[२] इमेणं अभिलावेण—जति पंचिदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जति किं जलयरपचेंदिएहिंतो उववज्जति ? थलयरपचेंदिएहिंतो उववज्जति ? खहयरपंचिदिएहिंतो उववज्जति ?

गोयमा ! जलयरपचेदिएहिंतो उववज्जति, नो थलयरेहिंतो नो खहयरेहिंतो उववज्जति ।

[६४५-२ प्र] इस (पूर्वोक्त) अभिलाप (कथन) के अनुसार—यदि वे (धूमप्रभापृथ्वी-नारक) पचेन्द्रिय तिर्यग्योनिको से उत्पन्न होते हैं तो क्या जलचर पचेन्द्रिय तिर्यञ्चो से उत्पन्न होते है ?, या स्थलचर पचेन्द्रिय तिर्यञ्चो से उत्पन्न होते है ? अथवा खेचर पचेन्द्रिय तिर्यञ्चो से उत्पन्न होते है ?

[६४५-२ उ] गौतम ! (वे) जलचर पचेन्द्रिय तिर्यञ्चो से उत्पन्न होते है, किन्तु न तो स्थलचर पचेन्द्रिय तिर्यञ्चो से उत्पन्न होते है और न ही खेचर पचेन्द्रिय तिर्यञ्चो से उत्पन्न होते है।

[३] जति मणुस्सेहिंतो उववज्जति किं कम्मभूमएहिंतो अकम्मभूमएहिंतो अंतरदीवएहिंतो ?

गोयमा ! कम्मभूमएहिंतो उववज्जति, नो अकम्मभूमएहिंतो उववज्जति, नो अतरदीवएहिंतो ।

[६४५-३ प्र] भगवन् ! यदि (वे) मनुष्यो से उत्पन्न होते हैं तो क्या कर्मभूमिज मनुष्यो से या अकर्मभूमिज मनुष्यो से अथवा अन्तर्द्वीपज मनुष्यो से उत्पन्न होते हैं ?

[६४५-३ उ] गौतम ! (वे) कर्मभूमिज मनुष्यो से उत्पन्न होते हैं, किन्तु न तो अकर्मभूमिज मनुष्यो से उत्पन्न होते है और न अन्तर्द्वीपज मनुष्यो से उत्पन्न होते हैं ।

[४] जति कम्मभूमएहितो उववज्जति कि सखेज्जवासाउएहितो असखेज्जवासाउएहितो उववज्जति ?

गोयमा ! सखेज्जवासाउएहितो उववज्जति, नो असखेज्जवासाउएहितो उववज्जति ।

[६४५-४ प्र] भगवन् ! यदि कर्मभूमिज मनुष्यो स उत्पन्न होते है तो क्या सख्यात-वर्षायुष्क कर्मभूमिज मनुष्यो से उत्पन्न होते है अथवा असख्यातवर्पायुष्क कर्मभूमिज मनुष्यो से उत्पन्न होते हैं ?

[६४५-४ उ] गौतम ! (वे) सख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज मनुष्यो से उत्पन्न होते है, (किन्तु) असख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज मनुष्यो से नही उत्पन्न होते ।

[५] जति सखेज्जवासाउएहितो उववज्जति कि पज्जत्तएहितो उववज्जति ? अपज्जत्तए-हितो उववज्जति ?

[६४५-५ प्र] (भगवन्) ! यदि (तम प्रभापृथ्वी के नैरयिक) सख्यातवर्पायुष्क कर्मभूमिज मनुष्यो से उत्पन्न होते है तो क्या पर्याप्तको से उत्पन्न होते है अथवा अपर्याप्तको से उत्पन्न होते है ?

[६४५-५ उ] गौतम ! पर्याप्तको से उत्पन्न होते है, अपर्याप्तको से उत्पन्न नही होते ।

[६] जति पज्जत्तयसखेज्जवासाउयकम्मभूमएहितो उववज्जति कि इत्थीहितो उववज्जति ? पुरिसेहितो उववज्जति ? नपु सएहितो उववज्जति ?

गोयमा ! इत्थीहितो वि उववज्जति, पुरिसेहितो वि उववज्जति, नपु सएहितो वि उववज्जति ।

[६४५-६ प्र] (भगवन् !) यदि वे पर्याप्तक सख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज मनुष्यो से उत्पन्न होते हैं तो क्या स्त्रियो से उत्पन्न होते है ? या पुरुषो से उत्पन्न होते हैं ? अथवा नपु सको से उत्पन्न होते हैं ?

[६४५-६ उ] गौतम ! (वे) स्त्रियो से भी उत्पन्न होते हैं, पुरुषो से भी उत्पन्न होते है और नपु सको से भी उत्पन्न होते है ।

६४६ अधेसत्तमापुढविनेरइया ण भते ! कतोहितो उववज्जति ?
गोयमा ! एवं चेव । नवर इत्थीहितो [वि] पडिसेधो कातव्वो ।

[६४६ प्र] भगवन् ! अध सप्तमी (तमस्तमा) पृथ्वी के नैरयिक कहाँ से उत्पन्न होते है ?

[६४६ उ] गौतम ! इनकी उत्पत्ति-सम्बन्धी प्ररूपणा इसी प्रकार (छठी तम प्रभापृथ्वी के नैरयिको की उत्पत्ति के समान) समझनी चाहिए । विशेष यह है कि स्त्रियो से इनके उत्पन्न होने का निषेध करना चाहिए ।

६४७ अस्सण्णी खलु पढम, दोच्च च सिरीसिवा, तइय पक्खी ।
सीहा जति चउत्थि, उरगा पुण पचमीपुढवि ।। १८३ ।।
छट्ठि च इत्थियाओ, मच्छा मणुया य सत्तमि पुढवि ।
एसो परमुववाओ बोधव्वो नरयपुढवीण ।। १८४ ।।

[६४७ सग्रहगाथार्थ—] असज्ञी निश्चय ही पहली (नरकभूमि) मे, सरीसृप (रेंग कर चलने वाले सर्प आदि) दूसरी (नरकपृथ्वी) तक, पक्षी तीसरी (नरकपृथ्वी) तक, सिंह चौथी (नरक-

पृथ्वी) तक, उरग पाचवी पृथ्वी तक, स्त्रिया छठी (नरकभूमि) तक और मत्स्य एव मनुष्य (पुरुष) सातवी (नरक) पृथ्वी तक उत्पन्न होते है। नरकपृथ्वियो मे (पूर्वोक्त जीवो का) यह परम (उत्कृष्ट) उपपात समझना चाहिए ।। १८३-१८४ ।।

६४८ असुरकुमारा ण भते ! कतोहितो उववज्जति ?

गोयमा ! नो नेरइएहितो उववज्जति, तिरिक्खजोणिएहितो उववज्जति, मणुएहितो उववज्जति, नो देवेहितो उववज्जति। एव जेहितो नेरइयाण उववाओ तेहितो असुरकुमाराण वि भाणितव्वो । नवर असखेज्जवासाउय-अकम्मभूमग-अतरदीवगमणुस्सतिरिक्खजोणिएहितो वि उववज्जति । सेस त चेव ।

[६४८ प्र] भगवन् ! असुरकुमार कहाँ से (आकर) उत्पन्न होते हैं ?

[६४८ उ] गौतम ! (वे) नैरयिको से उत्पन्न नही होते, (किन्तु) तिर्यञ्चयोनिको से उत्पन्न होते है, मनुष्यो से उत्पन्न होते है परन्तु देवो से उत्पन्न नही होते। इसी प्रकार जिन-जिन से नारको का उपपात कहा गया है, उन-उन से असुरकुमारो का भी उपपात कहना चाहिए। विशेषता यह है कि (ये) असख्यातवर्ष की आयु वाले, अकर्मभूमिज एव अन्तर्द्वीपज मनुष्यो और तिर्यञ्चयोनिको से भी उत्पन्न होते है। शेष सब बाते वही (पूर्ववत्) समझनी चाहिए।

६४९ एव जाव थणियकुमारा।

[६४९] इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमारो तक के उपपात के विषय मे कहना चाहिए।

६५०. [१] पुढविकाइया ण भते ! कओहितो उववज्जति ? कि नेरइएहितो जाव देवेहितो उववज्जति ?

गोयमा ! नो नेरइएहितो उववज्जति, तिरिक्खजोणिएहितो मणुयजोणिएहितो देवेहितो वि उववज्जति।

[६५०-१ प्र] भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीव कहाँ से उत्पन्न होते हैं ? क्या वे नारको से, तिर्यंचो से, मनुष्यो से अथवा देवो से उत्पन्न होते है ?

[६५०-१ उ] गौतम ! (वे) नारको से उत्पन्न नही होते (किन्तु) तिर्यञ्चयोनिको से, मनुष्ययोनिको से तथा देवो से भी उत्पन्न होते है।

[२] जति तिरिक्खजोणिएहितो उववज्जति कि एगिदियतिरिक्खजोणिएहितो उववज्जति ? जाव पचेंदियतिरिक्खजोणिएहितो उववज्जति ?

गोयमा ! एगिदियतिरिक्खजोणिएहितो वि जाव पचेंदियतिरिक्खजोणिएहितो वि उववज्जति।

[६५०-२ प्र] (भगवन् !) यदि (वे) तिर्यञ्चयोनिको से (आ कर) उत्पन्न होते हैं, तो क्या (वे) एकेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिको से यावत् पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिको से उत्पन्न होते हैं ?

[६५०-२ उ] गौतम ! (वे) एकेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिको से उत्पन्न होते हे, यावत् पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिको से भी उत्पन्न होते है।

[३] जति एगिदियतिरिक्खजोणिएहितो उववज्जति कि पुढविकाइएहितो जाव वणप्फइ-काइएहितो उववज्जति ?

गोयमा ! पुढविकाइएहितो वि जाव वणप्फइकाइएहितो वि उववज्जति ।

[६५०-३ प्र] (भगवन् !) यदि एकेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिको से (वे) उत्पन्न होते है तो क्या पृथ्वीकायिको से यावत् वनस्पतिकायिको से (आकर) उत्पन्न होते है ?

[६५०-३ उ] गौतम ! वे पृथ्वीकायिको से भी यावत् वनस्पतिकायिको से भी (आकर) उत्पन्न होते हैं।

[४] जति पुढविकाइएहितो उववज्जति कि सुहुमपुढविकाइएहितो उववज्जति ? बादर-पुढविकाइएहितो उववज्जति ?

गोयमा ! दोहितो वि उववज्जति ।

[६५०-४ प्र] (भगवन् !) यदि पृथ्वीकायिको से (आकर) उत्पन्न होते है तो क्या (वे) सूक्ष्म पृथ्वीकायिको से उत्पन्न होते है या बादर पृथ्वीकायिको से उत्पन्न होते है ?

[६५०-४ उ] गौतम ! (वे उपर्युक्त) दोनो से उत्पन्न होते हैं।

[५] जति सुहुमपुढविकाइएहितो उववज्जति कि पज्जत्तसुहुमपुढविकाइएहितो उववज्जति ? अपज्जत्तसुहुमपुढविकाइएहितो उववज्जति ?

गोयमा ! दोहितो वि उववज्जति ।

[६५०-५ प्र] (भगवन् !) यदि सूक्ष्म पृथ्वीकायिको से (आकर वे) उत्पन्न होते है तो क्या पर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिको से उत्पन्न होते हैं अथवा अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिको से उत्पन्न होते है ?

[६५०-५ उ] गौतम ! (वे उपर्युक्त) दोनो से ही (आकर) उत्पन्न होते हैं।

[६] जति बादरपुढविकाइएहितो उववज्जति किं पज्जत्तएहितो अपज्जत्तएहितो उववज्जति ?

गोयमा ! दोहितो वि उववज्जति ।

[६५०-६ प्र] (भगवन् !) यदि बादर पृथ्वीकायिको से (आकर) वे उत्पन्न होते हैं तो क्या पर्याप्त बादर पृथ्वीकायिको से उत्पन्न होते है या अपर्याप्त बादर पृथ्वीकायिको से उत्पन्न होते है ?

[६५०-६ उ] गौतम ! (पूर्वोक्त) दोनो से ही (वे) उत्पन्न होते हैं।

[७] एव जाव वणप्फतिकाइया चउक्कएण भेदेण उववाएयव्वा ।

[६५०-७] इसी प्रकार यावत् वनस्पतिकायिको तक चार-चार भेद करके उनके उपपात के विषय मे कहना चाहिए।

[८] जति बेइंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जति किं पज्जत्तयबेइंदिएहिंतो उववज्जति ? अपज्जत्तयबेइंदिएहिंतो उववज्जति ?

गोयमा ! दोहिंतो वि उववज्जति ।

[६५०-८ प्र] (भगवन् !) यदि द्वीन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिको से (आकर) वे (एकेन्द्रिय जीव) उत्पन्न होते है तो क्या पर्याप्त द्वीन्द्रिय तिर्यञ्चो से उत्पन्न होते हैं या अपर्याप्त द्वीन्द्रिय तिर्यञ्चो से उत्पन्न होते है ?

[६५०-८ उ] गौतम ! (वे उपर्युक्त) दोनो से भी उत्पन्न होते है ।

[९] एव तेइंदिय-चउरिंदिएहिंतो वि उववज्जति ।

[६५०-९] इसी प्रकार त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिको से भी (वे) उत्पन्न होते है ।

[१०] जति पचेंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जति किं जलयरपचेंदियेहिंतो उववज्जति ?

एवं जेहिंतो नेरइयाण उववाओ भणितो तेहिंतो एतेसिं पि भाणितव्वो । नवर पज्जत्तग-अपज्जत्तगेहिंतो वि उववज्जति, सेस त चेव ।

[६५०-१० प्र] (भगवन् !) यदि (वे) पचेन्द्रिय तिर्यग्योनिको से उत्पन्न होते हैं, तो क्या जलचर पचेन्द्रिय-तिर्यञ्चो से उत्पन्न होते हैं (या अन्य स्थलचर आदि पचेन्द्रिय तिर्यञ्चो से उत्पन्न होते है ?)

[६५०-१० उ] (गौतम !) एव जिन-जिन से नैरयिको के उपपात के विषय मे कहा है, उन-उन से इनका (पृथ्वीकायिको से लेकर वनस्पतिकायिको तक का) भी उपपात कह देना चाहिए । विशेष यह है कि पर्याप्तको और अपर्याप्तको से भी उत्पन्न होते हैं । शेष (सब निरूपण) पूर्ववत् समझना चाहिए ।

[११] जति मणुस्सेहिंतो उववज्जति किं सम्मुच्छिममणूसेहिंतो उववज्जति ? गब्भवक्कं-तियमणूसेहिंतो उववज्जति ?

गोयमा ! दोहिंतो वि उववज्जति ।

[६५०-११ प्र] (भगवन् !) यदि (वे) मनुष्यो से उत्पन्न होते हैं तो क्या सम्मूर्च्छिम मनुष्यो से उत्पन्न होते है या गर्भज मनुष्यो से उत्पन्न होते हैं ?

[६५०-११ उ] गौतम ! पृथ्वीकायिक दोनो (सम्मूर्च्छिम और गर्भज) से उत्पन्न होते है ।

[१२] जति गब्भवक्कंतियमणूसेहिंतो उववज्जति किं कम्मभूमगगब्भवक्कंतियमणूसेहिंतो उववज्जति ? अकम्मभूमगगब्भवक्कंतियमणूसेहिंतो उववज्जति ?

सेस जहा नेरइयाण (सु ६३९ [४-२६]) । नवर अपज्जत्तएहिंतो वि उववज्जति ।

[६५०-१२ प्र] (भगवन् !) यदि गर्भज मनुष्यो से (आकर) उत्पन्न होते हैं तो क्या कर्म-भूमिज गर्भज मनुष्यो से उत्पन्न होते है अथवा अकर्मभूमिज गर्भज मनुष्यो से उत्पन्न होते हैं ?

[६५०-१२ उ] (गौतम !) शेष जो (कथन) नैरयिको के (उपपात के) सम्बन्ध मे (सू ६३९-४ से २४ तक मे) कहा है, वही (पृथ्वीकायिक आदि एकेन्द्रियो के सम्बन्ध मे समझ लेना चाहिए।) विशेष यह है कि (ये) अपर्याप्तक (कर्मभूमिज गर्भज) मनुष्यो से भी उत्पन्न होते हैं।

[१३] जति देवेहिंतो उववज्जति किं भवणवासि-वाणमतर-जोइसिय-वेमाणिएहिंतो ?

गोयमा ! भवणवासिदेवेहिंतो वि उववज्जति जाव वेमाणियदेवेहिंतो वि उववज्जति।

[६५०-१३ प्र] (भगवन् !) यदि देवो से उत्पन्न होते है, तो क्या भवनवासी, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क अथवा वैमानिक देवो से उत्पन्न होते हैं ?

[६५०-१३ उ] गौतम ! भवनवासी देवो से भी उत्पन्न होते है, यावत् वैमानिक देवो से भी उत्पन्न होते है।

[१४] जति भवणवासिदेवेहिंतो उववज्जति किं असुरकुमारदेवेहिंतो जाव थणियकुमार-देवेहिंतो उववज्जति।

गोयमा ! असुरकुमारदेवेहिंतो वि जाव थणियकुमारदेवेहिंतो वि उववज्जति।

[६५०-१४ प्र] (भगवन् !) यदि (ये) भवनवासी देवो से उत्पन्न होते है तो असुरकुमार से लेकर स्तनितकुमार तक (दस प्रकार के भवनवासी देवो मे से) किनसे उत्पन्न होते है ?

[६५०-१४ उ] गौतम ! (ये) असुरकुमार देवो से यावत् स्तनितकुमार देवो तक से भी (दस ही प्रकार के भवनवासी देवो से) उत्पन्न होते है।

[१५] जति वाणमंतरेहिंतो उववज्जति किं पिसाएहिंतो जाव गंधव्वेहिंतो उववज्जति ?

गोयमा ! पिसाएहिंतो वि जाव गंधव्वेहिंतो वि उववज्जति।

[६५०-१५ प्र] (भगवन् !) यदि (वे) वाणव्यन्तर देवो से उत्पन्न होते है, तो क्या पिशाचो से यावत् गन्धर्वों से उत्पन्न होते हैं ?

[६५०-१५ उ] गौतम ! (वे) पिशाचो से यावत् गन्धर्वों (तक के सभी प्रकार के वाण-व्यन्तर देवो) से उत्पन्न होते है।

[१६] जइ जोइसियदेवेहिंतो उववज्जति किं चंदविमाणेहिंतो जाव ताराविमाणेहिंतो उववज्जति ?

गोयमा ! चंदविमाणजोइसियदेवेहिंतो वि जाव ताराविमाणजोइसियदेवेहिंतो वि उववज्जति।

[६५०-१६ प्र] (भगवन् !) यदि (वे) ज्योतिष्क देवो से उत्पन्न होते है तो क्या चन्द्रविमान के ज्योतिष्क देवो से उत्पन्न होते हैं अथवा यावत् ताराविमान के ज्योतिष्क देवो से उत्पन्न होते है ?

[६५०-१६ उ] गौतम ! चन्द्रविमान के ज्योतिष्क देवो से भी उत्पन्न होते है तथा यावत् ताराविमान के ज्योतिष्कदेवो से भी उत्पन्न होते है।

[१७] जति वेमाणियदेवेहिंतो उववज्जति किं कप्पोवगवेमाणियदेवेहिंतो उववज्जति ? कप्पातीतगवेमाणियदेवेहिंतो उववज्जति ?

गोयमा ! कप्पोवगवेमाणियदेवेहितो उववज्जति, नो कप्पातीयवेमाणियदेवेहितो उववज्जति ।

[६५०-१७ प्र] (भगवन् !) यदि वैमानिक देवो से उत्पन्न होते हैं तो क्या कल्पोपपन्न वैमानिक देवो से उत्पन्न होते है या कल्पातीत वैमानिक देवो से उत्पन्न होते हैं ?

[६५०-१७ उ] गौतम ! (वे) कल्पोपपन्न वैमानिक देवो से उत्पन्न होते है, (किन्तु) कल्पातीत वैमानिक देवो से आकर उत्पन्न नही होते ।

[१८] जति कप्पोवगवेमाणियदेवेहितो उववज्जति किं सोहम्मेहितो जाव अच्चुएहितो उववज्जति ।

गोयमा ! सोहम्मीसाणेहितो उववज्जति, नो सणकुमार जाव अच्चुएहितो उववज्जति ।

[६५०-१८ प्र] (भगवन् !) यदि कल्पोपपन्न वैमानिक देवो से उत्पन्न होते हैं तो क्या वे (पृथ्वीकायिक) सौधर्म (कल्प के देवो) से यावत् अच्युत (कल्प तक के) देवो से उत्पन्न होते हैं ?

[६५०-१८ उ] गौतम ! (वे) सौधर्म और ईशान कल्प के देवो से उत्पन्न होते है, किन्तु सनत्कुमार से लेकर अच्युत कल्प तक के देवो से उत्पन्न नही होते ।

६५१. एव आउक्काइया वि ।

[६५१] इसी प्रकार अप्कायिको की उत्पत्ति के विषय मे भी कहना चाहिए ।

६५२ एव तेउ-वाऊ वि । नवर देववज्जेहितो उववज्जति ।

[६५२] इसी प्रकार तेजस्कायिको एव वायुकायिको की उत्पत्ति के विषय मे समझना चाहिए । विशेष यह है कि (ये दोनो) देवो को छोडकर (दूसरो—नारको, तिर्यञ्चो तथा मनुष्यो—से) उत्पन्न होते है ।

६५३ वणस्सइकाइया जहा पुढविकाइया ।

[६५३] वनस्पतिकायिको की उत्पत्ति के विषय मे कथन, पृथ्वीकायिको के उत्पत्ति-विषयक कथन की तरह समझना चाहिए ।

६५४ बेइदिय-तेइदिय-चउरेंदिया एते जहा तेउ-वाऊ देववज्जेहितो भाणितव्वा ।

[६५४] द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवो की उत्पत्ति तेजस्कायिको और वायुकायिको की उत्पत्ति के समान समझनी चाहिए । देवो को छोड कर (अन्यो—नारको, तिर्यञ्चो तथा मनुष्यो से) इनकी उत्पत्ति कहनी चाहिए ।

६५५ [१] पचेंदियतिरिक्खजोणिया णं भते ! कतोहितो उववज्जति ? किं नेरइएहितो उववज्जति ? जाव देवेहितो उववज्जति ?

गोयमा ! नेरइएहितो वि तिरिक्खजोणिएहितो वि मणूसेहितो वि देवेहितो वि उववज्जति ।

[६५५-१ प्र] भगवन् ! पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक कहाँ से (आकर) उत्पन्न होते है ? क्या वे नारको से उत्पन्न होते है, यावत् देवो से उत्पन्न होते है ?

[६५५-१ उ] गौतम ! (वे) नैरयिको से भी उत्पन्न होते है, तिर्यञ्चयोनिको से भी, मनुष्यो से भी और देवो से भी उत्पन्न होते है।

[२] जति नेरइएहिंतो उववज्जति कि रयणप्पभापुढविनेरइएहिंतो उववज्जति ? जाव अहेसत्तमापुढविनेरइएहिंतो उववज्जति ?

गोयमा ! रयणप्पभापुढविनेरइएहिंतो वि जाव अहेसत्तमापुढविनेरइएहिंतो वि उववज्जति ।

[६५५-२ प्र] (भगवन् !) यदि नैरयिको से उत्पन्न होते है, तो क्या रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिको से उत्पन्न होते है, अथवा यावत् अध सप्तमी (तमस्तमा) पृथ्वी (तक) के नैरयिको से उत्पन्न होते हैं ?

[६५५-२ उ.] गौतम ! रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिको से भी उत्पन्न होते हैं, यावत् अध सप्तमी-पृथ्वी के नैरयिको से भी उत्पन्न होते है ।

[३] जति तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जति कि एगिदिएहिंतो उववज्जति ? जाव पचेंदिएहिंतो उववज्जति ?

गोयमा ! एगिदिएहिंतो वि जाव पचेंदिएहिंतो वि उववज्जति ।

[६५५-३ प्र] (भगवन् !) यदि तिर्यञ्चयोनिको से (वे) उत्पन्न होते हैं तो क्या एकेन्द्रिय-तिर्यग्योनिको से उत्पन्न होते हैं, (या) यावत् पचेन्द्रिय तिर्यग्योनिको से उत्पन्न होते है ?

[६५५-३ उ] गौतम ! (वे) एकेन्द्रिय तिर्यञ्चो से भी यावत् पचेन्द्रिय तिर्यञ्चो से भी उत्पन्न होते है ।

[४] जति एगिदिएहिंतो उववज्जति कि पुढविकाइएहिंतो उववज्जति ?

एव जहा पुढविकाइयाण उववाओ भणितो तहेव एएसि पि भाणितव्वो । नवर देवेहिंतो जाव सहस्सारकप्पोवगवेमाणियदेवेहिंतो वि उववज्जति, नो आणयकप्पोवगवेमाणियदेवेहिंतो जाव अच्चुएहिंतो वि उववज्जंति ।

[६५५-४ प्र] (भगवन् !) यदि (वे) एकेन्द्रियो से उत्पन्न होते है, तो क्या पृथ्वीकायिको से उत्पन्न होते है या यावत् वनस्पतिकायिको (तक) से उत्पन्न होते है ?

[६५५-४ उ] गौतम ! इसी प्रकार जैसे पृथ्वीकायिको का उपपात कहा है, वैसे ही इनका (पचेन्द्रिय तिर्यञ्चो का) भी उपपात कहना चाहिए। विशेष यह है कि देवो से—यावत् सहस्रार-कल्पोपपन्न वैमानिक देवो तक से भी उत्पन्न होते हैं, किन्तु आनतकल्पोपपन्न वैमानिक देवो से लेकर अच्युतकल्पोपपन्न वैमानिक देवो तक से (वे) उत्पन्न नही होते ।

६५६ [१] मणुस्सा ण भते ! कतोहिंतो उववज्जति ? कि नेरइएहिंतो जाव देवेहिंतो उववज्जति ?

गोयमा ! नेरइएहिंतो वि उववज्जति जाव देवेहिंतो वि उववज्जति ।

[६५६-१ प्र] भगवन् ! मनुष्य कहाँ से (आकर) उत्पन्न होते है ? क्या वे नैरयिको से उत्पन्न होते है, यावत् देवो से उत्पन्न होते है ?

[६५६-१ उ] गौतम ! (वे) नैरयिको से भी उत्पन्न होते है और यावत् देवो से भी उत्पन्न होते है ।

[२] जति नेरइएहिंतो उववज्जति कि रयणप्पभापुढविनेरइएहिंतो जाव अहेसत्तमापुढविनेरएहितो उववज्जति ?

गोयमा ! रतणप्पभापुढविनेरइएहिंतो वि जाव तमापुढविनेरएहिंतो वि उववज्जति, नो अहेसत्तमापुढविनेरइएहिंतो उववज्जति ।

[६५६-२ प्र] (भगवन् !) यदि नैरयिको से उत्पन्न होते है, तो क्या रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिको से उत्पन्न होते है, यावत् अध सप्तमी (तमस्तमा) पृथ्वी के नैरयिको से उत्पन्न होते है ?

[६५६-२ उ] गौतम ! (वे) रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिको से लेकर यावत् तम प्रभापृथ्वी तक के नैरयिको से उत्पन्न होते हैं, किन्तु अध सप्तमीपृथ्वी के नैरयिको से उत्पन्न नही होते ।

[३] जति तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जति कि एगिदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जति ?

एव जेहिंतो पचेंदियतिरिक्खजोणियाण उववाओ भणितो तेहिंतो मणुस्साण वि णिरवसेसो भाणितव्वो । नवर अधेसत्तमापुढविनेरइय-तेउ-वाउकाइएहिंतो ण उववज्जति । सव्वदेवेहिंतो वि उववज्जावेयव्वा जाव कप्पातीतगवेमाणिय-सव्वट्ठसिद्धदेवेहिंतो वि उववज्जावेयव्वा ।

[६५६-३ प्र.] (भगवन् !) यदि मनुष्य तिर्यञ्चयोनिको से उत्पन्न होते है तो क्या एकेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिको से उत्पन्न होते हैं, (या यावत् पचेन्द्रिय तक के तिर्यञ्चयोनिको से उत्पन्न होते हैं ?)

[६५६-३ उ] (गौतम !) जिन-जिनसे पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिको का उपपात (उत्पत्ति) कहा गया है, उन-उनसे मनुष्यो का भी समग्र उपपात उसी प्रकार कहना चाहिए । विशेषता यह है कि (मनुष्य) अध सप्तमीनरकपृथ्वी के नैरयिको, तेजस्कायिको और वायुकायिको से उत्पन्न नही होते । (दूसरी विशेषता यह है कि मनुष्य का) उपपात सर्व देवो से कहना चाहिए, यावत् कल्पातीत वैमानिक देवो—सर्वार्थसिद्धविमान तक के देवो से भी (मनुष्यो की) उत्पत्ति समझनी चाहिए ।

६५७ वाणमंतरदेवा ण भते ! कओहिंतो उववज्जति ? कि नेरइएहिंतो जाव देवेहिंतो उववज्जति ?

गोयमा ! जेहिंतो असुरकुमारा ।

[६५७ प्र] भगवन् ! वाणव्यन्तर देव कहाँ से (आकर) उत्पन्न होते हैं ?

[६५७ उ] गौतम ! जिन-जिनसे असुरकुमारो की उत्पत्ति कही है, उन-उनसे वाणव्यन्तर देवो की भी उत्पत्ति कहनी चाहिए ।

६५८ जोइसियदेवा ण भंते ! कतोहिंतो उववज्जति ?

गोयमा ! एवं चेव । नवरं सम्मुच्छिमअसंखेज्जवासाउयखहयर-अंतरदीवमणुस्सवज्जेहिंतो उववज्जावेयव्वा ।

[६५८ प्र] भगवन् ! ज्योतिष्क देव किन (कहाँ) से (आकर) उत्पन्न होते हैं ?

[६५८ उ] गौतम ! इसी प्रकार (ज्योतिष्क देवो का उपपात भी पूर्ववत् असुरकुमारो के उपपात के समान ही) समझना चाहिए । विशेषता यह है कि ज्योतिष्को की उत्पत्ति सम्मूर्च्छिम असंख्यातवर्षायुष्क-खेचर-पचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिको को तथा अन्तर्द्वीपज मनुष्यो को छोडकर कहनी चाहिए । अर्थात् इनसे निकल कर कोई जीव सीधा ज्योतिष्क देव नही होता ।

६५९ वेमाणिया णं भंते ! कतोहिंतो उववज्जति ? किं णेरइएहिंतो, तिरिक्खजोणिएहिंतो, मणुस्सेहिंतो, देवेहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! णो णेरइएहिंतो उववज्जति, पंचिंदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जति, मणुस्सेहिंतो उववज्जति, णो देवेहिंतो उववज्जति ।

एवं चेव वेमाणिया वि सोहम्मीसाणगा भाणितव्वा ।

[६५९ प्र] भगवन् ! वैमानिक देव किनसे उत्पन्न होते है ? क्या (वे) नैरयिको से या तिर्यञ्चयोनिको से अथवा मनुष्यो से या देवो से उत्पन्न होते हैं ?

[६५९ उ] गौतम ! (वे) नारको से उत्पन्न नही होते, (किन्तु) पचेन्द्रिय तिर्यग्योनिको से तथा मनुष्यो से उत्पन्न होते है । देवो से उत्पन्न नही होते ।

इसी प्रकार सौधर्म और ईशान कल्प के वैमानिक देवो (की उत्पत्ति के विषय मे) कहना चाहिए ।

६६० एवं सणंकुमारगा वि । णवरं असंखेज्जवासाउयअकम्मभूमगवज्जेहिंतो उववज्जति ।

[६६०] सनत्कुमार देवो के उपपात के विषय मे भी इसी प्रकार कहना चाहिए । विशेषता यह है कि ये असख्यातवर्षायुष्क अकर्मभूमिको को छोडकर (पूर्वोक्त सबसे) उत्पन्न होते हैं ।

६६१ एवं जाव सहस्सारकप्पोवगवेमाणियदेवा भाणितव्वा ।

[६६१] सहस्रारकल्प तक (अर्थात् माहेन्द्र, ब्रह्मलोक, लान्तक, महाशुक्र और सहस्रार कल्प) के देवो का उपपात भी इसी प्रकार कहना चाहिए ।

६६२ [१] आणयदेवा णं भंते ! कतोहिंतो उववज्जति ? किं नेरइएहिंतो जाव देवेहिंतो उववज्जति ?

गोयमा ! नो नेरइएहिंतो उववज्जति, नो तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जति, मणुस्सेहिंतो उववज्जति, नो देवेहिंतो ।

[६६२-१ प्र] भगवन् ! आनत देव कहाँ से उत्पन्न होते हैं ? क्या वे नैरयिको से (अथवा) यावत् देवो से उत्पन्न होते है ?

[६५६-१ प्र] भगवन् ! मनुष्य कहाँ से (आकर) उत्पन्न होते है ? क्या वे नैरयिको से उत्पन्न होते है, यावत् देवो से उत्पन्न होते है ?

[६५६-१ उ] गौतम ! (वे) नैरयिको से भी उत्पन्न होते है और यावत् देवो से भी उत्पन्न होते है ।

[२] जति नेरइएहिंतो उववज्जति कि रयणप्पभापुढविनेरइएहिंतो जाव अहेसत्तमापुढविनेरएहितो उववज्जति ?

गोयमा ! रतणप्पभापुढविनेरइएहिंतो वि जाव तमापुढविनेरएहिंतो वि उववज्जति, नो अहेसत्तमापुढविनेरइएहितो उववज्जति ।

[६५६-२ प्र] (भगवन् !) यदि नैरयिको से उत्पन्न होते है, तो क्या रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिको से उत्पन्न होते है, यावत् अध सप्तमी (तमस्तमा) पृथ्वी के नैरयिको से उत्पन्न होते है ?

[६५६-२ उ] गौतम ! (वे) रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिको से लेकर यावत् तम प्रभापृथ्वी तक के नैरयिको से उत्पन्न होते हैं, किन्तु अध सप्तमीपृथ्वी के नैरयिको से उत्पन्न नही होते ।

[३] जति तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जति कि एगिदियतिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जति ?

एव जेहिंतो पचेंदियतिरिक्खजोणियाण उववाओ भणितो तेहिंतो मणुस्साण वि णिरवसेसो भाणितव्वो । नवर अधेसत्तमापुढविनेरइय-तेउ-वाउकाइएहितो ण उववज्जति । सव्वदेवेहिंतो वि उववज्जावेयव्वा जाव कप्पातीतगवेमाणिय-सव्वट्ठसिद्धदेवेहिंतो वि उववज्जावेयव्वा ।

[६५६-३ प्र.] (भगवन् !) यदि मनुष्य तिर्यञ्चयोनिको से उत्पन्न होते हैं तो क्या एकेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिको से उत्पन्न होते है, (या यावत् पचेन्द्रिय तक के तिर्यञ्चयोनिको से उत्पन्न होते है ?)

[६५६-३ उ] (गौतम !) जिन-जिनसे पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिको का उपपात (उत्पत्ति) कहा गया है, उन-उनसे मनुष्यो का भी समग्र उपपात उसी प्रकार कहना चाहिए । विशेषता यह है कि (मनुष्य) अध सप्तमीनरकपृथ्वी के नैरयिको, तेजस्कायिको और वायुकायिको से उत्पन्न नही होते । (दूसरी विशेषता यह है कि मनुष्य का) उपपात सर्व देवो से कहना चाहिए, यावत् कल्पातीत वैमानिक देवो—सर्वार्थसिद्धविमान तक के देवो से भी (मनुष्यो की) उत्पत्ति समझनी चाहिए ।

६५७ वाणमतरदेवा ण भते ! कओहिंतो उववज्जति ? कि नेरइएहिंतो जाव देवेहिंतो उववज्जति ?

गोयमा ! जेहिंतो असुरकुमारा ।

[६५७ प्र] भगवन् ! वाणव्यन्तर देव कहाँ से (आकर) उत्पन्न होते हैं ?

[६५७ उ] गौतम ! जिन-जिनसे असुरकुमारो की उत्पत्ति कही है, उन-उनसे वाणव्यन्तर देवो की भी उत्पत्ति कहनी चाहिए ।

[६६२-१ उ] गौतम ! (वे) नैरयिको से उत्पन्न नही होते, तिर्यञ्चयोनिको से भी उत्पन्न नही होते, (किन्तु) मनुष्यो से उत्पन्न होते है। देवो से (उत्पन्न) नही (होते ।)

[२] जति मणुस्सेहिंतो उववज्जति किं सम्मुच्छिममणुस्सेहिंतो गब्भवक्कतियमणुस्सेहिंतो उववज्जति ?

गोयमा ! गब्भवक्कतियमणुस्सेहिंतो उववज्जति, नो सम्मुच्छिममणुस्सेहिंतो ।

[६६२-२ प्र] (भगवन् !) यदि (वे) मनुष्यो से उत्पन्न होते है, तो क्या सम्मूर्च्छिम मनुष्यो से उत्पन्न होते है, (अथवा) गर्भज मनुष्यो से उत्पन्न होते है ?

[६६२-२ उ] गौतम ! (वे आनत देव) गर्भज मनुष्यो से उत्पन्न होते है, किन्तु सम्मूर्च्छिम मनुष्यो से उत्पन्न नही होते ।

[३] जति गब्भवक्कतियमणुस्सेहिंतो उववज्जति किं कम्मभूमगेहिंतो उववज्जति ? अकम्मभूमगेहिंतो उववज्जति ? अतरदीवगेहिंतो उववज्जति ?

गोयमा ! कम्मभूमगगब्भवक्कतियमणूसेहिंतो उववज्जति, नो अकम्मभूमगेहितो उववज्जति, नो अतरदीवगेहिंतो ।

[६६२-३ प्र] (भगवन् !) यदि (वे) गर्भज मनुष्यो से उत्पन्न होते है तो क्या कर्मभूमिक गर्भज मनुष्यो से उत्पन्न होते हैं, (या) अकर्मभूमिक गर्भज मनुष्यो से उत्पन्न होते है, (अथवा) अन्तर्द्वीपज गर्भज मनुष्यो से उत्पन्न होते है ?

[६६२-३ उ] गौतम ! (वे) कर्मभूमिक गर्भज मनुष्यो से उत्पन्न होते है, किन्तु न तो अकर्मभूमिक गर्भज मनुष्यो से उत्पन्न होते हैं और न अन्तर्द्वीपज गर्भज मनुष्यो से उत्पन्न होते है ।

[४] जइ कम्मभूमगगब्भवक्कतियमणुस्सेहिंतो उववज्जति किं सखेज्जवासाउएहिंतो उववज्जति ? असखेज्जवासाउएहिंतो उववज्जति ?

गोयमा ! सखेज्जवासाउएहिंतो, नो असखेज्जवासाउएहिंतो उववज्जति ।

[६६२-४ प्र] (भगवन्) यदि (वे) कर्मभूमिक गर्भज मनुष्यो से उत्पन्न होते है, तो क्या सख्यात वर्ष की आयुवाले कर्मभूमिक गर्भज मनुष्यो से उत्पन्न होते है, या असख्यात वर्ष की आयु वाले कर्मभूमिक गर्भज मनुष्यो से उत्पन्न होते हैं ?

[६६२-४ उ] गौतम ! (वे) सख्यात वर्ष की आयु वाले कर्मभूमिक-गर्भज मनुष्यो से उत्पन्न होते है, किन्तु असख्यात वर्ष की आयु वाले कर्मभूमिक गर्भज मनुष्यो से उत्पन्न नही होते ।

[५] जति सखेज्जवासाउयकम्मभूमगगब्भवक्कतियमणुस्सेहिंतो उववज्जति किं पज्जत्तएहिंतो अपज्जत्तएहिंतो उववज्जति ?

गोयमा ! पज्जत्तगसखेज्जवासाउयकम्मभूमगगब्भवक्कतियमणूसेहिंतो उववज्जति, णो अपज्जत्तएहिंतो ।

[६६२-५ प्र] (भगवन्) यदि सख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिक गर्भज मनुष्यो से (वे आनत देव) उत्पन्न होते हैं, तो क्या (वे) पर्याप्तको से या अपर्याप्तको से उत्पन्न होते है ?

[६६२-५ उ] गौतम ! (वे) पर्याप्तक सख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यो से उत्पन्न होते है, (किन्तु) अपर्याप्तक सख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यो से उत्पन्न नही होते ।

[६] जति पज्जत्तगसखेज्जवासाउयकम्मभूमगगब्भवक्कतियमणूसेहिंतो उववज्जति किं सम्मद्दिट्ठिपज्जत्तगसखेज्जवासाउयकम्मभूमगेहिंतो उववज्जति ? मिच्छद्दिट्ठिपज्जत्तगसंखेज्जवासाउएहिंतो उववज्जति ? सम्मामिच्छद्दिट्ठिपज्जत्तगसखेज्जवासाउयकम्मभूमगगब्भवक्कतियमणुस्सेहिंतो उववज्जति ?

गोयमा ! सम्मद्दिट्ठिपज्जत्तगसखेज्जवासाउयकम्मभूमगगब्भवक्कतियमणुस्सेहिंतो वि उववज्जति, मिच्छद्दिट्ठिपज्जत्तगेहिंतो वि उववज्जति, णो सम्मामिच्छद्दिट्ठिपज्जत्तगेहिंतो उववज्जति ।

[६६२-६ प्र] (भगवन् !) यदि (वे) पर्याप्तक सख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिक गर्भज मनुष्यो से उत्पन्न होते हैं, तो क्या (वे) सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक सख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यो से उत्पन्न होते है ? (या) मिथ्यादृष्टि पर्याप्तक सख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यो से उत्पन्न होते है ? (अथवा) सम्यग्मिथ्यादृष्टि पर्याप्तक सख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यो से उत्पन्न होते हैं ?

[६६२-६ उ] गौतम ! सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक सख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यो से भी (वे) उत्पन्न होते है, मिथ्यादृष्टि पर्याप्तक सख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यो से भी उत्पन्न होते हैं, (किन्तु) सम्यग्मिथ्यादृष्टि पर्याप्तक सख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यो से उत्पन्न नही होते ।

[७] जति सम्मद्दिट्ठिपज्जत्तगसखेज्जवासाउयकम्मभूमगगब्भवक्कतियमणुस्सेहिंतो उववज्जति किं सजतसम्मद्दिट्ठीहिंतो ? असजतसम्मद्दिट्ठिपज्जत्तएहिंतो ? संजयासजयसम्मद्दिट्ठिपज्जत्तगसखेज्जवासाउएहिंतो उववज्जति ?

गोयमा ! तीहिंतो वि उववज्जति ।

[६६२-७ प्र] (भगवन् !) यदि (वे) सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक सख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यो से उत्पन्न होते हैं तो क्या (वे) सयत सम्यग्दृष्टि-पर्याप्तक सख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यो से उत्पन्न होते है या असयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्त सख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यो से उत्पन्न होते हैं अथवा सयतासयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक सख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यो से उत्पन्न होते है ?

[६६२-७ उ] गौतम ! (वे आनत देव) (उपर्युक्त) तीनो से ही (सयतसम्यग्दृष्टियो से, असयतसम्यग्दृष्टियो से तथा सयतासयतसम्यग्दृष्टियो से) उत्पन्न होते हैं ।

६६३ एव जाव अच्चुओ कप्पो ।

[६६३] अच्युतकल्प के देवो तक (के उपपात के विषय मे) इसी प्रकार कहना चाहिए ।

६६४. एव गेवेज्जगदेवा वि। णवर असजत-सजतासजतेहिंतो वि एते पडिसेहेयव्वा।

[६६४] इसी प्रकार (नौ) ग्रैवेयकदेवो के उपपात के विषय मे भी समझना चाहिए। विशेषता यह है कि असयतो और सयतासयतो से इनकी (ग्रैवेयको की) उत्पत्ति का निषेध करना चाहिए।

६६५ [१] एव जहेव गेवेज्जगदेवा तहेव अणुत्तरोववाइया वि। णवर इम णाणत्त—सजया चेव।

[६६५-१] इसी प्रकार जैसी (वक्तव्यता) ग्रैवेयक देवो की उत्पत्ति (के विषय मे) कही, वैसी ही उत्पत्ति (-वक्तव्यता) पाच अनुत्तर विमानो के देवो की समझनी चाहिए। विशेष यह है कि सयत ही अनुत्तरौपपातिक देवो मे उत्पन्न होते है।

[२] जति सजतसम्मद्दिट्ठिपज्जत्तसखेज्जवासाउयकम्मभूमगगब्भवक्कतियमणुस्सेहिंतो उववज्जति किं पमत्तसजतसम्मद्दिट्ठिपज्जत्तएहिंतो अपमत्तसजतेहिंतो उववज्जति?

गोयमा! अपमत्तसजएहिंतो उववज्जति, नो पमत्तसंजएहिंतो उववज्जति।

[६६५-२] (भगवन्!) यदि (वे) सयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक सख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यो से उत्पन्न होते हैं तो क्या वे प्रमत्तसयत-सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक सख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यो से उत्पन्न होते है या अप्रमत्तसंयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक सख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यो से उत्पन्न होते हैं?

[६६५-२ उ] गौतम! (पूर्वोक्त तथारूप) अप्रमत्तसयतो से (वे) उत्पन्न होते है किन्तु (तथारूप) प्रमत्तसयतो से उत्पन्न नही होते।

[३] जति अपमत्तसजएहिंतो उववज्जति किं इड्ढिपत्तअपमत्तसजतेहिंतो उववज्जति? अणिड्ढिपत्तअपमत्तसजतेहिंतो उववज्जति?

गोयमा! दोहिंतो वि उववज्जति। दार ५॥

[६६५-३ प्र] (भगवन्!) यदि वे (अनुत्तरौपपातिक देव) (पूर्वोक्त विशेषणयुक्त) अप्रमत्त-सयतो से उत्पन्न होते है, तो क्या ऋद्धिप्राप्त-अप्रमत्तसयतो से उत्पन्न होते है, (अथवा) अनृद्धिप्राप्त-अप्रमत्तसयतो से (वे) उत्पन्न होते हैं?

[६६५-३ उ] गौतम! (वे) उपर्युक्त दोनो (ऋद्धिप्राप्त-अप्रमत्तसयतो तथा अनृद्धिप्राप्त-अप्रमत्तसयतो) से भी उत्पन्न होते है।

—पचम कुतोद्वार॥ ५॥

विवेचन—पचम कुतोद्वार. नारकादि चारो गतियो के जीवो की पूर्वभवो (आगति) से उत्पत्ति की प्ररूपणा—प्रस्तुत सत्ताईस सूत्रो मे कुतः (कहाँ से या किन-किन भवो से) द्वार के माध्यम से जीवो की उत्पत्ति के विषय मे विस्तृत प्ररूपणा की गई है।

किनकी उत्पत्ति, किन-किनसे? का क्रम—इस द्वार का क्रम इस प्रकार है— १ सामान्य नारको की उत्पत्ति किन-किनसे?, २ रत्नप्रभादि पृथ्वियो के नारको की उत्पत्ति, ३ असुर-

कुमारादि भवनवासी देवो की उत्पत्ति, ४ पृथ्वीकायिकादि पचविध एकेन्द्रियो की उत्पत्ति, ५ त्रिविध विकलेन्द्रियो की उत्पत्ति, ६ पचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिको की उत्पत्ति, ७ मनुष्यो की उत्पत्ति, (८) वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवो की उत्पत्ति ।

निष्कर्ष—सामान्य नैरयिको और रत्नप्रभा के नैरयिको मे देव, नारक, पृथ्वीकायिकादि पाच एकेन्द्रिय स्थावर, त्रिविध विकलेन्द्रिय तथा असख्यातवर्षायुष्क चतुष्पद खेचरो तथा शेप पचेन्द्रिय तिर्यञ्चो मे भी अपर्याप्तको एव सम्मूर्च्छिम मनुष्यो तथा गर्भजो मे अकर्मभूमिज और अन्तर्द्वीपज मनुष्यो तथा कर्मभूमिजो मे जो भी असख्यातवर्षायुष्को तथा सख्यातवर्षायुष्को मे भी अपर्याप्तक मनुष्यो से उत्पन्न होने का निपेध किया है, शेप से उत्पत्ति का विधान है । शर्कराप्रभापृथ्वी के नैरयिको मे सम्मूर्च्छिमो से, वालुकाप्रभापृथ्वी के नैरयिको मे भुजपरिसर्पो से, पकप्रभा के नैरयिको मे खेचरो से, धूमप्रभा-नैरयिको मे चतुष्पदो से, तम प्रभा-नैरयिको मे उर परिसर्पो से तथा तमस्तमा-पृथ्वी के नैरयिको मे स्त्रियो से (आकर) उत्पन्न होने का निपेध है । भवनवासियो मे देव, नारक, पृथ्वीकायिकादि पाच, त्रिविध विकलेन्द्रिय, अपर्याप्त तिर्यक्पचेन्द्रियो तथा सम्मूर्च्छिम एव अपर्याप्तक गर्भज मनुष्यो से उत्पत्ति का निषेध है, शेष का विधान है । पृथ्वी-जल-वनस्पतिकायिको मे सर्व नैरयिक तथा सनत्कुमारादि देवो से एव तेजो-वायु-द्वि-त्रि-चतुरिन्द्रियो मे सर्व नारको, सभी देवो से उत्पत्ति का तिर्यक् पचेन्द्रियो मे आनतादि देवो से उत्पत्ति का निषेध है । मनुष्यो मे सप्तमनरकपृथ्वी के नारको तथा तेजोवायुकायिको से उत्पत्ति का निषेध है । व्यन्तरदेवो मे देव, नारक, पृथ्वी आदि पचक, विकलेन्द्रियत्रिक, अपर्याप्त तिर्यंच पचेन्द्रिय तथा सम्मूर्च्छिम एव अपर्याप्त गर्भज मनुष्यो से उत्पत्ति का निषेध है । ज्योतिष्कदेवो मे सम्मूर्च्छिम तिर्यक् पचेन्द्रिय, असख्यातवर्षायुष्क खेचर तथा अन्तर्द्वीपज मनुष्यो से उत्पत्ति का निषेध है । सौधर्म और ईशानकल्प के देवो मे तथा सनत्कुमार से सहस्रारकल्प तक के देवो मे अकर्मभूमिक मनुष्यो से भी उत्पत्ति का, आनत आदि मे तिर्यञ्च पचेन्द्रियो से, नौ ग्रैवेयको मे असयतो तथा सयतासयतो एव विजयादि पच अनुत्तरौपपातिको मे मिथ्यादृष्टि मनुष्यो तथा प्रमत्तसयत सम्यग्दृष्टि मनुष्यो से उत्पत्ति का निषेध है ।[1]

'कुतोद्वार' की प्ररूपणा का उद्देश्य—कौन-कौन जीव कहाँ से, अर्थात्—किन-किन भवो से उद्वर्त्तना (मृत्यु प्राप्त) करके नारकादि पर्यायो मे (आकर) उत्पन्न होते है ? यही प्रतिपादन करना कुतोद्वार का उद्देश्य और विशेष अर्थ है ।[2]

छठा उद्वर्त्तनाद्वार : चातुर्गतिक जीवो के उद्वर्त्तनानन्तर गमन एवं उत्पाद की प्ररूपणा—

६६६ [१] नेरइया ण भते ! अणतर उववट्टित्ता कहिं गच्छति ? कहिं उववज्जति ? किं नेरइएसु उववज्जति ? तिरिक्खजोणिएसु उववज्जति ? मणुस्सेसु उववज्जति ? देवेसु उववज्जति ?

गोयमा ! णो नेरइएसु उववज्जति, तिरिक्खजोणिएसु उववज्जति, मणुस्सेसु उववज्जति, नो देवेसु उववज्जति ।

[६६६-१ प्र] भगवन् ! नैरयिक जीव अनन्तर (साक्षात् या सीधा) उद्वर्त्तन करके (निकल

---

१ प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक २१४

२ प्रज्ञापना प्रमेयवोधिनीटीका भा २, पृ १००७

कर) कहाँ जाते है ? कहाँ उत्पन्न होते है ? क्या वे नैरयिको मे उत्पन्न होते है अथवा तिर्यञ्च-योनिको मे उत्पन्न होते हैं ? मनुष्यो मे उत्पन्न होते है या देवो मे उत्पन्न होते हैं ?

[६६६-१ उ] गौतम ! (नैरयिक जीव अनन्तर उद्वर्त्तन करके) नैरयिको मे उत्पन्न नही होते (किन्तु) तिर्यञ्चयोनिको मे उत्पन्न होते है या मनुष्यो मे उत्पन्न होते है, (किन्तु) देवो मे उत्पन्न नही होते है ।

[२] जति तिरिक्खजोणिएसु उववज्जति किं एगिंदिय जाव पचेंदियतिरिक्खजोणिएसु उववज्जति ?

गोयमा ! नो एगिंदिएसु जाव नो चउरिंदिएसु उववज्जति, पंचिदिएसु उववज्जति ।

[६६६-२ प्र] (भगवन् !) यदि (वे) तिर्यञ्चयोनिको मे उत्पन्न होते हैं तो क्या एकेन्द्रिय तिर्यञ्चो मे उत्पन्न होते है, (अथवा) यावत् पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिको मे उत्पन्न होते है ?

[६६६-२ उ] गौतम ! (वे) न तो एकेन्द्रियो मे और न ही द्वि-त्रि-चतुरिन्द्रिय जीवो मे उत्पन्न होते है, (किन्तु) पचेन्द्रियो मे उत्पन्न होते है ।

[३] एव जेहिंतो उववाओ भणितो तेसु उव्वट्टणा वि भाणितव्वा । णवर सम्मुच्छिमेसु ण उववज्जति ।

[६६६-३] इस प्रकार जिन-जिनसे उपपात कहा गया है, उन-उनमे ही उद्वर्त्तना भी कहनी चाहिए । विशेष यह है कि वे सम्मूर्च्छिमो मे उत्पन्न नही होते ।

६६७ एव सव्वपुढवीसु भाणितव्व । नवर अहेसत्तमाओ मणुस्सेसु ण उववज्जति ।

[६६७] इसी प्रकार समस्त (नरक-)पृथ्वियो मे उद्वर्त्तना का कथन करना चाहिए । विशेष बात यह है कि सातवी नरकपृथ्वी से मनुष्यो मे नही उत्पन्न होते ।

६६८. [१] असुरकुमारा ण भते ! अणतर उव्वट्टित्ता कहिं गच्छति ? कहिं उववज्जति ? किं नेरइएसु उववज्जति ? जाव देवेसु उववज्जति ?

गोयमा ! णो नेरइएसु उववज्जति, तिरिक्खजोणिएसु उववज्जति, मणुस्सेसु उववज्जति, नो देवेसु उववज्जति ।

[६६८-१ प्र] भगवन् ! असुरकुमार साक्षात् (अनन्तर) उद्वर्त्तना करके कहाँ जाते है ? कहाँ उत्पन्न होते हैं ? क्या (वे) नैरयिको मे उत्पन्न होते हैं ? (अथवा) यावत् देवो मे उत्पन्न होते है ?

[६६८-१ उ] गौतम ! (वे) नैरयिको मे उत्पन्न नही होते, (किन्तु) तिर्यञ्चयोनिको मे उत्पन्न होते है, मनुष्यो मे उत्पन्न होते है किन्तु देवो मे उत्पन्न नही होते ।

[२] जइ तिरिक्खजोणिएसु उववज्जति किं एगिंदिएसु जाव पचेंदियतिरिक्खजोणिएसु उववज्जति ?

गोयमा ! एगिंदियतिरिक्खजोणिएसु उववज्जति, नो बेइंदिएसु[1] जाव नो चउरिंदिएसु उववज्जति, पचेंदियतिरिक्खजोणिएसु उववज्जति ।

[६६८-२ प्र] (भगवन् !) यदि (वे) तिर्यञ्चयोनिको मे उत्पन्न होते है तो क्या वे एकेन्द्रियो मे उत्पन्न होते है, यावत् पचेन्द्रियो तिर्यञ्चयोनिको मे उत्पन्न होते है ?

[६६८-२ उ] गौतम ! (वे) एकेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिको मे उत्पन्न होते है, किन्तु द्वीन्द्रियो मे, त्रीन्द्रियो मे और चतुरिन्द्रियो मे उत्पन्न नही होते, (वे) पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिको मे उत्पन्न होते हैं ।

[३] जति एगिंदिएसु उववज्जति किं पुढविकाइयएगिंदिएसु जाव वणस्सइकाइयएगिंदिएसु उववज्जति ?

गोयमा ! पुढविकाइयएगिंदिएसु वि आउकाइयएगिंदिएसु वि उववज्जति, नो तेउकाइएसु नो वाउकाइएसु उववज्जति, वणस्सइकाइएसु उववज्जति ।

[६६८-३ प्र] (भगवन् !) यदि (वे) एकेन्द्रियो मे उत्पन्न होते है तो क्या पृथ्वीकायिक एकेन्द्रियो मे यावत् वनस्पतिकायिक एकेन्द्रियो मे उत्पन्न होते है ?

[६६८-३ उ] गौतम ! (वे) पृथ्वीकायिक एकेन्द्रियो मे उत्पन्न होते है, अप्कायिक एकेन्द्रियो मे भी उत्पन्न होते है, किन्तु न तो तेजस्कायिक एकेन्द्रियो मे उत्पन्न होते है और न वायुकायिक एकेन्द्रियो मे उत्पन्न होते हैं, परन्तु वनस्पतिकायिक एकेन्द्रियो मे उत्पन्न होते है ।

[४] जति पुढविकाइएसु उववज्जति किं सुहुमपुढविकाइएसु उववज्जति ? बादरपुढविकाइएसु उववज्जंति ?

गोयमा ! बादरपुढविकाइएसु उववज्जति, नो सुहुमपुढविकाइएसु ।

[६६८-४ प्र] (भगवन् !) यदि (वे) पृथ्वीकायिको मे उत्पन्न होते है तो क्या सूक्ष्म पृथ्वीकायिको मे उत्पन्न होते है या बादर पृथ्वीकायिको मे उत्पन्न होते है ?

[६६८-४ उ] गौतम ! (वे) बादर पृथ्वीकायिको मे उत्पन्न होते है, (किन्तु) सूक्ष्म पृथ्वीकायिको मे उत्पन्न नही होते ।

[५] जइ बादरपुढविकाइएसु उववज्जति किं पज्जत्तगबादरपुढविकाइएसु उववज्जति ? अपज्जत्तयबायरपुढविकाइएसु उववज्जति ?

गोयमा ! पज्जत्तएसु उववज्जति, नो अपज्जत्तएसु ।

[६६८-५ प्र] भगवन् ! यदि बादर पृथ्वीकायिको मे उत्पन्न होते है तो क्या (वे) पर्याप्तक बादर पृथ्वीकायिको मे उत्पन्न होते है या अपर्याप्तक बादर पृथ्वीकायिको मे उत्पन्न होते हैं ?

[६६८-५ उ] गौतम ! (वे) पर्याप्तको मे उत्पन्न होते है किन्तु अपर्याप्तको मे उत्पन्न नही होते ।

---

१ ग्रन्थाग्रम् ३५००

[६] एव आउ-वणस्सतीसु वि भाणितव्व ।

[६६८-६] इसी प्रकार अप्कायिको और वनस्पतिकायिको मे (उत्पत्ति के विषय मे) भी कहना चाहिए ।

[७] पचेंदियतिरिक्खजोणिय-मणूसेसु य जहा नेरइयाण उव्वट्टणा सम्मुच्छिमवज्जा तहा भाणितव्वा ।

[६६८-७] पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिको और मनुष्यो मे (असुरकुमारो की उत्पत्ति के विषय मे) उसी प्रकार कहना चाहिए, जिस प्रकार सम्मूच्छिम को छोडकर नैरयिको की उद्वर्त्तना कही है ।

[८] एव जाव थणियकुमारा ।

[६६८-८] इसी प्रकार (असुरकुमारो की तरह) स्तनितकुमारो तक की उद्वर्त्तना समझ लेनी चाहिए ।

६६९. [१] पुढविकाइया णं भते ! अणतर उव्वट्टित्ता कहिं गच्छति ? कहिं उववज्जति ? किं नेरइएसु जाव देवेसु ?

गोयमा ! नो नेरइएसु उववज्जति, तिरिक्खजोणिय-मणूसेसु उववज्जति, नो देवेसु ।

[६६९-१ प्र] भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीव सीधे निकल कर (अनन्तर उद्वर्त्तन करके) कहाँ जाते है ? कहाँ उत्पन्न होते है ? क्या वे नारको मे यावत् देवो मे उत्पन्न होते है ?

[६६९-१ उ] गौतम ! (वे) नैरयिको मे उत्पन्न नही होते, (किन्तु) तिर्यञ्चयोनिको और मनुष्यो मे उत्पन्न होते हैं ।

[२] एव जहा एतेसिं चेव उववाओ तहा उव्वट्टणा वि[1] भाणितव्वा ।

[६६९-२] इसी प्रकार जैसा इनका उपपात कहा है, वैसो ही इनकी उद्वर्त्तना भी (देवो को छोडकर) कहनी चाहिए ।

६७०. एव आउ-वणस्सइ-बेइदिय-तेइदिय-चउरेंदिया वि ।

[६७०] इसी प्रकार अप्कायिक, वनस्पतिकायिक, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रियो (की भी उद्वर्त्तना कहनी चाहिए ।)

६७१. एव तेऊ वाऊ वि । णवर मणुस्सवज्जेसु उववज्जति ।

[६७१] इसी प्रकार तेजस्कायिक और वायुकायिक की भी उद्वर्त्तना कहनी चाहिए । विशेष यह है कि (वे) मनुष्यो को छोड कर उत्पन्न होते हैं ।

६७२ [१] पचेंदियतिरिक्खजोणिया ण भते ! अणतर उव्वट्टित्ता कहिं गच्छति कहिं उववज्जति ? किं नेरइएसु जाव देवेसु ?

---

१ पाठान्तर-'देववज्जा' यह अधिक पाठ किसी-किसी प्रति मे है ।

गोयमा ! नेरइएसु उववज्जति जाव देवेसु उववज्जति ।

[६७२-१ प्र] भगवन् ! पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक अनन्तर उद्वर्त्तना करके कहाँ जाते है, कहाँ उत्पन्न होते है ? क्या (वे) नैरयिको मे उत्पन्न होते है, (अथवा) यावत् देवो मे उत्पन्न होते है ?

[६७२-१ उ] गौतम ! (वे) नैरयिको मे उत्पन्न होते है, यावत् देवो मे भी उत्पन्न होते है ।

[२] जदि णेरइएसु उववज्जति किं रयणप्पभापुढविनेरइएसु उववज्जति जाव अहेसत्तमा-पुढविनेरइएसु उववज्जति ?

गोयमा ! रयणप्पभापुढविनेरइएसु वि उववज्जति जाव अहेसत्तमापुढविनेरइएसु वि उववज्जति ।

[६७२-२ प्र] (भगवन् !) यदि (वे) नैरयिको मे उत्पन्न होते है, तो क्या रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिको मे उत्पन्न होते है अथवा यावत् अध सप्तमीपृथ्वी के नैरयिको मे (से किन्ही मे) उत्पन्न होते है ?

[६७२-२ उ] गौतम ! (वे) रत्नप्रभापृथ्वी नैरयिको मे भी उत्पन्न होते है, यावत् अध - सप्तमीपृथ्वी के नैरयिको मे भी उत्पन्न होते है ।

[३] जइ तिरिक्खजोणिएसु उववज्जंति किं एगिंदिएसु जाव पंचिंदिएसु ?

गोयमा ! एगिंदिएसु वि उववज्जति जाव पचेंदिएसु वि उववज्जति ।

[६७२-३ प्र] (भगवन् !) यदि (वे) तिर्यञ्चयोनिको मे उत्पन्न होते है तो क्या एकेन्द्रियो मे यावत् पचेन्द्रियो मे उत्पन्न होते है ?

[६७२-२ उ] गौतम ! (वे) एकेन्द्रियो मे भी उत्पन्न होते है, यावत् पचेन्द्रियो मे भी उत्पन्न होते है ।

[४] एव जहा एतेसिं चेव उववाओ उव्वट्टणा वि तहेव भाणितव्वा । नवर असंखेज्जवासा-उएसु वि एते उववज्जति ।

[६७२-४] यो जैसा इनका उपपात कहा है, वैसी ही इनकी उद्वर्त्तना भी कहनी चाहिए । विशेषता यह है कि ये असख्यातवर्षो की आयु वालो मे भी उत्पन्न होते हैं ।

[५] जति मणुस्सेसु उववज्जति किं सम्मुच्छिममणुस्सेसु उववज्जति गब्भवक्कतियमणूसेसु उववज्जति ?

गोयमा ! दोसु वि उववज्जंति ।

[६७२-५ प्र] (भगवन् !) यदि (वे) मनुष्यो मे उत्पन्न होते हैं तो क्या सम्मूर्च्छिम मनुष्यो मे उत्पन्न होते है अथवा गर्भज मनुष्यो मे उत्पन्न होते हैं ?

[६] एव आउ-वणस्सतीसु वि भाणितव्व ।

[६६८-६] इसी प्रकार अप्कायिको और वनस्पतिकायिको मे (उत्पत्ति के विषय मे) भी कहना चाहिए ।

[७] पचेंदियतिरिक्खजोणिय-मणूसेसु य जहा नेरइयाण उव्वट्टणा सम्मुच्छिमवज्जा तहा भाणितव्वा ।

[६६८-७] पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिको और मनुष्यो मे (असुरकुमारो की उत्पत्ति के विषय मे) उसी प्रकार कहना चाहिए, जिस प्रकार सम्मूच्छिम को छोडकर नैरयिको की उद्वर्त्तना कही है ।

[८] एव जाव थणियकुमारा ।

[६६८-८] इसी प्रकार (असुरकुमारो की तरह) स्तनितकुमारो तक की उद्वर्त्तना समझ लेनी चाहिए ।

६६९. [१] पुढविकाइया ण भते ! अणतर उव्वट्टित्ता कहि गच्छति ? कहि उववज्जति ? कि नेरइएसु जाव देवेसु ?

गोयमा ! नो नेरइएसु उववज्जति, तिरिक्खजोणिय-मणूसेसु उववज्जति, नो देवेसु ।

[६६९-१ प्र] भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीव सीधे निकल कर (अनन्तर उद्वर्त्तन करके) कहाँ जाते है ? कहाँ उत्पन्न होते हैं ? क्या वे नारको मे यावत् देवो मे उत्पन्न होते है ?

[६६९-१ उ] गौतम ! (वे) नैरयिको मे उत्पन्न नही होते, (किन्तु) तिर्यञ्चयोनिको और मनुष्यो मे उत्पन्न होते है ।

[२] एव जहा एतेसिं चेव उववाओ तहा उव्वट्टणा वि[1] भाणितव्वा ।

[६६९-२] इसी प्रकार जैसा इनका उपपात कहा है, वैसी ही इनकी उद्वर्त्तना भी (देवो को छोडकर) कहनी चाहिए ।

६७०. एव आउ-वणस्सइ-बेइदिय-तेइदिय-चउरेंदिया वि ।

[६७०] इसी प्रकार अप्कायिक, वनस्पतिकायिक, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रियो (की भी उद्वर्त्तना कहनी चाहिए ।)

६७१. एव तेऊ वाऊ वि । णवर मणुस्सवज्जेसु उववज्जति ।

[६७१] इसी प्रकार तेजस्कायिक और वायुकायिक की भी उद्वर्त्तना कहनी चाहिए । विशेष यह है कि (वे) मनुष्यो को छोड कर उत्पन्न होते हैं ।

६७२ [१] पचेंदियतिरिक्खजोणिया ण भते ! अणतर उव्वट्टित्ता कहि गच्छति कहि उववज्जति ? कि नेरइएसु जाव देवेसु ?

१ पाठान्तर-'देववज्जा' यह अधिक पाठ किसी-किसी प्रति मे है ।

गोयमा ! नेरइएसु उववज्जंति जाव देवेसु उववज्जंति ।

[६७२-१ प्र] भगवन् ! पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक अनन्तर उद्वर्त्तना करके कहाँ जाते हैं, कहाँ उत्पन्न होते है ? क्या (वे) नैरयिको मे उत्पन्न होते हैं, (अथवा) यावत् देवो में उत्पन्न होते है ?

[६७२-१ उ.] गौतम ! (वे) नैरयिको मे उत्पन्न होते हैं, यावत् देवो मे भी उत्पन्न होते है ।

[२] जदि णेरइएसु उववज्जंति किं रयणप्पभापुढविनेरइएसु उववज्जंति जाव अहेसत्तमा-पुढविनेरइएसु उववज्जंति ?

गोयमा ! रयणप्पभापुढविनेरइएसु वि उववज्जंति जाव अहेसत्तमापुढविनेरइएसु वि उववज्जंति ।

[६७२-२ प्र] (भगवन् !) यदि (वे) नैरयिको मे उत्पन्न होते हैं, तो क्या रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिको मे उत्पन्न होते है अथवा यावत् अध सप्तमीपृथ्वी के नैरयिको मे (से किन्ही मे) उत्पन्न होते है ?

[६७२-२ उ] गौतम ! (वे) रत्नप्रभापृथ्वी नैरयिको मे भी उत्पन्न होते ह, यावत् अध - सप्तमीपृथ्वी के नैरयिको मे भी उत्पन्न होते हैं ।

[३] जइ तिरिक्खजोणिएसु उववज्जंति किं एगिंदिएसु जाव पंचिंदिएसु ?

गोयमा ! एगिंदिएसु वि उववज्जंति जाव पचेंदिएसु वि उववज्जंति ।

[६७२-३ प्र] (भगवन् !) यदि (वे) तिर्यञ्चयोनिको मे उत्पन्न होते है तो क्या एकेन्द्रियो मे यावत् पचेन्द्रियो मे उत्पन्न होते हैं ?

[६७२-२ उ] गौतम ! (वे) एकेन्द्रियो मे भी उत्पन्न होते है, यावत् पचेन्द्रियो मे भी उत्पन्न होते हैं ।

[४] एव जहा एतेसिं चेव उववाओ उव्वट्टणा वि तहेव भाणितव्वा । नवर असखेज्जवासा-उएसु वि एते उववज्जंति ।

[६७२-४] यो जैसा इनका उपपात कहा है, वैसी ही इनकी उद्वर्त्तना भी कहनी चाहिए । विशेषता यह है कि ये असख्यातवर्षो की आयु वालो मे भी उत्पन्न होते है ।

[५] जति मणुस्सेसु उववज्जंति किं सम्मुच्छिममणुस्सेसु उववज्जंति गब्भवक्कंतियमणूसेसु उववज्जंति ?

गोयमा ! दोसु वि उववज्जंति ।

[६७२-५ प्र] (भगवन् !) यदि (वे) मनुष्यो मे उत्पन्न होते है तो क्या सम्मूर्च्छिम मनुष्यो मे उत्पन्न होते है अथवा गर्भज मनुष्यो मे उत्पन्न होते हैं ?

[६७२-५ उ] गौतम ! (वे) दोनो मे ही उत्पन्न होते है ।

[६] एव जहा उववाओ तहेव उव्वट्टणा वि भाणितव्वा । नवर अकम्मभूमग-अतरदीवग-असखेज्जवासाउएसु वि एते उववज्जति त्ति भाणितव्व ।

[६७२-६] इसी प्रकार जैसा इनका उपपात कहा, वैसी ही इनकी उद्वर्त्तना भी कहनी चाहिए। विशेषतया अकर्मभूमिज, अन्तर्द्वीपज और असख्यातवर्षायुष्क मनुष्यो मे भी ये उत्पन्न होते है, यह कहना चाहिए ।

[७] जति देवेसु उववज्जति किं भवणवतीसु उववज्जति ? जाव किं वेमाणिएसु उववज्जति ?

गोयमा ! सव्वेसु चेव उववज्जति ।

[६७२-७ प्र] (भगवन् !) यदि (वे) देवो मे उत्पन्न होते है तो क्या भवनपति देवो मे उत्पन्न होते है ? (अथवा) यावत् वैमानिको मे भी उत्पन्न होते है ?

[६७२-७ उ] गौतम ! (वे) सभी (प्रकार के) देवो मे उत्पन्न होते है ।

[८] जति भवणवतीसु उववज्जति किं असुरकुमारेसु उववज्जति ? जाव थणियकुमारेसु उववज्जति ?

गोयमा ! सव्वेसु चेव उववज्जति ।

[६७२-८ प्र] (भगवन् !) यदि (वे) भवनपति देवो मे उत्पन्न होते है तो क्या असुरकुमारो मे उत्पन्न होते हैं ? (अथवा) यावत् स्तनितकुमारो मे उत्पन्न होते है ?

[६७२-८ उ] गौतम ! (वे) सभी (भवनपतियो) मे उत्पन्न होते है ।

[९] एव वाणमतर-जोइसिय-वेमाणिएसु निरतर उववज्जति जाव सहस्सारो कप्पो त्ति ।

[६७२-९] इसी प्रकार वाणव्यन्तरो, ज्योतिष्को और सहस्रारकल्प तक के वैमानिक देवो मे निरन्तर उत्पन्न होते हैं ।

६७३ [१] मणूसा ण भते ! अणतर उव्वट्टित्ता कहिं गच्छति ? कहिं उववज्जति ? किं नेरइएसु उववज्जति जाव देवेसु उववज्जति ?

गोयमा ! नेरइएसु वि उववज्जति जाव देवेसु वि उववज्जति ।

[६७३-१ प्र] भगवन् ! मनुष्य अनन्तर उद्वर्त्तन करके कहाँ जाते हैं, कहाँ उत्पन्न होते हैं ? क्या वे नैरयिको मे उत्पन्न होते है ? (अथवा) यावत् देवो मे भी उत्पन्न होते है ?

[६७३-१ उ] गौतम ! (वे) नैरयिको मे भी उत्पन्न होते हैं, यावत् देवो मे भी उत्पन्न होते हैं ।

[२] एव निरतर सव्वेसु ठाणेसु पुच्छा ।

गोयमा ! सव्वेसु ठाणेसु उववज्जति, ण कहिंचि पडिसेहो कायव्वो जाव सव्वट्ठसिद्धदेवेसु वि उववज्जति, अत्थेगतिया सिज्झति बुज्झति मुच्चति परिणिव्वायति सव्वदुक्खाण अत करेंति ।

[६७३-२ प्र] भगवन् ! क्या (मनुष्य) नैरयिक आदि सभी स्थानो मे उत्पन्न होते है ?

[६७३-२ उ] गौतम ! वे (इन) सभी स्थानो मे उत्पन्न होते है, कही भी इनके उत्पन्न होने का निषेध नही करना चाहिए, यावत् सर्वार्थसिद्ध देवो तक मे भी (मनुष्य) उत्पन्न होते है और कई मनुष्य सिद्ध होते हे, बुद्ध (केवलबोधप्राप्त) होते है, मुक्त होते है, परिनिर्वाण प्राप्त को करते है और सर्वदु खो का अन्त करते है ।

६७४ वाणमतर-जोइसिय-वेमाणिया सोहम्मीसाणा य जहा असुरकुमारा । नवर जोइसियाण वेमाणियाण य चयतीति अभिलावो कातव्वो ।

[६७४] वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और सौधर्म एव ईशान देवलोक के वैमानिक देवो की उद्वर्त्तन-प्ररूपणा असुरकुमारो के समान, समझनी चाहिए । विशेष यह है कि ज्योतिष्क और वैमानिक देवो के लिए ('उद्वर्त्तना करते है के बदले) 'च्यवन करते हैं', यो कहना चाहिए ।

६७५ सणकुमारदेवाण पुच्छा ।

गोयमा ! जहा असुरकुमारा । नवर एगिंदिएसु ण उववज्जति । एव जाव सहस्सारगदेवा ।

[६७५ प्र] भगवन् ! सनत्कुमार देव अनन्तर च्यवन करके कहाँ जाते है, कहाँ उत्पन्न होते हैं ?

[६७५ उ] इनकी (च्यवनानन्तर उत्पत्तिसम्बन्धी) वक्तव्यता असुरकुमारो के (उपपात-सम्बन्धी वक्तव्य के) समान समझनी चाहिए । विशेष यह है कि (ये) एकेन्द्रियो मे उत्पन्न नही होते । इसी प्रकार की वक्तव्यता सहस्रार देवो तक की कहनी चाहिए ।

६७६ आणय जाव अणुत्तरोववाइया देवा एव चेव । णवर णो तिरिक्खजोणिएसु उववज्जति, मणूसेसु पज्जत्तगसखेज्जवासाउयकम्मभूमगगब्भवक्कतियमणूसेसु उववज्जति । दार ६ ।।

[६७६] आनत देवो से लेकर अनुत्तरौपपातिक देवो तक (च्यवनानन्तर उत्पत्ति-सम्बन्धी) वक्तव्यता इसी प्रकार समझनी चाहिए । विशेष यह है कि (ये देव) तिर्यञ्चयोनिको मे उत्पन्न नही होते, मनुष्यो मे भी पर्याप्तक सख्यातवर्षायुष्क कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यो मे उत्पन्न होते हैं ।

—छठा उद्वर्तनाद्वार ।।६।।

विवेचन—छठा उद्वर्त्तनाद्वार · चातुर्गतिक जीवो के उद्वर्त्तनानन्तर गमन एव उत्पाद की प्ररूपणा—प्रस्तुत ग्यारह सूत्रो (सू ६६६ से ६७६ तक) मे नैरयिको से लेकर देवो तक के उद्वर्त्तनानन्तर गमन एव उपपात के सम्बन्ध मे सूक्ष्म ऊहापोहपूर्वक प्ररूपणा की गई है ।

उद्वर्त्तना की परिभाषा—नारकादि जीवो का अपने भव से निकलकर (मरकर या च्यवकर) सीधे (बीच मे कही अन्तर-व्यवधान न करके) किसी भी अन्य गति या योनि मे जाना और उत्पन्न होना[1] उद्वर्त्तना कहलाता है ।

निष्कर्ष—अपने भव से (मृत या च्युत होकर) निकले हुए नैरयिको का सीधा (साक्षात्) उत्पाद गर्भज सख्यातवर्षायुष्क तिर्यक्पचेन्द्रियो और मनुष्यो मे होता है, सातवी नरकपृथ्वी के नैरयिको

१ प्रज्ञापना प्रमेयबोधिनी टीका भा २, पृ ११०९

का उत्पाद गर्भज सख्यातवर्षायुष्क तिर्यञ्चपचेन्द्रियो मे होता है, असुरकुमारादि भवनपति, वाण-व्यन्तर, ज्योतिष्क और सौधर्म तथा ईशान कल्प के वैमानिक देवो का उत्पाद बादर पर्याप्त पृथ्वी-कायिक, अप्कायिक एव वनस्पतिकायिको मे तथा गर्भज सख्यातवर्षायुष्क तिर्यञ्चपचेन्द्रियो एव मनुष्यो मे होता है। पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, वनस्पतिकायिक तथा द्वि-त्रि-चतुरिन्द्रिय जीवो का उत्पाद तिर्यञ्चगति और मनुष्यगति मे तथा तेजस्कायिक-वायुकायिको का केवल तिर्यञ्चगति मे ही होता है। तिर्यञ्चपचेन्द्रियो का उत्पाद नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य एव देवगति मे, विशेषत सहस्रार-कल्पपर्यन्त वैमानिको मे होता है। मनुष्यो का उत्पाद चारो गतियो के सभी स्थानो मे होता है तथा सनत्कुमार से लेकर सहस्रार देव पर्यन्त वैमानिक देवो का उत्पाद गर्भज सख्यातवर्षायुष्क तिर्यचपचेन्द्रियो एव मनुष्यो मे होता है, और आनत कल्प से लेकर सर्वार्थसिद्ध तक के देवो का उत्पाद गर्भज सख्यातवर्षायुष्क मनुष्यो मे ही होता है।[1]

सप्तम परभविकायुष्यद्वार : चातुर्गतिक जीवो की पारभविकायुष्यसम्बन्धी प्ररूपणा—

६७७ नेरइया णं भते ! कतिभागावसेसाउया परभवियाउयं पकरिंति ?

गोयमा ! णियमा छम्मासावसेसाउया परभवियाउय पकरेंति।

[६७७ प्र] भगवन् ! आयुष्य का कितना भाग शेष रहने पर नैरयिक परभव (आगामी जन्म) की आयु (का बन्ध) करते है ?

[६७७ उ] गौतम ! (वे) नियम से छह मास आयु शेष रहने पर परभव की आयु बाधते हैं।

६७८. एव असुरकुमारा वि जाव थणियकुमारा।

[६७८] इसी प्रकार असुरकुमारो से लेकर स्तनितकुमारो तक (का परभविक-आयुष्यबन्ध सम्बन्धी कथन करना चाहिए।)

६७९ पुढविकाइया णं भते ! कतिभागावसेसाउया परभवियाउय पकरेंति ?

गोयमा ! पुढविकाइया दुविहा पण्णत्ता। त जहा—सोवक्कमाउया य निरुवक्कमाउया य। तत्थ ण जे ते निरुवक्कमाउया ते णियमा तिभागावसेसाउया परभवियाउय पकरेंति। तत्थ ण जे ते सोवक्कमाउया ते सिय तिभागावसेसाउया परभवियाउय पकरेंति, सिय तिभागतिभागावसेसाउया परभवियाउय पकरेंति, सिय तिभागतिभागतिभागावसेसाउया परभवियाउय पकरेंति।

[६७९ प्र] भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीव आयुष्य का कितना भाग शेष रहने पर परभव का आयुष्य बाधते है ?

[६७९ उ] गौतम ! पृथ्वीकायिक जीव दो प्रकार के कहे गए है, वे इस प्रकार—(१) सोप-क्रम आयु वाले और (२) निरुपक्रम आयु वाले। इनमे से जो निरुपक्रम (उपक्रमरहित) आयु वाले है, वे नियम से आयुष्य का तीसरा भाग शेष रहने पर परभव की आयु का बन्ध करते है तथा इनमे जो सोपक्रम (उपक्रमसहित) आयु वाले हैं, वे कदाचित् आयु का तीसरा भाग शेष रहने पर परभव का आयुष्यबन्ध करते है, कदाचित् आयु के तीसरे भाग का तीसरा भाग शेष रहने पर परभव का

---

१ प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक २१६

आयुष्यवन्ध करते है और कदाचित् आयु के तीसरे भाग के तीसरे भाग का तीसरा भाग शेष रहने पर परभव का आयुष्यवन्ध करते है ।

६८०. आउ-तेउ-वाउ-वणप्फइकाइयाण वेइदिय-तेइदिय-चउरिंदियाण वि एव चेव ।

[६८०] अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिको तथा द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रियो (के पारभविक-आयुष्यवन्ध) का कथन भी इसी प्रकार (करना चाहिए) ।

६८१ पचेंदियतिरिक्खजोणिया ण भते ! कतिभागावसेसाउया परभवियाउय पकरेंति ?

गोयमा ! पंचेंदियतिरिक्खजोणिया दुविहा पन्नत्ता । त जहा—सखेज्जवासाउया य असखेज्ज-वासाउया य । तत्थ णं जे ते असखेज्जवासाउया ते नियमा छम्मासावसेसाउया परभवियाउय पकरेंति । तत्थ ण जे ते सखेज्जवासाउया ते दुविहा पण्णत्ता । तं जहा—सोवक्कमाउया य निरुवक्क-माउया य । तत्थ ण जे ते निरुवक्कमाउया ते णियमा तिभागावसेसाउया परभवियाउय पकरेंति । तत्थ णं जे ते सोवक्कमाउया ते ण सिय तिभागे परभवियाउय पकरेंति, सिय तिभागतिभागे य परभवियाउय पकरेंति, सिय तिभागतिभागतिभागावसेसाउया परभवियाउय पकरेंति ।

[६८१ प्र] भगवन् ! पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक, आयुष्य का कितना भाग शेष रहने पर परभव की आयु का बन्ध करते है ?

[६८१ उ] गौतम ! पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक दो प्रकार के कहे गए है । वे इस प्रकार—(१) सख्यातवर्षायुष्क और (२) असख्यातवर्षायुष्क । उनमे से जो असख्यात वर्ष की आयु वाले है, वे नियम से छह मास आयु शेष रहते परभव का आयुष्यबन्ध कर लेते है और जो इनमे सख्यातवर्ष की आयु वाले है, वे दो प्रकार के कहे गए है । वे इस प्रकार है—(१) सोपक्रम आयु वाले और (२) निरुपक्रम आयु वाले । इनमे जो निरुपक्रम आयु वाले है, वे नियमत आयु का तीसरा भाग शेष रहने पर परभव का आयुष्यबन्ध करते है । जो सोपक्रम आयु वाले है, वे कदाचित् आयुष्य का तीसरा भाग शेष रहते पारभविक आयुष्यबन्ध करते है, कदाचित् आयु के तीसरे भाग का तीसरा भाग शेष रहते परभव का आयुष्यबन्ध करते है और कदाचित् आयु के तीसरे भाग के तीसरे भाग का तीसरा भाग शेष रहते पारभविक आयुबन्ध करते है ।

६८२ एव मणूसा वि ।

[६८२] मनुष्यो का (पारभविक आयुष्यबन्ध-सम्बन्धी कथन भी) इसी प्रकार (करना चाहिए ।)

६८३ वाणमतर-जोइसिय-वेमाणिया जहा नेरइया । दार ७ ।।

[६८३] वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिको (के परभव का आयुष्यबन्ध) नैरयिको के (पारभविक आयुष्यबन्ध के) समान (छह मास शेष रहने पर) कहना चाहिए ।

सप्तम पारभविकायुष्यद्वार ।।७।।

विवेचन—सप्तम पारभविकायुष्यद्वार : चातुर्गतिक जीवो की पारभविक आयुष्यबन्ध-सम्बन्धी

प्ररूपणा—नरकादि चारो गतियो के जीवो की आयु का कितना भाग शेष रहते परभवसवधी आयुष्य बन्ध होता है ? इस विषय मे प्रस्तुत सात सूत्रो (सू ६७७ से ६८३ तक) मे प्ररूपणा की गई है।

पारभविकायुष्यद्वार का तात्पर्य—वर्तमान भव मे नारकादिपर्याय वाले जीव अपने वर्तमान भव सम्बन्धी आयु का कितना भाग शेष रहते अथवा आयुष्य का कितना भाग वीत जाने पर अगले जन्म (आगामी-परभव) की आयु का वन्ध करते है ? यही वताना इस द्वार का आशय है।

सोपक्रम और निरुपक्रम की व्याख्या—जो आयु उपक्रमयुक्त हो, वह सोपक्रम कहलाती है और जो आयु उपक्रम से प्रभावित न हो सके, वह निरुपक्रम कहलाती है। आयु का विघात करने वाले तीव्र विष, शस्त्र, अग्नि, जल आदि उपक्रम कहलाते है। इन उपक्रमो के योग से दीर्घकाल मे धीरे-धीरे भोगी जाने वाली आयु बन्धकालीन स्थिति से पहले (शीघ्र) ही भोग ली जाती है। अर्थात् इन उपक्रमो के निमित्त से जो आयु वीच मे ही टूट जाती है, जिस आयु का भोगकाल बन्धकालीन स्थितिमर्यादा से कम हो, उसे अकालमृत्यु, सोपक्रम आयु अथवा अपवर्तनीय आयु भी कहते है। जो आयु बन्धकालीन स्थिति के पूर्ण होने से पहले न भोगी जा सके, अर्थात्—जिसका भोगकाल बन्धकालीन स्थितिमर्यादा के समान हो, वह निरुपक्रम या अनपवर्तनीय आयु कहलाती है। औपपातिक (नारक और देव), चरमशरीरी, उत्तमपुरुष और असख्यातवर्षजीवी (मनुष्य-तिर्यञ्च), ये अनपवर्तनीय-निरुपक्रम आयु वाले होते है।

निष्कर्ष—निरुपक्रमी जीवो मे औपपातिक और असख्यातवर्षजीवी अनपवर्तनीय आयु वाले होते है। वे आयुष्य के ६ मास शेष रहते आगामी भव का आयुष्यबन्ध करते है, जैसे—नैरयिक, सब प्रकार के देव और असख्यातवर्षजीवी मनुष्य-तिर्यञ्च। पृथ्वीकायिकादि से लेकर मनुष्यो तक दोनो ही प्रकार की आयु वाले होते है। इनमे जो निरुपक्रम आयु वाले होते है, वे आयु (स्थिति) के दो भाग व्यतीत हो जाने पर और तीसरा भाग शेष रहने पर आगामी भव का आयुष्य बाधते है, किन्तु जो सोपक्रम आयु वाले है, वे कदाचित् वर्तमान आयु का तीसरा भाग शेष रहने पर परभव की आयु का बन्ध करते है, किन्तु यह नियम नही है कि वे तीसरा भाग शेष रहते परभव का आयुष्यबन्ध कर ही ले। अतएव जो जीव उस समय आयुबन्ध नही करते, वे अवशिष्ट तीसरे भाग के तीन भागो मे से दो भाग व्यतीत हो जाने पर और एक भाग शेष रहने पर आयु का बन्ध करते है। कदाचित् इस तीसरे भाग मे भी पारभविक आयु का बन्ध न हुआ तो शेष आयु का तीसरा भाग शेष रहते आयु का बन्ध करते हैं। अर्थात् आयु के तीसरे भाग के तीसरे भाग के तीसरे भाग मे आयुष्यबन्ध करते है। कोई-कोई विद्वान् इसका अर्थ यो करते है कि कभी आयु का नौवा भाग शेष रहने पर अथवा कभी आयु का सत्ताईसवा भाग शेष रहने पर सोपक्रम आयु वाले जीव आगामी भव का आयुष्य बाधते है।[1]

---

१ (क) प्रज्ञापनासूत्र, प्रमेयबोधिनी टीका भा २, पृ ११४२-११४३

(ख) तत्त्वार्थसूत्र (विवेचन, प सुखलालजी, नवसस्करण)

'औपपातिकचरमदेहोत्तमपुरुषाऽसख्येयवर्षायुषोऽनपवर्त्यायुष ।' २ २५

—तत्त्वार्थसूत्र अ २, सू ५२ पर विवेचन। पृ ७९-८०

(ग) श्री पन्नवणासूत्र के थोकडे, प्रथम भाग, पृ १५०

(घ) 'कभी-कभी अपनी आयु के २७ वें भाग का तीसरा भाग यानी ८१ वा भाग शेष रहने पर, कभी ८१ वें भाग का तीसरा भाग यानी २४३ वा भाग और कभी २४३ वें भाग का तीसरा भाग यानी ७२९ वा भाग शेष रहने पर यावत् अन्तर्मुहूर्त्त शेष रहने पर परभव की आयु बाधते है।' —किन्ही आचार्यों का मत

—श्री पन्नवणासूत्र के थोकडे, प्रथमभाग पृ १५०, प्रज्ञापना प्र बो टीका भा २, पृ ११४४-४५

अष्टम आकर्षद्वार : सर्वजीवो के षड्विध आयुष्यवन्ध, उनके आकर्षो की सख्या और अल्पबहुत्व—

६८४ कतिविधे ण भते ! आउयवधे पण्णत्ते ?

गोयमा ! छव्विधे आउयवधे पण्णत्ते । त जहा—जातिणामणिहत्ताउए १ गइनामनिहत्ताउए २ ठितीनामनिहत्ताउए ३ ओगाहणाणामणिहत्ताउए ४ पदेसणामणिहत्ताउए ५ अणुभावणामणिहत्ताउए ६ ।

[६८४ प्र] भगवन् ! आयुष्य का वन्ध कितने प्रकार का कहा है ?

[६८४ उ] गौतम ! आयुष्यवन्ध छह प्रकार का कहा गया है । वह इस प्रकार है—(१) जातिनामनिधत्तायु, (२) गतिनामनिधत्तायु, (३) स्थितिनामनिधत्तायु, (४) अवगाहनानामनिधत्तायु, (५) प्रदेशनामनिधत्तायु और (६) अनुभावनामनिधत्तायु ।

६८५ नेरइयाण भते ! कतिविहे आउयवधे पण्णत्ते ?

गोयमा ! छव्विहे आउयवधे पण्णत्ते । त जहा—जातिनामनिहत्ताउए १ गतिणामनिहत्ताउए २ ठितीणामणिहत्ताउए ३ ओगाहणानामनिहत्ताउए ४ पदेसणामनिहत्ताउए ५ अणुभावनामनिहत्ताउए ६ ।

[६८५ प्र] भगवन् ! नैरयिको का आयुष्यबन्ध कितने प्रकार का कहा है ?

[६८५ उ] गौतम ! (नैरयिको का) आयुष्यबन्ध छह प्रकार का कहा गया है । वह इस प्रकार—(१) जातिनामनिधत्तायु, (२) गतिनामनिधत्तायु, (३) स्थितिनामनिधत्तायु, (४) अवगाहनानामनिधत्तायु, (५) प्रदेशनामनिधत्तायु और (६) अनुभावनामनिधत्तायु ।

६८६ एव जाव वेमाणियाण ।

[६८६] इसी प्रकार (आगे असुरकुमारो से लेकर) यावत् वैमानिको तक के आयुष्यवन्ध की प्ररूपणा समझनी चाहिए ।

६८७ जीवा ण भते ! जातिणामणिहत्ताउय कतिहिं आगरिसेहिं पकरेंति ?

गोयमा ! जहण्णेण एक्केण वा दोहिं वा तीहिं वा, उक्कोसेण अट्ठहिं ।

[६८७ प्र] भगवन् ! जीव जातिनामनिधत्तायु को कितने आकर्षो से बाधते है ?

[६८७ उ] गौतम ! (जीव जातिनामनिधत्तायु को) जघन्य एक, दो या तीन अथवा उत्कृष्ट आठ आकर्षों से (बाधते हैं ।)

६८८ नेरइया ण भते ! जाइनामनिहत्ताउय कतिहिं आगरिसेहिं पकरेंति ?

गोयमा ! जहण्णेण एक्केण वा दोहिं वा तीहिं वा, उक्कोसेण अट्ठहिं ।

[६८८ प्र] भगवन् ! नारक जातिनामनिधत्तायु को कितने आकर्षों से बाधते है ?

प्ररूपणा—नरकादि चारो गतियो के जीवो की आयु का कितना भाग शेप रहते परभवसवधी आयुष्य बन्ध होता है ? इस विषय मे प्रस्तुत सात सूत्रो (सू ६७७ से ६८३ तक) मे प्ररूपणा की गई है।

पारभविकायुष्यद्वार का तात्पर्य—वर्तमान भव मे नारकादिपर्याय वाले जीव अपने वर्तमान भव सम्बन्धी आयु का कितना भाग शेष रहते अथवा आयुष्य का कितना भाग वीत जाने पर अगले जन्म (आगामी-परभव) की आयु का वन्ध करते है ? यही वताना इस द्वार का आशय है।

सोपक्रम और निरुपक्रम की व्याख्या—जो आयु उपक्रमयुक्त हो, वह सोपक्रम कहलाती है और जो आयु उपक्रम से प्रभावित न हो सके, वह निरुपक्रम कहलाती है। आयु का विघात करने वाले तीव्र विष, शस्त्र, अग्नि, जल आदि उपक्रम कहलाते है। इन उपक्रमो के योग से दीर्घकाल मे धीरे-धीरे भोगी जाने वाली आयु वन्धकालीन स्थिति से पहले (शीघ्र) ही भोग ली जाती है। अर्थात् इन उपक्रमो के निमित्त से जो आयु वीच मे ही टूट जाती है, जिस आयु का भोगकाल बन्धकालीन स्थितिमर्यादा से कम हो, उसे अकालमृत्यु, सोपक्रम आयु अथवा अपवर्तनीय आयु भी कहते हैं। जो आयु बन्धकालीन स्थिति के पूर्ण होने से पहले न भोगी जा सके, अर्थात्—जिसका भोगकाल वन्ध-कालीन स्थितिमर्यादा के समान हो, वह निरुपक्रम या अनपवर्तनीय आयु कहलाती है। औपपातिक (नारक और देव), चरमशरीरी, उत्तमपुरुष और असख्यातवर्षजीवी (मनुष्य-तिर्यञ्च), ये अनपवर्त-नीय-निरुपक्रम आयु वाले होते है।

निष्कर्ष—निरुपक्रमी जीवो मे औपपातिक और असख्यातवर्षजीवी अनपवर्तनीय आयु वाले होते है। वे आयुष्य के ६ मास शेष रहते आगामी भव का आयुष्यबन्ध करते है, जैसे—नैरयिक, सब प्रकार के देव और असख्यातवर्षजीवी मनुष्य-तिर्यञ्च। पृथ्वीकायिकादि से लेकर मनुष्यो तक दोनो ही प्रकार की आयु वाले होते है। इनमे जो निरुपक्रम आयु वाले होते है, वे आयु (स्थिति) के दो भाग व्यतीत हो जाने पर और तीसरा भाग शेष रहने पर आगामी भव का आयुष्य बाधते है, किन्तु जो सोपक्रम आयु वाले हैं, वे कदाचित् वर्तमान आयु का तीसरा भाग शेष रहने पर परभव की आयु का बन्ध करते है, किन्तु यह नियम नही है कि वे तीसरा भाग शेष रहते परभव का आयुष्यबन्ध कर ही ले। अतएव जो जीव उस समय आयुबन्ध नही करते, वे अवशिष्ट तीसरे भाग के तीन भागो मे से दो भाग व्यतीत हो जाने पर और एक भाग शेष रहने पर आयु का बन्ध करते है। कदाचित् इस तीसरे भाग मे भी पारभविक आयु का बन्ध न हुआ तो शेष आयु का तीसरा भाग शेष रहते आयु का बन्ध करते है। अर्थात् आयु के तीसरे भाग के तीसरे भाग के तीसरे भाग मे आयुष्यबन्ध करते है। कोई-कोई विद्वान् इसका अर्थ यो करते है कि कभी आयु का नौवा भाग शेष रहने पर अथवा कभी आयु का सत्ताईसवा भाग शेष रहने पर सोपक्रम आयु वाले जीव आगामी भव का आयुष्य बाधते है।[1]

---

१ (क) प्रज्ञापनासूत्र, प्रमेयबोधिनी टीका भा २, पृ ११४२-११४३
(ख) तत्त्वार्थसूत्र (विवेचन, प सुखलालजी, नवसस्करण)
'औपपातिकचरमदेहोत्तमपुरुषाऽसख्येयवर्षायुषोऽनपवर्त्यायुष ।' २ २५
—तत्त्वार्थसूत्र अ २, सू ५२ पर विवेचन। पृ ७९-८०
(ग) श्री पन्नवणासूत्र के थोकडे, प्रथम भाग, पृ १५०
(घ) 'कभी-कभी अपनी आयु के २७ वें भाग का तीसरा भाग यानी ८१ वा भाग शेष रहने पर, कभी ८१ वें भाग का तीसरा भाग यानी २४३ वा भाग और कभी २४३ वें भाग का तीसरा भाग यानी ७२९ वा भाग शेप रहने पर यावत् अन्तर्मुहूर्त्त शेष रहने पर परभव की आयु बाधते हैं।' —किन्ही आचार्यों का मत
—श्री पन्नवणासूत्र के थोकडे, प्रथमभाग पृ १५०, प्रज्ञापना प्र बो टीका भा २, पृ ११४४-४५

अष्टम आकर्षद्वार : सर्वजीवों के षड्विध आयुष्यबन्ध, उनके आकर्षों की सख्या और अल्पबहुत्व—

६८४ कतिविधे णं भते ! आउयबधे पण्णत्ते ?

गोयमा ! छव्विधे आउयबधे पण्णत्ते । त जहा—जातिणामणिहत्ताउए १ गइनामनिहत्ताउए २ ठितीनामनिहत्ताउए ३ ओगाहणाणामणिहत्ताउए ४ पदेसणामणिहत्ताउए ५ अणुभावणामणिहत्ताउए ६ ।

[६८४ प्र] भगवन् ! आयुष्य का वन्ध कितने प्रकार का कहा है ?

[६८४ उ] गौतम ! आयुष्यवन्ध छह प्रकार का कहा गया है । वह इस प्रकार है—(१) जातिनामनिधत्तायु, (२) गतिनामनिधत्तायु, (३) स्थितिनामनिधत्तायु, (४) अवगाहनानाम-निधत्तायु, (५) प्रदेशनामनिधत्तायु और (६) अनुभावनामनिधत्तायु ।

६८५ नेरइयाण भते ! कतिविहे आउयबधे पण्णत्ते ?

गोयमा ! छव्विहे आउयबधे पण्णत्ते । त जहा—जातिनामनिहत्ताउए १ गतिणामनिहत्ताउए २ ठितीणामणिहत्ताउए ३ ओगाहणानामनिहत्ताउए ४ पदेसणामनिहत्ताउए ५ अणुभावनामनिहत्ताउए ६ ।

[६८५ प्र] भगवन् ! नैरयिको का आयुष्यबन्ध कितने प्रकार का कहा है ?

[६८५ उ] गौतम ! (नैरयिको का) आयुष्यबन्ध छह प्रकार का कहा गया है । वह इस प्रकार—(१) जातिनामनिधत्तायु, (२) गतिनामनिधत्तायु, (३) स्थितिनामनिधत्तायु, (४) अवगाहना-नामनिधत्तायु, (५) प्रदेशनामनिधत्तायु और (६) अनुभावनामनिधत्तायु ।

६८६ एव जाव वेमाणियाण ।

[६८६] इसी प्रकार (आगे असुरकुमारो से लेकर) यावत् वैमानिको तक के आयुष्यबन्ध की प्ररूपणा समझनी चाहिए ।

६८७ जीवा णं भंते ! जातिणामणिहत्ताउय कतिहिं आगरिसेहिं पकरेंति ?
गोयमा ! जहण्णेणं एक्केण वा दोहिं वा तीहिं वा, उक्कोसेण अट्ठहिं ।

[६८७ प्र] भगवन् ! जीव जातिनामनिधत्तायु को कितने आकर्षो से बाधते है ?

[६८७ उ] गौतम ! (जीव जातिनामनिधत्तायु को) जघन्य एक, दो या तीन अथवा उत्कृष्ट आठ आकर्षो से (बाधते है ।)

६८८ नेरइया ण भते ! जाइनामनिहत्ताउय कतिहिं आगरिसेहिं पकरेंति ?
गोयमा ! जहण्णेण एक्केण वा दोहिं वा तीहिं वा, उक्कोसेण अट्ठहिं ।

[६८८ प्र] भगवन् ! नारक जातिनामनिधत्तायु को कितने आकर्षो से वाधते है ?

[६८८ उ] गौतम ! (नारक जातिनामनिधत्तायु को) जघन्य एक, दो या तीन, अथवा उत्कृष्ट आठ आकर्षो से बाधते है ।

६८९ एव जाव वेमाणिया ।

[६८९] इसी प्रकार (आगे असुरकुमारो से लेकर) यावत् वैमानिक तक (के जातिनामनिधत्तायु की आकर्ष-सख्या का कथन करना चाहिए ।)

६९० एव गतिणामणिहत्ताउए वि ठितीणामनिहत्ताउए वि ओगाहणाणामनिहत्ताउए वि पदेसणामनिहत्ताउए वि अणुभावणामनिहत्ताउए वि ।

[६९०] इसी प्रकार (समस्त जीव) गतिनामनिधत्तायु, स्थितिनामनिधत्तायु, अवगाहनानामनिधत्तायु, प्रदेशनामनिधत्तायु और अनुभावनामनिधत्तायु का (बन्ध) भी जघन्य एक, दो या तीन अथवा उत्कृष्ट आठ आकर्षो से करते है ।

६९१ एतेसि ण भते ! जीवाण जातिनामनिहत्ताउय जहण्णेण एक्केण वा दोहिं वा तीहिं वा उक्कोसेण अट्ठहिं आगरिसेहिं पकरेमाणाण कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा जातिणामणिहत्ताउय अट्ठहिं आगरिसेहिं पकरेमाणा, सत्तहिं आगरिसेहिं पकरेमाणा सखेज्जगुणा, छहिं आगरिसेहिं पकरेमाणा सखेज्जगुणा, एव पचहिं सखेज्जगुणा, चउहिं संखेज्जगुणा, तिहिं सखेज्जगुणा, दोहिं सखेज्जगुणा, एगेण आगरिसेण पगरेमाणा सखेज्जगुणा ।

[६९१ प्र] भगवन् ! इन जीवो मे जघन्य एक, दो और तीन, अथवा उत्कृष्ट आठ आकर्षो से बन्ध करने वालो मे कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[६९१ उ] गौतम ! सबसे कम जीव जातिनामनिधत्तायु को आठ आकर्षों से बाधने वाले हैं, सात आकर्षो से बाधने वाले (इनसे) सख्यातगुणे हैं, छह आकर्षो से बाधने वाले (इनसे) सख्यातगुणे हैं, इसी प्रकार पांच (आकर्षों से बाधने वाले इनसे) सख्यातगुणे है, चार (आकर्षो से बाधने वाले इनसे) सख्यातगुणे है, तीन (आकर्षों से बाधने वाले, इनसे) सख्यातगुणे हैं, दो (आकर्षो से बाधने वाले, इनसे) सख्यातगुणे है और एक आकर्ष से बाधने वाले, (इनसे भी) सख्यातगुणे हैं ।

६९२ एव एतेण अभिलावेण जाव अणुभावनिहत्ताउय । एव एते छ प्पि य अप्पाबहुदडगा जीवादीया भाणियव्वा । दार ८ ॥

॥ पण्णवणाए भगवईए छट्ठ वक्कतिपय समत्त ॥

[६९२] इसी प्रकार इस अभिलाप से (ऐसा ही अल्पबहुत्व का कथन) गतिनामनिधत्तायु, स्थितिनामनिधत्तायु, अवगाहनानामनिधत्तायु, प्रदेशनामनिधत्तायु और यावत् अनुभावनामनिधत्तायु को बाधने वालो का (जान लेना चाहिए ।) इस प्रकार ये छहो ही अल्पबहुत्वसम्बन्धी दण्डक जीव से आरम्भ करके कहने चाहिए ।

—आठवा आकर्षद्वार ॥८॥

विवेचन—आठवा आकर्षद्वार : सभी जीवो के छह प्रकार के आयुष्यबन्ध, उनके आकर्षो की संख्या और अल्पबहुत्व—प्रस्तुत अष्टमद्वार मे नौ सूत्रो (सू ६८४ से ६९२ तक) द्वारा तीन तथ्य प्रस्तुत किये गए है—

१ जीवसामान्य के तथा नारको से वैमानिको तक का छह प्रकार का आयुष्यबन्ध ।

२ जीवसामान्य तथा नारकादि वैमानिकपर्यन्त जीवो द्वारा जातिनामनिधत्तायु आदि छहो का जघन्य एक, दो या तीन तथा उत्कृष्ट आठ आकर्षो से बन्ध की प्ररूपणा ।

३ जातिनामनिधत्तायु आदि प्रत्येक आयु को जघन्य-उत्कृष्ट आकर्षो से बाधने वाले जीवो का अल्पबहुत्व ।

आयुष्यबन्ध के छह प्रकारो का स्वरूप—(१) जातिनामनिधत्तायु—जैनदृष्टि से एकेन्द्रियादि-रूप पाच प्रकार की जातिया है । वे नामकर्म की उत्तरप्रकृतिविशेष रूप है, उस 'जातिनाम' के साथ निधत्त अर्थात्—निषिक्त जो आयु हो, वह **'जातिनामनिधत्तायु'** है । 'निषेक' कहते है—कर्मपुद्गलो के अनुभव करने के लिए रचनाविशेष को । वह रचना इस प्रकार की होती है—अपने अबाधाकाल को छोडकर (क्योकि अबाधाकाल मे कर्मपुद्गलो का अनुभव नही होता, इसलिए उसमे कर्मदलिको की रचना नही होती ।) प्रथम—जघन्य अन्तर्मुहूर्त्तरूप स्थिति मे बहुतर द्रव्य होता है । एक आकर्ष मे ग्रहण किये हुए कर्मदलिको मे बहुत-से जघन्य स्थिति वाले ही होते है । शेष एक समय आदि से अधिक अन्तर्मुहूर्त्तादि स्थिति मे विशेष हीन (कम) द्रव्य होता है, एव यावत् उत्कृष्ट स्थिति मे उत्कृष्टत (विशेषहीन अर्थात्—सर्वहीन=सबसे कम) दलिक होते है । (२) **गतिनामनिधत्तायु**—गतिया चार है—नरकगति, तिर्यंचगति, मनुष्यगति और देवगति । गतिरूप नामकर्म 'गतिनाम' है । उनके साथ निधत्त (निषिक्त) आयु "**गतिनामनिधत्तायु**' कहलाती है । (३) **स्थितिनामनिधत्तायु**—उस-उस भव मे (आयुष्यबल से) स्थित रहना स्थिति है । स्थितिप्रधान नाम (नामकर्म) स्थितिनाम है । उसके साथ निधत्त आयु '**स्थितिनामनिधत्तायु**' है । जो जिस भव मे उदयप्राप्त रहता है, वह स्थितिनाम है, जो कि गति, जाति तथा पाच शरीरो से भिन्न है । (४) **अवगाहनानामनिधत्तायु**—जिसमे जीव अवगाहन करे, उसे अवगाहना कहते है । औदारिकादि शरीर, उनका निर्माण करने वाला औदारिकादि शरीरनामकर्म—अवगाहनानाम है । उसके साथ निधत्त आयु '**अवगाहनानामनिधत्तायु**' कहलाती है । (५) **प्रदेशनामनिधत्तायु**—प्रदेश कहते है—कर्मपरमाणुओ को । वे प्रदेश सक्रम से भी भोगे जाने वाले ग्रहण किये जाते हैं । उन (प्रदेशो) की प्रधानता वाला नाम (नामकर्म) प्रदेशनाम कहलाता है । तात्पर्य यह है कि जो जिस भव मे प्रदेश से विपाकोदय के विना ही भोगा (अनुभव किया) जाता है, वह प्रदेशनाम कहलाता है । उक्त प्रदेशनाम के साथ निधत्त आयु को '**प्रदेशनामनिधत्तायु**' कहते हैं । (६) **अनुभावनामनिधत्तायु**—अनुभाव कहते हैं—विपाक को । यहाँ प्रकर्ष अवस्था को प्राप्त विपाक ही ग्रहण किया जाता हे । उस अनुभाव-विपाक की प्रधानता वाला नाम (नामकर्म) 'अनुभाव-नाम' कहलाता है । तात्पर्य यह है कि जिस भव मे जो तीव्र विपाक वाला नामकर्म भोगा जाता है, वह अनुभावनाम कहलाता है । जैसे—नरकायु मे अशुभ वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, उपघात, दु स्वर, अनादेय, अयश कीर्ति आदि नामकर्म है । अत अनुभावनाम के साथ निधत्त आयु '**अनुभावनामनिधत्तायु**' कहलाती है ।

प्रस्तुत मे आयुकर्म की प्रधानता प्रकट करने के लिए जाति, गति, स्थिति, अवगाहना नामकर्म

आदि को आयु के विशेषण के रूप मे कहा है। नारक आदि की आयु का उदय होने पर ही जाति आदि नामकर्मो का उदय होता है। अन्यथा नही, अतएव आयु की ही यहाँ प्रधानता है।[1]

आकर्ष का स्वरूप—आकर्ष कहते है—विशेष प्रकार के प्रयत्न से जीव द्वारा होने वाले कर्म-पुद्गलो के उपादान—ग्रहण को। प्रस्तुत सूत्रो (सू ६८७ से ६९० तक) मे इस विषय की चर्चा की गई है कि जीवसामान्य तथा नारक से लेकर वैमानिक तक कितने आकर्षो यानी प्रयत्नविशेषो से जातिनामनिधत्तायु आदि षड्विध आयुष्यकर्म-पुद्गलो का ग्रहण, बन्ध करने हेतु, करते है? उदाहरणार्थ—जैसे—कई गाये एक ही घू ट मे पर्याप्त जल पी लेती है, कई भय के कारण रुक-रुक कर दो, तीन या चार अथवा सात-आठ घू टो मे जल पीती हैं। उसी प्रकार कई जीव उन-उन जातिनाम आदि से निधत्त आयुकर्म के (बन्धहेतु) पुद्गलो का तीव्र अध्यवसायवश एक ही मन्द आकर्ष मे ग्रहण कर लेते हैं, दूसरे दो या तीन मन्दतर आकर्षो मे या चार या पाच मन्दतम आकर्षो मे या फिर छह, सात या आठ अत्यन्त मन्दतम आकर्षो मे ग्रहण करते है। यहाँ यह बात ध्यान मे रखनी चाहिए कि आयु के साथ बन्धने वाले जाति आदि नामो (नामकर्मो) मे ही आकर्ष का नियम है, शेष काल मे नही। कई प्रकृतियाँ 'ध्रुवबन्धिनी' होती है और कई 'परावर्तमान' होती है। उनका बहुत काल तक बन्ध सम्भव होने से उनमे आकर्षो का नियम नही है।[2]

आकर्ष करने वाले जीवो का तारतम्य— बन्ध के हेतु आयुष्यकर्मपुद्गलो का ग्रहण अधिक-से-अधिक आठ आकर्षो मे करने वाले जीव सबसे कम हैं, उनसे क्रमश कम आकर्ष करने वाले जीव उत्तरोत्तर सख्यातगुणे अधिक है, सबसे अधिक जीव एक आकर्ष करने वाले है।[3]

॥ प्रज्ञापनासूत्र छठा व्युत्क्रान्तिपद समाप्त ॥

---

१ प्रज्ञापना मलय वृत्ति, पत्राक २१७-२१८   २ प्रज्ञापना मलय वृत्ति, पत्राक २१८

३ पण्णवणासुत्त भा २, छठे पद की प्रस्तावना, पृ ७४

सत्तमं उस्सासपयं

(सप्तम उच्छ्वासपद)

प्राथमिक

* प्रज्ञापनासूत्र के सप्तम 'उच्छ्वासपद' मे सिद्ध जीवो के सिवाय समस्त ससारी जीवो के श्वासोच्छ्वास के विरहकाल की चर्चा है।

* जीवनधारण के लिए प्रत्येक प्राणी को श्वासोच्छ्वास की आवश्यकता है। चाहे वह मुनि हो, चक्रवर्ती हो, राजा हो अथवा किसी भी प्रकार का देव हो, नारक हो अथवा एकेन्द्रिय से लेकर तिर्यञ्चपचेन्द्रिय तक किसी भी जाति का प्राणी हो। इसलिए श्वासोच्छ्वासरूप प्राण का अत्यन्त महत्त्व है और यह 'जीवतत्त्व' से विशेषरूप से सम्वन्धित हे। इस कारण शास्त्रकार ने इस पद की रचना करके प्रत्येक प्रकार के जीव के श्वासोच्छ्वास के विरहकाल की प्ररूपणा की है।

* इस पद के प्रत्येक सूत्र के मूलपाठ मे '**आणमति वा पाणमति वा ऊससति वा नीससति वा** ये चार क्रियापद है। वृत्तिकार आचार्य मलयगिरि '**आणमति**' और '**ऊससति**' को तथा '**पाणमति**' और '**नीससति**' को एकार्थक मानते है, परन्तु उन्होने अन्य आचार्यो का मत भी दिया है। उसके अनुसार प्रथम के दो क्रियापदो को बाह्य श्वासोच्छ्वास क्रिया के अर्थ मे माना गया है।

* प्रस्तुत पद मे सर्वप्रथम नैरयिको के उच्छ्वासनि श्वास-विरहकाल की, तत्पश्चात् दस भवनपति देवो, पृथ्वीकायिकादि पाच एकेन्द्रियो, द्वि-त्रि-चतुरिन्द्रियो तथा पचेन्द्रिय तिर्यञ्चो, मनुष्यो के श्वासोच्छ्वास-विरहकाल की चर्चा की है। अन्त मे वाणव्यन्तरो, ज्योतिष्को, सौधर्मादि वैमानिको एव नौ ग्रैवेयको तथा पाच अनुत्तरविमानवासी देवो के उच्छ्वास-नि श्वास विरहकाल की पथक्-पृथक् प्ररूपणा की है।[1]

* समस्त ससारी जीवो के उच्छ्वास-नि श्वास-विरहकाल की इस प्ररूपणा पर से एक बात स्पष्ट फलित होती है, जिस की ओर वृत्तिकार ने ध्यान खीचा है। वह यह कि जो जीव जितने अधिक दु खी होते हैं, उन जीवो की श्वासोच्छ्वासक्रिया उतनी ही अधिक और शीघ्र चलती है और अत्यन्त दु खी जीवो के तो यह क्रिया सतत अविरत रूप से चला करती है। जो जीव जितने-जितने अधिक, अधिकतर या अधिकतम सुखी होते हैं, उनकी श्वासोच्छ्वास क्रिया उत्तरोत्तर देर से चलती है। अर्थात् उनका श्वासोच्छ्वास-विरहकाल उतना ही अधिक, अधिकतर और अधिकतम है, क्योकि श्वासोच्छ्वास क्रिया अपने आप मे दु खरूप है, यह बात स्वानुभव से भी सिद्ध है, शास्त्रसमर्थित भी है।[2]

---

१ (क) प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक २२०-२२१ (ख) पण्णवणासुत्त (मूलपाठ) भा १, पृ १८४ से १८७ तक।

२ (क) प्रज्ञापनासूत्र म वृत्ति, पत्राक २२० (ख) पण्णवणासुत्त (परिशिष्ट प्रस्तावनात्मक) भा २, पृ ७५

सत्तमं उस्सा पयं

सप्तम उच्छ्वासपद

६९३ नेरइया णं भंते ! केवतिकालस्स आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा नीससंति वा ?

गोयमा ! सततं संतयामेव आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा नीससंति वा ।

[६९३ प्र.] भगवन् ! नैरयिक कितने काल से अन्तःस्फुरित उच्छ्वास और निःश्वास लेते हैं तथा बाह्यस्फुरित उच्छ्वास (ऊँचा श्वास) और निःश्वास (नीचा श्वास) लेते हैं ? (अथवा उच्छ्वास अर्थात् श्वास लेते और निःश्वास अर्थात् श्वास छोड़ते है ।)

[६९३ उ.] गौतम ! वे सतत सदैव निरन्तर अन्तःस्फुरित उच्छ्वास-निःश्वास एवं बाह्य-स्फुरित उच्छ्वास-निःश्वास लेते रहते हैं ।

६९४ असुरकुमारा णं भंते ! केवतिकालस्स आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा नीससंति वा ?

गोयमा ! जहण्णेणं सत्तण्हं थोवाणं, उक्कोसेणं सातिरेगस्स पक्खस्स वा आणमंति वा जाव नीससंति वा ।

[६९४ प्र.] भगवन् ! असुरकुमार देव कितने काल से (अन्तःस्फुरित) उच्छ्वास और निःश्वास लेते हैं तथा बाह्यस्फुरित उच्छ्वास-निःश्वासक्रिया करते हैं ?

[६९४ उ.] गौतम ! वे जघन्यतः सात स्तोक में और उत्कृष्टतः सातिरेक एक पक्ष में (अन्तःस्फुरित) उच्छ्वास और निःश्वास लेते है तथा (बाह्य) उच्छ्वास एवं निःश्वास लेते है ।

६९५ णागकुमारा णं भंते ! केवतिकालस्स आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा नीससंति वा ?

गोयमा ! जहण्णेणं सत्तण्हं थोवाणं, उक्कोसेणं मुहुत्तपुहुत्तस्स ।

[६९५ प्र.] भगवन् ! नागकुमार कितने काल से (अन्तःस्फुरित) उच्छ्वास और निःश्वास लेते हैं तथा (बाह्य) उच्छ्वास और निःश्वास लेते है ?

[६९५ उ.] गौतम ! वे जघन्य सात स्तोक मे और उत्कृष्टतः मुहूर्त्तपृथक्त्व मे (अन्तः-स्फुरित) उच्छ्वास और निश्वास लेते हैं तथा (बाह्य) उच्छ्वास एवं निःश्वास लेते हैं ।

६९६ एवं जाव थणियकुमाराणं ।

[६९६ प्र.] इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमार तक के उच्छ्वास-निःश्वास के विषय मे समझ लेना चाहिए ।

६९७. पुढविकाइया ण भते ! केवतिकालस्स आणमति वा पाणमति वा जाव नीससति वा ?

गोयमा ! वेमायाए आणमति वा जाव नीससति वा ।

[६९७ प्र] भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीव कितने काल से (अन्त स्फुरित) श्वासोच्छ्वास लेते हैं एव (बाह्य) उच्छ्वास तथा नि श्वास लेते है ?

[६९७ उ] गौतम ! (पृथ्वीकायिक जीव) विमात्रा (अनियत काल) मे (अन्त स्फुरित) श्वासोच्छ्वास लेते है एव (बाह्य) उच्छ्वास तथा नि श्वास लेते है ।

६९८. एवं जाव मणूसा ।

[६९८] इसी प्रकार (अप्कायिक से लेकर) यावत् मनुष्यो तक (के आन्तरिक एव बाह्य श्वासोच्छ्वास के विषय मे जानना चाहिए ।)

६९९ वाणमतरा जहा णागकुमारा ।

[६९९] वाणव्यन्तर देवो के (आन्तरिक एव बाह्य उच्छ्वास और नि श्वास के विषय मे) नागकुमारो के (उच्छ्वास-नि श्वास) के समान (कहना चाहिए ।)

७०० जोइसिया ण भते ! केवतिकालस्स आणमति वा पाणमति वा जाव नीससति वा ?

गोयमा ! जहण्णेण मुहुत्तपुहुत्तस्स, उक्कोसेण वि मुहुत्तपुहुत्तस्स जाव नीससंति वा ।

[७०० प्र] भगवन् ! ज्योतिष्क (अन्त स्फुरित) उच्छ्वास-नि श्वास एव (बाह्य) श्वासोच्छ्वास कितने काल से लेते हैं ?

[७०० उ] गौतम ! (वे) जघन्यत मुहूर्त्तपृथक्त्व और उत्कृष्टत भी मुहूर्त्तपृथक्त्व से (आन्तरिक और बाह्य) उच्छ्वास और नि श्वास लेते है ।

७०१. वेमाणिया ण भते ! केवइकालस्स आणमति वा जाव नीससति वा ?

गोयमा ! जहण्णेण मुहुत्तपुहुत्तस्स, उक्कोसेण तेत्तीसाए पक्खाण जाव नीससति वा ।

[७०१ प्र] भगवन् ! वैमानिक देव कितने काल से (अन्त स्फुरित) उच्छ्वास और नि श्वास लेते है तथा (बाह्य) उच्छ्वास एव नि श्वास लेते है ?

[७०१ उ] गौतम ! (वे) जघन्यत मुहूर्त्तपृथक्त्व मे और उत्कृष्टत तेतीस पक्ष मे (आन्तरिक एव बाह्य) उच्छ्वास तथा नि श्वास लेते है ।

७०२ सोहम्मगदेवा ण भते ! केवइकालस्स आणमति वा जाव नीससति वा ।

गोयमा ! जहण्णेण मुहुत्तपुहुत्तस्स, उक्कोसेण दोण्ह पक्खाण जाव नीससति वा ।

[७०२ प्र] भगवन् ! सौधर्मकल्प के देव कितने काल से (अन्त स्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्य) नि श्वास लेते है ?

[७०२ उ] गौतम ! जघन्य मुहूर्त्तपृथक्त्व मे, उत्कृष्ट दो पक्षो मे (अन्त स्फुरित) उच्छ्वास यावत् (वाह्य) नि श्वास लेते है ।

७०३ ईसाणगदेवा णं भंते ! केवइकालस्स आणमति वा जाव नीससति वा ?

गोयमा ! जहण्णेण सातिरेगस्स मुहुत्तपुहुत्तस्स, उक्कोसेण सातिरेगाण दोण्ह पक्खाण जाव नीससति वा ।

[७०३ प्र] भगवन् ! ईशानकल्प के देव कितने काल से (अन्त स्फुरित) उच्छ्वास यावत (बाह्य) नि श्वास लेते है ?

[७०३ उ] गौतम ! (वे) जघन्यत सातिरेक (कुछ अधिक) मुहूर्त्तपृथक्त्व मे और उत्कृष्टत सातिरेक (कुछ अधिक) दो पक्षो मे (अन्त स्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्य) नि श्वास लेते है ।

७०४. सणकुमारदेवा णं भंते ! केवतिकालस्स आणमति वा जाव नीससति वा ?

गोयमा ! जहण्णेण दोण्ह पक्खाण जाव णीससति वा, उक्कोसेण सत्तण्ह पक्खाण जाव नीससति वा ।

[७०४ प्र] भगवन् ! सनत्कुमार देव कितने काल से (अन्त स्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्य) नि श्वास लेते है ?

[७०४ उ] गौतम ! वे जघन्यत दो पक्ष मे (अन्त स्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्य) नि श्वास लेते हैं और उत्कृष्टत सात पक्षो मे (अन्त स्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्य) नि श्वास लेते हैं ।

७०५ माहिंदगदेवा ण भंते ! केवतिकालस्स आणमति वा जाव नीससति वा ?

गोयमा ! जहण्णेण सातिरेगाणं दोण्ह पक्खाण जाव नीससति वा, उक्कोसेण सातिरेगाण सत्तण्हं पक्खाण जाव नीससति वा ।

[७०५ प्र] भगवन् ! माहेन्द्रकल्प के देव कितने काल से (अन्त स्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्य) नि श्वास लेतें है ?

[७०५ उ] गौतम ! (वे) जघन्यत सातिरेक (कुछ अधिक) दो पक्षो मे और उत्कृष्टत सातिरेक (कुछ अधिक) सात पक्षो मे (अन्त स्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्य) नि श्वास लेते हैं ।

७०६ बंभलोगदेवा ण भंते ! केवतिकालस्स आणमति वा जाव नीससति वा ?

गोयमा ! जहण्णेण सत्तण्ह पक्खाण जाव नीससति वा, उक्कोसेण दसण्ह पक्खाण जाव नीससति वा ।

[७०६ प्र] भगवन् ! ब्रह्मलोककल्प के देव कितने काल से (अन्त स्फुरित) उच्छ्वास यावत् (वाह्य) नि श्वास लेते हैं ?

[७०६ उ] गौतम ! (वे) जघन्यत सात पक्षो मे और उत्कृष्टत दस पक्षो मे (अन्त स्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्य) नि श्वास लेते है ।

७०७ लंतगदेवा ण भंते ! केवतिकालस्स आणमंति वा जाव नीससंति वा ?

गोयमा ! जहण्णेणं दसण्हं पक्खाणं जाव नीससंति वा, उक्कोसेणं चोद्दसण्हं पक्खाणं जाव नीससंति वा।

[७०७ प्र] भगवन् ! लान्तककल्प के देव कितने काल से (अन्त स्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्यस्फुरित) निःश्वास लेते हैं ?

[७०७ उ] गौतम ! (वे) जघन्य दस पक्षों में और उत्कृष्ट चौदह पक्षों में (अन्त स्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्य) निःश्वास लेते हैं।

७०८. महासुक्कदेवा ण भंते ! केवतिकालस्स आणमंति वा जाव नीससंति वा ?

गोयमा ! जहण्णेणं चोद्दसण्हं पक्खाणं जाव नीससंति वा, उक्कोसेणं सत्तरसण्हं पक्खाणं जाव नीससंति वा।

[७०८ प्र] भगवन् ! महाशुक्रकल्प के देव कितने काल से (अन्त स्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्यस्फुरित) निःश्वास लेते हैं ?

[७०८ उ] गौतम ! (वे) जघन्यतः चौदह पक्षों में और उत्कृष्टतः सत्रह पक्षों में (अन्त स्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्यस्फुरित) निःश्वास लेते हैं।

७०९ सहस्सारगदेवा ण भंते ! केवतिकालस्स आणमंति वा जाव नीससंति वा ?

गोयमा ! जहण्णेणं सत्तरसण्हं पक्खाणं जाव नीससंति वा, उक्कोसेणं अट्ठारसण्हं पक्खाणं जाव नीससंति वा।

[७०९ प्र] भगवन् ! सहस्रारकल्प के देव कितने काल से (अन्त स्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्यस्फुरित) निःश्वास लेते हैं ?

[७०९ उ] गौतम ! (वे) जघन्य सत्रह पक्षों में और उत्कृष्ट अठारह पक्षों में (अन्त स्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्यस्फुरित) निःश्वास लेते हैं।

७१० आणयदेवा ण भंते ! केवतिकालस्स जाव नीससंति वा ?

गोयमा ! जहण्णेणं अट्ठारसण्हं पक्खाणं जाव नीससंति वा, उक्कोसेणं एक्कूणवीसाए पक्खाणं जाव नीससंति वा।

[७१० प्र] भगवन् ! आनतकल्प के देव कितने काल से (अन्त स्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्यस्फुरित) निःश्वास लेते हैं ?

[७१० उ] गौतम ! (वे) जघन्य अठारह पक्षों में और उत्कृष्ट उन्नीस पक्षों में (अन्त-स्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्यस्फुरित) निःश्वास लेते हैं।

७११. पाणयदेवा ण भंते ! केवतिकालस्स जाव नीससंति वा ?

गोयमा ! जहण्णेणं एगूणवीसाए पक्खाणं जाव नीससंति वा, उक्कोसेणं वीसाए पक्खाणं जाव नीससंति वा।

[७११ प्र] भगवन् ! प्राणतकल्प के देव कितने काल से (अन्त स्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्यस्फुरित) नि श्वास लेते है ?

[७११ उ] गौतम ! (वे) जघन्यत उन्नीस पक्षो मे और उत्कृष्टत बीस पक्षो मे (अन्त स्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्यस्फुरित) नि श्वास लेते है ।

७१२ आरणदेवा ण भते ! केवतिकालस्स जाव नीससति वा ?

गोयमा ! जहण्णेण वीसाए पक्खाण जाव नीससति वा, उक्कोसेण एगवीसाए पक्खाण जाव नीससति वा ।

[७१२ प्र] भगवन् ! आरणकल्प के देव कितने काल से (अन्त स्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्यस्फुरित) नि श्वास लेते है ?

[७१२ उ] गौतम ! (वे) जघन्यत बीस पक्षो मे और उत्कृष्टत इक्कीस पक्षो मे (अन्त स्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्यस्फुरित) नि श्वास लेते है ।

७१३ अच्चुयदेवा ण भते ! केवतिकालस्स जाव नीससति वा ?

गोयमा ! जहण्णेण एक्कवीसाए पक्खाण जाव नीससति वा, उक्कोसेण बावीसाए पक्खाण जाव नीससति वा ।

[७१३ प्र] भगवन् ! अच्युतकल्प के देव कितने काल से (अन्त स्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्यस्फुरित) नि श्वास लेते है ?

[७१३ उ] गौतम ! (वे) जघन्यत इक्कीस पक्षो मे और उत्कृष्टत बाईस पक्षो मे (अन्त स्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्यस्फुरित) नि श्वास लेते है ।

७१४ हेट्ठिमहिट्ठिमगेविज्जगदेवा ण भते ! केवतिकालस्स जाव नीससति वा ।

गोयमा ! जहन्नेण बावीसाए पक्खाण जाव नीससति वा, उक्कोसेण तेवीसाए पक्खाण जाव नीससति वा ।

[७१४ प्र] भगवन् ! अधस्तन-अधस्तनग्रैवेयक देव कितने काल से (आन्तरिक) उच्छ्वास यावत् (बाह्य) नि श्वास लेते है ?

[७१४ उ] गौतम ! (वे) जघन्यत बाईस पक्षो मे और उत्कृष्टत तेईस पक्षो मे (अन्त स्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्यस्फुरित) नि श्वास लेते है ।

७१५ हेट्ठिममज्झिमगेवेज्जगदेवा ण भते ! केवतिकालस्स जाव नीससति वा ?

गोयमा ! जहण्णेण तेवीसाए पक्खाण जाव नीससति वा, उक्कोसेण चउवीसाए पक्खाण जाव नीससति वा ।

[७१५ उ] भगवन् ! अधस्तन-मध्यमग्रैवेयक देव कितने काल से (आन्तरिक) उच्छ्वास यावत् (बाह्य) नि श्वास लेते है ?

[७१५ उ] गौतम ! (वे) जघन्यत तेईस पक्षो मे और उत्कृष्टत चौवीस पक्षो मे (अन्त - स्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्यस्फुरित) नि श्वास लेते है ।

७१६ हेट्ठिमउवरिमगेवेज्जगा देवा ण भते ! केवतिकालस्स जाव नीससति वा ?

गोयमा ! जहण्णेण चउवीसाए पक्खाण जाव नीससति वा, उक्कोसेण पणुवीसाए पक्खाण जाव नीससति वा ।

[७१६ प्र] भगवन् ! अधस्तन-उपरितन ग्रैवेयक के देव कितने काल से (आन्तरिक) उच्छ्वास यावत् (बाह्य) नि श्वास लेते है ?

[७१६ उ] गौतम ! (वे) जघन्यत चौवीस पक्षो मे और उत्कृष्टत पच्चीस पक्षो मे (अन्त स्फुरित) उच्छ्वास, यावत् (बाह्यस्फुरित) नि श्वास लेते हैं ।

७१७. मज्झिमहेट्ठिमगेवेज्जगा ण भते ! देवा केवतिकालस्स जाव नीससति वा ?

गोयमा ! जहण्णेण पणवीसाए पक्खाण जाव नीससति वा, उक्कोसेण छव्वीसाए पक्खाण जाव नीससति वा ।

[७१७ प्र] भगवन् ! मध्यम-अधस्तनग्रैवेयक देव कितने काल से (आन्तरिक) उच्छ्वास यावत् (बाह्य) नि श्वास लेते है ?

[७१७ उ.] गौतम ! (वे) जघन्यत पच्चीस पक्षो मे और उत्कृष्टत छव्वीस पक्षो मे (अन्त स्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्यस्फुरित) नि श्वास लेते है ।

७१८ मज्झिममज्झिमगेवेज्जगदेवा ण भते ! केवतिकालस्स जाव नीससति वा ?

गोयमा ! जहण्णेण छव्वीसाए पक्खाण जाव नीससति वा, उक्कोसेण सत्तावीसाए पक्खाण जाव नीससति वा ।

[७१८ प्र] भगवन् ! मध्यम-मध्यमग्रैवेयक देव कितने काल से (आन्तरिक) उच्छ्वास यावत् (बाह्य) नि श्वास लेते हैं ?

[७१८ उ] गौतम ! (वे) जघन्यत छव्वीस पक्षो मे और उत्कृष्टत सत्ताईस पक्षो मे (अन्त स्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्यस्फुरित) नि श्वास लेते है ।

७१९ मज्झिमउवरिमगेवेज्जगा ण भते ! देवा केवतिकालस्स जाव नीससति वा ?

गोयमा ! जहण्णेण सत्तावीसाए पक्खाण जाव नीससति वा, उक्कोसेण अट्ठावीसाए पक्खाण जाव नीससति वा ।

[७१९ प्र] भगवन् ! मध्यम-उपरितनग्रैवेयक देव कितने काल से (आन्तरिक) उच्छ्वास यावत् (बाह्य) नि श्वास लेते है ?

[७१९ उ] गौतम ! (वे) जघन्यत सत्ताईस पक्षो मे और उत्कृष्टत अट्ठाईस पक्षो मे (अन्त स्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्यस्फुरित) नि श्वास लेते है ।

[७२४ प्र] भगवन् ! सर्वार्थसिद्ध विमान के देव कितने काल से (आन्तरिक) उच्छ्वास यावत् (बाह्य) नि श्वास लेते हैं ?

[७२४ उ] गौतम ! (वे) अजघन्य-अनुत्कृष्ट (जघन्य और उत्कृष्ट के भेद से रहित) तेतीस पक्षो मे (अन्त स्फुरित) उच्छ्वास यावत् (वाह्यस्फुरित) नि श्वास लेते है ।

विवेचन नैरयिको से लेकर वैमानिको तक के श्वासोच्छ्वास की प्ररूपणा—प्रस्तुत पद के कुल बत्तीस सूत्रो (सू ६९३ से ७२४ तक) मे क्रमश नैरयिक से लेकर वैमानिक देवो तक चौवीस दण्डकवर्ती ससारी जीवो की अन्त स्फुरित एव वाह्यस्फुरित उच्छ्वास-नि श्वासक्रिया जघन्य एव उत्कृष्ट कितने काल के अन्तर से होती है ? इसकी प्ररूपणा की गई है ।

प्रश्न का तात्पर्य—जो प्राणी नारक आदि पर्यायो मे उत्पन्न हुए है और श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति से पर्याप्त हैं, वे कितने काल के बाद उच्छ्वास-नि श्वास लेते है ? अर्थात् एक श्वासोच्छ्वास लेने के पश्चात् दूसरा श्वासोच्छ्वास लेने तक मे उनके उच्छ्वास-नि श्वास का विरहकाल कितना होता है ?, यही इस पद के प्रत्येक प्रश्न का तात्पर्य है ।

आणमति, पाणमति, ऊससति, नीससति पदो की व्याख्या—'अन् प्राणने' धातु से 'आङ्' उपसर्ग लगने पर 'आनन्ति' और 'प्र' उपसर्ग लगने पर 'प्राणन्ति' रूप वनता है तथा सामान्यतया 'आनन्ति' और 'उच्छ्वसन्ति' का तथा 'प्राणन्ति' और 'नि श्वसन्ति' का एक ही अर्थ है,फिर समानार्थक दो-दो क्रियापदो का प्रयोग यहाँ क्यो किया गया ? ऐसी शका उपस्थित होती है । इसके दो समाधान यहाँ प्रस्तुत किये गए है—एक तो यह है कि भगवान् के पट्टधर शिष्य श्री गौतमस्वामी ने अपने प्रश्न को स्पष्टरूप से प्रस्तुत करने के लिए समानार्थक दो-दो शब्दो का प्रयोग किया है—जैसे कि 'नैरयिक कितने काल से श्वास लेते हैं अथवा यो कहे कि ऊँचा श्वास और नीचा श्वास लेते है ?' भगवान् के ऐसे प्रश्न के उत्तर मे अपने शिष्य के पुनरुक्त वचन के प्रति आदर प्रदर्शित करने हेतु उन्ही समानार्थक दो-दो शब्दो का प्रयोग किया है, क्योकि गुरुओ के द्वारा शिष्यो के वचन को आदर दिये जाने से शिष्यो को सन्तोष होता है, वे पुन -पुन अपने प्रश्नो का निर्णयात्मक उत्तर सुनने के लिए उत्सुक रहते हैं तथा उन शिष्यो के वचन भी जगत् मे आदरणीय समझे जाते हैं । दूसरा समाधान यह है कि 'आनन्ति' और 'प्राणन्ति' का अर्थ अन्तर मे स्फुरित होने वाली उच्छ्वास-नि श्वास क्रिया और 'उच्छ्वसन्ति' एव 'नि श्वसन्ति' का अर्थ बाहर मे स्फुरित होने वाली उच्छ्वास-नि श्वासक्रिया समझना चाहिए । अत यहाँ पुनरुक्ति नही किन्तु अर्थभेद के कारण पृथक्-पृथक् क्रियापदो का प्रयोग किया गया है ।

नारको की सतत उच्छ्वास-नि श्वासक्रिया का रहस्य—भगवान् ने नैरयिको के उच्छ्वास सम्बन्धी प्रश्न के उत्तर मे फरमाया कि नैरयिक सदैव निरन्तर अविच्छिन्न रूप से उच्छ्वास-निश्वास लेते रहते है, इस कारण उनका श्वासोच्छ्वास लगातार चालू रहता है, एक बार श्वासोच्छ्वास लेने के वाद दूसरी वार के श्वासोच्छ्वास लेने के वीच मे व्यवधान (विरह) नही रहता ।

विमात्रा से उच्छ्वास-नि श्वास लेने का तात्पर्य—पृथ्वीकायिक आदि समस्त एकेन्द्रिय जीव तथा द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, तिर्यञ्चपचेन्द्रिय एव मनुष्य, ये विमात्रा से उच्छ्वास-नि श्वास लेते हैं । इसका अर्थ है—इनके उच्छ्वास के विरह का कोई काल नियत नही है,

७२०. उवरिमहेट्ठिमगेवेज्जगा ण भते ! देवा केवतिकालस्स जाव नीससति वा ?

गोयमा ! जहण्णेण अट्ठावीसाए पक्खाण जाव नीससति वा, उक्कोसेणं एगूणतीसाए पक्खाण जाव णीससति वा ।

[७२० प्र] भगवन् ! उपरितन-अधस्तनग्रैवेयक देव कितने काल से (आन्तरिक) उच्छ्वास यावत् (बाह्य) नि श्वास लेते है ?

[७२० उ] गौतम ! (वे) जघन्यत अट्ठाईस पक्षो मे और उत्कृष्टत उनतीस पक्षो मे (अन्त स्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्य) नि श्वास लेते है ।

७२१ उवरिममज्झिमगेवेज्जगा ण भते ! देवा केवतिकालस्स जाव नीससति वा ?

गोयमा ! जहण्णेण एगूणतीसाए पक्खाण जाव नीससति वा, उक्कोसेण तीसाए पक्खाण जाव नीससति वा ।

[७२१ प्र] भगवन् ! उपरितन-मध्यमग्रैवेयक देव कितने काल से (आन्तरिक) उच्छ्वास यावत् (बाह्य) नि श्वास लेते हैं ?

[७२१ उ] गौतम ! (वे) जघन्यत उनतीस पक्षो मे और उत्कृष्टत तीस पक्षो मे (अन्त - स्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्यस्फुरित) नि श्वास लेते हैं ।

७२२ उवरिमउवरिमगेवेज्जगा ण भते ! देवा ण केवतिकालस्स जाव नीससति वा ?

गोयमा ! जहण्णेण तीसाए पक्खाण जाव नीससति वा, उक्कोसेण एक्कतीसाए पक्खाणं जाव नीससति वा ।

[७२२ प्र] भगवन् ! उपरितन-उपरितनग्रैवेयक देव कितने काल से (आन्तरिक) उच्छ्वास यावत् (बाह्य) नि श्वास लेते है ?

[७२२ उ] गौतम ! (वे) जघन्यत तीस पक्षो मे और उत्कृष्टत इकतीस पक्षो मे (अन्त - स्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्यस्फुरित) नि श्वास लेते है ।

७२३ विजय-वेजयत-जयताऽपराजितविमाणेसु ण भते ! देवा केवतिकालस्स जाव नीससति वा ?

गोयमा ! जहण्णेण एक्कतीसाए पक्खाण जाव नीससति वा, उक्कोसेण तेत्तीसाए पक्खाण जाव नीससति वा ।

[७२३ प्र] भगवन् ! विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित विमानो के देव कितने काल से (आन्तरिक) उच्छ्वास यावत् (बाह्य) नि श्वास लेते है ?

[७२३ उ] गौतम ! (वे) जघन्यत इकतीस पक्षो मे और उत्कृष्टत तेतीस पक्षो मे (अन्त स्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्यस्फुरित) नि श्वास लेते हैं ।

७२४ सव्वट्ठसिद्धगदेवा ण भते ! केवतिकालस्स जाव नीससति वा ?

गोयमा ! अजहण्णमणुक्कोसेण तेत्तीसाए पक्खाण जाव नीससति वा ।

।। पण्णवणाए भगवईए सत्तम उस्सासपय समत्त ।।

[७२४ प्र] भगवन् ! सर्वार्थसिद्ध विमान के देव कितने काल से (आन्तरिक) उच्छ्वास यावत् (बाह्य) निःश्वास लेते हैं ?

[७२४ उ] गौतम ! (वे) अजघन्य-अनुत्कृष्ट (जघन्य और उत्कृष्ट के भेद से रहित) तेतीस पक्षों मे (अन्तःस्फुरित) उच्छ्वास यावत् (बाह्यस्फुरित) निःश्वास लेते है।

विवेचन—नैरयिकों से लेकर वैमानिकों तक के श्वासोच्छ्वास की प्ररूपणा—प्रस्तुत पद के कुल बत्तीस सूत्रों (सू. ६९३ से ७२४ तक) मे क्रमशः नैरयिक से लेकर वैमानिक देवों तक चौवीस दण्डकवर्ती ससारी जीवो की अन्तःस्फुरित एव बाह्यस्फुरित उच्छ्वास-निःश्वासक्रिया जघन्य एव उत्कृष्ट कितने काल के अन्तर से होती है ? इसकी प्ररूपणा की गई है।

प्रश्न का तात्पर्य—जो प्राणी नारक आदि पर्यायो मे उत्पन्न हुए है और श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति से पर्याप्त हैं, वे कितने काल के बाद उच्छ्वास-निःश्वास लेते है ? अर्थात् एक श्वासोच्छ्वास लेने के पश्चात् दूसरा श्वासोच्छ्वास लेने तक मे उनके उच्छ्वास-निःश्वास का विरहकाल कितना होता है ?, यही इस पद के प्रत्येक प्रश्न का तात्पर्य है।

आणमंति, पाणमंति, ऊससंति, नीससंति पदों की व्याख्या—'अन् प्राणने' धातु से 'आङ्' उपसर्ग लगने पर 'आनन्ति' और 'प्र' उपसर्ग लगने पर 'प्राणन्ति' रूप बनता है तथा सामान्यतया 'आनन्ति' और 'उच्छ्वसन्ति' का तथा 'प्राणन्ति' और 'निःश्वसन्ति' का एक ही अर्थ है,फिर समानार्थक दो-दो क्रियापदो का प्रयोग यहाँ क्यो किया गया ? ऐसी शका उपस्थित होती है। इसके दो समाधान यहाँ प्रस्तुत किये गए है—एक तो यह है कि भगवान् के पट्टधर शिष्य श्री गौतमस्वामी ने अपने प्रश्न को स्पष्टरूप से प्रस्तुत करने के लिए समानार्थक दो-दो शब्दो का प्रयोग किया है—जैसे कि 'नैरयिक कितने काल से श्वास लेते हैं अथवा यो कहे कि ऊँचा श्वास और नीचा श्वास लेते है ?' भगवान् के ऐसे प्रश्न के उत्तर मे अपने शिष्य के पुनरुक्त वचन के प्रति आदर प्रदर्शित करने हेतु उन्ही समानार्थक दो-दो शब्दो का प्रयोग किया है, क्योकि गुरुओ के द्वारा शिष्यो के वचन को आदर दिये जाने से शिष्यो को सन्तोष होता है, वे पुनः-पुनः अपने प्रश्नो का निर्णयात्मक उत्तर सुनने के लिए उत्सुक रहते है तथा उन शिष्यो के वचन भी जगत् मे आदरणीय समझे जाते हैं। दूसरा समाधान यह है कि 'आनन्ति' और 'प्राणन्ति' का अर्थ अन्तर मे स्फुरित होने वाली उच्छ्वास-निःश्वास क्रिया और 'उच्छ्वसन्ति' एव 'निःश्वसन्ति' का अर्थ बाहर मे स्फुरित होने वाली उच्छ्वास-निःश्वासक्रिया समझना चाहिए। अतः यहाँ पुनरुक्ति नही किन्तु अर्थभेद के कारण पृथक्-पृथक् क्रियापदो का प्रयोग किया गया है।

नारकों की सतत उच्छ्वास-निःश्वासक्रिया का रहस्य—भगवान् ने नैरयिको के उच्छ्वास सम्बन्धी प्रश्न के उत्तर मे फरमाया कि नैरयिक सदैव निरन्तर अविच्छिन्न रूप से उच्छ्वास-निश्वास लेते रहते है, इस कारण उनका श्वासोच्छ्वास लगातार चालू रहता है, एक बार श्वासोच्छ्वास लेने के बाद दूसरी बार के श्वासोच्छ्वास लेने के बीच मे व्यवधान (विरह) नही रहता।

विमात्रा से उच्छ्वास-निःश्वास लेने का तात्पर्य—पृथ्वीकायिक आदि समस्त एकेन्द्रिय जीव तथा द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, तिर्यञ्चपचेन्द्रिय एव मनुष्य, ये विमात्रा से उच्छ्वास-निःश्वास लेते हैं। इसका अर्थ है—इनके उच्छ्वास के विरह का कोई काल नियत नही है,

जो स्वस्थ और सुखी अथवा प्राणायाम करने वाले योगी होते है, वे दीर्घकाल से श्वासोच्छ्वास लेते है, किन्तु अस्वस्थ और दु खी या भोगी-जल्दी जल्दी श्वास लेते है ।

देवो मे उत्तरोत्तर दीर्घकाल के अनन्तर उच्छ्वास-नि श्वास लेने का रहस्य—देवो मे जो देव जितनी अधिक आयु वाला होता है, वह उतना ही अधिक सुखी होता है और जो जितना अधिक सुखी होता है, उसके उच्छ्वास-नि श्वास का विरहकाल उतना ही अधिक लम्बा होता है, क्योकि उच्छ्वास-नि श्वासक्रिया दु खरूप है । इसलिए देवो मे जैसे-जैसे आयु के सागरोपम मे वृद्धि होती है, उतने-उतने श्वासोच्छ्वासविरह के पक्षो मे वृद्धि होती जाती है ।[1]

।। प्रज्ञापनासूत्र . सप्तम उच्छ्वासपद समाप्त ।।

□□

---

१ प्रज्ञापनासूत्र म वृत्ति, पत्राक २२०-२२१

अट्ठमं सण्णापयं

अष्टम संज्ञापद

प्राथमिक

* प्रज्ञापनासूत्र का यह आठवाँ पद है, इसका नाम है—'संज्ञापद' ।

* 'संज्ञा' शब्द पारिभाषिक शब्द है । संज्ञा की स्पष्ट शास्त्रीय परिभाषा है— वेदनीय तथा मोहनीय कर्म के उदय से एवं ज्ञानावरणीय तथा दर्शनावरणीय कर्म के क्षयोपशम से विचित्र आहारादिप्राप्ति की अभिलाषारूप, रुचिरूप मनोवृत्ति । यो शब्दशास्त्र के अनुसार संज्ञा के दो अर्थ होते है—(१) संज्ञान (अभिलाषा, रुचि, वृत्ति या प्रवृत्ति) अथवा आभोग (झुकाव या रुझान, ग्रहण करने की तमन्ना) और (२) जिससे या जिसके द्वारा 'यह जीव है' ऐसा सम्यक् रूप से जाना-पहिचाना जा सके ।

* वर्तमान मे मनोविज्ञानशास्त्र, शिक्षामनोविज्ञान, बालमनोविज्ञान, काममनोविज्ञान (सेक्स साइकोलॉजी) आदि शास्त्रो मे प्राणियो की मूल मनोवृत्तियो का विस्तृत वर्णन मिलता है, इन्ही से मिलती-जुलती ये संज्ञाएँ है, जो प्राणी की आन्तरिक मनोवृत्ति और बाह्यप्रवृत्ति को सूचित करती हैं, जिससे प्राणी के जीवन का भलीभाति अध्ययन हो सकता है । इन्ही संज्ञाओ द्वारा मनुष्य या किसी भी प्राणी की वृत्ति-प्रवृत्तियो का पता लगा कर उसके जीवन मे सुधार या परिवर्तन लाया जा सकता है ।

* इस दृष्टि से संज्ञाओ का जीवन मे बहुत बडा महत्त्व है, स्वयं की वृत्तियो को टटोलने और तदनुसार उनमे संशोधन-परिवर्धन करके आत्मचिकित्सा करने मे ।

* प्रस्तुत पद मे सर्वप्रथम आहारादि दस संज्ञाओ का नामोल्लेख करके तत्पश्चात् सामान्यरूप से नारको से लेकर वैमानिको तक सर्वसंसारी जीवो मे इन दसो संज्ञाओ का न्यूनाधिक रूप मे एक या दूसरी तरह से सद्भाव बतलाया है । एकेन्द्रिय जीवो मे ये संज्ञाएँ अव्यक्तरूप से रहती हैं और उत्तरोत्तर इन्द्रियो के विकास के साथ ये स्पष्टरूप से जीवो मे पाई जाती है । तत्पश्चात् इन दस संज्ञाओ मे से आहारादि मुख्य चार संज्ञाओ का चार गति वाले जीवो की अपेक्षा से विचार किया गया है कि किस गति के जीव मे कौन-सी संज्ञा अधिकाश रूप मे पाई जाती है ? यहाँ यह स्पष्ट बताया गया है कि नैरयिको मे प्राय भयसंज्ञा का, तिर्यंचो मे आहारसंज्ञा का, मनुष्यो मे मैथुनसंज्ञा का और देवो मे परिग्रहसंज्ञा का प्राबल्य है । यो सामान्य रूप से चारो गतियो के जीवो मे ये चारो संज्ञाएँ न्यूनाधिक रूप मे पाई जाती हैं । तत्पश्चात् प्रत्येक गति के जीव मे इन चारो संज्ञाओ के अल्पबहुत्व का विचार किया गया

है । वृत्तिकार ने प्रत्येक गति के जीव मे वाहुल्य से पाई जाने वाली सज्ञा का तथा तथारूप सज्ञासम्पन्न जीव की अल्पता या अधिकता का युक्तिपुरःसर कारण बताया है ।[1]

* कुल मिला कर १३ सूत्रो (सू ७२५ से ७३७ तक) मे जीवतत्त्व से सम्बद्ध सज्ञाओ का प्रस्तुत पद मे सागोपाग विश्लेषण किया है । □□

---

१ (क) पण्णवणासुत्त (परिशिष्ट और प्रस्तावना) भा २, पृ ७६-७७
(ख) पण्णवणासुत्त (मूलपाठ) भा १, पृ १८८-१८९
(ग) जैन आगम साहित्य मनन और मीमासा पृ २४२
(घ) प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक २२२

अट्ठमं सण्णापयं

अष्टम संज्ञापद

संज्ञाओ के दस प्रकार—

७२५ कति ण भते ! सण्णाओ पण्णत्ताओ ?

गोयमा ! दस सण्णाओ पण्णत्ताओ । त जहा—आहारसण्णा १ भयसण्णा २ मेहुणसण्णा ३ परिग्गहसण्णा ४ कोहसण्णा ५ माणसण्णा ६ मायासण्णा ७ लोभसण्णा ८ लोगसण्णा ९ ओघसण्णा १० ।

[७२५ प्र] भगवन् ! सज्ञाएँ कितनी कही गई है ?

[७२५ उ] गौतम ! सज्ञाएँ दस कही गई हैं । वे इस प्रकार है—(१) आहारसज्ञा, (२) भयसज्ञा, (३) मैथुनसज्ञा, (४) परिग्रहसज्ञा, (५) क्रोधसज्ञा, (६) मानसज्ञा, (७) मायासज्ञा, (८) लोभसज्ञा, (९) लोकसज्ञा और (१०) ओघसज्ञा ।

विवेचन—सज्ञाओ के दस प्रकार—प्रस्तुत सूत्र (७२५) मे आहारसज्ञा आदि दस प्रकार की सज्ञाओ का निरूपण किया गया है ।

सज्ञा के व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ और शास्त्रीय परिभाषा—सज्ञा की व्युत्पत्ति के अनुसार उसके दो अर्थ फलित होते हैं—(१) सज्ञान अर्थात्—आभोग सज्ञा है । (२) जीव जिस-जिसके निमित्त से सम्यक् प्रकार से जाना-पहिचाना जाता है, उसे सज्ञा कहते है, किन्तु सज्ञा की शास्त्रीय परिभाषा इस प्रकार है—वेदनीय और मोहनीय कर्म के उदय से तथा ज्ञानावरणीय और दर्शनावरणीय कर्म के क्षयोपशम से विचित्र आहारादिप्राप्ति की (अभिलाषारूप, रुचिरूप या मनोवृत्तिरूप) क्रिया । यह सज्ञा उपाधिभेद से दस प्रकार की है ।

सज्ञा के दस भेदो की शास्त्रीय परिभाषा—(१) **आहारसज्ञा**—क्षुधावेदनीयकर्म के उदय से ग्रासादिरूप आहार के लिए तथाविध पुद्गलो की ग्रहणाभिलाषारूप क्रिया । (२) **भयसज्ञा**—भय-मोहनीयकर्म के उदय से भयभीत प्राणी के नेत्र, मुख मे विकारोत्पत्ति, शरीर मे रोमाञ्च, कम्पन, घबराहट आदि मनोवृत्तिरूप क्रिया । (३) **मैथुनसज्ञा**—पुरुषवेद (मोहनीयकर्म) के उदय से स्त्री-प्राप्ति की अभिलाषा रूप तथा स्त्रीवेद के उदय से पुरुष-प्राप्ति की अभिलाषारूप एव नपु सकवेद के उदय से दोनो की अभिलाषारूप क्रिया । (४) **परिग्रहसज्ञा**—लोभमोहनीय के उदय से ससार के प्रधानकारणभूत सचित्त-अचित्त पदार्थो के प्रति आसक्तिपूर्वक उन्हे ग्रहण करने की अभिलाषारूप क्रिया । (५) **क्रोधसज्ञा**—क्रोधमोहनीय के उदय से प्राणी के मुख, शरीर मे विकृति होना, नेत्र लाल होना तथा ओठ फडकना आदि कोपवृत्ति के अनुरूप चेष्टा । (६) **मानसज्ञा**—मानमोहनीय के उदय से अहकार, दर्प, गर्व आदि के रूप मे जीव की परिणति (परिणामधारा) । (७) **मायासंज्ञा**—मायामोहनीय के उदय से अशुभ-अध्यवसायपूर्वक मिथ्याभाषण आदि रूप क्रिया करने की वृत्ति । (८) **लोभसंज्ञा**—लोभमोहनीय के उदय से सचित्त-अचित्त पदार्थो की लालसा ।

(६) लोकसज्ञा—लोक मे रूढ किन्तु अन्धविश्वास, हिंसा, असत्य आदि के कारण हेय होने पर भी लोकरूढि का अनुसरण करने की प्रबल वृत्ति या अभिलाषा। अथवा मतिज्ञानावरणीय के क्षयोपशम से ससार के सुन्दर, रुचिकर पदार्थो को (या लोकप्रचलित शब्दो के अनुरूप पदार्थो) को विशेषरूप से जानने की तीव्र अभिलाषा। **(१०) ओघसज्ञा**—विना उपयोग के (विना सोचे-विचारे) धुन-ही-धुन मे किसी कार्य को करने की वृत्ति या प्रवृत्ति अथवा सनक। जैसे— उपयोग या प्रयोजन के विना ही यो ही किसी वृक्ष पर चढ जाना अथवा बैठे-बैठे पैर हिलाना, तिनके तोडना आदि। अथवा मति-ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से ससार के सुन्दर रुचिकर पदार्थो या लोकप्रचलित शब्दो के अनुरूप पदार्थो (अर्थों) को सामान्यरूप से जानने की अभिलाषा। इन दस ही प्रकार की सज्ञाओ मे पूर्वोक्त व्युत्पत्तिलभ्य दोनो अर्थ भी घटित हो जाते है। उक्त दसो सज्ञाओ मे से प्रारम्भ की चार सज्ञाओ मे से जिस प्राणी मे जिस सज्ञा का बाहुल्य हो, उस पर से उसे जान-पहिचान लिया जाता है। जैसे—नैरयिको को भयसज्ञा की अधिकता के कारण जान लिया जाता है। अथवा जिसमे जिस प्रकार की अभिलाषा, मनोवृत्ति या प्रवृत्ति हो, उसे वह सज्ञा समझ ली जाती है।[1]

नैरयिको से वैमानिको तक मे संज्ञाओ की प्ररूपणा—

७२६ नेरइयाण भते ! कति सण्णाओ पण्णत्ताओ ?

गोयमा ! दस सण्णाओ पण्णत्ताओ। त जहा—आहारसण्णा १ भयसण्णा २ मेहुणसण्णा ३ परिग्गहसण्णा ४ कोहसण्णा ५ माणसण्णा ६ मायासण्णा ७ लोभसण्णा ८ लोगसण्णा ९ ओघ-सण्णा १०।

[७२६ प्र] भगवन् ! नैरयिको मे कितनी सज्ञाएँ कही गई है ?

[७२६ उ] गौतम ! उनमे दस सज्ञाएँ कही गई है। वे इस प्रकार है—(१) आहारसज्ञा, (२) भयसज्ञा, (३) मैथुनसज्ञा, (४) परिग्रहसज्ञा, (५) क्रोधसज्ञा, (६) मानसज्ञा, (७) मायासज्ञा (८) लोभसज्ञा, (९) लोकसज्ञा और (१०) ओघसज्ञा।

७२७ असुरकुमाराण भते ! कति सण्णाओ पण्णत्ताओ ?

गोयमा ! दस सण्णाओ पण्णत्ताओ। त जहा—आहारसण्णा जाव ओघसण्णा।

[७२७ प्र] भगवन् ! असुरकुमार देवो मे कितनी सज्ञाएँ कही है ?

[७२७ उ] गौतम ! असुरकुमारो मे दसो सज्ञाएँ कही गई है। वे इस प्रकार—आहार-सज्ञा यावत् ओघसज्ञा।

७२८ एव जाव थणियकुमाराण।

[७२८] इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमार देवो तक (मे पाई जाने वाली सज्ञाओ के विषय मे) कहना चाहिए।

---

१ (क) प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक २२२
(ख) प्रज्ञापना प्रमेयबोधिनीटीका भा ३, पृ-४०-४१

७२९ एव पुढविकाइयाण वेमाणियावसाणाण णेयव्व ।

[७२९] इसी प्रकार पृथ्वीकायिको से लेकर वैमानिक-पर्यन्त (मे पाई जाने वाली सज्ञाओ के विषय मे) समझ लेना चाहिए ।

विवेचन—नैरयिको से वैमानिको तक मे सज्ञाओ की प्ररूपणा—प्रस्तुत चार सूत्रो मे नैरयिको से लेकर वैमानिक देवो तक मे दसो सज्ञाओ मे से पाई जाने वाली सज्ञाओ की प्ररूपणा की गई है । सामान्यरूप से चौवीस दण्डकवर्ती समस्त सासारिक जीवो मे प्रत्येक मे दसो ही सज्ञाएँ पाई जाती है । एकेन्द्रिय जीवो मे ये सज्ञाएँ अव्यक्तरूप से रहती ह, जवकि पचेन्द्रियो मे ये स्पष्टत जानी जाती है । यहाँ ये सज्ञाए प्राय पचेन्द्रियो को लेकर वताई गई है ।[1]

नारको मे संज्ञाओ का विचार—

७३० नेरइया ण भते ! कि आहारसण्णोवउत्ता भयसण्णोवउत्ता मेहुणसण्णोवउत्ता परिग्गहसण्णोवउत्ता ?

गोयमा ! ओसण्ण कारण पडुच्च भयसण्णोवउत्ता, सतइभाव पडुच्च आहारसण्णोवउत्ता वि जाव परिग्गहसण्णोवउत्ता वि ।

[७३० प्र] भगवन् ! नैरयिक क्या आहारसज्ञोपयुक्त (आहारसज्ञा से युक्तसम्पन्न) है, भयसज्ञा से उपयुक्त हैं, मैथुनसज्ञोपयुक्त है अथवा परिग्रहसज्ञोपयुक्त है ?

[७३० उ] गौतम ! उत्सन्नकारण (बहुलता से बाह्य कारण की अपेक्षा से वे भयसज्ञा से उपयुक्त है, (किन्तु) सततिभाव (आन्तरिक सातत्य अनुभवरूप भाव) की अपेक्षा से (वे) आहार-सज्ञोपयुक्त भी है यावत् परिग्रहसज्ञोपयुक्त भी है ।

७३१ एतेसि ण भते ! नेरइयाण आहारसण्णोवउत्ताण भयसण्णोवउत्ताण मेहुणसण्णोवउत्ताण परिग्गहसण्णोवउत्ताण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा नेरइया मेहुणसण्णोवउत्ता, आहारसण्णोवउत्ता सखेज्जगुणा, परिग्गहसण्णोवउत्ता सखेज्जगुणा, भयसण्णोवउत्ता सखेज्जगुणा ।

[७३१ प्र] भगवन् ! इन आहारसज्ञोपयुक्त, भयसज्ञोपयुक्त, मैथुनसज्ञोपयुक्त एव परिग्रह-सज्ञोपयुक्त नारको मे से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ?

[७३१ उ] गौतम ! सबसे थोडे मैथुनसज्ञोपयुक्त नैरयिक है, उनसे सख्यातगुणे आहारसज्ञोपयुक्त हैं, उनसे परिग्रहसज्ञोपयुक्त नैरयिक सख्यातगुणे हैं और उनसे भी सख्यातगुणे अधिक भयसज्ञोपयुक्त नैरयिक है ।

विवेचन—नारको मे पाई जाने वाली सज्ञाओ के अल्पबहुत्व का विचार—प्रस्तुत दो सूत्रो (सू. ७३०-७३१) मे दो दृष्टियो से आहारादि चार सज्ञाओ मे से नारको मे पाई जाने वाली सज्ञाओ तथा उनके अल्पबहुत्व का विचार किया गया है ।

---

१ प्रज्ञापना सूत्र मलयवृत्ति, पत्राक २२३

'ओसन्नकारण' तथा 'सतइभाव' की व्याख्या—'ओसन्न'—(उत्सन्न) का अर्थ यहाँ 'बाहुल्य अर्थात् प्राय अधिकाशरूप' से है। 'कारण' शब्द का अर्थ है—बाह्यकारण। इसी प्रकार **सतइभाव** (सततिभाव) का अर्थ है—सातत्य (प्रवाह) रूप से आन्तरिक अनुभवरूप भाव।

नैरयिको मे भयसज्ञा की बहुलता का कारण—नैरयिको मे नरकपाल परमाधार्मिक असुरो द्वारा विक्रिया से कृत शूल, शक्ति, भाला आदि भयोत्पादक शास्त्रो का अत्यधिक भय बना रहता है। इसी कारण यहाँ बताया गया है कि बाह्य कारण की अपेक्षा से नैरयिक बहुलता से (प्राय) भयसज्ञोपयुक्त होते है।

सतत आन्तरिक अनुभवरूप कारण की अपेक्षा से चारो सज्ञाएँ—आन्तरिक अनुभवरूप मनोभाव की अपेक्षा से नैरयिको मे आहारादि चारो सज्ञाएँ पाई जाती हैं।

नैरयिको मे चारो सज्ञाओ की अपेक्षा से अल्पबहुत्व का विचार—सबसे थोडे मैथुनसज्ञोपयुक्त नारक हैं, क्योकि नैरयिको के शरीर रातदिन निरन्तर दु ख की अग्नि मे सतप्त रहते है, आँख की पलक झपने जितने समय तक उन्हे सुख नही मिलता। अहर्निश दु ख की आग मे पचने वाले नारको को मैथुनेच्छा नही होती। कदाचित् किन्ही को मैथुनसज्ञा होती भी है तो वह भी थोडे-से समय तक रहती है। इसीलिए यहाँ नैरयिको मे सबसे थोडे मैथुनसज्ञोपयुक्त होते है। मैथुनसज्ञोपयुक्त नारको की अपेक्षा आहारसज्ञोपयुक्त नारक सख्यातगुणे अधिक हैं, क्योकि उन दु खी नारको मे प्रचुरकाल तक आहार की सज्ञा बनी रहती है। आहारसज्ञोपयुक्त नारको की अपेक्षा परिग्रहसज्ञोपयुक्त नारक सख्यातगुणे अधिक इसलिए होते हैं कि नैरयिको को आहारसज्ञा सिर्फ शरीरपोषण के लिए होती है, जबकि परिग्रहसज्ञा शरीर के अतिरिक्त जीवनरक्षा के लिए शस्त्र आदि मे होती है और वह चिरस्थायी होती है और परिग्रहसज्ञोपयुक्त नारको की अपेक्षा भयसज्ञा वाले नारक सख्यातगुणे अधिक इसलिए बताए है कि नरक मे नारको मे मृत्युपर्यन्त सतत भय की वृत्ति बनी रहती है। इस कारण भयसज्ञा वाले नारक पूर्वोक्त तीनो सज्ञाओ वालो से अधिक है तथा पृच्छा समय मे भी नारक अतिप्रभूततम भयसज्ञोपयुक्त पाये जाते हैं।[1]

तिर्यञ्चो मे सज्ञाओ का विचार—

७३२ तिरिक्खजोणिया ण भते ! किं आहारसण्णोवउत्ता जाव परिग्गहसण्णोवउत्ता ?

गोयमा ! ओसण्ण कारण पडुच्च आहारसण्णोवउत्ता, सतइभाव पडुच्च आहारसण्णोवउत्ता वि जाव परिग्गहसण्णोवउत्ता वि।

[७३२ प्र] भगवन् ! तिर्यञ्चयोनिक जीव क्या आहारसज्ञोपयुक्त होते है यावत् (अथवा) परिग्रहसज्ञोपयुक्त होते है ?

[७३२ उ] गौतम ! बहुलता से बाह्य कारण की अपेक्षा से (वे) आहारसज्ञोपयुक्त होते हैं, (किन्तु) आन्तरिक सातत्य अनुभवरूप भाव की अपेक्षा से (वे) आहारसज्ञोपयुक्त भी होते है, भयसज्ञोपयुक्त भी यावत् परिग्रहसज्ञोपयुक्त भी होते है।

---

१ प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक २२३

७३३ एतेसि ण भते ! तिरिक्खजोणियाण आहारसण्णोवउत्ताण जाव परिग्गहसण्णोवउत्ताण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा तिरिक्खजोणिया परिग्गहसण्णोवउत्ता, मेहुणसण्णोवउत्ता सखेज्जगुणा, भयसण्णोवउत्ता सखेज्जगुणा, आहारसण्णोवउत्ता सखेज्जगुणा ।

[७३३ प्र] भगवन् ! इन आहारसज्ञोपयुक्त यावत् परिग्रहसज्ञोपयुक्त तिर्यञ्चयोनिक जीवो मे कौन, किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हे ?

[७३३ उ] गौतम ! सबसे कम परिग्रहसज्ञोपयुक्त तिर्यञ्चयोनिक होते है, (उनसे) मैथुन-सज्ञोपयुक्त तिर्यञ्चयोनिक सख्यातगुणे होते है, (उनसे) भयसज्ञोपयुक्त तिर्यञ्च सख्यातगुणे होते है और उनसे भी आहारसज्ञोपयुक्त तिर्यञ्चयोनिक सख्यातगुणे अधिक होते है ।

विवेचन—तिर्यञ्चो मे पाई जाने वाली सज्ञाएँ तथा उनके अल्पबहुत्व का विचार--प्रस्तुत दो सूत्रो (सू ७३२-७३३) मे से प्रथम सूत्र मे तिर्यञ्चो मे बहुलता से तथा आन्तरिक अनुभवसातत्य से पाई जाने वाली सज्ञाओ का निरूपण है और द्वितीय सूत्र मे उन-उन सज्ञाओ से उपयुक्त तिर्यञ्चो के अल्पबहुत्व का विचार किया गया है ।

सज्ञाओ की दृष्टि से तिर्यञ्चो का अल्पबहुत्व—परिग्रहसज्ञोपयुक्त तिर्यञ्च सबसे कम होते है, क्योकि तिर्यञ्चो मे एकेन्द्रियो की सज्ञा बहुत ही अव्यक्त होती है, शेष तिर्यञ्चो मे भी परिग्रहसज्ञा अल्पकालिक होती है, अत पृच्छासमय मे वे थोडे ही पाए जाते है । परिग्रहसज्ञा वालो की अपेक्षा मैथुनसज्ञोपयुक्त तिर्यञ्च सख्यातगुणे अधिक इसलिए बताए है कि उनमे मैथुनसज्ञा का उपयोग प्रचुरतर काल तक बना रहता है । उनकी अपेक्षा भयसज्ञा मे उपयुक्त तिर्यञ्च सख्यातगुणे अधिक है, क्योकि उन्हे सजातीयो (तिर्यञ्चो) और विजातीयो (तिर्यञ्चेतर प्राणियो) से भय बना रहता है और भय का उपयोग प्रचुरतम काल तक रहता है । उनकी अपेक्षा भी आहारसज्ञा मे उपयुक्त तिर्यञ्च सख्यातगुणे अधिक होते हैं, क्योकि सभी तिर्यञ्चो मे प्राय सतत (हर समय) आहारसज्ञा का सद्भाव रहता है ।[1]

मनुष्यो मे संज्ञाओ का विचार—

७३४. मणुस्सा ण भते ! किं आहारसण्णोवउत्ता जाव परिग्गहसण्णोवउत्ता ?

गोयमा ! ओसण्णकारण पडुच्च मेहुणसण्णोवउत्ता, सततिभाव पडुच्च आहारसण्णोवउत्ता वि जाव परिग्गहसण्णोवउत्ता वि ।

[७३४ प्र] भगवन् ! क्या मनुष्य आहारसज्ञोपयुक्त होते हैं, अथवा यावत् परिग्रहसज्ञोपयुक्त होते है ?

[७३४ उ] गौतम ! बहुलता से (प्राय) बाह्य कारण की अपेक्षा से (वे) मैथुनसज्ञोपयुक्त होते है, (किन्तु) आन्तरिक सातत्यानुभवरूप भाव की अपेक्षा से (वे) आहारसज्ञोपयुक्त भी होते है, यावत् परिग्रहसज्ञोपयुक्त भी होते है ।

---

१ प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक २२३

७३५. एतेसि ण भते ! मणुस्साण आहारसण्णोवउत्ताण जाव परिग्गहसण्णोवउत्ताण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा मणूसा भयसण्णोवउत्ता, आहारसण्णोवउत्ता सखेज्जगुणा, परिग्गहसण्णोवउत्ता सखेज्जगुणा, मेहुणसण्णोवउत्ता सखेज्जगुणा ।

[७३५ प्र] भगवन् ! इन आहारसञ्ज्ञोपयुक्त यावत् परिग्रहसञ्ज्ञोपयुक्त मनुष्यो मे कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक होते है ?

[७३५ उ] गौतम ! सबसे थोडे मनुष्य भयसञ्ज्ञोपयुक्त होते है, (उनसे) आहारसञ्ज्ञोपयुक्त मनुष्य सख्यातगुणे होते है, (उनसे) परिग्रहसञ्ज्ञोपयुक्त मनुष्य सख्यातगुणे अधिक होते है (और उनसे भी) सख्यातगुणे (अधिक मनुष्य) मैथुनसञ्ज्ञोपयुक्त होते है ।

विवेचन —मनुष्यो मे पाई जाने वाली सञ्ज्ञाओ और उनके अल्पबहुत्व का विचार—प्रस्तुत दो सूत्रो (सू ७३४-७३५) मे क्रमश मनुष्य मे बहुलता से तथा सातत्यानुभवभाव से पाई जाने वाली सञ्ज्ञाओ एव उन सञ्ज्ञाओ वाले मनुष्यो का अल्पबहुत्व प्रस्तुत किया गया है ।

चारो सञ्ज्ञाओ की अपेक्षा से मनुष्यो का अल्पबहुत्व—भयसञ्ज्ञोपयुक्त मनुष्य सबसे कम इसलिए बताए है कि कुछ ही मनुष्यो मे अल्प समय तक ही भयसञ्ज्ञा रहती है । उनकी अपेक्षा आहारसञ्ज्ञोपयुक्त मनुष्य सख्यातगुणे है, क्योकि मनुष्यो मे आहारसञ्ज्ञा अधिक काल तक रहती है । आहारसञ्ज्ञा वाले मनुष्यो की अपेक्षा परिग्रहसञ्ज्ञोपयुक्त मनुष्य सख्यातगुणे अधिक होते है, क्योकि आहार की अपेक्षा मनुष्यो को परिग्रह की चिन्ता एव लालसा अधिक होती है । परिग्रहसञ्ज्ञा वाले मनुष्यो की अपेक्षा भी मैथुनसञ्ज्ञा मे उपयुक्त मनुष्य सख्यातगुणे अधिक पाए जाते है, क्योकि मनुष्यो को प्राय मैथुनसञ्ज्ञा अतिप्रभूत काल तक बनी रहती है ।[1]

देवो में संज्ञाओ का विचार—

७३६ देवा ण भते ! किं आहारसण्णोवउत्ता जाव परिग्गहसण्णोवउत्ता ?

गोयमा ! उस्सण्ण कारण पडुच्च परिग्गहसण्णोवउत्ता, सततिभाव पडुच्च आहारसण्णोवउत्ता वि जाव परिग्गहसण्णोवउत्ता वि ।

[७३६ प्र] भगवन् ! क्या देव आहारसञ्ज्ञोपयुक्त होते हैं, (अथवा) यावत् परिग्रहसञ्ज्ञोपयुक्त होते हैं ?

[७३६ उ] गौतम ! बाहुल्य से (प्राय) बाह्य कारण की अपेक्षा से (वे) परिग्रहसञ्ज्ञोपयुक्त होते है, (किन्तु) आन्तरिक सातत्य अनुभवरूप भाव की अपेक्षा से (वे) आहारसञ्ज्ञोपयुक्त भी होते हैं, यावत् परिग्रहसञ्ज्ञोपयुक्त भी होते हैं ।

७३७ एतेसि ण भते ! देवाण आहारसण्णोवउत्ताण जाव परिग्गहसण्णोवउत्ताण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

—

१ प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक २२३

गोयमा ! सव्वत्थोवा देवा आहारसण्णोवउत्ता, भयसण्णोवउत्ता सखेज्जगुणा, मेहुणसण्णोवउत्ता सखेज्जगुणा, परिग्गहसण्णोवउत्ता सखेज्जगुणा ।

।। पण्णवणाए भगवईए अट्ठम सण्णापय समत्त ।।

[७३७ प्र] भगवन् ! इन आहारसज्ञोपयुक्त यावत् परिग्रहसज्ञोपयुक्त देवो मे से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक होते है ?

[७३७ उ] गौतम ! सबसे थोडे आहारसज्ञोपयुक्त देव है, (उनकी अपेक्षा) भयसज्ञोपयुक्त देव सख्यातगुणे है, (उनकी अपेक्षा) मैथुनसज्ञोपयुक्त देव सख्यातगुणे हैं और उनसे भी सख्यातगुणे परिग्रहसज्ञोपयुक्त देव है ।

विवेचन—देवो मे पाई जाने वाली सज्ञाओ और उनके अल्पबहुत्व का विचार—प्रस्तुत दो सूत्रो (सू ७३६-७३७) मे देवो मे बाहुल्य से परिग्रहसज्ञा का तथा आन्तरिक अनुभव की अपेक्षा से चारो ही सज्ञाओ के निरूपण पूर्वक चारो सज्ञाओ की अपेक्षा से उनके अल्पबहुत्व का विचार किया गया है ।

देवो मे बाहुल्य से परिग्रहसज्ञा क्यो ?—देव अधिकाशत परिग्रहसज्ञोपयुक्त होते हैं । क्योकि परिग्रहसज्ञा के जनक कनक, मणि, रत्न आदि मे उन्हे सदा आसक्ति बनी रहती है ।

देवो का चारो संज्ञाओ की अपेक्षा से अल्पबहुत्व—सबसे कम आहारसज्ञोपयुक्त देव होते है, क्योकि देवो की आहारेच्छा का विरहकाल बहुत लम्बा होता है तथा आहारसज्ञा के उपयोग का काल बहुत थोडा होता है । अतएव पृच्छा के समय वे थोडे ही पाए जाते है । आहारसज्ञोपयुक्त देवो की अपेक्षा भयसज्ञोपयुक्त देव सख्यातगुणे अधिक होते हैं, क्योकि भयसज्ञा बहुत-से देवो को चिरकाल तक रहती है । भयसंज्ञोपयुक्त देवो की अपेक्षा मैथुनसज्ञा वाले देव सख्यातगुणे अधिक और उनसे भी परिग्रहसज्ञोपयुक्त देव सख्यातगुणे कहे गए हैं, कारण पहले बताया जा चुका है ।[1]

।। प्रज्ञापनासूत्र : अष्टम संज्ञापद समाप्त ।।

---

१ प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक २२४

ण मं ोणिप ˙

नौवा योनिपद

प्राथमिक

* प्रज्ञापना सूत्र का यह नौवा 'योनिपद' है ।

* एक भव का आयुष्य पूर्ण होने पर जीव अपने साथ तैजस और कार्मण शरीर को लेकर जाता है। फिर जिस स्थान मे जाकर वह नये जन्म के योग्य औदारिक आदि शरीर के पुद्गलो को ग्रहण करता है या गर्भरूप मे उत्पन्न होता है, अथवा जन्म लेता है, उस उत्पत्तिस्थान को 'योनि' कहते है ।

* योनि का प्रत्येक प्राणी के जीवन मे वहुत बडा महत्त्व है, क्योकि जिस योनि मे प्राणी उत्पन्न होता है, वहाँ का वातावरण, प्रकृति, सस्कार, परम्परागत प्रवृत्ति आदि का प्रभाव उस प्राणी पर पडे बिना नही रहता । इसीलिए प्रस्तुत पद मे श्री श्यामाचार्य ने योनि के विविध प्रकारो का उल्लेख करके उन-उन योनियो की अपेक्षा से जीवो का विचार प्रस्तुत किया है ।

* प्रस्तुत पद मे योनि का अनेक दृष्टियो से निरूपण किया गया है । सर्वप्रथम शीत, उष्ण और शीतोष्ण, इस प्रकार योनि के तीन भेद करके नैरयिको से लेकर वैमानिको तक मे किस जीव की कौन-सी योनि है, इसकी प्ररूपणा की गई है, तदनन्तर इन तीनो योनियो वाले और अयोनिक जीवो मे कौन किससे कितने अल्पाधिक हैं ? इसका विश्लेषण है । तत्पश्चात् सचित्त, अचित्त और मिश्र, इस प्रकार त्रिविधयोनियो का उल्लेख करके इसी तरह की चर्चा-विचारणा की है । तत्पश्चात् सवृत, विवृत और सवृत-विवृत यो योनि के तीन भेद करके पुन पहले की तरह विचार किया गया है और अन्त मे मनुष्यो की कूर्मोन्नता आदि तीन विशिष्ट योनियो का उल्लेख करके उनकी अधिकारिणी स्त्रियो का तथा उनमे जन्म लेने वाले मनुष्यो का प्रतिपादन किया है । कुल मिलाकर समस्त जीवो की योनियो के विषय मे इस पद मे सुन्दर चिन्तन प्रस्तुत किया गया है ।

* जो चौरासी लक्ष जीवयोनिया है, उनका मुख्य उद्गमस्रोत ये ही ९ प्रकार की सर्व प्राणियो की योनिया हैं । इन्ही की शाखा-प्रशाखा के रूप मे ८४ लक्ष योनिया प्रस्फुटित हुई है ।

* समस्त मनुष्यो के उत्पत्तिस्थान का निर्देश करने वाली तीन विशिष्ट योनिया अन्त मे बताई गई है—कूर्मोन्नता, शखावर्ता और वशीपत्रा । तीर्थंकरादि उत्तमपुरुष कूर्मोन्नता योनि मे जन्म धारण करते है, स्त्रीरत्न की शखावर्त्ता योनि मे अनेक जीव आते हैं, गर्भरूप मे रहते है, उनके

शरीर का चयोपचय भी होता है, किन्तु प्रवल कामाग्नि के ताप मे वे वहीं नष्ट हो जाते हैं, जन्म धारण नही करते, गर्भ से वाहर नही आते। इससे विदित होता है कि प्रवल कामभोग से गर्भस्थ जीव पनप नही सकता। तीसरी वशीपत्रा योनि सर्वसाधारण मनुष्यो की होती है।[1]

□□

---

१ (क) पण्णवणासुत्त मूलपाठ भा १, पृ १९० से १९२।
(ख) पण्णवणासुत्त (परिशिष्ट और प्रस्तावना) भा २, पृ. ७७-७८।
(ग) जैनागम साहित्य मनन और मीमासा, पृ २४३।

ण मं ोणिप ॱ

नौवाँ योनिपद

शीतादि त्रिविध योनियो की नारकादि मे प्ररूपणा—

७३८. कतिविहा णं भते ! जोणी पण्णत्ता ?

गोयमा ! तिविहा जोणी पण्णत्ता । त जहा—सीता जोणी १ उसिणा जोणी २ सीतोसिणा जोणी ३ ।

[७३८ प्र] भगवन् ! योनि कितने प्रकार की कही गई है ?

[७३८ उ] गौतम ! योनि तीन प्रकार की गई है । वह इस प्रकार—शीत योनि, उष्ण योनि और शीतोष्ण योनि ।

७३९. नेरइयाण भते ! किं सीता जोणी उसिणा जोणी सीतोसिणा जोणी ?

गोयमा ! सीता वि जोणी, उसिणा वि जोणी, नो सीतोसिणा जोणी ।

[७३९ प्र] भगवन् ! नैरयिको की क्या शीत योनि होती है, उष्ण योनि होती है अथवा शीतोष्ण योनि होती है ?

[७३९ उ] गौतम ! (नैरयिको की) शीत योनि भी होती है और उष्ण योनि भी होती है, (किन्तु) शीतोष्ण योनि नही होती ।

७४० असुरकुमाराण भते ! किं सीता जोणी उसिणा जोणी सीतोसिणा जोणी ?

गोयमा ! नो सीता, नो उसिणा, सीतोसिणा जोणी ।

(७४० प्र] भगवन् ! असुरकुमार देवो की क्या शीत योनि होती है, उष्ण योनि होती है अथवा शीतोष्ण योनि होती है ?

[७४० उ] गौतम ! उनकी न तो शीत योनि होती है और न ही उष्ण योनि होती है, (किन्तु) शीतोष्ण योनि होती है ।

७४१ एव जाव थणियकुमाराण ।

[७४१] इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमारो तक (की योनि के विषय मे समझना चाहिए ।)

७४२ पुढविकाइयाण भते ! किं सीता जोणी उसिणा जोणी सीतोसिणा जोणी ?

गोयमा ! सीता वि जोणी, उसिणा वि जोणी, सीतोसिणा वि जोणी ।

[७४२ प्र] भगवन् ! पृथ्वीकायिको की क्या शीत योनि होती है उष्ण योनि होती है अथवा शीतोष्ण योनि होती है ?

[७४२ उ] गौतम ! उनकी शीत योनि भी होती है, उष्ण योनि भी होती है और शीतोष्ण योनि भी होती है।

७४३ एव आउ-वाउ-वणस्सति-वेइदिय-तेइदिय-चउरिंदियाण वि पत्तेय भाणियव्व ।

[७४३] इसी तरह अप्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवो की प्रत्येक की योनि के विषय मे कहना चाहिए।

७४४ तेउक्काइयाण नो सीता, उसिणा, नो सीतोसिणा ।

[७४४] तेजस्कायिक जीवो की शीत योनि नही होती, उष्ण योनि होती है, शीतोष्ण योनि नही होती।

७४५ पचेंदियतिरिक्खजोणियाण भते ! किं सीता जोणी उसिणा जोणी सीतोसिणा जोणी ?

गोयमा ! सीता वि जोणी, उसिणा वि जोणी, सीतोसिणा वि जोणी ।

[७४५ प्र] भगवन् ! पचेन्द्रियतिर्यग्योनिक जीवो की क्या शीत योनि होती है, उष्ण योनि होती है, अथवा शीतोष्ण योनि होती है ?

[७४५ उ] गौतम ! (उनकी) योनि शीत भी होती है, उष्ण भी होती है और शीतोष्ण भी होती है।

७४६ सम्मुच्छिमपचेंदियतिरिक्खजोणियाण एव चेव ।

[७४६] सम्मूर्च्छिम पञ्चेन्द्रिय तिर्यग्योनिको (की योनि) के विषय मे भी इसी तरह (कहना चाहिए।)

७४७ गब्भवक्कतियपचेंदियतिरिक्खजोणियाण भते ! किं सीता जोणी उसिणा जोणी सीतोसिणा जोणी ?

गोयमा ! नो सीता जोणी, नो उसिणा जोणी, सीतोसिणा जोणी ।

[७४७ प्र] भगवन् ! गर्भज पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिको की क्या शीत योनि होती है, उष्ण योनि होती है या शीतोष्ण योनि होती है ?

[७४७ उ] गौतम ! उनकी न तो शीत योनि होती है, न उष्ण योनि होती है, किन्तु शीतोष्ण योनि होती है।

७४८. मणुस्साण भते ! किं सीता जोणी उसिणा जोणी सीतोसिणा जोणी ?

गोयमा ! सीता वि जोणी, उसिणा वि जोणी, सीतोसिणा वि जोणी।

[७४८ प्र] भगवन् ! मनुष्यो की क्या शीत योनि होती है, उष्ण योनि होती है, अथवा शीतोष्ण योनि होती है ?

[७४८ उ] गौतम ! मनुष्यो की शीत योनि भी होती है, उष्ण योनि भी होती है और शीतोष्ण योनि भी होती है।

७४९. सम्मुच्छिममणुस्साण भंते ! किं सीता जोणी उसिणा जोणी सीतोसिणा जोणी ?
गोयमा ! तिविहा वि जोणी ।

[७४९ प्र] भगवन् ! सम्मूर्च्छिम मनुष्यो की क्या शीत योनि होती है, उष्ण योनि होती है अथवा शीतोष्ण योनि होती है ?

[७४९ उ] गौतम ! उनको तीनो प्रकार की योनि होती है ।

७५०. गब्भवक्कंतियमणुस्साणं भंते ! किं सीता जोणी उसिणा जोणी सीतोसिणा जोणी ?
गोयमा ! नो सीता जोणी, नो उसिणा जोणी, सीतोसिणा जोणी ।

[७५० प्र] भगवन् ! गर्भज मनुष्यो की क्या शीत योनि होती है, उष्ण योनि होती है अथवा शीतोष्ण योनि होती है ?

[७५० उ] गौतम ! उनकी न तो शीत योनि होती, न उष्ण योनि होती है, किन्तु शीतोष्ण योनि होती है ।

७५१. वाणमंतरदेवाण भंते ! किं सीता जोणी उसिणा जोणी सीतोसिणा जोणी ?
गोयमा ! नो सीता, नो उसिणा जोणी, सीतोसिणा जोणी ।

[७५१ प्र] भगवन् ! वाणव्यन्तर देवो की क्या शीत योनि होती है, उष्ण योनि होती है, अथवा शीतोष्ण योनि होती है ?

[७५१ उ] गौतम ! उनकी न तो शीत योनि होती है और न ही उष्ण योनि होती है, किन्तु शीतोष्ण योनि होती है ।

७५२. जोइसिय-वेमाणियाण वि एव चेव ।

[७५२] इसी प्रकार ज्योतिष्को और वैमानिक देवो की (योनि के विषय मे समझना चाहिए) ।

७५३. एतेसि ण भंते ! जीवाण सीतजोणियाण उसिणजोणियाण सीतोसिणजोणियाणं अजोणियाण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा सीतोसिणजोणिया, उसिणजोणिया असंखेज्जगुणा, अजोणिया अणंतगुणा, सीतजोणिया अणंतगुणा । १ ।।

[७५३ प्र] भगवन् ! इन शीतयोनिक जीवो, उष्णयोनिक जीवो, शीतोष्णयोनिक जीवो तथा अयोनिक जीवो मे से कौन किनसे अल्प है, बहुत है, तुल्य हैं, अथवा विशेषाधिक हैं ?

[७५३ उ] गौतम ! सबसे थोडे जीव शीतोष्णयोनिक हैं, उष्णयोनिक जीव उनसे असख्यात-गुणे अधिक हैं, उनसे अयोनिक जीव अनन्तगुणे अधिक है और उनसे भी शीतयोनिक जीव अनन्तगुणे हैं ।।१।।

विवेचन—नैरयिकादि जीवो का शीतादि त्रिविध योनियो की दृष्टि से विचार—प्रस्तुत सोलह सूत्रो (सू ७३८ से ७५३ तक) मे नैरयिको से लेकर वैमानिको तक चौबीस दण्डकवर्ती जीवो का शीत, उष्ण एव शीतोष्ण, इन त्रिविध योनियो की दृष्टि से विचार किया गया है ।

योनि और उसके प्रकारो की व्याख्या—'योनि' शब्द 'यु मिश्रणे' धातु से निष्पन्न हुआ है, जिसका व्युत्पत्यर्थ होता है—जिसमे मिश्रण होता है, वह 'योनि' है। इसकी शास्त्रीय परिभाषा है—तैजस और कार्मण शरीर वाले प्राणी, जिसमे औदारिक आदि शरीरो के योग्य पुद्‌गलस्कन्धो के समुदाय के साथ मिश्रित होते है, वह योनि है। योनि से यहाँ तात्पर्य है—जीवो का उत्पत्तिस्थान। **शीत योनि** का अर्थ है—जो योनि शीतस्पर्श-परिणाम वाली हो। **उष्ण योनि** का अर्थ है—जो योनि उष्णस्पर्श-परिणाम वाली हो। **शीतोष्ण योनि** का अर्थ है—जो योनि शीत और उष्ण उभय स्पर्श के परिणाम वाली हो।

सप्त नरकपृथ्वियो की योनि का विचार—यो तो सामान्यतया नैरयिको की दो ही योनिया बताई हैं—शीत योनि और उष्ण योनि, तीसरी शीतोष्ण योनि उनके नही होती। किस नरकपृथ्वी मे कौन-सी योनि है? यह वृत्तिकार बताते है—**रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा और वालुकाप्रभा मे** नारको के जो उपपात (उत्पत्ति) क्षेत्र है, वे सब शीतस्पर्श परिणाम से परिणत है। इन उपपातक्षेत्रो के सिवाय इन तीनो पृथ्वियो मे शेष स्थान उष्णस्पर्श-परिणामपरिणत हैं। इस कारण यहाँ के शीत योनि वाले नैरयिक उष्णवेदना का वेदन करते है। **पकप्रभापृथ्वी** मे अधिकाश उपपातक्षेत्र शीतस्पर्श-परिणाम से परिणत हैं, थोडे-से ऐसे क्षेत्र है जो उष्णस्पर्श-परिणाम से परिणत है। जिन प्रस्तटो (पाथडो) और नारकावासो मे शीतस्पर्शपरिणाम वाले उपपातक्षेत्र है, उनमे उन क्षेत्रो के अतिरिक्त शेष समस्त स्थान उष्णस्पर्शपरिणाम वाले होते है तथा जिन प्रस्तटो और नारकावासो मे उष्णस्पर्शपरिणाम वाले उपपातक्षेत्र हैं, उनमे उनके अतिरिक्त अन्य सब स्थान शीतस्पर्शपरिणाम वाले होते है। इस कारण वहाँ के बहुत-से शीतयोनिक नैरयिक उष्णवेदना का वेदन करते है, जबकि थोडे-से उष्णयोनिक नैरयिक शीतवेदना का वेदन करते है। **धूमप्रभापृथ्वी** मे बहुत-से उपपातक्षेत्र उष्णस्पर्शपरिणाम से परिणत है, थोडे-से क्षेत्र शीतस्पर्शपरिणाम से परिणत होते है। जिन प्रस्तटो और जिन नारकावासो मे उष्ण-स्पर्शपरिणाम-परिणत उपपातक्षेत्र है, उनमे उनके अतिरिक्त अन्य सब स्थान शीतपरिणाम वाले होते हैं। जिन प्रस्तटो या नारकावासो मे शीतस्पर्शपरिणाम-परिणत उपपातक्षेत्र है, उनमे उनसे अतिरिक्त अन्य सब स्थान उष्णस्पर्शपरिणाम वाले है। इस कारण वहाँ के बहुत-से उष्णयोनिक नैरयिक शीत-वेदना का वेदन करते हैं, थोडे-से जो शीतयोनिक है, वे उष्णवेदना का वेदन करते है। **तम प्रभा और तमस्तम प्रभा पृथ्वी** मे सभी उपपातक्षेत्र उष्णस्पर्शपरिणाम-परिणत हैं। उनसे अतिरिक्त अन्य सब स्थान वहाँ शीतस्पर्शपरिणाम वाले है। इस कारण वहाँ के उष्णयोनिक नारक शीतवेदना का वेदन करते है।

भवनवासी देव आदि की योनिया शीतोष्ण क्यो?—सर्व प्रकार के भवनवासी देव, गर्भज तिर्यंच पचेन्द्रिय, गर्भज मनुष्य तथा व्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवो के उपपातक्षेत्र शीत और उष्ण, दोनो स्पर्शो से परिणत है, इस कारण उनकी योनिया शीत और उष्ण दोनो स्वभाव वाली (शीतोष्ण) है।

तेजस्कायिको के सिवाय पृथ्वीकायिको आदि की तीनो प्रकार की योनि—तेजस्कायिक उष्ण-योनिक ही होते है, यह बात प्रत्यक्षसिद्ध है। उनके सिवाय अन्य समस्त एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, सम्मूर्च्छिम तिर्यञ्च पचेन्द्रिय और सम्मूर्च्छिम मनुष्यो के उत्पत्तिस्थान शीतस्पर्श वाले, उष्णस्पर्श वाले और शीतोष्णस्पर्श वाले होते है, इस कारण उनकी योनि तीनो प्रकार की बताई गई है।

त्रिविध योनि वालो और अयोनिको का अल्पबहुत्व—सबसे थोडे जीव शीतोष्ण योनि वाले होते है, क्योकि शीतोष्ण योनि वाले सिर्फ भवनपति देव, गर्भज तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय, गर्भज मनुष्य, व्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देव ही हैं। उनसे असख्यातगुणे उष्णयोनिक जीव है, क्योकि सभी सूक्ष्म-बादरभेदयुक्त तेजस्कायिक, अधिकाश नैरयिक, कतिपय पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, वायुकायिक तथा प्रत्येक वनस्पतिकायिक उष्णयोनिक होते है। उनकी अपेक्षा अयोनिक (योनिरहित—सिद्ध) जीव अनन्तगुणे होते है, क्योकि सिद्ध जीव अनन्त हैं। इनकी अपेक्षा शीतयोनिक अनन्तगुणे होते है, क्योकि सभी अनन्तकायिक जीव शीत योनि वाले होते है और वे सिद्धो से भी अनन्तगुणे है।[1]

नैरयिकादि मे सचित्तादि त्रिविध योनियो की प्ररूपणा—

७५४ कतिविहा ण भते ! जोणी पण्णत्ता ?

गोयमा ! तिविहा जोणी पण्णत्ता। त जहा—सचित्ता १ अचित्ता २ मीसिया ३।

[७५४ प्र] भगवन् ! योनि कितने प्रकार की कही गई है ?

[७५४ उ] गौतम ! योनि तीन प्रकार की कही गई है। वह इस प्रकार—(१) सचित्त योनि, (२) अचित्त योनि और (३) मिश्र योनि।

७५५ नेरइयाण भते ! किं सचित्ता जोणी अचित्ता जोणी मीसिया जोणी ?

गोयमा ! नो सचित्ता जोणी, अचित्ता जोणी, णो मीसिया जोणी।

[७५५ प्र.] भगवन् ! नैरयिको की क्या सचित्त योनि है, अचित्त योनि है अथवा मिश्र योनि होती है ?

[७५५ उ] गौतम ! नारको की योनि सचित्त नही होती, अचित्त योनि होती है, (किन्तु) मिश्र योनि नही होती।

७५६ असुरकुमाराण भते ! किं सचित्ता जोणी अचित्ता जोणी मीसिया जोणी ?

गोयमा ! नो सचित्ता जोणी, अचित्ता जोणी, नो मीसिया जोणी।

[७५६ प्र] भगवन् ! असुरकुमारो की योनि क्या सचित्त होती है, अचित्त होती है अथवा मिश्र योनि होती है ?

[७५६ उ] गौतम ! उनके सचित्त योनि नही होती, अचित्त योनि होती है, (किन्तु) मिश्र योनि नही होती।

७५७ एव जाव थणियकुमाराण।

[७५७] इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमारो तक की योनि के विषय मे समझना चाहिए।

७५८ पुढविकाइयाण भते ! किं सचित्ता जोणी अचित्ता जोणी मीसिया जोणी ?

गोयमा ! सचित्ता वि जोणी, अचित्ता वि जोणी, मीसिया वि जोणी।

---

१ प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक २२५-२२६।

[७५८ प्र] भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीवो की योनि क्या सचित्त होती है, अचित्त होती है अथवा मिश्रयोनि होती है ?

[७५८ उ] गौतम ! उनकी योनि सचित्त भी होती है, अचित्त भी होती है और मिश्र योनि भी होती है।

७५९ एवं जाव चउरिंदियाणं।

[७५९] इसी प्रकार यावत् चतुरिन्द्रिय जीवो तक (की योनि के विषय मे समझना चाहिए।)

७६० सम्मुच्छिमपंचिंदियतिरिक्खजोणियाण सम्मुच्छिममणुस्साण य एव चेव।

[७६०] सम्मूर्च्छिम पचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिको एव सम्मूर्च्छिम मनुष्यो की योनि के विषय मे इसी प्रकार समझ लेना चाहिए।

७६१. गब्भवक्कतियपचेंदियतिरिक्खजोणियाण गब्भवक्कतियमणुस्साण य नो सचित्ता, नो अचित्ता, मीसिया जोणी।

[७६१] गर्भज पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिको तथा गर्भज मनुष्यो की योनि न तो सचित्त होती है और न ही अचित्त, किन्तु मिश्र योनि होती है।

७६२ वाणमतर-जोइसिय-वेमाणियाण जहा असुरकुमाराण।

[७६२] वाणव्यन्तर देवो, ज्योतिष्क देवो एव वैमानिक देवो (की योनि के विषय मे) असुरकुमारो के (योनिविषयक वर्णन के) समान ही (समझना चाहिए।)

७६३ एतेसि ण भते ! जीवाण सचित्तजोणीण अचित्तजोणीण मीसजोणीणं अजोणीण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा मीसजोणिया, अचित्तजोणिया असखेज्जगुणा, अजोणिया अणतगुणा, सचित्तजोणिया अणतगुणा। २॥

[७६३ प्र] भगवन् ! इन सचित्तयोनिक जीवो, अचित्तयोनिक जीवो, मिश्रयोनिक जीवो तथा अयोनिको मे से कौन, किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक होते हैं ?

[७६३ उ] गौतम ! मिश्रयोनिक जीव सबसे थोडे होते है, (उनसे) अचित्तयोनिक जीव असख्यातगुणे अधिक होते है, (उनसे) अयोनिक जीव अनन्तगुणे होते हैं (और उनसे भी) सचित्तयोनिक जीव अनन्तगुणे होते है॥ २॥

विवेचन—प्रकारान्तर से सचित्तादि त्रिविध योनियो की अपेक्षा से सर्व जीवो का विचार— प्रस्तुत दस सूत्रो (सू ७५४ से ७६३ तक) मे योनि के प्रकारान्तर से सचित्तादि तीन भेद बताकर, चौवीस दण्डकवर्ती जीवो के क्रम से किस जीव के कौन-कौन-सी योनियाँ होती हैं ? तथा कौन-सी योनि वाले जीव अल्प, बहुत या विशेषाधिक होते है ? इसकी चर्चा की गई है।

सचित्तादि योनियो के अर्थ—**सचित्त योनि**—जो योनि जीव (आत्म) प्रदेशो से सम्बद्ध हो। **अचित्त योनि**—जो योनि जीव रहित हो। **मिश्र योनि**—जो योनि जीव से मुक्त और अमुक्त उभय-स्वरूप वाली हो, यानी जो सचित्त और अचित्त दोनो प्रकार की हो।

किन जीवो की योनि कैसी और क्यो?—नारको के जो उपपात क्षेत्र है, वे किसी जीव के द्वारा परिगृहीत न होने से सचित्त (सजीव) नही होते, इस कारण उनकी योनि अचित्त ही होती है। यद्यपि सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव समस्त लोक (लोकाकाश) मे व्याप्त होते है, तथापि उन जीवो के प्रदेशो से उन उपपातक्षेत्रो के पुद्गल परस्परानुगमरूप से सम्बद्ध नही होते, अर्थात्—वे उपपातक्षेत्र उन सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवो के शरीररूप नही होते, इस कारण नैरयिको की योनि अचित्त ही कही गई है। इसी प्रकार असुरकुमारादि दशविध भवनपति देवो, व्यन्तरो, ज्योतिष्को और वैमानिक देवो की योनिया भी अचित्त ही समझनी चाहिए। पृथ्वीकायिको से लेकर सम्मूच्छिम मनुष्य पर्यन्त सबके उपपातक्षेत्र जीवो से परिगृहीत भी होते है, अपरिगृहीत भी और उभयरूप भी होते हैं, इसलिए इनकी योनि तीनो प्रकार की होती है। गर्भज तिर्यञ्चपचेन्द्रियो और गर्भज मनुष्यो की जहाँ उत्पत्ति होती है, वहाँ अचित्त शुक्र-शोणित आदि पुद्गल भी होते है, अतएव वे मिश्र योनि वाले है।

सचित्तादि योनियो की अपेक्षा से जीवो का अल्पबहुत्व—सबसे थोडे जीव मिश्रयोनिक इसलिए बताए गए है कि मिश्रयोनिको मे केवल गर्भज तिर्यञ्चपचेन्द्रिय और गर्भज मनुष्य ही है। उनसे अचित्तयोनिक जीव असख्यातगुणे अधिक है, क्योकि समस्त देव, नारक तथा कतिपय पृथ्वी-कायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, प्रत्येकवनस्पतिकायिक, द्वि-त्रि-चतुरिन्द्रियजीव, सम्मूच्छिम तिर्यञ्च पचेन्द्रिय एव सम्मूच्छिम मनुष्य अचित्त योनि वाले होते हे। अचित्तयोनिको की अपेक्षा अयोनिक (सिद्ध) जीव अनन्त है, क्योकि सिद्ध अनन्त है और अयोनिको की अपेक्षा भी सचित्तयोनिक जीव अनन्तगुणे अधिक है, क्योकि निगोद के जीव सचित्तयोनिक होते हैं और वे सिद्धो से भी अनन्तगुणे अधिक होते है।[1]

सर्वजीवो मे संवृतादि त्रिविधयोनियो की प्ररूपणा—

७६४ कतिविहा ण भते! जोणी पण्णत्ता?

गोयमा! तिविहा जोणी पण्णत्ता। त जहा—सवुडा जोणी १ वियडा जोणी २ सवुडवियडा जोणी ३।

[७६४ प्र] भगवन्! योनि कितने प्रकार की कही गई है?

[७६४ उ] गौतम! योनि तीन प्रकार की कही गई है। वह इस प्रकार—(१) सवृत योनि, विवृत योनि और (३) सवृत-विवृत योनि।

७६५ नेरइयाण भते! कि सवुडा जोणी वियडा जोणी सवुडवियडा जोणी?

गोयमा! सवुडा जोणी, नो वियडा जोणी, नो सवुडवियडा जोणी।

१ प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक २२६-२२७

[७६५ प्र] भगवन् ! नैरयिको की क्या सवृत योनि होती है, विवृत योनि होती है, अथवा सवृत-विवृत योनि होती है ?

[७६५ उ] गौतम ! नेरयिको की योनि सवृत होती है, परन्तु विवृत नही होती और न ही सवृत-विवृत होती है ।

७६६ एव जाव वणस्सइकाइयाण ।

[७६६] इसी प्रकार यावत् वनस्पतिकायिक जीवो तक (की योनि के विषय मे कहना चाहिए) ।

७६७. बेइंदियाण पुच्छा ।

गोयमा ! नो सवुडा जोणी, वियडा जोणी, णो सवुडवियडा जोणी ।

[७६७ प्र] भगवन् ! द्वीन्द्रिय जीवो की योनि सवृत होती है, विवृत होती या सवृत-विवृत होती है ?

[७६७ उ] गौतम ! उनकी योनि सवृत नही होती, (किन्तु) विवृत होती है, (पर) सवृत-विवृत योनि नही होती ।

७६८ एव जाव चउरिंदियाण ।

[७६८] इसी प्रकार यावत् चतुरिन्द्रिय जीवो तक (की योनि के विषय मे समझ लेना चाहिए ।)

७६९ सम्मुच्छिमपचेंदियतिरिक्खजोणियाण सम्मुच्छिमणुस्साण य एव चेव ।

[७६९] सम्मूर्च्छिम पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक एव सम्मूर्च्छिम मनुष्यो की (योनि के विषय मे भी इसी प्रकार समझना चाहिए ।)

७७० गब्भवक्कतियपचेंदियतिरिक्खजोणियाण गब्भवक्कतियमणुस्साण य नो सवुडा जोणी, नो वियडा जोणी, सवुडवियडा जोणी ।

[७७०] गर्भज पचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीवो और गर्भज मनुष्यो की योनि सवृत नही होती और न विवृत योनि होती है, किन्तु सवृत-विवृत होती है ।

७७१ वाणमतर-जोइसिय-वेमाणियाण जहा नेरइयाण ।

[७७१] वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवो की (योनि के सम्बन्ध मे) नैरयिको की (योनि की) तरह समझना चाहिए ।

७७२ एतेसि ण भते ! जीवाण सवुडजोणियाण वियडजोणियाण सवुडवियडजोणियाण अजोणियाण य कतरे कतरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा सवुडवियडजोणिया, वियडजोणिया असखेज्जगुणा, अजोणिया अणतगुणा, संवुडजोणिया अणतगुणा । ३ ।।

[७७२ प्र] भगवन् ! इन सवृतयोनिक जीवो, विवृतयोनिक जीवो, सवृत-विवृतयोनिक जीवो तथा अयोनिक जीवो मे से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक होते है ?

[७७२ उ] गौतम ! सबसे कम सवृत-विवृतयोनिक जीव है, (उनसे) विवृतयोनिक जीव असख्यातगुणे (अधिक) है, (उनसे) अयोनिक जीव अनन्तगुणे है (और उनसे भी) सवृतयोनिक जीव अनन्तगुणे (अधिक) है ।।३।।

विवेचन—तीसरे प्रकार से सवृतादि त्रिविध योनियो की अपेक्षा से जीवो का विचार—प्रस्तुत नौ सूत्रो (सू ७६४ से ७७२ तक) मे शास्त्रकार ने तृतीय प्रकार से योनियो के सवृतादि तीन भेद बता कर किस जीव के कौन-कौन-सी योनि होती है ? तथा कौन-सी योनि वाले जीव अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं ? इसका विचार प्रस्तुत किया है ।

सवृतादि योनियो का अर्थ—सवृत योनि=जो योनि आच्छादित (ढकी हुई) हो । **विवृत-योनि**=जो योनि खुली हुई हो, अथवा बाहर से स्पष्ट प्रतीत होती हो । **सवृत-विवृत योनि**=जो सवृत और विवृत दोनो प्रकार की हो ।

किन जीवो की योनि कौन और क्यो ?—नारको की योनि सवृत इसलिए बताई है कि नारको के उत्पत्तिस्थान नरकनिष्कुट होते है और वे आच्छादित (सवृत) गवाक्ष (झरोखे) के समान होते है । उन स्थानो मे उत्पन्न हुए नारक शरीर से वृद्धि को प्राप्त होकर शीत से उष्ण और उष्ण से शीत स्थानो मे गिरते है । इसी प्रकार भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवो की योनि सवृत होती है, क्योकि उनकी उत्पत्ति (उपपात) देवशैय्या मे देवदूष्य से आच्छान्दित स्थान मे होती है । एकेन्द्रिय जीव भी सवृत योनि वाले होते है, क्योकि उनकी उत्पत्तिस्थली (योनि) स्पष्ट उपलक्षित नही होती । द्वीन्द्रिय से लेकर चतुरिन्द्रिय तक के जीवो तथा सम्मूच्छिम तिर्यञ्च पचेंद्रियो एव सम्मूच्छिम मनुष्यो की योनि विवृत है, क्योकि इनके जलाशय आदि उत्पत्तिस्थान स्पष्ट प्रतीत होते है । गर्भज तिर्यञ्च पचेन्द्रियो और गर्भज मनुष्यो की योनि सवृत-विवृत होती है, क्योकि इनका गर्भ सवृत और विवृत उभयरूप होता है । अन्दर (उदर मे) रहा हुआ गर्भ स्वरूप से प्रतीत नही होता, किन्तु उदर के बढने आदि से बाहर से उपलक्षित होता है ।

सवृतादि योनियो की अपेक्षा से जीवो का अल्पबहुत्व—सबसे थोडे सवृत-विवृत योनि वाले जीव होते है, क्योकि गर्भज तिर्यञ्च पचेन्द्रिय और गर्भज मनुष्य ही सवृत-विवृत योनि वाले है । उनकी अपेक्षा विवृतयोनिक जीव असख्यातगुणे है, क्योकि द्वीन्द्रिय से लेकर चतुरिन्द्रिय तक के जीव तथा सम्मूच्छिम तिर्यञ्च पचेन्द्रिय एव सम्मूच्छिम मनुष्य विवृत योनि वाले है । उनसे अयोनिक जीव अनन्त गुणे है, क्योकि सिद्ध अनन्त होते हैं और उनसे भी अनन्तगुणे सवृतयोनिक जीव होते हैं, क्योकि वनस्पतिकायिक जीव सवृतयोनिक होते है और वे सिद्धो से भी अनन्तगुणे होते हैं ।[1]

मनुष्यो की त्रिविध विशिष्ट योनियां—

७७३ [१] कतिविहा ण भंते ! जोणी पण्णत्ता ?

गोयमा ! तिविहा जोणी पण्णत्ता । त जहा—कुम्मुण्णया १ सखावत्ता २ वसीपत्ता ३ ।

---

१ प्रज्ञापनासूत्र, मलय वृत्ति, पत्राक २२७

[७७३-१ प्र] भगवन् ! योनि कितने प्रकार की कही गई है ?

[७७३-१ उ] गौतम ! योनि तीन प्रकार की कही गई है। वह इस प्रकार—(१) कूर्मोन्नता, (२) शखावर्त्ता और (३) वशीपत्रा।

[२] कुम्मुण्णया ण जोणी उत्तमपुरिसमाऊण। कुम्मुण्णयाए ण जोणीए उत्तमपुरिसा गब्भे वक्कमति। त जहा—अरहता चक्कवट्टी वलदेवा वासुदेवा।

[७७३-२] कूर्मोन्नता योनि उत्तमपुरुपो की माताओ की होती है। कर्मोन्नता योनि मे (ये) उत्तमपुरुष गर्भ मे उत्पन्न होते है। जैसे—अर्हन्त (तीर्थकर), चक्रवर्ती, वलदेव और वासुदेव।

[३] संखावत्ता ण जोणी इत्थिरयणस्स। सखावत्ताए ण जोणीए बहवे जीवा य पोग्गला य वक्कमति विउक्कमति चयति उवचयति, नो चेव ण निप्फज्जति।

[७७३-३] शखावर्त्ता योनि स्त्रीरत्न की होती है। शखावर्त्ता योनि मे बहुत-से जीव और पुद्गल आते है, गर्भरूप मे उत्पन्न होते है, सामान्य और विशेषरूप से उनकी वृद्धि (चय-उपचय) होती है, किन्तु उनकी निष्पत्ति नही होती।

[४] वसीपत्ता ण जोणी पिहुजणस्स। वसीपत्ताए ण जोणीए पिहुजणे गब्भे वक्कमति।

॥ पण्णवणाए भगवईए णवम जोणीपय समत्त ॥

[७७३-४] वशीपत्रा योनि पृथक् (सामान्य) जनो की (माताओ की) होती है। वशीपत्रा योनि मे पृथक् (साधारण) जीव गर्भ मे आते है।

विवेचन—मनुष्यो की त्रिविध योनिविशेषो की प्ररूपणा—प्रस्तुत सूत्र (७७३/१,२,३,४) मे मनुष्यो को कूर्मोन्नता आदि तीन विशिष्ट योनियो, योनि वाली स्त्रियो एव उनमे जन्म लेने वाले मनुष्यो का निरूपण किया गया है।

कूर्मोन्नता आदि योनियो का अर्थ—कूर्मोन्नता योनि=जो योनि कछुए की पीठ की तरह उन्नत—ऊँची उठी हुई या उभरी हुई हो। **शखावर्त्ता योनि**=जिसके आवर्त्त शख के उतार-चढाव के समान हो, ऐसी योनि। **वशीपत्रा योनि**—जो योनि दो सयुक्त (जुडे हुए) वशीपत्रो के समान आकार वाली हो।

शखावर्त्ता योनि का स्वरूप—शखावर्त्ता स्त्रीरत्न की अर्थात्—चक्रवर्ती की पटरानी की होती है। इस योनि मे बहुत-से जीव अवक्रमण करते (आते) है, व्युत्क्रमण करते (गर्भ-रूप मे उत्पन्न होते) हैं, चित होते (सामान्यरूप से बढते) है और उपचित होते (विशेषरूप से बढते) है। परन्तु वे निष्पन्न नही होते, गर्भ मे ही नष्ट हो जाते हैं। इस सम्बन्ध मे वृद्ध आचार्यो का मत है कि शखावर्त्ता योनि मे आए हुए जीव अतिप्रबल कामाग्नि के परिताप से वही विध्वस्त हो जाते हैं। [१]

प्रज्ञापनासूत्र : नौवाँ योनिपद समाप्त ॥

---

१ (क) प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक २२८

(ख) प्रज्ञापनासूत्र प्रमेयवोधिनी टीका, भा ३, पृ ८३-८४

[७७२ प्र] भगवन् ! इन सवृतयोनिक जीवो, विवृतयोनिक जीवो, सवृत-विवृतयोनिक जीवो तथा अयोनिक जीवो मे से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक होते है ?

[७७२ उ] गौतम ! सबसे कम सवृत-विवृतयोनिक जीव है, (उनसे) विवृतयोनिक जीव असख्यातगुणे (अधिक) है, (उनसे) अयोनिक जीव अनन्तगुणे है (और उनसे भी) सवृतयोनिक जीव अनन्तगुणे (अधिक) है ।।३।।

विवेचन—तीसरे प्रकार से सवृतादि त्रिविध योनियो की अपेक्षा से जीवो का विचार—प्रस्तुत नौ सूत्रो (सू ७६४ से ७७२ तक) मे शास्त्रकार ने तृतीय प्रकार से योनियो के सवृतादि तीन भेद बता कर किस जीव के कौन-कौन-सी योनि होती है ? तथा कौन-सी योनि वाले जीव अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं ? इसका विचार प्रस्तुत किया है ।

सवृतादि योनियो का अर्थ—सवृत योनि=जो योनि आच्छादित (ढकी हुई) हो । **विवृत-योनि**=जो योनि खुली हुई हो, अथवा बाहर से स्पष्ट प्रतीत होती हो । **सवृत-विवृत योनि**=जो सवृत और विवृत दोनो प्रकार की हो ।

किन जीवो की योनि कौन और क्यो ?—नारको की योनि सवृत इसलिए बताई है कि नारको के उत्पत्तिस्थान नरकनिष्कुट होते है और वे आच्छादित (सवृत) गवाक्ष (झरोखे) के समान होते है । उन स्थानो मे उत्पन्न हुए नारक शरीर से वृद्धि को प्राप्त होकर शीत से उष्ण और उष्ण से शीत स्थानो मे गिरते है । इसी प्रकार भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवो की योनि सवृत होती है, क्योकि उनकी उत्पत्ति (उपपात) देवशैय्या मे देवदूष्य से आच्छान्दित स्थान मे होती है । एकेन्द्रिय जीव भी सवृत योनि वाले होते है, क्योकि उनकी उत्पत्तिस्थली (योनि) स्पष्ट उपलक्षित नही होती । द्वीन्द्रिय से लेकर चतुरिन्द्रिय तक के जीवो तथा सम्मूर्च्छिम तिर्यञ्च पचेद्रियो एव सम्मूर्च्छिम मनुष्यो की योनि विवृत है, क्योकि इनके जलाशय आदि उत्पत्तिस्थान स्पष्ट प्रतीत होते हैं । गर्भज तिर्यञ्च पचेन्द्रियो और गर्भज मनुष्यो की योनि सवृत-विवृत होती है, क्योकि इनका गर्भ सवृत और विवृत उभयरूप होता है । अन्दर (उदर मे) रहा हुआ गर्भ स्वरूप से प्रतीत नही होता, किन्तु उदर के बढने आदि से बाहर से उपलक्षित होता है ।

सवृतादि योनियो की अपेक्षा से जीवो का अल्पबहुत्व—सबसे थोडे सवृत-विवृत योनि वाले जीव होते है, क्योकि गर्भज तिर्यञ्च पचेन्द्रिय और गर्भज मनुष्य ही सवृत-विवृत योनि वाले है । उनकी अपेक्षा विवृतयोनिक जीव असख्यातगुणे हैं, क्योकि द्वीन्द्रिय से लेकर चतुरिन्द्रिय तक के जीव तथा सम्मूर्च्छिम तिर्यञ्च पचेन्द्रिय एव सम्मूर्च्छिम मनुष्य विवृत योनि वाले है । उनसे अयोनिक जीव अनन्त गुणे हैं, क्योकि सिद्ध अनन्त होते हैं और उनसे भी अनन्तगुणे सवृतयोनिक जीव होते हैं, क्योकि वनस्पतिकायिक जीव सवृतयोनिक होते हैं और वे सिद्धो से भी अनन्तगुणे होते हैं ।[1]

मनुष्यो की त्रिविध विशिष्ट योनियां—

७७३ [१] कतिविहा ण भते ! जोणी पण्णत्ता ?

गोयमा ! तिविहा जोणी पण्णत्ता । त जहा—कुम्मुण्णया १ सखावत्ता २ वसीपत्ता ३ ।

---

१ प्रज्ञापनासूत्र, मलय वृत्ति, पत्राक २२७

[७७३-१ प्र] भगवन् ! योनि कितने प्रकार की कही गई है ?

[७७३-१ उ] गौतम ! योनि तीन प्रकार की कही गई है। वह इस प्रकार—(१) कूर्मोन्नता, (२) शखावर्त्ता और (३) वशीपत्रा ।

[२] कुम्मुण्णया ण जोणी उत्तमपुरिसमाऊण । कुम्मुण्णयाए ण जोणीए उत्तमपुरिसा गब्भे वक्कमति । त जहा—अरहता चक्कवट्टी वलदेवा वासुदेवा ।

[७७३-२] कूर्मोन्नता योनि उत्तमपुरुषो की माताओ की होती है । कर्मोन्नता योनि मे (ये) उत्तमपुरुष गर्भ मे उत्पन्न होते है । जैसे—अर्हन्त (तीर्थकर), चक्रवर्ती, वलदेव और वासुदेव ।

[३] सखावत्ता ण जोणी इत्थिरयणस्स । सखावत्ताए ण जोणीए वहवे जीवा य पोग्गला य वक्कमति विउक्कमति चयति उवचयति, नो चेव ण निप्फज्जति ।

[७७३-३] शखावर्त्ता योनि स्त्रीरत्न की होती है । शखावर्त्ता योनि मे बहुत-से जीव और पुद्गल आते है, गर्भरूप मे उत्पन्न होते है, सामान्य और विशेषरूप से उनकी वृद्धि (चय-उपचय) होती है, किन्तु उनकी निष्पत्ति नही होती ।

[४] वंसीपत्ता ण जोणी पिहुजणस्स । वसीपत्ताए ण जोणीए पिहुजणे गब्भे वक्कमति ।

।। पण्णवणाए भगवईए णवम जोणीपय समत्त ।।

[७७३-४] वशीपत्रा योनि पृथक् (सामान्य) जनो की (माताओ की) होती है । वशीपत्रा योनि मे पृथक् (साधारण) जीव गर्भ मे आते है ।

विवेचन—मनुष्यो की त्रिविध योनिविशेषो की प्ररूपणा—प्रस्तुत सूत्र (७७३/१,२,३,४) मे मनुष्यो को कूर्मोन्नता आदि तीन विशिष्ट योनियो, योनि वाली स्त्रियो एव उनमे जन्म लेने वाले मनुष्यो का निरूपण किया गया है ।

कूर्मोन्नता आदि योनियो का अर्थ—कूर्मोन्नता योनि=जो योनि कछुए की पीठ की तरह उन्नत—ऊँची उठी हुई या उभरी हुई हो । **शखावर्त्ता योनि**=जिसके आवर्त्त शख के उतार-चढाव के समान हो, ऐसी योनि । **वशीपत्रा योनि**—जो योनि दो सयुक्त (जुडे हुए) वशीपत्रो के समान आकार वाली हो ।

शखावर्त्ता योनि का स्वरूप—शखावर्त्ता स्त्रीरत्न की अर्थात्—चक्रवर्ती की पटरानी की होती है । इस योनि मे बहुत-से जीव अवक्रमण करते (आते) हैं, व्युत्क्रमण करते (गर्भ-रूप मे उत्पन्न होते) है, चित होते (सामान्यरूप से बढते) है और उपचित होते (विशेषरूप से बढते) है । परन्तु वे निष्पन्न नही होते, गर्भ मे ही नष्ट हो जाते हैं । इस सम्बन्ध मे वृद्ध आचार्यो का मत है कि शखावर्त्ता योनि मे आए हुए जीव अतिप्रबल कामाग्नि के परिताप से वही विध्वस्त हो जाते है । [1]

प्रज्ञापनासूत्र : नौवाँ योनिपद समाप्त ।।

---

१ (क) प्रज्ञापनासूत्र मलय वृत्ति, पत्राक २२८

(ख) प्रज्ञापनासूत्र प्रमेयवोधिनी टीका, भा ३, पृ ८३-८४

प्रज्ञापनासूत्र : स्थान १-९

ा ानुक्र ूची

□□

अनध्यायकाल

[स्व० आचार्यप्रवर श्री आत्मारामजी म० द्वारा सम्पादित नन्दीसूत्र से उद्धृत]

स्वाध्याय के लिए आगमो मे जो समय बताया गया है, उसी समय शास्त्रो का स्वाध्याय करना चाहिए। अनध्यायकाल मे स्वाध्याय वर्जित है।

मनुस्मृति आदि स्मृतियो मे भी अनध्यायकाल का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। वैदिक लोग भी वेद के अनध्यायो का उल्लेख करते है। इसी प्रकार अन्य आर्ष ग्रन्थो का भी अनध्याय माना जाता है। जैनागम भी सर्वज्ञोक्त, देवाधिष्ठित तथा स्वरविद्या सयुक्त होने के कारण, इन का भी आगमो मे अनध्यायकाल वर्णित किया गया है, जैसे कि—

दसविधे अतलिक्खिते असज्झाए पण्णत्ते, त जहा—उक्कावाते, दिसिदाघे, गज्जिते, निग्घाते, जुवते, जक्खालित्ते, धूमिता, महिता, रयउग्घाते।

दसविहे ओरालिते असज्झातिते, त जहा—अट्ठी, मस, सोणिते, असुतिसामते, सुसाणसामते, चदोवराते, सूरोवराते, पडने, रायवुग्गहे, उवस्सयस्स अतो ओरालिए सरीरगे।

—स्थानाङ्ग सूत्र, स्थान १०

नो कप्पति निग्गथाण वा, निग्गथीण वा चउहिं महापाडिवएहिं सज्झाय करित्तए, त जहा—आसाढपाडिवए, इदमहपाडिवए, कत्तिअपाडिवए, सुगिम्हपाडिवए। नो कप्पइ निग्गथाण वा निग्गथीण वा, चउहिं सझाहिं सज्झाय करेत्तए, त जहा—पडिमाते, पच्छिमाते, मज्झण्हे, अड्ढरत्ते। कप्पइ निग्गथाण वा निग्गथीण वा, चाउक्काल सज्झाय करेत्तए, त जहा—पुव्वण्हे, अवरण्हे, पओसे, पच्चूसे।

—स्थानाङ्ग सूत्र, स्थान ४, उद्देश २

उपरोक्त सूत्रपाठ के अनुसार, दस आकाश से सम्बन्धित, दस औदारिक शरीर से सम्बन्धित, चार महाप्रतिपदा, चार महाप्रतिपदा की पूर्णिमा और चार सन्ध्या, इस प्रकार बत्तीस अनध्याय माने गए है। जिनका सक्षेप मे निम्न प्रकार से वर्णन है, जैसे—

आकाश सम्बन्धी दस अनध्याय

१ **उल्कापात-तारापतन**—यदि महत् तारापतन हुआ है तो एक प्रहर पर्यन्त शास्त्र-स्वाध्याय नही करना चाहिए।

२ **दिग्दाह**—जब तक दिशा रक्तवर्ण की हो अर्थात् ऐसा मालूम पडे कि दिशा मे आग सी लगी है, तब भी स्वाध्याय नही करना चाहिए।

३ **गर्जित**—बादलो के गरजने पर दो प्रहर पर्यन्त स्वाध्याय न करे।

४ **विद्युत**—बिजली चमकने पर एक प्रहर पर्यन्त स्वाध्याय नही करना चाहिए।

किन्तु गर्जन और विद्युत् का अस्वाध्याय चातुर्मास मे नही मानना चाहिए। क्योकि वह

गर्जन और विद्युत् प्राय ऋतु स्वभाव से ही होता है । अत आर्द्रा से स्वाति नक्षत्र पर्यन्त अनध्याय नही माना जाता ।

५. निर्घात—बिना बादल के आकाश मे व्यन्तरादिकृत घोर गर्जना होने पर, या बादलो सहित आकाश मे कडकने पर दो पहर तक अस्वाध्याय काल है ।

६ यूपक—शुक्ल पक्ष मे प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया को सन्ध्या की प्रभा और चन्द्रप्रभा के मिलने को यूपक कहा जाता है । इन दिनो प्रहर रात्रि पर्यन्त स्वाध्याय नही करना चाहिए ।

७ यक्षादीप्त—कभी किसी दिशा मे बिजली चमकने जैसा, थोडे थोडे समय पीछे जो प्रकाश होता है वह यक्षादीप्त कहलाता है । अत आकाश मे जब तक यक्षाकार दीखता रहे तब तक स्वाध्याय नही करना चाहिए ।

८ धूमिका-कृष्ण—कार्तिक से लेकर माघ तक का समय मेघो का गर्भमास होता है । इसमे धूम्र वर्ण की सूक्ष्म जलरूप धु ध पडती है । वह धूमिका-कृष्ण कहलाती है । जब तक यह धु ध पडती रहे, तब तक स्वाध्याय नही करना चाहिए ।

९ मिहिकाश्वेत—शीतकाल मे श्वेत वर्ण का सूक्ष्म जलरूप धु ध मिहिका कहलाती है । जब तक यह गिरती रहे, तब तक अस्वाध्याय काल है ।

१० रज-उद्घात—वायु के कारण आकाश मे चारो ओर धूलि छा जाती है । जब तक यह धूलि फैली रहती है, स्वाध्याय नही करना चाहिए ।

उपरोक्त दस कारण आकाश सम्बन्धी अस्वाध्याय के है ।

औदारिक सम्बन्धी दस अनध्याय

११-१२-१३ हड्डी, मांस और रुधिर—पचेन्द्रिय तिर्यंच की हड्डी, मास और रुधिर यदि सामने दिखाई दें, तो जब तक वहाँ से यह वस्तुएँ उठाई न जाएँ तब तक अस्वाध्याय है । वृत्तिकार आस-पास के ६० हाथ तक इन वस्तुओ के होने पर अस्वाध्याय मानते है ।

इसी प्रकार मनुष्य सम्बन्धी अस्थि, मास और रुधिर का भी अनध्याय माना जाता है । विशेषता इतनी है कि इनका अस्वाध्याय सौ हाथ तक तथा एक दिन-रात का होता है । स्त्री के मासिक धर्म का अस्वाध्याय तीन दिन तक । बालक एव बालिका के जन्म का अस्वाध्याय क्रमश सात एव आठ दिन पर्यन्त का माना जाता है ।

१४ अशुचि—मल-मूत्र सामने दिखाई देने तक अस्वाध्याय है ।

१५ श्मशान—श्मशानभूमि के चारो ओर सौ-सौ हाथ पर्यन्त अस्वाध्याय माना जाता है ।

१६ चन्द्रग्रहण—चन्द्रग्रहण होने पर जघन्य आठ, मध्यम बारह और उत्कृष्ट सोलह प्रहर पर्यन्त स्वाध्याय नही करना चाहिए ।

१७. सूर्यग्रहण—सूर्यग्रहण होने पर भी क्रमश आठ, बारह और सोलह प्रहर पर्यन्त अस्वाध्यायकाल माना गया है ।

१८ पतन—किसी बडे मान्य राजा अथवा राष्ट्रपुरुष का निधन होने पर जब तक उसका दाहसस्कार न हो, तब तक स्वाध्याय नही करना चाहिए। अथवा जब तक दूसरा अधिकारी सत्तारूढ न हो, तब तक शनै शनै स्वाध्याय करना चाहिए।

१९ राजव्युद्ग्रह—समीपस्थ राजाओ मे परस्पर युद्ध होने पर जब तक शान्ति न हो जाए, तब तक और उसके पश्चात् भी एक दिन-रात्रि स्वाध्याय नही करे।

२०. औदारिक शरीर—उपाश्रय के भीतर पचेन्द्रिय जीव का वध हो जाने पर जब तक कलेवर पडा रहे, तब तक तथा १०० हाथ तक यदि निर्जीव कलेवर पडा हो तो स्वाध्याय नही करना चाहिए।

अस्वाध्याय के उपरोक्त १० कारण औदारिक शरीर सम्बन्धी कहे गये है।

२१-२८ चार महोत्सव और चार महाप्रतिपदा—आपाढ-पूर्णिमा, आश्विन-पूर्णिमा, कार्तिक-पूर्णिमा और चैत्र-पूर्णिमा ये चार महोत्सव है। इन पूर्णिमाओ के पश्चात् आने वाली प्रतिपदा को महाप्रतिपदा कहते हैं। इनमे स्वाध्याय करने का निषेध है।

२९-३२ प्रात, साय, मध्याह्न और अर्धरात्रि—प्रात सूर्य उगने से एक घडी पहिले तथा एक घडी पीछे। सूर्यास्त होने से एक घडी पहले तथा एक घडी पीछे। मध्याह्न अर्थात् दोपहर मे एक घडी आगे और एक घडी पीछे एव अर्धरात्रि मे भी एक घडी आगे तथा एक घडी पीछे स्वाध्याय नही करना चाहिए।

—

श्री आगम प्रकाशन समिति ब्यावर

(कार्यकारिणी समिति)

१	श्रीमान् सेठ मोहनमलजी चोरडिया	अध्यक्ष	मद्रास
२	श्रीमान् सेठ रतनचन्दजी मोदी	कार्यवाहक अध्यक्ष	ब्यावर
३	श्रीमान् कँवरलालजी बैताला	उपाध्यक्ष	गोहाटी
४	श्रीमान् दौलतराजजी पारख	उपाध्यक्ष	जोधपुर
५	श्रीमान् रतनचन्दजी चोरडिया	उपाध्यक्ष	मद्रास
६	श्रीमान् खूबचन्दजी गादिया	उपाध्यक्ष	ब्यावर
७	श्रीमान् जतनराजजी मेहता	महामन्त्री	मेडता सिटी
८	श्रीमान् चाँदमलजी विनायकिया	मन्त्री	ब्यावर
९	श्रीमान् ज्ञानराजजी मूथा	मन्त्री	पाली
१०	श्रीमान् चाँदमलजी चौपडा	सहमन्त्री	ब्यावर
११	श्रीमान् जौहरीलालजी शीशोदिया	कोषाध्यक्ष	ब्यावर
१२	श्रीमान् गुमानमलजी चोरडिया	कोषाध्यक्ष	मद्रास
१३	श्रीमान् मूलचन्दजी सुराणा	सदस्य	नागौर
१४	श्रीमान् जी सायरमलजी चोरडिया	सदस्य	मद्रास
१५	श्रीमान् जेठमलजी चोरडिया	सदस्य	बैंगलौर
१६	श्रीमान् मोहनसिंहजी लोढा	सदस्य	ब्यावर
१७	श्रीमान् बादलचन्दजी मेहता	सदस्य	इन्दौर
१८	श्रीमान् मागीलालजी सुराणा	सदस्य	सिकन्दराबाद
१९	श्रीमान् माणकचन्दजी बैताला	सदस्य	बागलकोट
२०	श्रीमान् भवरलालजी गोठी	सदस्य	मद्रास
२१	श्रीमान् भवरलालजी श्रीश्रीमाल	सदस्य	दुर्ग
२२	श्रीमान् सुगनचन्दजी चोरडिया	सदस्य	मद्रास
२३	श्रीमान् दुलीचन्दजी चोरडिया	सदस्य	मद्रास
२४	श्रीमान् खीवराजजी चोरडिया	सदस्य	मद्रास
२५	श्रीमान् प्रकाशचन्दजी जैन	सदस्य	भरतपुर
२६	श्रीमान् भवरलालजी मूथा	सदस्य	जयपुर
२७	श्रीमान् जालमसिंहजी मेडतवाल	(परामर्शदाता)	ब्यावर

श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर

अर्थसहयोगी सदस्यों की शुभ नामावली

महास्तम्भ

१ श्री सेठ मोहनमलजी चोरडिया, मद्रास
२ श्री गुलाबचन्दजी मागीलालजी सुराणा, सिकन्दराबाद
३ श्री पुखराजजी शिशोदिया, ब्यावर
४ श्री सायरमलजी जेठमलजी चोरडिया, बैंगलोर
५ श्री प्रेमराजजी भवरलालजी श्रीश्रीमाल, दुर्ग
६ श्री एस किशनचन्दजी चोरडिया, मद्रास
७ श्री कवरलालजी बेताला, गोहाटी
८ श्री सेठ खीवराजजी चोरडिया, मद्रास
९ श्री गुमानमलजी चोरडिया, मद्रास
१० श्री एस बादलचन्दजी चोरडिया, मद्रास
११ श्री जे दुलीचन्दजी चोरडिया, मद्रास
१२ श्री एस रतनचन्दजी चोरडिया, मद्रास
१३ श्री जे. अन्नराजजी चोरडिया, मद्रास
१४ श्री एस सायरचन्दजी चोरडिया, मद्रास
१५ श्री आर शान्तिलालजी उत्तमचन्दजी चोरडिया, मद्रास
१६ श्री सिरेमलजी हीराचन्दजी चोरडिया, मद्रास
१७ श्री जे हुक्मीचन्दजी चोरडिया मद्रास

स्तम्भ सदस्य

१ श्री अगरचन्दजी फतेचन्दजी पारख, जोधपुर
२ श्री जसराजजी गणेशमलजी सचेती, जोधपुर
३ श्री तिलोकचदजी सागरमलजी सचेती, मद्रास
४ श्री पूसालालजी किस्तूरचदजी सुराणा, कटगी
५ श्री आर प्रसन्नचन्दजी चोरडिया, मद्रास
६ श्री दीपचन्दजी बोकडिया, मद्रास
७ श्री मूलचन्दजी चोरडिया, कटगी
८ श्री वर्द्धमान इण्डस्ट्रीज, कानपुर
९ श्री मागीलालजी मिश्रीलालजी सचेती, दुर्ग

सरक्षक

१. श्री बिरदीचदजी प्रकाशचदजी तलेसरा, पाली
२ श्री ज्ञानराजजी केवलचन्दजी मूथा, पाली
३ श्री प्रेमराजजी जतनराजजी मेहता, मेडता सिटी
४ श्री शा० जडावमलजी माणकचन्दजी बेताला, बागलकोट
५ श्री हीरालालजी पन्नालालजी चौपडा, ब्यावर
६ श्री मोहनलालजी नेमीचदजी ललवाणी, चागाटोला
७ श्री दीपचदजी चन्दनमलजी चोरडिया, मद्रास
८ श्री पन्नालालजी भागचन्दजी बोथरा, चागाटोला
९ श्रीमती सिरेकुँवर बाई धर्मपत्नी स्व श्री सुगनचदजी झामड, मदुरान्तकम
१० श्री वस्तीमलजी मोहनलालजी बोहरा (K G F) जाडन
११ श्री थानचदजी मेहता, जोधपुर
१२ श्री भैरुदानजी लाभचदजी सुराणा, नागौर
१३ श्री खूबचन्दजी गादिया, ब्यावर
१४ श्री मिश्रीलालजी धनराजजी विनायकिया, ब्यावर
१५ श्री इन्द्रचदजी बैद, राजनादगाव
१६ श्री रावतमलजी भीकमचदजी पगारिया, बालाघाट
१७ श्री गणेशमलजी धर्मीचदजी काकरिया, टगला
१८ श्री सुगनचन्दजी बोकडिया, इन्दौर
१९ श्री हरकचदजी सागरमलजी बेताला, इन्दौर
२० श्री रघुनाथमलजी लिखमीचदजी लोढा, चागाटोला
२१ श्री सिद्धकरणजी शिखरचन्दजी बैद, चागाटोला

२२ श्री सागरमलजी नोरतमलजी पीचा, मद्रास
२३ श्री मोहनराजजी मुकनचन्दजी बालिया, अहमदाबाद
२४ श्री केशरीमलजी जवरीलालजी तलेसरा, पाली
२५ श्री रतनचदजी उत्तमचदजी मोदी, ब्यावर
२६ श्री धर्मीचदजी भागचदजी बोहरा, भूठा
२७ श्री छोगमलजी हेमराजजी लोढा, डोडीलोहारा
२८ श्री गुणचदजी दलीचदजी कटारिया, बेल्लारी
२९ श्री मूलचदजी सुजानमलजी सचेती, जोधपुर
३० श्री सी० अमरचदजी बोथरा, मद्रास
३१ श्री भवरीलालजी मूलचदजी सुराणा, मद्रास
३२ श्री बादलचदजी जुगराजजी मेहता, इन्दौर
३३ श्री लालचदजी मोहनलालजी कोठारी, गोठन
३४ श्री हीरालालजी पन्नालालजी चौपडा, अजमेर
३५ श्री मोहनलालजी पारसमलजी पगारिया, बैंगलोर
३६ श्री भवरीमलजी चोरडिया, मद्रास
३७ श्री भवरलालजी गोठी, मद्रास
३८ श्री जालमचदजी रिखबचदजी बाफना, आगरा
३९ श्री घेवरचदजी पुखराजजी भुरट, गोहाटी
४० श्री जवरचदजी गेलडा, मद्रास
४१ श्री जडावमलजी सुगनचदजी, मद्रास
४२ श्री पुखराजजी विजयराजजी, मद्रास
४३ श्री चेनमलजी सुराणा ट्रस्ट, मद्रास
४४ श्री लूणकरणजी रिखबचदजी लोढा, मद्रास
४५ श्री सूरजमलजी सज्जनराजजी महेता, कोप्पल

सहयोगी सदस्य

१ श्री देवकरणजी श्रीचन्दजी डोसी, मेडतासिटी
२ श्री छगनीबाई विनायकिया, ब्यावर
३ श्री पूनमचदजी नाहटा, जोधपुर
४ श्री भवरलालजी विजयराजजी काकरिया, विल्लीपुरम्
५ श्री भवरलालजी चौपडा, ब्यावर
६ श्री विजयराजजी रतनलालजी चतर, ब्यावर
७ श्री बी गजराजजी बोकडिया, सलेम
८ श्री फूलचन्दजी गौतमचन्दजी काठेड, पाली
९ श्री के पुखराजजी बाफणा, मद्रास
१० श्री रूपराजजी जोधराजजी मूथा, दिल्ली
११ श्री मोहनलालजी मगलचदजी पगारिया, रायपुर
१२ श्री नथमलजी मोहनलालजी लूणिया, चण्डावल
१३ श्री भवरलालजी गौतमचन्दजी पगारिया, कुशालपुरा
१४ श्री उत्तमचदजी मागीलालजी, जोधपुर
१५ श्री मूलचन्दजी पारख, जोधपुर
१६ श्री सुमेरमलजी मेडतिया, जोधपुर
१७ श्री गणेशमलजी नेमीचन्दजी टाटिया, जोधपुर
१८ श्री उदयराजजी पुखराजजी सचेती, जोधपुर
१९ श्री बादरमलजी पुखराजजी बट, कानपुर
२० श्रीमती सुन्दरबाई गोठी W/o श्री जवरीलालजी गोठी, जोधपुर
२१ श्री रायचदजी मोहनलालजी, जोधपुर
२२ श्री घेवरचदजी रूपराजजी, जोधपुर
२३ श्री भवरलालजी माणकचदजी सुराणा, मद्रास
२४ श्री जवरीलालजी अमरचन्दजी कोठारी, ब्यावर
२५ श्री माणकचन्दजी किशनलालजी, मेडतासिटी
२६ श्री मोहनलालजी गुलाबचन्दजी चतर, ब्यावर
२७ श्री जसराजजी जवरीलालजी धारीवाल, जोधपुर
२८ श्री मोहनलालजी चम्पालालजी गोठी, जोधपुर
२९ श्री नेमीचदजी डाकलिया मेहता, जोधपुर
३० श्री ताराचदजी केवलचदजी कर्णावट, जोधपुर
३१ श्री आसूमल एण्ड क०, जोधपुर
३२ श्री पुखराजजी लोढा, जोधपुर
३३ श्रीमती सुगनीबाई W/o श्री मिश्रीलालजी साड, जोधपुर
३४ श्री बच्छराजजी सुराणा, जोधपुर
३५ श्री हरकचन्दजी मेहता, जोधपुर
३६ श्री देवराजजी लाभचदजी मेडतिया, जोधपुर
३७ श्री कनकराजजी मदनराजजी गोलिया, जोधपुर
३८ श्री घेवरचन्दजी पारसमलजी टाटिया, जोधपुर
३९ श्री मागीलालजी चोरडिया, कुचेरा

४० श्री सरदारमलजी सुराणा, भिलाई
४१ श्री ओकचदजी हेमराज जी सोनी, दुर्ग
४२ श्री सूरजकरणजी सुराणा, मद्रास
४३ श्री घीसूलालजी लालचदजी पारख, दुर्ग
४४ श्री पुखराजजी बोहरा, (जैन ट्रान्सपोर्ट क) जोधपुर
४५ श्री चम्पालालजी सकलेचा, जालना
४६ श्री प्रेमराजजी मीठालालजी कामदार, वैगलोर
४७ श्री भवरलालजी मूथा एण्ड सन्स, जयपुर
४८ श्री लालचदजी मोतीलालजी गादिया, वैगलोर
४९ श्री भवरलालजी नवरत्नमलजी साखला, मेट्टूपालियम
५० श्री पुखराजजी छल्लाणी, करणगुल्ली
५१ श्री आसकरणजी जसराज जी पारख, दुर्ग
५२ श्री गणेशमलजी हेमराजजी सोनी, भिलाई
५३ श्री अमृतराजजी जसवन्तराजजी मेहता, मेडतासिटी
५४ श्री घेवरचदजी किशोरमलजी पारख, जोधपुर
५५ श्री मागीलालजी रेखचदजी पारख, जोधपुर
५६ श्री मुन्नीलालजी मूलचदजी गुलेच्छा, जोधपुर
५७ श्री रतनलालजी लखपतराजजी, जोधपुर
५८ श्री जीवराजजी पारसमलजी कोठारी, मेडता सिटी
५९ श्री भवरलालजी रिखबचदजी नाहटा, नागौर
६० श्री मागीलालजी प्रकाशचन्दजी रूणवाल, मैसूर
६१ श्री पुखराजजी बोहरा, पीपलिया
६२ श्री हरकचदजी जुगराजजी बाफना, बैंगलोर
६३ श्री चन्दनमलजी प्रेमचदजी मोदी, भिलाई
६४ श्री भीवराजजी बाघमार, कुचेरा
६५ श्री तिलोकचदजी प्रेमप्रकाशजी, अजमेर
६६ श्री विजयलालजी प्रेमचदजी गुलेच्छा, राजनादगाँव
६७ श्री रावतमलजी छाजेड, भिलाई
६८ श्री भवरलालजी डूगरमलजी काकरिया, भिलाई
६९ श्री हीरालालजी हस्तीमलजी देशलहरा, भिलाई
७० श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रावकसघ, दल्ली-राजहरा
७१ श्री चम्पालालजी बुद्धराजजी वाफणा, व्यावर
७२ श्री गगारामजी इन्द्रचदजी बोहरा, कुचेरा
७३ श्री फतेहराजजी नेमीचदजी कर्णावट, कलकत्ता
७४ श्री बालचदजी थानचन्दजी भुरट, कलकत्ता
७५ श्री सम्पतराजजी कटारिया, जोधपुर
७६ श्री जवरीलालजी शातिलालजी सुराणा, बोलारम
७७ श्री कानमलजी कोठारी, दादिया
७८ श्री पन्नालालजी मोतीलालजी सुराणा, पाली
७९ श्री माणकचदजी रतनलालजी मुणोत, टगला
८० श्री चिम्मनसिंहजी मोहनसिंहजी लोढा, व्यावर
८१ श्री रिद्धकरणजी रावतमलजी भुरट, गौहाटी
८२ श्री पारसमलजी महावीरचदजी वाफना, गोठन
८३ श्री फकीरचदजी कमलचदजी श्रीश्रीमाल, कुचेरा
८४ श्री माँगीलालजी मदनलालजी चोरडिया भैरूदा
८५ श्री सोहनलालजी लूणकरणजी सुराणा, कुचेरा
८६ श्री घीसूलालजी, पारसमलजी, जवरीलालजी कोठारी, गोठन
८७ श्री सरदारमलजी एन्ड कम्पनी, जोधपुर
८८ श्री चम्पालालजी हीरालालजी बागरेचा, जोधपुर
८९ श्री पुखराजजी कटारिया, जोधपुर
९० श्री इन्द्रचन्दजी मुकन्दचन्दजी, इन्दौर
९१ श्री भवरलालजी बाफणा, इन्दौर
९२ श्री जेठमलजी मोदी, इन्दौर
९३ श्री बालचन्दजी अमरचन्दजी मोदी, व्यावर
९४ श्री कुन्दनमलजी पारसमलजी भडारी
९५ श्री कमलाकवर ललवाणी धर्मपत्नी श्री स्व पारसमलजी ललवाणी, गोठन
९६ श्री अखेचदजी लूणकरणजी भण्डारी, कलकत्ता
९७ श्री सुगनचन्दजी सचेती, राजनादगाँव

९८ श्री प्रकाशचदजी जैन, भरतपुर
९९ श्री कुशालचदजी रिखबचदजी सुराणा, बोलारम
१०० श्री लक्ष्मीचदजी अशोककुमारजी श्रीश्रीमाल, कुचेरा
१०१ श्री गूदडमलजी चम्पालालजी, गोठन
१०२ श्री तेजराज जी कोठारी, मागलियावास
१०३ श्री सम्पतराजजी चोरडिया, मद्रास
१०४ श्री अमरचदजी छाजेड, पादु वडी
१०५ श्री जुगराजजी धनराजजी वरमेचा, मद्रास
१०६ श्री पुखराजजी नाहरमलजी ललवाणी, मद्रास
१०७ श्रीमती कचनदेवी व निर्मलादेवी, मद्रास
१०८ श्री दुलेराजजी भवरलालजी कोठारी, कुशालपुरा
१०९ श्री भवरलालजी मागीलालजी वेताला, डेह
११० श्री जीवराजजी भवरलालजी, चोरडिया भैरू दा
१११ श्री माँगीलालजी शातिलालजी रूणवाल, हरसोलाव
११२ श्री चादमलजी धनराजजी मोदी, अजमेर
११३ श्री रामप्रसन्न ज्ञानप्रसार केन्द्र, चन्द्रपुर
११४ श्री भूरमलजी दुल्लीचदजी बोकडिया, मेडता सिटी
११५ श्री मोहनलालजी धारीवाल, पाली
११६ श्रीमती रामकु वरवाई धर्मपत्नी श्री चादमलज लोढा, वम्बई
११७ श्री माँगीलालजी उत्तमचदजी वाफणा, वैंगलो
११८ श्री साचालालजी वाफणा, औरगावाद
११९ श्री भीकमचन्दजी माणकचन्दजी खाविया, (कुडालोर), मद्रास
१२० श्रीमती अनोपकु वर धर्मपत्नी श्री चम्पालालज सघवी, कुचेरा
१२१ श्री सोहनलालजी सोजतिया, थावला
१२२ श्री चम्पालालजी भण्डारी, कलकत्ता
१२३ श्री भीकमचदजी गणेशमलजी चौधरी, धूलिया
१२४ श्री पुखराजजी किशनलालजी तातेड, सिकन्दरावाद
१२५ श्री मिश्रीलालजी सज्जनलालजी कटारिया, सिकन्दरावाद
१२६ श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रावक सघ, वगडीनगर
१२७ श्री पुखराजजी पारसमलजी ललवाणी, विलाडा
१२८ श्री टी पारसमलजी चोरडिया मद्रास
१२९ श्री मोतीलालजी आसूलालजी बोहरा एण्ड क बैंगलोर
१३० श्री सम्पतराजजी सुराणा, मनमाड